श्रीः

श्रीवात्स्यायनमहर्षिप्रणीतं

कामसूत्रम्

प्रथमो भाग : १

श्रीयशोधरविरचितया जयमङ्गलाख्य-
व्याख्यया सहितम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-रिसर्चस्कालर-पण्डित माधवाचार्यनिर्मितया
पुरुषार्थप्रभाख्यभाषाटीकया टिप्पणीभिश्च विभूषितम्

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४

श्रीः

श्रीवात्स्यायनमहर्षिप्रणीतं

कामसूत्रम्

प्रथमो भाग : १

श्रीयशोधविरचितया जयमङ्गलाख्य-
व्याख्यया सहितम्

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-रिसर्चस्कालर-पण्डित माधवाचार्यनिर्मितया
पुरुषार्थप्रभाख्यभाषाटीकया टिप्पणीभिश्च विभूषितम्

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४

ॐ सत्यमेव जयते नानृतम् ।

भूमिका ।

ॐ यत्काम ! कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यताम् ॥

अशेष कल्याण गुणोंकी राशि सच्चिदानन्द आनन्दघन परब्रह्म परमात्माकी निर्हेतुकी अनुकम्पा संसारके छोटे बड़े सभी प्राणियोंपर निर्विशेष भावसे सदा बनी रहती है । यह हो सकता है कि--' जीव अनादि मायाके प्रबल तरङ्गोंमें वहकर जगदीशकी ओरसे अचेत हो जाय' पर वह करुणामय एक क्षणके लिये भी किसी दुःखित जीवको भूल जाय यह कदापि नहीं हो सकता । कोई कैसा भी क्यों न हो वह सहज मित्र अपनी सच्ची दयालुतासे सने हुए अमृतमय हाथ सर्वदा उसके शिरपर ही रखे रहता है, कभी भी दयाभाव नहीं छोड़ता । वह सृष्टिका परमपिता है, ब्रह्मासे ले आपामर सब उसकी सन्तान हैं । वह सदा सबका हितचिन्तन करता रहता है। उसे अपने अच्छे बुरे सभी पुत्रोंकी भलाईका ध्यान है। वह सर्वात्मा अनेकवार अपने परमप्रिय ऋषि मुनियोंद्वारा अपने दिव्य सन्देश सबको सुनवाता है । अनेकों ही वार आप प्रकट होकर अपनी सरणिका उपदेश देता है । संसारके जिस प्राणीने इसकी आज्ञाका पालन किया जिन्होंने इसके भेजे ऋषि मुनियोंके अमर वाक्योंपर विश्वास करके अपना पथ सुधार लिया, अपनेको उसके बताये हुए पथपर अग्रसर कर दिया, उनके जीवन भव्य बन गये, वे जीव भव्य बन गये, उनके दोनों लोक सुधर गये, वे प्रकृतिके आवरणको भेदकर परमपदको चले गये । जिन्होंने उसके उपदेशोंको नहीं माना, उसके भेजे सन्देशका आदर नहीं किया, वे पुरुष दुर्गतिके भाजन हुए, उनके दोनों लोक बिगड़ गये । नरकके बड़े २ स्थल ऐसे ही प्राणियोंसे भरे पड़े हैं । वे जबतक अपने पिताको न पहिचान लेंगे, उसके उपदेशोंको सच्चे हृदयसे ग्रहण न कर लेंगे तबतक अनन्त संसारकी चपल वीचियोंमें इसी तरह वहते रहेंगे जैसे कि वर्तमानमें वह रहे हैं । यह मैं पूर्व और पश्चिमके उन आस्तिक लोगोंका लक्ष्य लेकर कह रहा हूं जो अपने २ ढंगोंसे दुनियाँकी रचना मानते हुए इसका बनानेवाला एक मानते हैं । वे ही मेरे इस कथनके

लक्ष्य हैं यह सब मैं उन्हींके विषयको लेकर कह रहाहूँ । मेरे वे लक्ष्य कदापि नही हैं जो ईश्वरको नहीं मानते जिनके कि यहां विना मालिककी दुनियाँ है । जो मेरे लक्ष्य हैं उनको मेरी इस बातसे कभी इनकार नहीं हो सकता । वे मेरी बातोंका अवश्य ही सत्यके रूपमें अनुभव करेंगे ।

चारों पुरुषार्थ—भी परमात्माने संसारी जीवोंकी स्थितिके लिये रचदिये कि–'संसारके सब तरहके प्राणी अपने अधिकारके अनुसार इनका उपार्जन करते हुए रहे आयँगे।' इन्हें बना, इनके शास्त्रोंको भी सबके सामने रख दिया, जिससे कि सिद्ध करनेवाले निरन्तर इन्हें सिद्ध कर लें । यह तो मानी हुई बात है कि, जगदीश ही इस जगतकी तीनों अवस्थाओंका कारण है । वेद भी यही उपदेश देते हैं । छान्दोग्य उपनिषद्में लिखा हुआ है कि–"**तज्जलानीति शान्तमुपासीत**" यह उसीसे पैदा हुआ उसीमें लय होता है, यह स्थित भी उसीसे है । जिस तरह उसके उत्पन्न करनेके कुछ आत्मसाधन हैं उसी तरह स्थित रखनेके भी कुछ अवश्य हैं । ऋषि उन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहते हैं । यह चतुर्वर्ग कहकर बोला जाता है पर मोक्ष चाहनेवाले अधिक नहीं होते इस कारण महर्षि वात्स्यायन धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्गको स्थितिका साधन मानते हुए कहते हैं कि–

"प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायशतसहस्रेण अग्रे प्रोवाच ।"

त्रिवर्ग स्थितिका कारण है, इस कारण प्रजापतिने त्रिवर्गके शास्त्रोंको एक लाख अध्यायोंमें कह डाला । इस सूत्रकी विस्तृत टीका पहिले अधिकरणके पहिले अध्यायमें है । इस कारण यहां इसके अर्थका विस्तार नहीं करते, केवल मन्तव्य दिखानेके लिये लिख दिया है । इससे ज्यादा उस दयालुकी दयालुतामें और क्या प्रमाण हो सकता है कि–" जीवोंके कर्म्मोंके अनादिप्रवाहसे प्रेरित होकर संसारको रचना भी पड़ा तो अपने ही अंश जीवोंके लिये उसने संसारमें उपेय और उपायको भी रख दिया कि–इसके द्वारा आप अपना अभीष्ट सिद्ध करते रहें, इसमें भी इसके द्वारा सानन्द रह सकते हैं ।" ये चारों पुरुषार्थ जीवोंके अधिकारोंके अनुसार उपार्जन किये जाते हैं । जो

जिसका अधिकारी होता है वह उस शास्त्रसे उस पुरुषार्थको जानकर सिद्ध कर सकता है। जिन्होंने सिद्ध किया उन्होंने शास्त्रके द्वारा अपनेको उसका अधिकारी बनाकर ही उसे अधिकृत किया। जो जिस पुरुषार्थका अपनेको अधिकारी नहीं बना सका उसका उसके लिये व्यर्थ ही प्रयत्न होता है। वह उसे विना साधनके किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं कर पाता।

संसार इन्हींके साधनमें लगा है—जबसे कि इसकी दृष्टि इन पदार्थोंपर गई इनका चेला हो गया। सोते जागते उठते बैठते संसारकी यही एक चिन्ता है। अपने ऊपर व इस विचित्र संसारके किसी भी प्राणीपर गहरी दृष्टि डालकर देख लीजिये। वह आपको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंमेंसे जौनसा उसे प्रिय लगता होगा, जिसकी कि उसे आवश्यकता होगी उसीके सिद्ध करनेमें पूरा प्रयास करता हुआ ही मिलेगा। धर्मोपार्जनने महाराजा हरिश्चन्द्रजीको श्मशानका सिपाही बनाया, महाराजा युधिष्ठिरको नंगे पाँव वन वन फिराया, सतियोंके पुण्यके लोभने अनेकों महाराष्ट्र और राजपूत वीरोंको समराग्निका शलभ बना दिया, जिनकी कि कहानियां आज भी भारतीयोंके रक्तको खौलता देती हैं। आधिपत्यादि अर्थके लोभके आवेशमें दशशिरने अगणितों ही वार अपने दशों शिर आगमें इस प्रकार हवन कर दिये जिस प्रकार कि साधारण शाकल्य हवन कर दिया जाता है। एक सबल आक्रमणकारीने कभी निर्बलकी आहोंकी चिन्ता न की एवम् खूनकी नदियां बहाकर भी वहांसे मालखजाने लादकर घर ले जानेमें ही अपनी शूरवीरता समझी। यह अर्थकी ही महिमा है जो हजारों ही महापोत एक देशका माल भर दूसरे देशमें पहुँचानेके लिये रात दिन समुद्रके पानीको चीरते फिरते हैं, बड़े२ लम्बे बजारोंमें अहर्निश कारोबार चल रहे हैं। लोग बड़ी२ दूकानें लगाकर बैठे हैं। हो सकता है कि कभी धर्मपत्नीके गमनमें औरस पुत्रकी प्राप्तिरूप अर्थ व ऋतुकालमें चाह पूरी करनेके धर्मका ध्यान आजाये पर हजारोंकी संख्याकी खवासोंकी खवासी व रखेलियोंके हाव भावोंकी मुग्धता एवम् लम्बे वेशोंकी हवाखोरी सिवा कामके किस दूसरेसे हो सकती है? कानोंको श्रुतिप्रिय शब्द, त्वचाके लिये विलक्षण स्पर्श, आखोंके लिये मनोहर

रूपकी झांकी, जिह्वाके लिये मधुर रस एवम् नासिकाके लिये आमोद आ उपस्थित होना कामके प्रपंचके सिवा और क्या है ? यह सब इसीका खेल है। जिन्हें दुनियाँकी अणुमात्र भी ममता नहीं है, जिन्हें न तो संसार ही जानता हैं कि वे संसारमें हैं एवम् न वे ही जानते हैं कि हम संसारमें उपस्थित हैं। जिन दिव्याङ्गनाओंके हावभावोंके एक नजारेपर इन्द्र जैसे देवराज पतिव्रता शचीकी भी याद भूलकर उनके पीछे लग लें ऐसी उर्वशी आदि जिनकी दृष्टिमें तुच्छातितुच्छ हैं, जो लोकपालोंके रत्नजटित दिव्यसिंहासनारोहणोंके स्वागतोंको एक अनिष्टकारकसे अधिक महत्त्व नहीं देते, जिनके यहां अधिकारियोंका संग पतनका कारण समझा जाता है, जो बड़े २ राज प्रासादोंसे पर्वतोंकी उन गहन गुफाओंको अच्छा समझते हैं जिनके कि द्वारेपर शेर अपना गंभीर नाद किया करते हैं, यदि उनसे पूछा जाय कि आप यह सब किस इच्छासे प्रेरित होकर कर रहे हो तो यही उत्तर मिलेगा कि—'इस संसारसे छुटकारा पानेके लिये यह सब किया जा रहा है। हमारा एक मोक्ष ही लक्ष्य है। हम दुनियाँके किसी भी पदार्थको नहीं चाहते।' संसारसे छूटनेके लिये ये यह सब कुछ कर रहे हैं अतः ये त्यागी भी लक्ष्यविहीन नहीं हैं। इनका पथ मोक्षशास्त्र तथा लक्ष्य मोक्ष है। जो जन प्यारेके दर्शनोंमें ही अपना कल्याण समझते हैं उनके सामने मोक्ष आदि किसीको भी आदर नहीं देते ऐसे एकान्ती भक्तोंको देखा जाय तो वे भी किसी निष्ठापर ही हैं, वे भी भगवान्के बताये हुए पथके ही पथिक हैं। भक्तिपथसे ही भगवान्को पा लेना चाहते हैं। जगदीश मिल गया या उसने अपने अकिंचनोंमें स्थान दे दिया तो मोक्ष तो स्वतः ही सिद्ध वस्तु है। इस तरह भगवान्के दीवाने भी उसीके बताये मार्गको तय कर रहे हैं। धनी, त्यागी, कृती, कुलीन, महात्मा, मुनि, ऋषि, राजा, महाराजा, छैल, चौर, डाकू, व्यापारी, अच्छे और बुरे सबके ये पुरुषार्थ ही लक्ष्य हैं। कोई धार्मिक कार्य करके ही अपनेको कृतकृत्य समझता है तो किसीके यहां मुट्ठी गरम हो जाना ही सब कुछ है। कोई गलियोंमें फिरकर किसीको देखकर ही जीवन लाभ समझता है। किसीको कृष्ण दीख जाय तो इस दुनियाँको उसकी तुच्छ निछावर भी नहीं समझता। कहांतक कहें

इस तरह सारा संसार इनके उपार्जनमें ही लग रहा है। इनके मारे किसीको भी एक क्षणका अवकाश नहीं है। जो बीते वे भी सब इन्हींकी चिन्तामें बीते एवम् जो इस संसारमें प्राणी पैदा होंगे उनका भी यही एक लक्ष्य होगा। इसमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता।

इनके शास्त्रकी आवश्यकता—भी उसी तरह है जिस तरह कि वे आवश्यक हैं। भले ही मार्ग तय करनेका उत्साह हो, अपने इष्टतक पहुँचनेका परिपूर्ण निश्चय हो, पूरी लगन हो और श्रद्धाके साथ बल भी हो पर विना मार्ग-ज्ञानके पथ नहीं चला जा सकता। इसी तरह पुरुषार्थोंके उपार्जनके लिये प्रयत्नशील होकर भी विना शास्त्र जाने उनतक नहीं पहुँचा जा सकता। जो धर्म चाहे उसे सर्व प्रथम धर्मशास्त्रका ज्ञान आवश्यक है, उसे जानकर ही धर्म संग्रह कर सकता है। यही कारण है कि लोकोपकारक मनुजीने धर्मशास्त्रको पृथक् किया है। अर्थोपार्जन करनेवालेको उसी तरह अर्थशास्त्रके ज्ञानकी आवश्यकता है; विना इसके वह निर्विघ्न अर्थ सिद्ध नहीं कर सकता। जब मुनिराज चाणक्यने भारतकी बागडोर अपने हाथमें ली थी तो वेदकी तरह अर्थशास्त्रको भी पाठ्यक्रममें रखा था, आज भी उनके बनाये अर्थशास्त्रका कहीं २ पठन पाठन देखा जाता है। पढ़ना कई तरहसे होता है--एक व्यापारीके पास जो उसका अनजान बालक व्यापारका अनुभव प्राप्त करता है यह भी एक प्रकारका पठन ही है। इसी तरह दूसरे शास्त्रोंके बारेमें भी समझना चाहिये। किसी वस्तुके अनुभवका प्रचार विना उस शास्त्रके पूर्ण ज्ञानके नहीं हो सकता।

कामशास्त्र—भी अर्थ और धर्मशास्त्रसे कम नहीं है। अन्य पुरुषार्थोंकी तरह काम भी एक पुरुषार्थ है। फिर इसके लिये शास्त्र क्यों न हो? जगदीशने वेदमें कामशास्त्रका भी उपदेश दिया है। अनेकों ही ऐसे मंत्र हैं जिनके सूक्ष्म अर्थपर विचार करते हैं तो कामशास्त्रके एक अच्छे रहस्यपर प्रकाश पड़ता है। हमने कुछ मन्त्रोंको कहीं २ दिखाया भी है। इससे सीधा समझमें आ सकता है कि इसकी रचना भी वेदके आधारपर ही हुई है। इसके सबसे पहिले प्रवर्तक महात्मा नन्दिकेश्वरजी हुए जो अपने तपोबलसे शिवरूपताको प्राप्त होगये हैं। दूसरे नम्बरपर ऋषिकुमार श्वेतकेतु आये, जो वेदान्तके

स्तंभ एवम् अध्यात्मविद्याके भण्डार थे। ऐसे महापुरुषोंके परिष्कृत शास्त्र सर्वदा निर्दोष हुआ करते हैं, उनमें परोपकार और सृष्टिके कल्याणकी भावनाएं ही अधिक रहती हैं। उनमें ऐसे दोष नहीं रह सकते जो किसी भी तरह वस्तुमें हेयताका समावेश कर सकें। अधिकरण विभाग बाभ्रव्य पांचालने किया है; जो ऋग्वेदके मुख्य ऋषि समझे जाते हैं। इन तीनोंके सिवा दत्तकाचार्य्य, चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र और कुचुमार इतने महर्षिगण कामशास्त्रपर अपना २ हाथ लगा गये हैं, फिर इनके पदार्थोंको परम तपस्वी लोकोपकारी महात्मा महर्षि वात्स्यायनने—

"तदेतद् ब्रह्मचर्य्येण परेण च समाधिना।
विहितं लोकयात्रार्थे न रागार्थोऽस्य संविधिः॥"

उत्कृष्ट कोटिके ब्रह्मचर्य्यके साथ सूत्रोंका प्रणयन करते हुए निर्विकल्प समाधिसे साक्षात् देखकर सूत्रोंकी रचना की है। निर्विकल्प समाधि उसे कहते हैं जिसमें चिन्तित वस्तुके जैसेके तैसे दर्शन होते हैं। शरीरसे वस्तुके अनुभवमें भ्रमको भी अवकाश मिल सकता है, किन्तु इस समाधिके अनुभवमें भ्रमादिको किंचिद् भी अवकाश नहीं है, योगेश्वर इसीसे सत्यवस्तुका साक्षात् करते हैं। महर्षि वात्स्यायनने भी पहिले ऋषि महर्षियोंके कहे हुए कामशास्त्रके पदार्थोंकी वास्तविकताको जांचकर सूत्रके रूपमें रख दिया है कि संसारी मनुष्योंका संसार सुखपूर्वक चले, उन्होंने इसे इसीलिये बनाया है, दूसरी किसी बातके लिये नहीं बनाया। इस कथनसे यह सिद्ध होगया कि कामशास्त्र भी वेदानुकूल एवम् ऋषियोंका प्रवृत्त किया हुआ है। कामके चाहनेवालोंको इसकी नितान्त आवश्यकता है एवम् प्रकरणवश इतना भी कह दिया गया है कि कामसूत्रमें महर्षिने पूर्वाचार्य्योंके पदार्थोंका ही अनुभव करके लोकयात्राके लिये संग्रह किया है।

धर्मशास्त्रके समान ही प्रवृत्त्य है—इसमें भी किसीको सन्देह नहीं हो सकता, क्योंकि धर्मजिज्ञासुओंके लिये जितना धर्मशास्त्र आवश्यक है, काम क्या वस्तु है ? यह जाननेवालोंके लिये कामशास्त्र भी उतना ही आवश्यक है। लोकोपकारी जिस प्रकार धर्मको प्रवृत्त करते हैं, शासक जिस प्रकार धर्मके नियमोंको पालन करानेके लिये कटिबद्ध रहते हैं, जिस तरह कि

धर्मशास्त्र प्रचलित किया जाता है उसी तरह कामशास्त्र भी महापुरुषोंद्वारा प्रचलित किया जाना चाहिये । यही समझकर ऋषिसंप्रदायने इस तरफ ध्यान दिया, अकथ परिश्रम करके इसके ग्रन्थोंका निर्माण किया और संसारमें प्रचलित किया, यहांतक कि–' ब्रह्म साक्षात्कार करनेवाली निर्विकल्प समाधिको कामके पदार्थोंकि साक्षात्कारमें लगाया ।' ज्ञानी योगनिष्ठ होकर मनकी चञ्चल वृत्तियोंको रोकनेका प्रयत्न करते हैं । मन नहीं रुकता तो रोकनेका वारंवार अभ्यास करते हैं । कनक और कामिनी तो वे स्वर्गकी भी नहीं चाहते । तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान करते हैं । यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और संप्रज्ञात समाधिपर पहुँचते हैं । अनेकों कष्ट उठा ऋतंभरा प्रज्ञाको प्राप्त करते हैं । यह सब कुछ जब सिद्ध होजाता है तो पीछे परम समाधि सिद्धि होती है, जिसे पाकर योगी कृतकृत्य होजाता है । इस समाधिमें योगी सदा परमात्मपदार्थका साक्षात्कार करता रहता है, पर दयालु वात्स्यायनने संसारी पुरुषोंकी लोकयात्रा सकुशल चलानेके लिये उसी समाधिसे कामशास्त्रके पदर्थोंका अनुभव किया, इससे अधिक और दयालु कौन हो सकता है ? जो इतने दिव्य साधनोंसे देखा गया उसके बराबर दूसरा पवित्र भी कौन हो सकता है ? इसके संकर्षपर विचार करते हुए तो हम इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि, कामसूत्रका एक भी वर्ण दूषित नहीं, देखनेवालोंकी बुद्धिकी दुर्बलतासे भले ही कोई दोष दीख जाये ।

सबके ज्ञानकी आवश्यकता–है, चाहे किसी भी पुरुषार्थका सिद्ध करनेवाला क्यों न हो । विना सबके स्वरूपको जाने वह अपने अभीष्ट पुरुषार्थके शुद्ध स्वरूपको पहिचान नहीं सकता, इस कारण उसे विरुद्धके उपादानका सदा भय बना रहता है । जो धर्म प्रधान मानता है, जिसके यहां सबसे प्यारा धर्म ही है वह विना अर्थ और कामका स्वरूप जाने सबमें धर्मको नहीं चुन सकता, न उसे यह पता ही चल सकता है कि कौनसा अर्थ धार्मिक है, किस कामके उपार्जन करनेमें विशुद्ध धर्म होता है । जो इनका विधान जानते हैं उनके यहां सब पुरुषार्थ इस रीतिसे सेवन किये जाते हैं जो मुख्य पुरुषार्थके घातक नहीं होते । इस विषयको त्रिवर्ग प्रतिपत्ति प्रकरणमें

महर्षिवात्स्यायनने अच्छी तरह समझा दिया है। उसके देखनेसे निश्चय होता है कि धर्म, अर्थ और कामका जोड़ा है, एकके जिज्ञासुके लिये भी तीनोंका ज्ञान अवश्य चाहिये। यही समझकर परम पिताने इनका मिश्र ही उपदेश दिया है। यह नहीं हो सकता कि धर्मशास्त्रमात्र जानकर ही धर्मात्मा बन जाय तथा अर्थशास्त्रमात्र जानकर ही निर्दोष अर्थवाला होजाय या कामशास्त्रमात्र जानकर ही निर्दोष कामका उपार्जन कर ले।

कामका साम्राज्य—तो संसारके सब पदार्थोंपर है, जड चेतन कोई भी ऐसा नहीं बचा जो कामके शासनके सामने शिर न झुका चुका हो। यह हो सकता है कि कामान्ध धर्म, अर्थ और मोक्षशास्त्रकी शृंखलाको तृणवत् तोड़कर कामकी दुहाई देने लग जाय। पर धर्म, अर्थ और मोक्षके भक्तोंके शिरपर तो सदा ही कामका अंकुश रहता है, जिनके सामने कुबेरका अटूट कोश लुभानेकी कोई भी शक्ति नहीं रखता, जिनकी आखोंके सामने वेशकीमती हीरा, पन्ना, पुखराज पत्थरसे अधिक महत्व नहीं रखते, ऐसे अर्थ निरपेक्ष कर्तव्यपालक भी कामके अधिकारसे अपनेको अलग न रख सके, उनके ऊपर भी इस कामने बारबार विजय पाई। जिनकी धर्म-निष्ठाके सामने संसारका साम्रज्य तुच्छातितुच्छ वस्तुसे भी तुच्छ था, जो अपनी निष्ठाके सामने इन्द्रासनको भी तृणवत् समझते रहे ऐसे धर्मात्माओंको भी कामने उनके उस चिरसेवित पथसे हटा दिया जिसे कि वे अपने जीवनसे भी बहुमूल्य समझते थे। जो मोक्षको ही अपना सर्वोत्तम ध्येय समझते थे, जिनका कि हृदय ब्रह्माके लोकके आनन्दसे भी विरक्त था, जिनके यहां मायाको अणुमात्र भी अवकाश नहीं था ऐसे मोक्षचिन्तकोंको भी इस काम भगवान्‌ने एक छोटेसे कटाक्षसे अपनी ओर झुका लिया। और पुरुषार्थोंके उपार्जनमें तो मनुष्य या इनसे भी उत्तम योनिके प्राणी अधिक प्रयत्न करते हैं; किन्तु इस काम भगवान्‌का उपार्जन तो पशुपक्षी आदिक तिर्य्यक् योनियोंमें भी उसी तरह देखते हैं जिस तरह कि मनुष्य व इनसे भी उत्तम योनिके जीव करते हैं। इनकी शृङ्गारचेष्टाओंका वर्णन, कविकुलभूषण श्रीकालिदासजीने अपने विश्वविदित कुमारसम्भवकाव्यके तीसरे सर्गमें किया है कि—

"तं देशमारोपितपुष्पचापे रतिद्वितीये मदने प्रपन्ने ।
काष्ठागतस्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानि भावं क्रियया विवव्रुः ॥"

रतिको साथ लिये धनुषपर तीर चढ़ाये हुए मन्मथ देव जब शिवके आश्रममें आ उपस्थित हुए तो और तो क्या वहाँके जितने भी स्थावर और जंगम थे वे परस्परके अनुकूल जोटोंको देखकर इस प्रकार शृङ्गारकी दशाका अनुभव करने लगे जिस प्रकार कि रँगीले युवक, युवतियाँ चक्षूरागसे लेकर रतिके परिपुष्ट होनेके पीछे लेते हैं। यह दशा वृक्ष आदिकोंकी है, जो स्वानुरूप प्रिया पाकर उसपर कामसे व्याकुल होकर मोहित होगये थे। न्यायशास्त्रने तो वृक्षोंको सदा ही सजीव व सप्राण माना है किन्तु आज, आजके वैज्ञानिक भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि वृक्ष आदि भी प्राणी हैं, इनमें भी उन प्राणियोंकी सी बातें देखनेको मिलती हैं जो कि चलते फिरतोंमें देखनेमें आती है। आम और माधवी लताकी जोड़ी बनानेका कविसंप्रदायका व्यवहार असत्य नहीं है, मनुष्योंके चित्तके परिस्पन्दकी तरह इनमें भी मनोज पूरा काम करता है। महात्मा कालिदासजीने लता और तरुओंके श्लेषपर एक श्लोक दिया है कि-

"पर्य्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्यः स्फुरत् प्रवालोष्ठमनोहराभ्यः ।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि ॥"

जो लतारूपी वधुएँ खिले हुए फूलोंके सुन्दर गुच्छोंके स्तनोंको धारण किये हुए हैं, जिनके कि खिले हुए प्रवालरूपी मनोहर होठ हैं उन्हें वृक्ष, नवी हुई शाखारूपी भुजाओंसे अच्छी तरह लिभिड़ाये हुए हैं। इसतरह पुरुषोंकी सी आलिङ्गनक्रिया इनमें भी देखी जाती है। पशु पक्षी तो प्रत्यक्ष ही कामकिलोल करते देखे जाते हैं। उनके लिये साहित्यका उदाहरण देना अन्धेको दीपक दिखाना है, वे तो सदा ही अपने २ समयपर कामके एकाधिपत्यमें पाये जाते हैं। इन्हें कोई भी जब देखना चाहे तब देख सकता है। यदि साहित्यमें देखना है तो इनके कामकुतूहलकी कुछ झलक नीचे लिखे उदाहरणोंसे मिल जायगी। कालिदासजीने वर्णन किया है कि-

"मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृङ्गेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

ददौ रसात्पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः ।
अर्धोपभुक्तेन बिसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा ॥ ”

जब भौंरेके हृदयमें कामका बुदबुदा उठा तो जिस फूलपर उसकी प्यारी भौंरी मधुपान कर रही थी उसी फूलपर मधुपान करने लगा वह भी उसके पीछे २ जिससे प्रेयसीका हृदय बढ़े । हिरणकी भी जब मृगीसे रमण करनेकी इच्छा हुई तो अपने सींगोंसे हिरणीको खुजाने लगा । इस खुजानेका मृगीको इतना आनन्द मिला कि आखें मींचकर सानन्द खड़ी होगई । हाथीके हृदयमें कामका आविर्भाव हुआ तो वह कमलोंकी रजसे सुरभित हुए पानीको सूँडमें भरकर हथिनीको पिलाने लगा । इधर ऐसे चकवेका भी यही हाल हुआ कि कमलके डंठल खुतर २ कर चकवीको देने लगा । ये पशुओंकी शृङ्गारचेष्टाएँ हैं, भौंरेको जब मस्ती आती है तो वह भौंरीके फूलपर ही उड़ता फिरता है । जब हिरणके हृदयको मन्मथ मथ डालता है तो वह सींगसे ही मृगीको खुजाता है, मृगी जान जाती है कि मेरी चाह पैदा करनेवाली शक्ति इसके हृदयमें दगदगा उठी है तो आप भी कामावेशमें उस खुजानेको अमृतसे भी अधिक मीठा मानती है । जो इन स्त्रियोंको इन कामोंसे आनन्द आता है वही हथिनीको उस समय आता है जब कि इसका प्यारा हाथी इसकी ओर ललचा अपनी सूंडमें पानी भरकर देता है । जूठनखानी चकवीकी चाह भी इससे पूरी होजाती है जब उसे उसका प्यारा अपनी जूंठन खिला देता है । इसी तरह दूसरे पशु पक्षियोंकी भी शृंगारचेष्टाएँ होती हैं । वे भी कामके एकातपत्र शासनके भीतर हैं, कभी भी इसकी आज्ञाका उलंघन नहीं कर सकते ।

जगदीशपर भी हाथ है—केवल यही बात नहीं है कि संसारके प्राणियोंपर ही इसका एकाधिपत्य हो, किन्तु सर्वेश्वर भी इससे नहीं बचा है । उसके हृदयमें पहिले यह हो लेता है इसके बाद ही वह सृष्टि रचता है । यह बात अनेकों ही श्रुतियोंमें कही है । ऋग्वेदने भी इसपर एक मंत्र दिया है कि—

“ ॐ कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरबिन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥”

जब मैं तू का कोई बखेड़ा नहीं था जीव समुदाय और प्रकृति अपने सारे प्रपञ्चोंको आत्मसात् करके उस सर्वात्माके एकदेशकी शोभा बढ़ा रहे थे, वही एक अदृष्ट, अव्यवहार्य्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य, सब प्रपंच रहित, शान्त, शिव, सच्चिदानन्दस्वरूप, कल्याणकारी, गुणगणोंकी राशि परब्रह्म परमात्मा था, न काल था, न वैसा और ही कुछ था, केवल वही था, सब उसमें समाया हुआ था, जो समा रहा था उसे भी किसी दुःख सुखका भान नहीं था। जब जग ही नहीं था तो जगके विचित्र बन्धन भी कहांसे आते ? अतः शान्तिकी नदी वह रही थी वह अपने स्वरूपकी शान्तनदीमें आप ही गहरे गोते लगाकर आप ही अपने आनन्दकी तुलना कर रहा था। दूसरा उस जैसा उसका सजातीय और विजातीय कोई भी नहीं था । न कोई ध्याता था न ध्येय था एवम् न ध्यान ही था। जो अनन्त जीव प्रकृतिके तमसे मोहे हुए उसके अन्तर्गर्भमें अचेत पड़े थे उनके कर्मोंने जोर मारा। अनेक कल्पोंके इकट्ठे हुए कर्म्म जीवोंको अधिक समय तक अचेत पड़े न देख सके। इन्होंने उस खिलाडीके हृदयमें यह इच्छा पैदा कर दी कि "एकोऽहं बहु स्याम्—मैं एक हूं अनेक हो जाऊं।" जहां उस अद्वितीय पुरुषके हृदयमें यह कामना हुई उसीके बलसे वह सब व्यक्त हो गया जो महाप्रलयमें उसमें समाया था। जहां इच्छा है वहां काम है, इच्छा और काम दो पदार्थ नहीं हैं। कामसूत्रकारने इच्छाको सामान्यकाममें माना है। एककी अनेक होनेकी इच्छा ही उसके हृदयमें कामका अविर्भाव है। इसीसे प्रेरित होकर वह अनन्त लोकोंकी रचना करता है। इसीके आवेशमें भोक्ता और भोग्य वस्तुके विभाग होते हैं। ज़ड़ और चेतन दोनोंको व्यक्त करनेवाला काम है, अत एव स्थावर और जंगम सबमें इसका वासा है। जब जगदीशके हृदयमें भी यह उत्पन्न होकर सृष्टिका बीज बन जाता है तो दूसरोंकी तो गिनती ही क्या है ? भगवान्‌की बनाई सृष्टिमें तो ऐसा कोई नहीं हो सकता जो इस इच्छासे बरी हो। जो इच्छासे बरी है, जिनपर इच्छा अपना अधिकार नहीं जमा पाती वास्तवमें वे ही विदेहमुक्त हैं। वे उसके नित्य समीपी हैं। उनके लिये जगकी शृंखला तिनकेके बराबर है। पर इससे छूट जाना साधारण बात नहीं है, जब जगदीशसे लेकर

साधारण प्राणीतक इसके लपेटे हैं तो फिर ऐसा कौनमें हो सकता है जो इससे रहित हो ! जिसने कामको जीत लिया वह सिद्धेश्वर है, वही ईश्वरका समकक्ष है, वह विधि निषेध दोनोंसे दूर है, वह परवासुदेवका सदा सान्निध्य पाता है । उसके लिये भवभय तो कहांसे आये, यह तो उसे भी नहीं होता जिसपर कि ऐसे वीतराग पूर्ण कृपा कर दिया करते हैं । नहीं तो कामसे छुटकारा पाना परम कठिन है, यह किसी न किसी रूपसे अपने आधिपत्यमें संसारको रखे ही रहता है किसीको भी नहीं छोड़ता ।

कामकी अनुचित्त प्रवृत्तिकी रोक—करना तो सभी ऋषि महर्षियोंने चाहा । इसके निवारणमें बड़े २ उपदेश दिये, बड़े २ साधन बताये, अनेकों तरहके इन्द्रिय दमन बताये;जिनसे कि इन्द्रियोंको कामकी तरफ न झुकने दिया जाय । किसीने वीर्य्यवाहिनी नाडियोंको ऊंचे कर देनेकी मुद्रा बताई तो कोई वज्रोलीके उपदेशमें ही लय हो गया, किसीको खेचरी मुद्रा ही इसके निवारणका एक अद्वितीय साधन दीखा । पर काम क्या वस्तु है, इसका कौनसा रूप अनिष्ट कारक है ? यह बात सिवां कामशास्त्रके आचार्य्योंके दूसरेने न कही । गये हैं आयुर्वेदके आचार्य्य भी इधरकी तरफ, पर वे भी छोटेसे ही दायरेमें रह गये हैं । वात्स्यायनके पूर्वाचार्य्य और वात्स्यायन तथा उनके अनुयायियोंके बराबर दूसरा कोई नहीं गया है । और तो क्या भगवान् कृष्णने भी अर्जुनके लिये इसके विषयमें उपदेश दिया है कि—

" धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय ! दुष्पूरेणानलेन च ॥ "

जैसे धूएंसे आग ढक जाती है, जिस प्रकार कि दर्पण मलसे ढक जाता है, जैसे जेरसे गर्भ ढका रहता है उसी तरह इस कामके कृपाकटाक्षसे जन्तुमात्र ढके हुए हैं । यह काम ज्ञानीका सदाका वैरी है, हे अर्जुन ! यह वह आग है जो कभी न बुझे, इसीने ज्ञानको छिपा रखा है—

" इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतै र्विमोहयत्येव ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ "

इन्द्रिय, मन और बुद्धि इस कामके अधिष्ठान हैं, यह इनपर रहकर इनके द्वारा जीवोंके ज्ञानोंको ढक उन्हें मोह लेता है। हे भारतवंशके प्रधान वीर! इस कारण आप सबसे पहिले अपनी इन्द्रियोंको रोकें, फिर ज्ञान विज्ञानके नाशक इस कामरूपी पापीको मारें, क्योंकि विषयोंमें लगानेवाला समाधि भंग करनेवाला यह काम है। इस तरह भगवान् कृष्णने कामको जीतनेका उपदेश तो दिया है पर कामके किसी भी स्वरूपको नहीं समझाया कि यह काम इस प्रकारका होता है, जिससे कि साधक बच सकें। जबतक जो जिसको पहिचानता ही नहीं तो वह उससे बचनेकी क्या चेष्टा करेगा, नहीं कर सकता। जब किसीको पहिचान जाता है कि यह चोर है, मेरे माल खजानोंको इस रीतिसे देखकर अपने अधिकारमें कर लेगा तो उसे अपने यहांसे दूर करता व उससे बचनेकी चेष्टा करता है। यदि यही पता न चले कि यह कौन है तो उससे सावधान भी किस तरह रह सकता है। मोक्षशास्त्र और पुराणोंने जहां तहां कामकी उच्छृंखल प्रवृत्तिका निषेध तो किया पर काम है क्या? यह थोड़ा बहुत समझानेका भी प्रयत्न नहीं किया, इसी कारण हजारों साधन कामको विजय करनेकी इच्छा रखते हुए भी कामके ही अधिकारमें रखे रहे। इसपर कामशास्त्रके आचार्य्योंका तो यह सिद्धान्त है कि--धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शास्त्रोंका पूर्णज्ञान ही अनुचित प्रवृत्तियोंको रोकता है। व्याकरण महाभाष्यकारने भी कहा है कि—

"खेदात् स्त्रीषु प्रवृत्तिर्भवति, समानश्च खेदापगमो गम्यायां चागम्यायां च, तत्र शास्त्रेण एष नियमः क्रियते इयं गम्या इयमगम्येति।"

कामसे स्त्रियोंमें प्रवृत्ति होती है, गम्या और अगम्या दोनोंमें ही रागशान्ति एकसी है, इसमें शास्त्र यह नियम कर देता है कि यह गम्य है, इसके साथ सहवास करनेपर धर्म और अर्थकी हानि नहीं है तथा इसके साथ सहवास करनेपर महापाप होगा, अर्थकी हानि होगी। इसमें पूर्णरीतिसे गम्या और अगम्याकी व्यवस्था कामशास्त्र कर देता है, धर्मशास्त्र उसमें पाप पुण्यका निश्चय कर

देता है, अर्थशास्त्र विशुद्ध अर्थको बता देता है । जहां इन तीनोंका बाध नहीं होता वहां विज्ञ पुरुषोंकी प्रवृत्ति होती है । कामसूत्रकारके कामसूत्रमें काम-प्रतिपादन उस रीतिसे किया है जिससे अनुचितकामका स्वरूप आप ही दीख जाता है । यही कारण है कि आचार्य्यके मुखसे ये शब्द निकल गये हैं कि–

" रक्षन् धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम् ।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ॥ "

जो इस मेरे देखे हुए कामसूत्रका तत्त्व समझते हैं वे सबसे पहिले धर्म, अर्थ और कामकी अपनी सांसारिक स्थितिकी ही रक्षा करते हैं, इस कारण जितेन्द्रिय ही हुआ करते हैं । यह निश्चित बात है कि, जो वर्तमान परिस्थितिके अनुसार तीनोंकी रक्षाकी चेष्टा करता हुआ ही प्रवृत्त होगा तो उसकी अनुचित प्रवृत्तियाँ आप ही रुक जायँगी; फिर इसके इंद्रियजित् होनेमें सन्देह ही क्या रह जाता है । विचारके साथ देखा जाय तो यही विचार अनुचित प्रवृत्तियोंको रोक सकता है, विना सच्चे दृढ विचारके अनुचित प्रवृत्तियाँ कभी रुका नहीं करतीं । कामकी अनुचित प्रवृत्तियोंको उत्तम विचार ही रोक सकते हैं, यदि विचारोंकी विशुद्धधाराएँ हृदयके अन्दर न बहें तो भला मनसे पैदा होनेवाली इस बीमारीकी दूसरी कौनसी दवा हो सकती है ? आयुर्वेदके आचार्य्योंका भी यही निश्चय है कि–' मनकी बीमारी मनको शान्ति देनेवाले विचार आदिकोंसे ही शान्त होती है । ' यह निश्चित सिद्धान्त है कि कामसूत्रके सच्चे मननसे कामकी अनुचित प्रवृत्तियां हो ही नहीं सकतीं ।

मोक्ष भी इनके यहां है–जो इस बातको नहीं जानते वे अज्ञ वात्स्यायनपर यह आक्षेप कर बैठते हैं कि–' महर्षि त्रिवर्गके ही भक्त थे, चतुवर्गके उपासक नहीं थे । ' किन्तु जिन्होंने इनके शास्त्रका अच्छी तरह मनन किया है वे इस बातको साधिकार कह सकते हैं कि–'ऋषिराज मोक्षको छोड़कर भी नहीं चले हैं । त्रिवर्गप्रतिपत्तिप्रकरणमें सूत्र किया है कि–"**स्थविरे धर्मं मोक्षं च** " वृद्धावस्थामें धर्म और मोक्षका सेवन करना चाहिये । यदि ये मोक्षको कोई पुरुषार्थ न मानते तो वार्द्धक्यके कर्तव्योंमें इसे क्यों शामिल करते ? किया है, इससे विदित होता है कि मोक्षमें भी इनकी निष्ठा है तथा

इसे भी लोगोंसे नहीं भुलवाना चाहते । मोक्षका इन्होंने क्यों उपादान नहीं किया ? इस प्रश्नका उत्तर प्रारंभमें ही श्रीयशोधरजीने दे दिया है कि—

"तत्र ब्राह्मणादीनां गृहस्थानां मोक्षस्य अनभिमतत्वात् त्रिवर्गः पुरुषार्थः।"

गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो सबसे पहिले उचित रीतिसे गृहस्थीका निर्वाह चाहते हैं मोक्ष नहीं चाहते ? इस कारण कामसूत्रकारने त्रिवर्गको ही पुरुषार्थमें लिया है । पर जो मोक्षको भी इनके साथ लेते हैं उनके यहां वार्द्धक्य ही उसके चिन्तनका मुख्य समय है इस कारण ऋषिने उदाहृत सूत्रमें मोक्षके सेवनका समय भी बता दिया है । यदि यह शंका हो कि तीनोंको दिखाकर चारोंका ग्रहण क्यों कर रहे हैं ? तो इसका यही उत्तर है कि धर्म और धर्मसाध्य मोक्ष दोनोंको एक मानकर धर्मका ही उपादान किया है। दार्शनिकोंका यही सिद्धान्त है कि वे मोक्षको धर्मसाध्य मानते हैं। वैशेषिकका सूत्र है कि—

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।"

जिससे लोकमें सबसे ज्यादा उत्कर्ष एवम् अन्तमें मोक्ष सिद्धि हो वह धर्म है। इष्टापूर्त व स्मृत्यादि विहित कर्मकलाप लौकिक अभ्युदयकारी हैं । कर्मोंमें वह बल है जो आजानदेवोंके भी पूज्य बना देते हैं। इन्द्र, चन्द्र, कुबेर सब कर्मोंके ही कारण हैं । मोक्षदाता धर्म भगवान् कृष्ण हैं, ये जिसपर कृपा करते हैं, जिसे अपनी ओर खींचना चाहते हैं वही मोक्षपथपर चलता है, दूसरेको तो मोक्षका स्मरण भी नहीं आता । महाभारतमें व्यासदेवजीने यही कहा है कि—

ये च वेदविदो विप्रा ये चाध्यात्मविदो जनाः
आहुस्ते च महात्मानं कृष्णं धर्मं सनातनम्।"

जो वेदके जाननेवाले ब्राह्मण हैं एवम् जिन्हें अध्यात्मविषयक ज्ञान है वे सब महात्माकृष्णको ही मोक्षदायक धर्म कहते हैं । पूर्व धर्मके आचरणसे आत्मशुद्धि तथा दूसरे धर्मके अनुग्रहसे मोक्ष प्राप्ति होती है । धर्म मोक्षमें कारण है, इस कारण धर्मका उपादान करके उसके कार्य्य मोक्षका उपादान नहीं किया है। इसका यह मतलब नहीं है कि ये मोक्षको अनुपयुक्त मानते थे।

वात्स्यायनने सबकी उपासना बताई है—यह नहीं रहा है कि इन्होंने काम ही कामके गीत गाये हों । कामसूत्रके निर्माणका सांचा केवल काम ही कामको लेकर चला हो यह बात भी नहीं है । इसकी रचनाशैली इस प्रकार की रही है, कि केवल काम हो तो धर्म और अर्थको बाधकर न हो, नहीं तो धर्म और अर्थको लिये हुए हो । यही कारण है कि इसकी उपयोगिता दोनोंसे ही बढ गई है । कामके विषयमें कहा है कि–

" कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्च अनन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति । "

चारों वर्णोंमें सवर्ण पुरुषका अनन्यपूर्वा सवर्णामें शास्त्रपूर्वक प्रवृत्त हुआ काम, औरस पुत्र और यशका कारण तथा लौकिक होता है ।

" तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च प्रतिषिद्धोऽवरवर्णासु अनिरवसितासु, वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः सुखार्थत्वात् । "

अपने वर्णसे ऊँचे वर्णकी स्त्रीमें और परकीयामें प्रवृत्त हुआ काम, विधिपूर्वक सवर्णामें प्रवृत्त हुए कामसे बिलकुल विपरीत है । जातिबहिष्कृत और हीनवर्णमें सर्वथा प्रतिषिद्ध है । वेश्या और पुनर्भूओंमें न तो विहित ही है एवम् न आज्ञा ही है। इनमें रतिसुखके लिये मनुष्य प्रवृत्ति कर लेते हैं । इन दोनों सूत्रोंपर विचार करके देखा जाय तो महर्षि कामके साथ धर्म,अर्थ और लोकको भी साथ लेकर चल रहे हैं । जो विधिपूर्वक विवाह करके उसी स्त्रीमें कामकी प्रवृत्ति करता है उसे उससे गर्भाधान होनेपर पुत्रलाभ एकपत्नीव्रतका यशलाभ, शास्त्रपूर्वक किया इसकारण धर्मलाभ भी होता है । संसारके सभ्य पुरुष ऐसा ही करते हैं इस कारण लौकिक भी है । ये इस कामप्रवृत्तिको ठीक मानते हैं, संसारमें है भी यही बात, इसप्रकारके सम्बन्धसे संबद्ध हुए स्त्रीपुरुषोंके कामभावकी कोई बुराई नहीं करता । अपने पाणिगृहीता महाराजानलके वियोगमें पतिव्रता दमयन्ती विरहोन्मत्त होकर देश विदेश फिरी । पिताके घर पहुँचकर भी उनकी खबरके लिये व्याकुल होकर रो २ कर कहती रही कि–" किसीको उस निर्दयीकी भी खबर है क्या ? जो अपनी अनाथा अब-

लाको अर्द्धवस्त्रमें ढकी छोड़कर न जाने कहां जा छुपा ।" उसने महाराजा नलको अन्तमें आप ही पा लिया, इसमें दमयन्तीकी कोई बुराई नहीं । करता किन्तु आजतक भी उसके पतिप्रेमकी कहानी अमर होकर चली आ रही है । जबतक सूर्य्य और चाँद इस विश्वको प्रकाश देते रहेंगे—व्यवस्थाके प्रेमी दमयन्तीके पतिप्रेमकी कहानी इसी तरह गाते रहेंगे । यही बात महा-राजा मर्य्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी है । वे प्यारी पतिव्रता पत्नी श्रीसीता महारानीके वियोगमें इतने बेहोश हुए कि—'लक्ष्मणजीसे पूछने लगे कि तुम कौन हो ? वनमें क्या कर रहे हो ? हा सीते ! इतने पर ही नहीं रहे किन्तु एक गहरे वियोगीकी जो २ वियोगदशाएँ होती हैं वनमें रहकर सब भोगीं । रावणके साथ भयंकर युद्ध करके अन्तमें सीताको प्राप्त करके ही माने । जिसकी आज भी भारत घर २ में कहानियाँ गा रहा है । इस दाम्पत्य प्रेमके लिये विदेशी बारबार भारतकी प्रशंसा कर रहे हैं । विश्वविजयी सिकन्दर जब भारत विजय करनेके लिये तैयार हुआ है तो उसके गुरु शुकरातने उससे कहा है कि—

" नृपति मत भूल जाना फिर कहानी राम और सीता "

हे राजन् ! भारतकी विजयके प्रेमोपहारमें मेरे लिये राम और सीताकी कहानी ले आना, जिसका मैं बारबार मनन किया करूँ । विधर्मियोंने भी इनकी बातोंको इतना महत्त्व दिया था । श्रीवात्स्यायन ऋषि इसी कामको चाहते हैं, यानी संसारी पुरुषोंमें इस तरह विवाह करके इसी तरह प्रेममें बँध जानेके लिये कहते हैं । ये अपनेसे उत्तम वर्णकी व्याहने तथा किसीभी परनारी पर आसक्त होनेको पूर्व बताये कामसे विपरीत मानते हैं ।

परनारीका संसर्ग बिलकुल विपरीत है—उससे जो कि, स्वपत्नीके विषयमें काम कहा गया है ऐसा भी वात्स्यायनका सूत्र है जिसे हम पीछे दिखा चुके हैं । इससे यह बात सिद्ध होगई कि—स्वकीयाका रमण पुत्र दे सकता है पर परकीयासे जो पुत्र होगा वह दूसरेका ही होगा, अपना नहीं हो सकता । स्वकीयाके उचित अत्यन्त अनुरागसे यश हो सकता है पर परकीयाके उत्कट प्रेमके पीछे लोग कामगर्द्धभतक कह देते हैं । स्वकीयामें

कामना संसार करता है पर परकीयाका अनुराग जारोंको ही होता है, महापुरुष इसे कभी भी करनेके लिये तैयार नहीं होते । जो परनारीके भक्त होते हैं सज्जन उनका कभी सत्कार नहीं करते, न ऐसे पुरुष कभी विश्वासपात्र ही ठहराये जा सकते हैं। यद्यपि लोकमें आधुनिक परनारी और परपुरुषोंके संमिलनकी लम्बी २ कहानियाँ प्रचलित हैं पर वे इसलिये नहीं कि उन्होंने कोई अच्छा कार्य्य किया है । कभी नहीं ! ऐसे कार्य्य कभी भी उचित नहीं बताये ज ासकते । किन्तु नाटकके पार्टकी तरह प्रेमका पार्ट अदा करतीबार जो त्याग उनसे होगया है उस त्यागकी ही कहानी दुनियाँ गाया करती है। यह त्यागका महत्त्व है जो इस घृणित दशामें भी लोग उन्हें याद कर लिया करते हैं । यदि पवित्र प्रेमपर त्याग किया जाय तो न जाने यह त्यागीका कितना महत्त्व बढ़ा दे । फिर भी इस विषयपर गहरी दृष्टि डालकर देखते हैं तो यही प्रतीत होता है कि प्रशंसा सज्जनोंकी गोष्ठीमें नहीं किन्तु इसी पारदारिक क्षेत्रके अन्ध खिलाड़ियोंमें होती है, साधुपुरुष तो उनके त्यागको भी विशेष महत्त्व नहीं देते । सच पूछिये तो आज संसारको उनका उदाहरण ही उनकी जैसी प्रवृत्तियोंको बढ़ा रहा है । दूतियाँ जब किसी भोली स्त्रीको परपुरुषकी तरफ झुकाती हैं तो वे उनकी कहानियोंको सुनाकर ही भुलाती हैं। यदि वे कहानियाँ न हों तो आज ही कुट्टिनियोंका मायाजाल छिन्न भिन्न होजाय । वात्स्यायन परदाररमणको बुरा समझते हैं, इस बातमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता । साहित्यके आचार्य्य तो इस प्रवृत्तिमें रस ही नहीं मानते, किन्तु इसे रसके झूठे आभासका ही रूप देते हैं । पारदारिक प्रकरणके विषयमें हम प्रकरण विशुद्धिपर तथा पारदारिक प्रकरणके आदिमें लिख चुके हैं। यह उन स्वयंवरार्थियोंके भी उपयोगी है जो एकपर कई झुके हुए हैं । परदारके विषयमें तो केवल इतना ही इस प्रकरणका प्रयोजन है कि जारोंकी लीलाएँ सद्गृहस्थोंको समझा दी जायँ जिससे वे पापियोंसे अपने परिवारकी रक्षा कर सकें, क्योंकि जो जिसके दावपेंच नहीं जानता वह उसकी चालोंसे बच नहीं सकता । यह बात ऋषिने अपने मुखसे कह भी दी है कि—

" तदेतद्दारगुप्त्यर्थमारब्धं श्रेयसे नृणाम् ।
प्रजानां दूषणायैव न विज्ञेयोऽस्य संविधिः ॥ "

सज्जन जार पुरुषोंसे अपने परिवारोंकी रक्षा कर सकें, इस कारण यह अधिकरण रचा गया है, प्रजाओंको दूषित करनेके लिये इसका विधान नहीं है। यह बात दूसरी है कि मतिविपर्य्यासमे अपनी रक्षाकी पिस्तोल अपने प्राण लेनेका साधन बन जाय। पर विज्ञोंसे ऐसे काम नहीं हो सकते । यदि किसी सीधे पुरुषको कोई राजकीय पुरुष चोरोंकी पहिचान, चोरीके कारण हानि और चोर बतायेगा तो उसका उद्देश तो उसे चोरोंसे बचानेका ही होगा। कामसूत्रकारने जिस आशयको लेकर पारदारिक रचा है इसके आशयको लेकर आजके कई लेखकोंने लोगोंको अनाचार तथा अनाचारसे बचनेके तरीकोंके बतानेमें कई ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। भले ही उनके लेखक अपनी स्वतंत्र कृति समझें परन्तु सर्व देशी विद्वानोंके विचारसे यह बात बाहिर नहीं है, वे उन्हें इस कामशास्त्रके पदार्थोंका ही रूपान्तर समझते हैं। दाण्डक्य भोज, कीचक और रावणके उदाहरण ऋषिने परदारगमनके दोषोंके दिखानेमें ही रखे हैं। जो परदार सूत्रकारकी रीतिके अनुसार वेश्याकोटिमें आचुकी हैं वे सर्व-साधारणसी ही होगई, उनके विषयमें तो निःशेष ही क्या है।

वेश्या और पुनर्भू—गणमें प्रवृत्त हुए कामको न तो विहित ही माना है एवम् न कहीं उसका प्रतिषेध ही किया है, केवल रतिसुखके लिये खाते पीते आदमी इन कर्म्मोंको कर लेते हैं ऐसा कहा गया है। शास्त्रने इन दोनोंको नायिका कोटिमें रखा है, इस कारण इनके रहस्यके जाननेकी भी आवश्यकता है, अत एव वैशिक अधिकरण कहा गया है। यह सृष्टि भी बड़ी विचित्र है, यहांके मायाजाल भी बड़े २ राजनैतिकोंको चक्कर खिला देते हैं। बड़े २ दुःसाध्य कार्य्याको भी इन मंगलामुखियोंके द्वारा सिद्ध किया गया है। इनमें भी अनेकों ऐसे व्यवहारोंकी शिक्षा निहित है जिससे अबोधोंको लोकयात्रामें अत्यन्त लाभ पहुँचता है। नाचगानप्रिय अधिकांश लोग इन्हींसे अपना मनो-विनोद किया करते हैं, प्रसन्नताके दरबारोंमें नाचगान करके लोगोंको और भी प्रसन्न करना इनका मुख्य कार्य्य है। इनकी माया जाने विना अच्छे २ धनी खाकमें मिल जाते हैं, बड़े २ वीर निकम्मे हो जाते हैं। इनकी अच्छाई बुराई समझे विना लोग कुम्भदासियोंके यहां रोगोंको खरीदते फिरते हैं।

कामसूत्रकी बताई हुई रीतिसे जो इनका विवेचन कर लेगा वह कभी वेश्याओंके कपटजालमें नहीं आ सकता है, किस ढंगकी वेश्याका क्या रहस्य है यह आसानीसे समझ लेता है । इसमें यह बात अच्छी तरह बता दी गई है कि किस तरह वेश्या धनी व्यक्तिको अपनी तरफ झुकाकर उसीकी बन जाती है । किस प्रकार धीरे २ उसे खोखला बना देती है, अपने सहायक बनाने एवम् उनसे काम निकालनेके उसके क्या ही सुन्दर तरीके हैं ? वह कितनी जल्दी अपनाती और कितनी आसानीसे भुला देती है। इस शास्त्रका ज्ञाता इन बातोंको आसानीके साथ समझ जाता है। इन बातोंके सिवा हजारों ही उसे वेश्याजीवनकी बातोंका पता चल जाता है । इसका साहित्यमें किस प्रकार उपयोग होता है इस बातको भी साहित्यके मिलानके संसर्गमें दिखा देंगे । यदि योग्यताके साथ किसी बड़े आदमीके पास जमकर बैठ जाय तो पुनर्भू ही खवास कहलाती है । कामदुर्बल स्त्रियोंके ये धन्दे हैं। निष्पाप तो पत्नीप्रेम ही है, इसे पापरहित तो नहीं कह सकते पर इनके समागममें वह पाप नहीं कहा जा सकता, जो परदारगमनमें है । मेरी समझमें तो अनेकोंकी एक साधारण स्त्रीके साथ रमण करना वहुतसे लोगोंकी पीकदानीके साथ खेलना है, यह पाप तो खेलनेवालोंको लग ही जाता है यही कारण है। कि भद्रलोगोंको इनसे भी जितना बचा जा सकता है बचते हैं।

पहिले इसका पढ़ना अनिवार्य्य था—आज भले ही कामशास्त्रकी पुस्तकें पुस्तकालयोंकी शोभा बढ़ा रही हों पर पहिले समयमें इसका पठन पाठन दूसरे शास्त्रोंकी तरह सदा अनिवार्य्य था। इसे दूसरे शास्त्रोंकी तरह ब्रह्मचर्य्यपूर्वक उपाध्यायोंसे पढ़ना पड़ता था। भारतका प्रत्येक युवक इसे साङ्गोपाङ्ग जाने हुए रहता था। यह किस समय पढ़ाया जाता था ? इसके विषयमें वात्स्यायनने बता दिया है कि—

"धर्मार्थाङ्गविद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्च पुरुषोऽधीयीत ।"

धर्म, अर्थ और उनकी अंगविद्याओंके समयको विना रोके कामसूत्र और इसकी अंगविद्याओंका स्वाध्याय होना चाहिये। यानी वेद और वेदाङ्गोंके

अनध्यायकी जो तिथियाँ हैं उनमें कामसूत्र तथा उसकी अंग विद्याओंका अध्ययन होना चाहिये । यह एक मानी हुई बात है कि जिन बालकोंके पास सिवा पढ़नेके दूसरा कुछ भी कार्य्य नहीं है वे कुछ पठनसंबन्धी कार्य अवश्य ही चाहेंगे। यदि इस अनध्यायके समय उन्हें कुछ भी कार्य्य न होगा तो खेल कूद आदि दूसरे कामोंमें लग जायँगे जिससे उनकी वृत्ति धीरे २ अध्ययनसे हटकर खेल कूदमें लग जायगी । कुछ भी उत्तम कार्य्य न कर पायेंगे। यही समझकर ऋषियोंने ऐसे समयमें कामसूत्रका पठन पाठन अनिवार्य कर दिया था । जो वेदाध्यायी होते थे उन सबको इसे पढ़ना पड़ता था। इसके स्वाध्यायका उन्हें यह लाभ होता था कि वे जितने वेदमें प्रवीण होते थे उतने ही लोकमें भी चतुर हो जाते थे । जब ऐसे छात्र छात्रालयोंसे निकलकर घर आते थे तो आते ही अपने गृहकार्य्यको निर्विघ्न चला लेते थे। उन्हें किसी गृहशिक्षककी आवश्यकता नहीं पड़ती थी ।

आज भी ऐसा ही है—अनध्यायोंमें उन ग्रन्थोंको पढ़ाया जाता है जो अधिकांश कामशास्त्रके साथ सम्बन्ध रखते हैं। आज अनध्यायोंका प्रचार संस्कृतके पठन पाठनमें तो चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस और पूर्णिमा इनका मुख्यरूपसे है । इन दिनोंमें वेद और वेदाङ्गको छोड़कर लोग साहित्यका अध्ययन करते हैं। परीक्षाके कोर्सोंमें जो साहित्यके ग्रन्थ नियत रहते हैं उनका पाठन प्रायः सालभरकी अनध्यायोंमें कर दिया जाता है। यदि दिन थोड़े रहे हों एवम् परीक्षाका समय पास हो तो भले ही स्वाध्यायके दिनोंमें काव्य ग्रन्थ पढ़ाये जाते हों। विचार करके देखा जाय तो शृंगारके काव्योंमें जो कुछ पदार्थ रखा गया है वह सब कामसूत्रके आधारपर ही रखा गया है। इस विषयको हम इस ग्रन्थमें भी दिखाते चले गये हैं तथा परिगणनके रूपमें यहां भी दिखायेंगे ।

साहित्य कामशास्त्रका अंग है—ऐसा दार्शनिक विद्वानोंका मत है। जिन काव्योंमें स्त्रियोंके विलासकी लीलाएँ कविताके रूपमें दिखाई गई हैं, जो कि नाटक नायक नायिकाओंके संयोग वियोगोंका प्रतिपादन करते हैं, जिन काव्योंमें शृङ्गार प्रधान है ऐसे काव्योंको कामशास्त्रका अंग माननेमें कोई हानि भी नहीं

है, क्योंकि वे कामशास्त्रके पदार्थको ही चरितार्थ करके दिखाते हैं। यही कारण मैं ऐसे साहित्यको कामशास्त्रमें गिननेका समझता हूं। और तो क्या ? विचार-सागरके लेखक महात्मा निश्चलदासजीकी कलमसे भी यह बात निकल गई है कि—" श्रृङ्गार रसके काव्य कामशास्त्रके ही अंग हैं।" यद्यपि आज काम-शास्त्रके ज्ञानकी प्रौढता नहीं, न इसकी पूर्व जैसी सच्ची शिक्षा ही है पर पूर्व जो पठन पाठनकी आर्षप्रणाली चली आती थी वह अबतक नहीं मिटी है। आज भी अनध्यायोंके दिनमें काव्य नाटक आदि पढ़ाये जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि आज ऐसे काव्य अंग न मानकर स्वतन्त्ररूपसे पढ़े जाते हैं। पहिले इन्हीं दिनोंमें कामशास्त्र व उसके अंग उपाङ्ग इसी बुद्धिसे पढ़े जाते थे, पर आज कामशास्त्रके अंगके रूपमें समझकर नहीं पढ़े जाते। आजके इस अध्ययनका यह फल होता है कि हमारे रसिकमना साक्षर छात्र विना तत्त्वज्ञानके यह नहीं समझ पाते कि 'हम किसकी अक्षर योजना कर रहे हैं, इसके कविने इस वर्णराशिके रूपमें दुनियाँके सामने क्या पदार्थ रखा है एवम् वह किस पदा-र्थके अंशको किस खूबीके साथ कह रहा है, उसका कितना अंश कवि ले रहा है, कितने अंशको व्यंजनावृत्तिपर छोड़ रहा है कितना अंश उसका लक्षणामें अन्तर्हित है ?' यही कारण है कि पूर्व जो कविताशक्ति थी आज वह कहीं देखनेको नहीं मिलती। पहिले जो हममें किसी भी पदार्थको समझकर स्वतः लगानेकी प्रतिभा थी आज वह टीकाओंके भरोंसेपर रह गयी है, हम साहित्य पढ़ते हैं पर साहित्यके यथार्थ ज्ञानसे कोसों दूर परे हैं। अंगीके विना अंगकी क्या आभा है; कामशास्त्ररूप अंगीके ज्ञान विना तत्संबन्धी साहित्यका पूर्ण बोध नहीं होसकता। हम इस वर्तमानके ढंग और दार्शनिकोंके निश्चयसे निस्संदेह इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि साहित्य कामशास्त्रका ही एक अंग है अतः विना काम-शास्त्रके ज्ञानके साहित्य अधिक अंगोंमें विकल ही रहता है। कामशास्त्रके आधारपर साहित्य कैसे है यह आगाड़ी समझायेंगे।

बालिकाएँ भी इसे पढ़ती थीं—उन्हें भी इसका पढ़ना उसी तरह अनिवार्य्य था जिस तरह कि बालकोंके लिये था। वात्स्यायनने विद्यासमुद्देश प्रकरणमें बताया है कि—'जिन्होंने विवाहके बाद अनुभव कर लिया है ऐसी

साथ पली हुई धायकी लड़की, निष्कपट व्यवहार रखनेवाली भायेली, बराबरकी मौंसी, वैसा ही बूढ़ी दासी, पहिली खेली खायी भिखारिनि अथवा अपने सामने रँगरेलीतक करनेवाली विश्वासिनी बड़ी बहिन ये कन्याओंको कामकला सिखानेवाले आचार्य्य हैं । यदि इनमें कोई कामशास्त्र पढ़ी हो तो कामशास्त्र सिखा देती हैं तथा कामाङ्ग जाननेवाली रहती हैं तो उसे ही सिखा देती हैं । महर्षिकी दृष्टि साधारण नहीं थी, वह निर्विकल्प समाधिसे जगत्‌को यथावत्त देखती थी । विचार करके देखा जाय तो बालिकाएँ जो भी कुछ सीखती हैं वह सब इन्हींकी चातुरीसे सीखती हैं । पहिलेसे आज इतना अन्तर अवश्य होगया है कि पहिले ये अपनी अबोध बहिनको पवित्र रखती हुई उसके भावी जीवनको उत्तम बनानेका सर्वदा ध्यान रखती हुई ही उसे सीख देती थीं । वे कन्याकी लज्जाको यहां तक बनी रहने देती थीं कि कैसे करने चाहियें यह बात उसीकी बुद्धिपर छोड़ देती थीं । वे कन्याएँ उनकी बातोंका एकान्तमें अकेली अभ्यास किया करती थीं । यह बात एक साधारण गृहस्थसे लेकर राजघरानोंतक एकसी ही थी । महाराजा विराटने अपनी राजकुमारी उत्तराको नाच गान आदि कामकलाओंकी शिक्षा बृहन्नलारूपी अर्जुनसे दिलाई थी, जो भारतका इतिहास जानते हैं उनसे यह बात छिपी हुई नहीं है । महाराजा दुष्यन्तकी रानियोंकी भी इस विद्यामें निष्णात होनेकी कालिदासकी कविता साक्षी देती है । विदिशाधिपति महाराजा अग्निमित्रने माधवसेनकी सोदरी मालविकाको नाटयाचार्य्य आर्य्य गणदाससे नाटयविद्या सिखवाई थी । महाराजा चापकी महारानी गानवाद्य आदि अंगविद्याओंमें इतनी चतुर थी कि जब वह गुप्तवेषसे चाप महाराजको अकबरके पंजेसे छुटाने आई तो नाचगान विद्यामें देहलीके सब गायकोंको मात कर दिया था । अनेकों राजकुमारियोंके लिये सुना करते हैं कि वे कामशास्त्रमें अत्यन्त निष्णात होगई । अनेकों वेश्याओंके लिये सुना जाता है कि वे इस शास्त्रमें अपनी अच्छी योग्यता रखती थीं । अनेकों सरदारोंकी बालिकाओंके लिये सुनते हैं कि वे इस विद्यामें अपनी शानी नहीं रखती थीं । इस सबके कहने कहानेका तात्पर्य्य यह है कि—भारतमें भी पहिले कामशास्त्रका पूर्णज्ञान

कराया जाता था। आजकी तो सहेलियोंकी शिक्षाका तो दो चार बातोंपर ही अन्त हो जाता है। प्रकरणवश इतने शब्द अवश्य कहूंगा कि आज माता बनना एक तमाशासा होगया है, माताभाव क्या है ? माताके शिरपर अपने बालकोंके भावी जीवन उत्तम बनानेका कितना भार है ? आजकी माता कहलानेवाली स्त्रियाँ इस बातको समझ ही नहीं पातीं। सच तो यह है कि आजके संप्रयोग अधिकांशमें रतिसुखके लिये होते हैं, सन्तान तो उनके परवश होजाती हैं। क्या करें बेचारोंका वश नहीं, नहीं तो जबतक कामसे तृप्त न हो लें एक भी बच्चा न होने दें। एकवार मेरे मित्र मुझे कहते थे कि कितनी ही भोगलिप्सू स्त्रियाँ यह कहती फिरती हैं कि–'क्या बताऊँ हमारा यह समय नहीं था बालबच्चा होनेका। अभी मैं छोटी ही हूं, मेरी अभी उम्र ही क्या है।' ऐसी माताएँ सन्तानोंको कमी उत्तम शिक्षा नहीं दे सकतीं, न ऐसी माताओंको बेटाबेटियोंपर वैसा सहज स्नेह ही होता है। ये सन्तानें प्रारब्ध भोगवश बड़ी भी होजाती हैं तो इनमें माताके शिक्षणके अभावसे उत्तम गुण भी नहीं हो पाते विद्याओंका होना तो जहां तहां रहा। पहिले जो संसारी बातें बालिकाओंको सिखाती थीं। अब भी बालिकाओंको सिखाती तो ऐसी ही स्त्रियां हैं पर उनमें जो छिपी पतिता रही आती हैं वे अपना भी कुछ हित शोच लेती हैं। भले २घरोंकी लड़कियोंमें जो पीछे चलकर अनेक दुर्गुण निकलते हैं वे सब इन्हींके छिपे २ बोये हुए विषबीजोंके फल हैं। महर्षिकी दृष्टिसे यह भीषणता भी छिपी हुई नहीं थी। यही कारण है कि उन्होंने कन्याओंकी ओर भी इशारा कर दिया है कि–"वे सिखानेवालियोंके सामने उनके बताये पाठको शरीरसे चरितार्थ न करें, किन्तु जहां कोई न हो वहां अकेली ही उनकी बताई वस्तुका अभ्यास करें।" यदि कन्या इनके सामने करेगी तो ये उसकी अपनेसे बिलकुल लाज गई हुई समझकर किसी दूसरे काममें लगा देंगी। यदि कन्या इनकी बताई हुई वस्तुका अभ्यास अकेलेमें करेगी तो ये दुष्टा भी होंगी तो भी इनकी माया उनपर असर न करेगी। यह काम माता पिताओंका हुआ करता है कि जिसके साथ उसके बालक बैठें उसके चारित्र देखकर बच्चोंसे सुहबत करायें। जो दुष्टचरित्रकी स्त्री होती थी उसको तो ये अपने

घरमें भी नहीं घुसने देते थे, बालकोंके पास बिठाना तो दूरका सवाल रहा। पर योग्य माता पिताओंकी भावी सन्तानें आज भी जानने योग्य बातोंसे अपरिचित नहीं रहतीं, जो अपने बालकोंको उचित शिक्षासे वंचित नहीं रखते वे ही सच्चे पिता हैं, वे ही सच्ची माताएँ हैं। मेरी भी उस सर्वशक्तिमान्से यही प्रार्थना है कि तू भारतकी नागरिक स्थितिको सुधार देशकी भावी सन्तानोंको उत्तम बना दे जिससे भारतका आप ही उद्धार हो जाय। भारतके वे दिन परम उन्नतिके थे जब कि यहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष शास्त्र विधिविधानके साथ स्त्री पुरुष सबको पढ़ाये जाते थे। आज भी उन दिनोंका इतिहास सोनेके अक्षरोंमें संसारके इतिहासमें लिखा हुआ है। भारतके सभी स्वर्गस्थ सुपूत उस दिनके फिर वापिस आनेके लिये नीचेको टकटकी लगाकर देख रहे हैं कि कब वह दिन आये? कब देश पहिले जैसा बने? मेरी इस बातको इसी तरह न समझना, मैं सप्रमाण कह रहा हूं कि 'स्त्रियाँ भी कामकलाकुशल हुआ करती थीं।' यदि नहीं तो मीमांसक मण्डनमिश्रके घर कामकलाकोविदा स्त्री कहांसे आ गई? मीमांसक तो कामलीलाओंके अनभिज्ञ बताये जाते हैं। फिर उसका मंडनमिश्रके यहां निर्वाह कैसे होता था क्योंकि विना समकक्ष हुए वह अपने पढ़े हुए कामशास्त्रका आनन्द कैसे लेती थी? उक्त मिश्रजीकी स्त्रीका यह प्रश्न, कि—"**कलाः कियन्तो वद पुष्पधन्वनः।**" बता, कामकी कितनी कलाएँ है? उसे पूर्ण कामकोविदा सूचित करता है तथा मण्डनका और उसका अकाट्य प्रेम ही मण्डनको भी वेत्ता सिद्ध करता है। अमरुकी स्त्रियाँ यदि कामकलाओंमें प्रवीणा नहीं थीं तो शंकर स्वामीको कहांसे कामशिक्षण मिल गया? शंकरस्वामी यह माल्रुम करके नहीं घुसे थे कि--' अमरुकी स्त्री ही पंडिता है चलूं वहीं माल्रुम करूं।' वे एक? नृपशरीर जानकर प्रविष्ट हुए थे जो बात उन्हें इस शरीरमें प्रविष्ट होकर मिली वही दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होनेके बाद भी मिल सकती थी। इसके सिवा और भी अनेकों गृहलक्ष्मियोंका उदाहरण मिल सकता है। मेरा तो यह ध्यान है कि प्राचीन भारतमें कोई भी नारी इसके ज्ञानसे शून्य नहीं थी, सभी गृहदेवियाँ अपनी २ शक्तिके अनुसार काम-

शास्त्रका ज्ञान रखती थीं। भारतमें जब इसका पहिले जैसा घर २ प्रचार होगा तब ही भारतियोंकी लोकयात्रा उत्तम बनेगी।

आजके अनर्थोंका कारण—कुछ तो हमने सांप्रयोगिक अधिकरणके प्रारंभमें तथा कुछ कन्यासंप्रयुक्तकमें दिखाया है, कुछ यहां भी दिखाये देते हैं। वर्तमान गवर्नमेंटने अप्राकृत व्यभिचारपर लम्बी सजाएँ तो रख दी हैं पर उन सजाओंकी दफोंसे प्रजाको भय होते हुए भी अप्राकृत अनाचारके अनाचारी कौन हैं? इस बातकी कोई पहिचान नहीं बताई है किन्तु कामसूत्रकारने औपरिष्टक प्रकरणमें उनकी लीलाओंका खाका खींचते हुए उनके स्वरूपका भी परिचय करा दिया है कि—'प्रायः इस कर्मको षण्ढ कराया करते हैं।' इनके सिवा औरोंकी ओर भी संकेत कर दिया है कि—

"प्रमृष्टकुण्डलाश्चापि युवानः परिचारकाः।
केषांचिदेव कुर्वन्ति नराणामौपरिष्टकम्॥
तथा नागरकाः केचिदन्योऽन्यस्य हितैषिणः।
कुर्वन्ति रूढविश्वासाः परस्परपरिग्रहम्॥
पुरुषाश्च तथा स्त्रीषु कर्मैतत्किल कुर्वते।
तस्माद् गुणवतस्त्यक्त्वा चतुरांस्त्यागिनो नरान्।
वेश्याः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु॥"

कामसूत्रमें ९२१ पृष्ठसे लेकर ९२९ तक इनका अर्थ किया गया है। येही प्रायः औपरिष्टक करने करानेवाले होते हैं। जो इन कर्मोंसे अपनी भावी सन्तानोंको बचाना चाहें वे ऐसे बुरे संगसे अपने बच्चोंकी निगाह रखकर उन्हें बचा सकते हैं। इस कर्मसे आज कितनी हानि हो रही है यह बात उनसे छिप नहीं सकती जिन्होंने उग्रका घासलेटी साहित्य पढ़ा है। यदि कामशास्त्रका पठन पाठन विधिपूर्वक हो, भावी सन्तानोंको इनके गुणदोषोंका अच्छी तरह पता हो तो वे कभी रोगोंका बीमा सदाके लिये न खरीदें। आजके युवकोंमें ये बुरी बातें एकचेपी बीमारीकी तरह फैलती जाती हैं। यदि सुशिक्षाके बलसे उनके हृदयसे इन बातोंको निकाल डाला जाय तो वे नीरोग हट्टेकट्टे चारित्रशाली व वीर बनकर सुपात्रताके साथ देशभूषण होकर अपना जीवन बितायें। मेरे

इस कथनका यह मतलब नहीं है कि मैं सबको एकसा समझ रहा हूं यह मेरा कदापि लक्ष्य नहीं है कि सब एकसे होते हैं । मेरा तो यह तात्पर्य है कि आज युवकोंको कामशास्त्रके सच्चे तत्त्वका उपदेश नहीं मिलता, इस कारण वे बहुतसे इसके दोषोंपर दृष्टिपात न करके वृत्तिके प्रवाहोंमें बहकर बुरी सुह-बतमें फँस जाते हैं, इसका नतीजा उनके नागरिक जीवनपर बुरा पड़ता है । यदि यथावत् शिक्षा मिले तो निर्दोष तैयार हों । इस दुष्कर्मसे जो बचते हैं उनमेंसे अधिकांश अपनी आयुको विना देखे अनाचारिणी स्त्रियोंके अनाचारमें फँस जाते हैं जिससे बलबुद्धि आदि खोकर अकालमें ही कालके शिकार बन जाते हैं। जिनके मातापिताओंको यह ध्यान नहीं है कि हमारे बालककी कौनसी आयु स्त्रीसेवनकी है, किस असमयमें स्त्रीके पंजेमें आनेसे बच्चा अल्पायु होजायगा वे अपने बच्चोंकी असामयिक प्रवृत्तियोंको रोक नहीं सकते, न उत्तम शिक्षा ही दे पाते हैं। उनकी असावधानीका ही यह परिणाम होता हैं कि छोटे २ बालक भी इन प्रवृत्तियोंको अपना लेते हैं। थोड़े दिनमें उनका वह सुन्दर शरीर रोगोंका घर बन जाता हैं। मुखका लावण्य तो न जाने कहाँ बिदा होजाता है उसके बदलेमें चहरेपर कालौंछ और मुर्दनी आजाती है। कमलसा खिला चहरा मक्खियोंके भिनभिनानेका स्थान बन जाता है तो फिर कहते हैं कि चलें, लडकेको किसी अच्छे वैद्य डाक्तरको दिखायें पूछें कि— " इस लड़केको क्या होगया है ? " पर वे यह नहीं शोचते कि पुत्रके प्रति जो हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये वह नहीं हुआ है उसीका यह परिणाम है। वे भी विचारे क्या करें ? कामशास्त्रका अध्ययन किया होता तो उन्हें पता होता । यदि पारिवारिक जीवन ज्ञानमय हो तो ये दोष न हों।

बालिकाओंके असमयके चांचल्यकी हानियाँ—भी इससे कम नहीं होतीं । जो माबाप अपने दाम्पत्य जीवनका साफल्य सम्प्रयोगमें ही सम-झते हैं केवल हुएकी शर्मकी वजहसे सन्तानोंको सँभालना पड़ता है वे अपने बालकोंके सामने अपनी सभी क्रियाएँ करते रहते हैं। वे बालक छोटे २ भी माबापोंके देखे हुए कामोंको करते हैं एवम् ऐसे माबाप इन कर्मोंको देख उनका स्यानपन मानकर हँसते हैं उनकी प्रवृत्तिपर ध्यान नहीं देते। ये बालक

अल्पवयमें ही सब कुछ करने लग जाते हैं । यह भी खास बात है कि चरित्र-हीना माताके कदाचारका जितनी जलदी बालिकाके चरित्र पर असर पड़ता है उतना बालकके चरित्रपर नहीं पड़ता । असाध्वी माताकी बालिकाएँ माके कदाचारकी शीघ्रही नकल करने लगती हैं । जिनको कामशास्त्रका कुछ भी ज्ञान नहीं ऐसी मा अपनी बेटीके होनेवाले नुकसानोंकी तरह ध्यान न देकर इस कर्म्ममें बेटीका पांडित्य समझती हैं । देखकर सिहाती हैं । उन्हें उन कार्य्योंके करनेके लिये प्रोत्साहित करती हैं । इन माताओंकी ऐसी सन्तानें ज्यो २ समझती जाती हैं दुनियावी गन्दे धन्दोंको ही अपनाती जाती हैं। इनमेंसे बाजी २ तो सातवर्षकी आयुमें ही दाम्पत्य जीवनका अनुभव करने लग जाती है । बहुतक तो इस उम्रमें मातातक बननेकी बड़ाई ले लेती हैं । बाजी बालिकाएँ तो १० वर्षकी उमरके भीतर ही जननी बन जाती हैं । बारहवर्षकी उमरमें जननीभावको प्राप्त हुई तो अधिक संख्यामें देखनेको मिलती हैं। योनिके रोग, रजके रोग और हृदयके रोग तथा दूसरे रोगोंकी तो आज स्त्री जातिमें बाढ़सी ही आ रही है । आजके कन्यासंसारमें कामकी शिक्षाका सुतराम् अभाव होनेके कारण किस उमरमें किस प्रकार संप्रयुक्त होना चाहिये, इसका बिलकुलभी ज्ञान नहीं है, न पुरुष ही यह जानते हैं कि हमें किसके साथ किस प्रकार करना चाहिये । कोई करुण शब्दोंसे अपना दर्द व्यक्तकर रहा है तो कोई इसे अपना पुरुषार्थ समझकर दूना २ उसीमें प्रवृत्त हुआ आनन्द मना रहा है। इन पशुतासे भरे व अनजानोंके सम्प्रयोगमें यह कथन पूरा चरितार्थ होता है कि—

" किसीकी जान जाती है, किसीका जी बहलता है । "

कोई किसीके बहकाये या किसी विवशताके कारण बखेड़ेमें फँसकर हाथ आकर इस तरह पीड़ासे छटपटा रहा है तो दूसरा उसे इस दशामें देखकर आनन्द मान रहा है । यदि नीचेवाला अपने शरीरको भींचाभांचीके प्रयत्नमें लगाता है तो जोश शांतिके बाद दूसरेका भी आनन्द अवपाटिकाके रूपमें परिवर्तित होजाता है, यदि ऐसा नहीं तो योनिभ्रंश आदि लिये फिरती हैं । नागरसर्वस्वकी टिप्पणी करती बार पं. तनसुखरामजी शर्माने लिखा है कि—

"सुरते पुरुषाणाम् आरम्भे योनिद्वारोद्घाटने तस्य कामालये प्रथमप्रवेशो चानन्दातिशयः इति केषांचिन्मतम् ।"

बहुतसे पुरुषोंकी तो ऐसी सम्मति है कि, स्त्रीके सर्व प्रथम मिलनमें आरंभमें ही अपने मदनाङ्कुशसे मदनमंदिरका द्वार खोलना व कामालयमें प्रवेश करनेमें ही अत्यन्त आनन्द है ।वास्तवमें इसी भावनाके कामगर्दभ बालाओंको अधिक टटोलते फिरते हैं। कन्यासंसारको इसी ध्यानके पुरुषोंसे सतर्क रखना चाहिये। ऐसे ही पुरुषोंकी बदौलत वेश्याओंकी बेटियोंके टिमाक सही सलामत हैं। इसी वासनाके पुरुष अनेकोंकी झूठी, यशः प्राप्त वेश्या बालिकाओंसे प्रचुर धनव्यय करके नकली करुणाक्रन्दन करानेमें ही अपना पुरुषार्थ समझते हैं। यदि इन पुरुषोंको कामशास्त्रकी शिक्षा हो तो अपनी पशुताको एक ओर रख दें, विना खिली कलियोंको असमयमें सदाके लिये दूषित न करें। न वेश्याओंके कपटजालमें आकर उनकी बालिकाओंके लिये लम्बी रकम ही खर्च करते फिरें। बालिकाओंको कामशास्त्रका यह लाभ पहुँचे कि वे बुरे कामोंको पहिचान लें तो बुरी शुहबतसे बच जायँ, असमयके चांचल्यसे अपनेको बचा लें। यदि यथासमय करनेका भी अवसर आजाय तो अपने मदनमंदिरके कामशास्त्रकी बताई हुई प्रक्रियाके द्वारा उतना ही बड़ा करलें जितने कि बड़े साधनके पुरुषसे उन्हें यन्त्रयोग करना है। यदि पुरुष भी कामशास्त्रका ज्ञाता हों तो विना इन्हें अपना विश्वास बँधाये योग्य कन्याओंके साथ कुछ न करें। करें भी तो बलात्कार न करें, फिर भी कन्याके सुखका ध्यान राखें। जिस कामको पांच मिनटमें करना चाहते हैं उसमें कुछ दिन लगायें। अवपाटिका और योनिव्यापद् दोनों रोगोंके निशान ही दुनियाँसे मिट जायँ। आज नवयुवतियाँ जिन रोगोंकी घर बन रही हैं कामशास्त्रकी यथावत् शिक्षा हो तो इन उपाधियोंकी सत्ता ही देशसे मिट जाय। मन चले युवकोंको कामशास्त्रसे उपदेश मिल जाय कि--

"अन्यासु यावदुपमर्दसहासु भृङ्ग ! लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु। बालामजातरजसं कलिकामकाले व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमल्लिकायाः ॥"

ए चंचल मनके भौंरे ! उन लताओंपर भिनभिनाओं जो तुमें संभाल लें, नई चमेलीकी विना रजकी कलीको असमयमें क्यों खराब करते फिरते हो। बालिकाओंको भी यह शिक्षा मिल जाय कि इस तरह हमारा भावी जीवन बन जायगा इस तरह सुधर जायगा। वे अपने जीवनको उत्तम बनानेकी चेष्टा करेंगी कभी पतित जीवनमें न फँसेंगी।

शिक्षासे अच्छा हो—जो कि कार्य्य आज कानून बनाकर करना शोचा जा रहा है। यदि लक्षणोंके द्वारा माबापोंको इतनी पहिचान होजाय कि—यह समय हमारी सन्तानोंके चांचल्यका नहीं है इस समय चांचल्यकी चपल तरंगोंमें बहे चले जा रहे हैं तो वे अपने बालकोंको बुरे रास्तोंसे रोक लें। बालक भी शिक्षित हों तो वे भी अपनी बुरी प्रवृत्तियोंको रोक सकते हैं। आज अल्पायुष्कपनेको रोकनेके लिये शारदाएक्टको जन्म दिया गया है। इसके नियमके अनुसार गवर्नमेंट द्वारा १४ सालसे कम उमरकी लड़की तथा १६ से कम उमरके लड़कोंके दाम्पत्य भावको रोक दिया जा सकता है किन्तु वैवाहिक जीवन आयुपर निर्भर न होकर शरीरके निर्माणपर ही अधिक निर्भर है। बाजे२ शरीर तो ऐसे होते हैं जो इससे भी बड़े होकर गृहस्थजीवनके योग्य नहीं होते। बाजी २ बालिकाएँ चौदहसे भी छोटी आयुमें गृहस्थ जीवनके पूर्ण योग्य होजाती हैं। यह मानी हुई बात है कि, अयोग्य समयपर समयका कार्य्य कराना पाप है तथा जिसका समय आ उपस्थित हुआ हो उसको उस कार्य्यमें न लगाना पाप है। बालकोंके विवाहमें उनके शरीरपर ध्यान देन चाहिये आयुका नियंत्रण बिलकुल अयोग्य है। सन्तान विवाह योग्य है वा नहीं इस बातका पता जितनी जलदी योग्य माता पिता पा सकते हैं दूसरा नहीं पा सकता। माना कि कानून माबापोंको विवाह करनेसे रोक सकता है पर विवाहके न करनेसे ही बालक ब्रह्मचारी रह जायँगे यह बात नहीं है, यदि विवाह न करना ही ब्रह्मचारी रख लेना है तो यावन्मात्र अविवाहित सभी हृष्ट पुष्ट एवम् दीर्घजीवी मिलने चाहियें पर ऐसा देखनेमें नहीं आता। बहुधा ऐसा देखनेमें आता है कि जिन आयुनाशक रोगोंसे विवाहित दम्पती सर्वथा मुक्त हैं वे जघन्य रोग भी उन अविवाहित बालक बालिकाओंमें मिलते हैं जिनके कि चरित्र उत्तम नहीं हैं। बालकों-

पर तो शिक्षाका असर होता है, एक्टका कोई असर नहीं होता। जबतक उन्हें कामशास्त्रका तत्त्व समझाकर अच्छा बुरा न समझाया जायगा तो जो दम्पती होकर धन्दे करते हैं वे अदम्पति ही कर लेंगे। जहां तत्त्वनिष्ठ माताएँ बालक बालिकाओंको गृह जीवनकी शिक्षाएँ देती थीं उस समय वह भी कुछ हानिकारक नहीं था जिसे आज बालविवाह कहकर सर्वघातक बताया जा रहा है। दृष्टि डालकर देख लो ? पहिले लोग जितने अच्छे शारीरिक संगठनमें मिलेंगे उतने आजके नहीं हैं, न दीर्घ जीवन ही है। असमयके सम्प्रयोगको उत्तम शिक्षा ही रोक सकती है अविवाह नहीं रोक सकता यह निश्चित सिद्धान्त है। पहिले लोगोंकी जो विवाह द्विरागमन होनेके बाद भी दुर्दशा नहीं होती थी वह आजके बालक बालिकाओंकी प्रायः विवाहसे पहिले ही हो लेती है। पाश्चात्य देशोंमें विद्यानुरागी योग्य माता पिता यहांतक अपने बालकोंका ध्यान रखते हैं कि सोतीवार उनके हाथोंको भी युक्तिपूर्वक सिराहनेकी तरफ बाँध देते हैं जिससे रातके समय बालक भूलकर भी हाथोंसे नीचेके अंगोंका स्पर्श न कर लें जिससे उनकी सेहत खराब हो। जहां अपना हाथ ही अपने लिये घातक हो सकता है वहां एक्ट व शरीरकी कैद क्या निवारण कर सकती ह ? यह मनोवृत्तिपर निर्भर रहनेवाली बात है, इसीको काबूमें करनेसे निवृत्त हो सकती है। दूसरी बातसे नहीं। मनोवृत्तिपर उचित शिक्षा ही अधिकार कर सकती है, यदि पहिले जो कामशास्त्रके समझानेका ढंग था उस रीतिसे कामशास्त्र समझाया जाय तो इससे अच्छा बुरा सहज ही समझमें आसकता है। महर्षि वात्स्यायनकी यह प्रतिज्ञा है कि—" कामशास्त्रका तत्त्ववेत्ता कोई भी रागसे प्रवृत्त नहीं होता। वह उचित प्रवृत्तिका भक्त जितेन्द्रिय ही होता है।" यह चरित्र रक्षणका कार्य है। कोई शासनका कार्य्य नहीं है, इस कारण एक्टकी आवश्यकता नहीं बालक बालिकाओंके शिक्षणकी आवश्यकता है। यह शिक्षा इसीसे मिल सकती है इससे इसे आजके बालकों और उनके माबापोंमें प्रचलित करना चाहिये जिससे बालक सदाचारी बनें। हमने भी इसी लिये इसे बारबार कहा है।

साहित्यदोष—अश्लील और ग्राम्य आदिको भी बहुतसे अपरिचित व्यक्ति कामसूत्रपर लगाया करते हैं । उन्हें इस बातका पता नहीं कि इन दोषोंका स्वरूप क्या है? ये कहां होते तथा कहां नहीं होते ? यद्यपि अश्लील दोषके विषयमें हमने कामसूत्रमें भी थोड़ासा कहा है किन्तु यहां हम बिलकुल ही इनका निर्वचन किये देते हैं । ग्राम्य अर्थके विषयमें गोविन्दठक्करने कहा है कि—

> "स ग्राम्योऽर्थो रिरंसादिः पामरैर्यत्र कथ्यते ।
> वैदग्ध्यवक्रिमबलं हित्वैव वनितादिषु ॥"

रंगरेलीकी हर प्रकारकी बातें ग्रामीणोंके शब्दों वनिता आदि सबके सामने कह दी जायँ तो वे ग्राम्य समझी जायँगी । इससे सिद्ध हो गया कि नागरोंके शब्दोंमें ऐसी बातें करना ग्राम्य नहीं है । यदि कोई नागर ग्रामीणकी बोलीमें ऐसी बातोंको सुने तो उसे ग्राम्य कह सकता है । यदि ग्रामीणोंके शब्दोंमें नहीं तो ग्राम्य नहीं, यदि किन्हीं भी शब्दोंसे आलिङ्गनादिकी बातें करना ग्राम्य है तो कोई अपने भाव ही व्यक्त न कर सकेगा । जो शब्द गामों और नगरों दोनों ही स्थलोंमें एक बातमें बरते जाते हों वे भी ग्राम्य नहीं कहला सकते, क्योंकि वह केवल ग्राम्य नहीं नागर भी है । अतः ऐसे शब्दोंमें भी आलिङ्गन चुम्बन आदिकी बातें कहना लिखना ग्राम्य नहीं कहा जा सकता । जिसमें खुला देहातीपन झलके कुछ भी नागरिकता न हो वह ग्राम्य है यह सुतरां सिद्ध हो जाता है ।

ग्राम्य और नागरकी पहिचान—तो समयके व्यवहारोंपर ही निर्भर है, इसका सम्बन्ध भाषाकी प्रौढि और अप्रौढिसे भी प्रतीत होता है । जिसे संस्कृत ग्राम्य कहता है आज वह शब्द एक अच्छे नागरकी भी समझमें आना कठिन है पर वह भाव संस्कृतके प्रौढ विद्वान् दूसरे छिपे शब्दमें भी कह सकते हैं इस कारण उसे ग्राम्य कहकर बोला जाता है । पर यह बात वर्तमान भाषाओंके अनुवादोंमें इस रूपसे नहीं चल सकती । यहां तो उस भाषाके जाननेवाले उस वस्तुको अपनी शुद्ध भाषामें पढ़ लें इस बातका मुख्य रूपसे ध्यान रखा जाता है उस भाषाभाषियोंकी दिहातमें जो बोला जाता है वह

उसका ग्राम्य शब्द है यही ध्यान रखा जा सकता है। इससे यह बात तो सुतराम् सिद्ध हो गई कि जो अनुवाद करने बैठे उसे प्रत्येक पदार्थके व्यक्त करनेकेमें उस भाषाकी उस प्रौढ शैलीको अपनाना चाहिये जो कि उस भाषाके बोलनेवालोंकी समझमें आ सके। यदि कामशास्त्रका पदार्थ इतनी भीतरी शैलीसे कहा जाय कि मर्मज्ञ विद्वानोंके सिवा साधारणोंकी समझमें ही न आवे तो विशेषज्ञ तो सदा ही विज्ञ होते हैं। वे तो विना भी टीका टिप्पणियोंके समझ लेंगे; फिर टीकाओंका करना व्यर्थ ही हो जाता है। इस कारण लेखमें वह नागरिकता होनी चाहिये जिससे अनागर भी लाभ उठा लें ऐसा लेख ग्राम्य नहीं कहा जा सकता।

अश्लीलता–की भी यही बात है, असभ्य ढंगसे असभ्य अर्थ कहनेका नाम है। जिससे लज्जा आये, वस्तुके प्रति हेयबुद्धि हो अथवा अमंगल ध्वनित हो। हिन्दी और संस्कृतके सभी लक्षणग्रन्थ इस विषयमें ऐसा ही कहा करते हैं। ये बातें भी भाषाओंकी विशेषतापर निर्भर हैं। कोई शर्मकी बात ऐसे शब्दोंमें कह दी जाय कि जिसे सब समझ सकें तो वह अवश्य ही जो बातें कर रहे हैं उनके शरमानेका कार्य बन जाती हैं। यदि प्रौढि शैलीसे नागरोंके ढंगसे बतरा लेंगे तो वही आनन्दकी बात बन जायगी। बातें करनेवाले अपनी चतुराई-पर हँसे विना न रहेंगे। पर जो नागर होगा वह तो अवश्य ही उनकी बातें समझेगा, वह विना जाने नहीं रह सकता, क्योंकि वे बातें उसकी नियमित भाषादिमें हैं। इसी तरह जो भाषा ग्रामीणोंकी न होकर नागरिक ढंगसे शृङ्गा-रके पदार्थोंका प्रतिपादन करती है वह अश्लील नहीं कही जा सकती, क्योंकि पदार्थका प्रतिपादन लज्जाजनक शब्दोंमें नहीं रहता।

इसमें अश्लीलता गुण है, दोष नहीं–ऐसी भी साहित्यकोंकी धारणा है, वे रतिकेलिके वर्णनमें यदि लज्जाजनक शब्द भी आजाय तो यह उस साहित्यका दोष न मानकर गुण ही मानते हैं। वे कहते हैं कि–

" सुरतारम्भगोष्ठ्यादावश्लीलत्वं तथा गुणः। "

आभ्यन्तर और बाह्य संप्रयोग निरूपण, सहवासके आरंभके समय और गोष्ठीकी रंगरेलियोंके वर्णनमें यदि अश्लीलता आ भी जाय तो वह उसके वर्ण-नके चमत्कारको ही बढायेगी उसे दुष्ट न करेगी। इस सिद्धान्तको प्रायः

सभी साहित्यकोंने स्वीकार किया है जिस साधन शब्दके कारण 'साधनं सुमहत्तव' इसको कुछ और कह गये थे । हमने इसके उस उदाहरणको जिसमें कि साधनादि शब्द होनेपर भी गुण गुंफित कविता मानते हैं "साहित्यमें करिकर' इस शीर्षकमें कामसूत्रमें दिखाया है। यही कारण है कि शृङ्गारकी कविताओंमें आलिङ्गन, चुम्बन आदिके वर्णनमें अश्लीलताका कम विचार करते हैं। कामशास्त्रके आलिङ्गन चुम्बन आदि पदार्थोंको साहित्यमें किसप्रकार कहा है ? इस बातका नमूना तो हम साथ ही दिखाते चले हैं। जो इन प्रकरणोंको पढ़ेंगे उन्हें विदित होजायगा कि साहित्य किसप्रकार कामशास्त्रका ही अनुकरण करता है। जब अनुयायीमें ही दोष नहीं तो जो मुख्य अंगी है जो कि शृंगारकी कविताओंकी वस्तुका अटूट खजाना है उसके पास अश्लीलता दोष आ फटके यह समझकी भूल है । जब अश्लीलता सुरतारंभादिकी कवितामें दोष नहीं है तो जिसके आधारपर ये कविताएँ बनती हैं उसमें दोष कहांसे हो सकता है! अश्लीलता दोष नहीं है यह तो मैं सच्चे साहित्यिकोंके यहांके सिद्धान्तको लेकर कह रहा हूं। आज तो अश्लीलता एक मनोरंजनका सामान होगई है। स्त्रियोंके जघनमात्र ढके नग्नचित्र शरे बाजार धड़ाधड़ बिकते चले जा रहे हैं, जिनके बारेमें कोई एक भी अक्षर नहीं निकालता। आलिङ्गन, चुम्बन और स्तनमर्दनके चित्रोंके रंगीले रईसोंके रंगरेलीके कमरोंकी सजावट तो जहां तहां रहीं होटलोंके कमरे भी खाली नहीं हैं। और तो क्या जो तेलके पकोड़ोंका भी होटल रखता होगा वह भी अपने ग्राहकोंके मनोरंजनके लिये चार फोटू तो ऐसे लगाकर ही बैठता है । सिनेमासंसारको देखो तो वह इससे भी आगे बढ़ गया है। जलविहारमें जबतक अनावृत स्तन न दिखा दिये जायँ, जघन न झलका दिया जाय तो जलविहार पूरा ही नहीं होता। आलिङ्गनादि कामचेष्टाओंका दिखा देना तो इनके लिये एक साधारणसी बात है। बागविहार और बागकी गोष्ठीमें नायिकाका इधर उधर करते हुए अपने जघनपर हाथ पहुँचा देना, कुछ भाग उघाड़ देना इससे भी अधिक साधारण होगया है। मैं तो यह कहूंगा कि यंत्रयोगसे पहिले और अन्तकी जितनी हालतें हैं उन सबोंको दिखाते हुए यंत्रयोगको भी व्यंग्यके रूपमें लखा जाते हैं । यही क्यों, आजके नाटक देखिये तो जहां विदूषकका पार्ट अँदा होगा वहां चुम्बनादिकी भरमार देख लीजिये। इन सिनेमाओं और नाटकोंमें ये बातें किसी भी रूपमें रहती

हैं, उनके दर्शकोंकी संख्या भी अधिक मिलती है। दर्शक ऐसे दृश्योंको देखकर हँसते हैं, आनन्द मनाते हैं, परम प्रसन्न होते हैं । दृश्योंसे लेखक इतने और बढ़े हुए हैं कि वे संप्रयोगका भी पाण्डित्य पूर्ण शब्दोंमें वर्णन कर जाते हैं । इन स्थलाको आज भी अश्लील नहीं समझा जाता। आज भी पांचालिकी चतुःषष्टि स्टेजकी शोभा बढ़ा रही है । शृङ्गारकी कविताओंका कोई भी भाग इनसे नहीं बच सकता। पार्ट अदाँ करती बार जो नायक नायिकाओंमें कामकी दशाएँ दिखाई जाती हैं उनसे आहें लगवाई जाती हैं। किसीकी चाहमें किसीको अचेत किया जाता है, यह सब पदार्थ एवम् इनके क्रमका ज्ञान, बिना कामशास्त्रमें कहांसे आया ? जो कुछ दिखाया जा रहा है वह सब कामशास्त्रका ही पदार्थ शृंखलाबद्ध दिखाया जा रहा है । इनके कारण कामशास्त्र कदापि अश्लील नहीं हो सकता । जो अश्लील मानते हैं उन्हें कामशास्त्रका अहसान मानना चाहिये कि–'इसने क्रमबद्ध पदार्थ समझाया तो कवितामें लाया गया। रंगमंच पर दिखाया गया, बिना इसके इन पदार्थोंका अनुभव होना कठिन था ।

आसनोपदेश भी अश्लील नहीं—कहा जा सकता, क्योंकि बड़े बड़े कवियोंने अपनी वर्णनशैलीसे आसनोंका भी वर्णन कर डाला है । ये आसन परस्परके संप्रयोगके करनेके लिये स्त्री पुरुष दोनोंको ही हितकारी हैं । महर्षि चरक, सुश्रुत और बाग्भट भी यह कह गये हैं कि–" अन्य आसनोंकी अपेक्षा स्त्री उत्तान आसनोंसे रति करनेमें अधिक सुखी होगी, अन्य आसनोंसे गर्भाधान भी होना कठिन है । " जो आसन गर्भ धारण करानेवाले तथा जो गर्भघातक हैं इनका उपदेश किसी दोषको न करके उस गुणको बताता है जिसके कि लिये संप्रयोग निर्दोष रूपसे विहित है । पतिसे छोटी उमरकी स्त्रीको मृगीके आसन तथा पुरुषको मृगीके सहवासकी विधिसे शान्तिपूर्वक संग करनेमें कोई कष्ट उठाना नहीं पड़ता। ये स्त्री पुरुषोंको भी फायदे देते हैं। इसके सिवा विषमयन्त्रोंके बड़े छोटे स्त्री पुरुष भी इनसे अपना समरत कर सकते हैं। यह सबको लाभ है । यदि स्त्री पुरुष आपसमें प्रसन्न रहेंगे तो उनका संसारी जीवन सानन्द गुजरेगा । जिनकी जोड़ बराबरकी नहीं है वे भी बराबरवालोंकी तरह ही आनन्द ले लेंगे, परस्परकी रतिके द्वेषी न होंगे। हम इन्हें सुशब्दोंमें कमपूर्वक समझानेमें कटिबद्ध हुए हैं। निरूपण करतीवार यह नहीं चाहा है कि किसी

गहन विषयको छोड़कर चलें । आसनोंके विषयको भी क्रमपूर्वक कहा है । इस शास्त्रके दूसरे आचार्य्योंकी इसके साथ एकवाक्यता भी की है । फिर भी लेख और चित्रमें अन्तर ही रहता है । इन आसनोंको कितने ही मंदिरोंमें पत्थरोंमें खोद रखा है । एलोरा नामके पहाड़में मंदिरमें ये आसन खुदे हुए हैं । श्रीजगन्नाथ-पुरीके भुवनेश्वर मंदिरमें ये सब बने हुए हैं । विशागापट्ट नामक नगरके किसी मन्दिरमें बने हुए ये आसन सुने जाते हैं । कोयली पर्वतपर हरसिद्धि नामक भगवतीके मंदिरमें भी इनका निर्माण हुआ है । सतारा पंढरपुरके मार्गके करटेश्वर महादेवके मंदिरमें ये देखनेको मिलते हैं । काशीमें नैपालके मंदिरमें इन आसनोंको करते हुए स्त्री पुरुषोंके चित्र मिलते हैं । अर्बुदाचलके अचलेश्वर महादेवके मंदिरके पास जैनमन्दिरमें भी ये देखनेको मिलते हैं । जिन्हें हमारे बताये आसन विधानमें सन्देह हो वह इन मंदिरोंमें इन आसनोंसे संयुक्त हुई नर प्रतिमाओंको देखकर निश्चय कर लें । जो इस रहस्यको समझते हैं उनके यहां इन प्रसिद्ध मंदिरोंके सार्वजनिक स्थानोंमें इस प्रकारके आसनोंकी प्रतिमाओंके दो ही प्रयोजन हो सकते हैं—एक तो सार्वजनिक संसारी जीवनमें उन्हें देखकर फायदा उठायें, जिस कामके लिये कामशास्त्र इनका उपदेश करता है वह अनायास ही सिद्ध हो जाय । दूसरे मंदिरपर दृष्टिदोष असर न करे । पहिले पुरुष परम दीर्घदर्शी अनेक प्रयोजनोंको लेकर ही किसी कामको करते थे । ऐसे प्रसिद्ध स्थानोंपर इन मूर्तियों और चित्रोंका होना कुछ और भी प्रयोजनके लिये होना चाहिये, केवल दृष्टिदोषका परिहार ही उसका प्रयोजन न रहना चाहिये । वात्स्यायनने जिन आसनोंका सूक्ष्मरूपसे वर्णन किया है वे आसन भी पीछेके आचार्य्योंने बड़े विस्तारके साथ लिखे हैं । हमने उनके उद्धरण भी दे दिये हैं ।

कामसूत्र और साहित्य—ये दोनों आपसमें बहुत निकट हैं। इसमें किसीको भी सन्देह न होना चाहिये, इसपर हम दार्शनिकोंकी मान्यता तो पहिले ही दिखा चुके हैं । अब उनके सम्बन्धको भी दिखाये देते हैं । कविता करनेमें लोकव्यवहारका ज्ञान होना परमावश्यक है तथा कामसूत्र लोकज्ञानका भण्डार है । मैंने तो जितना भी साहित्यको निचोड़ा है, उसके समन्वयपर विचार किया है—सबका मानचित्र कामसूत्रको ही देखता हूं । कामशास्त्रने जिस प्रका-

रकी नागरके घरकी सजावट तथा रतिगृह बताया है श्रीहर्ष उसे नलके राजमहल और रतिगृहके निर्माणमें कवितामें ला रहे हैं। कामशास्त्रने जो अप-नेको सुभग करनेवाले लेप आदि बताये हैं नलमहाराज रतिसे पूर्व अपने शरीरको सुशोभित करते हैं। कामशास्त्रका सिद्धान्त है कि रतिकालमें जो २ विभ्रम सूझ पड़ते हैं वे निराले होते हैं, इस सिद्धान्तको नल और दमयन्तीपर घटाते हुए श्रीहर्ष कहते हैं कि--

"ये महाकविभिरप्यवीक्षिताः
पांसुलाभिरपि ये न शिक्षिताः।"

रतिगृहमें इन दोनोंकी वे वे कामकेलियाँ होती थीं जो महाकवियोंकी कल्प-नामें एक भी बार नहीं आईं। जिन्हें महाकुलटाओंने भी कभी किसीको न सिखाया। कन्याविस्रंभण व भावप्राप्तिका निश्चित सिद्धान्त आदि भी नैषधमें देखते हैं। दूतीकल्पका पूरा दिग्दर्शन मालतीमाधव नाटकमें होता है, नायकके सहाय-कोंकी लीलाएँ मालविकाग्निमित्र और रत्नावली नाटिकामें देखनेमें मिलती हैं। जल, वन और गोष्ठीविहार माघ किरातमें देखनेमें आते हैं। पांचालिकी चतुःषष्ठिके आधारपर ही काव्योंमें इनके प्रयोगोंको चरितार्थ करके दिखाया है। हमने नमूनाके तौरपर इसका साहित्य विषय भी साथमें ही दिया है। काम-सूत्रका राजमहलप्रवेश और पूरा वैशिक दशकुमारचरित्रमें दिखाया गया है। इसमें औपनिषदिककी पुट मिली हुई है। प्राथमिक सहवासपर कुमारसम्भव और शकुन्तलामें कालिदास और नैषधमें श्रीहर्षने मृगीके सहवासकी सारी विधियोंको दरशा दिया है। आजतक शृङ्गाररसके जितने भी नाटक और काव्य बने हैं वे सब कामसूत्रके आधारपर ही बने हैं। मानवोंकी संसारी प्रकृ-तिका सिवा इसके दूसरे किसीने भी ऐसा अनूठा चित्र नहीं खींचा है। काम-सूत्रके प्रचारके शैथिल्यके कारण ही आजका साहित्य गिरता चला जा रहा है। आजके कवि तो प्रायः नाजो अन्दाजके सिवा न तो दूसरे विधानोंको दृष्टिमें ही रखते हैं एवं न दूसरी कविताएँ ही कर पाते हैं। पांचालिकी चतुःषष्टि शब्द कामशास्त्रवालोंका सांकेतिक है। आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत, संवेशन, प्रहरण, सीत्कार, पुरुषायित, पुरुषोपसृप्त, औपरिष्टक, प्रणयकलह, ये और इनके भेद इस नामसे बोले जाते हैं। विना

मिले स्त्री पुरुषोंके स्पृष्टक, विद्धक, उद्धृष्टक और पीडितक ये चार आलिङ्गन बताये हैं। स्पृष्टकको नैषध बड़े विचित्र ढंगसे अपने व्यवहारमें लाया है। स्वयंवरके उत्सुक युवक युवतियोंमें चारों आलिंगन चलते हैं, या जो कौतुकागारमें परिचित नहीं होते उनमें भी ये चला करते हैं। साहित्यने इन्हें ऐसे ही स्थलोंमें प्रयुक्त किया है। सहवासके समयके आलिङ्गन वेद और साहित्यने इसी रूपमें दिखाये हैं हमने उनका साहित्यिक विषय साथ ही रखा है। सांक्रान्तिक आलिंगनको भी साहित्यके उदाहरणके साथ ही रखा है। माथा, बाल, वक्षःस्थल, स्तन, ओठ, मुख, तालु, गला, स्तनोंकी नोंक, कपोल, [जघन, वराङ्ग, काखें [तथा शरीरके दूसरे सुन्दर भाग चुम्बनकी जगहें हैं। कन्या और अकन्याके भेदसे चुम्बन दो तरहका होता है। कन्याके निमित्त, स्फुरित और घटित तथा अकन्याके सम, तिर्यग्, उद्भ्रान्त, अवपीडित और पीडित ये पांच हैं। साहित्यके विद्वानोंने इनका अपनी कवितामें प्रयोग किया है। हमने भी इसके उदाहरण दिये हैं। आलिङ्गन और चुम्बनका जूआ भी साहित्यमें अच्छे रूपमें आ रहा है। लोग इस जूएको महादेव पार्वतीको भी खिलाये विना नहीं मानते। हमने इसका साहित्यक प्रयोग भी दिखाया है। यहां जिस प्रकार प्रातिबोधिक और संक्रान्तक चुम्बन बताये हैं साहित्यमें उनका प्रयोग भी वैसा ही दिखाया गया है एवम् अधरपानका कितना आदर है इसे भी पूरा दिखाया गया है। यहां जो अभियोगोंकी सामान्यविधि बताई है दिव्यसूरिचरितमें श्रीभक्तांघ्रिरेणुके चरितमें उसे चरितार्थ करके दिखा दिया है। नख रदन जाति प्रकरणमें नाखून लगानेकी जो जगहें और विधि एवम् आकृतियाँ बताई हैं साहित्यमें इनका किस प्रकार उपयोग होता है यह इसके ही साथ बता दिया है। कामसूत्रने जो दांतोंके-गुण बताये हैं कवियोंने उन गुणोंको अपनी नायिकाओंमें देखा है। इसने जिस प्रकार दाँत लगाये जाते हैं यह बताया है तो कवियोंने अपने नायिका नायकोंमें वैसे ही दाँत लगवा दिये हैं, हमने इसका भी पूरा नमूना दिखा दिया है। साहित्य इस बातमें ही कितना पिछलगू रहा है यह भी हमने साथ ही दिखा दिया है। यहांतक कि कामसूत्रने निशानोंके जो नाम दिये हैं साहित्यकोंने उन्हें भी नहीं छोड़ा है, कह डाला है कि—

" शशपदमणिमालं चन्द्ररेखाभिरामम्, ललितपुलक-

जालं लक्ष्मबिन्दुप्रवालम् । वपुरनघममुष्या वक्ति कस्यापि यूनः, सुरतकलहलीलासूक्ष्ममार्गाभियोगम् ।"

इसका अर्थ ३७२ पृ० में कहा गया है, वहां दिखा दिया है कि—किस तरह इस श्लोकमें नखपद और दशनपदोंके नाम आगये हैं । किस देशकी स्त्रियोंकी रंगरेलियाँ किस तरह होती हैं यह कामसूत्रने बताया है तो हिन्दी और संस्कृतके कवियोंने उनका उसी तरह वर्णन किया है । रघुके दिग्-विजयमें कालिदासजीने देशाचारका भी संग्रह कर लिया है । यवनियोंमें मद्य चलता है यह आचार लेकर कह दिया है कि—

" यवनीमुखपद्मानां सेहे मधुमदं न सः । "

महाराजा रघु यवनियोंके मुख कमलकी मद्यके मदकी लालीको न सह सके । यदि महाकवि कालिदासको देशाचारका ज्ञान न होता तो वे यह निर्द्वन्द्व नहीं लिख सकते थे, क्योंकि देशाचारके विरुद्ध कह देना साहित्यका एक दोष हो जाता है । लक्षणग्रन्थोंमें भी देशाचारके अनुसार ही उस देशके व्यक्तियोंके उदाहरण रखे हैं । यह बात निश्चित है कि देशाचारके जाने विना उस देशके रहनेवालोंका उचित वर्णन नहीं हो सकता, इससे इसे जानना चाहिये, देशाचार बतानेका सूत्रकारका यही आशय है, जो कुछ कहा है उसे तो नमूनाके तौरपर समझना चाहिये । आसनोंके विषयमें हम पीछे कह चुके हैं । ये लोक और साहित्य दोनोंमें ही बरते जाते हैं । इस प्रकरणमें अपद्रव्योंके प्रयोग करनेकी रीति तथा औपनिषदिकमें अपद्रव्योंका, निर्माण भी बता दिया है । जो उत्तम, मध्यम और अधम रतियोंके स्वरूप यहां बताये गये हैं साहि-त्यमें उनकी परिभाषाको चरितार्थ करके बताया गया है । चित्ररतप्रकरणके विधान जलक्रीडा आदिमें चरितार्थ होते हैं । कवियोंने इस विषयको भी नहीं छोड़ा है । दूसरी २ जो पशुलीलाएँ बताई गई हैं ये भी वर्णनकी ही वस्तुएँ हैं । हिन्दी, संस्कृत और उर्दू आदिके कवियोंने एक पुरुषका अनेक स्त्रियोंके संग तथा एक स्त्रीका अनेक पुरुषोंके सँग एकसाथ रमण करनेकी कहानियाँ गाई हैं । यह बात नहीं है कि यह कोई वस्तु ही न हो, लोकमें इसे चरितार्थ भी देखते हैं । प्रहणन और सीत्कारके विषयमें भी यही बात है । स्कन्ध, शिर, स्तनान्तर, पृष्ठ, जघन, पार्श्व इन स्थानोंमें आवश्यकताके अनुसार सीधा उलटा

हाथ, उँगलियाँ और मुक्के मारे जाते हैं तथा यंत्रयोगमें अपने और नायिकाके बलके अनुसार उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीडितक, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित और संपुट ये वार होते हैं। ये दोनों ही अनेक प्रकारकी ध्वनियोंके कारण होते हैं। यहां जैसा बताया है कवियोंने अपनी नायक नायिकाओंमें वैसा ही इसका प्रयोग किया है। साहित्यमें पुरुषायितकी भी अच्छी छटा देखनेमें आती है। संग्रह ग्रन्थोंमें इस विषयकी भी अनेकों ही कविताएँ आई हैं गीतगोविन्दके रचयिता श्रीजयदेव कविने भी अपने ग्रन्थमें इसकी छटा दिखाई है। हिन्दीके कवियोंने भी इसको बड़े ढंगसे लिया है। रतके आरंभ और अवसानके जो कृत्य कामसूत्रने कहे हैं आयुर्वेद शास्त्रने भी उनपर प्रकाश डाला है। माघ किरातमें इसका प्रयोग भी देखते हैं। दुनियाँमें भी ऐसा ही होता है। इस बातको पुराणोंने भी कहा है यह भी हमने इस प्रकरणमें दिखा दिया है। प्यारीका प्यारा एवम् प्यारेका प्यारी किस प्रकार सत्कार करते हैं, उनकी आपसमें फँसानेवाली बातें किस किस प्रकार होती हैं इस बातकी भी झलक इन्हीं अवसरोंपर मिलती है, कवियोंने इन बातोंको भी बड़ी सजधजके साथ कहा है। जयदेवजीने गीतगोविन्दमें भी इसे लिया है, हम अपनी टीकामें इसे दिखाते हुए चले हैं। रसिक कवियोंकी रचनाएँ प्रणयकलहपर ही अधिक हुई हैं। विचार करके देखा जाय तो संसारके कवियोंको इस विषयकी कामशास्त्रने ही शिक्षा दी है। हमने इसके भी साहित्यको दिखाया है। विवाहके जो विधान धर्मशास्त्रने बतलाये हैं कामसूत्रने उन्हींको अपने यहां रख दिया है। प्राथमिक परिचयकी, कौतुकागारकी जो बातें कामसूत्रकारने बताई हैं कालिदासने कुमारसंभवकाव्यमें उस समयकी वैसी ही रचना की है। विवाहमें कन्याओंकी तरफसे किस प्रकार प्रयत्न होते हैं तथा पुरुष किस प्रकार कन्या पानेका प्रयत्न करते हैं तथा जो बातें मामाकी बेटीके साथ व्याह करनेवाले वर स्वयम् करते हैं, उन सब बातोंको दिखाते हुए विवाहोंके भेद बताये हैं। यह सब साहित्यमें भी इसी प्रकार देखा जाता है। सुरेखा और सुभद्राहरण आदि नाटकोंमें भी इस बातकी छटा मिल जाती है। गृहिणीजीवन जो कुछ धर्मशास्त्रोंमें बताया है कामसूत्रने उसीको अपनी संमतियोंके साथ रख दिया है। इस तरह यह धर्मशास्त्रके साहित्यसे भी

बाहिर नहीं गया है। पारदारिकप्रकरण भी कविताओंमें उपयुक्त है इसका कहा दूतीप्रकरण तो स्वयंवरमें भी उपयुक्त होता है जैसा कि हम सोदाहरण पीछे कह चुके हैं। राजमहल प्रवेशके जो तरीके इन्होंने बताये हैं विश्वके साहित्यमें राजमहलोंके प्रवेश निर्गमके विषयमें वैसी ही कविता होती है। माधवानल-कामकन्दला, मृच्छकटिक आदि वैशिकके नमूने हैं तथा कुट्टिनीशतक आदि इसके आधारपर भी अच्छा साहित्य है। मालतीमाधवमें अवलोकिता आदिके कार्य्योंमें अलौकिक उपाय भी दिखा दिये गये हैं। इस तरह कामसूत्र या कामशास्त्रपर ही साहित्य आश्रित है, इस कथनमें किंचित् भी अत्युक्ति नहीं है। यह मेरा ही अकेलेका मत हो यह बात नहीं है किन्तु अन्य विद्वानोंने भी इसे ऐसा ही माना है। जयपुरके अन्यतम विद्वान् पं० केदारनाथजी द्वारा संशोधित होकर प्रकाशित हुए जयमङ्गला समेत कामसूत्रपर संमति देते हुए ऑनरेबिल मि० जस्टिस् के. टी. तैलङ्ग एम्. ए. एल् एल् बी. सी आई. ई. हाईकोर्ट बंबईने लिखा है कि—"**प्राचीन और मध्यकालीन भारतके सामाजिक और साहित्यिक इतिहासकी खोजमें इस पुस्तकके प्रकाशनने बहुतही मदद दिया है यह मैं समझता हूं।**" वास्तवमें भारतके प्राचीन और मध्यकालके सामाजिक जीवनपर इसका अच्छा प्रकाश पड़ता है। यह साहित्यका प्राण है फिर साहित्यिक खोजपर इसका क्यों न प्रकाश पड़ेगा? प्राचीन कवि इसे पढ़कर ही कविता करनेमें पैर रखते थे, भवभूति और कालिदासके विषयमें भी पाश्चात्य विद्वानोंका यही मत है कि ये कामसूत्र जानते थे, इतनी उनकी भूल है कि वे कामसूत्रके वाक्योंको देखकर निश्चय करते हैं कि इन्हें कामसूत्र मालूम था. यह नहीं कहते कि इनकी रचनाका जो भी कुछ प्लाट है वह सब कामसूत्रका है। मेरा तो यह दृढ निश्चय है कि प्राचीन कवियोंकी साङ्गोपाङ्ग कविताएँ कामसूत्रके आधारपर ही बनी हैं।

कामसूत्रके प्रकरण—स्वयं महर्षि वात्स्यायनने कामसूत्रके प्रथमाध्याय शास्त्रसंग्रह प्रकरणमें बताये हैं। हमने वहीं उनका इतना स्पष्ट विवरण कर दिया है जिससे उसका भाव अच्छी तरह समझमें आ सकता है। सूत्रकारने इसे सात अधिकरण, छत्तीस अध्याय और चौंसठ प्रकरणोंमें विभक्त किया है। यह गणना ऊपर २ से की है, यदि एक २ प्रकरणके विभाग किये जायँ तो

उसमें भी कई २ विभाग हो जाते हैं। प्रकरणोंको गिनातीबार इतनी बात अवश्य हुई है कि अन्तमें लिखे हैं चौंसठ पर गणना करती बार ६७ बैठते हैं जब कि सूत्रकारके लिखे सब जोड़े जायँ। निर्णयसागरसे जो पुस्तक प्रकाशित हुई है उसमें प्रकरणसूचीमें चौंसठ प्रकरण ही दिये गये हैं। हमने प्रकरण विभाग करती बार उन्हें ही लिया है उन्हें हम नीचे दिखाये देते हैं— पहिले अधिकरणमें पांच अध्याय और पांच प्रकरण हैं। साम्प्रयोगिक अधिकरणके सातवें अध्यायमें प्रहणन और सीत्कार ये दो प्रकरण हैं परन्तु ये दोनों एक साथ मिलेझुले ही चलते हैं, इस कारण हमने इन दोनोंको एक साथ ही रख दिया है। भार्य्याधिकारिक अधिकरणके दूसरे अध्यायमें 'आन्तः-पुरिक' और 'पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्ति' इन दोनों प्रकरणोंको एकहीमें संभाला है पर हमने सबको अलग २ रखा है। सूत्रकारने प्रकरण संभालतीबार आन्तःपुरिकावृत्त और दाररक्षितकको एकमें ही सँभाला है पर पं. केदारनाथ-जीने इसे जुदा रखा है, हमने भी टीका करती बार जुदा ही दिखाया है। वैशिक अधिकरणके पहिले अध्यायमें सूत्रकारने गम्यचिन्ता, गमनकारणानि ये दो दिखाये हैं। इसकी जगह टीकाकारने 'सहायगम्यागम्य गमनकारण-चिन्ता' इतना बड़ा प्रकरण रख दिया है। तीसरे अध्यायमें विरक्त लिङ्गानि और विरक्तप्रतिपत्ति अलग रखा है पर इसे टीकाकारोंने विरक्तप्रतिपत्तिमें ही गतार्थ किया है। इसी तरह टीकाकारोंने छटे अध्यायमें 'अर्थानर्थानुबन्ध-संशयविचारावेश्याविशेषाश्च' यह दो प्रकरणोंका एक ही प्रकरण रखकर चौंसठ पूरे किये है पर हमने दोनोंको जुदा २ करके दिखाया है। शास्त्रकारने जिन प्रकरणोंको एक साथ रखा है उनका वैसा ही सम्बन्ध देखकर रखा है एवम् जिन्हें अलग २ दिखाया उन्हें उस योग्य समझकर ही दिखाया है पर टीका करती बार जो अलग हों उन्हें अलग ही दिखाना अच्छा है, इस बातको दृष्टिमें रखकर अलग दिखानेकी ही चेष्टा की गई है। यहां सब प्रकरणोंका भाव तो हम यों लिखना नहीं चाहते कि उसे हम लिख चुके हैं।

औपनिषदिकके निर्माणका बीज—तो यह है कि मनुष्योंके गृहजीवनकी आवश्यकताएँ इन्हींसे पूरी नहीं हो जातीं; दूसरे २ साधनोंकी भी आवश्यकताएँ पड़ती हैं। शरीर रोगी होता है तो रोग दूर करनेकी ओषधिकी आवश्यकता पड़ती है। यदि सब कुछ होकर मनुष्य व्यवायके योग्य

नहीं होता वा साधन समुचित नहीं होता या वीर्य्य या देहसम्बन्धी और व्याधियाँ होती हैं तो उन्हें दूर किये विना ठीक जीवन नहीं बनता। ऋषिने इस कष्टको मिटानेके लिये भी आयुर्वेदसे अनेक अनुभूत योग रख दिये हैं तथा हमने टीका करती बार उन योगोंपर आयुर्वेदके अनुसार यथेष्ट विचार कर दिया है। जिन दम्पतियोंमें सब बातें होकर भी प्रेम नहीं होता उनका दाम्पत्यजीवन ही कष्टमय बन जाता है, उनके निर्वाहके लिये पारस्परिक प्रेमकी आवश्यकता है पर वह अलौकिक उपायोंसे हो सकता है, आचार्य्यने इसके अलौकिक उपायोंको ही बताया है। इनका साहित्यमें भी प्रयोग देखा जाता है, हिन्दीके साहित्यमें भी इसे इसी रूपसे देखते हैं। प्रेमोन्मत्त नायिका प्रेमके आवेशमें आकर कहती है कि—" इन मोपै जादू डाला " तथा कोई दीवाना भी **"निगाहें यार जादू है"** यह कहकर आखोंमें जादूकी संभावना कर रहा है। जिनमें आस्तिकता है वे यह नहीं कह सकते कि मोहन आकर्षण नहीं हो सकते। जिस तरह विषमें मारने व धतूरेमें उन्मत्त करनेकी शक्ति है उसी तरह विधिपूर्वक प्रयुक्त हुए मोहनादिकर्ममें मोहने आदिकी भी शक्ति है। जो नहीं मानते वे त्राटकके सिद्धोंकी सिद्धियाँ देख लें कि उनकी आखोंमें वह बल है कि नहीं जिससे सब कर्म संपन्न होते हैं। जो नहीं मानते उनके लिये हम आग्रह भी नहीं करते किन्तु मन्त्रमहार्णव, मन्त्रमहोदधि तथा अनेक तंत्र ग्रन्थोंमें जो विषय भरा पड़ा है वह थोड़ासा वात्स्यायनजीने भी रख दिया है। वात्स्यायनजीके इशारेको उनके पीछेवालोंने और भी बढ़ाया है, इसका प्रभाव यहां तक पड़ा है कि—'चक्रदत्त, शार्ङ्गधर तथा भावमिश्र जैसे आचार्य्योंने भी इनकी अनुयायिता की है। हमने इस विषयको भी बाकी नहीं छोड़ा है, इन तीनोंको साथ ही दिखाते चले हैं। जिन स्त्रियोंके विषयमें आसनोंका उपयोग नहीं हो सकता उनके लिये वे विधियाँ बता दी हैं जिनके करनेसे इच्छित सिद्धियाँ मिल जायँ। इसके सिवा हमने और भी अनेकों औषध और विधिविधानोंका संग्रह कर दिया है, जिनसे कि गृहजीवन उत्तम बनाया जा सके। हमारे भी विस्तृत लिखनेका कारण यही है कि लोकोपकार हो। सिवा इस बातके दूसरा कुछ भी आशय नहीं है।

कामसूत्रके निर्माता महर्षि वात्स्यायन—हैं यह हम पहिले ही कह चुके हैं। इनसे पहिले बाभ्रव्य पांचालका कामशास्त्र था जो कि दत्तकादि

आचार्य्योंने जुदे २ अधिकारणोंके रूपमें कर रखा था तथा उनसे भिन्न भी था जो बड़ा था, वह भी इतना कि कठिनतासे पठन पाठनमें आ सके । महर्षिने उसीका संक्षेप करके अधिकरणविभक्ता चारायण आदिके मत विशेषोंके साथ इसे संगृहीत किया है। यह बात मैं ही नहीं कह रहा हूं किन्तु ऋषिने ही अपने मुखसे अन्तमें कही है कि—

" बाभ्रवीयाँश्च सूत्रार्थानागमं सुविमृश्य च ।
वात्स्यायनश्चकारेदं कामसूत्रं यथाविधि ॥ "

बाभ्रवीयके संगृहीत सूत्रोंका अर्थ तथा कामशास्त्रके दूसरे आचार्य्योंके ग्रन्थोंका अच्छी तरह विचार करके वात्स्यायनने विधिपूर्वक कामसूत्रका निर्माण किया । इस कथनसे यह प्रतीत होता है कि इन्होंने उसमेंसे समाधिद्वारा अनुभूतपदार्थका संग्रह किया है पृथक् निर्माण नहीं किया जिसका कि प्राचीनोंके साथ कोई सम्बन्ध न हो । ये कब हुए ? इस बातका पता तो इनका ग्रन्थ ही दे रहा है कि पटनाके चमक जानेके बाद ये हुए; जब कि पटना इतनी प्रसिद्ध बन चुकी थी कि इसमें वीरसेना आदि ऐसी वेश्याएँ रहने लगीं जिनके कि लिये दत्तकाचार्य्यको वैशिक पृथक् करना पड़ा । न्यायदर्शनके वात्स्यायन भाष्यपर टीकाएँ करती बार महर्षि वात्स्यायनके समयका विचार किया है। श्रीसुदर्शनाचार्य्यजीने भी इनके कालपर थोड़ासा प्रकाश डाला है । इसके सिवा जैन ग्रन्थोंमें भी इनका विवरण चन्द्रगुप्तके साथ बँधा हुआ मिलता है। इतिहासवेत्ताओंका ऐसा निश्चय है कि न्यायसूत्रका वात्स्यायनभाष्य, कौटिल्य अर्थशास्त्र और कामसूत्र ये एक ही पुरुषकी कृति हैं । इनका भारतकी बड़ी उथल पुथलोंसे सम्बन्ध रहा है। बड़े साम्राज्योंका संचालन करते हुए भी ये एक फूसकी झोपड़ीमें वास किया करते थे । नीतिनिपुण होकर भी त्यागमय जीवन था। कामशास्त्रके ज्ञाता होकर भी उसके काम विशेषज्ञोंके चरित्रोंमें उदाहरण स्वरूप थे । होंगे व्यास और वाल्मीकिके सामने नन्दिकेश्वरादिके कामशास्त्र, पर आज जो काव्यरचनामें अद्वितीय सुने जाते हैं ऐसे श्रीहर्ष, भारवि, कालिदास, माघ, दण्डी, धावक, भास आदिके सामने तो इनका कामसूत्र ही था जिसके कि मानचित्रपर ये लोग अपनी कवित्वशक्ति दिखा चुके हैं। श्रीयशोधरने भूमिका लिखती बार लिखा है कि—

" आचार्यमल्लनागः पूर्वाचार्य्यमतानुसारेण शास्त्रमिदं प्रणीतवान् । "

आचार्य्य मल्लनागने पूर्वाचार्य्योंके मतके अनुसार इस शास्त्रको बनाया । इसके देखनेसे पता चलता है कि इनका संस्कारका नाम मल्लनाग था एवम् वात्स्यायन गोत्रका नाम था पर ऋषिने इस नामका अपने कामसूत्रमें कहीं भी जिक्र नहीं किया है केवल अन्तमें वात्स्यायन नाम दिया है । टीकाकारोंकी उत्थानिकाओंमें मल्लनाग नाम देखकर ही महेश्वर और हेमचन्द्रने यह कह दिया दीखता है कि-'वात्स्यायन उस मल्लनागका ही अपर नाम है जिसका उल्लेख सुबन्धुने किया है । ' भारतीयोंकी तो इसके कर्तामें ऋषि बुद्धि है, वे वात्स्यायनभाष्यको आर्ष दृष्टिसे देखते हैं, कामसूत्रको ऋषिप्रणीत मानते हैं । यह मान भी लें कि चन्द्रगुप्तको राज्य दिलाकर उसकी सुव्यवस्था करनेवाले महाकर्तव्यपालक त्यागी आप ही हैं तो इससे आप और आपके ग्रन्थोंका गौरव बढ़ता ही है, कम नहीं होता । हे जगदीश ! ब्राह्मणवंशमें फिर ऐसे ही ऋषि पैदा कर; जो देश और धर्म दोनोंका उद्धार करें । आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक तीनों ही उन्नति कर दें ।

कामसूत्रकी जयमङ्गला—श्रीयशोधरजीकी लिखी हुई है इस बातको सभी जानते हैं पर ये कब और कैसे हुए ? इस बातका बहुत थोड़े पुरुषोंको पता होगा । जयमङ्गलामें उन्होंने जो कुछ लिख रखा है उससे यही पता चलता है कि——ये अपनी कामकलाकोविदा प्रेयसीके वियोगमें संन्यासी हो गये हैं उस समय इनका नाम इनके गुरु महाराजने इन्द्रपाद रख दिया है । इन्होंने सूत्र और उसके भाष्यकी व्याख्या एक साथ की है । इन्होंने जो कुछ मङ्गलाचरण किया है उससे यह पता चलता है कि इससे पहिले भी कामसूत्रकी टीकाएँ थीं जो इनको रुचिकर नहीं थीं, न ये अपनेसे पूर्व टीकाकारोंके व्याख्यानको अच्छा ही मानते थे । यह टीका छः अधिकरणोंकी ही है । इस टीकाका सबसे अधिक सम्मान तो इसीसे प्रकट होता है कि वीर वीसलदेव; जिसे कि इतिहास महाप्रतापी राजा लिखता है उसके भारती-भण्डारमें बड़ी सावधानीके साथ रखी गई एवम् इसपर नाम देना बड़ाईका कार्य समझा गया । यह एक बड़े राजाका कार्य्य है और भी कितने ही

साहित्यप्रेमियोंने इसे बहुमान दिया होगा । इसमें पदार्थ पूरा है लेखनकी शैली इस तरहकी है कि विद्वत्तापूर्वक भावगम्य है । यशोधरजीने संभव है औपनिषदिकको भी न छोड़ा हो किन्तु वह दुष्प्राप्य हो गया है । इस कारण छः अधिकरणोंकी टीका ही प्रकाशमें आ रही है ।

दोनोंकी पुरुषार्थप्रभा——टीकाका निर्माण केवल इसी बुद्धिसे किया गया है कि सर्व साधारण हिन्दीभाषाभाषी हमारे मित्र इन दोनोंके भावोंको यथावत् समझ जायँ । गृही गृहजीवनको उत्तम बना लें तथा कवि कविताके रहस्यको समझ जायँ । कामसूत्र और जयमङ्गलाके जो संस्करण प्रकाशित हुए हैं उनमें सूत्र और टीका बड़े लम्बे चले जाते थे, उनके विषय भी उसी प्रकार आपसमें संसृष्ट चले जाते थे जिससे संस्कृतके विद्वानोंको भी समझनेमें कठिनताका ही अनुभव होता था, हमने इस आपत्तिको देखकर सूत्र और टीकाके विभाग कर डाले । पहिले जो एक सूत्रके रूपमें रखा हुआ था वह विषयके भेदसे कई सूत्रोंके रूपमें कर दिया तथा उसीके अनुसार उसकी टीकाके भी विभाग कर दिये । ऐसा करनेका हमारा यही एक आशय था कि किसी भी तरह यह पदार्थ इतना सरल बना दिया जाय कि सर्व साधारण आशानीसे समझ जायँ । सूत्रके साथ उसका अर्थ देकर टीकाके नीचे टीकाका अर्थ दिया है । हमने केवल अनुवाद किया हो यह बात नहीं है किन्तु हमसे जितना भी हो सका है पदार्थकी योजना करनेकी भी चेष्टा की है । यही कारण है कि जो पुस्तक ३७२ पृष्ठमें थी वह टीकाके कारण १२०० सौ पृष्ठकी हो गई है । पदार्थके परिस्फुट बोधके लिये ४०० जगह तो टिप्पणियाँ दी हैं, जिनमें बाजी २ टिप्पणी तो तीन २ पेजतक चली गई हैं । पाठकोंके बोधके लिये यह भी दिखाया है कि इस पदार्थको किसने किस प्रकार लिया है। पण्डितराज कोकका 'रतिरहस्य' कामसूत्रका अनुवाद है । इसमें कामसूत्रका **सांप्रयोगिक, पारदारिक, भार्य्याधिकारिक** और **औपनिषद्क** इन चार अधिकरणोको ही लिया है, उक्त पण्डितजीकी कृति इन चार अधिकरणोंपर ही है । हम स्थान२ पर वह दिखाते चले हैं जिस प्रकार कि सूत्रका अनुवाद किया है । मूर्खमंडलोंमें इनकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि उन्होंने कामसूत्र और वात्स्यायनका नाम ही मिटाकर इन चार अधिकरणोंके पदार्थको कोकशास्त्रके नामपर यथेष्ट प्रचलित किया । आजके दुकानदार तो केवल दोचार दवाएँ, दो चार आसन एवम

नायक नायिकाओंके शश, पद्मिनी आदि लक्षणोंको ही कोकशास्त्र बताकर जितना भी ठगा जा सकता है ठग रहे हैं। उनके ये ढङ्ग देखकर तथा कामसूत्रके विषयमें लोगोंको भ्रान्त देखकर ही हम इस टीकाके निर्माणमें लगे हैं। आज जो भी कुछ प्रचलित है उस सबका मूल कामसूत्र ही है यह हम निर्विवाद कह सकते हैं। आजसे नौसौ वष पहिले श्रीपद्मश्रीनामक एक बौद्ध विद्वान्ने कामसूत्रके साम्प्रयोगिक, पारदारिक और औपनिषदिक अधिकरणके आधारपर नागरसर्व-स्वकी रचना सुन्दर छन्दोंमें की है तथा श्रीकल्याणमल्लने श्रीलाडखानीके शासनमें रहकर सांप्रयोगिक, पारदारिक विवाह और औपनिषदिक प्रकरणके आधारपर अनंगरंगकी रचना की है। टीका करती बार इनके भावोंको भी नहीं छोड़ा है, न हम नित्यनाथको ही छोड़कर चले हैं। इन पुस्तकोंके टीकाकारोंके साथ भी हमने स्थल २ पर समन्वय किया है। ऐसा करनेका हमारा पहिला अभिप्राय तो यह था कि लोग यह जान जायँ कि आज जो भी कुछ कामशा-स्त्रके नामपर प्रचलित है उसका प्रभवस्थान कामसूत्र ही है। जो भी कुछ ये कह रहे हैं· एवम् टीका टिप्पणियोंमें आ रहा है वह सब कामशास्त्रका ही पदार्थ आ रहा है। दूसरा हमारा तात्पर्य यह था कि इन ग्रन्थोंके लेखक भी एक विद्वान् पुरुष हैं, ये एक प्रकारके इसीके व्याख्याता रूप है अतः हमारा अर्थ इनसे मिला ही चले। जहां अनायास ही मिलान एवम् अतिसरल विषय देखा है वहां कहीं २ इन ग्रन्थोंके वाक्य उद्धृत भी नहीं किये गये हैं तो भी वे छोड़े नहीं गये हैं; उनका पर्य्यालोचन अवश्य ही हुआ है। साहित्यके ग्रन्थोंके साथ जिन २ विषयोंपर टीकाने प्रकाश डाला है उसका जिक्र साहित्य और कामशास्त्रके विषयमें पीछे कह चुके हैं। ज्योतिरीश्वरने पंचसायक नामक ग्रन्थ कामसूत्रके सांप्रयोगिक, कन्यासंप्रयुक्तक, पारदारिक और औपनिषदिक इन चार अधिकरणोंके पदार्थके आधारपर बनाया है। इनके विषयोंको भी हम छोड़कर नहीं चले हैं। इसी तरह कुचुमारका कुचोपनिषद भी इसमें पूरा ही आगया है।

ग्रन्थोंके प्रमाण—भी बहुत दिये हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, छान्दोग्य उपनिषद्, बृहदारण्य, प्रश्नोपनिषद्, सायण, शाङ्कर, रंगरामानुज, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, पारस्करगृह्यसूत्र, आश्वलायनीय गृह्यसूत्र, भागवत, अग्निपुराण, विष्णुपुराण, भविष्यपुराण, धर्मसिन्धु, व्रतराज, तिमिरभास्कर,

धर्मशास्त्रसम्बन्धी इतने ग्रन्थोंका प्रमाण आया है । चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, चक्रदत्त, शार्ङ्गधर, लोलिम्बराज, नपुसंकामृत, सुलभचिकित्सासागर, बृहनिघण्टुरत्नाकर, इतने आयुर्वेद शास्त्रके ग्रन्थोंके प्रमाण दिये गये हैं । नैषध, माघ, किरातार्जुनीय, मेघदूत, दिव्यसूरिचरित, अमरुशतक, गीतगोविंद, शांकरदिग्विजय, भर्तृहरि आदि काव्योंके प्रचुर प्रमाण लिये हैं । सरस्वती कण्ठाभरण, काव्यप्रकाश, काव्यप्रदीप, साहित्यदर्पण आदि लक्षण ग्रन्थोंका प्रमाण भी दिया गया है । काव्यप्रभाकर, पद्माकर, मतिराम, भिखारीदास, केशवदासकी रसिकप्रिया आदि लक्षण ग्रन्थोंके उदाहरण दिये हैं । विहारीसतसई, वीरबलविनोद, दिल्लगीकी पुड़िया, रणधीरप्रेममोहिनी, वेश्याविलास, सहस्रआख्यानमञ्जरी, त्रियाचरित्र, गुलसरोवर, सच्चामित्र, गुलबकावली तथा कुछ हिन्दीके नाटकोंका भी विषय उद्धृत किया गया है । अभिज्ञानशाकुन्तल, इसका एक हिंदी अनुवाद, मालतीमाधव, रत्नावली, मालविका—अग्निमित्र, मृच्छकटिक, माधवानल कामकन्दला, विक्रमोवर्शी, आदि संस्कृतके नाटक तथा कादम्बरी, दशकुमारचरित्र, पञ्चतन्त्र, भोजप्रबन्ध, भोज और कालिदास ये गद्यग्रन्थ प्रमाणमें आये हैं । कामशास्त्रके ग्रन्थोंमेंसे रतिरहस्य, पंचसायक, नागरसर्वस्व, अनङ्गरंग, कोकसार, आदिशास्त्र, कामरत्न आदि दिये हैं । इनमेंसे अधिकांश तो बहुतही अधिक रूपमें आये हैं । इनके सिवा दूसरे ग्रन्थोंके भी प्रमाण आये हैं । यह मैं अपने स्मरणसे लिख रहा हूं मैंने कोई भी बात निराधार नहीं कही हैं । इतना ही अंतर हो सकता है कि समन्वय कर्ता बार अपना भी अनुकूल विचार प्रकट कर दिया हो पर वह भी ग्रन्थोंके आधारसे बाहिर नहीं गया है ।

निर्माणमें सहायता—भी भारी आवश्यकता हुआ करती है । किसी भी ग्रन्थकी टीकाका निर्माण करना हो उसे सार्वजनिक बनाना बड़े ही अनुभवका कार्य्य है उसके गहन विषयोंकी गुत्थी समझना समझाना एवम् लेखकके अन्तःकरणपर पहुँच जाना विचारविशेषकी आवश्यकता रखता है । यह ऐसा कार्य नहीं है जो अनायास ही कर दिया जाय । सच पूछिये तो ये ही बातें लेखकोंको उलझाया करती है उसका अधिक काल इन्हींकी चिन्तामें बीत जाता है । सब बातोंका विचार करके समन्वयके साथ पदार्थयोजना की

जाय तो वह टीका देखनेवालोंको लाभ पहुँचाती है नहीं तो भले ही महाराज भोजके कथनानुसार मन माना लिख दो जिस बातके लिये लिखी जाती है वह लाभ ऐसी टीकाओंसे नहीं होता। अपने हृदयमें यह बात थी कि किसी विचारणीय विषयको स्पष्ट किये विना न छोड़ा जाय। इसके लिये मैं अपने विचारोंके साथ अच्छे २ विद्वानोंको मिलाना चाहता था कि योग्य विद्वानोंके इसपर क्या विचार हैं। जब कोई ऐसा ही स्थल आता था तो मैं फानस-वाड़ी श्री वेंकटेश्वर मंदिर जाकर–

"श्रीप्रतिवादि भयङ्कर मठाधीश्वर श्री १००८
जगद् गुरु श्रीमद् अनन्ताचार्य्यजी सूरिसे"

धर्मशास्त्र और साहित्यके विषयमें निश्चय करके आता था। जिस समयमें पूछनेके लिये जाता था आप सब काम छोड़कर मुझे यथेष्ठ समय देते थे यद्यपि आप इस समय दार्शनिक विचारोंमें अधिक समय लगाते हैं पर इस लोकोपकारी कार्य्यमें अवश्य सहायता देते थे। मित्रोंने भी योग दिया जिससे यथेष्ठ विचार कर सका। कोई भी व्यक्ति किसी भी कार्य्यमें लगे उसके सबसे पहिले सहायक तो उत्साह और श्रद्धा हैं। श्रद्धा जननीकी तरह उसकी धारणाकी रक्षा करती हुई बढ़ाये चलती है तथा उत्साह उस कार्य्यमें अग्रसर किये चला जाता है, यह इतना प्रबल है कि आप अपने सहायकोंको खोजलेता है। जब जगदीश निष्ठा देखते हैं तो आपही योग्य पुरुषोंकी कृपा करा देते हैं। पहिले मेरे हृदयमें ये भाव थे कि जिन चीजोंपर मैं परीश्रम कर लूं उन्हें दूसरेको सरल बनादूं उसे उसमें श्रम न करना पड़े। पीछे संस्कारोंने मुझे इतना झकझोरा कि मैं विद्याका उप-योग करना बिलकुल ही भूल गया। हां इतना अवश्य होजाता था कि कभी २ संस्थाओंकी प्रेरणासे धर्मोपदेश और वेदोंके साथ पुराणोंकी एकवाक्यता दिखा दी इस बातके लिये श्री वेंकटेश्वर प्रेसके सत्त्वाधिकारी **श्रीमान् सनातन धर्म-भूषण राव साहेब सेठ रंगनाथजी श्री निवासजीको** अवश्य धन्य-वाद देते हैं कि इन्होंने अपनी सौहार्दमय योजनाओंके साथ हमारे हाथमें फिर लेखनी दिला दी। जो हमें जानते हैं उनमेंसे किसीको भी हमारी बातसे इनकार न होगा। खोलकर कहनेसे लेखका कार्य जनताका चिरकालतक

हित करता है । अब जब हम कुछ लिखकर पूरा करते हैं यह स्मृति हमें अवश्य आती है कि वर्तमान परिवर्तन उनके ही साथका है जो भी कुछ किया है सब उसी परिवर्तनका फल है । यह मैं कुछ और समझकर अन्यथा नहीं कर रहा हूं किन्तु यथास्मरण सत्य कह रहा हूं मुझे जो जानते हैं वे इसे कभी भी असत्य न समझेंगे इस पुस्तकके पुनर्मुद्रणादि अधिकारोंको भी सदैवके लिये इन्हें ही सादर समर्पित करता हूं । जो भी कुछ लौकिक निर्णय हैं वे कभी भ्रमसे खाली नहीं हो सकते, उनमें किसी न किसी अंशमें भ्रम बना ही रहता है । इस बातको मैं ही स्वीकार करूँ, यह नहीं किन्तु, चारों वेदोंपर भाष्य करनेवाले श्रीसायणाचार्य्य तकने स्वीकार किया है कि–

" अज्ञानं पुरतस्तेषां भाति कक्षासु कासुचित "

कोई कितना भी विद्वान् हो उसके निरूपणमें किसी अंशमें कमी रह ही जाती है फिर मेरा ही निरूपण सर्वांशमें निर्दोष हो इस बातकी मैं आशा नहीं करता फिर भी अपने हृदयके विरुद्ध कोई बात नहीं लिखी है न आत्मामें असत्य ही समझकर लिखी है । ग्रन्थमें अशुद्धि होनेका यही एक कारण नहीं होता कि लेखकके अबोधसे रह जाय, किन्तु यंत्र आदिके अनेक कारण हैं जिनसे भी गलतियाँ हो जाया करती हैं यह होते हुए भी मैं गलतियोंसे बरी नहीं हूं मैं भी सदा गलतियोंमें ही हूं । पर अपने सहृदय पाठकोंसे यह प्रार्थना अवश्य करूंगा कि आप मेरे हार्दिकभाव पर दृष्टि डालकर इसका यथार्थ उपयोग करके मुझे कृतार्थ करें तो मैं मेरे श्रमको सफल समझूंगा । वह परब्रह्म परमात्मा जब उस दिनको ला उपस्थित करेगा जो कि महर्षिके मध्यकालमें था तो मैं मेरे परिश्रमको सर्वांशमें पूर्ण समझूंगा ।

आपका—

माधवाचार्य्य.

श्रीः ।

कामसूत्रकी-विषयानुक्रमणिका ।

सांप्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम् ।

प्रथमोऽध्यायः

रतावस्थापन प्रकरण ।

चित्ररत प्रकरण।

सप्तमोऽध्यायः ।

प्रहणनसीत्कार प्रकरण ।

अष्टमोऽध्यायः ।

पुरुषायित प्रकरण ।

पुरुषोपसृप्तप्रकरण ।

कन्यासंप्रयुक्तकं तृतीयमधिकरणम्।

प्रथमोऽध्यायः।

वरणसंविधान प्रकरण ।

तृतीयोऽध्यायः ।

बालाके उपक्रमोंका प्रकरण ।

इङ्गिताकारसूचन प्रकरण ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

एकपुरुषाभियोग प्रकरण ।

(नितान्तगोपनीयम् ।)

श्रीः ।

कामसूत्रम् ।

जयमङ्गलाख्यव्याख्यया

पुरुषार्थप्रभाभाषाटीकया च सहितम् ।
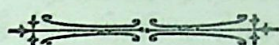
साधारणाख्यं प्रथममधिकरणम् ।

प्रथमाऽध्याये शास्त्रसंग्रहः ।

धर्मार्थकामेभ्यो नमः ॥ १ ॥

वात्स्यायनीयं किल कामसूत्रं प्रस्तावितं कैश्चिदिहान्यथैव ।
तस्माद्विधास्ये जयमङ्गलाख्यां टीकामहं सर्वविदं प्रणम्य ॥

व्यूहेषु सन्नपि व्यूही विदेहोऽपि च देहभृत् ।
मन्मथोऽपि मुदादोहो यस्तं नौमि मुदेऽस्तु नः ॥
यस्येक्षणादेक-मपीहमानम्, नानाऽभवद्यत्र च वन्धमोक्षौ ।
रस्यसुरत्या रसिकैः स कश्चिद्, भृशं भवेन्मे विजयस्य हेतुः ॥
शास्त्राण्यनेकानि विलोक्य पूर्वम्, त्रिवर्गतत्त्वं श्रुतितो विविच्य ।
विन्माधवाचार्य्य इमां विवृत्तिम्, सर्वार्थबोधाय मुदा विधत्ते ॥
कामशास्त्रं बुभुत्सूनां लिप्सूनां जयमङ्गलाम् ।
पुरुषार्थप्रभा मेऽद्य प्रभाऽपूर्वा भविष्याति ॥

यह बात अखिल विश्वमें प्रसिद्ध है कि, कामसूत्र महर्षि वात्स्यायनने संपादित किया है । ऐसे महर्षिके ग्रन्थमें अनेकों उच्च आदर्श होने चाहियें किन्तु ऐसे आदर्श ग्रन्थका कुछ मनचले लोग मनमाना अर्थ कर रहे हैं, इस कारण मैं सब तत्त्वोंके जाननेवाले शिवजीको प्रणाम करके 'जयमंगला' टीका निर्माण करता हूं ।

इह चत्वारो वर्णा ब्राह्मणादयः, चत्वारश्चाश्रमा ब्रह्मचारी गृहस्थो वैखानसो भिक्षुरिति । तत्र ब्राह्मणादीनां गृहस्थानां मोक्षस्यानभिमतत्वात् त्रिवर्गः पुरुषार्थः । तत्रापि धर्मार्थयोर्हेतुत्वात्काम एव फलभूतः प्रकृष्टः पुरुषार्थ इति कामवादिनः ।

स चोपायं विना न भवतीति तमुपायमाचिख्यासुराचार्यमल्लनागः पूर्वाचार्यमता- नुसारेण शास्त्रमिदं प्रणीतवान् ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण तथा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वान- प्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रमी हैं । इनमें सभी मोक्ष[1] नहीं चाहते इस कारण धर्म, अर्थ और काम ही परम पुरुषार्थ है । इनमें भी धर्म और अर्थको कामका हेतु होनेके कारण काम ही इनका फल है अतएव काम ही परमपुरुषार्थ है ऐसा कामको ही परम पुरुषार्थ माननेवाले कहते हैं । उपाय विना काम नहीं होता इस कारण उपाय बतानेकी इच्छासे आचार्य्य मल्लनागने पूर्वा- चार्य्योंके मतके अनुसार इस शास्त्रको बनाया ।

ननु तद्धेतुत्वाद्धर्मार्थावेवोपादेयौ, तौ च शास्त्रविहितौ ? सत्यम्—तद्धेतुत्वे- ऽप्युपायान्तरापेक्षत्वात्संप्रयोगपराधीनः कामः, संप्रयोगश्चोपायमपेक्षते, उपाय- परिज्ञानं च कामशास्त्रात्, न धर्मार्थशास्त्राभ्याम् । वक्ष्यति च प्रयोजन- वाक्यम्—' संप्रयोगपराधीनत्वात्स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते, सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रात् ' इति ।

यद्यपि कामके हेतु होनेके कारण धर्म और अर्थ ही उपादेय हैं, उन्हें धर्म और अर्थ शास्त्रने कह ही रखा है ? यह बात सत्य ह पर कामके हेतु धर्म अर्थके होनेपर भी काम इनसे भिन्न उपायोंकी भी अपेक्षा रखता ह. क्योंकि, काम संप्रयोगके[2] अधीन एवं संप्रयोग उपायके[3] अधीन है, उपायोंका ज्ञान कामशास्त्रसे होता है धर्मार्थशास्त्रसे नहीं होता । कामशास्त्रके प्रयोजनको बतानेवाला सूत्र कहेंगे कि–"कामको स्त्री पुरुषोंके संप्रयोगके अधीन होनेके कारण संप्रयोग उपायकी अपेक्षा करता है । यानी विना उपायके संप्रयोग एवम् विना संप्रयोगके काम नहीं हो सकता, उपायका ज्ञान कामसूत्रसे होता है " इस कारण इस शास्त्रकी आवश्यकता है ।

---

१ दूसरे अध्यायके चौथे सूत्रमें परमतको लेकर मोक्षका भी ग्रहण किया है इसी कारण यहां इतना लिखना पड़ा । २ दूसरे अध्यायके अठारहवें सूत्रमें संप्रयोगका विवरण विस्ता- रके साथ लिखा है । ३ समागमके उपाय जो कि कामसूत्रमें ओतप्रोत हैं अथवा साम्प्र- योगिक अधिकरणको छोड़कर सभी अधिक समागमके उपायोंके ही बतानेवाले हैं । इसी कारण उसे आवापके भीतर गिना है ।

तत्रोपायोऽभिधेयः । तत्प्रकाशनं कामशास्त्रेण क्रियमाणं प्रयोजनम् । अन्यथा कथं प्रतिपत्तिः शास्त्रात् । अनधीतशास्त्राणां तु तच्छास्त्रोपायपरिज्ञानं स्वतोऽसंभवात्, परोपदेशात्स्यात् । परोपदेशश्चेत्कथं न शास्त्राभ्युपगमः, तथा चेदमुपायपरिज्ञानं तद्घुणाक्षरकल्पम्, सम्यक्करणीयवर्जनीयापरिज्ञानात् । ततश्चोपायबाहुल्यात्तैर्नागरिकैरनागरिका नागरिकाः क्रियन्ते, तथा चोक्तम्—'यदविज्ञातशास्त्रेण कदाचित्साधितं भवेत् । न चैतद्बहु मन्तव्यं घुणोत्कीर्णमिवाक्षरम्' इति ॥

यह कामसूत्र उपायोंका विधान करता है। अतः उपाय ही इसका प्रतिपाद्य विषय है। उपायोंको अधिकारी मनुष्य जान जायँ यही इसका प्रयोजन है। ऐसा है तब ही उसका प्रतिपत्तिं होती है नहीं तो शास्त्रसे उनका ज्ञान कैसे हो। जो शास्त्र नहीं जानते उनको कामशास्त्रका ज्ञान तो दूसरेके उपदेशसे होजायगा। यदि परोपदेश ह तो शास्त्र है यह अवश्य ही मानना पड़ेगा। इससे यह सिद्ध हो गया कि, परोपदेशसे भी कामशास्त्रके उपायोंका ही उपदेश होता है। पर दूसरेके उपदेशसे उपायोंका जानना घुनके[1] अक्षरों जैसा ही है क्योंकि, उससे आवश्यकीय कर्तव्य तथा इनका अच्छी तरह ज्ञान नहीं होता। कामशास्त्र न जाननेवाले लोगोंको बड़े बड़े उपायोंसे कठिनताके साथ नागरिक बनाया जाता है। कहा भी है कि—"शास्त्रोंके न जाननेवालेने कदाचित् कोई कार्य्य सिद्ध भी कर लिया तो भी उसे बहुमान न देना चाहिये क्योंकि, वह सिद्धि तो घुनके खोदे हुए अक्षरोंकी तरह अपने आप होनेवाली है।"

यदपि कामशास्त्रविदां केषांचिद्व्यवहाराकौशलम्, तत्तेषामेव दोषः, न शास्त्रस्य, प्रतिपत्तिदोषाच्च शास्त्रानर्थक्यं सर्वत्र तुल्यम्, नहि चिकित्साद्यर्थेषु शास्त्रेषु सर्वे तद्विदः पथ्याहारादिकं सेवन्ते । तस्मात्तदर्थिनो ये भक्तिश्रद्धान्वितास्तेऽपि शास्त्रप्रयोजनहेतवः ।

यद्यपि कुछ एक कामशास्त्रके पढ़े व्यक्ति भी व्यवहारपटु नहीं देखे जाते पर वह उन्हींका दोष है शास्त्रका नहीं, यदि इसी तरह कामशास्त्रको निरर्थक मानोगे तो यह बात सभी शास्त्रोंमें देखी जाती है, इसकी तरह सभी शास्त्र व्यर्थ होजायँगे। यह बात नहीं है कि, चिकित्सादिकके प्रयोजनवाले

---

१ घुन एक कीड़ा होता है यह लकड़ीको खाया करता है, इसके खानेसे आपही काठमें अक्षरखे बन जाते हैं वह लिखता नहीं । इसी तरह दूसरेके उपाय करनेवालोंका कार्य्य बन जाता है तो वे उपायका फल समझ लेते हैं। यह न्याय न्यायसाहस्रीमें दिखाया है॥

शास्त्रोंके जाननेवाले सभी पथ्यसेवी हों। इस कारण कामशास्त्रको चाहनेवाले जा इससें भक्तिश्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति हैं वे भी इस शास्त्रके प्रयोजनके हेतु हैं ।

तत्र देवतानमस्कारपूर्वकं शास्त्रप्रणयनमविघ्नितप्रसरं भवतीत्याह—" धर्मार्थकामेभ्यो नमः इति ।"

देवताओंको नमस्कार करके शास्त्र बनानेसे वह निर्विघ्न समाप्त होजाता है इस कारण देवताओंको नमस्कार करते हैं कि—धर्म, अर्थ और कामदेवके लिये नमस्कार है ।

अर्थशब्दस्याजाद्यदन्तत्वेऽपि न पूर्वनिपातः, धर्मस्याभ्यर्हितत्वात् । वक्ष्यति च—' पूर्वः पूर्वो गरीयान् ' इति ॥ १ ॥

यद्यपि संस्कृत व्याकरणके साधारण नियमके अनुसार सूत्रमें ' अर्थ ' को पाहिले रखना चाहिये था पर तीनोंमें ' धर्म ' मुख्य होनेके कारण उसकी प्रधानता दिखानेके लिये पहिले रख दिया ह । कामशास्त्रने भी इसी आधिकरणके दूसरे अध्यायके चौदहवें सूत्रमें धर्मको ही श्रेष्ठ माना है ॥ १ ॥

अन्यदेवतासद्भावेऽपि किमिति तेभ्यो नम इत्याह—

और बहुतसे देवता हैं इनके लिये ही क्यों नमस्कार किया है ? इसका उत्तर देते हैं कि–

शास्त्रे प्रकृतत्वात ॥ इति ॥ २ ॥

इस कामशास्त्रमें उन्हींका वर्णन है इस कारण नमस्कार भी उन्हींको किया गया है ॥ २ ॥

' अधिकृतानधिकृते प्रतिपत्तिर्बलीयसी ' इति न्यायात् । यथा च पुरुषार्थत्वेन कामोऽस्मिञ्शास्त्रेऽधिकृतस्तथा तद्द्वारेण धर्मार्थावपि, एतदुपदिष्टोपायपूर्वकं

---

१ "अजाद्यदन्तम् २–२–३३" अच् जिसके आदिमें हो एवम् ह्रस्व अ जिसके अन्तमें हो वह शब्द द्वन्द्व समासमें पहिले प्रयुक्त होता है । धर्म अथ काम इनमें अर्थ शब्द स्वर ' अ ' आदि वाला एवम् थ्–अ अन्तवाला होनेके कारण सबसे पहिले चाहिये था किन्तु " अभ्यर्हितं पूर्वम् " श्रेष्ठका नाम सदा पहिले लिखा जाता है धर्म श्रेष्ठ है धर्मसे दूसरे दरजेपर अर्थ तथा पीछे काम है इस कारण धर्म सबसे पहिले रहा अर्थ नहीं । ये दोनों व्याकरणके ही नियम हैं–श्रेष्ठ कोई भी हो उसका नाम पहिले रहता है । धर्म कैसे श्रेष्ठ है यह ऊपर टीकामें दिखा दिया है ।

प्रवर्तमानस्य त्रिवर्गसिद्धिः । तथा च वक्ष्यति—' अन्योन्यानुबद्धं त्रिवर्गं सेवेत । ' तथा–" सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च " इति ।

" अधिकृत और अनधिकृत इन दोनोंमें प्रतिपत्ति बलवती होती है " यह न्याय है, यानी चाहे वह प्रकरणगत हो चाहे न हो यदि वह प्राप्त होता है तो वही होगा । इस शास्त्रमें धर्म, अर्थ और काम वर्णनीय हैं इस कारण नमस्कार करनेमें भी वे ही प्राप्त होते हैं अतः नमस्कार भी उन्हें ही किया है। कामके शास्त्रमें धर्म और अर्थ किस तरहसे आते हैं ? इसे दिखाते हैं कि, यद्यपि इस शास्त्रमें काम हा मुख्यरूपसे वर्णन किया है उसके द्वारा धर्म और अर्थ भी वर्णन किये हैं, क्योंकि कामशास्त्रके बताये हुए उपायोंसे त्रिवर्गकी सिद्धि होती है । यह बात इसी अधिकरणके दूसरे अध्यायके पहिले सूत्रमें कहेंगे कि–" धर्म, अर्थ और काम इनमेंसे जिसका सेवन करे तो दूसरे एक या दोनोंको उसके साथ रखकर सेवन करे या तीनोंमें समभाव रखे । उदाहरणके लिये लीजिये कि–' अविवाहित सवर्णा कन्याको शास्त्रकी रीतिके साथ प्राप्त करलेनेपर धर्म, अर्थ, पुत्र, सम्बन्ध, पक्षवृद्धि एवम् शुद्ध रति है ॥ "

तेषां चाधिकारात्तदधिष्ठात्र्यो देवता अधिकृताः, उपचाराच्छब्दवाच्याः, अन्यथा धर्मादीनां वक्ष्यमाणलक्षणानामदेवत्वात्मकत्वान्नमस्कारो नोपपद्येत, अधिष्ठातृदेवतास्तित्वं चागमात् । तथाहि—' पुरूरवाः शक्रदर्शनार्थमितः स्वर्गं गतो मूर्तिमतो धर्मादीन्दृष्ट्वोपागम्य धर्ममेवेतरावनादृत्य प्रदक्षिणीचकार, ततोऽसौ ताभ्यां तिरस्कारामर्षिताभ्यामभिशप्तः, ततोऽस्य कामाभिशापादुर्वशीविरहोत्पत्तिरभूत्, तस्यां च कथंचिदुपशान्तायामर्थाभिशापादतिप्रवृद्धलोभश्चातुर्वर्ण्यस्यार्थमाहृतवान् । ततोऽर्थापहाराद्यज्ञादिक्रियाविरहोद्विग्नैर्ब्राह्मणैर्दर्भपाणिभिर्हतो ननाश ' इत्यैतिहासिकाः ॥ २ ॥

धर्मादिकोंका अधिकार होनेके कारण इनके अधिष्ठाता देवता अधिकृत होते हैं वे भी लक्षणासे धर्मादिशब्दोंके वाच्य हैं । उन देवोंको नमस्कार किया गया है जो कि, इनके अधिष्ठाता हैं। नहीं तो इन धर्म, अर्थ और कामको जिनका कि, लक्षण अगाड़ी करेंगे नमस्कार हो ही नहीं सकता । इनके अधिष्ठाता देवता हैं यह शास्त्रसे प्रतीत होता है। इनके अधिष्ठाता मूर्तिमान् हैं

इसपर एक शास्त्रीय उदाहरण देते हैं कि–' ऋग्वेद प्रसिद्ध सार्वभौम चंद्र-वंश संस्थापक सम्राट् पुरूरवा देवराज इन्द्रके दर्शन करनेके लिये स्वर्ग गया, वहां अन्य देवताओंके साथ ये तीनों देव भी मूर्तिमान् होकर विराज रहे थे उनके पास पहुँचकर विक्रमने अर्थ और कामका अनादर करके केवल धर्म-देवकी ही प्रदक्षिणा की, इस कारण वे दोनों इस तिरस्कारसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और विक्रमको शाप दे दिया। कामके शापसे यह उर्वशीका वियोगी हुआ, किसी तरह वियोगकी निवृत्ति होगई तो अर्थके शापसे महालोभी होकर चारों वर्णोंका धन हर लिया। धनके चले जानेसे यज्ञ आदिक क्रियाएं होना कठिन होगया इससे द्विज बड़े उद्विग्न हुए, अन्तमें उन उद्विग्न कुशधारी ब्राह्मणोंने उसे मारा जिससे नष्ट होगया, ऐसा इतिहासके जाननेवाले कहा करते हैं॥२॥

तत्समयावबोधकेभ्यश्चाचार्येभ्यः ॥ इति ॥ ३ ॥

और जिन आचार्य्योंने धर्म, अर्थ और कामशास्त्रके तत्त्वको समझानेके लिये धर्म, अर्थ और कामशास्त्र बनाये हैं उनके लिये भी नमस्कार है ॥ ३ ॥

तेषां धर्मादीनां समयस्तत्त्वम्, अवबोधयन्तीत्यवबोधकाः, तत्समयस्यावबोधका इति । षष्ठीसमासप्रतिषेधस्यानित्यत्वम्, ' तत्प्रयोजको हेतुश्च ' इति निदर्शनात् । ये तत्समयं प्रतिपादयितुं तच्छास्त्रं प्रणीतवन्तस्तेभ्यो नमः, नान्येभ्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥

---

१ पुरूरवाका इतिहास भागवतके नवम और एकादश स्कन्ध तथा अन्य भी कई इतिहास पुराणोंमें आया है। ऋग्वेदके अष्टमाष्टक अध्याय ५ के प्रथमके चार वर्ग उर्वशी और पुरूरवाके मानचित्रमें ही पूरे हुए हैं जो कि, अब होजानेके बाद इतिहास भी कहा जा रहा है। इसीके अन्तमें बताया है कि–" प्रजाते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उत त्वमपि मादयासे " मैं तेरे पास फिर एक रात रहूंगी जिससे और पुत्र होंगे उनके होजाने पर तुम मेरे लोकके लिये यजन करना तुम भी मेरे साथ स्वर्गमें प्रसन्न होगे। एवम् भागवत स्कन्ध ९ अ. १५ ' अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ' राजा अग्नि पुत्रसे गन्धर्व लोकको चला गया। यह लिखा मिलता है कि उर्वशीके कथनके अनुसार यज्ञेश भगवान् नारायणका यजन करके गन्धर्व लोक चला गया। यही कारण है कि, अरणि मथनके समय दोनोंमें पुरूरवा और उर्वशीकी भावना करनी पड़ती है कि " पुरूरवा असि, उर्वशी असि " इस सबसे यही पता चलता है कि, उर्वशीकी चाहमें ही महाराजा पुरूरवा गन्धर्व लोक चले गये हैं; महाराजके विप्र शापसे नष्ट होनेकी बात जयमंगला जाने । कामशास्त्रके प्रसिद्ध ग्रन्थ पंचशायकमें भी हमें यही लिखा मिलता है कि–" उर्वश्या च पुरूरवां नरपतिः सन्त्याजितो जीवितम् " ऊर्वशीके लिये पुरूरवाने अपने प्राण दे दिये । इससे पता चलता है कि कामशास्त्रकी भी यह भावना नहीं है कि वियोगी हुतात्मा पुरूरवा विप्रशापसे मरा ॥

तत् शब्द धर्म, अर्थ और कामके साथ संबन्ध रखता है, इनके तत्त्वको समय कहते हैं, इसके जतानेवाले समयके अवबोधक कहाते हैं । 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' इस सूत्रसे मालूम होता है कि, षष्ठी समासका निषेध अनित्य है । जिन्होंने त्रिवर्गके तत्त्वको प्रतिपादन करनेके लिये इन शास्त्रोंको बनाया उनके लिये ही नमस्कार है दूसरोंके लिये नहीं ॥ ३ ॥

कुत इत्यत आह–

उन्हें क्यों नमस्कार करते हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि–

तत्संबन्धात् ॥ इति ॥ ४ ॥

उनका यहां सम्बन्ध है ॥ ४ ॥

तेषामिह शास्त्रे संबन्धादित्यर्थः, तत्प्रणीतशास्त्रसंक्षेपेण हि शास्त्रस्य प्रणयनात् ॥ ४ ॥

उनको नमस्कार करनेका कारण यह है कि, उनके बनाये हुए ही शास्त्रोंसे संग्रह करके कामसूत्र बनाते हैं यही उनका इस कामसूत्रमें सम्बन्ध है ॥ ४ ॥

कामशास्त्रकी प्रामाणिकता ।

'प्रजापतिर्हि' इत्यादिनागमविशुद्ध्यर्थं गुरुपूर्वक्रमलक्षणं संबन्धमाह–

कामशास्त्रकी प्रामाणिकताको सिद्ध करनेके लिये पूर्वके गुरुओंकी परम्परारूप संबन्ध, 'प्रजापतिर्हि' इत्यादि नीचे लिखे सूत्रोंसे कहते हैं–

सूत्रका व्याकरण ।

१ तस्य–उस शास्त्रके, समयः–संकेत (सिद्धान्त या रहस्य) के, अवबोधकेभ्यः–बतानेवाले, आचार्य्येभ्यः–आचार्य्योंके लिये (नमस्कार है) यह सूत्रके पदोंका अर्थ है । इसमें 'तस्य समयः' इन दोनोंके बीच 'षष्ठी २-२-८' इस सूत्रसे समास होकर 'तत्समयः' ऐसा शब्द बन गया । 'तत्समयम् अवबोधयन्ति' उस शास्त्रके तत्त्वोंको जो बताये, यह इसका अर्थ है । 'अवबोधयन्ति' के अर्थमें धातुसे 'ण्वुल्' होकर अवबोधक शब्द बन गया । एवम् 'तत्समयस्य, अवबोधकाः' शास्त्रके तत्त्वको बतानेवाले, यह इसका तात्पर्य्य हुआ । ये जो 'तत्समयस्य' एक पद एवम् 'अवबोधकाः' यह एक पद है कामसूत्रकारने इन दोनोंमें 'कृद्योगा षष्ठी समस्यत इति वाच्यम्' कृदन्तके योगमें होनेवाली षष्ठी समस्त होजाती है । इस वार्तिकसे समास करके 'तत्समयावबोधक' एक पद बना लिया है । एवम् 'तृजकाभ्यां कर्तरि २-२-१५' इस सूत्रके किये समास निषेधकी चिन्ता नहीं की । इस बातका जयमंगला टीकाका कर्ता समाधान करता है कि जैसे 'तस्य प्रयोजकः–तत्प्रयोजकः' यहां इस निषेधकी चिन्ता न करके पाणिनि व्याकरणके सूत्र बनानेवालेने समास करके ऐसा बना लिया उसी तरह वात्स्यायनने भी पाणिनिके इस सूत्रसे समासके निषेधको अनित्य मानकर कर लिया ॥

प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासां स्थितिनिबन्धनं त्रिवर्गस्य साधनमध्यायानां शतसहस्रेणाग्रे प्रोवाच ॥ ५ ॥

प्रजापतिने प्रजाको रचकर त्रिवर्ग स्थितिका कारण है इस कारण सौ हजार अध्यायोंसे त्रिवर्गका साधन पहिले कहा था ॥ ५ ॥

प्रजापतिर्हीति—हिशब्दो यस्मादर्थे, अविपरीतोऽयमागमो गुरुपरम्परयान्वाख्यायते । यतः स्थितिनिबन्धनमिति—प्रजानां तिस्रोऽवस्थाः, सर्गस्थितिप्रलयलक्षणाः, तत्र सर्गादूर्ध्वं प्रबन्धेनावस्थानं स्थितिः । सा हि द्विविधा, शुभा चाशुभा च । त्रिवर्गोऽपि द्विविधः, उपादेयोऽनुपादेयश्च, तत्र पूर्वो धर्मोऽर्थः काम इति, द्वितीयोऽप्यधर्मोऽनर्थो द्वेष इति । तत्र धर्मादमुत्र शुभा गतिः, अधर्मादशुभा । अर्थादिहैव परिभोगो धर्मप्रवर्तनं च, अनर्थात्क्लिष्टजीवनमधर्मप्रवर्तनं च । कामात्सुखं प्रजोत्पत्तिश्च, द्वेषान्नोभयम्, तस्य च निःसुखस्याप्रजस्य तृणस्येव स्थितिः । इत्येवं स्थितेस्त्रिवर्गो निबन्धनम् ।

सूत्रमें आये हुए ' हि ' शब्दका ' इस कारण ' यह अर्थ है, यह शास्त्रविरुद्ध नहीं है इस कारण इसे गुरुपरंपराके साथ कथन करते हैं । प्रजाकी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ये तीन अवस्थाएं हैं, उनमेंसे इन तीनोंमें सृष्टि रचनाके पीछे जो प्रजाका प्रबन्धके साथ रहना है उसे स्थिति कहते हैं । वह शुभ और अशुभ भेदसे दो प्रकारकी है । इसी तरह उपादेय (ग्रहण करने योग्य) और अनुपादेय (त्यागने योग्य) इन दो भेदोंसे त्रिवर्ग भी दो तरहका है । इन दोनोंमें पहला धर्म, अर्थ और काम ग्रहण करने योग्य है एवम् दूसरा अधर्म, अनर्थ और द्वेष यह त्यागने योग्य हैं । इनमें धर्मसे उस लोकमें उत्तम गति तथा अधर्मसे बुरी गति होती है । एवम् अर्थसे यहीं अच्छी तरह भोग और धर्म कर सकता है, अनर्थसे जिन्दगी मुसकिलसे गुजरती है एवम् अधर्म होते हैं, द्वेषसे दोनों ही नहीं होते । सुखरहित निपुत्री द्वेषीकी स्थिति संसारमें तिनकेकी तरह होती है । इस प्रकार त्रिवर्ग प्रजाकी स्थितिका कारण है ।

तस्योपेयानुपेयस्य प्राप्तिपरिहारौ नोपायं विनेति तदुपायशासनत्वाच्छास्त्रं च सम्यगुपचारात्तन्निबन्धनम् । शतसहस्रेणेति लक्षेण । अग्रे प्रोवाचेति—तदानीं शास्त्रान्तराभावादिदमेवाग्र्यमिति । श्रुतिरपि सर्वजनविषयेति तामेव हृदिस्थामनुसंचिन्त्य साधारणभूतं स्मार्तशास्त्रं प्रकर्षेणोवाच ॥ ६ ॥

उपेय (धर्मादि) की प्राप्ति तथा अग्राह्य (अधर्मआदि) का त्याग विना उपायके नहीं हो सकता अतः यह शास्त्र उनके उपायोंका शासन करता है इस कारण शास्त्र है, भली प्रकार करनेसे स्थितिका कारण होता है। सौ हजार एक लाख को कहते हैं। उस समय दूसरे शास्त्र नहीं थे इस कारण यही अगाड़ीका है। वेद भी सबोंका हितकारी है हृदयमें विराजे हुए उन्हीं वेदोंके भावोंका विचार करके सर्व साधारणके हितके लिये स्मार्त-शास्त्र अच्छी तरह कहा गया है ॥ ५ ॥

तस्यैकदेशिकं मनुः स्वायंभुवो धर्माधिकारिकं पृथक्चकार ॥ ६ ॥

उसके एक भाग धर्मशास्त्रको स्वायंभुव मनुने जुदा कर दिया ॥ ६ ॥

तस्येति--प्रजापतिप्रोक्तस्यैकदेशास्त्रयः, तत्र यत्र धर्मोऽधिकृतस्तन्मनुः पृथक्चकार, यत्रार्थस्तद् बृहस्पतिः । यत्र कामस्तन्नन्दीति । स्वायंभुव इति वैवस्वतनिवृत्त्यर्थम् । धर्माधिकारिकमिति—धर्मप्रस्तावो यत्रास्ति तत्, धर्मशास्त्रमित्यर्थः॥ ६ ॥

प्रजापतिके शास्त्रके धर्म अर्थ और कामशास्त्र ये तीन भाग हैं, इनमेंसे धर्मशास्त्रको स्वायंभुव मनुने जुदा कर दिया, अर्थ-शास्त्रको बृहस्पतिने एवं कामशास्त्रको नन्दीने पृथक् कर डाला । वैवस्वत मनुका ग्रहण न होजाय इस कारण स्वायंभुव ग्रहण किया है। धर्मका प्रस्ताव जिसमें हो उसे धर्माधिकारिक कहते हैं, इसका दूसरा नाम धर्मशास्त्र भी है ॥ ६ ॥

बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिजीने अर्थशास्त्रको पृथक् कर लिया ॥ ७ ॥

अर्थाधिकारिकमिति—अर्थशास्त्रं चकारेत्यर्थः । द्वयोरप्यनयोरप्रस्तुतत्वान्नाध्यायसंख्या दर्शिता ॥ ७ ॥

अर्थाधिकारिकका अर्थ अर्थशास्त्र है, इसके आचाय बृहस्पति हैं। इस कामसूत्रमें मुख्यरूपसे कामका ही प्रतिपादन है; धर्म और अर्थशास्त्रका नहीं। इस कारण इन दोनों शास्त्रोंकी अध्याय-संख्या नहीं बताई है ॥ ७ ॥

काम शास्त्रकी गुरुपरम्परा ।

महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ॥ ८ ॥

कामका पृथक्करण अध्यायोंकी संख्याके साथ कहते हैं कि-महादेवजीके अनुचर नन्दीन एक हजार अध्यायोंमें कामसूत्र पृथक् कहा ॥ ८ ॥

महादेवेति-महादेवमनुचरति यः, नान्योऽयं नन्दिनामा कश्चित् । तथा हि श्रूयते--दिव्यं वर्षसहस्रमुमया सह सुरतसुखमनुभवति महादेवे वासगृहद्वारगतो नन्दी कामसूत्रं प्रोवाचेति । अत्राध्यायसंख्यानमुक्तम्, शास्त्रस्य प्रस्तुतत्वात् ॥ ८ ॥

महादेवजीकी मनके अनुसार जो सेवा करे वह और कोई नहीं वैसे नन्दिकेश्वरने कामशास्त्र उससे पृथक् किया । सुना भी ऐसा ही जाता है कि-भगवान् शिव तो दिव्य एक हजार वर्षतक उमाके साथ सुरत सुखका अनुभव करते रहे उसी समय उनके निवास स्थानके द्वारपर खडे हुए नन्दिकेश्वरजी महाराजने एक हजार अध्यायोंमें कामशास्त्र कह डाला । कामशास्त्र प्रस्तुत है इस कारण उसके अध्यायोंकी संख्या कह डाली है ॥ ८ ॥

तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरौद्दालकिः श्वेतकेतुः संचिक्षेप ॥ ९ ॥

महर्षि उद्दालकके सुपुत्र श्वेतकेतुने श्रीनन्दिकेश्वरके एक हजार अध्यायमें कहे हुए कामशास्त्रका पांचसौ अध्यायमें संक्षेप करके निरूपण किया ॥ ९ ॥

तदेव त्विति-नन्दिप्रोक्तम्, तस्यैकदेशम् । तुशब्दो विशेषणार्थः । औद्दालकिरिति--उद्दालकस्यापत्यं यः श्वेतकेतुः । तथाहि परदाराभिगमनं लोके प्रागासीत्, यथोच्यते-"पक्वान्नमिव राजेन्द्र सर्वसाधारणाः स्त्रियः । तस्मात्तासु न कुप्येत न रज्येत रमेत च ॥ " इति । इयमौद्दालकेन व्यवस्था निर्वर्तिता, तथा चोक्तम्—'मद्यपानान्निवृत्तिश्च ब्राह्मणानां गुरोः सुतात् । परस्त्रीभ्यश्च लोकानामृषेरौद्दालकादपि ॥ ततः पितुरनुज्ञानाद्गम्यागम्यव्यवस्थया । श्वेतकेतुस्तपोनिष्ठः सुखं शास्त्रं निबद्धवान् ॥ ' इति ॥ ९ ॥

'तदेव' का तातपर्य्य नन्दिकेश्वरके कहे हुए उस शास्त्रसे है जो कि, प्रजापतिके कहे हुए शास्त्रका एक भाग है । ' तु ' शब्द विशेषणके लिये है कि; उसीको किसी विशेष रीतिसे संक्षिप्त करके कहा । उद्दालकके अपत्यको

---

१ ऐसे समयमें नन्दिकेश्वरका कहना कुछ विशेष अनुभवसे ओतप्रोत होना चाहिये इससे इस शास्त्रमें और भी प्रामाण्यका प्रतिपादन होता है । टीकाकारने 'नान्य' पदसे इसी गौरवको ध्वनित किया है ॥

औद्दालकि कहते हैं यानी उद्दालकका अपत्य जो उपनिषद् प्रसिद्ध श्वेतकेतु है उसने कहा किसी दूसरेने नहीं, लोकमें परदारा[२] गमन था, कामी अविवेकी जीवोंका सिद्धान्त था तथा अब भी कामान्धोंका यही मत देखा जाता है कि–"स्त्रियां मिठाईकी तरह सर्व साधारण हैं कोई भी मोका पाकर इन्हें भोग सकता है। इस कारण यदि क्रोधका प्रसंग भी उपस्थित हो तो भी क्रोध न करे न अत्यन्त अनुरक्त ही हो केवल रमण मात्रका ही प्रयोजन रखे।" पर यह विचार लोककी मर्य्यादाका नाशक एवम् असाधु है पुरुषोत्तमकी आज्ञा-रूप वेदसे नितान्त विरुद्ध है, इस कारण महर्षि औद्दालकने वेदोंको आगे रखकर लोगोंको इस व्यवस्थाको समझाया कि–"मद्य पीना नितान्त बुरा है इसे किसीको भी न पीना चाहिये, ब्राह्मणोंको तो इसे छूना भी न चाहिये। गुरुपुत्री बहिनके समान है ब्राह्मण बालकको उधर बुरी भावना भी न करनी चाहिये तथा परस्त्रीको सभी मनुष्योंको माताकी तरह देखना चाहिये।" ये ऋषि इस बातके पूरे प्रवर्तक हुए इतना ही नहीं किन्तु महर्षि उद्दालकने अपने प्यारे पुत्र श्वेतकेतुको भी गम्य और अगम्यकी व्यवस्था बताई थी यही बात इस श्लोकमें भी वताई है कि–"इसके वाद पिताके उपदेशसे तपस्वी श्वेतकेतु गम्या और अगम्याकी व्यवस्थाके साथ सुखपूर्वक शास्त्र जान गया" ॥ ९ ॥

तदेव तु पुनरध्यर्धेनाध्यायशतेन साधारणसांप्रयोगिककन्यासंप्रयुक्तकभार्याधिकारिकपारदारिकवैशिकौपनिषदिकैः सप्तभिरधिकरणैर्बाभ्रव्यः पाञ्चालः संचिक्षेप १०॥

---

१ छान्दोग्य उपनिषद्का छठा प्रपाठक अरुण ऋषिके पुत्र उद्दालक और पौत्र श्वेतकेतुके अध्यात्म संवादोंमें ही पूरा हुआ है इसीको उपदेशके रूपमें मिला हुआ 'तत्त्वमसि' शाङ्कर वेदान्तके चार महावाक्योंमें स्थान पारहा है। ऐसे महामीहम कैवल्याधिकारी महापुरुषका किया हुआ संक्षेप निर्दोष होता हुआ अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंके साथ संबन्ध रखेगा इसी बातको दिखानेके लिये आरुणिके साथ 'औद्दालकि' विशेषण लगाया है॥

२ श्वेतकेतुके कन्याके पुत्र अश्वपतिके दरबारम गया है उस समय अश्वपतिने श्वेतकेतुसे कहा है कि–"मेरे राज्यमें चोर शराबी दुराचारी, अग्नि होत्रका अधिकारी अग्नि होत्ररहित, मूर्ख व्यभिचारी कोई भी नहीं है, व्यभिचारिणियां तो कहांसे होंगी" यह छा० ५–११–५ वीं श्रुतिमें कहा है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य सभ्यतामें ये बातें नाममात्रको भी नहीं थीं, आर्य्यसभ्यताके ह्रासके साथ ही इन बातोंका जन्म हुआ है इस कारण पहिले भारतके निष्पाप वक्षस्थल पर परदार सेवन था यह बात कभी भी नहीं मानी जा सकती, परदारगमन भारतीय आत्माओंके बाहिरकी बात है। कामान्ध अरबोंके आक्रमणोंसे भारतीयोंने इसे सीखा॥

बभ्रुके सुपुत्र पांचालने श्वेतकेतुके संक्षिप्त किये हुए कामशास्त्रका फिर संक्षेप करके साधारण, साम्प्रयोगिक, कन्या संप्रयुक्तक, भार्य्याधिकारिक, पारदारिक, वैशिक और औपनिषदिक इन सात अधिकरणोंमें एकसौ पचास अध्यायोंमें कहा ।

तदेव त्विति—यदेवौद्दालकिसंक्षिप्तम्, पुनरर्थतो ग्रन्थतश्च संचिक्षेप । तत्र परदाराभिगमनं सामान्येन प्रतिषिद्धम्, इह तु विशेषेणेत्येव पारदारिकमत्रोक्तम् । अध्यर्धेन—पञ्चाशदधिकेन ।

जो श्वेतकेतुका संक्षेप किया हुआ था उसे ही फिर भी अर्थसे और ग्रन्थसे संक्षिप्त किया है । पहिलेमें पराई स्त्रीके साथ व्यभिचार करना सामान्य-रूपसे वर्जित किया है तथा इसमें वह विशेषरूपसे वर्जित है इसी कारण यहां पारदारिक अधिकरण कहा है । अध्यर्ध अध्याय शतका तात्पर्य्य १५० अध्यायोंसे है ।

तत्रोत्तरेषामधिकरणानामस्य साधारणत्वात्साधारणम् ।

साधारण—जो अपनेसे पीछेके सब अधिकरणोंके लिये समान हितकारी हो । जिसमें कि शास्त्रका सारा विषय समान रूपसे आजाय, जो कि शास्त्र प्रवेशमें कुंजीका कार्य्य करे ।

संप्रयोगः प्रयोजनमस्येति सांप्रयोगिकम् ।

साम्प्रयोगिक—संप्रयोग—सुरत—मैथुन या सहवासको कहते हैं । जिस अधिकरणका यही विविक्त प्रयोजन हो वह साम्प्रयोगिक कहलाता है । इसमें

---

१ बभ्रुके पुत्रको बाभ्रव्य कहते हैं । बभ्रु शब्दसे "मधुबभ्रोर्ब्राह्मण कौशिकयोः ४–१–१६" इस सूत्रसे अपत्य अर्थमें यञ् वृद्धि और आवृ होकर बाभ्रव्य शब्द बनता है । टीकाकार बाभ्रव्य यानी बभ्रुका पुत्र जो पांचाल यानी पांचाल गोत्रीय हो ऐसा भाव दिखा रहे हैं यद्यपि यहां पांचाल गोत्रीय यह साक्षात नहीं कहा है पर पांचालिकी चतुःषष्टिकी व्युत्पत्ति दिखाती बार यह बात जयमंगला टीकाने कही है । इस पर यहां हमें इतना ही विचार होता है कि महर्षि पाणिनि कौशिक ऋषिके पर्य्यायमें बाभ्रव्यका प्रयोग कर रहे हैं । यहां पांचालके विषयमें बाभ्रव्यके प्रयोग पर विज्ञजन स्वयं विचार करें । यहां हम अपनी संमति व्यक्त न करेंगे हमें तो वात्स्यायनके प्रयोगपर श्रद्धा है ।

२ इस कथनसे सिद्ध होता है कि कामशास्त्र संसारी जीवनकी शिक्षा देनेवालों शास्त्रोंमें मुख्य है इसका निर्माण अनाचारके लिये नहीं हुआ है, जो लोग इस धर्मसाधनको अपनी भूलके कारण व्यभिचारकी दृष्टिसे देखते हैं वे वास्तवमें इसके रहस्य ज्ञानसे कोसों दूर हटे हुए हैं ॥

सहवासकी तथा उसके सम्बन्धकी सारी बातें आगई हैं। इसके ज्ञानसे मनुष्यकी रमणकी इच्छासे उठी हुई पाशविक वृत्तियाँ शान्तिको प्राप्त होजाती हैं।

कन्यायाः संप्रयुक्तं संप्रयोगो यस्मिन्निति कन्यासंप्रयुक्तकम् ।

कन्यासम्प्रयुक्तक—सम्प्रयुक्त संप्रयोगको कहते हैं संप्रयोगका अर्थ पूर्व कर ही चुके हैं कन्याके संप्रयोगको कन्यासंप्रयुक्तक कहते हैं।

इसमें विवाह आदि उपायोंसे कन्या प्राप्त कर उसे जिस तरह संप्रयोगके लिये तयार किय।जाता है उन सब बातोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तथा कन्याकी भी स्वयंवर करनेकी विधियां कही गई हैं।

भार्याधिकारिणी यस्मिन्नस्तीति भार्याधिकारिकम् ।

भार्य्याधिकारिक—इसमें विवाहिता स्त्रियोंका अपने पतिके साथ व्यवहार तथा पतिको अपनी प्रधान अप्रधान सभी विवाहिता स्त्रियोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये यह विषय वर्णित है तथा प्रधान पत्नीक अपनी सपत्नी तथा उनकी सन्तानोंके साथ एवम् उनको अपनी प्रधानके साथ जो व्यवहार करना चाहिये वह इसमें विस्तारके साथ वताय गया है।

तथा पारदारिकम् ।

पारदारिक—परदार दूसरेकी उस स्त्रीको कहते हैं जो अपने स्वाभाविक व्यापारादिकोंसे दूसरे पुरुषोंकी अभिलाषाकी वस्तु वन जाय। इसमें दूसरेकी स्त्रियोंके चाहनेवाले पुरुषोंके उन उपायोंको वताया है जिनसे वे उन्हें हस्तगत कर लेते हैं। इसका जानना प्रत्येक गृहस्थके लिये आवश्यक है क्योंकि इसका जाननेवाला ही जार पुरुषोंके दुलक्ष्य उपायोंसे अपने परिवारकी रक्षा कर सकता है तथा विटोंको भी इसमें अनेकों हितोपदेश दिये हैं।

वेशो वेश्यावृत्तम्, तत्प्रयोजनमस्येति वैशिकम् ।

वैशिक—वेश्याओंके व्यवहार (हाल) को वेश कहते हैं, जिस अधिकरणमें वेश्या तथा वेश्याके नायकोंकी व्यवहारिक वातें कही गई हों वह वैशिक कहाता है। इस अधिकरणम वेश्याओंके उन छल कपटोंको खोल दिया है जिनके कि जाननेसे मनुष्य उनके धोखेमें नहीं आता।

तथौपनिषदिकम्, उपनिषद्रहस्यम् ।

औपनिषदिक—रहस्यको उपनिषद् कहते हैं, जिस अधिकरणमें सब विषयोंमें हितकारी छिपे उपाय हों वह औपनिषदिक कहाता है। इसमें दुःसाध्यको

सिद्ध करनेवाली अनेकों विधियोंका वर्णन है। धातुक्षय (नामर्दी) दूर होनेकी तथा सौन्दर्य आदि लानेकी भी बहुतसी विधियाँ हैं।

साधारणाद्युपादानं शास्त्रशरीरख्यापनार्थम्, एतावन्तोऽर्थाः शास्त्र इति, आचार्योऽपि तथैव स्वशास्त्रमतः संचिक्षेप । सप्तभिरिति नियमार्थम् ।

सूत्रमें साधारण आदिकोंका ग्रहण शास्त्रके शरीरको बनानेके लिये है कि कामशास्त्रमें इतने पदार्थ हैं। आचार्य वात्स्यायनने भी अपने शास्त्रका संक्षेप इसी रीतिसे किया है। सूत्रमें 'सप्तभिः' इन सातोंसे यह कहना नियमके लिये है कि सात ही अधिकरण हैं।

अधिक्रियन्ते प्रकरणार्था येष्वित्यधिकरणानि । बाभ्रव्यो बभ्रोरपत्यं यः पाञ्चालः, 'मधुबभ्र्वोः—' इति यञ् ॥ १० ॥

अधिकरण—जिसक भीतर कितने ही प्रकरण किये जाय वे अधिकरण कहाते हैं। एक २ अधिकरणमें कई २ प्रकरण होते हैं ॥ १० ॥

तस्य षष्ठं वैशिकमधिकरणं पाटलिपुत्रिकाणां गणिकानां नियोगाद्दत्तकः पृथक्चकार ॥ ११ ॥

वाभ्रव्यके संक्षिप्त किये हुए कामशास्त्रको छठे वैशिक अधिकरणकी दत्तकाचार्य्यने पटनाकी वेश्याओंकी प्रेरणासे पृथक् किया ॥ ११ ॥

तस्येति—बाभ्रव्यसंक्षिप्तस्य । षष्ठमितीयमेवानुपूर्वी नान्येति प्रदर्शनार्थम्, अन्यथा पाठादेव संख्या लब्धा । तां चानुपूर्वीं वर्णयिष्यामः । पाटलिपुत्रिकाणामिति—मगधेषु पाटलिपुत्रं नाम नगरं तत्र भवा इति । 'रोपधेतोः प्राचाम्' इति वुञ् ।

वाभ्रव्यके संक्षिप्त किये हुएको यह सूत्रके 'तस्य' का तात्पर्य है। यही कामशास्त्रकी क्रम परंपरा ह दूसरी नहा ह इस बातको दिखानेके लिये षष्ठ (छठे) इसका ग्रहण है नहीं तो गिनती करनेपर स्वतः ही वैशिक छठा होजाता है षष्ठ लिखनेका कोई प्रयोजन नहीं रहता। इसकी उस आनुपूर्वीको दिखायंगे। मगध देशमें पाटलिपुत्र 'पटना' नामका एक नगर है इसमें होनेवाली वेश्या 'पाटलिपुत्रिका' कहाती है।

---

१ पूर्वके देशोंके कहनेवाले रोपध और ईकारान्त शब्दोंसे 'वुञ्' होता है। रोपध पाटलिपुत्र शब्दसे वुञ् प्रत्यय होकर पाटलिपुत्रक बनता है एवम् स्त्री लिङ्गमें 'पाटलिपुत्रिका' बन जाता है।

नियोगादिति—अन्यतमो माथुरो ब्राह्मणः पाटलिपुत्रे वसतिं चकार । तस्योत्तरे वयसि पुत्रो जातः । तस्य जातमात्रस्य माता मृता पितापि तत्रान्यस्यै ब्राह्मण्यै तं पुत्रत्वेन दत्त्वा कालेन लोकान्तरं गतः । ब्राह्मण्यपि ममार्थं दत्तकः पुत्र इत्यनुगतार्थमेव नाम चक्रे, स च तया संवर्धितोऽचिरेण कालेन सर्वा विद्याः कलाश्चाधीतवान् । व्याख्यानशीलत्वाद्दत्तकाचार्य इति प्रतीतिमुपागतः । एकदा च तस्य चेतस्येवमभवत्, लोकयात्रा परा ज्ञेयास्ति, सा प्रायशो वेश्यासु स्थितेति । ततो वेश्याजनं परिचयपूर्वकं प्रत्यहमुपागम्य तथा तां विवेद यथा स एवोपदेशग्रहणायास्य प्रार्थनीयोऽभूत् । ततोऽसौ वीरसेनाप्रमुखेण गणिकाजनेनाभिहितः, अस्माकं पुरुषरञ्जनमुपदिश्यतामिति । तन्नियोगात्पृथक् चकारेत्याम्नायः ।

वैशिक अधिकरणके पृथक् करनेका कारण—पाटलिपुत्र (पटना) में एक माथुर ब्राह्मण रहा करते थे, उनके बुढ़ापेमें पुत्र हुआ, उसके होनेके पीछे ही माताका भी परलोकवास होगया एवम् पिता भी किसी ब्राह्मणीका उन्हें दत्तक पुत्र बनाकर मर गये। ब्राह्मणीने इन्हें अपना दत्तक पुत्र मान परवरिश की और ' दत्तक ' यह अन्वर्थ नाम रखा । ये थोड़े ही दिनोंमें सभी कला और विद्याओंको जान गये । उत्तम कोटिके निरूपण करनेवाले थे इस कारण इन्हें ' दत्तकाचार्य्य ' कहने लगे। एक दिन इनके दिलमें आया कि उस लोकयात्राको अवश्य जानना चाहिये जो कि प्रायः वेश्याओंमें रहा करती है । इसके पीछे वेश्याजनोंका परिचय पाकर रोज उनके यहां जाकर उसे जानने लगे । इसी तरह एक दिन वे ऐसे होगये कि, लोग कला सीखनेके लिये उनसे प्रार्थनाएँ करने लगे । पीछे उनसे वीरसेना आदिक उत्तम २ गणिकाओंने कहा कि, हमें पुरुषोंको प्रसन्न करना बता दीजिये। उनके कहनेसे दत्तकाचार्य्यने वैशिक अधिकरणको जुदा किया ।

अन्यस्तु श्रद्धामधिगम्य युक्तियुक्तमाह—' यत्र गर्भयात्रायां दत्तकनामा तत्पदावधूतेन प्रतिशयितेन त्र्यक्षेण शप्तः स्त्री बभूव ' पुनश्च कालेन लब्धवरः पुरुषोऽभूत् । तेनोभयज्ञेन पृथक्कृतमिति ।

किसी दूसरेने तो श्रद्धाके साथ युक्तियुक्त कहा है कि—' दत्तकाचार्य्य गर्भयात्रामें साथ सोते हुए त्र्यक्षमें पैर लग जानेके कारण शापसे स्त्री होगये, फिर समय पर वर प्राप्त करके पुरुष होगये । जिस कारण स्त्री और पुरुष दोनोंके ही भावोंको जानते थे अतः उन्होंने दोनोंके भावोंको अपनी दृष्टिमें रखकर यह वैशिक पृथक् किया ।

यदि बाभ्रव्योक्तमेव पृथक्कृतं किमपूर्वं स्वसूत्रेषु दर्शितम् । येनोभयरसज्ञता कल्प्यते । यदि चायमर्थः शास्त्रकृतोऽप्यभिमतः स्यात्तदानीं ' नियोगादुभयरसज्ञो दत्तकः ' इत्येवमभिदध्यात् ॥ ११ ॥

यदि बाभ्रव्यका कहा हुआ ही जुदा किया तो यह तो बताइये कि अपने सूत्रोंमें क्या अपूर्वता की जिससे यह जाना जाय कि वे स्त्री और पुरुष दोनोंके पूरे भाव जानते थ ? यदि यह बात आचार्य्य श्रीमल्लनागजीको अभीष्ट होती तो सूत्रमें भी दत्तकाचार्य्यके साथ दोनों रसोंके जाननेवाले यह विशेषण और लगा देते, इससे विदित होता है कि सूत्रकारको यह बात अभीष्ट नहीं है ॥ ११ ॥

तत्प्रसङ्गाच्चारायणः साधारणमधिकरणं पृथक्प्रोवाच सुवर्णनाभः सांप्रयोगिकम् । घोटकमुखः कन्यासंप्रयुक्तकम् । गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम् । गोणिकापुत्रः पारदारिकम् । कुचुमार औपनिषदिकमिति ॥ १२ ॥

जिस तरह दत्तकाचार्य्यने बाभ्रव्यक संक्षेपसे वैशिकाधिकरण पृथक् कहा था उसी तरह अपने २ प्रयोजनसे प्रेरित होकर चारायणने साधारण, सुवर्णनाभने सांप्रयोगिक, घोटकमुखने कन्यासंप्रयुक्तक, गोनर्दीयने भार्य्याधिकारिक, गोणिकापुत्रने पारदारिक और कुचुमार आचार्यने औपनिषदिकाधिकरणको पृथक् कह ॥ १२ ॥

तत्प्रसङ्गाच्चारायणः साधारणमधिकरणं प्रोवाच । सुवर्णनाभः सांप्रयोगिकम् । कन्यासंप्रयुक्तकं घोटकमुखः । गोनर्दीयो भार्याधिकारिकम् । गोणिकापुत्रः पारदारिकम् । कुचुमार औपनिषदिकमिति । दत्तकेन वैशिकं पृथक्कृतमित्येतत्प्रसङ्गाच्चारायणादयोऽपि पृथक्प्रकर्षेणोचुः । प्रकर्षश्च ग्रन्थेषु स्वमतप्रकाशनम् । तच्च स्थानस्थानेषु स्वशास्त्रे दर्शयिष्यति ॥ १२ ॥

प्रकर्पका मतलब है कि ग्रन्थोंमें अपना मत प्रकट करना। दत्तकसे लेकर कुचुमार तक सबने अपने २ ग्रन्थोंमें साथ २ अपना मत भी प्रकट किया है जिसे कि, स्थान २ पर दिखायेंगे ॥ १२ ॥

---

१ बाकी ' तत्प्रसंग ' से लेकर ' औपनिषदिक ' यहांतककी सब टीकाका अर्थ मूल सूत्रके अर्थमें आगया है इस करण नहीं लिखा ।

कामसूत्रके बनानेका कारण ।

एवमित्यादिना स्वशास्त्रस्य प्रयोजनमाह--

आचार्य्य अपने कामशास्त्र बनानेका प्रयोजन बताते हैं कि--

एवं बहुभिराचार्यैस्तच्छास्त्रं खण्डशः प्रणीतमुत्सन्नकल्पमभूत् ॥ १३ ॥

इस प्रकार बहुतसे आचार्य्योंने उस शास्त्रको टुकड़े २ करके बनाया जिससे नष्टप्रायसा होगया ॥ १३ ॥

तच्छास्त्रं बाभ्रव्योक्तम् । खण्डश इति--खण्डं खण्डं कृत्वा । उत्सन्नकल्पमीषदुत्सन्नमिव, क्वचिद्दृश्यमानत्वात् । नन्द्यादिप्रणीतमुत्सन्नमेवेत्यर्थोक्तम् ॥ १३ ॥

उस शास्त्र यानी बाभ्रव्यके कहे शास्त्रको खण्डशः यानी टुकड़े २ करके इन सब लोगोंने लिखा । बाभ्रव्यका कहा शास्त्र कहीं कहीं मिलता था किन्तु नन्दिकेश्वरादिका बनाया तो नष्टसा होगया ॥ १३ ॥

तत्र दत्तकादिभिः प्रणीतानां शास्त्रावयवानामेकदेशत्वात्, महदिति च बाभ्रवीयस्य दुरध्येयत्वात्, संक्षिप्य सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेन कामसूत्रमिदं प्रणीतम् ॥

दत्तकादिकोंके बनाये हुए शास्त्रके टुकड़े कामशास्त्रके एकदेश हैं । बाभ्रवीयका बनाया बड़ा होनेके कारण समझमें आना कठिन है । अतः सब भावको संक्षिप्त करके छोटे ग्रन्थके रूपमें यह कामशास्त्र बनाया है ॥ १४ ॥

तत्रेति--शास्त्रप्रस्थाने । शास्त्रावयवानामिति--अवयवभूतानाम् । एकदेशार्थत्वान्न कामाङ्गीभूताशेषवस्तुपरिज्ञानम् । बाभ्रवीयस्येति--बाभ्रव्यप्रोक्तस्य संपूर्णशास्त्रस्याप्रयोजनमाह—तस्य संपूर्णस्यापि महदिति कृत्वा दुःखेनाध्ययनम् । तत्सप्तभिरधिकरणैः सप्त सहस्राणि (सप्त--शास्त्राणि) संक्षिप्य, सर्वमर्थमल्पेन ग्रन्थेनेति संपूर्णतां स्वध्येयतां च दर्शयति । इदमिति बुद्धिस्थमाह । प्रणीतमिति समाप्तमाशंसते ॥ १४ ॥

कामशास्त्रके स्थानमें दत्तकाचार्य्य आदिकोंके बनाये इस कामशास्त्रके टुकड़े मौजूद थे, ये इस शास्त्रके अंग हैं । भिन्न २ इन अंगोंसे अंगी शास्त्रकी आवश्यकता पूरी नहीं होती, क्योंकि एक अंगसे पूरे शास्त्रके भावका ज्ञान नहीं होता । दूसरी यह भी बात है कि बाभ्रव्यका पूरा शास्त्र है पर वह

शास्त्र इतना बड़ा है कि सर्व साधारणमें उसका पठन पाठन होना भी कष्ट-साध्य है इस कारण वह भी उपयुक्त नहीं है । अतएव सात अधिकरणों द्वारा सात हजार अध्यायके ग्रन्थका संक्षेप करके सब अर्थको अल्प ग्रन्थसे कहनेसे अपने बनाये कामशास्त्रको पूरा एवम् सुखसे पढ़ने योग्य दिखा रहे हैं कि उनका सार नहीं छोड़ा । यद्यपि कामशास्त्र बना नहीं किन्तु बुद्धिमें प्रस्तुत करके कहते हैं । यह कामशास्त्र प्रणीत किया इस कथनसे समाप्त किया ऐसा कह रहे हैं ॥ १४ ॥

अधिकरण और प्रकरण शब्दका अर्थ ।

तस्येत्यादिना स्वशास्त्रस्यार्थावयवानाचष्टे—

नीचे लिखे हुए तस्य इत्यादिकसे अपने कामशास्त्रके अवयवोंको कहते ह—

तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ॥ १५ ॥

अयमिति वक्ष्यमाणो ग्रन्थः । प्रक्रियन्ते प्रस्तूयन्ते येष्वर्था इति प्रकरणानि । तेषामधिकरणानां च समुद्देशः संक्षेपेणाभिधानम् ॥ १५ ॥

श्रीवात्स्यायन महर्षिके बनाये हुए प्रकरण और अधिकरणोंको नीचे संक्षेपसे कहे देते हैं । जिसमें विषय साधिकार प्रारंभ हो वह ' प्रकरण ' तथा जिसमें प्रकरण हों वह ' अधिकरण ' कहाता है । संक्षेपसे पदार्थ—कथनको ' समुद्देश ' कहते हैं ॥ १५ ॥

कामशास्त्रके पदार्थ ।

शास्त्रसंग्रहः। त्रिवर्गप्रतिपत्तिः । विद्यासमुद्देशः । नागरिकवृत्तम् । नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः। इति साधारणं प्रथममधिकरणम् । अध्यायाः पञ्च । प्रकरणानि पञ्च ॥ १६ ॥

' साधारण ' नामक पहिला अधिरकण है, इसमें पांच अध्याय और पांच प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें कामशास्त्रके पदार्थोंको सामान्यरूपसे इकट्ठा कहा है । दूसरे अध्यायमें धर्म, अर्थ और कामके लक्षण, इनकी शिक्षा प्राप्तिके उपाय तथा उपायपर शंका, समाधान आदि हैं । तीसरे अध्यायमें स्त्री पुरुषोंके कामशास्त्र पढ़नेका समय तथा कामसूत्रकी ६४ अङ्गविद्या गीत, वाद्यादिको संक्षेपसे कह दिया है । चौथे अध्यायमें कामशास्त्रके चतुर वा इस शास्त्रमें चतुर होनेवाले स्त्री पुरुषोंके कर्तव्य कहे हैं । एवम् इस शास्त्रके चतुर

स्त्री पुरुषोंके दूत, दूती आदि सहायकोंका वर्णन है। पांचवें अध्यायमें नायक, सहायक और दूती, दूत आदिको उनके कर्तव्य कर्मोंका उपदेश दिया हैं। इस तरह यह अधिकरण पांच अध्यायमें तथा प्रत्येक इसका अध्याय एक एक प्रकरणमें पूरा होता है ॥ १६ ॥

शास्त्रस्य संग्रहः, त्रिवर्गप्रतिपत्तिः इत्यादय उक्तार्थाः । तत्साहचर्य्याद्ग्रन्थ-भागा अपि तत्समाख्याः, यथा कंसवधकाव्यमिति ॥ १६ ॥

शास्त्रके संग्रहका नाम शास्त्र संग्रह एवं त्रिवर्गकी प्रतिपत्तिका नाम त्रिवर्ग प्रतिपत्ति है । इसी तरह २२ सूत्र तक जितने भी प्रकरणों और अधिकरणोंके नाम आये हैं, वे सब अन्वितार्थको कहनेवाले हैं इनकी तरह ही सबका अर्थ समझना चाहिये । इन अर्थोंके साहचर्य्यसे ग्रन्थ भागोंका भी वही नाम है, जैसे कि कंसवधके वृत्तके संबन्धसे उस काव्यका नाम भी यही रखा गया है॥१६

प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनम्। प्रीतिविशेषाः। आलिङ्गनविचाराः । चुम्बनविकल्पाः । नखरदनजातयः। दशनच्छेद्यविधयः। देश्या उपचाराः ।संवेशनप्रकाराः। चित्ररतानि। प्रहणयोगाः। तद्युक्ताश्च। सीत्कृतोपक्रमाः । पुरुषायितम् । पुरुषोपसृप्तानि । औपरिष्टकम् । रतारम्भावसानिकम् । रतविशेषाः । प्रणयकलहः । इति सांप्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम् । अध्याया दश। प्रकरणानि सप्तदश ॥ १७ ॥

'साम्प्रयोगिक' नामक दूसरा अधिकरण है । इसमें दश अध्याय हैं । उनमें सत्रह प्रकरण कहे हैं। पहिले अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें पुरुष और स्त्रियोंके यंत्रोंकी लम्बाई चौडाई तथा गहराई चौडाईके हिसावसे सह-वासकी व्यवस्था की है। इसी प्रकरणमें राग और शुक्रक्षरणके कालभेदसे भी रमणकी व्यवस्था है तथा इसीमें पुरुष और स्त्रीके खलास होनेके समयसे भी यही व्यवस्था बांधी है । दूसरे प्रकरणमें अभ्यास अभिमान संप्रत्यय और विषयके भेदसे होनेवाली चार प्रकारकी प्रीतिका वर्णन किया है । दूसरे अध्यायमें आलिंगनोंके विचारका एक ही प्रकरण है । इसमें आठ प्रकारके वाभ्रवीयके तथा उनसे अधिक सुवर्णनाभके चार आलिंगनोंकी विधि आदिका 'उपगूहन' के नामसे वर्णन किया गया है । तीसरे अध्यायमें विधिपूर्वक

चुम्बनके भेद बताये हैं । चौथे अध्यायमें नाखूनोंसे शरीरमें निशान आदि करनेकी विधि एवम् उसके गुण आदिका वर्णन किया है । पांचवें अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें दातोंके काटनेके निशान आदि करनेकी विधि तथा फायदे बताये हैं । दूसरे प्रकरणमें जिस देशको जो प्रिय लगता है वह बताया गया है । छठे अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिलेमें सहवासकी रीति तथा आसन आदिका विधान किया है । दूसरे प्रकरणमें अनेक तरहके सह-वासोंका वर्णन किया है तथा आसन और आकारविशेष आदिके रूपमें भी सहवासकी विधियां बताई हैं । सातवें अध्यायमें दो प्रकरण हैं । उन दोनोंका आपसमें कार्य्य कारण भाव है इस कारण दोनों एक साथ ही चलते हैं, क्योंकि स्तनादिकोंपर हाथ मारनेसे ही सीकारे आदिका शब्द किया जाता है । आठवें अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें सहवासके समय रमण करते २ परिश्रमसे थकित हुए एवं राग शान्त नायकको फिर उसी तरह चैतन्य करनेके लिये पुरुषकीसी सारी चेष्टाएँ करने आदिका विधान है । दूसरे प्रकरणमें सहवास आरंभ करनेसे पाहिलेकी छीनीझपटी आदिका विवरण है । नववें अध्यायमें एक 'औपरिष्टक' प्रकरण ही है । औपरिष्टक—अवास्तविकके सहवासको कहते हैं । इस कामके करनेवाले नायकको एक आभाससा होता है । इसमें असली रति नहीं है इस कारण इसका यह नाम रख दिया है । यह अप्राकृतिकसा है पर जिन दुर्व्यसनिनी स्त्रियों एवम् निकृष्ट पुरुषोंको इसका व्यसन लग गया है वे इसे ही अपने सुखका साधन समझ इसीमें रत रहते हैं किन्तु तत्त्वज्ञ इसमें वास्तविकता नहीं देखते । इस अध्यायमें इसीके भेद कहे गये हैं उनके करनेवाले तथा दोष भी बता दिये हैं एवं विधियाँ भी कही गई हैं । दशवें अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें रमणके आरंभ करनेसे पहिलेके खान, पान, शय्या आदि तैयारियोंका वर्णन है तथा रमण संपन्न होनेके बादकी बातें तथा प्रेम और बलवर्धक आदि अन्य विधानोंका कथन है । दूसरे प्रकरणमें—'स्वांभाविक, आहार्य्य, कृत्रिम और व्यवहित रागसे प्रवृत्त होनेके कारण रमणके इतने ही भेद हो जाते हैं । इनके सिवा पोटा, खल और अयंत्रित रत भी हैं ' यह वर्णन किया है । तीसरे प्रकरणमें प्रेमकी लड़ाईकी बातें विस्तारपूर्वक लिखी हुई हैं कि प्रेयसीकी प्रियसे इस प्रकार इन कारणोंसे लड़ाई होती है ॥ १७ ॥

वरणविधानम् । संबन्धनिर्णयः । कन्याविस्रम्भणम् ।
बालाया उपक्रमाः । इङ्गिताकारसूचनम् । एकपुरुषा-

भियोगः । प्रयोज्यस्योपावर्तनम् । अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिः । विवाहयोगः । इति कन्यासंप्रयुक्तकं तृतीयमधिकरणम् । अध्यायाः पञ्च । प्रकरणानि नव ॥ १८ ॥

'कन्या संप्रयुक्तक' नामक तीसरा अधिकरण है, इसमें पांच अध्याय हैं उनमें नव प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें बताया है कि, कैसी लड़कीके साथ कैसे विवाह करना चाहिये । दूसरे प्रकरणमें कहा है कि कैसे कुलकी लड़की लेनी चाहिये । दूसरे अध्यायमें कन्याके हृदयमें अपना पूर्ण विश्वास बिठा लेने आदि अनेकों उपयोगी बातोंका वर्णन है । यदि लोग विवाहसे पहिले इसे पढ़ लें तो नवोढा पत्नीके हृदयमें अनायास ही स्थान पा लें । तीसरे अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें कन्याकांक्षी युवा और बाल पुरुषोंको उन प्रयत्नोंको बताया है जिनसे कि स्वयम् उस कन्याको पा लें । दूसरे प्रकरणमें कन्या आदिके इशारे, चेष्टा और मुख आँखकी रंगतसे रागकी पहिचान लिखी है । इनसे स्त्रियोंके रागकी पूरी पहिचान होजाती है । चौथे अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें रागके पहिचान लेनेके बाद उसके पानेके उपाय बताये हैं । दूसरे प्रकरणमें कन्याको अपने आप योग्य पति पानेकी रीतियोंका वर्णन हैं । तीसरे प्रकरणमें कन्याको वे विधियां बताई हैं जिनसे अपने चाहनेवाले बहुतोंमेंसे एक योग्यको चुन ले । पांचवें अध्यायमें एक ही प्रकरण है. इसमें चाही हुई अनुरक्त, अननुरक्त और स्वयंवराको पा लेना तथा उनके साथ विवाहोंको प्राप्त होनेकी विधियोंका वर्णन है ॥ १८ ॥

एकचारिणीवृत्तम् । प्रवासचर्या । सपत्नीषु ज्येष्ठावृत्तम् । कनिष्ठावृत्तम् । पुनर्भूवृत्तम् । दुर्भगावृत्तम् । आन्तःपुरिकम् । पुरुषस्य बह्वीषु प्रतिपत्तिः । इति भार्याधिकारिकं चतुर्थमधिकरणम् । अध्यायौ द्वौ । प्रकरणान्यष्टौ ॥१९॥

'भार्य्याधिकरण' नामक चौथा अधिकरण है, इसमें दो अध्याय हैं, इनमें आठ प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें दो प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें विवाहिता, पतिप्राणा, सदाचारिणी स्त्रियाँ तथा एकचारिणी, पुनर्भू, वेश्या आदिकोंको उन व्यवहारोंकी शिक्षा दी है जिनसे वह अपने प्यारे पति व प्रेमीके आदरका

स्थान बनी रहें । दूसरे प्रकरणमें पतिके विदेश जाने पर योग्य स्त्रियोंकी उचित रहन सहन बताई हैं । दूसरे अध्यायमें छः प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें बहु विवाहके कारण तथा बड़ीका अपनी सौतोंके साथ करने योग्य व्यवहार बताया है । दूसरे प्रकरणमें छोटीको बड़ी सौतके साथ किये जानेवाले सुखप्रद उचित व्यवहारोंकी शिक्षा दी है तथा और भी आदर पानेकी बातोंको बताया है । तीसरे प्रकरणमें उन दुर्वृत्ता विधवाओंको कुछ उपदेश दिया है जो कि अपनी मानसिक दुर्वलताके कारण कामातुर होकर किसी भोगीके गले पड़ती हैं । चौथे प्रकरणमें सौतोंकी सताई हुई दुर्भगाओंको भी कुछ उपदेश दिये हैं; जिनसे उनकी जिन्दगी आनन्दसे गुजर जाय । पाँचवें प्रकरणमें राजाको अपने राजमहलमें अपनी परिणीता तथा अपरिणीता आदिके साथ उचित व्यवहारकी शिक्षा दी है। छठे प्रकरणमें उन पुरुषोंको निर्विघ्न जीवनयात्राकी उचित शिक्षाएं दी हैं जिनसे वे सबको यथार्थ-रूपसे प्रसन्न रखते हुए आप भी सुखी रहें ॥ १९ ॥

स्त्रीपुरुषशीलावस्थापनम् । व्यावर्तनकारणानि । स्त्रीषु सिद्धाः पुरुषाः । अयत्नसाध्या योषितः । परिचयकारणानि । अभियोगाः । भावपरीक्षा । दूतीकर्माणि । ईश्वरकामितम् । आन्तःपुरिकं दाररक्षितकम् । इति पारदारिकं पञ्चममधिकरणम् । अध्यायाः षट् । प्रकरणानि दश ॥ २० ॥

'पारदारिक' नामक पांचवां अधिकरण है। इसमें छः अध्याय हैं, उनमें दश प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें चार प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें स्त्री पुरुषोंके स्वभावकी विवेचना तथा उसकी चेष्टा आदिसे अपनी ओरके झुकावकी पहिचानसे प्रवृत्ति बताई हैं । दूसरे प्रकरणमें वे कारण बताये हैं जिनके रहते परकीया नहीं प्राप्त होती अतः उनका प्रतीकार करके प्राप्त करता है। तीसरे प्रकरणमें उन पुरुषोंको बताया है जो कि स्त्रियोंके विषयमें सिद्धहस्त होते हैं, कौन कहां हो सकता है यह भी बताया है। चौथे प्रकरणमें उन स्त्रियोंकी ओर लक्ष किया है जिनके कि सिद्ध करनेमें विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती ।दूसरे अध्यायमें दो प्रकरण हैं ।पहिले प्रकरणमें किसी अपरिचि-तसे जान पहिचान करने तथा बढ़ानेकी बातें हैं । जान पहिचानके बढ़ जाने-

पर उसके प्राप्त करनेके उपाय दूसरे प्रकरणमें कहे हैं । तीसरे अध्यायमें प्रवृत्ति और चेष्टासे हृदयगत भावकी परीक्षा कही है, जिसके जान लेनेपर उसीके अनुसार विशेष उपाय किये जाते हैं । चौथे अध्यायमें दूतीकर्मके योग्य स्त्रियां, दूतीयोंके प्रयोगके स्थल तथा उनके कार्योंका विस्तारके साथ वर्णन किया है । पांचवें अध्यायमें छोटे बड़े सभी समर्थ पुरुषोंकी साध पुजनेकी विधियां बताई हैं तथा अनेक देशोंके राजा महाराजाओंकी साध पुजनेकी बातें कही हैं । छठे अध्यायमें दो[1] प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें अन्तःपुरके प्रवेशकी तरकीबें बताई हैं तथा प्रवेशके दोष आदि भी कह दिये हैं । दूसरे प्रकरणमें बताये हुए सब कारणोंसे स्त्रियोंकी रक्षा तथा दूसरे विधानोंका वर्णन है ॥ २० ॥

गम्यचिन्ता । गमनकारणानि । उपावर्तनाविधिः । कान्तानुवर्तनम् । अर्थागमोपायाः । विरक्तलिङ्गानि । विरक्तप्रतिपत्तिः । निष्कासनप्रकाराः । विशीर्णप्रतिसंधानम् । लाभविशेषः । अर्थानर्थानुबन्धसंशयविचारः । वेश्याविशेषाश्च इति वैशिकं षष्ठमधिकरणम् । अध्यायाः षट् । प्रकरणानि द्वादश ॥ २१ ॥

छठा ‘ वैशिक ’ अधिकरण है, इसमें छः अध्याय हैं, उनमें बारह प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें वेश्याओंको अपने अर्थसाधनमें जिन पुरुषोंसे सहायता मिल सकती है तथा उन्हें कैसे नायक चाहियें, उनमें क्या गुण होने चाहियें, किन २ पुरुषोंसे उन्हें सम्बन्ध न करना चाहिये । दूसरे प्रकरणमें किस बातके लिये उसे नायकोंकी चाह करनी चाहिये एवं तीसरे प्रकरणमें अपने चाहे हुएको प्राप्त करके उसे कैसे अपनाना चाहिये यह बताया गया है । द्वितीय अध्यायमें एकचारिणी वेश्याको उचित शिक्षा दी है कि इन उपायोंसे नायकको प्रसन्न रख सकती हो । तृतीय अध्यायमें चार प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें बताया गया है कि इतने पर भी वेश्याएं किस प्रकार धन खींचती हैं, उनकी वे सब तरकीबें बताई हैं जिनसे कि वे लोगोंको खोखा कर देती हैं । दूसरे प्रकरणमें अपनेसे विमुख हुए नायककी पहिचान बताई है । तीसरे प्रकरणमें बताया है कि वेश्याएं अपनेसे हटेको किस प्रकार खींचती हैं । चौथे प्रकरणमें वेश्याएं किन २ कारणोंसे किन २ नायकोंको

---

[1] जिन्हें हम दो प्रकरण लिख रहे हैं सूत्रमें इन दोनोंका एक ही प्रकरण माना है ।

अपने पाससे दुदकार देती हैं यह सोपपत्तिक बताया है । चौथे अध्यायमें किन २ कारणोंसे अपनेसे हटे वा हटाये हुए नायकको वेश्याएं फिर फँसानेकी चेष्टाएं करती हैं वे विस्तारपूर्वक दिखाये हैं । पांचवें अध्यायमें किसीके पल्ले न बँधी हुई वेश्याओंके विशेष लाभ प्राप्त करनेकी युक्ति आदिको दिखाया है तथा और भी अनेक हितकारी उपदेश दिये हैं । छठे अध्यायमें दो प्रकरण हैं, पहिले प्रकरणमें अर्थकी प्राप्ति करनेमें होनेवाले अनर्थ, अनुबंध और उनके संशयके विचार बताये हैं । दूसरे प्रकरणमें वेश्याओंके प्रकार गिनाये हैं कि कितने प्रकारकी वेश्याएं होती हैं ॥ २१ ॥

सुभगंकरणम् । वशीकरणम् । वृष्याश्च योगाः । नष्टराग-प्रत्यानयनम् । वृद्धिविधयः । चित्राश्च योगाः । इत्यौ-पनिषदिकं सप्तममधिकरणम् । अध्यायौ द्वौ । प्रकर-णानि षट् ॥ २२ ॥

'औपानिषदिक' नामक सातवाँ अधिकरण है । इसमें दो अध्याय हैं, इनमें छः प्रकरण हैं । पहिले अध्यायमें तीन प्रकरण हैं। पहिले प्रकरणमें रूप, गुण, आयु और त्यागरूप सौभाग्य लानेके उपाय बताये हैं तथा परिचारिकाके विवाहके साथ बालिकाओंको सच्चरित्रा रखनेकी रीति आदि अनेक उपयोगी बातें बताई हैं । दूसरे प्रकरणमें अवशको अपने वश करनेके उपाय कहे हैं । तीसरे प्रकरणमें दिव्य वाजीकरण योगोंका वर्णन है । दूसरे अध्यायमें तीन प्रकरण हैं । पहिले प्रकरणमें चण्डवेगोंके प्रसन्न करनेमें असमर्थ पुरुषोंको उन्हें प्रसन्न करनेके उपाय बताये हैं । कुछ अपद्रव्योंको भी बताया है जिन्हें कि कमरमें बाँधकर रमणके समय प्रयोग किया जाता है । दूसरे प्रकरणमें लघु संभोग-साधनोंको इच्छानुसार बढ़ानेके प्रयोग लिखे हैं जो कि तिलाके स्थानमें वर्ते जाते हैं । तीसरे प्रकरणमें कुछ विचित्र अलौकिक उपाय बताये हैं जिनसे कि इष्ट प्राप्त किया जा सके ॥ २२ ॥

एवं षट्त्रिंशदध्यायाः । चतुःषष्टिः प्रकरणानि । अधि-करणानि सप्त । सपादं श्लोकसहस्रम् । इति शास्त्रस्य संग्रहः ॥ २३ ॥

इस तरह इस शास्त्रमें छत्तीस अध्याय और चौसठ प्रकरण हैं, सात अधिकरण हैं, साढे बारहसौ श्लोकका ग्रन्थ है । यह इस कामशास्त्रका सामान्य-रूपसे कथन किया है जो कि शास्त्रसंग्रहसे यहां तक दिखाया गया है ॥२३॥

षट्त्रिंशदित्यादिना स्वशास्त्रस्यावयवसमुदायाभ्यां संख्यानमाह । तत्राध्याय-संख्यानं पूर्वशास्त्रेभ्य इदं स्तोकमिति दर्शनार्थम् । प्रकरणाधिकरणसंख्यानमन्य-निरपेक्षार्थम् । श्लोकसंख्यानमहीनाधिकत्वज्ञापनार्थम् ॥

पहिले तो प्रत्येक अधिकरणके अलग २ अध्याय और प्रकरण बताये हैं फिर इस सूत्रमें सब प्रकरणोंकी अध्यायोंकी संख्या तथा प्रकरणोंकी इकट्ठी ही संख्या वता दी है कि पहिले शास्त्रोंसे हमारा शास्त्र इतने संक्षेपमें है। इसमें दूसरेकी अपेक्षा न हो इस कारण प्रकरण और अधिकरणोंकी संख्या बता दी है । कम और ज्यादाके अभावको दिखानेके लिये श्लोकोंकी संख्या वताई है कि इतना ही ह ॥

कामशास्त्रके तंत्र और आवाप भेद ।

शास्त्रं चेदं तन्त्रमावापश्चेति द्विधा स्थितम् । तत्र तन्त्र्यते जन्यते रतिर्येन तत्तन्त्रमालिङ्गनादि, तदुपदिश्यते येन तदपि तन्त्रं सांप्रयोगिकमधिकरणम् । समन्तादावाप्यन्ते स्त्रियः पुरुषाश्च येन स आवापः । समागमोपाय इत्यर्थः । स येनोपदिश्यते तदप्यावापः कन्यासंप्रयुक्तकाद्यधिकरणचतुष्टयम् । तत्र तन्त्रावा-पानुष्ठानं न साधारणानुष्ठानं विनेति प्राक्साधारणमुच्यते । औपनिषदिकं तु तन्त्रावापाभ्यामसिद्धे व्याप्रियत इत्यन्ते वक्ष्यति । तदुभयमपि तन्त्रावापान्तर्ग-तमेव, तदङ्गत्वात् । तत्र साधारणे शास्त्रसंग्रहप्रकरणमादावुक्तम्, तत्र शास्त्रस्य संगृह्यमाणत्वात् ॥ २२ ॥

तंत्र और आवाप इन दो भेदोंसे कामशास्त्र दो तरहका है । रति पैदा करनेवाले आलिङ्गन आदि 'तंत्र' कहलाते हैं, सांप्रयौगिक अधिकरणमें उनका उपदेश है इस कारण उसको भी तंत्र कहते हैं । जिन उपायोंसे स्त्री वा पुरुष सब ओरसे खींच कर प्राप्त किये जायँ वे समागमके उपाय 'आवाप' कहलाते हैं । उनका उपदेश कन्यासंप्रयुक्तक, भार्य्याधिकारिक, पारदारिक और वैशिक अधिकरणमें है इस कारण इन्हें भी आवाप कहते हैं । तंत्र और आवापका अनुष्ठान साधारणके विना नहीं हो सकता इस कारण इनसे पहिले साधारण अधिकरण कहा है । जो कार्य्य तंत्र और आवापसे नहीं होता उसके लिये 'औपनिषदिक' के प्रयोग हैं । इस कारण उसे अन्तमें कहेंगे । पर साधारण और औपनिषदिक अधिकरण, तंत्र और आवापके ही

अंग हैं इस कारण वे तंत्र और आवापके ही भीतर आजाते हैं पहले साधारण अधिकरणमें शास्त्रसंग्रहके कहनेका कारण यह है कि उसमें कामशास्त्रके सारे पदार्थोंका सामान्यरूपसे संग्रह है ॥ २३ ॥

उत्तरग्रन्थसंधानामाह--

अगाड़ीके ग्रन्थके सन्धानके लिये कहते हैं कि–

संक्षेपमिममुक्त्वास्य विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते ।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासभाषणम् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः ।

इस शास्त्रके इस संक्षेपको कह कर इसके बाद विस्तारके साथ कहेंगे, क्योंकि लोकमें विद्वानोंको सामान्य और विशेषरूपसे इष्ट है ॥ २४ ॥

संक्षेपमिति–अस्येति शास्त्रस्य । विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते संक्षेपादूर्ध्वम् । किमर्थमेवं शास्त्रविन्यास इत्यत आह–इष्टं हीति । लोके ये शास्त्रेऽधिकृतास्ते विद्वांसः । तेषां संक्षेपविस्तराभ्यां शास्त्रस्य मनसि धारणमिष्टम्, प्रज्ञातप्रकरणार्थत्वाद्सं-मोहो यथाभिलषितप्रकरणार्थप्रत्यवमर्शः स्यात् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-
कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे
प्रथमेऽधिकरणे शास्त्रसंग्रहः प्रथमोऽध्यायः ।

संसारमें शास्त्रके पूर्ण अधिकारी विद्वानोंकी रीति है कि वे पहिले सामान्य-रूपसे शास्त्रको अपने मनमें धारण करके फिर उसके विस्तारको अपने हृदयमें अवकाश देते हैं इस कारण पहिले कामशास्त्रको संक्षेपसे कहकर अब विशेष-रूपसे कहेंगे । पहिले प्रकरणका सार जाननेसे उसमें भूल नहीं होती तथ जिस प्रकरणकी इच्छा हो उसीको विचार सकता है । यह प्रकरणादिकोंके पहिले बतानेके लाभ हैं ॥ २४ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्र शर्म तनूज सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रिसर्च स्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथमा-
ध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

त्रिवर्गप्रतिपत्ति प्रकरण।

त्रिवर्गप्रतिपत्तिफलं शास्त्रम्। तस्मिन्प्रतिपत्तौ विप्रतिपत्तौ वा तदुपायपर्येषणमपि युक्तम्। तस्माच्छास्त्रसंग्रहादनन्तरं त्रिवर्गप्रतिपत्तिरुच्यत इति प्रकरणसंबन्धः।

प्रकरण सम्बन्ध—शास्त्रका फल त्रिवर्गकी प्रतिपत्ति है। त्रिवर्गकी प्रतिपत्तिके देनेवाले शास्त्रके होते चाहे प्रतिपत्ति हो चाहे न हो पर इसके उपायकी खोज करना अत्यन्त आवश्यक है। इस कारण शास्त्रसंग्रहके बाद त्रिवर्गकी प्रतिपात्ति कही जाती है याहि हेतु फलरूप संबन्ध इस प्रकरणका पूर्व प्रकरणके साथ है॥

उद्देशापेक्षया च संबन्धित्वे कथमुद्देश इति चिन्त्यम्।

संबन्धनिर्णय—शास्त्रके साथ तो साक्षात् सम्बन्ध है पर शास्त्रोद्देशके साथ साक्षात् संबन्ध नहीं है इस कारण उद्देशकी अपेक्षा संबन्ध मानने पर संक्षेपसे प्रकरण और अधिकरणोंके पदार्थोंका कहना संगठित न होगा। इस कारण इस जगह यही जानना उचित है कि, त्रिवर्गप्रतिपत्तिका साक्षात् सम्बन्ध तो शास्त्रके साथहै किन्तु पूर्व प्रकरणमें शास्त्रका संक्षेपसे अर्थाभिधान होनेके कारण उसके बाद यहां त्रिवर्ग प्रतिपत्तिका प्रतिपादन किया है।

प्रतिपत्तिस्त्रिविधा, अनुष्ठानमवबोधः संप्रतिपत्तिश्चेति। तत्र प्राधान्यादनुष्ठानमधिकृत्याह—

त्रिवर्गप्रतिपत्तिके भेद--अनुष्ठान,अवबोध और संप्रतिपत्ति ये तीन हैं। अनुष्ठान—धर्म, अर्थ और कामको पूर्ण रूपसे पानेके लिये उपाय करनेको कहते हैं। अवबोध—धर्म, अर्थ और कामको यथार्थरूपसे जान लेनेका नाम है। संप्रतिपत्ति—उन्हें भली भांति अधिकृत करलेनेका नाम है। इन तीनोंमें अनुष्ठान प्रधान है, क्योंकि विना इसके बोध मात्रसे कार्य्यसिद्धि नहीं हो सकती एवम् न संप्रतिपत्ति ही हो सकती है अतएव सबसे पहिले अनुष्ठान—का ही विचार करते हैं—

शतायुर्वै पुरुषो विभज्य कालमन्योन्यानुबद्धं परस्परस्यानुपघातकं त्रिवर्गं सेवेत॥ १॥

श्रुतियोंने पुरुषकी उमर सौ वर्षकी कूती है । विचारशील व्यक्तिको चाहिये कि, आयुके समयका उचित रीतिसे विभाग करके, धर्म, अर्थ, काम इनमेंसे कोई एक या दोके साथ हो। इस रीतिसे यदि एकका सेवन करना हो तो वह किसीका विघातक न हो इस रीतिसे धर्म, अर्थ और कामका सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

शतायुरिति–शतमायुरस्येति शतायुः । शतशब्दः सामान्यवाच्यपि वर्षगतसंख्यानमाह-वृत्तौ तथार्थस्य विवक्षितत्वात् । कालविभागार्थं चेत्तदपि विच्छिन्नायुषो विभागासंभवात् ।

शतायुः–शतका अर्थ सौ एवम् आयुका अर्थ उमर है, यह नियम है कि, संख्या संख्येयके विना नहीं रह सकती इस कारण सौसे गिनती की, सौ कोई वस्तु ही लेनी होगी, वह कुछ भी हो सकती है पर यहां 'सौ आयु जिस पुरुषकी हो' इस बहुव्रीहि[2] समासमें शत शब्दसे सौ वर्षोंका ही ग्रहण होता है, क्योंकि उसीसे मतलब है । यदि यह कहें कि समयके विभागके लिये शतशब्द है तो उसके लिये भी हो, पर जिसकी उमर सौ वर्षसे पहिले ही पूरी हो गई उसकी उमरके विभाग न हो सकेंगे[3]।

पुरुष इति–प्राधान्यख्यापनार्थम् । स्त्रीणां तु पुरुषाधीना त्रिवर्गसेवेत्यस्वातन्त्र्यम् ।

पुरुषः–त्रिवर्गकी प्रतिपत्तिमें पुरुष ही प्रधान है, स्त्रियोंकी तो त्रिवर्गकी सेवा पुरुषोंके अधीन है अतः वे स्वतंत्र नहीं हैं । इस बातको दिखानेके लिये इस शब्दका सूत्रमें प्रयोग किया गया है ।

---

१ संख्या=गणना एवम् जिनकी गणना हो उन्हें संख्येय कहते हैं । संख्या जिनकी है वह उनसे भिन्न नहीं रह सकती, यही कारण है कि कोशकारोंने संख्यावाची एक दो आदि शब्द संख्या और संख्येय दोनोंके ही वाचक माने हैं ।

२ जो जुदे २ अर्थवाले शब्द एक होकर अपने अर्थोंसे भिन्न अर्थको कहे । जैसे कि, शत और आयुके एक होने पर बना हुआ 'शतायुः' पद सौवर्षकी उमरवालेको कहता है । पुरुषका विशेषण है इस कारण 'शतायुः पुरुष' का अर्थ–सौ वर्षकी उमरवाला पुरुष है ऐसा होता है । इसीका नाम वृत्ति है। विना सौवर्ष माने केवल सौसे उचित योजना नहीं होती ।

३ इसका उत्तर इसी अध्यायके पांचवें सूत्रसे दिया है ।

विभज्य—वक्ष्यमाणेन न्यायेन।

विभज्य कालम्—वक्ष्यमाण (कहे जानेवाले) न्यायसे समयका विभाग करके, यानी धर्म, अर्थ और कामके सेवनके लिये समयका विभाग तो दूसरे तीसरे, चौथे और छठे सूत्रमें बताया है उसीके अनुसार सेवन करे।

अन्योन्यानुबद्धमिति—धर्मादीनामन्यतमं द्वाभ्यामेकेन वानुबद्धम्।

यह तो बता दिया गया कि बताई जानेवाली रीतिसे आयुका विभाग करके त्रिवर्ग सेवन करे पर यह नहीं कहा कि उन्हें सबकोही मुख्य मान सेवे वा एक २ को सेवे इसका उत्तर देते हैं कि—

अन्योन्यानुबद्ध-धर्म, अर्थ और काम ये तीनों एक दूसरेके साथ हों या एकके साथ एक वा दो हों। पीछेसे बँधे हुएको 'अनुबद्ध' कहते हैं। इस अनुबद्ध शब्दसे यह ध्वनि निकलती है कि, एक प्रधान तथा साथी अप्रधान हुआ करते हैं। इसी बातको यथा कहकर दिखाते हैं, जिसके साथ जिसका जिस रीतिसे अनुबन्ध होता है उसे समझाते हैं।

तद्यथा—प्रजार्थिनो धर्मपत्न्यामनभिप्रेतायामृतावभिगमनं धर्मोऽर्थानुबद्धः।

धर्म, अर्थसे बँधा—पुत्रार्थी पुरुष ऋतुकालमें कुप्यारी स्त्रीसे सहवास करे तो यहां उसकी उसके साथ अनिच्छा होनेके कारण काम तो नहीं कहा जा सकता पर उसे धर्म अवश्य है तथा पुत्र हो तो वह भी उसीका होगा यह अर्थ भी है, कुप्यारी स्त्रीका भी उसने अनादर नहीं किया इच्छा न होते भी उसके साथ धर्मका पालन किया अतः यहां धर्म प्रधान है, पुत्ररूप अर्थ तो आनुषंगिक है।

प्रजार्थिनोऽभिप्रेतायामृतावभिगमनं धर्मः कामानुबद्धः।

धर्म, कामसे बँधा—पुत्रार्थी पुरुष प्राणप्यारीके साथ विधिपूर्वक ऋतुकालमें संभोग करे तो उसको ऐसा करना धर्म ही है, पर यह धर्म कामके साथ है, क्योंकि वह सहवास धर्मसे प्रेरित हो कामनावश किया जाता है।

अपरिणीतस्य सवर्णादनभिप्रेतकन्यालाभोऽर्थो धर्मानुबद्धः।

अर्थ, धर्मके साथ--यदि विना विवाहे पुरुषको सर्वण पुरुषसे विना चाहा कन्यालाभ होजाय तो यह लाभ धर्मके साथ है, क्योंकि अविवाहित पुरुषको विवाहके लिये विना चाहा सवर्ण कन्याका लाभ हो जाय तो उसका मतलब धर्मके साथ पूरा हुआ । यहां अर्थ, धर्म दोनों हैं पर अर्थ प्रधान तथा धर्म गौणरूपसे है ।

परिणीतस्याधमवर्णादभिप्रेतकन्यालाभोऽर्थः कामानुबद्धः ।

अर्थ, कामके साथ--यदि वैध विवाह किये पुरुषको अधम वर्णके पुरुषसे चाही हुई कन्या मिल जाय तो यह पत्नीलाभरूप अर्थ कामसे सना हुआ है, क्योंकि उसका असवर्णाका पाणिग्रहण कामके कारण है; धर्मकी भावनाओंसे नहीं है ।

धर्मपत्न्यामभिप्रेतायां कामातुरायामनृतौ कामो धर्मानुबद्धः ।

काम, धर्मके साथ--विना ऋतुकालके भी कामातुरा परम प्रेयसीके साथ रमण करना भी काम है पर यह अधर्मका कृत्य नहीं किंतु धर्मका ही कार्य्य है । यहां न तो सन्तानकी ही प्राप्ति है एवम् न सहवास करनेवाला पुरुष आतुर ही है किन्तु वह सहवासके कामसे बरी भी नहीं है अतः यह काम धर्मके साथ है ।

परिणीतस्य निष्किंचनस्याधमवर्णायामर्थवत्यामभिप्रेतायामधिगतायां कामोऽर्थानुबद्धः । इत्येकानुबद्धाः ॥

काम, अर्थके साथ--विवाहित हो किन्तु हो कुछ भी न; ऐसे पुरुषको चाही हुई चाहनेवाली धनवाली अधमवर्णा प्राप्त हो जाय तो उसका यह धन लाभ कामसे ही हुआ है अत एव यह काम स्त्री और धन प्राप्तिरूप अर्थके-साथ है । ये एकके साथ होनेवाले एक दिखा दिये हैं, इस तरह ये सब मिलकर छः हो जाते हैं ।

अपरिणीतस्य सवर्णायामनन्यपूर्वायामभिप्रेतायां यथाविधिसंयोगो धर्मोऽर्थकामानुबद्धः ।

धर्म, अर्थ और कामके साथ--अविवाहित पुरुषका चाही हुई निर्दोष सवर्णाके साथ विधिपूर्वक संयोग करना धर्म है पर यह अर्थ और कामके साथ

है । क्योंकि उसकी इच्छा भी है और औरस पुत्रोत्पात्ति आदि फल भी है । ऐसी स्त्रीके साथ व्याह करनेसे धर्मशास्त्र धर्म बताते हैं ।

तस्यैवाभिप्रेतसवर्णकन्यालाभोऽर्थो धर्मकामानुबद्धः ।

अर्थ, धर्म कामके साथ--अविवाहित पुरुषको इच्छित सवर्ण कन्या मिल जाय तो यह उसका अर्थ, धर्म और कामके साथ है, क्योंकि अविवाहितका चाही हुई सवर्ण कन्याके साथ विवाह होजाय तो उसका अर्थ (मतलब) पूरा होगया। चाही मिली यह काम भी पूरा हुआ एवम् अविवाहितको सवर्णा सुयोग्य कन्याके साथ विवाह कर लेना धर्म ही है, इस तरह उसका यह अर्थ, काम और धर्म दोनोंको साथ लिये हुए है ।

तस्यैवार्थरूपवत्यां परस्परोत्कण्ठयोद्वाहितायां कामो धर्मार्थानुबद्धः । इति द्व्यनुबद्धाः ।

काम, धर्म और अर्थके साथ–अविवाहित पुरुष जिसके कि कुछ न हो उसका चाही हुई चाहनेवाली धनी रूपवती कन्यासे उस समय विवाह हो जब कि एक दूसरेके लिये उत्कंठित हों तो यह काम, धर्म और अर्थ दोनोंको साथ लिये हुए हैं। दोको साथ लिये हुए एकके तीन उदाहरण दिखा दिये हैं ।

परस्परस्यानुपघातकमिति । यत्रानुबन्धो नास्ति तत्रैकमितरयोरनुपघातकम्, एकानुबन्धे चान्यस्यानुपघातकं सेवेत । अत्रोदाहरणं वक्ष्यामः ॥ १ ॥

परस्परस्यानुपघातकम्–आपसमें एकका एक घातक न हो इसका तात्पर्य्य यह है कि परस्परके उपघातक उस समय न हों जब कि किसीको साथ न लिये हुए हों ऐसा न हो कि एकके साधनमें दूसरेका विघात होता हो इस कथनका यही तात्पर्य्य होता है कि धर्म, अर्थ और काम इनमेंसे जिस किसीका सेवन किया जाय वह इसरूपमें किया जाय कि जहां उससे अन्योंका कोई विघात न हो । यदि कामके सेवनमें धर्म और अर्थ नष्ट होते हों तो यह सेवन किसी भी अर्थका नहीं है । हम इसी विषयपर उदाहरण भी कहेंगे ॥ १ ॥

कालविभाग ।

वयोद्वारेण कालविभागमाह–

अवस्थाके द्वारा कालका विभाग कहते हैं कि–

बाल्ये विद्याग्रहणादीनर्थान् ॥ २ ॥

बाल्य अवस्थामें विद्योपार्जन आदिक बाल्योचित अर्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

बाल्य इति--वयोविभागस्तन्त्रान्तर उक्तः--'आ षोडशाद्भवेद्बालो यावत्क्षीरान्नवर्तनः । मध्यमः सप्ततिं यावत्परतो वृद्ध उच्यते ॥' इति । विद्याग्रहणमादिर्येषामर्थानां तान्सेवेतेति ॥ २ ॥

बाल्य-बालककी अवस्थाको बाल्य कहते हैं, इसके कहनेसे सूत्रकारने आयुका विभाग कर दिया, बालक अवस्था कितने वर्ष तक रहती है यह बात वैद्यकशास्त्रने बताई है कि-" बालक जन्म लेकर एक वर्षतक केवल दूधतथा दो वर्षतक दूध और अन्न तथा इससे आगे अन्नभोजी कहलाता है इस तरह दूधसे लेकर अन्न तक पहुँचनेवाले मनुष्यमात्र सोलह वर्ष तक बालक कहाते हैं । सत्तर वर्षतक मध्यम[२] एवम् इसके बाद उनकी गणना वृद्धोंमें हुआ करती है । " विद्याग्रहण है सर्व प्रथम जिन अर्थोंमें ऐसोंको[१] बाल्यपनेमें संपादन कर लेना चाहिये ॥ २ ॥

---

१ सूत्रमें ' विद्याग्रहणादीन् ' यह पद है, ग्रहणका उपार्जन अर्थ किया है । विद्याका ग्रहण यानी उपार्जन जिनमें आदि पहला हो वे अर्थ विद्याग्रहणादि कहाते हैं । बाल्यकालमें सबसे पहिले विद्या ग्रहण करे बाद दूसरे अर्थोंपर ध्यान दे यह न हो कि विद्या न पढ़े मूर्ख रहै ॥

२ मध्यमके चार भेद होते हैं । सोलहसे बीस तक धातु इन्द्रिय और ओज आदिकी वृद्धि होती है बीससे सत्तर तक मध्य यह वाग्भट्ट मानते हैं, सोलहसे बत्तीस तक युवा, तेतीससे ४० तक परिपूर्ण धातु तथा चालीससे सत्तर तक धातु आदि क्षय होते २ सत्तर तक वृद्धके रूपमें पहुँच जाते हैं । रतिरहस्यके सामान्य धर्माधिकारके पहिले श्लोकमें तथा पंचशायकके द्वितीय शायकमें १५ वें श्लोकमें लिखा है कि-" बुद्धिमान् लोग सोलह वर्षकी आयुको बाला, तथा २० से तीस वर्ष तक तरुणी एवम् तीससे पचास तक प्रौढा एवम् इसके आगे वृद्धा कहते हैं । यह पहिला हिसाब था जब कि पूर्णायु थी पर आज तो ८ वर्षकी आयुसे दुनियादारीमें लगीं एवम् १३ वर्षकी आयुसे पहिले सन्तान पैदा कर लेनेवालीं कलिकालकी पुजारिन तीससे ही पहिले बुड्ढियोंसे भी गई बीती होकर बैठ जाती हैं ऐसे समयमें ये भेद चलाना जरा टेढी खीर हो गया है अतएव हिन्दीके कवियोंका इस विषयमें रवैया बदल गया है । आजके हिन्दीके कवियोंने १७ से बीस तककी मध्या तथा इससे आगे प्रौढा मान लिया है । हमारी समझमें तो संप्रयोग आदिकी चातुरी आदिको लेकर ये-

एवम्—

कामं च यौवने ॥ ३ ॥

और कामका सेवन युवावस्थामें करना चाहिये ॥ ३ ॥

तदोचितत्वात् ॥ ३ ॥

क्योंकि कामका सेवन करना युवावस्थामें ही उचित है । इससे यह सिद्ध हो गया कि १६ वर्षसे पहिलेका बाल्यकाल तथा क्रमप्राप्त वार्धक्य, कामके सेवनका मुख्य समय नहीं है ॥ ३ ॥

स्थाविरे धर्मं मोक्षं च ॥ ४ ॥

वृद्धावस्थामें धर्म और मोक्षका सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

स्थाविरे धर्ममोक्षावनुभूतविषयत्वात् । मोक्षग्रहणं परमतापेक्षम्, ज्ञानवादिनां चतुर्वर्गः पुरुषार्थः, अस्मिन्नेव काले तैरप्याध्यात्मिकं चिन्त्यमिति ।

युवावस्थामें विषयोंका तो अनुभव कर चुकता है फिर उसके सामने धर्म और मोक्ष ही रह जाते हैं उनके लिये वृद्धावस्था है । इसी कारण वृद्धावस्था इन दोनों कामोंके लिये बताई है । यद्यपि इनके यहां त्रिवर्ग प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ है वार्धक्यमें धर्मोपार्जनका ही समय रह जाता है उसे केवल धर्म ही रखना था फिर धर्मके साथ सूत्रकारने मोक्षका उपादान उनके मतसे किया है जो कि वेदान्ती धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गको पुरुषार्थ मानते हैं । उनके लिये भी यही वार्धक्य अध्यात्मके चिन्तनका समय है इसी समयमें उन्हें भी अध्यात्म चिन्तन करना चाहिये ।

—व्यवहार किये गये हैं। इसमें मध्यम मध्या एवम् चण्डूल प्रगल्भा कहाती है, इसीको प्रौढा भी कह डालते हैं । साहित्यदर्पण तृ० प० १०५ कारिकाकी व्याख्यामें जीवानन्दजी विद्यासागर विएने तो मध्याका विवरण ‘ शैशव यौवनयोरन्तरालावस्थां प्राप्ता ’ यानी शैशव और यौवनके बीचकी अवस्थाको प्राप्त हुई स्त्री मध्यमा कहाती है ऐसा कहा है । पर हमें इसमें उनकी अत्यन्त भूल मालूम होती है, क्योंकि १६ वर्ष तक तो बाल्यकाल ही है फिर किशोर वयके बाद तारुण्य आता है । जब वे तारुण्यके प्रारंभमें मुग्धा बता आये हैं तो फिर मध्याका समय मुग्धावस्थासे भी पहिले बताना भूल नहीं तो क्या है । सत्रहवें वर्षके प्रारंभसे २० तक मध्या एवम् इससे आगे प्रौढा मानना कुछ ठीक जचता है । साहित्यिक यौवन और चातुरी आदि लेकर ही मुग्धा मध्या प्रौढा आदि व्यवहार करते मालूम होते हैं । यदि भारतके प्राचीन आचार विचार हों तो आयुविभाग अब भी प्राचीन ही हों ।

ननु त्रिवर्गस्य नियतकालत्वादन्योन्यानुबन्धो नास्ति, ततश्चासेवनप्रसङ्ग इति । नायं नियमः, अनुबद्धत्वाभावे निरनुबद्धमप्युक्तम् ॥ ४ ॥

इसपर यह शंका होती है कि जब आपने अर्थ, काम और धर्मके सेवन करनेका समय नियत कर दिया तो आपने जो पहिले सूत्र यह कहा है कि– "इनमेंसे परस्परमें एक दूसरेके साथ सेवन किया जाय" यह कैसे बन सकेगा? क्योंकि इस समय विभागके कारण एकके साथमें दूसरोंका सेवन न बन सकेगा। उसका उत्तर देते हैं कि–"यही कोई नियम नहीं कि इन इन समयोंमें इन्हींका सेवन किया जाय किन्तु इन सूत्रोंसे अनुबन्धके बिना अकेलोंका सेवन भी कह दिया है कि इन समयोंमें ये अकेले भी सेवे जा सकते हैं" पर अकेलेका सेवन करती बार पूर्व सूत्रके इस वाक्यका स्मरण रखना चाहिये कि इस अवस्थामें किसीका बाध न होता हो ॥ ४ ॥

अथवा यथाकालमहन्यहनि सेवा, प्रतिषेधपरत्वाद्धर्मादिनियमस्य । यथाकालं धर्मादिषु सेव्यमानेषु यद्यनुषङ्गादितरानुबन्धः, भवतु न दोषाय–

इस पक्षमें यह शंका होती है कि आपने इसे नियमके रूपमें तो न रखा पर मिश्र उपासनाका समय तो कोई भी नहीं बतलाया, न इनके विभागसे कोई काल बाकी रहा जिसमें कि मिश्र उपासना हो सके, क्योंकि बाल्य विद्यादि अर्थोंका, यौवन कामका एवम् वार्धक्य धर्मके सेवनका समय हो गया। एककी दूसरोंको साथ लिये हुए उपासनाका समय तो कोई बाकी ही नहीं रहा है जिसमें मिश्रोपासना हो इस शंकाको लेकर कहते हैं कि– अथवा प्रतिदिन समय समय पर धर्म, अर्थ, काम सभीकी उपासना किया करे यह जो पूर्वोक्त नियम है इसका इतना ही तात्पर्य है कि जब जिसका समय है उससे विरुद्धाचरण न करे, यानी धर्म करनेकी जो आयु बताई है उसमें अधर्म, कामकी आयुमें द्वेष, एवम् विद्यादि अर्थोंके उपार्जनके समय अनर्थ न करे, एतावन्मात्र ही नियमका तात्पर्य है नियम दूसरेकी उपासनाका निषेध नहीं करता। यदि समय विभागके अनुसार धर्मादिकोंके सेवन

---

१ इस कामसूत्रमें आयुके विभागके अनुसार एक एक एवम आयुको अनित्य समझ सबकी मिश्र उपासना करे ये दो सिद्धान्त ठहराये हैं। चौथे सूत्रकी टीकाके समाप्त होने पर पांचवें सूत्रसे पहिले जो टीकाकारके अक्षर हैं ये दोनों सूत्रोंकी एकवाक्यता कराते हैं कि मुख्यरूपसे आयुविभागसे सेवन किये जानेवाले पुरुषार्थोंके समय यदि दूसरोंका भी सेवन हो सके तो उसे भी करे। प्रतिदिन समय विभागसे तीनोंका सेवन हो यह रोचक सिद्धान्त है,–

करते करते यदि प्रसंग वश दूसरेका भी सेवन कर लिया जाय तो कोई दोष नहीं होता । यह बात कहांसे जानी जाय कि प्रतिदिन अपने २ समय पर सबका सेवन करना चाहिये इस बातको दिखानेके लिये अगिला सूत्र करते हैं-

अनित्यत्वादायुषो यथोपपादं वा सेवेत ॥ ५ ॥

अथवा आयु अनित्य है इस कारण जिस समय जो पुरुषार्थ बन जाय उसका उसी समय सेवन कर ले ॥ ५ ॥

अनित्यत्वादिति—वर्षशतादर्वाग्विनाशदर्शनात् । यथोपपादमिति—यद्यदोपपद्यते तदा सेवेत । बाल्येऽर्थम्, धर्ममपि । यौवने कामम्, धर्मार्थावपि । स्थाविरे धर्मं, अर्थकामानुष्ठानसामर्थ्यं चेत्तावपीति । अन्यथैकसेवायामसमग्रः पुरुषार्थः स्यात् ।

आयुको अनित्य कहनेका यही तात्पर्य्य है कि वह पूरी सौ वर्षकी भी नहीं हो पाती इससे पहिले ही लोग मरते देखे जाते हैं, इस कारण यदि विद्या ग्रहणके समय बाल्य कालमें अर्थ और धर्म भी सेवन किये जा सकें तो उनका भी सेवन कर ले । इसी तरह यौवनमें कामके सेवनके लिये कहा है यदि धर्म और अर्थका भी सेवन कर सके तो कर ले । बुढापेमें धर्मके सेवनके लिये कहा है यदि उसमें अर्थ और कामके अनुष्ठानकी शक्ति हो तो उनका

—स्मृतिकारोंको भी यही इष्ट है, महाकवि श्रीभारविने अपने किरातार्जुनीय काव्यके प्रथम सर्गके ११वें श्लोकमें इस विषयपर थोड़ासा प्रकाश भी डाला है कि "असक्तमाराधयतो यथायथं विभज्य भक्त्या समपक्षपातया । गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान् न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्॥" महाभारत इतिहासके प्रसिद्ध महाराज दुर्योधनकी रहनसहनके बारेमें इस श्लोकसे प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि—महाराज यथायोग्य समयका विभाग करके धर्म, अर्थ और काम ये तीनों ही एकसे सेव्य हैं इस समताकी भावनासे यथा समय तीनोंकी आराधना असक्त होकर करते थे । इस कारण ये तीनों आपसमें एक दूसरेको बाधा नहीं पहुँचाते थे । इस बातपर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि इन तीनोंका आपसमें न बाधनेका यह कारण है कि गुणी दुर्योधनमें रहनेका लोभ हो गया है इससे उन्होंने मित्रता गांठ ली है कि इस महापुरुषके पास तीनों बने रहें । कठिन काव्योंके प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय मल्लिनाथजीने अपनी टीकामें कहा है कि—" धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः । यो ह्येकसक्तः स जनो जघन्यः॥" प्रतिदिन समय विभागसे धर्म, अर्थ और काम तीनोंका ही सेवन करना चाहिये, इनमेंसे जो एकमें आसक्त होता है वह जघन्य पुरुष है । इस सबसे यह सुतरां सिद्ध होता है कि मिश्रोपासना सर्वोत्तम है ॥

भी सेवन कर ले। अन्यथा एककी सेवामें पूरा पुरुषार्थ नहीं होता, क्योंकि जिसका सेवन नहीं होता वह बाकी ही रह जाता है।

सेवेतेति पुनर्वचनं पूर्वस्मात्पक्षात्पक्षान्तरा[द]र्थम् ॥ ५ ॥

पहिले सूत्रसे सेवेतकी अनुवृत्ति आही रही थी फिर यहां 'सेवेत' कहनेका यही तात्पर्य है कि, ग्रन्थकारको यहां उस सिलसिलेसे कुछ दूसरी बात कहनी है ॥ ५ ॥

विद्याकालमें ब्रह्मचर्य्य।

अन्यस्मिन्पक्षे विद्याग्रहणार्थस्य सेवायाः कालत्रयेऽप्यसंभवान्नियमयति–

इस पक्षमें जब कि कोई समयकी व्यवस्था नहीं है तो विद्या ग्रहणके लिये की जानेवाली सेवा तीनों कालोंमें न हो सकेगी, क्योंकि कामीपन और विद्याका तो वैर है इस कारण छठा सूत्र करके नियम करते हैं कि–

ब्रह्मचर्य्यमेव त्वा विद्याग्रहणात् ॥ ६ ॥

जबतक विद्याका ग्रहण न कर ले तबतक तो ब्रह्मचर्य्यका ही पालन करे ॥ ६ ॥

यावद्विद्या न गृह्यते तावत्कामं न सेवेत, अन्यथा ह्यधर्मः, तद्ग्रहणविघातः, विद्यार्थलाभाभावश्च। भूम्याद्यर्जने तु न नियमः।

जबतक विद्या न प्राप्त कर ले तबतक कामका सेवन न करे। यदि विद्यार्थी-अवस्थामें ब्रह्मचर्य्यको नष्ट करके कामका सेवन करेगा तो उसे अधर्म होगा एवम् दुर्व्यसनमें फँस जानेके कारण विद्याका ग्रहण न कर सकेगा। इस कारण विद्यासे होनेवाले अर्थलाभसे भी वह सदा वंचित रहेगा। पर यह नियम भूमि आदिके संपादन करनेमें नहीं है कि विद्याके ग्रहणके कालमें भूमि आदिक अर्थोंका भी संपादन न करे।

---

१ पहिले सूत्रमें कह चुके हैं कि अल्पायु पुरुषोंके लिये पांचवां सूत्र है। पर इस पांचवें सूत्रमें अवस्थाके विभागसे पुरुषार्थोंके सेवनका क्रम नहीं रखा है। इसी कारण सेवनार्थक सेवेत की पूर्व अनुवृत्ति छोड़कर इस सूत्रमें 'सेवेत' पदका फिर उपादान किया है।

२ वेदकी शिक्षाओंमें विद्यार्थियोंके लिये लिखा है कि विद्यार्थियोंको स्त्रियोंसे राक्षसियोंकी तरह डरना चाहिये।

३ वामन भगवान् इसी समय भूमिदान मांगने गये थे तथा याज्ञवल्क्य एवम् वरतन्तुके शिष्योंकी भी यही बात देखी जाती है।

अन्ये तु विद्याग्रहणवर्जं प्रायेण भूम्याद्यर्जनं न संभवति. अतस्त्रयस्त्रिंशदब्दाश्चत्वारश्च मासा इति प्रत्येकं वयो विभज्य योजयन्ति ।

कोई कोई तो—यह प्रायिक बात है कि विद्याके समय भूमिका अर्जन नहीं हो सकता इस कारण सौवर्षमें तेंतीस वर्ष चार माहकी बाल्यअवस्था तथा इससे आगे छयासठ वर्ष आठ माह तक मध्यमावस्था एवम् इससे आगे सौवर्ष तक वृद्धावस्थाका विभाग कर योजना करते हैं ।

अस्मिन्विभागे षोडशवर्षादूर्ध्वं कामस्य भावात्, बाल्येऽपि धर्मार्थकामान्सेवेतेत्युक्तमनुष्ठानम् ॥ ६ ॥

इस विभागमें बाल्यकाल ३२ वर्ष ४ माहका हुआ तथा पाहिले विभागमें बाल्यकाल १६ वर्षका बताया है अतः वह काल इसके भीतर आगया है, इस विभागमें सोलह वर्षके बाद ही कामके सेवनका समय होता है इस सोलहके भीतर तो विद्याग्रहणका समय है । कोई २ गुरुआज्ञासे भूमि आदिका अर्जन करते भी देखे जाते हैं पर कामको नहीं, इसी कारण कहा है कि सोलह वर्षके बादके बाल्यकालमें भी धर्म, अर्थ और कामका सेवन किया जा सकता है यह समय विभागसे त्रिवर्गका अनुष्ठान बता दिया ॥ ६ ॥

अवबोध ।

अवबोधोऽपि । स्वरूपं यतश्च परिज्ञातं तदुभयमप्याह—

धर्म, अर्थ और कामके अनुष्ठानका समय बतादिया पर वह इनका यथार्थ ज्ञान हुए विना नहीं हो सकता इस कारण इन तीनों पुरुषार्थोंका स्वरूप एवम् जिनसे उस स्वरूपका ज्ञान पैदा किया जा सके उन दोनोंको इस प्रकरणमें कहते हैं ।

धर्मका स्वरूप ।

अलौकिकत्वाददृष्टार्थत्वादप्रवृत्तानां यज्ञादीनां शास्त्रात्प्रवर्तनम्, लौकित्वाद्दृष्टार्थ त्वाच्च प्रवृत्तेभ्यश्च मांसभक्षणादिभ्यः शास्त्रादेव निवारणं धर्मः ॥ ७ ॥

---

१ आयुके विभाग कई प्रकार देखे जाते हैं। छा० उ० में २४–४४ और ४८ से विभाग किये हैं । मनुने चार भाग किये हैं ।

अलौकिक होनेसे एवम् फलके अदृष्ट होनेसे अप्रवृत्त यज्ञादिकोंका शास्त्रसे प्रवर्तन होता है । लौकिक होनेसे तथा प्रत्यक्ष फलवाले होनेके कारण प्रवृत्त हुए मांस भक्षणादिकसे शास्त्रसे ही निवारण होता है । इसीका नाम धर्म है ॥ ७ ॥

अलौकिकत्वादिति—तत्र लोके रूपादिवदविदितस्वरूपत्वादलौकिका यज्ञादिय: । ननु विशिष्टद्रव्यगुणकर्मात्मकत्वाद्विदितस्वरूपाः कथमलौकिका इत्यत आह—अदृष्टार्थत्वादिति—तेषामनन्तरं फलस्यादर्शनात् ।

जैसे रूप आदिक संसारी पदार्थ देखनेमें आते हैं उसी तरह ये देखनेमें नहीं आते इस कारण इनके स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, अतएव यज्ञ आदिक अलौकिक कहाते हैं । यदि यह कहो कि, निराले द्रव्य, गुण और कर्मरूपी ही यज्ञ आदिक हैं वे सब देखने सुननेमें आते हैं फिर यज्ञादिक अलौकिक क्यों कहे जाते हैं तो नहीं कह सकते, क्योंकि इसी शंकाको लेकर दूसरा हेतु दिया है कि, इनका उसी समय करनेके साथ ही फल नहीं देखा जाता जैसा कि, लौकिक कार्य्योंका दीखता है ।

येऽदृष्टफलाः सन्तोऽलौकिका न ते प्रेक्षावद्भिरदृष्टसामर्थ्यौषधिवत्प्रवर्त्यन्त इत्यप्रवृत्ताः । आदिशब्दात्तपश्चरणादयः । तेषामप्रवृत्तानां शास्त्रात्प्रवर्तनं धर्म इति । अयं प्रवृत्तिरूपो धर्मः ।

जो अदृष्ट फलवाले होकर अलौकिक हैं उनमें बुद्धिमान्, मनुष्य ऐसे प्रवृत्त नहीं होते जैसे कि, अदृष्ट (न देखी हुई) सामर्थ्यवाली औषधियोंमें प्रवृत्त होते हैं, इस कारण यज्ञ आदिकोंके साथ अप्रवृत्त विशेषण लगाकर अप्रवृत्त कहा है । आदि शब्दसे तपचर्य्या आदिक धार्मिक कृत्योंका ग्रहण होता है । उन अप्रवृत्त तपचर्य्या आदिकोंका शास्त्रसे प्रवर्तन होना ही धर्म है । यह प्रवृत्तिरूप धर्म है ।

लौकिकत्वाद्दृष्टार्थत्वादिति । ये दृष्टतृप्त्यादिफलाः सन्तो लौकिकास्ते तदर्थिभिर्मृगादिमांसभक्षणवत्प्रवर्त्यन्ते । तस्मात्प्रवृत्तेभ्यश्च मांसभक्षणादिभ्यः । आदि शब्दात्सत्त्वाभिद्रोहपरस्वादानादिभ्यः । शास्त्रादेव निवारणं प्रतिषेधनमिति । अयं निवृत्तिरूपः ॥ ७ ॥

जो कि तृप्ति आदि प्रत्यक्ष फलवाले होकर लौकिक हैं वे उनके चाहनेवालोंसे मृगादिकोंका मांस भक्षणकी तरह किये जाते हैं । इस कारण प्रवृत्त हुए

मांसभक्षणादिकोंसे शास्त्रसे ही निवारण होता है। मांसभक्षणादिके साथ आये हुए आदि शब्दसे जीवोंके साथ द्रोह, दूसरेके धनके हरण आदि दुष्कर्मोंका ग्रहण हो जाता है, क्योंकि इनसे भी शास्त्रसे ही निवारण होता है कि, इन कार्मोंको मत करो। यह निवृत्तिरूप धर्म है ॥ ७ ॥

धर्मका ज्ञान।

कथमत्र शास्त्रं प्रमाणमिति चेदुत्तरत्र वक्ष्यति—

धर्मके विषयमें शास्त्रका ही प्रमाण क्यों लेते हो इसका उत्तर उत्तरके सूत्रमें कहते हैं कि–

तं श्रुतेर्धर्मज्ञसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ ८ ॥

उस धर्मको श्रुतिसे तथा धर्मके जाननेवालोंके साथसे जानना चाहिये॥८॥

तमित्युक्तस्वरूपं धर्मम्। श्रुतेरिति—स्मृत्यनुगताद्वेदात्, योऽधिकृतः शास्त्रे अनधिकृतो वा धर्मज्ञसमवायात्। श्रुतिस्मृत्यर्थतत्त्वज्ञसंसर्गादित्यर्थः। प्रतिपद्येतावबुध्येत ॥ ८ ॥

जिस धर्मका सातवें सूत्रमें लक्षण बताया है उसे, जिसके कि अनुसार चलनेवाली स्मृतिकी मान्यता होती है उस साङ्गवेदसे वह मनुष्य जान ले जो कि, इसका अधिकारी हो। जो कि इसका अधिकारी नहीं है उसे चाहिये कि श्रुति स्मृतिके यथार्थ तत्त्वके जाननेवाले योग्य विद्वानोंके संसर्गसे जान ले। अवबोधका अधिकार चल रहा है इस कारण ज्ञानरूपा ही प्रतिपत्ति है ॥८॥

अर्थका स्वरूप।

विद्याभूमिहिरण्यपशुधान्यभाण्डोपस्करमित्रादीनामर्जनमर्जितस्य विवर्धनमर्थः ॥ ९ ॥

अथक स्वरूपको बताते हैं कि विद्या, भूमि, हिरण्य, पशु, धान्य, भाण्डोपस्कर और मित्रादिकोंका संपादन करना एवं इकट्ठे किये हुए इनको बढ़ाना ही अर्थ है ॥ ९ ॥

विद्या आन्वीक्षिक्यादयः। भूमिः कृष्टा, कृष्या वा। हिरण्यं सुवर्णादि। पशुर्हस्त्यश्वादिः। धान्यं पूर्वमध्यावरवापः। भाण्डोपस्करं गृहोपकरणं लोहकाष्ठमृद्विदलचर्ममयम्। मित्रं सहपांशुक्रीडितादि। आदिशब्दाद्वस्त्राभरणादयः।

विद्या शब्दसे आन्वीक्षिकी आदिक विद्याओंका ग्रहण है। सुने हुए शास्त्रकी परीक्षाको अन्वीक्षा कहते हैं; जिसका अन्वीक्षा प्रयोजन हो उसे आन्वीक्षिकी

कहते हैं । इसमें मीमांसा, तर्कशास्त्र आदि सभी आजाते हैं । आदि शब्दसे दण्डनीति आदि विद्याओंका भी ग्रहण हो जाता है । भूमि या तो खेती करने योग्य बनाई जा सके या जिसमें खेती हो रही हो वह होनी चाहियें ऊसर आदिकी प्राप्ति भूमिकी प्राप्ति नहीं कहा जा सकती । सोने चांदी आदिको हिरण्य कहते हैं । हाथी, घोडे, गऊ, भैंस आदिक पशु कहलाते हैं । धान्य शब्द व्रीहिके पर्यायमें आया है इससे कहीं वही अकेला न समझलिया जाय इसकारण टीकाकार विवरण करते हैं कि पूर्व २ मध्य और अन्तकी फसलोंपर बोये जानेवाले सभी अन्नोंका धान्य शब्दसे ग्रहण होता है । (५--२--४ के सूत्र पर महाभाष्यकारने व्रीहि, यव, मसूर, गोधूम, मूंग, उडद, तिल, चना, चीनी, कांगुनी, कोंदू, मकोय आदि सत्रह अन्नोंका धान्य शब्दसे ग्रहण किया है) घरके उपकरण बर्तन भांडे आदिक हैं, वे लोहे काठ मिट्टी विदल यानी बाँसकी बनी चीजें ओखली मूसल चाकी चकला आदि और मिट्टीके घड़े आदि, चर्मके कुप्ये आदि हुआ करते हैं । मित्र दो प्रकारके होते हैं एक तो कार्य्यमित्र है एवं एक सहज मित्र है । मतलबी यारोंकी तो रक्षाकी आवश्यकता ही क्या है वे तो गर्ज सरते गर्जी बने ही रहेंगे पर दूसरे जो सहज मित्र हैं वे या तो उदार हृदयके कृपालु पुरुष हों या धूलिमें साथ खेले हुए लँगोटियां हों जो कि अपनेको अभिन्न समझें । मित्रादिमें जो आदि शब्द है इससे वस्त्र और आभरण आदिकोंका ग्रहण होता है ।

अर्जनं द्विविधम्—निष्पन्नानां हस्त्यादीनां स्वीकरणम्, अनिष्पन्नानां धान्यादीनां निष्पादनम् । अर्जितस्येत्येकवचनमेकैकस्य द्रव्यस्यार्जनवर्धनयोरन्वर्थोपदर्शनार्थम्, अन्यथा समुदायस्यैवार्जनं वर्धनं चार्थः स्यात् । वर्धनमुपचयभोगादिव्यापारदर्शनार्थम्, तयोः शास्त्रेणोपदिश्यमानत्वात् ॥ ९ ॥

अर्जन दो प्रकारका है, एक तो प्राप्त हुये हाथी घोड़े आदिकोंका स्वीकार करना है तथा दूसरा निष्पन्न न हुए धान्य आदिकोंका निष्पादन करना है । सूत्रमें जो 'आर्जितस्य' यहां षष्ठी विभक्तिका एकवचन आया है वह सूत्रमें आई हुई विद्या, भूमि आदि एक एक द्रव्यके साथ ही साथ अर्जन और वर्धनके उपदेशके लिये है, यदि ऐसा न करोगे तो उन सबके समुदायका एक ही साथ अर्जन करे ऐसा सूत्रार्थ हो जायगा। वृद्धि एवं भोग आदिक व्यापार दिखानेके लिये वर्धन शब्द दिया है इसका यह मतलब नहीं है कि, उन्हें बढाता ही रहे किसी भी काममें न लाये, क्योंकि शास्त्रने अर्थोंके उपचय और भोगादि व्यापारका उपदेश दिया है ॥ ९ ॥

अर्थके स्वरूपका ज्ञान।

तमध्यक्षप्रचाराद्वार्तासमयविद्भ्यो वणिग्भ्यश्चेति ॥ १०॥

अर्थको–धनियोंके व्यवहारसे अर्थशास्त्र वा उसके सिद्धान्तके जाननेवालोंसे और वणिजोंसे जानना चाहिये ॥ १० ॥

अध्यक्षाः प्रचरन्त्यनेनेत्यध्यक्षप्रचारः । वार्ता शास्त्रम् । तस्माच्छास्त्रेयोऽधिकृतः,इतरश्च वार्तासमयविद्भ्यः कृषिपाशुपाल्यवणिज्यादितत्त्वविद्भ्यः । वणिग्भ्य इत्युपलक्षणार्थम्, कर्षकेभ्यो गवादिपोषकेभ्यश्च प्रतिपद्येतेत्येवम् ॥ १० ॥

धनी जिस व्यवहारसे चलें उसका नाम अध्यक्षप्रचार है । कोई कौटिल्यशास्त्रके अध्यक्षप्रचार नामके प्रकरणको लेते हैं पर टीकाकारको वह इष्ट नहीं है नहीं तो अध्यक्षप्रचारको उल्लिखित व्युत्पत्ति न करता, कि धनी जिस प्रचारसे चलें । सूत्रके वार्ता शब्दका अर्थ, शास्त्र है। समयका अर्थ, सिद्धान्त है । यानी जो शास्त्रके अधिकारी हैं वे शास्त्रसे जान लें एवम् जो अधिकारी नहीं हैं वे कृषि, पशुपालन और वाणिज्य आदिके तत्त्व जाननेवालोंसे जान-ले अथवा व्यापार करनेवाले कृषक एवम् गौ आदिके पोषकोंसे जान लें । सूत्रमें आया वणिक् शब्द अपना अर्थ दिखाता हुआ कृषक आदिका भी बोधन करता है ॥ १० ॥

कामका स्वरूप ।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ॥११॥

आत्मासे संयुक्त हुए मनसे अधिष्ठित, श्रोत्र, त्वच्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन्द्रियकी अपने २ विषयमें अनुकूलरूपसे प्रवृत्तिको काम कहते हैं ॥ ११ ॥

त्वगिति कार्येन्द्रियम् । कामो द्विविधः, सामान्यो विशेषश्च । तत्र सामान्यमाह–आत्मसंयुक्तेन मनसेति । आत्मा समवायिकारणम्, सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नादिगुणानां तत्र समवायात् । तत्र यदास्य प्रयत्नगुण उत्पद्यते तदायं मनसा संयुज्यते, मन इन्द्रियेण इत्यनेन क्रमेणाधिष्ठितानाम् । स्वेषु स्वेष्विति–तथाक्रमं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेषु । आनुकूल्यत इति । यदात्मनः शब्दादीन्विषयान्भोक्तुमिच्छा भवति तदा प्राप्याप्राप्यकारिणां श्रोत्रादीनां बुद्धीन्द्रियाणामानुलोम्येन या प्रवृत्तिः ।

सामान्य काम–सूत्रमें आया हुआ त्वच् शब्द त्वगिन्द्रियका बोधक होत हुआ उन कार्येन्द्रियोंका उपलक्षक है जो कि कामके कार्य साधनमें उपयोगी हुआ करती हैं, जैसा कि १२ वें सूत्रकी टीकामें 'उपस्थेन्द्रिय' को वताते हुए दिखाया है। सामान्य और विशेष भेदसे काम दो प्रकारका है। इन दोनोंमें पहिले सामान्य कामको कहते हैं, कि जब आत्माकी शब्दादिक विषयोंके भोगनेकी इच्छा होती है तो उस समय आत्माका प्रयत्न गुण उत्पन्न होता है क्योंकि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्नादिक गुण आत्मामें समवाय सम्बन्धसे रहते हैं, इसका कारण यह है कि आत्मा इनका समवाय कारण है। प्रयत्नके होते ही यह मनसे संयुक्त होता है एवम् मन भी प्राप्याप्राप्यकारी श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके साथ संयुक्त होता है श्रोत्र, त्वच् , चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन्द्रियकी क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें प्रवृत्ति होती है।

इच्छोपगृहीता शब्दादिवुद्धिरित्यर्थः, सा विषयोपभोगस्वभावा काम इत्युप, चर्यते, आत्मा हि तद्द्वारेण विषयं भुञ्जानः सुखमनुभवति यत्तत्सुखं प्रधानं कामः-तस्य निबन्धनमिच्छोपगृहीता प्रवृत्तिः, सापि काम इत्युच्यते। तस्माद्धेतुफलभेदात्सामान्यकामो द्विविधः। प्रातिकूल्यतः प्रवृत्तिस्तु दुःखहेतुत्वाद्द्वेष इत्यर्थोक्तम् ११

(सूत्रमें न्यायवैशेषिकका मत अधिक झलकता था इस कारण सूत्रको इन दोनों शास्त्रोंके सिद्धान्तके अनुसार दिखाकर) मुख्य सिद्धान्त कहते हैं कि–इच्छासे उपगृहीत शब्दादि विषयिणी बुद्धि ही विषयोंके भोगके स्वभाववाली होनेके कारण उपचारसे काम कही जाती है यानी सांख्य शास्त्रके मतसे आत्मा अकर्ता है सब कार्योंके करनेवाली बुद्धि है। इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि गुण बुद्धिमें रहते हैं। जब बुद्धिकी विषयभोगोंकी उत्कट इच्छा हो जाती है तो

---

१ स्पर्श होनेके बाद विषयका अनुभव करनेवाली 'प्राप्यकारी और विना स्पर्शके विषयका अनुभव करनेवाले अप्राप्यकारी हैं । इहां तकका अर्थ अन्वय करके कहा है टीकाकारका सिलसिला छोड़ दिया है।

२ न्यायशास्त्रके मतसे इच्छा, द्वेष आदि गुण आत्मामें रहा करते हैं । इनके यहाँ बुद्धि, ज्ञानका नाम है। सांख्यशास्त्रका इससे भिन्न पथ है, ये इस बुद्धिको कर्ता भोक्ता आदि सब कुछ मानते हैं। टीकाका ऊपरका सिलसिला न्याय तथा नीचेका यह सांख्य सिद्धान्तकी तरफ जा रहा है। सिलसिलेमें इतना ही अन्तर आयेगा कि आत्माके स्थानमें बुद्धि एवम् बुद्धिके स्थानमें अन्तःकरण होगा ॥

वह विषयभोगके स्वभाववाली बुद्धि उपचारसे काम कहलाती है (यही कारण है कि ऐसी बुद्धिवालोंको कामी कहा करते हैं ।) आत्मा बुद्धिके द्वारा विषयोंको भोगता हुआ सुखका अनुभव करता है । जो सुख है वही सामान्य-रूपसे प्रधान काम है इसका कारण है, इच्छा उभरी हुई बुद्धि । इस कारण वह भी काम कहलाती है । अत एव हेतु और फल भेदसे सामान्य काम दो प्रकारका है । अनुकूल प्रवृत्ति या इच्छा काम तथा प्रतिकूल इच्छा या प्रवृत्ति द्वेष कहाती है ॥ ११ ॥

विशेष काम ।

विशेषकामो द्विविधः प्रधानमप्रधानं च । तदुभयमपि दर्शयन्नाह—

प्रधान और अप्रधान भेदसे दो प्रकारका है इन दोनोंको दिखानेके लिये सूत्र करते हैं कि—

स्पर्शविशेषविषयात्त्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः ॥ १२ ॥

चुम्बन आदिके माने हुए सुखके साथ, स्त्रियोंको पुरुषोंसे एवं पुरुषोंको स्त्रियोंसे उचित रीतिसे यंत्र संयोग होने पर, अपने २ यंत्रकी त्वचा इन्द्रियके द्वारा जो दूसरेके यंत्रका निराला स्पर्श प्रतीत होता है तथा उसी समय शुक्रका क्षरण एवम् उसके आनन्दकी प्रतीति होती है, यह सब प्रधान काम कहाता है एवम् बाकी प्रतीतियाँ प्रधान नहीं कहला सकतीं, वे तो सब अप्रधान ही गिनी जाती हैं ॥ १२ ॥

स्पर्शविशेषविषयात्त्विति—वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि, तेषां वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दकर्मनिष्पादनात् । तत्र स्त्रीपुंसयोर्यदधोव्यञ्जनं संबाधकादि तन्मात्रस्वभावं तत्त्वगिन्द्रियमेव, तस्य कश्चिदेव प्रदेश उपस्थेन्द्रियमुच्यते यो विसृष्टयवस्थायामानन्दकर्म जनयति ।

अप्रधान विशेषकाम—वाणी, हाथ, पाँव, गुदा और उपस्थ कर्मेन्द्रिय कहाते हैं, क्योंकि इनसे ही क्रमशः वचन, आदान, विहरण, उत्सर्ग और

---

३ इच्छाका नाम काम है, यह बुद्धिमें होती है इस कारण उसका भी नाम काम एवम् विषयानुभवसे जो सुख इसे प्रतीत होता है वह भी काम कहलाता है, क्योंकि वहभी चाहा ही तो जाता है ॥

आनन्द निष्पन्न होते हैं । इन पांचोंमेंसे जो स्त्री पुरुषोंके नीचेके भागमें व्यंजन यानी जन्मकालमें बालक बालिकाकी पहिचान करानेवाला है जो कि, संबाधकादि (योनि) और इन्द्रिय हैं । जिसका यह स्वभाव है वह त्वगिन्द्रिय ही है । उसके किसी प्रदेशको उपस्थेन्द्रिय कहते हैं, जोकि शुक्रक्षरणकी अवस्थामें अपने कर्म, आनन्दको उत्पन्न करता है ।

तस्य व्यञ्जनस्य योऽन्तर्गतः स्पर्शविशेषस्तस्मिन्विषये प्रतीतिरसावर्थप्रतीतिस्त्वगिन्द्रियबुद्धिः, अस्याः संप्रयोगेच्छालक्षणः कामिताख्यो भावः कारणम् । अस्येति–स्त्र्यात्मनः, पुरुषात्मनश्च । तत्र स्त्र्यात्मनः पुरुषाद्व्यञ्जनस्पर्शविशेषविषये स्त्रीव्यञ्जनत्वगिन्द्रियप्रतीतिः, पुरुषात्मनश्च स्त्रीव्यञ्जनस्पर्शविशेषविषये पुरुषव्यञ्जनत्वगिन्द्रियप्रतीतिरित्यर्थः । विशेषग्रहणात्पुरुषस्योरुकक्षादिस्पर्शनविषये स्त्रियाश्चोरुनाभ्यादिस्पर्शविषये प्रतीतिर्निरस्ता, तस्या अप्रधानत्वात् । एवंविधा प्रतीतिः सामान्यकाम एव ।

उस व्यंजनके भीतर जो निराला स्पर्श है उसके विषयमें जो प्रतीति होती है वही अर्थ प्रतीति हैं । यह एक प्रकारका त्वचा इन्द्रियके विषय विचित्र स्पर्शका साक्षात्कार है, इसका कारण संप्रयोगकी इच्छारूपी कामिताख्य भाव (उत्कट चाह) है । स्त्रीको पुरुषसे, पुरुषके उपस्थके निराले स्पर्शके विषयमें स्त्रीत्वके व्यंजनकी जो त्वचा इन्द्रिय है उसकी प्रतीति होती है । पुरुषको स्त्रीसे स्त्रीत्वके व्यंनजके निराले स्पर्शके विषयमें पुरुषके व्यंजन उपस्थेन्द्रियके त्वगिन्द्रियके विषयके निराले स्पर्शकी प्रतीति होती है । इसीका नाम अर्थ प्रतीति है । अर्थ–परस्परके साधनसे परस्परके साधनके निराले स्पर्शको कहते हैं । इसके प्रत्यक्षका नाम अर्थप्रतीति है । केवल स्पर्श न कहकर जो स्पर्शविशेष कहा है इसके कहनेका यही तात्पर्य्य है कि पुरुषके ऊरू और कक्षा आदिके स्पर्शके विषयमें एवं स्त्रीकी ऊरु और नाभि आदिके विषयमें होनेवाली प्रतीति अर्थप्रतीति न कही जा सके, क्योंकि ऐसी प्रतीति प्रधान नहीं है । इस प्रकारकी अर्थप्रतीति सामान्य काम ही है ।

कथं विशेषत्वमिति चेदाह–फलवतीति । तस्यां प्रतीतौ प्रबन्धेनोत्पद्यमानायां शुक्रक्षरणं तत्तुल्यकालमेव चानन्दाख्यं फलं सुखमित्युक्तम् । तेन युक्तास्पर्शविशेषविषये प्रतीतिरपरा भवति, तस्याश्च पूर्विकैव प्रतीतिरफला कारणम्, अतो विषयभेदात्स्वरूपभेदाच्च द्विधा प्रतीतिः । अर्थप्रतीतिरिति–अर्थग्रहणात्स्वप्नव्यञ्जनस्पर्शार्थस्यालीकत्वात्फलवत्यपि न कामः, तस्या अप्रधानत्वात् ।

मुख्य विशेष काम—कैसे होगा? इसके विषयमें उत्तर देते हैं कि,प्रबन्धसे उत्पन्न हुई जिस प्रतीतिमें शुक्रपात एवम् उसीके समयमें ही आनन्दरूप फल यानी सुख हो वह फलवती अर्थप्रतीति है, इस बातको साथ लिये हुए जो पहिले कहे हुए निराले स्पर्शकी प्रतीति होती है यह उससे दूसरी है। इस फलवती अर्थप्रतीतिका कारण पहिली अर्थप्रतीति है। इसमें तीन वस्तु रहती हैं—शुक्रपात, स्पर्श और रतिसुख। इससे यह सिद्ध होगया कि विषयभेद और स्वरूपभेदसे दो तरहकी प्रतीति है। यदि पहिले कहे हुए ढंगसे स्वप्नमें निराले स्पर्शकी प्रतीति हो और वह फलवती भी हो तो भी काम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्वप्नके तो सब विषय झूठे ही हुआ करते हैं। यही अर्थ ग्रहणका प्रयोजन है कि अवास्तविकोंका ग्रहण न हो। यह भी अप्रधान विशेष काममें ही है।

यद्येवं वियोनावयोनौ वानभिप्रेतेऽर्थप्रतीतिरेवंविधाप्यस्तीत्यत आह—आभिमानिकसुखानुविद्धेति—आभिमानिकं चुम्बनादिसुखं वक्ष्यति, चुम्बननखदशनच्छेद्यादिषु हि तत्र तत्र स्थाने प्रयोज्यमानेषु स्त्रीपुंसो रागसंकल्पवशात्सुखमित्यभिमन्यते, तेन सुखेनानुविद्धेत्याक्षिप्तसंस्कारेऽर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्कामः, तेन वियोनावयोनौ वानभिप्रेतस्त्रीपुंसयोः फलवत्यर्थप्रतीतिर्न कामः, आभिमानिकसुखाभावादप्राधान्यात्। तस्मात्स्प्रष्टव्यविशेषविषयो विशेषः कामः ॥ १२ ॥

यदि यही प्रधान कामके लक्षण मानोगे तो पूर्व कही फलवती अर्थप्रतीति, वे मनके व्यक्तिसे दूसरी योनिके प्राणीसे एवम् विना योनिके जीवसे भी अर्थप्रतीति हो जाती है तो क्या इसको भी गिनती प्रधान काममें आयेगी? यह न आये इसी कारण कहते हैं कि—स्त्री पुरुष जो आपसमें एक दूसरेके वदनमें नाखून लगाते हैं, काटते हैं, एक दूसरेका चुम्बन करते हैं जो कि, इसी ग्रन्थमें अगाड़ी कहेंगे। इन कामोंको करती बार स्त्री पुरुष रागके संकल्पके कारण सुख मानते हैं। इस सुखसे अनुविद्ध हुई यानी इससे संस्कारको जगा लेने पर जो अर्थप्रतीति फलवती है वही प्रधानरूपसे काम है, ऐसी वियोनिमें वेमनकीमें तथा अयोनिमें नहीं हो सकती, इसकारण वो फलवती भी अर्थप्रतीति काम नहीं कहला सकती, क्योंकि इनके साथ आभिमानिक सुख नहीं है। इससे निराले स्पर्शके योग्य व्यक्तिके निराले स्पर्शवाला विशेष काम होता है ॥ १२॥

कामके स्वरूपका ज्ञान।

तं कामसूत्रान्नागरिकजनसमवायाच्च प्रतिपद्येत ॥ १३ ॥

ऐसे कामको कामसूत्रसे और नागरिक जनोंके संपर्कसे जाने ॥ १३ ॥

तमित्युक्तस्वरूपं सामान्यं विशेषम्, प्रधानमप्रधानं च, कामसूत्रादस्मादेव, शास्त्रेऽधिकृतो यः इतरश्च नागरिकसमवायात्कामव्यवहारज्ञसंपर्कात्प्रतिपद्येतेति ॥ १३॥

कामके जो पहिले सामान्य और विशेष भेद किये हैं उन्हें एवम् सामान्य और विशेष कामके प्रधान और अप्रधान भेदोंको अधिकारी जनोंको तो कामसूत्रसे जान लेना चाहिये;पर जो शास्त्रके अधिकारी नहीं हैं उन्हें चाहिये कि, कामके व्यवहारोंके जाननेवालोंके संसर्गसे जान लें ॥ १३ ॥

त्रिवर्गमें श्रेष्ठ।

एवं धर्मादीनि युगपत्सेवितुमधिगन्तुं वा न संभवन्तीति गुरुलाघवमपि बुध्येतेत्याह--

इसी प्रकार धर्म, अर्थ और काम यदि एक साथ न जाने जा सकें एवम् इनका एक साथ सेवन नहीं हो सके तो यही जान ले कि, इनमें कौन छोटा आर कौन बड़ा है, इसीके लिये सूत्र करते हैं कि-

एषां समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान् ॥ १४ ॥

धर्म, अर्थ और कामके समुदायमें परसे पूर्व पूर्व श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

समवाये-संनिपाते, तदुपायसंनिधानात्। पूर्वः पूर्व इति-कामादर्थो गरीयान्, कामस्यार्थसाध्यत्वात्। ततोऽपि धर्मः,अमुत्राप्यर्थस्य धर्मसाध्यत्वात् ॥ १४॥

कामसे अर्थ बड़ा है, क्योंकि काम, अर्थसे सिद्ध होता है, अर्थसे धर्म बड़ा क्योंकि दूसरे जन्ममें भी धर्मसे ही धन मिलता है। इस तरह इनके तीन उपायोंकी खोजमें परसे पूर्व पूर्व श्रेष्ठ है, क्यों कि परपरका उपाय पूर्व पूर्व है ॥ १४ ॥

अर्थप्रधानताके राजा और वेश्या।

नायं सर्वविधिविषयक्रम इत्यत आह—

यह क्रम सब विधियोंके विषयका नहीं है इसी कारण नीचेका सूत्र करते हैं कि-

अर्थश्च राज्ञः। तन्मूलत्वाल्लोकयात्रायाः। वेश्यायाश्चेति त्रिवर्गप्रतिपत्तिः ॥ १५ ॥

राजाको तो धन ही बड़ा है, क्योंकि तमाम लोकयात्रा धनपर ही निर्भर है, वेश्याके लिये भी धन ही सबसे बड़ा है, क्योंकि उसका आखिरी दार मदार धनपर ही है । यह अनुष्ठान रूपा और अवबोधरूपा त्रिवर्गकी प्रतिपत्ति पूरी हुई ॥ १५ ॥

अर्थस्तु राज्ञो गरीयान् तन्मूलकत्वादिति, वर्णश्रमाचारलक्षणा लोकयात्रा-सा मा भूदन्यथेति तस्याः पालनं राज्ञो धर्मः, तच्च प्रभुशक्तौ सत्याम् । प्रभु-शक्तिश्च कोषदण्डबलम्, ते चार्थत इति तन्मूला लोकयात्रा ।

वर्ण और आश्रमके आचाररूप लोगयात्रा उलटी न हो जाय, इस कारण उसका पालन करना राजाका मुख्य धर्म ह, यह प्रभु शक्ति होनेपर ही हो सकता है । प्रभुशक्ति कोष, दण्ड और बल पर निर्भर है, ये धन विना नहीं हो सकते इस कारण ही कहा गया है कि लोकयात्रा धनपर निर्भर है ।

वेश्यायाश्चार्थो गरीयान्, अर्थप्रतिबद्धत्वात्तज्जीविकायाः । वेश्या हि कामा-तुरब्राह्मणाभिप्रेतनागरकविषयौ धर्मकामावुपनतौ त्यक्त्वा पश्चाद्भविष्यत इत्य-निष्टेऽप्ययमर्थद इति प्रवर्तते । त्रिवर्गप्रतिपत्तिरनुष्ठानावबोधलक्षणोक्तेत्यर्थः॥ १५

वेश्याकी जीविका धनसे बंधी हुई है इस कारण उसके लिये सबसे बड़ा धन है । क्यों कि वेश्या कामातुर ब्राह्मणके रमण करानेके धर्म एवम् चाहे हुए प्यारे नागरिकके रमण करनेमें आये हुए कामको छोड़कर विना चाहे हुए धनीको रमण कराने लग जाती है यह सोच लेती है कि, यह सब पीछे हो लेगा । सबसे पहिले अनुष्ठान कहा गया था इसके पीछे अवबोध कहा गया ये दोनों क्रमशः पूरे हुए ॥ १५ ॥

संप्रतिपत्ति ।

(धर्म अर्थके लिये शास्त्र चाहिये)

इदानीं विप्रतिपत्तिपूर्विकां संप्रतिपतिं दर्शयन्नाह—

इस समय विप्रतिपत्तिपूर्वक संप्रतिपत्तिको दिखानेके लिये कहते हैं कि—

धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिदायकं शास्त्रं युक्तम् । उपाय-पूर्वकत्वादर्थसिद्धेः । उपायप्रतिपत्तिः शास्त्रात् ॥ १६ ॥

धर्म अलौकिक है इस कारण उसका अभिधायक शास्त्र उचित है एवम् उपाय विना अर्थ सिद्धि नहीं होती, उपायोंका ज्ञान शास्त्रसे होता है, इस कारण अर्थ शास्त्रभी ठीक है ॥ १६ ॥

धर्मस्येत्यादि । कामसूत्र एव तद्विप्रतिपत्तिं दर्शयति—अलौकिकत्वादिति, यथोक्तं प्राक् । अभिधायकं ज्ञापकम् । अर्थसिद्धेरिति—अर्जनवर्धनाख्या चार्थसिद्धिः । अन्यथोपायं विना प्रवर्तमानस्यानर्थोऽपि स्यात् । तत्संशयश्च तत्र धर्मार्थमर्थार्थं च शास्त्रं युक्तम् ॥ १६ ॥

इस सूत्रसे कामसूत्रमें ही कामशास्त्रको अनावश्यक दिखानेके लिये धर्म और अर्थ शास्त्रका प्रयोजन दिखाया है । धर्म कैसे अलौकिक है यह इसी अध्यायके ७ वें सूत्रमें दिखाया जा चुका है । अभिधायकका प्रसिद्ध मतलब वाचक न होकर ज्ञापक यानी जनानेवालेसे है । नौवें सूत्रमें बताये हुए अर्थोंके अर्जन और वर्धन करनेका नाम अर्थसिद्धि है । उपायोंको विना जाने अर्थसिद्ध करने लग जाय तो अनर्थ भी हो सकता है, यदि भाग्यवश न भी हो तो भी अनर्थका संदेह तो रहेगा ही, इस कारण धर्मके लिये धर्मशास्त्र तथा अर्थके लिये अर्थशास्त्र चाहिये ॥ १६ ॥

पर कामके लिये नहीं ।

कामार्थं त्वयुक्तमित्याह—

कामशास्त्रकी कोई आवश्यकता नहीं दीखती, क्योंकि—

तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवृत्तत्वात्कामस्य नित्यत्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्याः ॥ १७ ॥

पशु पक्षी आदिकोंमें भी तो काम स्वयं प्रवृत्त है तथा प्राणियोंके कामका होना स्वाभाविक ही है, इस कारण कामशास्त्रकी आवश्यकता नहीं । यह धर्म, अर्थ और मोक्षवादी आचार्य्य कहते हैं ॥ १७ ॥

तिर्यग्योनिष्वपीति—गवादिष्वपि तमोबहुलेषु शास्त्रोपदेशं विना कामः प्रवर्तमानो दृश्यते, किं पुनर्मनुष्येषु रजोबहुलेषु न प्रवर्तते । तथा चोक्तम्— ‘ विनोपदेशं सिद्धो हि कामोऽनाख्यातशिक्षितः । स्वकान्तारमणोपाये को गुरुर्मृगपक्षिणाम् ॥’ इति ।

जब कि जिनमें तमोगुण प्रधान हैं ऐसे गौ आदिकोंमें भी विना कामशास्त्रके उपदेशके काम प्रवृत्त हुआ देखा जाता है तो क्या फिर वह रजोगुण प्रधान मनुष्योंमें प्रवृत्त न होगा ? । महापुरुष कहा भी करते हैं कि—‘ काम विना उपदेशके ही एवं विना ही किसीके बताये अपने आप ही आ जाता है ।

पशु पक्षियोंका अपनी कान्ताके साथ रमण करनेके उपाय बतानेके लिये कौन्न गुरु होता है ?" इस कारण सभीमें काम अपने समयमें आप ही प्रवृत्त होजाता है ।

नित्यत्वाच्चेति–आत्मनि द्रव्यपदार्थे सदैवेच्छाद्वेषादयो गुणाः स्थिताः, ततश्च नित्यः कामः । तथा चोक्तम्––'मुमुक्षवोऽपि सिद्ध्यन्ति विरागाद्रागपूर्वकात् । विषयेच्छानुबन्धिन्यो निसर्गात्प्राणिनां धियः ॥' तस्मात् प्रवर्तमानेन शास्त्रेण कार्यं तन्निवर्तनं तु युक्तम् । आचार्या धर्मार्थमोक्षवादिनः ॥ १७ ॥

दूसरा यह भी कारण है कि काम नित्य है क्योंकि आत्मा एक द्रव्य पदार्थ है इच्छा, द्वेष आदि गुण सदा ही उसमें रहा करते हैं, इस कारण काम नित्य है क्योंकि आत्मामें रहता है । कहा भी है कि–'रागके वशीभूत हो उसका तत्त्व जाननेके बाद वैराग्य होता है मुमुक्षुजन इसीसे सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि प्राणियोंकी बुद्धियां स्वभावसे ही विषयोंकी इच्छाको लिये हुए होती हैं इस कारण राग सहज है रागके तत्त्व जान लेनेके बाद विराग होता है ।' इससे यह सिद्ध हुआ कि, काम स्वाभाविक है, शास्त्रसे उसकी निवृत्ति करनी चाहिये; ऐसे धर्मको, अर्थको और मोक्षको प्रधान माननेवाले आचार्य्य अपने २ ग्रन्थोंमें कहते हैं ॥ १७ ॥

काम शास्त्रका प्रयोजन ।

अत्र संप्रतिपत्तिमाह–

इस विप्रतिपत्तिके उत्तरमें संप्रतिपत्ति कहते हैं कि–

संप्रयोगपराधीनत्वात्स्त्रीपुंसयोरुपायमपेक्षते ॥ १८ ॥

कामको स्त्री पुरुषोंके संप्रयोगके पराधीन होनेसे उपायकी आवश्यकता होती है ॥ १८ ॥

संप्रयोगपराधीनत्वादिति–विशेषः सामान्यो वा कामः संप्रयोगपराधीनः । संप्रयोगश्च द्विविधः, आयतनसंप्रयोगोऽङ्गसंप्रयोगश्च । तत्रायतनं कामस्य स्त्र्यधिष्ठानम्, अङ्गानि च माल्यादीनि । तथा चोक्तम्––'मुखं कामस्तदङ्गानि भूषणालेपनस्रजः । तथोपवनहर्म्याग्रवल्लकीमदिरादयः ॥ यस्यायतनमुद्दामरूपयौवनविभ्रमाः । ललनाश्चाटुदाक्षिण्याश्चाकृष्टजनमानसाः ॥' इति ।

चाहे सामान्य काम हो चाहे विशेष हो, स्त्री पुरुषोंके संप्रयोगके विना नहीं हो सकता । संप्रयोग-दो प्रकारका है एक आयतन संप्रयोग और दूसरा अङ्ग संप्रयोग है । इन दोनोंमें कामका आयतन यानी अधिष्ठान अर्थात् घर स्त्री है एवम् माला आदिक उसके अंग हैं, ऐसा ही कहा भी है कि-" काम " सुखका नाम है । भूषण, आलेपन, सुगन्धितमाला, बाग, बगीचे, चन्द्रशाला, सितार आदि बाजे एवम् मस्ती लानेवाले तथा कामको बढ़ानेवाले मदिरा जाम आदिक कामके अंग हैं । रूप और जवानीके लहलहाते हुए विभ्रमोंवाली उदार प्रकृतिकी लावण्यमयी सुन्दरी विलासिनी ही कामका आयतन हैं, जो कि दृष्टिमात्रसे रसिकोंके मनको अपनी ओर खींच लें ।

तत्र य आयतनसंप्रयोगः स च द्विविधः, बाह्य आभ्यन्तरश्च । तत्र यो रहसि स आभ्यन्तरो रताख्यः, स विशेषकामस्य निमित्तम् । बाह्यः समागमलक्षणो रतस्य ।

आयतन संप्रयोग-संप्रयोगका अर्थ पहिली अध्यायके १० वें सूत्रमें कर चुके हैं कि, संप्रयोग अच्छी तरह मिलने या सहवासको कहते हैं । आयतन यानी स्त्रीका संप्रयोग यानी मिलना दो प्रकारका होता है, आभ्यन्तर और बाह्य । इन दोनोंमें जो एकान्तमें मिलना होता है यह आभ्यन्तर संप्रयोग है, इसका नाम रत-रमण है, यही विशेष कामका कारण है । रमणका जो समागम होता है यह बाह्य है । यह बाह्य काम, मैथुन आरंभसे पाहिले तकके सब कार्य्योंमें बाह्य ही आयतन संप्रयोग रहेगा ।

कामके आयतन और अंग तथा विभाव ।

१ आयतन और अंगसंप्रयोगके भेदसे संप्रयोगके दो भेद दिखाकर आयतन संप्रयोगके आभ्यन्तर और बाह्य ये दो भेद कहे हैं । हृदयमें चाह कैसे उत्पन्न होती है यह बात तो दूसरे अधिकरणके दशवें अध्यायके १५ वें सूत्रपर कहेंगे, यहाँ तो केवल संप्रयोग सम्बन्धी कुछ विचार विशेष कहते हैं । जिसे हम कामका आयतन कह रहे हैं साहित्यमें यही उसका आलम्बन विभाव है । कविवर पद्माकरने यही कहा है कि-" रस शृंगारको भाव उर, उपजहि जाहि निहारि । ताहीको कवि नायिका, वर्णत विविध प्रकार ॥ " जिसपर नजर पड़ते ही उसकी चाहमें हृदय तिलमिला उठे कविलोग अनेक तरहसे उसे नायिका कहा करते हैं । जिसे कामसूत्र कामका आयतन कह रहा है उसीको साहित्यिक आलम्बन विभाव कह रहे हैं । जिनके योगसे काम प्रदीप्त हो उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं यही कविवर भानुका मत है-

यश्च बुद्धीन्द्रियाणां यथास्वमङ्गैः संप्रयोगः सोऽङ्गसंप्रयोग इति । इन्द्रियार्थसंनिकर्षलक्षणः । स च सामान्यकामस्य निमित्तम् ।

अंग संप्रयोग–कानोंको कर्णामृत गाने बजाने, आंखोंको सुहावने दृश्य, त्वचाको कोमल स्पर्श, जिह्वाको स्वादिष्ट भोजन एवम् नासिकाको सुगन्धित

–कि–" जिन्हें विलोकत ही तुरत, रस उद्दीपित होत । उद्दीपन सुविभाव है, कहत कविनके गोत ॥ " जिन्हें देखकर ही उसी समय रस उद्दीप्त होता है कवि लोग उसे उद्दीपन विभाव करते हैं यह उद्दीपन विभावमात्रका लक्षण है, केवल कामके ही उद्दीपनका लक्षण नहीं है पर भाषा करतीवार रस उद्दीपनके अनुवादमें भानुने रस छोड कर काम ले लिया है। यानी यह है तो लक्षण उद्दीपन मात्रका पर ' कामोद्दीपन होता है ' ऐसा अर्थ करके कामका उद्दीपन मात्र बना दिया है इस व्यवस्थामें उन्हें अन्य ८ रसोंके उद्दीपनोंके पृथक् लक्षण करने पड़ेंगे पर उन्होंने ऐसा किया नहीं है इससे प्रतीत होता है कि इसमें उन्होंने उद्दीपन-मात्रका लक्षण किया है। टीका लिखते समय इस बातपर ध्यान नहीं रहा है, इस कारण केवल कामोद्दीपन लिख गये हैं । जहांसे यह हिन्दीमें आया है वहां ऐसा ही लक्षण है कि–"उद्दीपन-विभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये " वे उद्दीपन विभाव हैं जो रसको उद्दीप्त करते हैं । यह उद्दीपनमात्रका लक्षण है इसीका अनुवाद हिन्दीमें किया गया है । उद्दीपन विभाव कौन होते हैं इस प्रश्नका उत्तर साहित्यदर्पणकारने दिया है कि–" आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादय-स्तथा " जो आलम्बन विभाव है जैसे कि शृंगार रसमें कामका आयतन स्त्री आलम्बन विभाव है उस आलम्बनकी चेष्टा आदि एवं देश कालादिक उद्दीपन विभाव हैं । शृंगार रसमें स्त्रीकी चेष्टा, रूप और भूषणादिक एवम् चन्द्र, चन्दन, कोकिलालाप और भौंरोंकी झंकार आदिक उद्दीपन विभाव हैं ऐसा साहित्यदर्पणकारने इस कारिकाका अर्थ किया है । यद्यपि कारिकाका तो जो हमने सबसे पहिले कर दिया है वही अर्थ है, किन्तु–" चन्द्रचन्दनरोल-म्बरुताद्युद्दीपनं मतम् " इस कारिकाके बलसे चन्द्र, चन्दन और भौंरेकी गुंजार इतने उद्दीपनोंको इस कारिकासे लाकर बताया है । दूत, दूती आदिक भी इधर उधरकी बातें बनाकर रागको प्रदीप्त करते हैं, इस कारण इन्हें भी हिन्दीके कवियोंने उद्दीपनोंमें गिन लिया है कि–"सखा सखी दूती सुबन,उपवन षड्ऋतु पौन । उद्दीपनहि विभावमें, वरणत कवि मति भौन॥ चन्द्र चाँदनी चन्दनहु, पुहुप पराग समेत । यों ही और सिंगार सब, उद्दीपनके हेत ॥" सखा, सखी, दूती, अच्छा वन, बाग, छः ऋतु, पवन, चन्द्र, चांदनी, चन्दन, फूल, एवम् इसी तरह सब शृंगार, इन सबको कवि लोग उद्दीपनका कारण कहा करते हैं । यदि विचार करके देखा जाय तो ये सब कामसूत्रके कामाङ्गोंमें आगये हैं । जयमंगलाने इसे परिस्फुट दिखा दिया है । सखा, सखी, दूती ये उद्दीपन भी करते हैं। यह स्वतः सिद्ध है इस बातके हिन्दी और संस्कृतके उदाहरण भी दिखाये देते हैं कि–" अमुस्मिन् लावण्यामृतसरसि नूनं मृगदृशः, स्मरः शर्वप्लुष्टः पृथुजघनभागे निपतितः । यदङ्गाङ्गाराणां प्रशमपिशुनानाभि–

पदार्थोंका मिल जाना, कामके अंगोंके साथ संप्रयोग है । यानी पांचों ज्ञाने- न्द्रियोंका अपने २ विषयोंसे संबन्ध कर लेना है । यह सामान्य कामका कारण होता है ।

-कुहरे, लटा धूमस्येयं परिणमति रोमावलिवपुः। " कोई कुट्नी किसीके रागको प्रदीप्त करनेके लिये किसी रसीलेके सामने नायिकाके रूप लावण्यकी प्रशंसा करती है कि-आपको क्या ध्यान है ? वह इतनी सुन्दर है कि जब कामको शिवने जलाया तो वह अपनी ज्वाला शान्त कर- नेकी जगह ढूँढने लगा कि ऐसी जगह गिरूं जहांके गिरनेसे मेरी ज्वाला शान्त हो जाय और जी भी जाऊं तो उसे इसी मृगनयनीके लावण्यके अमृतका सर मोटा २ जघन मिला कि उसीमें उसने गोता लगाया डुबकी लगानेपर जो उसके बदनके अँगारे भुजे तो इसकी सूचना देनेके लिये धूंआ उठा वह रोमावलि बनकर वहां चलता हुआ गहरी नाभिवलीमें आगया है। इस प्रकार उसकी रोमराजि फैली हुई है ऐसी वह नायिका है। इस श्लोकके अर्थपर विचार करनेसे पता चलता है कि कुट्टिनी किस प्रकार अपनी नायिकाके सौन्दर्य्य और लावण्यकी प्रशंसा करके नायकके रागको प्रदीप्त कर दिया करती हैं । यद्यपि यही अपने मुखसे कह रही है परन्तु तारीफ करती है कामायतनकी ही, अतः काम शास्त्रने इन्हे उद्दीपनमें नहीं गिना इसी कारण संस्कृत साहित्यके ज्ञाताओंने सखा, दूत, दूती आदिको उद्दीपन विभावमें नहीं रखा है क्योंकि ये उसीके उद्दीपनोंको लेकर उद्दीप्त करते हैं पर भाषाके कवियोंने इस बात पर दृष्टि नहीं डाली इस कारण उन्होंने इन्हें भी उद्दीपनके भीतर सामिल कर दिया है । चाहें आल- म्बनके भावोंसे उद्दीप्त करते हैं किन्तु दूत दूती आदि भी उद्दीपनका काम कर जाते हैं इस कारण इन्हें उद्दीपनोंमें भी मान लेनेपर वस्तु हानि नहीं होती । यदि दुष्यन्तकी आयतन शकुन्तला है तो उसका सौन्दर्य्य लावण्य पानी लगाती वारकी चेष्टाएँ वन, चन्द्र आदि ये सब उद्दीपक हैं । प्रियंवदा आदि जो उसके सीनेको बाँधती हैं ये ही नायिकाके लावण्य यौवनको चमकाकर उसीसे दुष्यन्तके रागको प्रदीप्त करती हैं इस कारण ये उद्दीपन भी कहला सकती हैं । उद्दीपनोंका कवि लोग किस प्रकार कवितामें उपयोग करते हैं इस बातको दिखानेके लिये हिन्दी और संस्कृतके कुछ उदाहरण नीचे देते हैं-" तव कुसुम शरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो, द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु, विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः, त्वमपि कुसुम- बाणान् वज्रसारी करोषि ॥" इस श्लोकका अनुवाद व्रजरत्न भट्टाचार्य्यजीने पद्यमें किया है कि-"हिमांशू चन्द्राको, कुसुमशर तोकों कहत क्यों नहीं, सांचे दोऊ, इन गुनन मोसे जनन कों। खरी छोड़े ज्वाला वह किरन पाला सँग धरा, तुहू वज्राकारी निज सुमनके बानन करे॥" शकुन्तलाकी चाहसे भरे हुए हृदयवाले महाराज दुष्यन्तको कामकी उद्दीपक ठंडी भी चांदकी किरणें आग फैलानेवाली एवं कामके फूलोंके बाण वज्र प्रतीत होते हैं । चाँद कितना उद्दीपक है इसका अनुभव ऐसे ही वियोगी जन जानें । किसी वियोगिनने तो चांदके लिये सीधा ही कह दिया है कि-' यह आग ठंडी गिरा २ कर, जला रहा है जहान जाने । ' कि चांद चांदनी नहीं ठंडी आग गिराकर जला रहा है। कविवर विहारीदासने-

अनयोश्च कामयोर्यथास्वं पूर्वोक्तमेवेच्छाकारणम् । तत्पूर्वकत्वात् । तदभावेऽभावात् ।

कामोंका कारण--इन दोनोंका कारण इच्छा ही है, क्योंकि उसीसे सामान्य काम होकर विशेष काम होता है, यदि इच्छा न हो तो दोनोंमेंसे कोई भी नहीं हो सकता ।

तत्राद्यः संप्रयोगः समागमलक्षणः, स स्त्रीपुंसयोरन्यतरानिच्छया रक्षणाल्लज्जया भयाद्वा परतन्त्रायां न घटत इत्यत्रायमुपायमपेक्षते ।

समागमका कारण--समागम रूप पहिला संप्रयोग (मिलना) यदि स्त्री वा पुरुष दोनोंमेंसे किसीकी अनिच्छा हो, यदि दोनोंमें एक दूसरेकी चाह हो तो भी रखवालीके कारण अपनी इच्छाएं पूरी न कर सकें अथवा लज्जा या भयसे न मिल सकें वा मिलना चाहें पर नायिका परतंत्र हो तो भी न पा सकें, तो भी किसी प्रकारका संप्रयोग नहीं हो सकता, इस कारण उपायकी आवश्यकता है ।

रताख्यश्च पाश्चात्यश्चतुःषष्टिप्रयोगानभिज्ञायां कथं स्यादिति तन्त्रमुपायम् ।

रतिकलाओंका उपयोग--एकान्तका रमणरूप संप्रयोग समागमके पीछे है । जब तक वह आलिंगन चुम्बन आदि ६४ प्रयोगोंका जानकार न होगा तब तक कैसे हो सकता है, इस कारण तंत्रका जान लेना ही रति करनेका उपाय है ।

--तो एक ही दोहेमें कई उद्दीपक विभाव एवं उनके कार्य बता दिये हैं कि--" और भांति भये अये, चौसर चन्दन चन्द । पति विन अति पारति विपति, मारत मारुत मन्द ॥ " ए सहेली ! आज प्राणप्यारेके विना चौपड, चन्दन और चांद औरका और ही होगया । यह मन्द२ मलय वायु अत्यन्त विपत्ति डालती हुई प्राण ले रही है । इसमें चोपड खेलकी चीजोंका उपलक्षक एवम् चन्दन शृंगारकी वस्तुओंका उपलक्षक हैं, ये चीजें पतिके रहते सुखदायी प्रतीत होती थीं विना उसके दुखका सामान बन गयीं हैं । इस प्रकार साहित्यमें जो पदार्थ कामके आलंबन और उद्दीपन विभावके नामसे आ रहा है वह कामशास्त्रका कामका आयतन और अंग पदार्थ ही आ रहा है । हमने अधिक विस्तारके भयसे इसका दिग्दर्शनमात्र ही करा दिया है दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह कह सकते हैं कि शृंगाररसकी कवितामें पदार्थ सब कामशास्त्रका ही है साहित्यका तो कथन वैचित्र्यमात्र ही है ॥

द्वितीयोऽपि संप्रयोगो नित्यनैमित्तिकनागरिकसंवृत्तं विना न भवतीत्युपायापेक्षा ॥ १८ ॥

अंगयोग गाने, बजाने आदिके विषयोंका समागम भी विना नागरिकोंके नित्य नैमित्तिक चाल चलन जाने नहीं हो सकता इस कारण उपायका जानना परमावश्यक है ॥ १८ ॥

सा चोपायप्रतिपत्तिः कामसूत्रादिति वात्स्यायनः ॥ १९॥

वात्स्यायन आचार्यका मत है कि, उपायका ज्ञान कामसूत्रसे होता है॥१९

उपायपरिज्ञानं च कामसूत्रात् तेनोपदिश्यमानत्वात् । वात्स्यायन इति स्वगोत्रनिमित्ता समाख्या, मल्लनाग इति च संस्कारिकी ॥ १९ ॥

कामसूत्रसे उन उपायोंका ज्ञान होता है जो कि कामके लिये आवश्यक हैं क्योंकि उन उपायोंका उपदेश इसी शास्त्रसे होता है । आचार्यका मल्लनाग नाम संस्कारका था तथा वात्स्यायन यह गोत्र नाम है, अतः सूत्रमें आये हुए वात्स्यायन शब्दका अर्थ वात्स्यायनगोत्रीय मल्लनाग होता है ॥ १९ ॥

पशु पक्षियोंको आवश्यकता नहीं मनुष्योंको है ।

गवादिषु कथमिति चेत्तदाह—

गऊ आदिमें उपायकी आवश्यकता क्यों नहीं है और मनुष्योंमें क्यों है ? इस बातकी शंकाको लेकर सूत्र करते हैं कि—

तिर्यग्योनिषु पुनरनावृतत्वात्स्त्रीजातेश्च, ऋतौ यावदर्थं प्रवृत्तेरबुद्धिपूर्वकत्वाच्च प्रवृत्तीनामनुपायः प्रत्ययः ॥ २०॥

पशु पक्षी आदिकोंमें स्त्री जाति आवृत नहीं रहती, वे अपने मतलब तक ऋतुकालमें प्रवृत्त होते हैं और उनकी प्रवृत्ति ज्ञानपूर्वक नहीं होती, इस कारण उनका प्रत्यय (ग्राम्यधर्म) किसी उपायकी आवश्यकता नहीं रखता ॥२०॥

पुनः शब्दो विशेषणार्थः । अनावृतत्वादिति—रक्षणाद्यावरणाभावात् स्त्रीजातिः स्वतन्त्रा, किं तत्रोपायेनेत्यनुपायः प्रत्यय इति संबन्धः । प्रत्ययशब्देनोभयरूपोऽपि संप्रयोग उक्तः, तस्य कामोत्पत्तौ निमित्तत्वात् । तत्रावरणाभावादाचार्योक्तोपायशून्यः समागम इत्यर्थः ।

पशु पक्षियोंमें न तो स्त्रियां परदेमें ही रहती हैं एवम् न वे इसके लिये रक्षित ही हैं, उनको कोई रोक टोक नहीं वे बिलकुल स्वतंत्र हैं । वहां उपायकी

आवश्यकता ही क्या है उनकी सुहबत विना उपायके ही होती है । प्रत्ययका अर्थ अठारहवें सूत्रके कहे हुए दोनों प्रकारके संप्रयोग हैं, क्योंकि संप्रयोग ही विशेष कामके कारण हैं जिनका कि लक्षण (१२) वें सूत्रमें किया है। पशु पक्षियोंमें स्त्रियोंका परदा नहीं, इस कारण वहां आचार्यके बताये हुए उपायोंसे शून्य ही समागम होता है।

ऋतौ यावदर्थमिति। ऋतुकाल एव ते तिर्यञ्चः संप्रयुज्यन्ते, मनुष्यास्तु प्रजार्थमृतौ, स्त्रीरमणार्थं चानृतावपीत्यसमानम् । तथा चोक्तम्—'ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्' इति ।

पशु पक्षी आदि ऋतुकालमें ही सहवास करते हैं पर मनुष्य तो सन्तानके लिये ऋतुकालमें एवम् विना ऋतुकालके भी केवल स्त्री रमणके लिये ही सहवास करते हैं, यह मनुष्योंका पशुओंसे भेद है। यही कहा भी है कि— "ऋतुकालमें स्त्री समागम करे अथवा प्रतिषिद्धको छोड़कर जब चाहे तब स्त्रीके साथ समागम करे।"

तत्रापि यावदर्थं यावदेव तृप्तिलक्षणोऽर्थो निष्पद्यते तावदेव संप्रयुज्यन्ते। न तु द्वितीयं संप्रयोगिणमपेक्षन्ते, किमस्य तृप्तिरभून्न वेति। तस्मादसमानार्थत्वादनुपाय आन्तरसंप्रयोगः ।

पशु पक्षियोंमें इसके साथ यह भी बात है कि, उनकी जबतक तृप्ति नहीं हो लेती तबतक सहवासमें प्रवृत्त रहते हैं। वे जिससे संगत हुए ह उसकी तृप्तिकी अपेक्षा नहीं करते कि यह तृप्त हुआ वा नहीं। यह मनुष्योंसे पशु पक्षियोंकी भिन्नता है,इस कारण उन्हें सुहबतके लिये उपायकी आवश्यकता नहीं।

तत्र समानार्थजन्यमेव प्रेम स्त्रीरक्षणोपायो नास्तीति मनुष्येष्वेवमिति चेदत एवास्योपदेशः । अन्यथान्यसमानार्थत्वादनुपायः । तत्पत्न्याः पुरुषान्तरगमने न कश्चित्पुरुषार्थोऽस्य स्यात् । तथा चोक्तम्—'भजते संभृतप्रेमा परं चेदस्य कामिनी । नष्टे धर्मे हते वृत्ते सुखं दूरे हतं कुलम् ॥' तस्मात्समानार्थताजन्यमेव प्रेम स्त्रीरक्षणोपायः। यच्च स्त्रीरक्षणार्थं मनुप्रोक्तमसुकुमारत्वसाधनार्थं कुट्टनादि गृहकर्म तदुपायोद्वेगजननादनुपाय एव । तथा चोक्तम्—'कर्माण्यसुकुमाराणि रक्षणार्थेऽवदन्मनुः । तासां स्रज इवोद्दामगजालानोपसंहिताः ॥ असति प्रेम्णि तत्सर्वमित्याचार्या व्यवस्थिताः । समानार्थतया तच्च न शास्त्रेणोपदिश्यते॥' इति ।

स्त्रीरक्षाका मुख्य उपाय–मनुष्योंमें स्त्री पुरुषकी तृप्ति एवं पुरुष स्त्रीकी तृप्तिका ध्यान रखता है एवम् पुरुषका अपनी तृप्तिके समान स्त्रीको भी तृप्ति करनेसे उत्पन्न हुआ प्रेम ही स्त्रीकी रक्षा करता है यह पशुओंमें नहीं है मनुष्योंमें है इस कारण मनुष्योंको कामशास्त्र द्वारा उपायका उपदेश दिया है, यदि पशु पक्षियों जैसी मनुष्योंमें भी अपनी ही तृप्तिकी चिन्ता हो तो फिर स्त्रीरक्षणका उपाय जो परस्परकी तृप्ति है उसे बतानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि एक सुयोग्य पुरुषकी स्त्री दूसरेके साथ सहवास करे तो उसका फिर कोई पुरुषार्थ ही नहीं रहता। कहा है कि–"जिसकी प्रियपत्नी परपुरुषगामिनी हो उसका धर्म नष्ट हो गया, चारित्र मिट गया, सुख दूर चला गया, कुल नष्ट हो गया।" इस कारण आपसकी एकसी तृप्तिसे होनेवाला प्रेम ही स्त्रीकी रक्षा करता है। इसके सिवा जो मनु महाराजने नाजुकपनेके हटानेके लिये कूटना पीसना आदि घरके कार्य करने बताये हैं वे उपाय उस उपायमें उद्वेग पैदा करनेवाले होनेके कारण अनुपाय ही हैं। यही कहा भी है कि–"स्त्रियोंकी रक्षाके लिये मनुने जो घरके कठोर काम करानेके लिये कहा है वे इसी प्रकार हैं जैसा कि मत्त हाथीको फूलोंकी मालासे बाँधना है। यदि कामशास्त्रके आचार्योंका बताया प्रेम नही है तो सभी व्यर्थ है, यह इस शास्त्रके आचार्योंका निश्चय है। स्त्रीकी रक्षा करनेवाली समान तृप्तिकी शिक्षा सिवा कामशास्त्रके दूसरा कोई शास्त्र नहीं देता।"

अबुद्धिपूर्वकत्वादिति–धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिः स्यादित्येवं बुद्धिपूर्वं न प्रवर्तन्तं, केवलं पशुधर्ममात्रेणेत्यनुपायः प्रत्यय आन्तरसंप्रयोगः। अनुबन्धोपायरहितत्वात्। तस्मादेवरक्ताः किंशुका इति किं तिर्यग्योनिषु शास्त्रप्रणयनेन। अनुकूलेषु वा पुरुषेषु। इतरत्र तु विपर्ययेण सोपायः प्रत्यय इति युक्तं शास्त्रप्रणयनम् ॥ २० ॥

पशु पक्षी आदि जो ग्राम्य धर्मेंम प्रवृत्त हात हैं वे यह शोचकर प्रवृत्त नहीं होते कि इसके विधिपूर्वक करनेसे धर्म होगा, सन्तान पैदा होगी, स्त्रीकी तृप्तिका ध्यान रखनेसे उसकी रक्षा रहेगी, कुटुम्ब बढेगा, वे तो पशुधर्ममात्रसे प्रवृत्त होते हैं इस कारण उनका रमण इस शास्त्रके बताये उपायोंके विना ही होता है क्योंकि उनके यहां कामके साथ दूसरे पुरुषार्थ और उपाय नहीं

होते । पलाश, दैवके ही रंगे रंगाये होते हैं, उन्हें दूसरा कोई नहीं रंगता । इस कारण पशु पक्षी आदिकोंके लिये शास्त्र बनानेकी क्या आवश्यकता है एवम् अनुकूल पुरुषोंमें भी विशेष आवश्यकता नहीं । यदि आपसकी अनुकूलता नहीं है तो दोनों संप्रयोग विना उपायके नहीं हो सकते, इस कारण शास्त्रका बनाना आवश्यक है ॥ २० ॥

धर्मपर शंका ।

धर्मे विप्रतिपत्तिमाह—

अज्ञानियोंके धर्मविषयक सन्देह बताते हैं कि—

न धर्मांश्चरेत । एष्यत्फलत्वात । सांशयिकत्वाच्च ॥२१॥

धर्मका फल भविष्यमें कहा है इसमें होगा या नहीं यह संदेह रहता है इन दो कारणोंसे धर्म न करना चाहिये ॥ २१ ॥

एष्यत्फलत्वादिति—यज्ञादयो नैहलौकिका जन्मान्तरफला उक्ताः । हस्तगतद्रव्यत्यागं न प्रेक्षावान्समीहते किं त्विहैव तेन कृष्यादिफलं निष्पाद्योपभुङ्क्ते, न परम्परामपेक्षते । सांशयिकत्वाच्च भविष्यतः फलस्येति । उपस्कारतस्तपश्चर्याक्लेशादर्थक्षयाच्च निष्पादितेऽपि यज्ञादौ ततः किं स्वर्गादिफलं स्यान्न वेति संदिग्धम्, कारणानां कार्योत्पादननियमादर्शनात् । संदिग्धे च कोऽसंशयितार्थत्यागेन प्रवर्तत इति हेतुद्वयम् ॥ २१ ॥

यज्ञ आदिक इस लोकमें फल नहीं देत किन्तु आपने उनका फल दूसरे जन्मोंमें बताया है । कोई भी बुद्धिमान् हाथमें आये द्रव्यको यों ही छोड़ना नहीं चाहता, किन्तु यहां ही उस पैसेको खेती आदिमें लगाकर उसका फल भोगता है, वह इस परंपराकी आवश्यकता नहीं रखता कि, धनसे यज्ञ करे, यज्ञसे अपूर्व बने उससे फिर समयपर फल हो । क्योंकि होनेवाले फलमें संदेह ही रहता है । अतः शरीरशोधन और तपश्चर्य्या आदिके क्लेशसे एवम् धन नष्ट करके यज्ञ कर लेनेपर भी स्वर्ग होगा या नहीं यह संदेह ही रहेगा, इसका कारण यह है कि, कारण सर्वदा ही कार्य करते हैं ऐसा नियम नहीं देखा जाता । हो या न हो इस संदेहकी हालतमें कौन असंदिग्ध अर्थोंका त्याग करनेको प्रवृत्त होगा । इस धर्मके न करनेके विषयमें ये दो हेतु हैं—पहिला भविष्यफल तथा दूसरा संदेह ॥ २१ ॥

विप्रतिपत्तिके पहले हेतुपर लोक प्रसिद्धि ।

तत्र प्रथमस्य लोकप्रसिद्धिमाह—

विप्रतिपत्तिके पहले हेतुपर लोककी रीति दिखाते हैं कि—

को ह्यबालिशो हस्तगतं परगतं कुर्यात् ॥ २२ ॥

कौन अवाल स्वभावका यानी समझदार पुरुष होगा जो हाथके धनको दूसरेके हाथमें करेगा ॥ २२ ॥

को हीति । अबालिशः प्रेक्षावान् । यथा कश्चित्स्वहस्तगतं द्रव्यं परहस्तीकृतं कार्यकाले स्वयं गत्वा साध्यं हारितं भक्षितं वानेन स्यादिति न विप्रकृष्टं करोति । तथा जन्मान्तरे भोक्ष्येऽहमिति यज्ञादिषु नियोज्य विप्रकृष्टं कः कुर्यात् ॥ २२ ॥

यदि अपना धन दूसरेके हाथमें दे दिया जाय तो जरूरत पड़नेपर स्वयं जाकर ही प्राप्त करना पड़ेगा, यदि जिसके पास रखा गया है उसने हार दिया या भोग लिया तो फिर कुछ भी हाथ नहीं आता, इस कारण कोई भी बुद्धिमान् अपने धनको दूसरोंके हाथमें देकर अपनेसे दूर नहीं करता । इसी तरह मैं जन्मान्तरमें भोगूंगा इस भावनासे कौन यज्ञादिकोंमें धन लगाकर अपनेसे दूर करेगा ॥ २२ ॥

तत्र तत्स्यादिह द्रव्यसाध्यं फलं तावन्मात्रकं तावत्कालं वामुत्र विपरीतमित्याह–

यदि यह कहो कि विना धर्मके द्रव्यका उतना ही फल होता है; किन्तु धर्ममें लगा देनेपर अनन्त कालतक अनन्तगुना फल होता है, इसका उत्तर देते हैं कि–

वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात् ॥ २३ ॥

कलके मोरसे आजका कबूतर ही अच्छा ॥ २३ ॥

वरमद्येति । यथा पक्षिमांसार्थिनो महतः श्वो मयूरलाभादद्य कपोतलाभोऽपि गरीयांस्तद्वदिहापीति ॥ २३ ॥

जैसे शिकार खेलनेको गये हुए शिकारीके लिये कलके मोरके मिलनेसे उसी समय छोटा कबूतर मिल जाना ही अच्छा है, इसी तरह यहां भी यज्ञादिक द्वारा होनेवाले दूसरे जन्मके बड़े भारी भोगसे यहां उस धनसे तत्काल थोड़ा ही भोग अच्छा है ॥ २३ ॥

विप्रतिपत्तिके दूसरे हेतुपर लोकप्रसिद्धि ।

द्वितीयस्य लोकप्रसिद्धिमाह––

विप्रतिपत्तिके दूसरे हेतुकी दुनियाँकी चाल बताते हैं कि–

वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकः कार्षापणः । इति लौकायतिकाः ॥ २४ ॥

संदिग्ध निष्कके लाभसे निःसंदेहका कार्षापणका ही लाभ अच्छा है; यह लौकायतिकोंका सिद्धान्त है ॥ २४ ॥

वरमिति । गृहाण कार्षापणम्, नो चेदेष्यति मेऽद्य हेमशतं ततो निष्कं दास्यामीति । तत्र प्रत्युपस्थितकार्यस्यासंदिग्धः स्वल्पोऽपि कार्षापणो गरीयान् । संदिग्धनिष्कात् । लौकायतिका इति लौकायतमधीयते ये । उक्थादिपाठाट्ठक्प्रत्ययः ॥ २४ ॥

किसीने किसीसे कहा कि, अब लेना है तो कार्षापण ले लो यदि नहीं तो जो मुझे अब सौ हेमोंकी प्राप्ति होगी तो तुम्हें एक निष्क दूंगा । इसमें निष्कके बारेमें तो संदेह है कि उसे सौ हेम आयेंगे तब हो वो देगा नहीं तो नहीं; किन्तु कार्षापण उसी समय दे रहा है इसमें कोई संदेह नहीं है उस निष्कसे यह कार्षापण ही अच्छा है ? ऐसा नास्तिक शास्त्रोंके विद्यार्थी कहा करते हैं २४॥

धर्मकी शंकाओंका उत्तर ।

तत्र संप्रतिपत्तिमाह—

धर्मपर की गई शंकाओंका उत्तर देते हैं कि—

शास्त्रस्यानभिशङ्क्यत्वादभिचारानुव्याहारयोश्च क्वचित्फलदर्शनान्नक्षत्रचन्द्रसूर्यताराग्रहचक्रस्य लोकार्थं बुद्धिपूर्वकमिव प्रवृत्तेर्दर्शनाद्वर्णाश्रमाचारस्थितिलक्षणत्वाच्च लोकयात्राया हस्तगतस्य च बीजस्य भविष्यतः सस्यार्थे त्यागदर्शनाच्चरेद्धर्मानिति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

शास्त्र, शंकाका स्थान नहीं होता, कहीं अभिचार कर्म, शान्तिक और पौष्टिक कर्मोंका फल भी देखा जाता है, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य्य, ताराग्रह और उनके चक्रकी ज्ञानपूर्वककी तरह प्रवृत्तिके देखनेसे एवम् वर्ण और आश्रमोंकी उनके धर्मसे ही व्यवस्था होनेके कारण तथा हाथके बीजका होनेवाले सस्यके लिये त्याग देखनेसे धर्मोंको करना चाहिये यह वात्स्यायन आचार्यका मत है ॥ २५ ॥

---

१ " ऋतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४ । २ । ६० ॥ " इस सूत्रसे ठक् प्रत्यय होकर " लौकायतिक " शब्द सिद्ध होता है ।

शास्त्रस्येति । धर्मस्यालौकिकत्वात्तदभिधायकं शास्त्रमुक्तम्, तच्छास्त्रं पौरुषेयमपौरुषेयं च, तत्र पूर्वमभिशङ्कनीयम्——किमिदं सत्यं मिथ्या वेति, पुरुषा हि रागादिभिरविद्यया चोपप्लुता वितथमपि ब्रुवन्ति । अपौरुषेयं च वेदाख्यं पुरुषसंबन्धाभावाददुष्टमनभिशङ्कनीयम् । यथोक्तम्——' दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयस्य युज्यते । वेदे कर्तुरभावात्तु दोषशङ्कैव नास्ति नः ॥' इति । अपौरुषेयत्वसाधनमन्यत्रोक्तम् । तेनेह चरेद्धर्मानिति संबन्धः । तेन संशयितत्वादित्येतदसिद्धम् ।

अलौकिक धर्मका ज्ञापक शास्त्र बताया है, यह शास्त्र पौरुषेय और अपौरुषेय भेदसे दो प्रकारका है, इन दोनोंमें पुरुषोंके कहे पौरुषेय शास्त्रमें सच्चे झूठेकी शंका हो सकती है, क्योंकि मनुष्य राग आदिकोंमें और अविद्यामें डूबे रहते हैं इस कारण झूठ भी बोलते हैं । पर ईश्वरीय वेदमें किसी पुरुषका संबन्ध नहीं है इस कारण न तो वह दुष्ट है एवम् न शंकाके ही योग्य है । कहा भी ऐसा ही है कि—"दोष हैं वा नहीं हैं यह शंका पुरुषोंके कहे वचनोंमें हो सकती है पर वेदका कोई कर्ता नहीं है, इस कारण वेदमें तो दोषोंकी शंकाका भी स्थान नहीं है ।" वेदोंको अपौरुषेय हम दूसरी जगह सिद्ध कर चुके हैं इस कारण वेदके कहे धर्मोंका पालन करना चाहिये । इस प्रतिपादनसे उस शंकाका उत्तर हो गया जो कि धर्मोंके फलोंको संदिग्ध कहकर की थी ।

अभिचारो हिंसात्मकं कर्म । अनुव्याहारः शान्तिकपौष्टिकम् । तयोश्चोदितयोः ' अभिचरञ्श्येनेन यजेत' इत्यादिना । क्वचिदिति यत्र प्रयुज्यते [तत्र] हिंसाशान्तिपुष्टिफलदर्शनाच्छेषस्याप्यग्निहोत्रादेः स्वर्गादिफलं भविष्यतीति चरेद्धर्मान् । नह्यपौरुषत्वेनाभिन्नयोः शास्त्रावयवयोर्वितथावितथत्वभेदो युज्यते । वितथत्वे चेतरस्यापि वितथत्वप्रसङ्गात् ।

अभिचार—वह कर्म कहाता है जिससे वैरीका मारणादिक करते हैं । जैसे कि श्रुतियोंने वैरीके संहारके लिये श्येन यागका विधान किया है (तथा और भी ऐसे ही अनेक कर्म अथर्वमें देखनेमें आते हैं ।) अनुव्याहार—शान्तिक और पौष्टिक कर्म्मोंको कहते हैं । (इन दोनोंसे अथर्ववेद और ब्राह्मण भाग भरापड़ा है) विधिपूर्वक इनका प्रयोग जहां कहीं होता है वहीं इनका फल देखा जाता है । यह बात नहीं हो सकती कि जो कि शास्त्रके अवयव अपौरुषेय रूपसे एक हैं तो उनमें एक झूठा हो तथा दूसरा सच्चा हो, यदि एक झूठा हो तो दूसरेको

भी झूठा ही हुए रहेगा। इससे सिद्ध हो गया कि इनकी तरह अग्निहोत्र आदिके भी स्वर्गादि फल अवश्य होंगे, इस कारण धर्म करना चाहिये।

अदृष्टसाधनमाह—नक्षत्रेति । नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि । चन्द्रसूर्यौ प्रसिद्धौ । ताराग्रहा अङ्गारकादयः पञ्च । तेषां चक्रमिव चक्रं संनिवेशविशेषो द्वादशराशिविभक्तः । तस्य—लोकार्थं नात्मार्थम् । बुद्धिपूर्वकमिवेति—बुद्धिपूर्वकस्येव । यथा कश्चित्पुरुषो बुद्धिपूर्वं प्रवर्तते तद्वदेवैते सूर्यादयो नक्षत्रेण युज्यमाना अन्यथान्यथा प्रवर्तमाना दृश्यन्ते । न च तथैवेतीवार्थः । तथा ह्येषां न 'लोकस्येदं करिष्यामः' इति प्रवृत्तिः ।

अदृष्ट साधन—अश्विनी भरणी आदिक २७ नक्षत्र हैं, सूर्य्य और चंद्रमा प्रसिद्ध हैं। मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि ये पांच तारेके रूपमें दीखनेवाले ग्रह हैं। इनकी शिशुमार चक्रमें उचित योजना हो रही है तथा मेष, वृष आदि बारह राशियाँ भी उसी चक्रमें हैं जिनपर ये आते जाते रहते हैं। जैसे मनुष्य विचारके साथ शोच कर भला बुरा करते देखे जाते हैं उसी तरह ग्रहगण भी नक्षत्रोंके साथ युक्त होकर लोकके लिये, न कि अपने लिये उलटे सीधे प्रवृत्त हुए दीखते हैं। पर मनुष्यों तथा ग्रहोंमें यह अन्तर है कि ग्रह मनुष्योंकी तरह भला बुरा करते दीखते ही हैं पर वे नक्षत्रोंपर भला बुरा शोच कर नहीं जाते। इसी कारण मनुष्योंकी तरह कहा है बिलकुल मनुष्य नहीं।

सा च शास्त्रान्तरे बहुप्रकारोक्ता। दर्शनादिति वचनात्प्रत्यक्षप्रमाणसिद्धेति दर्शयति । तस्यां च प्रवृत्तौ लोकस्य शुभाशुभात्मकं फलं द्विविधम् । साधारणमसाधारणं च । तत्र साधारणं सुभिक्षदुर्भिक्षादि । तच्च ग्रहचारे द्रष्टव्यम् । असाधारणं तु प्रतिसत्त्वं नियतं लाभालाभसुखदुःखादि । तच्च जातके द्रष्टव्यम् । सैवंविधा प्रवृत्तिः कारणान्तरमदृष्टं गमयति । तच्च लोकस्य शुभाशुभात्कर्मणः । किमन्यथैषामेकरूपाणां कारणान्तरनिरपेक्षाणां सदा प्रवृत्तिरप्रवृत्तिर्वा स्यात् । कालान्नियम इति चेत्सोऽपि कारणनिरपेक्षः सर्वदा स्यात् । तस्मादस्ति तत्प्रवर्तकमदृष्टमिति चरेद्धर्मम् । उक्तं च—'नक्षत्रग्रहपञ्जरमहर्निशं लोककर्मविक्षिप्तम् । भ्रमति शुभाशुभमखिलं प्रकाशयत्पूर्वजन्मकृतम् ॥' इति ।

ज्योतिष शास्त्रमें इनकी चालके अनेक प्रकारके फल कहे हैं, तथा उनके फल प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। इन ग्रहोंकी चालसे अच्छा और बुरा दो तरहका फल होता

है-एक साधारण तथा दूसरा असाधारण है । इसका सर्व साधारण फल सुकाल, दुष्काल ह जो सबके लिये होते हैं यह गोचर ग्रहमें देखना चाहिये । असाधारण फल तो हर एक प्राणीके लिये नियमित है इसे जातक आदिमें देखना चाहिये । ये ग्रह किसीके लिये सुखदायी तथा किसीके लिये दुःखदायी क्यों होते हैं इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये वह अदृष्ट ही हो सकता है । संसारके बुरे कर्मोंसे वे दुःखदायी तथा अच्छे कर्मोंसे सुखदायी होते हैं । यदि इनकी ऐसी प्रवृत्तिमें कोई कारण न हो तो वह या तो सदा रहे या कतई न हो । यदि यह कहो कि, कालसे ऐसा होता है तो यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि काल भी विना कारणके सदा ही करता रहे या सदा ही बना रहे । इससे यह सिद्ध हो गया कि, ग्रहोंकी इन प्रवृत्तियोंका कारण अदृष्ट-धर्म और अधर्म ही हैं, इस कारण धर्म करना चाहिये । कहा भी है कि-" नक्षत्र और ग्रहोंका पंजर संसारके अच्छे, बुरे कर्मोंके कारण घूमा करता है यह पहिले जन्मके किये सारे अच्छे, बुरे कर्मोंका फल देता रहता है ।" यानी जो इस जन्ममें धर्म करेगा उसे दूसरे जन्ममें सौम्य ग्रह मिलेंगे तथा इस जन्ममें जो पाप करेगा वह पापग्रहोंसे पीडित होगा ।

वर्णाश्रमेति-वर्णा ब्राह्मणादयः । आश्रमाः ब्रह्मचारिगृहस्थादयः । तेषामाचारः स्वधर्मः । तस्य स्थितिर्व्यवस्था । सैव लक्षणं यस्या लोकयात्रायाः सा । लौकायतिकैर्मा भूदव्यवस्थायां मात्स्यो न्यायः इति दृष्टार्थं वर्णिता । संवरणमात्रं हि त्रयी इति । लोकयात्राविद इति तां च लोकविश्वासनार्थमाचरद्भिः कथं नाचरितो धर्मः । दृष्टार्थश्च यद्यदृष्टार्थोऽपि स्यात्को विरोधः । एतेन 'न धर्मांश्चरेत्' इति प्रतिज्ञाया अभ्युपगमबाधां दर्शयति । यच्चोक्तमेष्यत्फलत्वादिति तद्दृष्टेऽप्यस्तीति दर्शयन्नाह—हस्तगतस्येति । तुल्ये भविष्यत्फलत्वे सत्यप्येकत्र प्रवृत्तिरन्यत्र निषेध इत्ययुक्तमुक्तम् । न कदाचित्तत्र दृष्टमिति चेत्कथं तर्हि लोकवैचित्र्यम् । नहि सर्वत्र समानादृष्टात्कारणादैश्वर्यादिफललाभः । नापि स्वाभाविकम्, तदा सिद्ध्यसिद्धिप्रसङ्गात् ॥ २९ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं । ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम हैं । अपने २ धर्मका पालन करना ही इनका आचार है । इसकी स्थिति रखने या करनेका नाम व्यवस्था है । इसीसे संसार चक्र चल रहा है । नास्तिकोंसे अव्यवस्था होकर एकको एक न खा जाय

इस बातको दिखानेके लिये लोकयात्रा कही है, जिससे कि संसार अकंटक चले । लोकयात्राके जाननेवाले कहते हैं कि, संवरणमात्र ही त्रयी है लोकके विश्वासके लिये त्रयीका आचरण करनेवालोंने कैसे धर्म नहीं पाला अर्थात् वेदोंके अनुसार चलनेवालोंने अवश्य ही धर्मका पालन किया । जो लोगोंके विश्वासकी वस्तु है यदि वो धर्मके लिये भी हो तो क्या विरोध है । इस कथनसे आचार्य्यने इस प्रतिज्ञाके स्वीकारमें बाधा दिखा दी जो कि, यह कहते थे कि धर्म न करना चाहिये । जो नास्तिकोंकी धर्मके विषयमें शंका थी कि, धर्मका फल भविष्यमें होनेवाला है इस कारण धर्म न करना चाहिये, यह केवल धर्ममें ही नहीं किन्तु खेती आदिकोंमें भी यही बात देखी जाती है कि हस्तगत बीजका त्याग सस्यके लिये करते हैं । जब दोनोंमें एकसी ही बात है तो एकस्थलमें प्रवृत्ति उचित तथा दूसरी जगह अनुचित हो यह कहना ठीक नहीं है । यदि यह कहो कि, खेतीके फलकी तरह धर्मका भी फल देखा तो यह धर्म और अधर्मका फल नहीं तो संसार इसी तरह विचित्र बन गया है क्या ? । कई मनुष्य एकसा ही प्रयत्न करते ह पर कोई ज्यादा एवम् कोई कम ऐश्वर्य्य क्यों पाता है । यदि इसे स्वाभाविक मानोगे तो या तो सबको ही सिद्धि मिलनी चाहिये या सबके पल्ले असिद्धि ही पड़ जानी चाहिये । इस कारण यह मानना पड़ेगा कि, इस विषमताका कोई कारण अवश्य है जिसने किसीको सुखी एवम् किसीको दुःखी बना रखा ह वह और कोई नहीं धर्म, अधर्म ही हैं ॥ २५ ॥

अर्थपर शंका ।

अर्थे विप्रतिपत्तिमाह—

धर्म जैसी बातें अर्थपर भी उपस्थित हो सकती हैं कि–

नार्थांश्चरेत । प्रयत्नतोऽपि ह्येतेऽनुष्ठीयमाना नैव कदाचित्स्युः, अननुष्ठीयमाना अपि यदृच्छया भवेयुः॥२६॥

अर्थोंको न करना चाहिये, क्योंकि कभी तो ये प्रयत्नके साथ अनुष्ठान करनेपर भी नहीं होते एवम् कभी विना ही अनुष्ठान किये भगवदिच्छासे अकस्मात् हो जाते हैं ॥ २६ ॥

नार्थानिति । उपायात्किलार्थसिद्धिः, उपायःनुष्ठानं च यत्नस्तथानुतिष्ठेदित्यर्थः, तदन्वयव्यतिरेकानुविधानादर्थसिद्धेः । यदाह—प्रयत्नत इति । प्रयत्नेनार्ज्यमाना नैव कदाचित्स्युरित्यर्थोक्तम्, यदा स्युस्तदा कालसंनिधानाद्धिति मन्यन्ते ।

अनुष्ठीयमानाः प्रयत्नेनेत्यर्थः । यदृच्छयेत्येवमेव स्युः । अकस्मान्निधानादिदर्शनात् । तस्मादुपायपरिज्ञानार्थं शास्त्रमप्यनर्थकम् ॥ २६ ॥

यह कहते हैं कि उपायसे निश्चय ही अर्थसिद्धि होती है, उसके लिये प्रयत्न करना ही उपायोंका अनुष्ठान है, वह करना चाहिये, क्योंकि अर्थ-सिद्धि उपायोंसे हुई देखी जाती है तथा विना उपाय किये नहीं होती । इसके उत्तरमें ही यह सूत्र किया है कि प्रयत्नसे अनुष्ठान करनेपर भी अर्थ नहीं देखे जाते अतः जब वे प्रयत्नसे हो जाते हैं तो उन्हें समझना चाहिये कि उनके होनेका समय ही है (ऐसा कालचिन्तक कहते हैं) कभी विना परिश्रमके ही किसीको खजाने मिल जाते हैं इस कारण अर्थके उपाय ज्ञानके लिये अर्थ-शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है ॥ २६ ॥

कालवादी ।

किं कृतं तर्ह्येतदित्याह—

क्या यह सब किया गया इस प्रश्नके उत्तरमें कहते हैं कि—

तत्सर्वं कालकारितमिति ॥ २७ ॥

वह सब कालका कराया हुआ है ॥ २७ ॥

कालो नाम द्रव्यपदार्थो नित्यः । तेन कारितमिति प्रयोजकव्यापारेण पुरुषस्य परायत्ततामाह ॥ २७ ॥

काल एक द्रव्य पदार्थ है वह नित्य है वह सब कालने ही कराया है उसका प्रेरक काल ही है, पुरुष कालके अधीन है ॥ २७ ॥

तदेव दर्शयन्नाह—

पुरुष, कालके अधीन है इसी बातको दिखाते हुए सूत्र करते हैं—

काल एव हि पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुख-दुःखयोश्च स्थापयति ॥ २८ ॥

क्योंकि काल ही पुरुषोंको अर्थ, अनर्थ, जय, पराजय, सुख और दुःखमें स्थापित करता है ॥ २८ ॥

काल एवेति । हेयोपादेयाः षट्पदार्था लाभालाभादयः । तेषु काल एव मूलमिति न त्यागोपादानार्थं स्वयं यत्नमातिष्ठेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

अर्थ, जय और सुख ये तीन उपादेय पदार्थ तथा अलाभ, पराजय और दुःख ये हय पदार्थ हैं, उपादेय और हेय दोनों मिलकर छः पदार्थ होते हैं।

इन सबोंमें काल ही मूल कारण है इस कारण इनके त्याग और ग्रहणके लिये स्वयम् कोई यत्न न करे यह इस सूत्रका तात्पर्य है ॥ २८ ॥

लोक प्रसिद्धि ।

लोकप्रसिद्धिमाह—

कालको कारण माननेवालोंके व्यवहार बताते हैं कि—

कालेन बलिरिन्द्रः कृतः । कालेन व्यवरोपितः ।
काल एव पुनरप्येनं कर्तेति कालकारणिकाः ॥ २९ ॥

कालने बलिको इन्द्र बनाया । उसीने उसे उससे हटा दिया । यही फिर उसे इन्द्र करेगा ऐसा कालको कारण माननेवाले मानते हैं ॥ २९ ॥

कालेनेति । हेयप्रकृतिकोऽप्यसुरत्वादनर्होऽपि शाक्रे पदे प्रेरितः स्थापितः । व्यवरोपित इति–परिवर्तमानेन तस्मात्पदादपनीय पाताले नियोजितः । पुनरप्येनं कर्तेति–विपरिवर्तिष्यमाणः प्रेरयन्निन्द्रं करिष्यतीत्यर्थः । तथा चाहुः—'कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥' कालकारणिका ये कालकारणमधीयते । ईश्वरकारणिका अप्येवमेव द्रष्टव्याः । तुल्ययोगक्षेमत्वात् ॥ २९ ॥

यद्यपि बलि अहंकारी था एवम् असुर होनेके कारण पूज्य भी नहीं था पर कालने उसे इन्द्रके पदपर स्थापित कर दिया । जब बलिका समय बदला तो उसने उस पदसे हटाकर पाताल भेज दिया । जब वह फिर बदलेगा तो फिर इसे प्रेरित करके इन्द्र बना देगा । कहा भी करते हैं कि–"काल ही प्राणियोंको सिद्ध करता है, यही संहार करता है, सबके सो जानेपर यह काल ही जगता रहता है इसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता।" जिस तरह कालको कारण माननेवाले कालको कह रहे हैं इसी तरह ईश्वरको कारण माननेवाले भी ईश्वरके लिये कहते हैं, क्योंकि दोनोंका एकसाही ढंग है ॥२९

सबका उत्तर ।

अत्र संप्रतिपत्तिमाह—

इन सब शंकाओंका उत्तर देते हैं कि–

पुरुषकारपूर्वकत्वात्सर्वप्रवृत्तीनामुपायः प्रत्ययः ॥ ३० ॥

सब प्रवृत्तियाँ पुरुषार्थपूर्वक हुआ करती हैं इस कारण उपाय मानना चाहिये३०

पुरुषकारपूर्वकत्वादिति–कालादुपायतो वार्थसिद्धयै तदर्थिनो याः प्रवृत्तयस्ताः सर्वाः पुरुषकारपूर्विकाः द्रष्टव्याः, उभयत्रापि पुरुषकारस्य व्याप्रियमा-

णत्वात् । पुरुषकारश्चोपायं विना नार्थं साधयतीत्युपायः प्रत्ययः । कारणमर्थसिद्धेरित्यर्थः ।

कालसे वा उपायसे किसीसे भी अर्थ सिद्धि हो पर उसके लिये उसके चाहनेवालोंकी जितनी भी प्रवृत्तियाँ हैं वे सब पुरुषार्थ पूर्वक ही समझनी चाहियें, क्योंकि उपाय और काल दोनोंमें ही पुरुषार्थ घुसा हुआ है। पुरुषार्थ विना उपायके अर्थ सिद्ध नहीं कर सकता इस कारण उपाय मानना चाहिये यही अर्थसिद्धिका कारण है ।

यथैव हि पुरुषकारोऽर्थसिद्धौ कालमपेक्षते तथा शक्तिदेशसाधनान्युपायमपेक्षन्ते, तेषु सर्वेष्वसत्सु कालस्याकिंचित्करत्वात् । असति काले तेषामसामर्थ्यात् । तस्माच्छक्तिदेशकालसाधनानि परस्परापेक्षाणि कार्यस्य साधकानीति तान्येवोपायः । तत्र शक्त्यादिषु पुरुषकारादर्थसिद्धिः । अनन्तगुणेषु त्ववश्यमेव कदाचित् स्याद्यादृच्छिकी कस्यचिदर्थसिद्धिः । सापि यादृच्छिकमेवोपायमाश्रित्य ॥ ३० ॥

जिस प्रकार पुरुषार्थ अर्थसिद्धिके निमित्त कालकी अपेक्षा करता है उसी तरह शक्ति, देश और साधन उपायकी अपेक्षा रखते हैं, यदि ये सब न हों तो काल कुछ भी नहीं कर सकता। इसी तरह यदि काल न हो तो ये भी कुछ नहीं कर सकते। इससे यह सिद्ध हुआ कि, शक्ति, देश काल, साधन एक दूसरेके सहकारसे कार्यके साधक होते हैं। ये ही सब उपाय कहे जाते हैं। इन सबके होनेपर पुरुषार्थ करनेसे अर्थकी सिद्धि होती है । यदि ऐसे ही अनन्त गुण हों तो अवश्य ही कभी किसीको अचानक ही अर्थकी सिद्धि हो जाय वह भी आकस्मिक दैवी ही उपायका आश्रय लेकरके होती है ॥ ३० ॥

यदाह—

अवश्यंभाविनोऽप्यर्थस्योपायपूर्वकत्वादेव । न निष्कर्मणो भद्रमस्तीति वात्स्यायनः ॥ ३१ ॥

वात्स्यायन आचार्य्य कहते हैं कि, अवश्य होनेवाला अर्थ भी उपायसे ही होता है, अतः निकम्मेका कल्याण नहीं ॥ ३१ ॥

अवश्यमिति । यतश्चैवं तस्मान्निष्कर्मण उपायानुष्ठानरहितस्य । भद्रं कल्याणम् । पूर्वजन्मकृतं कर्म निष्फलं प्रसज्येतेति चेत्, न । परस्परापेक्षमुभयं फलतीति द्रष्टव्यम् । यथोक्तम्—' दैवं मानुषं हि कर्म लोकं पालयति ' । एतेन दैवमात्रवादोऽपि प्रत्युक्तः ॥ ३१ ॥

जो उपायोंका अनुष्ठान नहीं करता उसे आनन्द कहां ? यदि यह कहो कि, उपायसे ही कार्य्य सिद्ध होता है तो पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म निष्फल हो जायगा यह नहीं कह सकते, क्योंकि गतसूत्रमें बता चुके हैं आपसकी अपेक्षा रहते हुए दोनों ही फलते हैं। यह कहा भी है कि–"दैव और मनुष्यके कर्म लोकका पालन करते हैं" इस कथनसे उनका भी खण्डन कर दिया जो कि, सब कुछ दैवको ही मानते हैं॥ २१॥

कामके दोष।

कामविप्रतिपत्तिमाह—

इसी तरह कामके दोषोंको भी बताते हैं कि–

न कामांश्चरेत् । धर्मार्थयोः प्रधानयोरेवमन्येषां च सतां प्रत्यनीकत्वात् । अनर्थजनसंसर्गमसद्व्यवसाय-मशौचमनायतिं चैते पुरुषस्य जनयन्ति॥ ३२॥

कामोंका अनुष्ठान न करना चाहिये क्योंकि यह प्रधान धर्मार्थोंका और सज्जनोंका वैरी है। कामके अनुष्ठान करनेवाले पुरुषको अनर्थ जनोंका संसर्ग बुरे व्यवसाय, अशौच और अप्रभावको पैदा करते हैं॥ ३२॥

न कामानिति। प्रधानयोरिति–ताभ्यां कामोत्पत्तेः। प्रत्यनीकत्वादिति–कामासक्ततया धर्मस्यानाचरणात्, तद्विलोमाचरणाच्च। अर्थस्यानर्जनात्। मद्य-भाटीपारितोषिकासद्व्ययाद्विरोधवर्ती कामः।

धर्म और अर्थसे काम मिलता है इस कारण ये प्रधान हैं। कामासक्त होनेसे धर्माचरण नहीं किया जा सकता तथा उलटा अधर्म करना पड़ता है। अर्थका उपार्जन नहीं किया जा सकता। तथा मद्य, जाम आदि नशेबाजोंमें एवम् गाने बजानेवाली आदिकोंके इनाममें धनका बुरा व्यय होता है इस कारण सूत्रमें कामको धर्म अर्थका वैरी बताया है।

सतामिति–ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धाः सन्तः कामासक्तं त्यजन्ति। तेषां च प्रत्य-नीकवर्तिनोऽनर्थजना नटनर्तकगायनादयः, तैः संपर्कं जनयन्ति। असद्व्य-वसायम्--अशोभनव्यवसायं निशीथाभिसरणप्राकारलङ्घनादिकम्। अशौचं-यथोक्तशौचाकरणात्। अनायतिमप्रभावं कामगर्दभ इति॥ ३२॥

ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध और महात्मा जन कामासक्त पुरुषका त्याग कर देते हैं। उनसे बिलकुल उलटा व्यवहार करनेवाले असज्जन धनके गाहक नट नाचने

व गाने बजानेवालोंके साथ संपर्क हो जाता है। कामियोंको समय पड़ने पर आधीरातको भी मिलने पहुँचना पड़ता है, बड़ी २ दीवारें भी उलाँघनी पड़ती हैं। शौचका वैध पालन नहीं होता। प्रभाव नहीं रह पाता। जान जानेपर लोग उसे कामका गदहा बताते हैं ॥ ३२ ॥

तथा प्रमादं लाघवमप्रत्ययमग्राह्यतां च ॥ ३३ ॥

इसी तरह प्रमाद, चपलता, अग्राह्यता भी हो जाती है ॥ ३३ ॥

तथा प्रमादं शरीरोपघातं परदारादिगमनादौ । लाघवं तारल्यं सहसाप्रवर्तनात् । अप्रत्ययमविश्वासमसत्सङ्गमात् । अग्राह्यतां हेयतामपूज्यवृत्तित्वात्॥३३॥

पराई स्त्रीके गमनमें प्रमाद यानी थोड़ीसी असावधानीमें शरीरका उपघात भी होजाता है। सहसा प्रवृत्त होनेके कारण वृत्तियोंमें चंचलता आ जाती है। बुरे पुरुषोंके साथ करनेवाले कामियोंका सज्जन पुरुष विश्वास नहीं करते। बुरी वृत्ति (वर्तावों) के कारण लोगोंकी दृष्टिमें वह हेय हो जाता है ॥ ३३ ॥

बहवश्च कामवशगाः सगणा एव विनष्टाः श्रूयन्ते ॥ ३४॥

यह भी एक बात है कि, कामके वशी हुए बहुतसे पुरुष अपने अनुयायियों तथा अपने परिवारवालोंके साथ मिट गये ऐसा सुना जाता है ॥३४॥

बहवोऽनेके कामायत्ता विनष्टा इति संबन्धः । सगणाः । न केवलं सेवितारः, तत्परिवारा अपीत्यर्थः ॥ ३४ ॥

सूत्रका यह अन्वय है कि बहुतसे कामके वश होकर नष्ट होगये। यह बात नहीं कि वे ही, किन्तु उनके परिवार भी मिट गये ॥ ३४ ॥

दोषोंके उदाहरण।

तथा च दृढीकरणार्थमाख्यानकम्—

३४ वें सूत्रकी कही हुई बातको पुष्ट करनेके लिये प्राचीन बातोंके कुछ उदाहरण देते हैं—

यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश ॥ ३५ ॥

जैसे कि भोज वंशका दाण्डक्य राजा कामसे प्रेरित होकर ब्राह्मणकी कन्याको अपनी कामतृप्तिका उपकरण माननेके कारण भाइयों और राष्ट्रके साथ नष्ट हो गया ॥ ३५ ॥

दाण्डक्य इति संज्ञा । भोज इति भोजवंशजः । अभिमन्य ऽभिगाच्छन् । स हि मृगयां गतो भार्गवकन्यामाश्रमपदे दृष्ट्वा जातरागो रथमारोप्य जहार।

ततो भार्गवः समित्कुशानादायागत्य तामपश्यन्नभिध्याय च यथावृत्तं राजानमभिशशाप । ततोऽसौ सबन्धुराष्ट्रः पांसुवर्षेणावष्टब्धो ननाश । तत्स्थानमद्यापि दण्डकारण्यमिति गीयते ॥ ३५ ॥

दाण्डक्य राजाका नाम है । भोजका तात्पर्य भोज वंशीसे है। अभिमननका तात्पर्य अभिगमन है । यह इतिहास इस तरह है कि, भोजवंशी दाण्डक्य राजा शिकार खेलने गया, आश्रममें भार्गवकी लड़कीको देखकर दीवाना हो गया, उसे हर रथमें रख कर चल दिया । भार्गव उस समय समिध और कुशा लेने जंगलमें गये थे लेकर आये तो लड़कीको आश्रममें न देखा समाधि बलसे जान गये कि, लड़कीको दाण्डक्य भोज हर ले गया । आपने झट उसे शाप दे दिया । उनके शापसे उसके राज्यपर घोर रेत बरसी जिससे वह उसका परिवार अनुयायी और राष्ट्र सब नष्ट हो गया । अब भी वह स्थान दण्डकारण्य कहा जाता है ॥ ३५ ॥

देवराजश्चाहल्यामतिबलश्च कीचको द्रौपदीं रावणश्च सीतामपरे चान्ये च बहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्थचिन्तकाः ॥ ३६ ॥

इन्द्र अहिल्याके गमनसे, अत्यन्त बलवान् कीचक द्रौपदीकी चाहमें और रावण सीताके ध्यानमें विनष्ट हुआ तथा इनके सिवा अनेकों कामके वशीभूत हुए नष्ट होते देखे गये हैं ऐसा अर्थशास्त्री कहते हैं ॥ ३६ ॥

देवराज इन्द्रोऽहल्यामभिमन्यमान इत्येव । स हि गौतमाश्रमे तद्भार्यामहल्यां चकमे । ततः समित्कुशानादायागते गौतमे तद्भार्याहल्या शक्रं गर्भस्थमकरोत् । तद्दैवोपनिमन्त्रणेन गौतमः सभार्य एवाश्रमान्तरं गतः । ततस्तेन योगचक्षुषा समुपलब्धेन्द्रागमनेनास्मै समुपनाथितमासनत्रयं दृष्ट्वा चासौ किमेतद्भार्याद्वितीयस्य ममेति जाताशङ्को ध्यानेन यथावृत्तमवलोक्य रोषात्सहस्रभगो भवेति शशाप । ततोऽसौ देवराजोऽपि कामाद्विनाशप्रख्यां तादृशीमवस्थामाससाद, यस्याद्यापि कलङ्कोऽहल्यायै जार इति नास्तमेति । अतिबलो नागसहस्रबलत्वात् । सोऽपि कामाद्द्रौपदीमभिलषन्भीमसेनेन हत इति प्रतीतमेतत् । विनश्यन्तो दृश्यन्त इत्यत्र प्रत्यक्षं प्रमाणम्, किं तत्र पूर्ववृत्तोदाहरणेनेति मन्यन्ते ॥ ३६ ॥

इन्द्र अहिल्याके गमनसे कैसे नष्ट हुआ इसको दिखाते हैं कि-महर्षि गौतमके आश्रममें इन्द्रने अहिल्याके साथ गमन किया । जब महर्षि समिध और कुशाओंको लेकर अपने आश्रममें आये तो ऋषिके डरसे अहिल्याने इन्द्रको अपने गर्भमें छिपा लिया । उन दोनोंका किसी दूसरे आश्रममें निमंत्रण था इस कारण उसी समय अहिल्याको साथ लेकर वे भोजन करने उस आश्रममें चल दिये । जिसके यहां भोजन करने गये थे उसने योग दृष्टिस देखकर जान लिया कि इन्द्र भी इनके साथ है वह अहिल्याके गर्भमें छिपा हुआ है मुझे इसको भी सम्मानपूर्वक जिमाना चाहिये इस कारण उन दोनों अतिथियोंके लिये स्थानधारी ऋषिने तीन आसन दिये । यह देखकर शंकासे गौतमने सोचा कि मेरे साथ तो केवल मेरी पत्नी ही है यह तीसरा आसन किसको दिया, ध्यान धरकर देखा तो इन्द्रके सभी काले कारनामोंका पता चल गया कि यह इन धन्दोंको करता है, जिस २ हालतमें हुए थे वे उसी हालतमें दीख पड़े इन्हें क्रोध आया जिससे इन्द्रको शाप दे दिया कि, हजार भगोंवाला हो जा । उनके शापसे इन्द्र भी विनाशरूपी इस अवस्थाको प्राप्त हो गया था इस समय भी उसका नाम अहिल्याका जार है यह कलंक अब भी नहीं मिटा है । कीचकमें एक हजार हाथियोंकी ताकत थी । यह भी कामसे द्रौपदीकी इच्छा करता हुआ भीमसेनसे मारा गया यह भारतमें परिस्फुट लिखा हुआ है । यह तो पहिली बातें हैं आज भी कामके वश हुए अनेकों पुरुष नष्ट हुए देखे जाते हैं इन पुरानी बातोंके ही उदाहरणसे क्या है ऐसा अर्थचिन्तक मानते हैं ॥ ३६ ॥

आहारकी तरह काम आवश्यक है ।

अत्र संप्रतिपत्तिमाह—

कामपर किये गये आरोपोंका निवारण करते हैं कि—

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः । फलभूताश्च धर्मार्थयोः ॥ ३७ ॥

शरीरकी स्थितिके कारण होनेके कारण आहार जैसे ही काम हैं ये धर्म और अर्थके फलभूत हैं ॥ ३७ ॥

आहारसधर्माण इत्याहारतुल्याः । यथाहारोऽजीर्णादिदोषं जनयन्नपि प्रतिदिने शरीरस्थितये सेव्यते तथा कामोऽपि, अन्यथा रागोद्रेकादुन्मादादिदोषेण न शरीरस्थितिरिति । फलभूताश्च धर्मार्थयोरिति—सुखार्थं धर्मार्थयोः सेवा । तदसे-

वायां तौ वन्ध्यभूतौ केवलमायासफलौ स्याताम् । तथा चोक्तम्—' धर्ममूलः स्मृतः स्वर्गस्तत्रापि परमाः स्त्रियः । गृहस्थधर्मो दुर्वारो नराणां धर्मयत्नजः ॥ हिताश्चापत्यसंतानैः स्त्रियस्त्विह परत्र च । परं संप्रत्ययो भोगप्रकर्षार्थाय वै स्त्रियः ॥ ' ॥ ३७ ॥

आहारके समानधर्मी यानी आहारके ही तुल्य काम हैं । जैसे कि, आहार अजीर्ण आदि दोषोंको पैदा करते हैं तो भी शरीरकी स्थितिके लिये सेवन किये जाते हैं इसी तरह यद्यपि काम दोषग्रस्त हैं तो भी शरीरकी स्थितिके लिये सेवन किये जाते हैं, विना सेवन किये रागके बढ़ जानेके कारण अन्तमें उन्माद होकर शरीरका नाश हो जायगा । सुखके लिये धर्म और अर्थ किये जाते हैं यदि कामका सेवन न किया जाय तो फिर धर्म और अर्थका फल ही क्या होगा, वे तो निष्फल ही होजायँगे केवल परिश्रम ही परिश्रममात्र फल होगा । कहा भी है कि–" धर्म ही स्वर्ग देनेवाला है उसमें भी स्त्रियां ही श्रेष्ठ हैं मनुष्योंको धर्म और यत्नसे होनेवाला गृहस्थाश्रम दुर्वार ही है । इस लोकमें भी स्त्रियाँ अपत्य और सन्तानोंसे हित करती हैं और परलोकमें भी हित करती हैं । यह निश्चित सिद्धान्त है कि, भोगप्रकर्षके लिये ही स्त्रियाँ हैं । " ॥ ३७ ॥

दोषोंका निराकरण ।

यद्येवं तर्हि दोषप्रसङ्ग इत्यत आह–

यदि काम ऐसा है तो भी दोषोंके लिये क्या हो ? उसके उत्तरमें सूत्र करते हैं कि–

बोद्धव्यं तु दोषेष्विव । नहि भिक्षुकाः सन्तीति स्थाल्यो नाधिश्रीयन्ते । नहि मृगाः सन्तीति यवा नोप्यन्त इति वात्स्यायनः ॥ ३८ ॥

और दोषोंकी तरह इसके दोषोंको समझना चाहिये पर यह बात नहीं होती कि, भिखारी हैं तो भोजन वनानेके लिये चूल्हेपर बटलोई ही न चढ़ाई जाय । मृग है तो जौ ही न बोये जायँ यह वात्स्यायनआचार्य्यका मत है॥ ३८

बोद्धव्यमिति । अजीर्णादिदोषेष्विव बोद्धव्यम्, प्रतिविधानमिति शेषः । इद-माह—यत्र क्वचन दोषप्राप्तिरवश्यं सेव्यश्च कामस्तं दोषप्रतिविधानेन सेवेतेति । अयं च न्यायो लोकेष्वप्यस्तीति दर्शयति—नहीत्यादिना । तथा चोक्तम्–'तृणा-

नामिव हि व्यर्थं नृणां जन्म सुखद्विषाम् । दोषास्तु परिहर्तव्या इत्याचार्यैः स्थिरीकृतम् ॥' ३८ ॥

जैसे अजीर्ण आदि दोषोंमें उनका प्रतीकार होता है उसी तरह यहां भी समझना चाहिये । जैसे उसका परिहार करके फिर भोजन किया जाता है इसी तरह जहां कहीं दोष प्राप्ति हो उन दोषोंका प्रतीकार करते हुए कामका अवश्य सेवन करना चाहिये यह इसका तात्पर्य्य है । यह न्याय, लोकमें भी देखा जाता है । यह नहीं होता कि भिक्षुकोंके भयसे रसोई न बनाई जाती हो, न यही देखते हैं कि, मृगोंके डरसे यव न बोय जाते हों किन्तु अवश्य ये कार्य्य होते हैं । कहा भी है कि—" जो मनुष्य कामसुखके साथ द्वेष करते हैं उनका जन्म तिनकोंकी तरह व्यर्थ ही है । यदि कामसुखमें दोष आ उपस्थित हों तो उनका परिहार कर डालना चाहिये यह आचार्य्योंने निश्चय किया है"॥३८

अनुष्ठानका फल ।

अनुष्ठानलक्षणायाः प्रतिपत्तेः फलमाह—

अनुष्ठान करनेका फल कहते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवमर्थं च कामं च धर्मं चोपाचरन्नरः ।
इहामुत्र च निःशल्यमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ ३९ ॥

इस विषयमें श्लोक होते हैं उन्हें यहीं लिखते हैं कि—मनुष्य इस प्रकार अर्थ, काम और धर्मका सेवन करता हुआ इस लोक और पर लोकमें अत्यन्त वेखटके सुख भोगता है ॥ ३९ ॥

एवमिति—यथोक्तेन न्यायेन प्रतिष्ठापिताचरणमर्थं प्रागाचरणतः, ततोऽधिगतार्थः कामं धर्मं च । इहामुत्र चेति—इहलोके परलोके च निःशल्यं सुखमश्नुत इति । अनुतापाभावात्समग्रो मे पुरुषार्थ इति मनः प्रीतिमवाप्नोतीत्यर्थः । त्रिवर्गं ह्यसेवमानस्य तावदिह लोके नैहिकं सुखमवाप्तमिति विप्रतीसारम्, दुरन्तकामानुबन्धनान्नापि परलोके, न मया मूढेन प्राकृतमवदातं कर्मेति धर्मानुषक्तत्वात् । नास्तिकनिरीहकसुखद्विषस्त्वेकाङ्गविकलत्वात्सशल्यमवाप्नुवन्तीति मन्यते ॥३९॥

धर्म, अर्थ और कामके सेवन करनेकी जो रीति बताई है उस रीतिसे अर्थोचित आचरणोंसे होनेवाले अर्थको पहिले प्राप्त कर लेता है फिर अर्थ-

वाला होकर काम और धर्मको भोगता है । जो त्रिवर्गका वैद्य सेवन करता है उसे इस लोक और परलोकमें कोई अनुताप नहीं रहता पूरा सुख पाता है वह समझता है कि मेरा पुरुषार्थ पूरा हो गया उसे इसकी प्रसन्नता होती है । जो त्रिवर्गका सेवन नहीं करता उसके हृदयमें यह परिताप रहता है कि मैंने दुनियांका सुख न देखा । कामके बन्धनका करना बड़ा कठिन है इससे मरकर भी सुख नहीं होता उसके हृदयमें यही होता है कि मुझ मूर्खने कोई सुकृत नहीं किया नहीं तो मुझे भी स्वर्गीय उच्च भोग प्राप्त होते यह धर्म न करनेवालोंको दुःख होता है । इस तरह नास्तिक, निर्धन और कामके सुखके साथ द्वेष करनेवाले एक अंगसे हीन रहनेके कारण सशल्य सुख पाते हैं यानी जो जिस वर्गकी सेवा करेगा उसे उसी वर्गका सुख मिलेगा बाकीके वर्गोंका सुख न मिलेगा पर जो त्रिवर्गकी उपासना करेगा उसे त्रिवर्गका सुख मिलेगा । ऐसा वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ३९ ॥

शिष्टोंकी त्रिवर्ग साधन शैली ।

'परस्परस्यानुपघातकमन्योन्यानुबद्धम्' इत्युक्तम्, तस्यैव संग्रहः श्लोकद्वयेन—

दूसरी अध्यायके पहिले सूत्रमें जो त्रिवर्गके सेवनकी रीति बताई है नीचे दोनों श्लोकोंमें उसीका संग्रह किया है कि—

किं स्यात्परत्रेत्याशङ्का कार्ये यस्मिन्न जायते ।
न चार्थघ्नं सुखं चेति शिष्टास्तत्र व्यवस्थिताः ॥
त्रिवर्गसाधकं यत्स्याद्द्वयोरेकस्य वा पुनः ।
कार्यं तदपि कुर्वीत न त्वेकार्थं द्विबाधकम् ॥ ४० ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
त्रिवर्गप्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ॥

जिस अर्थके करनेमें यह शंका न हो कि, परलोकमें क्या होगा एवम् जो सुख अर्थका नाश न करे शिष्ट पुरुष उसके अनुष्ठानमें सावधानीके साथ लगते हैं । जो कार्य्य तीनों वर्गोंका साधक हो अथवा दोका वा एकका ही हो तो भी उसे करे पर जो धर्म, अर्थ वा काम अपना ही साधक हो दोओंका विघात करता हो तो उसे न करना चाहिये ॥ ४० ॥

किं स्यादिति—उपघातः पूर्वेणोत्तरस्य, उत्तरेण वा पूर्वस्य । तत्र यस्मिन् कार्येऽर्थोऽपि साधयिष्यते यस्तत्र किं स्यात् । अपायोऽनपायो वेत्याशङ्का नास्ति,

धर्माबाधनात् । यच्च सुखं नार्थं हन्ति तस्मिन्नर्थे सुखे च शिष्टास्त्रिवर्गविदः स्थिताः, अनुष्ठातुम् । पूर्वबाधके तु न स्थिताः । यस्तु दानेन धर्मोऽर्थं बाधते ब्रह्मचर्येण च विद्याग्रहणमर्थः कामं तस्मिन्नुत्तरबाधके स्थिता इत्यर्थोक्तम् । 'अपि नाम त्रिवर्गेऽस्मिन्सेवेतोत्तरबाधकम् । पूर्वस्य तु प्रधानत्वान्न सेव्यः पूर्वबाधकः ॥' इति ।

असावधानीसे त्रिवर्गकी सेवा करनेसे उत्तर काम धर्मसे अर्थ व काम अथवा अर्थसे धर्म व काम एवम् कामसे अर्थ व धर्मोंका उपघात हो जाता है। यदि अर्थ, धर्मको छोड़कर सिद्ध किया जायगा तो उसमें परलोकमें अपाय होगा एवम् इस बातके जानकारको तो यहां अवश्य ही शंका होगी, इस कारण अर्थको धर्मपूर्वक सिद्ध करे जिससे यह शंका हो न हो कि मैं इस तरह अर्थ कर रहा हूं इसमें क्या होगा । कामका अनुष्ठान भी इस रीतिसे हो जिसमें कि अर्थ नष्ट न हो धर्म, अर्थ और कामके तत्त्वको जाननेवाले इसी रीतिसे त्रिवर्गका अनुष्ठान करते हैं । वे कामका इस रीतिसे अनुष्ठान नहीं करते जो कि, उससे अर्थ, धर्म नष्ट हों । पर जहां दानरूपी धर्मसे धन कम होता है या बाधित होता है एवम् विद्या ग्रहण रूपी अर्थ जहां ब्रह्मचर्य्यके पालनसे कामको बाधित करता है ऐसे उत्तर बाधकमें तो प्रवृत्त होते ही हैं यही बात कही भी है कि—"जो तो धर्म, अर्थ और कामके सेवनमें कामका बाधक अर्थ व अर्थ, कामका बाधक धर्म हो तो सेवन कर लेना चाहिये किन्तु धर्मका बाधक अर्थ व धर्म अर्थका बाधक काम सेवन न करना चाहिये ।"

त्रिवर्गसाधकमिति—धर्मादीनां यदन्यतमं कार्यमनुष्ठेयमात्मन इतरयोस्तु साधकं तत्कुर्वीत, अयमुत्तमः पक्षो द्व्यनुबन्धेऽन्तर्भूतः । द्वयोर्वैकस्येति—त्रयाणां यद्द्वयोरात्मन इतरस्य च साधकं तदपि कुर्वीतेति । अयं मध्यमः पक्ष एकानुबन्धेऽन्तर्भूतः । एतदुभयमपि प्रागुदाहृतम् । यदेकस्यात्मन एव साधकं तदपि कुर्वीतेति । अयं जघन्यो निरनुबन्धेऽन्तर्भूतः । तद्यथा—पञ्चानां महायज्ञानां प्रवर्तनं धर्मो निरनुबन्धः । भूम्याद्यर्जनमर्थो निरनुबन्धः । परिचारिकायामभिप्रेतायां कामो निरनुबन्धः । अस्मिन्पक्षे परस्परस्यानुपघातकं दर्शयन्नाह––न त्वेकार्थं द्विबाधकमिति, एक आत्मैवार्थः प्रयोजनं यस्य तदेकार्थं द्वयोर्बाधकं न कुर्यात् । अतिदानेन धर्मोऽर्थं बाधते कामं च बाधते । तपसा चात्यन्तसेवितेन कामं बाधित्वा शरीरक्षयादर्थमुपहन्ति । तथार्थस्तादात्मिक उपादीयमानः पुरुषवश इव धर्मकामौ बाधते । कामस्तूत्तमवर्णासु दाण्डक्यस्येवान्यत्र वात्या-

सेवित उभयं बाधते । यदेकस्य साधकमन्यस्य बाधकं तत्पूर्वोत्तरबाधापेक्षया कुर्यात् । तच्च यथोक्तं प्रागिति ॥ ४० ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-
कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां
साधारणे प्रथमेऽधिकरणे त्रिवर्गप्रतिपत्तिर्द्वितीयोऽध्यायः ॥

त्रिवर्ग साधक—अर्थ, धर्म, काम इनमेंसे जिस किसीका अनुष्ठान किया जाय वह अपना और बाकी दोनोंका सिद्ध करनेवाला हो यह उत्तम पक्ष है इसी अध्यायके पाहिले सूत्रके कहे एकके साथ दोवाले भेदमें आगया है। दोका—कहनेका तात्पर्य्य यह है कि तीनोंमेंसे एक तो अपना एक अपने साथी दोनोंका साधक हो । यह पक्ष मध्यम है यह इसी अ० के प्र० सूत्रमें एक एकके साथमें आगया है। जो अपना ही अकेलेका साधक हो उसको भी करना चाहिये यह जघन्य पक्ष है । विना किसीको साथ लिये केवल अकेलेमें यह आगया है । कहा भी है कि बलिवैश्वदेव आदिक पांच यज्ञोंका करना विशुद्ध धर्म है इसके साथ अर्थ, काम नहीं हैं । इसी तरह भूमि आदिका अपने लिये उपार्जन करना भी विशुद्ध अर्थ है इसके साथ इसका पुरुषार्थ नहीं है । इसी तरह प्यारी परिचारिकामें काम भी किसी पुरुषार्थको साथ लिये हुए नहीं है। श्लोकमें आया " जो अपना ही साधक हो दोओंका विघात करता हो " यह पहिले सूत्रमें आये 'परस्परानुपघातकम्' का तात्पर्य्य है । यानी एक अपना ही जिसमें प्रयोजन हो और धर्म, अर्थका घात होता हो उसे न करे । इस वाक्यका कामसे मतलब है कि ऐसे कामको न करे । अतिदानरूप धर्म अर्थका नाश करता है यह पाहिले कह चुके हैं। अत्यन्त तपके सेवनमें यह धर्म कामको बाध कर शरीरको भी सुखा देता है यह शरीरका क्षय अर्थका ही नाश है । इसी तरह अर्थ भी इकट्ठा किया जाय तो यह भी उस पुरुषके धर्म और कामको नष्ट करता है । काम तो हीन वर्णको उत्तम वर्णमें बाधा देता है जैसे कि, दाण्डक्यका सर्वस्व और धर्म दोनों नष्ट हुए थे । सवर्णा आदिमें अत्यन्त सेवनसे शरीर और धर्म दोनोंका नाश होता है । जो एकका साधक और दूसरेका बाधक हो वह पूर्व उत्तरका बाधक तो इष्ट है पर पूर्वका बाधक इष्ट नहीं है यह पाहिले ही कह चुके हैं ॥ ४० ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्र शर्म तनूज सर्वतन्त्र स्वतन्त्र रिसर्च स्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीया-
ध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

विद्यासमुद्देश प्रकरण ।

एवं प्रतिपन्नत्रिवर्गस्य सिद्धौ प्रथम उपायो यद्विद्याग्रहणम्, अगृहीतविद्यस्यानन्तरव्यापारासंभवात् । इति विद्यासमुद्देश उच्यते । समुद्देशश्च संक्षेपाभिधानम् । निर्देशश्च शास्त्रान्तराद्युपदेशाच्चापेक्षणीयः ।

जाने हुए त्रिवर्गकी सिद्धिमें जो विद्याग्रहण है यह पहिला उपाय है, क्योंकि विना विद्याग्रहण किये हुएके बादके व्यापार असंभव हैं, इस कारण 'विद्यासमुद्देश' प्रकरण कहते हैं। संक्षेपसे अर्थ कहनेका नाम समुद्देश है । विद्याओंका पूरा निर्देश तो दूसरे २ शास्त्रों तथा उपदेशोंसे जान लेना चाहिये ।

पुरुषोंका अध्ययनकाल ।

यथा च तासां ग्रहणं तथा दर्शयन्नाह—

जैसे विद्याओंका ग्रहण होता है वह दिखाते हुए कहते हैं कि—

धर्मार्थाङ्गविद्याकालाननुपरोधयन्कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्च पुरुषोऽधीयीत ॥ १ ॥

पुरुषको चाहिये कि धर्म, अर्थ और इनकी अंगविद्याओंके समयको छोड़कर बाचबीचमें कामसूत्र और उसकी अंगविद्याओंको पढ़े ॥ १ ॥

धर्मेत्यादि । तत्र धर्मविद्या श्रुतिः स्मृतिश्च । अर्थविद्या वार्ताशास्त्रम् । तयोरङ्गविद्या—दण्डनीतिः, योगक्षेमसाधनात् । आन्वीक्षकी तु तत्त्वनिश्चयहेतुत्वात् । तासां प्रधानानां यथास्वमध्ययनकालाननुपरोधयन्नहापयन्, अन्तरान्तरा कामसूत्रमिदमेव तदङ्गविद्याश्च गीतादिका अधीयीत पाठश्रवणाभ्याम् ॥ १ ॥

श्रुति और स्मृतिको धर्मविद्या एवम् जीविका चलानेके उपाय बतानेवाले शास्त्रको अर्थविद्या कहते हैं । इन दोनोंकी अंगविद्याएं दण्डनीति और आन्वीक्षिकी हैं, क्योंकि दण्डनीति योगक्षेमका साधन है । आन्वीक्षिकी तो तत्त्वका निश्चय कराती है इस कारण वह भी अंग है । इन प्रधान विद्याओंके अध्ययनका जो समय हो उसमें इनके अध्ययनको नियमपूर्वक करता हुआ बीच २ में जब उनसे अवकाश मिले उस समय इसी कामसूत्रको और इसकी जो अङ्गविद्याएं गीतादिक हैं उनका पाठ और श्रवणसे बराबर अध्ययन करता रहे ॥ १ ॥

स्त्रियोंके अध्ययनका समय ।

प्राग्यौवनात्स्त्री । प्रत्ता च पत्युरभिप्रायात् ॥ २ ॥

स्त्रियोंको चाहिये कि युवति होनेसे पहिले ही पिताके घरपर ही कामसूत्र और उसकी अंगविद्याओंका अभ्यास कर लें । यदि विवाह हो जाय तो पतिकी आज्ञासे इन्हें सीख सकती हैं । यह आचार्य्योंका मन्तव्य है ॥ २ ॥

प्रागिति–प्राग्यौवनात्स्त्री कामसूत्रं तदङ्गविद्याश्चाधीयीत पितुर्गृह एव । तरुण्याः परिणीतत्वादस्वतन्त्रायाः कुतोऽध्ययनम् । 'युवतिः' इति पाठान्तरम्, तत्र स्त्रीपर्यायो द्रष्टव्यः । प्रत्ता चेति–प्रकर्षेण दत्ता, निष्ठायामेव 'अच उपसर्गात्तः' इति तत्त्वम् । ऊढेत्यर्थः। त्रिविधं दानम्, मनसा वाचा कर्मणा चेति । पत्युरभिप्रायादिति–यदा पत्यानुज्ञाता तदाधीयीत, अन्यथा स्वैरिणीत्याशङ्कनीया स्यात् ॥ २ ॥

लड़कीको चाहिये कि विवाहसे पाहिले पिताके घरमें ही जवानी आनेसें पहिले २ कामसूत्र और उसकी अंगविद्या गाने बजाने आदि सीख ले, क्योंकि युवती होनेपर तो विवाह होनेपर परतंत्र होनेके कारण अध्ययन कहांसे होगा । कोई स्त्रीके स्थानमें युवति पाठ रखते हैं; यह युवतिशब्द भी स्त्रीका ही पर्य्यायवाची है । दान तीन तरहके होते हैं, मनसे, वाणीसे और कर्मसे । सूत्रके प्रत्ता[1] ग्रहण करनेका यही तात्पर्य्य है कि जो पतिके साथ भांवर फिर चुकी हो एवम् जिसके विवाहका कृत्य पूर्ण पूरा हो चुका हो वह यदि पतिकी आज्ञाके विना ही काम कलादिकोंका ज्ञान प्राप्त करेगी तो पतिको उसके स्वैरिणी होनेकी शंका होगी, इस कारण विवाहसे पहिले पितादिकी आज्ञा एवम् विवाहके बाद पतिकी आज्ञासे सब काम करने चाहियें ॥ २ ॥

स्त्रीशिक्षापर आचार्य्य ।

योषितां शास्त्रग्रहणस्याभावादनर्थकमिह शास्त्रे स्त्रीशासनमित्याचार्याः ॥ ३ ॥

इसपर आचार्य्य तो ऐसा मानते हैं कि स्त्रियोंको शास्त्रके ग्रहणका अभाव है, इस कारण इस शास्त्रमें स्त्रियोंका शासन अनर्थक ही है ॥ ३ ॥

---

१ 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'दा' दानार्थक धातुसे निष्ठाका 'त' होता है, पीछे "अच उपसर्गात्तः ७–४–४७" इस सूत्रसे दाके आको त, फिर चर्त्व और टाप् होकर 'प्रत्ता' शब्द बनता है ।

शास्त्रग्रहणस्याभावादिति—तासां शास्त्रानधिकारात्, शास्त्रं ग्रहीतुमसमर्थत्वाच्च । इहेति—कामशास्त्रे स्त्रियमुद्दिश्य शासनम्, इदं कार्यमिदं नेत्येवंरूपम्, उपदेष्टुमनर्थकं इत्याचार्या मन्यन्ते ॥ ३ ॥

न तो स्त्रियोंको शास्त्र पढ़नेका अधिकार ही है एवं न उनके ग्रहणका सामर्थ्य ही है, इस कारण इस कामशास्त्रमें स्त्रियोंका उद्देश लेकर कहना कि ' उन्हें यह करना चाहिये, यह न करना चाहिये ' यह अनर्थक ही है, ऐसा धर्माचार्य्य मानते हैं ॥ ३ ॥

प्रयोगग्रहणं त्वासाम् । प्रयोगस्य च शास्त्रपूर्वकत्वादिति वात्स्यायनः ॥ ४ ॥

इसपर वात्स्यायन आचार्य्य कहते हैं कि स्त्रियाँ शास्त्रका तात्पर्य्य ग्रहण कर सकती हैं पर विना शास्त्रके उसका तात्पर्य्य कहांसे आयेगा ॥ ४ ॥

प्रयोगग्रहणमिति—प्रयुज्यत इति प्रयोगोऽर्थस्तद्ग्रहणं तासाम्, तद्विद्भ्यो मा भूच्छास्त्रग्रहणम् । स च योषिदुपयोगीति शास्त्रेणावेदितः कथमन्यैरुपदिश्यते तस्मान्नानर्थकं स्त्रीशासनम् ॥ ४ ॥

प्रयुक्त जो होता हो उसे प्रयोग कहते हैं; यह शास्त्रका अर्थ है । इसे जानकारोंसे स्त्रियाँ ग्रहण कर सकती हैं, इस कारण शास्त्र अनर्थक नहीं है । विना जाने स्त्रियोंके उपयोगी पदार्थोंको उन्हें कैसे कोई समझा सकता है, किन्तु शास्त्रसे जानकर ही सिखा सकता है । जिसके कि पास वह सार है वह भी अन्ततोगत्वा शास्त्रसे ही प्राप्त हुआ है, इस कारण स्त्रियोंका शासन व्यर्थ नहीं है; यह आचार्य्यप्रवर वात्स्यायनका मत है ॥ ४ ॥

दूसरे शास्त्रोंसे तुलना ।

तन्न केवलमिहैव । सर्वत्र हि लोके कतिचिदेव शास्त्रज्ञाः । सर्वजनविषयश्च प्रयोगः ॥ ५ ॥

यह बात कामशास्त्रके विषयमें हो यह नहीं है; किन्तु लोकमें सर्वत्र ही यही बात देखी जाती है कि कोई विरले ही शास्त्रके जाननेवाले हैं; पर उसका प्रयोग करते हुए सभी देखे जाते हैं ॥ ५ ॥

तन्न केवलमिहैवेति—तत्प्रयोगग्रहणं न केवलमिहैवास्मिन्नेव कामशास्त्रे । सर्वत्र हीति— हिशब्दो हेतौ, सर्वेषु व्याकरणज्योतिःशास्त्रादिषु दृश्यते, तदेव

दर्शयति—लोक इत्यादिना । कतिचिदेव शास्त्रज्ञा ये तद्ग्रहणसमर्थाः । तेभ्यः समर्थैरसमर्थैश्च प्रयोगो गृह्यत इति सर्वजनविषयः । प्रयोगग्रहणं च शास्त्रग्रहणात्प्रधानम् । गृहीतस्यापि शास्त्रस्य प्रयोगज्ञानफलत्वात् ॥ ५ ॥

यह यहीं हो सो बात नहीं, किन्तु व्याकरण ज्योतिष आदि शास्त्रोंमें कामशास्त्र जैसी ही बात है । इसका कारण यह है कि लोकमें इन शास्त्रोंके मर्मज्ञ विद्वान् थोडे ही हैं तथा थोड़े ही व्यक्ति इन्हें ग्रहण करनेकी शक्ति रखते हैं । पर उनसे समर्थ असमर्थ दोनों ही तरहके व्यक्ति उसका तात्पर्य्य ग्रहण करके उन्हें अपने २ व्यवहारमें ला रहे हैं । शास्त्रग्रहणसे प्रयोगग्रहण प्रधान है, क्योंकि शास्त्र पढ़कर भी तो व्यवहारमें ही लांवगे यानी उसके तात्पर्य्यके अनुसार व्यवहार करगे ॥ ५ ॥

प्रयोगका कारण ।

प्रयोगस्य च दूरस्थमपि शास्त्रमेव हेतुः ॥ ६ ॥

दूर है तो भी प्रयोगका शास्त्र ही कारण है ॥ ६ ॥

प्रयोगस्य चेति । गृहीतशास्त्रस्य दूरस्थमपीति शास्त्रज्ञजनाधारत्वात्, विप्रकृष्टमपि शास्त्रं पारम्पर्येण हेतुः । एकः शास्त्रज्ञः प्रयोगं गृह्णाति, ततोऽन्यः, ततोऽन्य इति ॥ ६ ॥

जो तात्पर्य्य शास्त्रसे ग्रहण किया है उसका कारण शास्त्र ही होगा, क्योंकि उसका आधार शास्त्रके जाननेवाले ही हैं । उन्होंने ही उसका प्रचार किया है, इस कारण ‘ जो एक दूसरेको देखकर या जानकर व्यवहार कर रहे हैं ’ इसकी परंपरापर विचार किया जाय तो यद्यपि शास्त्र दूर है तो भी वही इसका कारण है, क्योंकि शास्त्रका जाननेवाला एक प्रयोगका ग्रहण करता है, उससे दूसरा सीखकर प्रयोग करता है, उससे फिर तीसरा सीख लेता है ॥ ६ ॥

इसीपर दृष्टान्त ।

अत्र दृष्टान्तमाह—

प्रयोगका शास्त्र ही कारण है इसपर दृष्टान्त देते हैं कि—

अस्ति व्याकरणमित्यवैयाकरणा अपि याज्ञिका ऊहं क्रतुषु प्रयुञ्जते ॥ ७ ॥

व्याकरण है यह समझकर अवैयाकरण भी याज्ञिक यज्ञोंमें ऊहका प्रयोग करते हैं ॥ ७ ॥

अस्तीति । शब्देनाचोदितार्थस्य युक्त्या विमृश्य च स्थापनमूहः । स च प्रातिपदिकलिङ्गवचनान्तरोपादानेन व्याकरणे उक्तः । तद्व्याकरणमस्ति यतोऽयमूहः पारम्पर्याशयात्, इत्यवैयाकरणा अपि याज्ञिकास्तं क्रतुषु प्रयुञ्जते ।

शब्दसे कहे हुए अर्थको युक्तिसे विचार करके स्थापित करनेका नाम 'ऊह' है। वह आवश्यकताके अनुसार दूसरे प्रातिपदिक, लिंग और वचनोंके उपादान करनेसे होता है। इनका उपादान करना व्याकरणमें बताया है। व्याकरण वह है जिससे कि इस ऊहके प्रयोगका ज्ञान होता है। परंपराके आश्रयसे विना व्याकरण पढ़े हुए भी याज्ञिक उसका यज्ञोंमें प्रयोग करते हैं।

तद्यथा—' आग्नेयमष्टाकपालं पुरोडाशं निर्वपेत् ' इति प्रकृतिप्रयोगः । ' सौर्यं चरुं निर्वपेद्ब्रह्मवर्चसकामः ' इति विकृतिप्रयोगः । अत्र सूर्यमुद्दिश्योहः । निर्वपेदिति लिङ्गात् सौर्यं चरुं निर्वपेदाग्नेयवदिति ॥ ७ ॥

उदाहरण—जैसे श्रुतिमें लिखा मिलता है कि—" अग्नि देवताके लिये आठ कपालका पुरोडाश बनाये " यह मुख्य प्रयोग इसीका विकृति यानी इसीको लेकर होनेवाला प्रयोग यह है कि—" जिसे ब्रह्म तेजकी इच्छा हो वह सूर्य्य देवताका चरू तयार करे " यहाँ निर्वपन (निर्वपेत्) हेतुसे सूर्य्यका उद्देश लेकर ऊहै होता है कि सूर्य्य देवताका चरु अग्नि देवताके चरुकी तरह निर्वपन करे ॥ ७ ॥

अस्ति ज्यौतिषमिति पुण्याहेषु कर्म कुर्वते ॥ ८ ॥

' ज्योतिष है ' यह मानकर जो ज्योतिषी नहीं हैं वे भी शुभ दिनमें कर्म करते हैं ॥ ८ ॥

पुण्याहेष्विति । अस्ति ज्यौतिषमित्यज्यौतिषिका अपि कुतश्चिदुपलभ्य शस्तदिनेषु कर्म कुर्वते । तत्र शास्त्रमेव हेतुः ॥ ८ ॥

ज्योतिष शास्त्रमें यह विधान है; यह जानकर, जो ज्योतिष नहीं जानते वे भी अच्छे दिनोंमें ही शुभ कर्म करते हैं; इसका शास्त्र ही कारण है ॥ ८ ॥

तथाश्वारोहा गजारोहाश्चाश्वान्गजांश्चानधिगतशास्त्रा अपि विनयन्ते ॥ ९ ॥

---

१ किसीके अनुसार विभक्तियोंको बदल कर प्रयोग करना शब्द-प्रयोगका ऊह है तथा मुख्यरूपसे कहे गये प्रयोगकी विधिको लेकर तदनुसारी प्रयोगोंमें उस विधिका बर्तना विधिका ऊह है, इसीप्रकार ऊह अनेक तरहके होते हैं ।

शास्त्रके विना पढ़े भी अश्वारोह, गजारोह और घोड़े हाथियोंको विनीत बनाते हैं ॥ ९ ॥

तथेति । अनधिगतशास्त्रा इति हस्त्यश्ववैद्यकं हस्तिशिक्षेत्यनधीत्याम्नायात्, पोषणदम्यादिकं कर्म कुर्वत इत्येव । तत्रापि शास्त्रमेव हेतुः ॥ ९ ॥

विना शालिहोत्र आदिके पढ़े पुरुष भी घोड़े हाथियोंका इलाज, पोषण और शिक्षण करते देखे जाते हैं; इसमें भी शास्त्र ही कारण है ॥ ९ ॥

न शास्त्रे एवायं न्यायो यद्दूरस्थमपि हेतुः, किंतु लोकेऽपीत्याह---

शास्त्रमें ही यह न्याय हो यह बात नहीं है कि वह दूर रहकर भी हेतु हो किन्तु लोकमें भी ऐसा ही देखा जाता है कि–

तथास्ति राजेति दूरस्था अपि जनपदा न मर्यादामतिवर्तन्ते तद्वदेतत् ॥ १० ॥

'राजा है' इस कारण दूर देशके मनुष्य भी मर्यादाको भ्रष्ट नहीं करते। इसीकी तरह यह भी है ॥ १० ॥

अस्ति राजेति । दूरस्था अदृष्टराजत्वात् । अस्ति व्यवस्थापकः, यत इयं व्यवस्थेति तद्भयान्न मर्यादामतिक्रामन्ति । तद्वदेतदिति दार्ष्टान्तिके योजनीयम् १०

जिन लोगोंने कभी राजाको अपनी आखोंसे भी नहीं देखा वे भी यह जानकर कि–'कोई व्यवस्थाको स्थिर रखनेवाला है जिसका कि यह कानून है' उसके भयसे कानून नहीं तोड़ते । इसी तरह शास्त्र है जिसके कि तात्पर्य्यको किसी तरह पाकर विना उसके पढ़े भी उसका व्यवहार कर रहे हैं ॥ १०

अथवास्त्येव शास्त्रग्रहणं कासांचिदित्याह–

किन्हीं २ देवियोंमें शास्त्रका ग्रहण देखा भी जाता है; उन्हींको नीचेके सूत्रसे बताते हैं कि–

सन्त्यपि खलु शास्त्रप्रहतबुद्धयो गणिका राजपुत्र्यो महामात्रदुहितरश्च ॥ ११ ॥

कुछ ऐसी भी हैं जिनकी कि बुद्धि शास्त्र पढ़ते २ ही थक गई है, उनमें गणिकाएँ, राजाओंकी लड़कियां और प्रधानोंकी पुत्रिकाएँ हैं ॥ ११ ॥

सन्त्यपीति । शास्त्रेण प्रहता खिन्ना बुद्धिर्यासामिति । महामात्रेति–महती मात्रा येषामिति सामन्ता महासामन्ता वा । हस्तिशिक्षायां वा तल्लक्षणमनुसर्तव्यम् ॥ ११ ॥

कुछ ऐसी भी स्त्रियां देखनेमें आती हैं जो कि पढ़ते २ थक गयी हैं। उन्होंने यथेष्ठ शास्त्र पढ़े हैं। उनमें अनेकों वेश्याएं कामकला पढ़ी लिखी होंगी। यद्यपि महामात्र मंत्रियोंको कहते हैं पर जिनके पास बड़ी मात्रा हो वे सब 'महामात्र' कहाते हैं; इस अर्थसे सामन्त और महासामन्त भी आ जाते हैं। इनकी लड़कियां भी पढ़ी लिखी देखी जाती हैं। यही बात हाथी घोड़ोंकी शिक्षामें भी समझनी चाहिये। इसमें भी राजकुमार आदि अनेकों व्यक्ति दक्ष देखे जाते हैं ॥ ११ ॥

स्त्रियां विश्वासीजनोंसे एकान्तमें सीखें।

तस्माद्वैश्वासिकाज्जनाद्रहसि प्रयोगाञ्छास्त्रमेकदेशं वा स्त्री गृह्णीयात् ॥ १२ ॥

इस कारण विश्वासी जनसे एकान्तमें कामशास्त्रके प्रयोग, शास्त्र अथवा इसके किसी एकदेशको स्त्रियाँ सीखें ॥ १२ ॥

तस्मादिति—यस्मात्प्रयोगग्रहणं शास्त्रग्रहणं चोभयं तस्मात्, वैश्वासिकाद्विश्वासार्हात्, लज्जानिवृत्त्यर्थम्। प्रयोगान्, या शास्त्रग्रहणासमर्था दुर्मेधा। शास्त्रम्, तद्ग्रहणसमर्था मेधाविनी । शास्त्रैकदेशं वा संप्रयोगाङ्गं या मध्यमेधाविनी सा गृह्णीयात् ॥ १२ ॥

विना विश्वासीके लज्जाके मारे प्रयोग या शास्त्र सीख न सकेंगी अतः इनके लिये विश्वासीकी आवश्यकता है। जो कामशास्त्र न सीख सके ऐसी निर्बुद्धिको चाहिये कि वह उसके प्रयोगोंको ही सीख ले। जो सीख सकती है उस बुद्धिमतीको पूरा ही सीख लेना चाहिये। पर जो मध्यम बुद्धिवाली है, उसे चाहिये कि संप्रयोगके अंग अथवा कामशास्त्रके किसी भी उपयोगी भागको पढ़ ले ॥ १२ ॥

कन्याओंके सीखनेकी रीति।

अभ्यासप्रयोज्यांश्च चातुःषष्टिकान् योगान् कन्या रहस्येकाकिन्यभ्यसेत् ॥ १३ ॥

अभ्याससे प्रयुक्त किये जानेवाले चौंसठ विद्याओंके योगोंका कन्या एकान्तमें अकेली ही अभ्यास करे ॥ १३ ॥

अभ्यासेति। चातुःषष्टिकांश्चतुःषष्टिभवान्। कन्येति। तदानीमभ्यस्तं यौवने प्रयुज्यते। रहसीति लज्जानिवृत्त्यर्थम्। एकाकिन्याचार्यनिरपेक्षा ॥ १३ ॥

गाने बजाने आदिकी चौंसठ कलाएं तथा आलिंगनादि चौंसठ कलाएं कन्यापनेमें अभ्यास करके युवावस्थामें अपने काममें ला सकती है । एकान्तमें अकेलीको लज्जा न आयेगी, अतः अभ्यास करतीबार बतानेवालेको भी न रहना चाहिये ॥ १३ ॥

विश्वस्त आचार्य्य ।

कः पुनर्वैश्वासिक इत्याह—

कन्याओंके विश्वासी सिखानेवालोंको बताते हैं कि—

आचार्यास्तु कन्यानां प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा सहसंप्रवृद्धा धात्रेयिका । तथाभूता वा निरत्ययसंभाषणा सखी । सवयाश्च मातृष्वसा । विस्रब्धा तत्स्थानीया वृद्धदासी । पूर्वसंसृष्टा वा भिक्षुकी । स्वसा च विश्वासप्रयोगात् ॥ १४ ॥

कन्याओंके विश्वस्त आचार्य्य तो—पुरुषके साथ संप्रयोग की हुई साथमें बड़ी हुई धायकी लड़की, अथवा ऐसी ही सचा वर्ताव रखनेवाली सची सखी तथा इसी प्रकारकी बराबरकी उमरकी माकी छोटी बहिन और माने जिसे बहिन जैसा मान रखा हो ऐसी वृद्ध दासी, पहिलेकी प्यारी भिक्षुकी एवम् विश्वासका प्रयोग करनेसे बहिन ये छः होते हैं ॥ १४ ॥

आचार्यास्त्विति।तुशब्दो विशेषणार्थः,पुरुषाणां स्वातन्त्र्यात्सुलभा उपदेष्टारः।

पुरुष स्वतंत्र हैं, इस कारण उन्हें तो सिखानेवाला बहुत मिल जाते हैं । पर स्त्रियोंके लिये ऐसा नहीं है, इसी बातको दिखानेके लिये कहा है कि उन्हें तो इनेगिने हुए ही सिखानेवाले हैं ।

तत्र प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा पुरा चानुभूतरसत्वादभिज्ञा धात्रेयिका धात्र्या अपत्यम्, सा हि सहसंप्रवृद्धत्वाद्विश्वास्या । इत्येक आचार्यः ।

जिसने पुरुषके साथ संप्रयोग कर लिया है वह कन्यासे पहिले रसका अनुभव कर चुकी है, इस कारण संप्रयोगको जानती है । ऐसी धायकी लड़की यदि साथमें ही बड़ी हुई हो तो वह विश्वासके योग्य है अतः उससे सब सीख लेना चाहिये । ऐसी यह एक प्रथम आचार्य्या (शिक्षिका) है ।

तथाभूता चेति—प्रवृत्तपुरुषसंप्रयोगा सखी वा, निरत्ययेति—निर्दोषसंभाषणत्वाद्विश्वास्या । इति द्वितीया ।

जिसका संप्रयोग पुरुषके साथ प्रवृत्त हो ऐसी सखी भी जो निर्दोष संभाषण करनेवाली हो तो विश्वासके योग्य है । यह दूसरी सिखानेवाली है ।

सवयाश्चेति तुल्यवयाः प्रीतिविश्वासयोरास्पदम् । चशब्दात्तथाभूतेति वर्तते । मातृष्वसा मातुर्भगिनी । इति तृतीया ।

यदि ऐसी ही पूर्वोक्त लक्षणोंवाली अपने बराबरकी मौंसी हो तो वह प्रेम और विश्वासका स्थान बन जाती है अतः वह भी कामकला सिखानेवाली तीसरी आचार्य्य होसकती है । पर वह चतुर हो इसी बातको बतानेके लिये 'च' का प्रयोग किया है ।

विस्रब्धेति--विश्वस्ता । तत्स्थानीया मातृष्वसृतुल्या मातृभगिनीत्वेन गृहीता वृद्धदासी विदितवहुवृत्तान्ता । इति चतुर्थी ।

जिस वृद्धदासीको माने अपनी बहिनकी तरह माना हो । जिसे कि बहुतसे हाल मालूम हों । यह यदि कन्याकी विश्वास पात्र बन जाय तो यह चौथी है ।

पूर्वसंसृष्टा पूर्वं यया सह प्रीतिरुत्पन्ना सा विश्वास्या भिक्षुकी भिक्षणशीला या काचित्सा देशहिण्डनकुशला । इति पञ्चमी ।

जिसके साथ पहिले प्रेम हुआ हो, जो कि पीछे भिक्षुकोंकी तरह देशोंके घूमनेमें चतुर हो गई हो । यदि वह फिर भी उसी प्रेम भरे हृदयसे मिल जाय तो वह भी विश्वासके योग्य है । यह पांचवी है ।

स्वसा च ज्येष्ठा भगिनी । विश्वासप्रयोगादिति--यदा तत्समक्षं विश्वासात् पुरुषान्तरेण संप्रयुक्ता स्यात् । अन्यथा स्वसा स्वसारमपि नेर्ष्यया शिक्षयति । इति षष्ठी । इत्युक्तम् । ग्रहणं कामसूत्रं तदङ्गविद्याः ।

जो वड़ी बहिन अपने प्रेम एवम् बहिनके विश्वासके आवेशमें छोटी बहिनके ही सामने दूसरे पुरुषके साथ संप्रयोगतक कर ले तभी वह विश्वासके योग्य है । नहीं तो वड़ी बहिन छोटी वहिनको भी ईर्षासे नहीं बताती । यह छठी है । इन छओंसे कामसूत्र वा उसकी अंगविद्याएं सीखनी चाहियें ।

कामशास्त्रकी अंगविद्यारूप ६४ मूल कलाएं ।

तासामङ्गविद्यानामयमुद्देशः । शास्त्रान्तरे चतुःषष्टिर्मूलकला उक्ताः ।

---

१ इनमें २४ कर्माश्रय, २० द्यूताश्रय, १६ शयनोपचारिका तथा ४ उत्तरकलाएँ हैं । कर्मोंके अधीनको कर्माश्रय तथा जुएके अधीनको द्यूताश्रय एवम् शयन (सहवास) के उपचारमें होनेवाली शयनोपचारिका हैं तथा इसके पीछे होनेवाली उत्तरकला कहाती हैं ।

दूसरे शास्त्रोंमें कामशास्त्रकी अंगविद्यारूप ६४ मूलकलाएं कही हैं। उन्हींका हम यहां सामान्यरूपसे कथन करते हैं, क्योंकि ये अवश्य ज्ञातव्य हैं।

तत्र कर्माश्रया चतुर्विंशतिः । तद्यथा---गीतम्, नृत्यम्, वाद्यम्, लिपिज्ञानम्, वचनं चोदारम्, चित्रविधिः, पुस्तकर्म, पत्रच्छेद्यम्, माल्यविधिः, आस्वाद्यविधानम्, रत्नपरीक्षा, सीव्यम्, रङ्गपरिज्ञानम्, उपकरणक्रिया, मानविधिः, आजीवज्ञानम्, तिर्यग्योनिचिकित्सितम्, मायाकृतं पाषण्डसमयज्ञानम्, क्रीडाकौशलम्, लोकज्ञानम्, वैचक्षण्यम्, संवाहनम् शरीरसंस्कारः, विशेषकौशलं चेति ।

कर्माश्रय—चौसठ अंगविद्याओंमें सबसे पहिले चौवीस कर्माश्रयोंको बताते हैं कि—१ गाना, २ बजाना, ३ नाचना, ४ देश देशकी भाषा और अक्षर जानना, ५ उदार वचन बोलना, ६ सुन्दर चित्र बनाना, ७ पत्र आदिपर अक्षर आदि बनाना, ८ फूलोंके गजरे बनाना, ९ फूलोंके गुलदस्ते बनाना, १० स्वादिष्ट भोजन बनाना, ११ रत्नोंका असली नकली पहिचानना, १२ उत्तम सीना, १३ रंगोंका बनाना और रंगना, १४ जितनी जो रसोई बनानी हो उसे बनानेसे पहिले उचित परिमाणमें इकट्ठी रखना, १५ मान करनेकी रीति, १६ अपने निर्वाहकी या संचय करनेकी विद्या, १७ पशुपक्षी आदिका इलाज, १८ दूसरेके किये कपटको जान लेना तथा स्वयं रचना, १९ खेलनेकी हुशियारी, २० हर इन्शानकी पहिचान तथा उसके साथका वर्ताव जानना, २१ हरएक बातकी समझदारी, २२ चरणादिक दाबनेकी रीति, २३ देहका स्वच्छ रखना, २४ बाल गूंथना, बेंदी लगाना आदि ।

द्यूताश्रया विंशतिः--तत्र निर्जीवाः पञ्चदश । तद्यथा—आयुःप्राप्तिः, अक्षविधानम्, रूपसंख्या, क्रियामार्गम्, बीजग्रहणम्, नयज्ञानम्, करणादानम्, चित्राचित्रविधिः, गूढराशिः, तुल्याभिहारः, क्षिप्रग्रहणम्, अनुप्राप्तिलेखास्मृतिः, अग्निक्रमः, छलव्यामोहनम्, ग्रहदानं चेति । सजीवाः पञ्च—उपस्थानविधिः, युद्धम्, रुतम्, गतम्, नृत्तं चेति ।

द्यूताश्रय—जुआके आधारपर होनेवाली २० कलाओंमेंसे १५ कलाएं निर्जीव तथा ५ कलाएं सजीव हैं। इनमें पहिले निर्जीव कलाओंको कहते हैं—

निर्जीव-तीन पासोंके खेलको यथार्थ रीतिसे खेलना, २ पासे डालने या बजानेका रीति, ३ होड़ बदकर मूठ धरना, ४ गोटोंके चलनेका मार्ग, ५ होड़के अनुकूल होनेपर पतिके पाससे द्रव्य निकालना, ६ हार जीतका वह न्याय करना जो दोनों मान लें, ७ होडमें डहराये हुए द्रव्यका लेना, ८ अनेकों खेलोंका जानना, ९ मुट्टीमें पैसे रखकर पूछना बताना, १० बराबर लेना देना, ११ जलदी ले लेना, १२ जीते हुएका हिसाब जानना, १३ खेलके समय आगे दाँव चलानेकी क्रिया, १४ कपटसे भुला देना, १५ ग्रहण कियेका देना । ये १५ द्यूतकलाएँ विना जीवके निष्पन्न होती हैं इस कारण निर्जीव कहाती हैं । सजीव द्यूत-१ तीतुर, मेंढे आदिको लड़नेके लिये खड़ा करना, २ उन्हें लड़ाना, ३ बुलाना, ४ उड़ना (भगाना), ५ नचाना ।

शयनोपचारिकाः षोडश । तद्यथा---पुरुषस्य[1] भावग्रहणम्, स्वरागप्रकाशनम्[2], प्रत्यङ्गदानम्[3], नखदन्तयोर्विचारौ[4], नीवीस्रंसनम्[5], गुह्यस्य[6] संस्पर्शनानुलोम्यम्, परमार्थकौशलम्[7], हर्षणम्[8], समानार्थताकृतार्थता[9], अनुप्रोत्साहनम्[10], मृदुक्रोधप्रवर्तनम्[11], सम्यक्क्रोधनिवर्तनम्[12], क्रुद्धप्रसादनम्[13], सुप्तपरित्यागः[14], चरमस्वापविधिः[15], गुह्यगूहनमिति[16] ।

शयनोपचारिका-१ दूसरेके भावको जान लेना, २ दूसरे पर अपने रागका प्रकट करना, ३ क्रमशः अपने अंगोंका देना, ४ नखच्छेद और दन्तच्छेदकी विधि, ५ नाड़ेका खोलना, ६ गुह्याङ्गका विधिसे सीधा छुआना, ७ रमणकी चतुराई, ८ प्रसन्न करना, ९ बराबरकी तृप्ति कर लेना या दूसरेको तृप्त करना, कृतार्थ हो जाना, १० रमणके लिये उत्साहित करना, ११ थोड़े गुस्सेमें करके कार्य्यमें लगाना, १२ क्रोधका अच्छी तरह निवारण कर देना, १३ कुपितको प्रसन्न कर लेना, १४ सोते हुएका परित्याग, १५ आखिरके सोनेकी विधि, १६ गुप्त अंगोका छिपाना ।

चतस्र उत्तरकलाः । तद्यथा---साश्रुपातं रमणाय शापनम्[1], स्वशपथक्रिया[2], प्रस्थितानुगमनम्[3], पुनः पुनर्निरीक्षणं च[4] ।

---

१ ये काम जब हार जीत ठहराकर या शर्त बदकर किये जाते हैं तो ये जूएका रूप धारण कर लेते हैं जैसा कि देखा जाता है ।

उत्तरकला—१ दुःखित हृदयके आसुओंको टपकाकर कहना कि ऐसी मुझे इस दशामें छोड़ अन्यत्र जानेमें कल्याण न होगा, २ जाते हुएको अपनी कसमें दिलाकर रोकना, ३ फिर भी न रुके तो पीछे २ जाना, ४ न हाथ आनेपर उसे वारंवार देखना ।

इति चतुःषष्टिर्मूलकलाः । आस्वेवान्तरनिविष्टानामन्तरकलानामष्टादशाधिकानि पञ्चशतान्युक्तानि । तत्र कर्मद्यूताश्रयाः प्रायश आबालं गच्छन्ति ।

ये ६४ मूल कलाएं हैं । इन्हीं कलाओंके भीतर इनकी ५१८ अन्तरकलाएं आ जाती हैं । इन ६४ कलाओंसे २० कर्माश्रय तथा २० जूआकी कलाओंको तो बच्चोंसे लेकर बूढ़े तक सब ही थोड़ा बहुत जानते हैं ।

ता एवान्यथा विभज्य चतुःषष्टिरत्रोक्ता । यास्तु शयनोपचारिका उत्तरकलाश्च ताः प्रायशस्तन्त्रस्याङ्गतां प्रतिपद्यन्ते, इति पाञ्चालिक्यामेव चतुःषष्ट्यामन्तरकला वेदितव्याः । ताश्च यथाप्रस्तावं वक्ष्यन्ते ॥ १४ ॥

नीचेके १६ वें सूत्रमें कर्माश्रय और द्यूताश्रय क्रियाओंका दूसरी तरहसे विभाग करके ६४ कह दिया है । हमारी बताई हुई शयनोपचारिका और उत्तरकला प्रायः संप्रयोगकी अंगताको प्राप्त हो जाती हैं इस कारण उन्हें पांचालिकी ६४ चौंसठ कलाओंके भीतरकी कलाएं समझना चाहिये । पांचालिकी कलाओंको उनके प्रसंगसे कहेंगे ॥ १४ ॥

उपायभूत चौंसठ कलाएँ ।

तत्राप्यौपयिकीं चतुःषष्टिमाह—

इसमें भी कामकी उपायभूत जो चौंसठ कलाएं हैं उन्हें बताते हैं—

[१]गीतम्, [२]वाद्यम्, [३]नृत्यम्, [४]आलेख्यम्, [५]विशेषकच्छेद्यम्, [६]तण्डुलकुसुमवलिविकाराः, [७]पुष्पास्तरणम्, [८]दशनवसनाङ्गरागः, [९]मणिभूमिकाकर्म, [१०]शयनरचनम्, [११]उदकवाद्यम्, [१२]उदकाघातः, [१३]चित्राश्च योगाः, [१४]माल्यग्रथनविकल्पाः, [१५]शेखरकापीडयोजनम्, [१६]नेपथ्यप्रयोगाः,

---

१ सांप्रयोगिक अधिकरणके दूसरे अध्यायसे ये कलाएँ शुरू होती हैं ।

[17]कर्णपत्रभङ्गाः, [18]गन्धयुक्तिः, [19]भूषणयोजनम्, [20]ऐन्द्र-
जालाः, [21]कौचुमाराश्च योगाः, [22]हस्तलाघवम्, [23]विचित्र-
शाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोज-
नम्, [24]सूचीवानकर्माणि, [25]सूत्रक्रीडा, [26]वीणाडमरुक-
वाद्यानि, [27]प्रहेलिका, [28]प्रतिमाला, [29]दुर्वाचकयोगाः, [30]पुस्त-
कवाचनम्, [31]नाटकाख्यायिकादर्शनम्, [32]काव्यसम-
स्यापूरणम्, [33]पट्टिकावानवेत्रविकल्पाः, [34]तक्षकर्माणि,
[35]तक्षणम्, [36]वास्तुविद्या, [37]रूप्यपरीक्षा, [38]धातुवादः, [39]मणि-
रागाकरज्ञानम्, [40]वृक्षायुर्वेदयोगाः, [41]मेषकुक्कुटलावकयुद्ध-
विधिः, [42]शुकसारिकाप्रलापनम्, [43]उत्सादने संवाहने
केशमर्दने च कौशलम्, [44]अक्षरमुष्टिकाकथनम् । [45]म्ले-
च्छितविकल्पाः, [46]देशभाषाविज्ञानम्, [47]पुष्पशकटिका,
[48]निमित्तज्ञानम्, [49]यन्त्रमातृका, [50]धारणमातृका, [51]सम्पा-
ठ्यम्, [52]मानसी, [53]काव्यक्रिया, [54]अभिधानकोशः, [55]छन्दो-
ज्ञानम्, [56]क्रियाकल्पः, [57]छलितकयोगाः, [58]वस्त्रगोपनानि,
[59]द्यूतविशेषः, [60]आकर्षक्रीडा, [61]बालक्रीडनकानि, [62]वैन-
यिकीनाम्, [63]वैजयिकीनाम्, [64]व्यायामिकीनां च
विद्यानां ज्ञानम्, इति चतुःषष्टिरङ्गविद्या । कामसूत्र-
स्यावयविन्यः ॥ १५ ॥

१ गाना, २ बाजे, ३ नृत्यशास्त्र, ४ चित्रकला, ५ माथेमें लगानेकी बेंदी आदि तथा कटाव करके तसवीर बनाना, ६ सावित रँगे चावल तथा फूलोंसे चौक आदि पूरना, ७ फूलबँगला आदि बनाना, ८ दांत, वस्त्र और शरीरको रंग आदिसे भव्य बनाना, ९ संगमरवर आदिका फर्स तयार करना, १० विधिके साथ पलँग तयार करना, ११ जलतरंग आदि बाजे बजाना, १२ पिचकारी आदिसे पानी फेंकना, १३ औपनिषद प्रकरण तथा वैसे ही प्रकरणोंका ज्ञान, १४ तरह २ की मालाएं गूंथना, १५ शिरकी चोटीके आभूषण शेखर और आपीड आदिका बनाना, १६ वेष रचना, १७ कर्णपत्र (कानोंके भूषण) बनाना, १८ सुगन्धि बनाना या लगाना, १९ उचित रीतिसे आभू-

षण पहिनना, २० इन्द्रजालकी जादूगरी, २१ कुचुमार मुनिके कहे हुए सौभाग्य आदि करनेवाले योग, २२ हाथकी फुरती, २३ अनेक तरहके शाक यूष (पोनेकी चीज) और भक्ष्योंका तयार करना, पानक रस, राग और आसव आदि तयार करना । २४ सीनेकी कारीगरी, २५ डोरोंका खेल, २६ वीणा सीखनेमें उपयोगी होनेवाले बाजेके साथ सितार आदि बजाना, २७ पहेली पूछना कहना, २८ एकके कहे श्लोकके अन्तिम अक्षरको अपने श्लोकके आदिमें लाकर बोलना, २९ कठितासे बोले और समझे जानेवाले श्लोक आदि, ३० काव्योंको रसके अनुसार गाना, ३१ गद्य, पद्य, काव्य तथा गद्य काव्योंका पढ़ना, ३२ काव्यकी समस्याकी पूर्ति करना, ३३ वेतके बुनकर चटाई आदि बनाना, ३४ लुहार सुनारका काम, ३५ बढ़ईका काम, ३६ राजका काम, सोने, चादीं और मोती, मूंगा और सिक्का आदिकी परीक्षा, ३८ धातु शोधन आदि, ३९ मणि आदिकोंका रँगना एवम् खानोंका जानना, ४० वृक्षोंकी चिकित्सा, ४१ मेंढा, मुरगा और तीतुर आदिका लड़ाना, ४२ तोता, मैना आदिको बोलना सिखाना, ४३ हाथ पैरोंकें दाबनेकी एवम् शिर मसलनेकी चतुराई, ४४गुप्त या बँधे अक्षरोंका कहना, ४५ अस्पष्टार्थ शब्दोंका प्रयोग ४६ देश देशकी भाषाएं जानना, ४७फूलोंके छकड़े,४८ शकुन परीक्षा, ४९ मशीनरी, ५० याददास्तींके साधन, ५१ विना पढ़ी वस्तुका भी कहते हुएके साथ कहना, ५२मानसी, ५३ कविता करना, ५४ नामोंका कोश, ५५ छन्दः-शास्त्र, ५६ हुईकी परीक्षा, ५७ दूसरेको ठगना ५८ वस्त्रोंके दोषको छिपाना आदि, ५९ जुएका खेल, ६० पासोंको अपने अनुकूल डालना, ६१ बच्चोंके गुड़िया आदिका खेल, ६२ विनय लानेवाले आचारादि शास्त्र, ६३ जितानेवाली विद्याएं, ६४ कसरत कुस्ती आदि । ये भी कामसूत्रके ही हिस्से हैं ॥ १५ ॥

(१) गीतमित्यादि—गीतवाद्यनृत्यालेख्यानि चत्वारि प्रायः स्वशास्त्रविहित-प्रपञ्चानि तथापि संक्षेपतः कथ्यन्ते—'स्वरगं पदगं चैव तथा लयगमेव च । चेतोवधानगं चैव गेयं ज्ञेयं चतुर्विधम् ।

गीत, वाद्य, नृत्य और आलेख्य ये चारों प्रायः इन्हींके शास्त्रोंमें विस्तारके साथ कहे हैं तो भी यहां हम उन्हें संक्षेपसे कहते हैं—

(१) गीत—स्वरग, पदग, लयग और चेतोवधानग भेदसे चार प्रकारका है । स्वरको मुख्य रखकर उसपर चलनेवाले को 'स्वरग' तथा पैरके ठुमकेके ऊपर चलनेवालेको 'पदग' एवम् कालक्रियाके मानपर चलनेवालेको ' लयग' और अपने चित्तकी प्रसन्नतापर चलनेवालेको 'चेतोऽवधानग' कहते हैं ।

(२) घनं च विततं वाद्यं ततं सुषिरमेव च । कांस्यपुष्करतन्त्रीभिर्वेणुना च यथाक्रमम् ।

(२) वाद्य–घन, वितत, तत और सुषिर भेदसे चार प्रकारके हैं। घन–शब्दवाले घण्टे मंजीर आदिकोंको कहते हैं। वितत–उससे भी बड़ी आवाजवालोंको कहते हैं, जिसमें जलतरंग आदि भी आ जाते हैं। तत–सितार आदिको कहते हैं। सुषिर–छेदवाले वंशी, अलगोजा आदि बांसके बाजे कहाते हैं।

(३) 'करणान्यङ्गहाराश्च विभावो भाव एव च । अनुभावो रसाश्चेति संक्षेपान्नृत्यसंग्रहः ॥'

(३) नृत्य–प्रचलित व्यवहारके अनुसार नृत्य नाचको कहते हैं पर जयमङ्गलाकार इस शब्दसे नाच और नाटय दोनोंको ले लेते हैं यहीं जो उन्होंने नृत्यके पदार्थ एवम् भेद दिखाये हैं उनसे यही व्यक्त होता है। सामान्यरूपसे नृत्यमें करण, अङ्गहार, विभाव, भाव, अनुभाव और रस ये पदार्थ होते हैं। करण–स्थान और उपकरणोंको कहते हैं जिनसे कि नाच या नाटय संपादित किया जा सके। अङ्गहार–यह शब्द श्लोकमें बहुवचनसे रखा है इस कारण नाचके समय या नाटयके समय जो अंगोंका एक स्थानसे चलाकर दूसरे स्थानमें ले जाना है एवम् किसीका भेष भरके आना है उस जैसी बातें करना है। अथवा यों समझ लीजिये कि रसकी सामिग्रीके सिवा जो वस्तु चाहिये वह सब अंगहारके साथ ही लेलेनी चाहिये। विभाव–आलम्बन विभाव और उद्दीपन विभावके लौकिक स्वरूपको इसी अधिकरणके ४९ से ५३ पृष्ठतक कह चुके हैं। बाकीके सब पदार्थोंका विस्तारके साथ निरूपण करते हैं।

स्थायीभाव।

जो रसके अंकुरका मूल है जिसे विरुद्ध और अनुकूल भाव दबा नहीं सकते, उसे स्थायीभाव कहते हैं। स्थायीभावोंके नाम–रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और शम ये हैं। रति–चित्तको प्यारी लगनेवाली वस्तुमें उत्पन्न हुए प्रेमसे चित्त भीग जाय उसे 'रति' कहते हैं। हास–किसीके बाणी आदिकी विकृततासे चित्तके विकास होनेका नाम 'हास' है। शोक–इष्टके नाश आदिसे चित्तके व्याकुल होनेका नाम 'शोक'

---

१ विष्णुधर्मोत्तर तृतीयखण्ड अध्याय २ से ४३ अध्यायतक नृत्य और नाटय आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

है । क्रोध–वैरीपर उग्र बुद्धि होनेका नाम क्रोध है । उत्साह–कर्तव्यके पूरा करनेमें चित्तका स्थिरतर समावेश 'उत्साह' कहाता है । भय–वैरियोंके तीव्र सामार्थ्यके देखनेपर जो चित्तमें क्लैव्यता आ जाती है उसे 'भय' कहते हैं । जुगुप्सा–दोषेंके ज्ञानके उत्पन्न हो जानेपर विषय भोगोंके विषयमें निन्द्य बुद्धिके हो जानेका नाम 'जुगुप्सा' है । विस्मय–जो बात लोकमें देखने सुननेमें नहीं आयी उस वस्तुके देखने सुननेमें जो चित्तका विकास होता है उसे 'विस्मय' कहते हैं । शम–चित्तकी वितृष्ण दशामें जो स्वात्म-स्थितिका सुख है उसे 'शम' कहते हैं । इनमें शृंगारका रति, हास्यका हास, करुणका शोक, रौद्रका क्रोध, वीरका उत्साह, भयानकका भय, वीभत्सका जुगुप्सा, अद्भुतका विस्मय और शान्तरसका शम स्थायी भाव है।

व्यभिचारी भाव ।

जो स्थायीभाव बताये हैं यदि वे स्थायीभावके ही रूपमें हों तो जो उनसे पैदा होकर उन्हींमें लय हो जायँ जैसे कि तरंगें समुद्रमें लय होजाती हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं । यही भाषाके कवियोंने कहा है कि–

" थाई भावनिमें रहत, या विधि प्रकट बिलात ।
ज्यों तरंग दरियावमें, उठि २ तितहि समात ॥ "

नाम–निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, उग्रता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलस, अमर्ष, निद्रा, अवहित्था, औत्सुक्य, उन्माद, शङ्का, स्मृति, मति, व्याधि, भय, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क ये व्याभिचारीभाव हैं । ये तेतीस संचारी भाव हैं, हिन्दीके कवियोंने भी संस्कृत साहित्यसे लेकर इन्हें इसी रूपमें रखा है एवम् हमने इनका इसी जगह जो अर्थ किया है वही अर्थ हिन्दी साहित्यमें भी है, होना भी ऐसा ही चाहिये, क्योंकि हिन्दी साहित्यकी सब वस्तुएं संस्कृत साहित्यकी ही हैं नव्यता आयेगी भी कहांसे ? जब कि वह संस्कृतसाहित्यका ही एक विकाश है । इन व्याभिचारीभावोंका अर्थ, इनका कार्य्य एवम् इनके व्यक्त होनेके कारण नीचे दिखाते हैं । इनमें हिन्दी और संस्कृत साहित्यमें कोई मतभेद नहीं है। निर्वेद–अपनेको तुच्छ समझ अपना अपमान करना है । इसके कारण तत्त्वज्ञान, आपत्ति और ईर्ष्या आदि होते हैं । इससे दैन्य, चिन्ता, आंसू चेहरेकी रंगतिका बिगड़जाना, गरम श्वास और मौतकी इच्छा होती है । आवेग–आकस्मिकी घटनासे जो मनोवेग होता है उसे आवेग कहते

हैं। यह वर्षा, उत्पात, अग्नि, राजोपद्रव, गजादि, आंधी, इष्ट और अनिष्टसे होता है। दैन्य-दुर्गति आदिसे ओजहीन होजानेका नाम दैन्य है। इससे मलिनता आदिक होतो हैं। श्रम-रति और मार्गगमन आदिके कार्योंसे श्रम होता है। इससें श्वास नींद आदि होते हैं। मद-नसीली चीजके पीनेसे नशा होता है, इसमें वेहोशी और आनन्द दोनों ही होते हैं। नशा आनेपर उत्तम सोता है, मध्यम हँसता और गाता है एवम् अधम प्रकृतिका व्यक्ति गालियां बकता हुआ रोता है। जड़ता-बुरे या अच्छेके देखने सुननेसे अनुसन्धान हीन होनेका नाम जड़ता है। इसमें आँखें फटी एवम् वाणी ऐसी ही रहजाती है। उग्रता-चण्डपनेका नाम उग्रता है यह अपने पराक्रम एवम् दूसरेके असह अपराधके कारण होता है। इसमें स्वेद शिरका कांपना दूसरेको डराना एवम् दण्ड देना होता है। मोह-वेहोश होनेका नाम मोह है। यह डर दुःख आवेग और गहरी यादसे होता है, इसमें घुमेर अंगोंका गिरना और अज्ञान होता है। विबोध-फिर होश आजानेका नाम विबोध है। यह नींदके हटा-नेवाले कारणोंसे होता है। इसमें झँभाई, अँगड़ाई, आखें मीचना और अंगोंका देखना होता है। स्वप्न-नींदमें सोये हुएका जो विषय अनुभव होता है उसे 'स्वप्न' कहते हैं। अपस्मार-चित्तके विगड़ जानेका नाम अपस्मार है। यह ग्रहादिकोंके आवेशसे होता है। इसमें जमीनपर गिरना, कम्प, पसीना, लार और मुखसे फेन आता है। गर्व-घमण्डका नाम है। यह प्रभाव, श्री, विद्या और सत्कुलता आदिसे होता है। इससे लोगोंमें हेयबुद्धि होती है, सविलास अंगदर्शन और अविनय होता है। मरण-शर आदिसे प्राणत्यागका नाम मरण है, इससे शरीरका पतन होजाता है। आलस्य-जिससे शरीर भारी होता है उसका नाम आलस्य है, यह परिश्रम और गर्मसे होता है। इसमें झंभाई और वैठा रहना अच्छा प्रतीत होता है। अमर्ष-निन्दा आक्षेप और अपमान आदिसे जो अभिनिवेश पैदा होता है उसे 'अमर्ष' कहते हैं। इससे आखोंमें लाली, शिरका हिलना आदि होते हैं। निद्रा-चित्तका निश्चल हो जानेका नाम निद्रा है। यह श्रम क्लम और मद आदिसे होती है। इसमें जंभाई, आखोंका मिचना, ऊंचे श्वास और गातका टूटना होता है। अव-हित्था-अपने हर्षादि भाव सूचक आकारके छिपानेको कहते हैं। यह भय, गौरव एवं लज्जादिकोंके कारण करना पड़ता है। औत्सुक्य-कालक्षेपके न सहे जानेका नाम है। यह इष्ट वस्तुके उचित समयपर न मिलनेसे होता है। इसमें हृदयको परिताप, शीघ्रता, पसीना और दीर्घश्वास आदि होते हैं। उन्माद-काम, शोक और भय आदिसे चित्तका संज्ञाहीन हो जानेका नाम

उन्माद है । इसमें न हँसनेके स्थानमें हँसना, न रोनेकी जगह रोना, न गानेके स्थानपर गाना एवम् व्यर्थ बकते हैं । शङ्का–अनर्थकी तर्क करनेका नाम शंका है । यह दूसरेकी क्रूरता और अपने दोष आदिकोंसे होती है । इससे विवर्णता, कम्फ, स्वरभंग, बगल झांकना और मुँह सूखता है । स्मृति–पहिले अनुभव किये हुए विषयका फिर ज्ञान होनेका नाम स्मृति (याद) है । अनुभूत विषयका संस्कार, सदृश वस्तुके ज्ञानसे जग जाता है जिससे फिर उसकी याद आजाती है । मति–नीतिमार्ग, धर्मशास्त्र और अनुमान आदिकोंसे किसी वस्तुके निश्चय करनेको मति कहते हैं । इससे स्मेरता, धृति, सन्तोष और बहुमान होते हैं । व्याधि–ज्वरादिक रोगोंका नाम व्याधि है । ये वातादिके दूषित होनेसे होते हैं । वियोगादिक भी वातादिकोंको कुपित करके रोगोंका कारण बनते हैं । इसमें भूमिपर सोनेकी इच्छा और कंप आदि होते हैं । त्रास–भयका नाम है । यह निर्घात, बिजली और उल्का आदिसे होता है, इससे कंप आदि होते हैं । व्रीडा–लज्जाका नाम है । निर्लज्जपनेके अभावके होनेका नाम व्रीडा है। यह यदि दुराचारसे होती है तो शिर झुकता है । हर्ष–चित्तकी प्रसन्नाताका नाम हर्ष है । यह चाही हुई वस्तुके मिलनेसे होता है । इससे आंसू आते हैं गद्गद हो जाता है । असूया–अपने उद्धत स्वभावके कारण दूसरेके गुण और ऋद्धिको न सह सकनेका नाम 'असूया' है । इससे मनुष्य दूसरेकी बुराई और अपमान करता है, भौंहें चढ़ाता एवम् क्रोध प्रकट करने लगजाता है । विषाद–किसी आवश्यकीय कार्यका उपाय न मिलनेसे जो उत्साहका नाश होता है उसे 'विषाद' कहते हैं । इससे गरम श्वास, हार्दिक परिताप होता है, एवम् सहायकोंकी चिन्ता होती ह। धृति–ज्ञान और इच्छित वस्तुकी प्राप्तिसे पूर्णकाम होनेका नाम धृति है । इससे मनुष्यकी तृप्ति एवम् उमंगसहित मन्दहासपूर्वक वचन होते हैं एवम् बुद्धि प्रतिभाशालिनी होती है । चपलता–एक जगह न टिकनेका नाम चपलता है, यह मात्सर्य्य, द्वेष और राग आदिसे होती है। इसमें किसीको डाट देना, कड़ा बोल देना और स्वच्छन्द आचरण होता है । ग्लानि–शरीरका प्राण रहितसा दीखना 'ग्लानि' है । यह रतिके परिश्रम, मनके परिताप, भूख और प्यास आदिसे होती है । इससे कंप, कृशता और उत्साहहीन हो जाता है । चिन्ता–हितके न मिलनेसे जो ध्यान होता है उसे चिन्ता कहते हैं इसमें शून्यता गरम श्वास और ताप होता है । वितर्क–सन्देहसे जो विचार होता है । उसे 'वितर्क' कहते हैं । इसमें भौंहें शिर और अंगुलियाँ हिलने

लगती हैं। इस प्रकार संचारीभावोंके अर्थ कर दिये गये हैं यह मेरा स्वतंत्र अर्थ नहीं है मैंने साहित्यदर्पणकी इस विषयकी कारिकाओंको ही हिन्दीमें रख दिया है। इन्हें कोई व्यभिचारी तथा कोई २ सहकारीभाव भी कहते हैं।

अनुभाव।

सा०–उद्बुद्धं कारणैः स्वैःस्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।
लोके यः कार्य्यरूपः सोऽनुभावः प्रकीर्तितः॥ १६६॥

संसारमें आलम्बन और उद्दीपनके कारणोंसे अन्तःकरणमें जमा हुआ भाव जिन बातोंसे बाहिर प्रकट हो वे कार्य्य काव्य नाटयमें अनुभाव कहाते हैं। यह सब रसोंके अनुभावोंका लक्षण कर दिया है अब हम कामसूत्रके उपयोगी श्रृंगार रसके अनुभाव बताते हैं कि–

'उक्ताः स्त्रीणामलङ्कारा अङ्गजाश्च स्वभावजाः।
तद्रूपाः सात्त्विका भावास्तथा चेष्टाः पराः अपि॥'

युवावस्थामें जो २८ सहज आभूषण होते हैं उनमें ये २१ अनुभाव हैं इनमें भाव, हाव और हेला ये तीन अंगसे उत्पन्न होनेवाले हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति, विव्वोक, किलकिंचित्, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विकृत, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि ये अठारह स्वभावसे होनेवाले हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय ये सात्त्विक अनुभाव हैं। भौंहें चलाना, आखें मटकाना आदि अन्य भावको जतानेवाली चेष्टाएँ कायिक अनुभाव कहाती हैं। सब अनुभावोंमें मनोविकार तो कारण होता ही है पर यह विभाग प्राधान्य एवम् अप्राधान्यको लेकर ही है। कामशास्त्रके ग्रन्थ नागरसर्वस्वके तेरहवें परिच्छेदमें लीलासे लेकर विक्षेप तकके अनुभावोंका सोदाहरण विवरण आया है एवम् हेला और हावको भी उसने यहीं गिन लिया है एवम् साहित्य शास्त्रमें भी ये प्रचलित हैं इस कारण हमें इनका बृहद्‌निरूपण आवश्यक हुआ है।

अंगज।

भाव–चाहकें उत्पन्न होनेके बाद जो 'निर्विकल्पात्मके चित्ते भावः प्रथम विक्रिया' अविकृत चित्तमें प्रथम विकार हो यानी प्रकृतिमें विपर्य्यास हो यानी चाह हृदयपर अधिकार करके उसे विकृत करे तो यह 'भाव' कहाता है।

उदाहरण–" स एव सुरभिः कालः, स एव मलयानिलः।
सैवेयमबला किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते॥"

वही अनुभूत वसन्त एवम् वैसा ही मलयाचलका मन्द मन्द वायु है वैसी ही रमणी है जिसका कि मैंने अनेकवार अनुभव किया है किन्तु आज न जाने क्यों मन औरका और ही हो रहा है । यहां रमणी आलम्बन एवम् वसन्तादि उद्दीपनसे चाहने पैदा होकर जो प्रीति पैदा की है उससे चित्त विकृत हो गया है । हाव-उत्पन्न हुआ चित्तविकार यदि भौंहें मटकाने और नेत्रोंके चलाने आदिसे सहवासकी इच्छा प्रकट करने लग जाय जिससे कि दूसरा उसके दिलकी बात ताड़ जाय उसे ' हाव ' कहते हैं । हेला-जिससे यह प्रकट हो जाय कि इसके दिलमें अत्यन्त चाह है यानी वही पाहिला विकार अत्यन्त प्रकट हो जाय कि अनायास ही जाना जा सके उसे ' हेला ' कहते हैं । साहित्यदर्पणने इन तीनोंको ' अंगज ' माना है ।

स्वभावज ।

लीला-प्रेमके आवेशमें प्यारेके शरीरके अंगोंके चलने, वेष और अलङ्कार एवम् प्यारके वचनोंकी नकल करनेका नाम ' लीला ' है । हिन्दीके कवि इसे इसप्रकार कहते हैं कि-

' पिय तियको तिय पीउको, धरै जु भूषण चीर ।
लीला हाव बखानहीं, ताहीको कवि वीर ॥ '

प्यारा प्यारीके और प्यारी प्यारेके वसन भूषण आदिको धारण करे इसका नाम ' लीला ' है । इसके उदारणमें भानुकविने पद्माकरकी एक सूक्ति दी है कि-' राधामई भई श्यामकी सूरति श्याममई भई राधिका डोलै ' श्यामकी सूरत राधामयी होगई एवम् राधा श्याममयी हुई डोलती है । विलास-प्यारेके देखने सुनने आदिसे गमन, स्थिति, आसन आदिकोंमें मुख और नेत्रोंके कामोंमें जो विचित्रता हो उसे ' विलास ' कहते हैं । इसका उदाहरण पद्माकरने दिया है कि-" छोटीसी छाती छुटी अलकें अतिवैसकी वारी वड़ी परवीनें । " वैसकी वालक है इस कारण अभी उरोज भी नहीं बढ़ पाये हैं किन्तु वड़ी चतुर है । विच्छित्ति-जिसके वदनपर थोड़ी ही सजावट अधिक शोभा दे उसको 'विच्छित्ति' कहते हैं । भानु-'तनक वनकहीमें जहां, तरुणि महाछबि देत । ' इसका अर्थ भी ऊपरके शव्दोंमें हो जाता है । विव्वोक-अत्यन्त गर्वके कारण इष्ट वस्तुमें भी अनादर व्यक्त हो । यही भानुने भी कहा है कि-' करै अनादर ईठको, निज गुमान गहि वाम ' अत्यन्त गर्वमें आकर प्यारेका भी अपमान कर दे । जैसे राधिका कृष्णका करती है कि-

" रहौ देखि दृग दे कहा, तुहिं न लाज कछु छूत ।
मैं बेटी वृषभानुकी, तू अहीरको पूत ॥ "

आखें डालकर मुझे क्या देख रहा है क्या तुझे लज्जा नहीं आती कहां मैं वृषभानुकुमारी और कहां तू अहीरका छोकड़ा। यहां राधाका अभिमान व्यक्त होता है । किलकिंचित्–अत्यन्त प्यारेके संगमादिसे उत्पन्न हुए हर्षके कारण स्मित, मृदुहास, शुष्करोदन, त्रास, क्रोध और श्रमादिक एक साथ हों उसे 'किलकिंचित्' कहते हैं। यही भानुने कहा है कि–'होत जहां इकबारही, त्रास हास रस रोप' रसाभिलाष, भय, क्रोध, हास्य, मान और हर्षादिके एक साथ उत्पन्न होनेको 'किलकिंचित्' कहते हैं। मोट्टायित–जिसमें चित्त लगा है उसकी बातें सुनकर जो भाव व्यक्त हो उसे 'मोट्टायित' कहते हैं।

उदाहरण–" सुभग ! त्वत्कथारम्भे कर्णकण्डूतिलालसा ।
उज्जृम्भवदनाम्भोजा भिनत्त्यङ्गानि साङ्गना ॥"

ए सुन्दर ! जब मैं आपकी बातें शुरू करती हूं तो उसकी कान खुजानेकी इच्छा होती है । मुख कमलपर झमाई झमझमाने लगती है एवम् वह सुन्दरी अंगोंको तोड़ने लग जाती है । इसमें जंभाईसे अंग तोड़ना, जृंभा एवम् कान खुजाने लगना 'मोट्टायित' है । कुट्टमित–प्यारेके केशपाश पकड़ने स्तनोंको दावने एवम् अधरके पकड़नेपर अथवा आनन्दसे भयभीतकी तरह जो शिर और हाथ कँपाना है इसे 'कुट्टमित' कहते हैं। विभ्रम–प्यारेके आगमन आदिमें आनन्द और अनुरागसे जलदीके मारे जिसकी जो जगह नहीं है वहां आभूषणोंका पहिनना 'विभ्रम' है। ललित–अंगोंका इस प्रकार चलना जिससे कि सुकुमारता (नाजुकपना) झलके उसे 'ललित' कहते हैं। विकृत–कहनेके समय भी लाजके मारे कुछ न कह सके उसे विकृत कहते हैं। इसीको कोई 'विहृत' के नामसे भी बोलते हैं। ये दशों अनुभाव संस्कृत और हिन्दीमें एकसमान हैं इनके जो लक्षण साहित्यदर्पणने किये हैं उन्हींका अनुवाद हिन्दीके कवियोंने किया है । इन दोनोंके भावके ऊपर दृष्टि रखकर हमने इनके लक्षणोंका सरल हिन्दीमें अनुवाद किया है । अमरकोशके नाटयवर्गमें इनके साथ हेला और सामिल करके इन सबको हाव बताया है तथा कविवर भानुने इनके साथ बोधक और सामिल करके इन बारहोंको द्वादश हावोंको कायिक (कृत्रिम) और मानसिक अनुभाव बताया है। इनमेंसे ग्यारहोंका तो स्वरूप बता चुके हैं बोधकका स्वरूप बताते हैं कि–

" ठानि क्रिया कछु तिय पुरुष, बोधन करै जु भाव ।
रस ग्रन्थनिमें कहत हैं, तासों बोधक हाव ॥ "

नायक या नायिका किसी कामसे एक दूसरेको कुछ बता दें उसे बोधक हाव कहते हैं। इसका उदाहरण पद्माकरने दिया है कि-"अंचल ऐंचि उरोज-नितैं नँदलालको मालती माल दिखाई" भगवान् कृष्णके तमालकी माला दिखानेके उत्तरमें राधाने उरोजोंसे अंचल खींचकर कृष्णको मोतियोंकी माला दिखा दी । इससे दोनोंने अपने मिलनेका संकेत कर लिया प्रतीत होता है ।

संस्कृत साहित्यके अधिक अनुभाव ।

ऊपर उन अनुभावोंको गिना चुके हैं जो हिन्दी और संस्कृत दोनोंमें प्रयुक्त होते हैं अब उन अनुभावोंको दिखाते हैं जो कि संस्कृतसाहित्यमें उनसे अधिक लिखे हैं। केलि-प्यारेके साथ विहार करती बार जो खेल खेले जाते हैं उन्हें 'केलि' कहते हैं।तपन-प्यारेके वियोग होनेपर जो कामके आवेशसे चेष्टा पैदा हो । मौग्ध्य-प्यारेके सामने जानी हुई वस्तुको भी विना जानी हुईकी तरह पूछना ' मौग्ध्य ' कहाता है।विक्षेप-प्यारेके पास व्यर्थ ही इधर उधर देखना तथा पूरा शृंगार न करना एवम् कुछ कुछ गुपचुपकी बातें बनाने लग जाना ' विक्षेप ' कहाता है । कुतूहल-सुन्दर वस्तुके देखनेसे जो सतृष्णता (चाह) हो उसे 'कुतूहल' कहते हैं । हसित-यौवनके प्रकाशसे होनेवाले वृथा हासको 'हासित' कहते हैं। चकित-प्यारेके सामने किसी तरह भी भयसे संभ्रम होना 'चकित' कहाता है। मद-सौभाग्य और यौवन आदिके अभिमानसे विकार उत्पन्न हो उसे ' मद ' कहते हैं ।

उदाहरण-मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति ।
कान्तस्वहस्तलिखिता मम मञ्जरीति ॥
अन्याऽपि किं न खलु भाजनमीदृशीनाम् ।
वैरी न चेद्भवति वेपथुरन्तरायः ॥

कपोलपर प्यारेके हाथकी काढ़ी हुई मंजरी है, इस बातपर क्यों घमंड करती है यदि कंप बीचमें विघ्न न करे तो क्या दूसरी ऐसी मंजरियोंकी पात्र नहीं बन सकतीं । इसमें पतिके हाथकी मंजरी लगनेरूप सौभाग्यसे गर्व होना सखी बता रही है ।

विना यत्नके अलङ्कार ।

शोभा-रूप, यौवन, सौन्दर्य्य और पान आदिके भोगसे अङ्गोंका सुहा-वना लगना ' शोभा ' कहाती है । कान्ति-यदि कामने इसी शोभाकी चम-

कको और बढ़ा दिया हो तो वही शोभा 'कान्ति' कहाती है। दीप्ति-यदि कान्ति ही यथेष्ट विस्तारको पा जाय तो 'दीप्ति' कहाती है। माधुर्य्य-शृंगार किया हो वा न किया हो, किसी भी अवस्थामें हो फिर भी सुन्दर ही लगे, उसे 'माधुर्य्य' कहते हैं। प्रगल्भता-जो सभी अवस्थामें संकोच रहित निडर हो, उसे 'प्रागल्भ्य' कहते हैं। औदार्य्य-सब समयोंमें विनय एवं शिष्टाचार ही रहे उसे 'औदार्य्य' कहते हैं। धैर्य्य-जिससे मनोवृत्ति चंचल न हो एवम् कभी भी आत्मश्लाघा न करे, उसे 'धैर्य्य' कहते हैं।

सात्त्विक।

सत्त्वसे होनेवाले विकार 'सात्त्विक' कहाते हैं। बुद्धिमें रस पूर्ण विश्राम कर रहा है, इस बातको प्रकट करनेवाला धर्म सत्त्व कहाता है। वह जिन विकारोंको प्रकट करता है वे सब सात्त्विक कहाते हैं। स्तम्भ-भय, हर्ष, लाज और व्याधि आदिसे जब अंग थकित हो जैसेके जैसे ही रह जायँ। इसका उदाहरण काशीरामने दिया है कि-'चित्रकेसे लिखे दोउ ठार रहे 'काशीराम' नाहीं परवाह लोग लाख करो लखिवो' दोनों चित्रके लिखेसे खड़े रह गये, चाहें लोग लाख लड़ें, उन्हें इसकी चिन्ता नहीं है। स्वेद-सुरत-श्रम, तपिस, परिश्रम, रोष, लाज और हर्षसे जो शरीरसे जल निकले उसे पसीना कहते हैं। भानु इस श्रमको स्थायीभावसे होना ही लेते हैं, बोझा आदिके श्रमको नहीं लेते। स्वेद होनेके कारण गिनाये हैं किन्तु सात्त्विक स्वेदका आन्तर कारण होना चाहिये। रोमांच-हर्षसे विना देखी देखने एवम् विना सुनीके सुननेसे और भयादि कारणोंसे रोम खड़े हो जाना 'रोमांच' कहाता है। इस नागरसर्वस्वने १३ व परिच्छेदमें दिखाकर इससे सभी सात्त्विकोंका अनुभावमें संग्रह कर लिया है। स्वरभंग-मत्तता, आनन्द और रोगादिकोंसे स्वरका विगड़ जाना 'स्वरभंग या गद्गद' कहाता है। वेपथु-राग, द्वेष, हर्ष और कोप, श्रम, भय, श्रम आदिसे शरीरका काँपना 'वेपथु' कहाता है। वैवर्ण्य--विषाद, मद और रोष आदिसे चेहरेकी रंगतका विगड़ जाना 'वैवर्ण्य' कहाता है। अश्रु--क्रोध, दुःख और आनन्दके मारे आखोंमें पानी आना 'अश्रु' है। प्रलय-सुख दुखःके कारण बेहोश होजाना है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच और प्रलयका इकट्ठा उदाहरण—

"तनुस्पर्शादस्या दरमुकुलिते हन्त नयने।
उदञ्चद्रोमाञ्चं व्रजति जडतामङ्गमखिलम् ॥
कपोलौ घर्मार्द्रौ ध्रुवमुपरताक्षेपविषयम्।
मनः सान्द्रानन्दं स्पृशति झटिति ब्रह्म परमम् ॥"

इस नायिकाका इसके प्यारेने जो शरीर छू दिया उससे इसे इतना आनन्द आया कि आंखें कलीकीसी हो गईं । रोमावलि खड़ी हो गई । सारा शरीर जहांका तहां रह गया । गालोंपर इतना पसीना आया कि वे गीले हो गये । उस समय उसे दुनियाके किसी भी विषयकी याद न रही । उसका मन आनन्दघन परमब्रह्मरूपी शृंगार रसका आनन्द लेने लगा । इसमें रोमांच साक्षात् कह दिया है जड़ता ही स्तम्भ है सबको भूल जाना प्रलय एवम् कपोलोंका पसीना स्वेद है । हिन्दीके कवियोंने जृम्भा–जमाईको भी सात्त्विक भावोंमें माना है इसका उदाहरण–

"दर दर दौरति सदनद्युति, सम सुगन्धि सरसाति ।
लखत क्यों न आलस भरी, परी तिया मुरझाति ॥"

रस ।

जिसका आस्वादन होता है उसे 'रस' कहते हैं । यह आनन्दका नाम है क्योंकि ऐसा आनन्द ही है जिसका कि सब आस्वादन करते हैं । श्रुतियोंने भी कहा है कि–"रसो ह्येवायं तं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति" यह आत्मा ही रस है क्योंकि इसको पाकर आनन्दित हो जाता है । यद्यपि तत्तद् वस्तुके आनन्द उन २ के प्रतीत होते हैं, किन्तु विचार करके देखा जाय तो वे अपने आनन्दसे आनन्दवाले नहीं हैं, यही कारण है कि, साहित्यशास्त्रने उसे 'पूर्ण प्रकाश आनन्दस्वरूप चिन्मय, दूसरे ज्ञेय पदार्थोंके संपर्कसे शून्य, ब्रह्मके साक्षात्कारका सगा भाई एवम् लोकोत्तर चमत्कारका प्राण बताया है । इसके आनन्दको लेनेवाले कोई २ रसिक रजतमके दब जानेपर जो सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है उस समय इसका अनुभव करते हैं । रसका अनुभव कैसे होता है इस विषयपर साहित्यशास्त्रके आचार्य्योंके जुदे २ मत हैं, उन सबमें अभिनवगुप्तपादाचार्य्यके मतका विशेष आदर है । रसोंके नाम–शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस हैं । इन्हें किसी साहित्यके दूसरे ग्रन्थमें लिखेंगे ।

तद्द्विविधम्, नाटयमनाटयं चेति । तथोक्तम्—'स्वर्गे वा मर्त्यलोके वा पाताले वा निवासिनाम् । कृतानुकरणं नाटयमनाटयं नर्तकाश्रितम् ॥' इति । तन्त्रान्तरे तु नृत्यभेदज्ञापनार्थमेव पृथङ्नाटयकलोक्तेति विज्ञेयम् ।

नाटय और अनाटय भेदसे नृत्य दो प्रकारका है–स्वर्ग, मनुष्यलोक और पातालादि लोकोंके निवासियोंके किये हुए कामोंकी नकल करनेका नाम 'नाटय' है। नर्तकके आश्रित जो कर्म है उसका नाम अनाटय है। दूसरे शास्त्रोंमें तो नृत्यके भेदको दिखानेके लिये ही नाटयकला पृथक् कही है, ऐसा समझना चाहिये।

(४) आलेख्यमिति–' रूपभेदाः प्रमाणानि भावलावण्ययोजनम् । सादृश्यं वर्णिकाभङ्ग इति चित्रं षडङ्गकम् ॥ ' इति । एतानि परानुरागजननान्यात्मविनोदार्थानि च ।

(४) आलेख्य–चित्रकलाको कहते हैं, इसके छः अंग होते हैं जैसे–तरह तरहकी आकृति काढ़ना या बनाना, उनको उचित प्रमाणसे योजित करना, उसपर भाव और लावण्यकी योजना करना, जिसका चित्र हो उसे बिलकुल उसीके समान करना, जहां जैसा रंग चाहिये वहां वैसा ही रंग लगाना ये हैं। इनसे दूसरेको प्रेम उत्पन्न करते हैं तथा बनानेवालेको विनोदके लिये होते हैं।

(५) विशेषकच्छेद्यमिति–विशेषकस्तिलको यो ललाटे दीयते, तस्य भूर्जादिपत्रमयस्यानेकप्रकारं छेदनमेत्र च्छेद्यम् । पत्रच्छेद्यमिति वक्तव्यम् । वक्ष्यति च — ' पत्रच्छेद्यानि नानाभिप्रायाकृतीनि प्रेषयेत् ' इति । सत्यम् । विशेषकग्रहणमादरार्थम्, विलासिनीनामतिप्रियत्वात् ।

(५) विशेषच्छेद्य–वह होता है जो कि विशेष तिलक माथेमें लगाते हैं, वह भोजपत्र आदिका होता है, उसका छेदन अनेक प्रकारका होता है। इसको पत्रच्छेद्य कहना चाहिये । कहेंगे कि–" भोजपत्रादिकी अनेक प्रकारके अभिप्रायको व्यक्त करनेवाली शकलें बनाकर भिजावे।" यही कथन ठीक है, पत्रच्छेदका मतलब केवल माथेके लगानेके तिलकसे ही नहीं है । विशेष ग्रहण आदरके लिये है, क्योंकि विलासिनी स्त्रियां इसे अधिक पसन्द करती हैं।

---

१ नाटकाख्यायिका दर्शनमें तो नाटकोंके निर्माण करनेकी विधि बताई है । इसमें नाटकके अभिनय करनेकी बात है, इस कारण नाटयकलाको नाटकसे पृथक् कहा है । नाटक बनाना और बात है एवम् उसे खेलकर दिखाना और बात है ॥

२ किसी पर्देनसीनकी सेवामें अपनी चाह व्यक्त करनेमें यह किया जाता है।

(६) तण्डुलकुसुमवलिविकारा इति—अखण्डतण्डुलैर्नानावर्णैः सरस्वतीभवने कामदेवभवने वा मणिकुट्टिमेषु भक्तिविकाराः । तथा कुसुमैर्नानावर्णैर्ग्रथितैः शिवलिङ्गादिपूजार्थं भक्तिविकाराः । अत्र ग्रथनं माल्यग्रथन एवान्तर्भूतम् । भक्तिविशेषेणावस्थापनं कलान्तरम् ।

(६) तण्डुलकुसुमवलिविकार—साबित चावलोंको तरह तरहका रंगकर उनसे सरस्वतीके मंदिरमें, कामभवनमें, मणि कांच आदि लगे हुए चमकीले फर्सपर चौक आदि पूरनेका नाम है । यह चावलोंकी तरह फूलोंसे भी पूरा जाता है, वा शिवलिंग ' कृष्णमंदिर ' आदिकी पूजाके लिये भी रचे जाते हैं । इसमें फूलोंका गूंथना तो माला गूंथनेके भीतर ही आगया । यह भक्ति विशेषसे रचे जाते हैं, यह भी एक कला है ।

(७) पुष्पास्तरणमिति—यन्नानावर्णैः पुष्पैः सूचीवानादिबद्धैरभ्यस्यते तदेव, वासगृहोपस्थानमण्डपादिषु यस्य पुष्पशयनमित्यपरा संज्ञा ।

(७) पुष्पास्तरण—एक प्रकारका फूलबँगला होता है, इसका दूसरा नाम ' पुष्पशयन ' भी है । यह रंग विरंगे फूलोंको तार सीक या डोरानें पुवो-कर वासगृह उपगृह और मण्डपादिकोंमें बनाया जाता है ।

(८) दशनवसनाङ्गराग इति—रागशब्दः प्रत्येकं योज्यते । तत्राङ्गरागोऽङ्ग-मार्ष्टिः कुङ्कुमादिना । रञ्जनविधिरिति वक्तव्ये दशनादिग्रहणमादरार्थम् । विला-सिनीनां दशनादिसंस्कारस्यात्यन्ताभीष्टत्वात् । इति ।

(८) दशनवसनाङ्गराग—दशन (दाँत) वसन (वस्त्र) अंग (शरीर) इन तीनोंके साथ रागकी योजना होती है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि, कुंकुम आदिके उचित रीतिसे लगानेको ' अंगराग ' तथा; दातोंको मांजमूंज-कर प्रभायुक्त बनानेको ' दशनराग ' एवम् वस्त्रोंके रंगने आदिको ' वसन-राग ' कहते हैं । इसका नाम ' रंजनविधि ' ही रखना उचित था पर आद-रके लिये दशन आदिका ग्रहण है, क्योंकि विलासिनियोंके लिये ये दशनादि-संस्कार अत्यन्त अभीष्ट हैं ।

(९) मणिभूमिकाकर्मेति—मणिभूमिका कृतकुट्टिमा भूमिः, ग्रीष्मे शय-नापानकार्थं तस्यां मरकतादिभेदेन करणम् ।

(९) मणिभूमिकाकर्म—गरमीके सोने पीने आदिके लिये संगमर या मार-बिल पत्थर आदिका ऐसा फर्स तयार करना, जो कि गरमीमें रातको अत्यंत शीतल रहा आये ।

(१०) शयनरचनमिति–शयनीयस्य कालापेक्षया रक्तविरक्तमध्यस्थाभिप्रायादाहारपरिणतिवशाच्च रचनम् ।

(१०) शयनरचन–शय्या तयार करनेको कहते हैं, जैसा समय हो एवम् प्यारा अनुरक्त, विरक्त वा मध्यस्थ हो, उसीके अनुसार तयार करे अथवा यह देख ले कि इसपर अच्छी नींद आ जाय जिससे भोजन हजम हो जाय ।

(११) उदकवाद्यमिति–उदके मुरजादिवद्वाद्यम् ।

(११) उदकवाद्य–पानी भर देनेपर उसी तरह बजें जैसे कि, ठीक तालसे मृदंग आदि बजाये जाते हैं । ये जलतरंग आदि होते हैं ।

(१२) उदकाघात इति । हस्तयन्त्रमुक्तैरुदकैस्ताडनम् । तदुभयं जलक्रीडाङ्गम् ।

(१२) उदकाघात–हाथसे वा पिचकरा पखाल आदिसे इस तरह पानी मारना जो कि सांघातिक न हो । दोनों काम जलक्रीडाके समय होते हैं, इस कारण जलक्रीडाके अंग हैं ।

(१३) चित्राश्च योगा इति–नानाप्रकारदौर्भाग्यैकेन्द्रियपलितीकरणादयः, ईर्ष्यया परातिसंधानार्थाः, तानौपनिषदिके वक्ष्यति । एते च कौचुमारयोगेषु नान्तर्भवन्तीति पृथगुक्ताः । कुचुमारेण तेषामनुक्तत्वात् ।

(१३) चित्रयोग–इन्हें औपनिषदिक अधिकरणमें कहेंगे । ईर्ष्यासे प्रेरित होकर दूसरेको दण्ड देनेके अनेक प्रकारके दुर्भाग कर देना एवम् उसे एकेन्द्रिय एवम् वृद्ध जैसा बना देना आदि हैं और अनेकों अच्छे योग भी हैं । ये योग कुचुमारके कहे हुए योगोंके भीतर गतार्थ नहीं होते इस कारण जुदे कहे हैं । क्योंकि कुचुमारने इनको नहीं कहा है ।

(१४) माल्यग्रथनविकल्पा इति–माल्यानां मुण्डमालादीनां देवतापूजनार्थं नेपथ्यानां ग्रथनविकल्पाः ।

(१४) माल्यग्रथनविकल्प–मुण्डमाल, आदिकोंकी एवम् देवताओंकी पूजाके लिये उनके फूलोंके शृंगार गूंथनेकी भिन्न २ रीतियोंको कहते हैं ।

(१५) शेखरकापीडयोजनमिति––ग्रथनविकल्प एवायम् किंतु योजनं कलान्तरम्, तत्र शेखरकस्य शिखास्थानेऽवलम्बनन्यासेन परिधापनात् । आपीडस्य च मण्डलाकारेण ग्रथितस्य काञ्चिका (?) योगेन परिधापनात् । नानावर्णैः पुष्पैर्विरचनं योजनम् । पुनर्विरचनवचनमादरार्थम् । तदुभयं नागरकस्य प्रधानं नेपथ्याङ्गम् ।

(१५) शेखरापीडयोजन–यह एक गूंथनेका ही विकल्प है किन्तु इसका योजन पृथक् कला है । क्योंकि इसमें शेखरको शिखाके स्थानमें हिलगानेकी सफाईसे पहिनाते हैं । आपीड गोल गूंथा जाता है, फिर उसे काछिकाके योगसे पहिनाते हैं । अनेक रंगोंके फूलोंसे रचनाविशेष करनेका नाम योजन है । गूँथना कहनेके बाद जो फिर विरचन कहा है यह आदरके लिये है । ये दोनों नागरकी वेषरचनाके प्रधान अंग हैं ।

(१६) नेपथ्यप्रयोगा इति–देशकालापेक्षया वस्त्रमाल्याभरणादिभिः शोभार्थं शरीरस्य मण्डनाकाराः ।

(१६) नैपथ्य प्रयोग–देशकालके अनुसार तरह २ के वस्त्र, माल्य और आभूषण आदिकोंसे शोभाके लिये शरीरका सजाना है । वेष बदलना भी इसीमें गतार्थ होता है ।

(१७) कर्णपत्रभङ्गा इति—दन्तशङ्खादिभिः कर्णपत्रविशेषा नेपथ्यार्थाः ।

(१७) कर्णपत्रभङ्ग–कर्णपत्रकी रचनाको कहते हैं । दांत और शंख आदिकोंसे वेषरचनाके लिये कर्णपत्र बनाये जाते हैं ।

(१८) गन्धयुक्तिरिति–स्वशास्त्रविहितप्रपञ्चा प्रतीतप्रयोजनैव ।

(१८) गन्धयुक्ति–सुगन्धके लगानेको कहते हैं, इसका विस्तार इसीके शास्त्रमें कहा है, इसके प्रयोजनको सब ही जानते हैं ।

(१९) भूषणयोजनमिति–अलंकारयोगः । स द्विविधः, संयोज्योऽसंयोज्यश्च । तत्र संयोज्यस्य कण्ठिकेन्द्रच्छन्दादेर्मणिमुक्ताप्रवालादिभिर्योजनम् । असंयोज्यस्य कटककुण्डलादेर्विरचनं योजनम् । तदुभयं नेपथ्याङ्गम् । न तु शरीरे भूषणयोजनम् । तस्य नेपथ्यप्रयोगा इत्यनेनैव सिद्धत्वात् ।

(१९) भूषणयोजन–आभूषणोंके यथायोग्य पहिनानेका नाम है । यह संयोज्य और असंयोज्य भेदसे दो तरहका है । संयोज्य–लगाने लायक कंठिका और इन्द्रच्छन्द आदिकोंको मणिमुक्ता और प्रवाल आदिसे युक्त करनेको कहते हैं । मुक्ता प्रवाल आदिकोंसे नहीं संयुक्त होने लायक कड़ूले कुण्डल आदिकोंका विरचन योजन करना असंयोज्य है । ये दोनों नैपथ्यके अंग हैं । यह तात्पर्य्य

---

१ 'बर्हापीडं नटवरवपुः' इससे पता चलता है कि भगवान् कृष्ण व्रजवासके समय इसे पहिनते रहे हैं ।

नहीं कि शरीरपर भूषणयुक्त करे, क्योंकि शरीरपर भूषण धारण करना तो नेपथ्यप्रयोगमें गतार्थ हो जाता है ।

(२०) ऐन्द्रजाला इति—इन्द्रजालादिशास्त्रप्रभवा योगाः । सैन्यदेवालयादिदर्शनादहंभावविस्मापनार्थाः ।

(२०) ऐन्द्रजाल—इन्द्रजाल आदि शास्त्रोंसे होनेवाले योग कहाते हैं । इनके बलसे सेना और देवालय आदि दिखाकर अभिमान भुलाते हैं ।

(२१) कौचुमारा इति—कुचुमारस्यैते सुभगंकरणादयः उपायान्तरासिद्धसाधनार्थाः ।

(२१) कौचुमार—कुचुमार मुनिके कहे हुए 'सुभगंकरण' आदिक हैं, जो दूसरे उपायोंसे सिद्ध न होसके उसे सिद्ध करनेवाले हैं ।

(२२) हस्तलाघवमिति—सर्वकर्मसु लघुहस्तता, कालातिपातनिरासार्थम् । द्रव्यहानिषु वा लाघवं क्रीडार्थं विस्मापनार्थं च ।

(२२) हस्तलाघव—सभी कामोंके करनेमें हाथमें फुरती रहे यह देरको निरास करनेके लिये हैं । द्रव्यके प्राप्त करने या फेंकनेमें जो लाघव होता है वह खेलनेके लिये या दूसरेको चकित करनेके लिये होता है ।

(२३) विचित्रशाकयूषभक्ष्यविकारक्रिया, पानकरसरागासवयोजनमिति—चतुर्विध आहारः, भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयमिति । तत्र भोज्यम्—भक्तव्यञ्जनयोर्व्यञ्जनराधनं प्रायशो न सुज्ञानमिति व्यञ्जनाग्र्यस्य शाकस्योपादानेन दर्शयति।तत्र शाकं दशविधम् । यथोक्तम्—' मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डप्ररूढकम् । त्वक्पुष्पं कण्टकं चेति शाकं दशविधं स्मृतम् ॥ ' पेयं द्विविधम्, अग्निनिष्पाद्यमितरच्च । तत्र पूर्वं यूषाख्यम् । तच्च द्विविधम्, मुद्गादिनिर्यूहकृतं काथरसं च । भक्ष्यं खण्डखाद्यादि । एषां नानाप्रकाराणां क्रिया पाकविधानेन निष्पादनम् ।

(२३) विचित्र शाक यूष भक्ष्य विकार क्रिया और पानकरस रागासव योजन—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और पेय भेदसे चार प्रकारका आहार है । पीनेके योग्यको पेय, भोजनके योग्यको भोज्य, चाबनेके योग्यको भक्ष्य तथा चाटनेके योग्य पदार्थको लेह्य कहते हैं । भोज्य—इन चारोंमेंसे भक्त और व्यंजकका सिद्ध कर लेना अत्यन्त सरल नहीं है, इसी बातको व्यंजनमें अग्रगण्य जो शाक है उसके प्रथम उपादानसे दिखाया जा रहा है । शाक दश तरहके होते हैं । यही वैद्यकशास्त्रमें कहा भी है कि—"मूल, पत्ते, कुलाओंकी नोंक,

फल, काण्ड, नाल, अरूढक, बक्कल, पुष्प, कण्टक ये दश तरहके साग हैं। ”
पेय–दो तरहका होता है। एक आगपर सिद्ध किया हुआ तथा विना आगके योगसे सिद्ध किया हुआ। आगपर निष्पन्न होनेवाले पेयको यूष कहते हैं। यह दो तरहका होता है। एक तो मूँग आदिके निर्यूह (रस) से तयार किया जाता है तथा दूसरा काढ़ेके रसका होता है। भक्ष्य–खाँड़के खाद्य (खानेके सामान) भक्ष्य कहाते हैं। इन चारों तरहके आहारों और इनके अनेक तरहके भेदोंको रसोई बनानेकी रीतिसे तयार कर लेना ही विचित्र शाक, यूष और भक्ष्य विकारोंकी क्रिया कहाती है।

यदनग्निनिष्पादनं पेयं तद्विविधम्, संधानकृतमितरच्च। तत्राद्यं द्रावितमद्रावितं च। तत्र यद्गुडतिन्तिडिकादिजलेन संयोज्य क्रियते तद्द्रावितं पानकाख्यम्। यदद्रावकौषधेन तालमोचाफलानि संयोज्य निष्पाद्यते तदद्रावितं रसाख्यम्। आसवग्रहणेन संधानमुपलक्षयति। तन्मृदुमध्यतीक्ष्णसंधानयोजनात्तथाविधमेव निष्पाद्यते।

विना आगके तयार होनेवाले पेयके भेद–अग्निके संयोगके विना तयार होनेवाले पेयके भी दो भेद होते हैं, एक तो सन्धान करके तयार किया जाता है तथा दूसरा विना ही सन्धानके तयार होता है। इन दोनोंमें सन्धान किया हुआ भी द्रावित और अद्रावित भेदसे दो तरहका होता है। जो गुड और इमलीके पानीसे मिलाकर तयार किया जाता है वह द्रावित है, इसे ‘पानक’ कहा करते हैं। जो विना द्रवनेवाली दवाइयोंके साथ ताल और मोचके फल मिलाकर तयार किया जाता है वह अद्रावक है, इसे ‘रस’ कहते हैं। सन्धित पेय– सूत्रमें जो आसव ग्रहण किया है यह अपना अर्थ करता हुआ दूसरे जो पेय सन्धानसे तयार होते हैं उनका भी उपलक्षक है यानी इससे सुरा आदि सबका ग्रहण हो जाता है। सन्धित पेय मृदु, मध्य और तीक्ष्ण सन्धानकी योजनासे मृदु, मध्य और तीक्ष्ण तयार होजाता है।

रागग्रहणं लेह्यं सूचयति। तस्य त्रैविध्यात्। तथाचोक्तम्—‘ रागो रागविधानज्ञैर्लेह्यश्चूर्णो द्रवः स्मृतः। लवणाम्लकटुस्वाद ईषन्मधुरसंयुतः॥ ’ इति। एतच्चतुर्विधमास्वाद्यकलायाः प्रपञ्चितं शरीरस्थित्यर्थम्। योगविभागोऽग्निजानग्निजकर्मदर्शनार्थः।

लेह्य-राग ग्रहण लेह्यकी सूचना देता है यह तीन तरहका होता है, ऐसा ही रागके विधान जाननेवालोंने कहा भी है कि-"लेह्य, चूर्ण और द्रव भेदसे तीन प्रकारका कहा है। इसमें नमक, मिरच और खटाई होती है, थोड़ा मीठा भी होता है।" यह चार तरहका आस्वादनकलाका प्रपंच है, शरीरकी स्थितिके लिये है। योगविभाग अग्निसे होनेवाले और विना अग्निसे होनेवाले पाकको दिखानेके लिये है।

तत्र पाकेन शाकादिक्रिया विना पाकेन पानकादियोजनम्। अन्यथा ह्यास्वाद्यविधिरित्युक्तं स्यात्। तस्मात्कर्मभेदादास्वाद्यविधानज्ञोऽपि द्विविधः, तद्वशादेकापि कला द्विधाकृत्योक्ता।

यहां पाकसे शाक आदि तयार होते हैं और विना पाकके पानक आदि तयार किये जाते हैं। विना इसके 'आस्वाद्य विधि' यह कहना होगा; पर कहा नहीं इस कारण कर्मभेदसे आस्वादनके विधानोंको भी जाननेवाले दो प्रकारके होते हैं। इसी कारण कला भी दो टुकड़े करके कही गई है।

(२४) सूचीवानकर्माणीति-सूच्या यत्सन्धानकरणं तत्सूचीवानं त्रिविधम्—सीवनम्, ऊतनम्, विरचनम्, तत्राद्यं कंचुकादीनाम्। द्वितीयं त्रुटितवस्त्राणाम्। तृतीयं कुथास्तरणादीनाम्! इयं प्रतीतार्थैव।

(२४) सूचीवानकर्म-सुईसे जोड़े जानेको सूचीवान कर्म कहते हैं। यह तीन तरहका होता है—सीना, बुनना और गूंथना या बनाना। कंचुक आदिक सिये जाते हैं। रेशमी दुशाला आदिके खोंता आदि रफू किये जाते हैं। कुशोंके आसन आदि गूंथकर बनाये जाते हैं। अथवा हाथीकी झूल आदि इसीसे तयार होती हैं।

(२५) सूत्रक्रीडेति—नालिकासंचारनालादिसूत्राणामन्यथान्यथा दर्शनम्। छित्त्वा दग्ध्वा च पुनरच्छिन्नादग्ध्वा दर्शनम्, तच्चांगुलिन्यासात्। देवकुलादिदर्शनम्। इत्येवंप्रकारा क्रीडार्थैव।

(२५) सूत्रक्रीडा-नालिकाके संचारसे नालादिकोंके सूतोंको और २ तरहका दिखा देनको कहते हैं। अंगुलियोंकी सफाईसे टूटे हुएको साबित तथा जलेका विना जला हुआ दिखा देते हैं। तथा इसीसे देवकुल आदि दिखा देते हैं। यह कला इसी प्रकारके खेलके लिये ही की जाती है।

(२६) वीणाडमरुकवाद्यानीति—वादित्रान्तर्गतत्वेऽपि तन्त्रीवाद्यं प्रधानम् । तत्रापि वीणावाद्यम् । डमरुकवाद्यमावश्यकार्थम्, बालोपक्रमहेतुत्वाद् दुर्विज्ञेयत्वाच्च । ततो ह्यक्षराणि स्पष्टान्युच्चार्यमाणानि श्रूयन्ते ।

(२६) वीणा डमरुक वाद्य—तारसे बजनेवाले बाजे यद्यपि बाजोंके अन्दर ही गतार्थ हैं तो भी मुख्य हैं साधारण नहीं हैं। उनमें भी सितार बजाना तो नितान्त ही प्रधान है । तारसे बजनेवाले बाजे कठिनतासे समझमें आते हैं, इस कारण इनका प्रारंभ डमरुकसे ही होता है, इस कारण बच्चोंके सिखानेके लिये इसका ग्रहण बहुत जरूरी है । उससे अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण सुना जाता है ।

(२७) प्रहेलिकेति—लोकप्रतीता क्रीडार्था वादार्था च ।

(२७) प्रहेलिका—इसे सब जानते हैं,यह खेलने या वाद करनेके लिये हुआ करती है । बराबरके प्रेमी इसे आपसमें पूछनेके काममें लाते हैं, यह पहेली शब्दसे प्रसिद्ध है ।

(२८) प्रतिमालेति—यस्या अन्त्याक्षरिकेति प्रतीतिः । सा क्रीडार्था वादार्था च । यथोक्तम—'प्रतिश्लोकं क्रमाद्यत्र संधायाक्षरमन्तिमम् । पठेतां श्लोकमन्योन्यं प्रतिमालेति सोच्यते ॥' इति ।

(२८) प्रतिमाला—इसे लोकमें 'अन्त्याक्षरिका' कहा करते हैं । यह खेलनेके लिये या वादविवाद करनेके लिये होती है। ऐसा ही कहा भी है कि—'जहाँ आपसमें प्रतिश्लोकमें क्रमसे अन्तिम अक्षरको आदिमें करके पढ़ें उसे प्रतिमाला कहा करते हैं । ' इसमें यह होता है कि पाहिलेके श्लोकमें जो अन्तमें अक्षर होगा मुकाबिलेका दूसरा ऐसा बोलेगा जिसमें कि वही अक्षर सबसे पहिले हो । दोनों इसी तरह बोलते जाते हैं ।

(२९) दुर्वाचकयोगा इति—शब्दतोऽर्थतश्च दुःखेनोच्यत इति दुर्वाचकम् । तस्य प्रयोगाः क्रीडार्था वादार्थाश्च । यथा काव्यादर्शे—'दंष्ट्राग्रद्धर्या प्राग्यो द्राक्क्ष्मामम्ब्वन्तःस्थामुच्चिक्षेप । देवध्रुट्क्षिद्धृत्विक्स्तुत्यो युष्मान्सोऽव्यात्सर्पात्केतुः ॥' इति । अस्यार्थः—दंष्ट्राग्रस्य ऋद्ध्या प्राक्पूर्वं द्राक्शीघ्रं क्ष्मां पृथ्वीमम्ब्वन्तःस्थां पातालस्थामुच्चिक्षेपोत्क्षिप्तवान् । देवान्द्रुह्यन्तीति देवद्रुहोऽसुरास्तान्क्षिणोतीति देवध्रुट्क्षित् । हिशब्दः पादपूरणे । ऋत्विग्भिः स्तुत्यः । सर्पानत्तीति सर्पाद्गरुडः स केतुर्ध्वजो यस्येति ।

(२९) दुर्वाचकयोग–जिसके शब्द कठिनतासे बोले जायँ एवम् अर्थका समझ लेना भी कठिन हो । इसका प्रयोग मनोविनोद या विवादके लिये होता है । इसका जो उदाहरण काव्यादर्शमें दिया है वह शब्द और अर्थ दोनोंसे कठिन है, उसे टीकाकारने यहां रखा है जिसका अर्थ यहीं दिखाये देते हैं कि– ‘ दंष्ट्राग्रस्य–दाढ़की नोककी, ऋद्धया–समृद्धिसे, प्राक्–पहिले, द्राक्–शीघ्र, क्षाम्–पृथिवीको, जो कि–अम्ब्वन्तःस्थाम्–पानी यानी पातालके भीतर थी, उसे, उद्क्षिप–ऊपर उठाकर रख दी। देवताओंके साथ द्रोह करनेवाले देवद्रुह कहाते हैं वे असुर हैं । उनको नष्ट करनेवाला ‘ देवध्रुट्क्षित् ’ कहाता है । हि शब्द पादको पूरा करनेके लिये है । जिसकी कि स्तुति ऋत्विग् करते हैं । सर्पोंके खानेवालेको सर्पात् कहते हैं, वह गरुड है, यह जिसकी ध्वजामें हो वह ‘ सर्पात्केतु ’ कहा जाता है । भावार्थ–जो पहिले अपनी दाढ़की नोंकसे पातालसे पृथ्वीको शीघ्र ही ऊपर ले आया, जो कि असुरोंका संहारक है, यज्ञमें जिसकी ऋत्विज् स्तुतियां करते हैं, वह गरुडध्वज हमारी रक्षा करे ।

(३०) पुस्तकवाचनमिति—भरतादिकाव्यानां पुस्तकस्थानां शृङ्गारादिरसापेक्षया गीततः स्वरेण वाचनम् । अनुरागजननार्थमात्मविनोदार्थं च ।

(३०) पुस्तकवाचन–भरतादि काव्य पुस्तकोंको शृंगार आदि रसके अनुसार गान और स्वरसे कहनेका नाम है । यह अनुराग पैदा करनेके लिये और अपने विनोदके लिये होता है

(३१) नाटकाख्यायिकादर्शनमिति—काव्येषु गद्यपद्येषु नाटकस्य बहुप्रपञ्चत्वात्, आख्यायिकायाश्च प्रधानगद्यत्वाद्दर्शनं परिज्ञानमिति । आदरार्थं विशेषाभिधानम्, काव्यदर्शनमिति नोक्तम् ।

(३१) नाटकाख्यायिकादर्शन—गद्य, पद्य काव्योंमें नाटकोंके बहुत प्रपंच देखे जाते हैं । आख्यायिकामें उत्तम गद्य हुआ करता है । इन दोनोंको जान लेनेमें यह कला पूरी हो जाती है । यह भी काव्योंमें आ जाते हैं, इस कारण काव्यदर्शन कहना था पर आदरके लिये विशेष विधान है । काव्य–दृश्य और श्रव्य भेदसे दो प्रकारका है। रंगमंचपर खेलकर दिखाने योग्यको ‘दृश्य’ तथा सुनने सुनाने योग्यको ‘ श्रव्य ’ कहते हैं । दृश्य काव्यमें जितने पात्र होते हैं नट लोग वे सब बनकर उन्हींका हरतरहसे अनुकरण करते हैं । रामके नाटकमें नट राम बनकर रामकी सारी बातोंकी नकल करता है, इसी

कारण यह 'रूपक' कहलाता है, क्योंकि रंगमंचका खिलाड़ी अपनेको वही बनाकर खेल दिखाता है । रूपकमें नटको चरित्र नायकोंके वेष, अंगसे निष्पादन होनेवाले कर्म और मनके विकारोंकी नकल करनी पड़ती है। रूपक यानी जिसमें रंगमंचके खिलाड़ियोंको वही बनना पड़ता है वह नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन भेदसे दश तरहका है । ऐसा साहित्यकोंने भी माना है ॥

नाटकपर विचार ।

यह सब रूपकोंमें प्रधान है, इस कारण इसको सबसे पहिले रखा है । जिस बातका नाटक हो वह प्रसिद्ध होना चाहिये । इतिहास पुराण आदिमें वह रहना चाहिये । उसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष और निर्वहण ये पांच सन्धियां रहनी चाहिये । इसके साथ ही उसमें चारवृत्ति, ६४ संधियोंके अंग, ३६ लक्षण तथा ३४ नाट्यालङ्कार भी होने चाहिये । सन्धियोंका सीधा कथन थोड़ा अस्पष्ट हो रहेगा, इस कारण नाटकके तत्त्वोंको समझाते हुए क्रमशः संधियोंका निरूपण करेंगे । अर्थ, धर्म और कामके लिये संसार प्रयत्न कर रहा है, इनमें नाटकके चरित्रनायकको जो अभीष्ट हुआ हो वही उसका कार्य्य होगा । इसे यदि दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह भी कह सकते हैं कि यही नाटककी जड़ है, क्योंकि चरित्रनायक इसी प्रधान बातको अपनी दृष्टिमें रखकर सब व्यापार करता है । नाटकमें दिखाये जानेवाले चरित्रोंको वस्तु कहते हैं, यह मुख्य तो नायकका ही रहता है दूसरोंके चरित्र भी प्रसंगवश आ जाते हैं । मुख्य कथाके भागके संबन्धको लेकर जो दूसरे दूसरे कथा भाग आते हैं उनकी आपसमें उचित योजना कर देनेका नाम संधि है । उसे मुख कहते हैं जिसमें कि प्रारंभमें ही अनेकों कथा रसोंको उत्पन्न करनेवाले बीजकी उत्पत्ति हो, जैसे कि रत्नावली नाटकके पहिले अंकमें वसन्तोत्सवमें सागरिका (रत्नावली) और वत्सराजके समागमरूप फलके हेतु परस्परके अनुरागके बीजको उत्पत्ति हुई है । प्रतिमुख वह है जिसमें फलके उस प्रधान उपायका दीख पड़नेपर भी न दीख पड़नेकी तरह प्रकट होना है जो कि मुखसन्धिमें निविष्ट किया है । रत्नावली नाटकके दूसरे अंकमें इसका उदाहरण दिखाया है कि सागरिका राजाकी चाहसे आकुल होकर उसकी तसवीर बनाती है पर सुसंगता उसे देख लेती है, वहां विदूषक भी पहुँच जाता है,वह राजाको बुला लाता है, राजा इसे जान जाता है, तसवीरका हाल रानीको मालूम हो जाता है । इससे उसे सन्देहसा हो

जाता है । इस तरह पहिले अंकमें मुख संधिमें जो इनके संगमका हेतु अनुरागरूप बीज व्यक्त हुआ था वह यहां सुसंगता और विदूषकके जान लेनेके कारण कुछ रानीको भी विदित हो जाता है । फलका प्रधान उपाय जो कि प्रतिमुखमें कुछ प्रकट हो चुका है, उसका ऐसा प्रकाश हो कि कभी छिप जाय तथा कभी समृद्ध हो उसे 'गर्भसन्धि' कहते हैं । जहां मुख्यफलका उपाय गर्भसन्धिसे अधिक उभर जाय एवम् शाप आदिसे सविघ्न हो जाय तो उसे 'विमर्षसन्धि' कहते हैं । जैसा कि शकुन्तलानाटकमें लिखा है । अभीष्टफलके प्रधान साधकवाली जो मुखसन्धिमें आनेवाली कथाएं हों वे सब एक ही प्रयोजनपर जाकर संगत हों उसे 'निर्वहणसन्धि' कहते हैं । इसका दूसरा नाम उपसंहार भी है । इनमें बारह अंग मुखसन्धिके तेरह अंग प्रतिमुखसन्धिके, तेरह अंग गर्भसंधिके, १४ अंग विमर्षसन्धिके और चौदह ही अंग 'निर्वहणसन्धि' के होते हैं । नाटकके सारे पदार्थोंका विस्तारपूर्वक वर्णन साहित्यदर्पणके छठे परिच्छेदमें किया है, इसीका अनुवाद हिन्दी भाषामें स्वर्गीय बलदेवप्रसादजी मिश्रने 'नाट्यप्रबन्ध' के नामसे किया है। इस विषयकी विशेष जिज्ञासावालोंको वह देख लेना चाहिये ।

रूपकके भेद ।

तत्र नाटके दश रूपकाणि । यथोक्तम्—'नाटकमङ्को वीथी प्रकरणमीहामृगो डिमो भाणः । व्यायोगसमवकारौ प्रहसनमिति नाटकविकल्पाः ॥

नाटक विकल्प लिखनेका तात्पर्य्य रूपकभेदसे है, अतएव श्रीवात्स्यायनने इस कलामें जो नाटकका ग्रहण किया है, उससे दश रूपकोंका भी ग्रहण हो जाता है । उक्त नाटकके सिवा प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार आदि साहित्यशास्त्रके बताये हुए पूर्वोक्त दश होते हैं । इन सबोंके लक्षण यहीं नीचे दिखाते हैं । प्रकरण—जो नाटक शास्त्रोंके वृत्तका न होकर किसी लौकिक वृत्तका हो अथवा कविने अपनी शक्तिसे ही जिसे बना डाला हो, उसे 'प्रकरण' कहते हैं । भाण—अनेक प्रकारके धूर्तोंके चरित्रोंको लेकर इसका निर्माण होता है । इसमें एक ही अंक होता है, इसका नायक पंडित वा जार होता है, वह आपबीती बातें उत्तर प्रत्युत्तर रूपसे आप ही बखान करता है । व्यायोग—यह एक अंकका इतिहास पुराण प्रसिद्ध वृत्तका होता है । इसमें पुरुष अधिक और स्त्रियाँ कम होती हैं । स्त्रीके कारण विना युद्ध होता है, इसमें हास्य, शृंगार और शान्त रस मुख्य नहीं होते । समवकार—इसमें देव वा दानवोंका प्रसिद्ध चरित्र होता है, तीन अंक होते हैं, जैसे कि समुद्रमंथन नामका

समवकार है । डिम–जो प्रसिद्ध चरित्र, माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध युक्त हो तथा उसमें सूर्य्य–चंद्र–ग्रहण, उल्कापात आदि बहुत हों, रौद्ररस मुख्य हो, चार अंक हों, विष्कंभ और प्रवेशक न हों, देवादिकोंमेंसे नायक हों जो कि अत्यन्त उद्धत हों ऐसे ही लक्षणवालेको ' डिम ' कहते हैं । ईहामृग–प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध कथा हो, चार अंक हों, मुख, प्रतिमुख और निर्वहण सन्धि हो, मनुष्य और देवोंमेंसे नायक प्रतिनायक हों, पर प्रतिनायक छिपे छिपे बुराई करे । इसको ईहामृग कहनेका तो कारण यह है कि इसमें नायक मृगकी तरह अलभ्य सुन्दरीको चाहता है । अंक–इसका दूसरा नाम उत्सृष्टिकांक भी है । इसके नायक साधारण मनुष्य होते हैं, इनमें बहुतसी स्त्रियोंको रोना तथा करुण रस स्थायी है, इसकी कथा प्रसिद्ध होनी चाहिये, कविकल्पित भी चलती है, इसमें भाणकी तरह संधिवृत्त और अंग होते हैं, इसमें निर्वहण वचन और युद्ध दोनों वाणीसे ही होते हैं । वीथी–इसमें एक अंग और एक ही कोई नायक होता है, ए ! क्या कहा ? क्या तुम यह कहते हो ? यह आप ही बात कल्पित करके आप ही विचित्र उत्तर देता है । इसमें शृंगार अधिक होना चाहिये तथा दूसरे भी रस रहने चाहिये । इसमें मुख और निर्वहण ये दो सन्धि रहती हैं तथा बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य्य ये पांचों कथाकी प्रकृतियां जिसमें हों उसे कहते हैं । प्रहसन–यह भाणकी तरह होता है, इसमें सन्धि, सन्ध्यंग, लास्यके अंग और अंक होते हैं । निन्दनीय पुरुषोंकी कथासे कविताकल्पित किया हुआ होता ह ।

(३२) काव्यसमस्यापूरणमिति–समस्यते संक्षिप्यत इति समस्या । इहासामान्यात् ' संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः ' इति वृद्धिर्न भवति । यद्वा 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इत्यन्यप्रकृतेरपि यत् । बहुलग्रहणात् । काव्यस्य श्लोकस्य समस्या पाद इत्यर्थः । तस्याः पूरणं क्रीडार्थं वादार्थं च । तद्यथा काव्यादर्शे—' आश्वासं जनयति राजमुख्यमध्ये ' इति । अयं वा (पा) द उद्योगपर्वणि विष्णुयाने त्रिभिः पादैः संग्रथितव्य इति समस्या दत्ता । तत्र त्रयः पादाः—' दौत्येन द्विरदपुरं गतस्य विष्णोर्बन्धार्थं प्रतिविहितस्य धार्तराष्ट्रैः । रूपाणि त्रिजगति भूतिमन्ति रोषादाश्वासञ्जनयतिराजमुख्यमध्ये ॥ ' इत्यादि । अत्र विष्णोर्बन्धार्थं दुर्योधनादिभिर्मन्त्रः कृतः । त्रिषु लोकेषु भूतिमन्ति रूपाणि [आशु] शीघ्रमासन्बभूवुः ।

जनस्य सभागतस्य, यतीनां रामकर्णादीनाम्, राजमुख्यानां बाह्लीकप्रभृतीनां च मध्य इति । एताः प्रहेलिकादयः षड् वचनकौशलान्तराः कला इह प्रायश उपयुज्यन्त इति संगृहीताः ।

(३२) काव्यसमस्यापूरण–कविता किये हुए परकी समस्याकी पूर्ति करना है । श्लोकके एक पादको इस प्रकार बनाना जिसपर कि बाकी तीनपाद जोड़ खायँ । यह मनोविनोदके लिये तथा वादके लिये की जाती है । समस्याको उदाहरण काव्यादर्शमें दिया है कि–'आश्वासं जनयति राजमुख्यमध्ये' यह एक पाद है, इसकी समस्याको पूरी उद्योगपर्वके भगवान् कृष्णके दूत बनकर दुर्योधनकी सभामें जानेके वृत्तपर करिये इसके बाद समस्या पूर्ति इन तीन पादोंसे की गई है कि–

"दौत्येन द्विरदपुरं गतस्य विष्णोः ।
बन्धार्थं प्रतिविहितस्य धार्तराष्ट्रैः ॥
रूपाणि त्रिजगति भूतिमन्ति रोषात् ।
आश्वासं जनयति राजमुख्यमध्ये ॥"

श्लोकका भावार्थ–भगवान् कृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर दुर्योधनकी राजसभामें गये थ । वहां दुर्योधनादिकने आपके बाँधनेकी सलाह की । उसी समय सभामें बैठे हुए भगवान्के वे रूप जो कि तीनों लोकोंमें सबसे अधिक भूतिवाले हैं प्रकट हो गये । भगवान् यतियों और राम आदिकों तथा राजाओंके शिरताज जो बाह्लीक आदिके बीचमें बैठकर अपूर्व आस्था प्रकट करने लगे । प्रहेलिकासे लेकर यहां तककी छओं कलाएं वचनके कौशलके भीतर ही आ जाती हैं पर यहाँ उनका उपयोग होता ह, इस कारण उनका संग्रह कर दिया है ।

---

१ सम् उपसर्ग पूर्वक 'असु क्षेपणे' धातुसे 'ण्यत्' प्रत्यय होकर समस्या शब्द बनता हैं । णित् पर रहते उपधावृद्धि तो ९.४ की "संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम्" इस परिभाषाके कारण नहीं हुई । यह परिभाषा सिद्धान्तकौमुदीमें बहुव्रीहि समासमें 'ओर्गुणः' सूत्रपर तथा तनादि गणमें 'क्षिणु' धातुपर लिखी है । इसका अर्थ है कि संज्ञाको लेकर होनेवाली विधि नित्य नहीं है, यही कारण है कि उपधासंज्ञाको लेकर होनेवाली वृद्धि न हुई । अथवा यह समझिये कि 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्रसे यहां न होनेवाला भी 'यत्' हो जाता है जिससे वृद्धिका बखेड़ा ही नहीं रहता । सामान्यरूपसे संक्षेपमें किसी पदार्थको कह देनेका नाम समस्या है ॥

(३३) पट्टिकावेत्रवानविकल्पा इति–पट्टिका छुरिका (?) । पट्टिकाया वानविकल्पाः खट्वाया आसनस्य च वेत्रैर्वानविकल्पाः प्रतीतार्थाः ।

(३३) पट्टिकावेत्रवानविकल्प–वेतोंकी बुनकर चटाई कुरसी खाट आदिके बनानेको कहते हैं ।

(३४) तक्षकर्माणीति–कुन्दकर्माण्यपद्रव्यार्थानि ।

(३४) तक्षकर्म–अपद्रव्य बनानेके लिये कुन्दकर्म है । (अपद्रव्यका प्रयोग इसी कामसूत्रमें बताया है) ।

(३५) तक्षणमिति–वर्धकिकर्म । शयनासनाद्यर्थम् ।

(३५) तक्षण–खातीके कामको कहते हैं, यह खाट, आसन बनानेमें अधिक काम आता है ।

(३६) वास्तुविद्येति–गृहकर्मोपयोगिनी ।

(३६) वास्तुविद्या–घर सँभालने और बनानेकी प्रक्रियाको कहते हैं। इसका गृहकर्ममें अधिक उपयोग होता है ।

(३७) रूप्यरत्नपरीक्षेति–रूप्यमाहतद्रव्यं दीनारादि, रत्नं वज्रमणिमुक्तादि, तेषां गुणदोषमूल्यादिभिः परीक्षा व्यवहाराङ्गम्

(३७) रूप्यरत्नपरीक्षा–बने बनाये जेवर और मुहर आदिकी तथा वज्रमणि और मुक्ता आदिकी पहिचानको कहते हैं । इनके गुण, दोष और कीमतकी पहिचान व्यवहारका अंग है ।

(३८) धातुवाद इति–क्षेत्रवादः । स हि मृत्प्रस्तररत्नधातूनां पातनशोधन-मेलनादिज्ञानहेतुरर्थार्थः ।

(३८) धातुवाद–इसे क्षेत्रवाद भी कहते हैं। यह मिट्टी, पत्थर, रत्न और धातुओंके गिराने, शोधने और मिलाने आदिके ज्ञानके लिये सीखी जाती है जिससे कि अर्थ किया जा सके ।

(३९) मणिरागाकरज्ञानमिति–स्फटिकमणीनां रञ्जनविज्ञानमर्थार्थं भूष-णार्थं च । पद्मरागादिमणीनामुत्पत्तिस्थानज्ञानमर्थार्थम् ।

(३९) मणिरागाकरज्ञान–स्फटिकमणियोंका रंगना जानना अर्थके लिये और भूषणके लिये होता है । पद्मराग आदि मणियोंके उत्पत्तिस्थानको जान लेना धनके लिये होता है ।

(४०) वृक्षायुर्वेदयोगा इति—रोपणपुष्टिचिकित्सावैचित्र्यकृतो गृहोद्यानार्थाः।

(४०) वृक्षायुर्वेदयोग–यह वृक्षोंके लगाने, उन्हें पुष्ट करने, उनकी चिकित्सा करने एवम् उन्हें विचित्र बनानेके द्वारा घरके बागको भव्य बनानेके लिये हैं।

(४१) मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिरिति—सजीवद्यूतविधानमेतम् । तत्रोपस्थानादिभिश्चतुरङ्गैर्युद्धविधानं क्रीडार्थं वादार्थं च ।

(४१) मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि–यह सजीव द्यूतके विधानमें आ गया है। इसमें उपस्थान आदिक चारों अंगोंके जूएका विधान खेलनेके लिये तथा विवादके लिये है ।

(४२) शुकसारिकाप्रलापनमिति—शुकसारिका हि मानुषभाषया प्रलापिताः सुभाषितं पठन्ति संदेशं च कथयन्ति ।

(४२) शुकसारिकाप्रलापन–जब तोता मैना मनुष्योंकी भाषामें बोलना सीख जाते हैं तो अच्छे अच्छे श्लोकोंको कहते है तथा एकका संदेश दूसरेको पहुँचा देते हैं।

(४३) उत्सादने संवाहने केशमर्दने च कौशलमिति—मर्दनं द्विविधम्, पादाभ्यां हस्ताभ्यां च । तत्र पादाभ्यां यन्मर्दनं तदुत्सादनमुच्यते। हस्ताभ्यां यच्छिरोऽभ्यङ्गकर्म तत्केशमर्दनम् । केशानां तत्र मृद्यमानत्वात्तैरेव तद्व्यपदेशः । शेषाङ्गेषु मर्दनं संवाहनम् । केशग्रहणमत्रादरार्थम् । तत्र कौशलं पराराधनार्थम् ।

(४३) उत्सादन, संवाहन और केशमर्दनमें कौशल–मर्दन दो तरहका होता है, एक तो पैरोंसे और दूसरा हाथोंसे। जो पैरोंसे मर्दन होता है, उसे उत्सादन कहते हैं । जो हाथोंसे शिरका अभ्यंगकर्म है; उसे केशमर्दन कहा करते हैं । इसमें बाल मसले जाते हैं, इस कारण यह नाम दिया है । बाकी शरीरके मर्दनको संवाहन कहा करत हैं । केशग्रहण आदरके लिये है। दूसरेके काम करनेके लिये इनमें चतुरता होनी चाहिये, जिससे कि वह प्रसन्न हो ।

(४४) अक्षरमुष्टिकाकथनमिति—अक्षराणां मुष्टिरिव मुष्टिका गुप्तिरिति। सा साभासा निराभासा च। तत्र साभासा अक्षरमुद्रेत्युच्यते। तथा कथनं गूढवस्तुमन्त्रणार्थं ग्रन्थसंक्षेपार्थं च । तस्या आचार्यरविगुप्तेन चन्द्रप्रभाविजयकाव्ये प्रकरणं पृथगुक्तम्। यथोक्तम्—'गहनप्रसन्नसर्वां कतिपयसत्रामिमामनन्तमुखीम् ।अनर्थीत्याक्षरमुद्रां वादसमुद्रे परिप्लवते ॥' इति। तत्रेदमुदाहरणम्—'मेवृमिकसिंकतु-

वृधमकुंमी मूधसबांसुशकनिधकआव्याः । फाचैवैज्येआश्राभाआकामापौमा चैव॥'
इति । अस्या आर्याया अयमर्थः—प्रथमपादेन मेषादयो राशय उक्ताः । द्वितीयेन राशीनां लग्नात्प्रभृति मूर्तिधनसहजबान्धवसुतशत्रुकलत्रनिधनधर्मकर्मायव्यया इति विशेषसंज्ञाः । इतरार्धेन फाल्गुनादयो मासा इति । निराभासा [भूत] मुद्रेत्युच्यते ॥ तया कथनं गुह्यवस्तुमन्त्रणार्थम् । यथोक्तम्—' मुष्टिः किसलयं चैव च्छटा च त्रिपताकिका । पताकाङ्कुशमुद्राश्च मुद्रा वर्गेषु सप्तसु ॥ अंगुल्यश्चाक्षराण्येषां स्वराश्चांगुलिपर्वसु । संयोगादक्षरं युक्तं भूतमुद्रा प्रकीर्तिता॥'
इति । एवमन्यापि काव्यसंज्ञाभूतमुद्रा द्रष्टव्या ।

(४४) अक्षरमुष्टिका कथन—मुष्टिकी तरह जो हो वह मुष्टिका कहाती है। अक्षरोंकी मुष्टिकी तरह हो यानी उसमें वे छिपे हों । यह साभासा और निराभासा भेदसे दो तरहकी होती है। साभासा—अक्षरमुद्राको कहते हैं। इससे कथन करना किसी गूढवस्तुकी सलाह करने तथा ग्रन्थके संक्षेपके लिये है। आचार्य्य रविगुप्तने चन्द्रप्रभाविजय काव्यमें जुदा प्रकरण कहा है, कि—" जिससे गहनविषय परिस्फुट हो जाता है । जिसमें सूत्र तो थोड़े ही हैं पर विस्तार बहुत बड़ा है ऐसी इस अक्षरमुद्राको विना पढ़े वादके समुद्रमें वह जाता है। " अक्षरमुद्राका उदाहरण—' मेवृ ' से लेकर ' पौमा चैव ' तक दिया है, इसका अर्थ तो यह है कि—" मे—मेष, वृ—वृष, मि—मिथुन, क—कर्क, तु—तुला, वृ—वृश्चिक, ध—धन, म—मकर, कुं—कुंभ, मी—मीन यह है। नामके आदिके अक्षरको लेकर पहिला चरण बनाया है, इसमें इस तरह बारहों राशियाँ आगई हैं । मू—मूर्ति (शरीर), ध—धन, स—सहज (भाई), बां—बान्धव, सु—सुत, श—शत्रु, क—कलत्र, नि—निधन (मौत), ध—धर्म, क—कर्म, आ—आय, व्य—व्यय ये बारह स्थान हैं । आदिके एक एक अक्षरको लेकर सब रख दिये हैं ये संज्ञाएँ राशियों आदिकी हैं । फा—फाल्गुन, चै—चैत्र, वै—वैसाख, ज्ये—ज्येष्ठ, आ—आषाढ, श्रा—श्रावण, भा—भाद्रपद, आ—आश्विन, का—कार्तिक, मा—मार्गशीर्ष, पौ—पौष, मा—माघ ये बारह महीने हैं । आदिके प्रथम अक्षरको लेकर रख दिये हैं। निराभासा—इसे भूतमुद्रा भी कहते हैं । किसी छिपी वस्तुकी सलाहके बारेमें इसका प्रयोग करते हैं। इसके विषयमें कहा है कि—मुष्टि—पर्वत यानी पवर्ग, किसलय—कमल यानी कवर्ग, त्रिपताकिका—चक्र यानी चवर्ग, पताका—अहिफन यानी अवर्ग, अंकुश—ताल यानी तवर्ग और मुद्रा—चुटकी यानी टवर्ग और छटा—यवर्ग होता है। अर्थात् इन

इशारोंसे ये वर्ग समझे जाते हैं। इनके अक्षरोंको अंगुलियोंसे एवं मात्राएँ अंगुलियोंके पोरुओंसे बताई जाती हैं, इन सब इशारोंको मिलानेसे इष्ट अक्षर बन जाते हैं। इसे भूतमुद्रा कहा करते हैं। इसी तरह और भी काव्यसंज्ञावाली भूतमुद्राओंको जान ले।

(४९) म्लेच्छितविकल्पा इति—यत्साधुशब्दोपनिबद्धमप्यक्षरविन्यासादस्पष्टार्थं तन्म्लेच्छितं गूढवस्तुमन्त्रार्थम्। तस्य विकल्पा बहवः पूर्वाचार्योक्ताः। तद्यथा—'कौटिलीयं यदि क्षान्तैः स्वरयोर्ह्रस्वदीर्घयोः। बिन्दूष्मणोर्विपर्यासाद्दुर्बोधमिति संज्ञितम्॥ अकौ खगौ घङौ चैव चटौ तपौ यशौ तथा। एते व्यस्ताः स्थिराः शेषा मूलदेवीयमुच्यते॥ ग्रहनयनवसुसमेतं षडाननाख्यानि सागरा मुनयः। ज्वलनाङ्गं तुकश्रृङ्गं दुर्लेखितं गूढलेख्यमिदम्॥' इति। एवं प्रकारा अन्येऽपि द्रष्टव्याः।

(४५) म्लेच्छितविकल्प—चाहे शब्द रचना निर्दोष भी हो पर किसी फालतू शब्दका पंछारा लगानेसे उसका अर्थ स्पष्ट न हो तो उसे म्लेच्छित कहते हैं। यह किसी गूढवस्तुके बारेमें सलाह करनेके लिये हुआ करता है। पूर्वाचार्योंने इसके बहुतसे विकल्प कहे हैं। रीति—ह्रस्व, दीर्घ तथा अनुस्वार और विसर्गको उलटा पलटा करने एवम् क्ष अन्तमें लगा देनेसे कौटिलीय होता है। यह कठिनतासे समझमें आता है। अ क, ख ग, घ ङ, च ट, त प, य श, इनको व्यस्त यानी अके स्थानमें क, खके स्थानमें ग रखनेसे एवम् बाकी जैसेका जैसा रखनेसे मूलदेवीय हो जाता है। गूढलेख—ग्रह ९ अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ, नयन २ दीर्घ, वसु ८ क ख ग घ ङ च, छ, ज, षडानन ६ झ ञ ट ठ ड ढ, सागर ७ ण त थ द ध न प, मुनि७फ ब भ म य र ल, ज्वलनाङ्ग ५ व श ष स ह, तुक शृङ्ग—विसर्ग अनुस्वार, इनसे लिखा गूढ लेख होता है। उदाहरण—अब हम इसी समस्यासे कामदेव शब्द लिखते हैं। वसु १ ग्रह १ नयन (का) मुनि ४ ग्रह १ (म) सागर ४ ग्रह ६ (दे) ज्वलनाङ्ग १ ग्रह १ (व) सब मिलकर कामदेव बन गया। इसी तरह दूसरे भी समझने चाहियें।

(४६) देशभाषाविज्ञानमिति—अप्रकाश्यवस्तुज्ञापनार्थं तद्देशीयैर्व्यवहारार्थं च।

---

१ उपलब्ध हुए तो अन्य विद्वानोंके मत भी इसपर दिखायेंगे, यह भी एक मित्रकी योजना है।

(४६) देशभाषाविज्ञान—आवश्यकीय वस्तुके जनाने तथा देश देशके पुरुषोंके साथ व्यवहार करनेके लिये देश देशकी भाषाएँ जाननी चाहियें।

(४७) पुष्पशकटिकेति—पुष्पाणि निमित्तीकृत्याहं प्रणीता (?) ।

(४७) पुष्पशकटिका—फूलोंको निमित्त करके जो उत्तम बनाई गई हो।

(४८) निमित्तज्ञानमिति—निमित्तं धर्मक्षमावर्गोऽन्तर्गतं (?) शुभाशुभादेशपरिज्ञानफलम् । तत्र च प्रष्टुरभिज्ञानार्थम्, एवंरूपया स्त्रिया तव संप्रयोग इति कामोपहसितप्राया आदेशा इति । निमित्तज्ञानमिति सामान्येनोक्तम् ।

(४८) निमित्त ज्ञान—निमित्त, धर्म क्षमावर्गके भीतर आ गया है, इसका फल शुभ, अशुभ बता देना ही है। यह पूछनेवालेके परिचयके लिये है कि ऐसी स्त्रीसे आपका रमण होगा। इसके बताने प्रायः कामको हँसीके लिये ही होते हैं। निमित्तज्ञान यह साधारणरूपसे कहा है कि शुभाशुभके सभी शकुनोंको जाने।

(४९) यन्त्रमातृकेति—सजीवानां निर्जीवानां यन्त्राणां यानोदकसंग्रामार्थं घटनाशास्त्रं विश्वकर्मप्रोक्तम् ।

(४९) यन्त्रमातृका—कलसे चलनेवाले तथा मनुष्यादिकोंसे चलनेवाले यंत्रोंको सवारी, पानी और संग्रामके लिये बनाना। इनके बनानेका शास्त्र विश्वकर्माने कहा है।

(५०) धारणमातृकेति—श्रुतस्य ग्रन्थस्य धारणार्थं शास्त्रम् । यथोक्तम्—'वस्तु कोषस्तथा द्रव्यं लक्षणं केतुरेव च। इत्येते धारणादेशाः पञ्चाङ्गरुचिरं वपुः ॥' इति ।

(५०) धारणमातृका—सुने हुए ग्रन्थके धारण करनेके शास्त्रको कहते हैं, कहा भी है कि—" कथा, कोश, पदार्थ, स्वरूप और उसका ज्ञान ये शास्त्रकी धारणा करनेवाले हैं, क्योंकि ये पांचों धारणाके अंग हैं। जो शास्त्र सुना जा रहा हो, उसकी कथा मालूम हो, कोश याद हो जिससे उसके शब्द सीधे समझमें आजायँ, जो सुने उसका पदार्थ समझमें आजाय, वह क्या है यह जान ले तथा उन सबका सार क्या है यह जान जाय तो इससे फिर उसे नहीं भूलता ।

(५१) संपाठ्यमिति—संभूय क्रीडार्थं वादार्थं च । तत्र पूर्वधारितमेको ग्रन्थं पठति, द्वितीयस्तमेवाश्रुतपूर्वं तेन सह तथैव पठति ।

(५१) संपाठ्य-यह मिलकर खेलनेके लिये और वादके लिये है। इसमें एक तो पाहिले धारण किये हुएको पढ़ता है दूसरा उसीके साथ विना पढ़े ही उसे पढ़ता जाता है।

(५२) मानसीति—मनसि भवा चिन्ता। दृश्यादृश्यभेदविषया द्विधा। तत्र कश्चिद्व्यञ्जनाक्षरैः पद्मोत्पलाद्याकृतिभिर्यथास्थितानुस्वारविसर्जनीययुतैः श्लोकमनुक्तार्थं लिखति। अन्यश्च मात्रासंधिसंयोगासंयोगच्छन्दोविन्यासादिभिरभ्यासादतीवाक्षरं (?) पठति। इति दृश्यविषया। यदा तु तथैव तानि यथाक्रममाख्यातानि श्रुत्वा पूर्ववदुन्नीय पठति, तदा दृश्यविषया न भवति। सा चाकाशमानसीत्युच्यते। तदुभयं क्रीडार्थं वादार्थं च।

(५२) मानसी-मनमें होनेवाली चिन्ताको मानसी कहते हैं। यह दृश्य और अदृश्य विषयके भेदसे दो तरहकी है। दृश्यविषया-इसमें एक आदमी पद्म और उत्पल आदिकी आकृतियोंसे जैसेके जैसे अनुस्वार विसर्जनीय आदिके साथ विना अर्थ कटे हुए श्लोकको लिखता है तथा अभ्यासके बलसे मात्रा, सन्धि, संयोग, असंयोग और छन्द, विन्यासके साथ जलदी ही लिखे अक्षरोंको बांच लेता है। अदृश्यविषया-यदि उसी तरह उन्हें यथाक्रम कहे हुओंको सुनकर पीछे दृश्यकी तरह लाकर या उठाकर पढ़े तो उस समय यह दृश्यविषयक न रहेगी। इसे आकाशमानसी भी कहते हैं। इन दोनोंका वाद तथा खेलमें उपयोग होता है।

(५३) काव्यक्रियेति—संस्कृतप्राकृतापभ्रंशकाव्यस्य करणं प्रतीतप्रयोजनम्।

(५३) काव्यक्रिया-चाहे संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषामें भी काव्य करना हो कर डाले। इसके प्रयोजनको सब ही जानते हैं।

(५४) अभिधानकोष इति—उत्पलमालादिः।

(५४) अभिधानकोष-उत्पलमाला अमरकोश आदि हैं।

(५५) छन्दोज्ञानमिति—पिङ्गलादिप्रणीतस्य च्छन्दसो ज्ञानम्।

(५५) छन्दोज्ञान-पिंगल आदि मुनियोंके बनाये पिंगलसूत्र आदि छन्दःशास्त्रके अवबोधको कहते हैं।

(५६) क्रियाकल्प इति—काव्यकरणविधिः काव्यालंकार इत्यर्थः। त्रितयमपि काव्यक्रियाङ्गं परकाव्यावबोधार्थं च।

(५६) क्रियाकल्प–की हुई वस्तुकी परीक्षा करके उसके गुण दोष जान लेनेका नाम है । काव्य बना उसके गुणदोष विचार दोषोंको निकाल शब्द और अर्थोंके अलङ्कारोंसे अलंकृत कर देना है । कोश, छन्द और परीक्षा ये तीनों भी काव्यक्रियाके अंग हैं, दूसरेके काव्योंके जाननेके लिये हैं ।

(५७) छलितकयोगा इति–परव्यामोहनार्थाः । यथोक्तम्—' यद्रूपमन्यरूपेण संप्रकाश्य हि वञ्चनम् । देवेतरप्रयोगाभ्यां ज्ञेयं तच्छलितं यथा ॥ दिव्यं शूर्पणखारूपं व्यचरद्वायुनन्दनः । छलितं चानभिश्रुत्य श्रुत्वा रामं च कीचकम् ॥ ' (?) इति ।

(५७) छलितकयोग–ये दूसरेके ठगनेके कार्य्यमें आते हैं, कहा भी है कि–" दैवी और राक्षसी विद्यासे अपने रूपको छिपा दूसरेका रूप धरकर किसीको ठग लाये । जैसे–शूर्पणखा मायासे दिव्यरूप बनाकर रामको छलने पहुँची थी, भीमसेन द्रौपदी बनकर कीचकको मार आया था । "

(५८) वस्त्रगोपनानीति–वस्त्रेणाप्रकाश्यदेशस्य संवरणं यथा तद्दृश्यमानमपि तस्मान्नापैति । त्रुटितस्यात्रुटितस्येव परिधानम् । महतो वस्त्रस्य संवरणादिनाल्पीकरणम् । इति गोपनानि ।

(५८) वस्त्रगोपन–वस्त्रसे अप्रकाश्य देशका इस रीतिसे ढक देना जिससे वह होता हुआ भी न देखा जाय, टूटे हुएको साबितकी तरह पहिनना बड़े वस्त्रको पहिनने आदिसे छोटा कर लेना ।

(५९) द्यूतविशेषा इति–निर्जीवद्यूतविधानमेतत् । तत्र ये प्राप्त्यादिभिः पञ्चदशभिरङ्गैर्मुष्टिक्षुल्लकादयो द्यूतविशेषाः प्रतीतार्थाः ।

(५९) द्यूतविशेष–यह निर्जीव द्यूत विधान है । इसमें प्राप्ति आदिक १५ अंगोंके साथ मुष्टि, क्षुल्लक आदिक भी द्यूतविशेष हैं । इनके पदार्थको सब ही जानते हैं ।

(६०) आकर्षक्रीडेति–पाशकक्रीडा । द्यूतविशेषत्वेऽपि पुनर्वचनमत्रादरार्थम् । सश्रृङ्गारत्वाद्दुर्विज्ञेयत्वाद्वा । अक्षहृदयापरिज्ञाने हि नलयुधिष्ठिरयोरपि पराजयात् ।

(६०) आकर्षक्रीडा–पाशोंका खेल एक प्रकारका जुआ होते हुए भी यहां उसका फिर ग्रहण करना आदरके लिये है । इसमें श्रृङ्गारका भी समा-

वेश है एवम् सीखा भी कठिनतासे जाता है । अक्षके हृदयके विना जाने नल और युधिष्ठिरजीको हार ही हुई थी ।

(६१) बालक्रीडनकानीति । गृहकन्दुकपुत्रिकादिभिर्यानि बालानां क्रीडनानि तानि बालोपक्रमार्थानि । एता एकषष्टिकला उक्ताः ।

(६१) बालक्रीडनक—गेंद और गुड़िया आदिक जिनसे कि बच्चे खेलते हैं, ये बच्चोंके खेल सिखानेके लिये हैं । ये इकसठ कलाएं हो गईं ।

(६२) वैनयिकीनामिति । स्वपरविनयप्रयोजनाद्वैनयिक्य आचारशास्त्राणि । हस्त्यादिशिक्षा च ।

(६२) वैनयिकी—अपने और दूसरोंके लिये विनय प्रयोजनवाले आचारशास्त्रों एवं हाथी घोड़ोंके सिखानेको कहते हैं ।

(६३) वैजयिकीनामिति । विजयप्रयोजना वैजयिक्यः । दैव्यो मानुष्यश्च । तत्र दैव्योऽपराजितादयः । मानुष्यो याः सांग्रामिक्यः शस्त्रविद्याः ॥

(६३) वैजयिकी—विजयके देनेवाली विद्याको कहते हैं । यह दैवी और मानुषी भेदसे दो तरहकी है । अपराजिता आदिक विद्याएँ दैवी तथा मनुष्योंके संग्रामकी शस्त्रविद्याको मानुषी कहते हैं ।

(६४) व्यायामिकीनामिति । व्यायामप्रयोजना व्यायामिक्यो मृगयाद्याः। एतास्तिस्र आत्मोत्कर्षरक्षणार्था जीवार्थाः ॥ इति चतुःषष्टिरङ्गविद्या इति । कामसूत्रस्यावयविन्योऽवयवभूताः । तदभावे कामसूत्रस्याप्रवृत्तेः ॥ १९ ॥

(६४) व्यायामिकी—व्यायाममें आनेवाली विद्याको कहते हैं। जैसे शिकार और कसरत कुश्ती आदि । ये उपर्युक्त तीनों विद्याएँ अपने उत्कर्षकी रक्षाके लिये तथा जीविकाके लिये हैं । ये चौंसठ अंगविद्याएँ हैं, ये कामशास्त्रके अवयवरूप हैं, क्योंकि इनके विना कामसूत्रकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ १५ ॥

पांचालिकी चतुःषष्टि इनसे भिन्न है ।

पाञ्चालिकी च चतुःषष्टिरपरा । तस्याः प्रयोगानन्ववेत्य सांप्रयोगिके वक्ष्यामः । कामस्य तदात्मकत्वात् १६

पांचालिकी चौंसठ कलाएँ इनसे भिन्न हैं, इसके प्रयोगोंको हम सांप्रयोगिक अधिकरणमें यथाक्रम कहेंगे, क्योंकि कामका स्वभाव इन चौंसठ कलाओंका ही है ॥ १६ ॥

पाञ्चालिकी चेति । पाञ्चालप्रभवा तत्प्रोक्तत्वाद्वा । चतुःषष्टिरङ्गविद्याः । तदभावेऽपि तस्याः प्रवृत्तेः । तस्या इति पाञ्चालिक्याः । अन्ववेत्य यथायथं विषयमनुसृत्य । सांप्रयोगिकेऽधिकरणे वक्ष्यामः । कामस्य तदात्मकत्वादिति । चतुःषष्टिस्वभावत्वात् । पूर्वस्यास्तु चतुःषष्टेस्तन्त्रान्तरे दृष्टप्रयोगत्वात्, इह तदङ्गताप्रतिपत्त्यर्थमुद्देशमात्रमुक्तम् ॥ १६ ॥

पंजाब देशसे ये कलाएँ उत्पन्न हुई हैं या इनका कथन पंजाबियोंने किया है, इस कारण ये पांचालिकी कहाती हैं । ये चौंसठ अंगविद्याएँ मुख्य हैं, क्योंकि इन चौंसठ विद्याओंके बिना भी इस पांचालिकीकी प्रवृत्ति हो जाती है । इस पांचालिकीके विषयोंको उचित क्रमके अनुसार साम्प्रयोगिक अधिकरण (रतप्रकरण) में कहेंगे, क्योंकि कामका स्वभाव ही इन चौंसठ कलाओंका होता है । पांचालिकीसे इतर चौंसठ अंगविद्याएँ जो अभी बताई गई हैं, उनका दूसरे २ शास्त्रोंमें प्रयोग देखा जाता है, कामशास्त्रको अंगतामात्र दिखानेके लिये ही यहां संक्षेपसे कथनमात्र कर दिया है ॥ १६ ॥

कलाज्ञानसे लाभ ।

कलाग्रहणे फलमाह—

कलाओंके सीखनेका क्या फल होता है इसे बताते हैं कि—

आभिरभ्युच्छ्रिता वेश्या शीलरूपगुणान्विता ।
लभते गणिकाशब्दं स्थानं च जनसंसदि ॥ १७ ॥

रूप, शील और गुणोंसे युक्त वेश्या इन कलाओंसे उन्नतिको प्राप्त हो गणिका हो जाती है । नागरिकगोष्ठीमें उसे स्थान मिल जाता है ॥ १७ ॥

आभिरिति । कलाभिरभ्युच्छ्रिता जातोत्कर्षा । वेश्येति प्रायशोग्रहणमस्या इति दर्शनार्थम् । शीलं सुस्वभावः । रूपं संस्थानं वर्णश्च । गुणा नायिकाया वैशिके वक्ष्यमाणाः । गणिकाशब्दमिति । वेश्या सामान्यशब्दवाच्यापि विशिष्टं गणिकाभिधानं लभते इत्यर्थः, एवंलक्षणत्वाद्गणिकायाः । स्थानं च जनसंसदीति—जनसभायामासनभूमिं लभते । न वेश्येत्यवगण्यते ॥ १७ ॥

पांचालिकी कला तथा चौदहवें सूत्रकी कही कलाओंसे उन्नतिको प्राप्त होती है । श्लोकमें वेश्याग्रहणका यह मतलब नहीं है कि वे ही अधिकारिणी हैं किन्तु वे ज्यादा इन्हें सीखती हैं इस बातको दिखानेके लिये वेश्याओंका ग्रहण है । अच्छे स्वभावका नाम शील है । शरीरकी सुगढाहट तथा वर्ण (सौन्दर्य्य) को

रूप कहते हैं । नायिकाके गुण वैशिक अधिकरणमें कहेंगे । यद्यपि वेश्या यह सामान्यवाची शब्द है पर वेश्याके कुल आचरणोंको गणिकाओंके जैसे हो जानेके कारण उसे सब लोग गणिका ही कहते हैं । जन सभामें उसे आदर मिलता है, लोग उसे वेश्या नहीं गिनते ॥ १७ ॥

पूजिता सा सदा राज्ञा गुणवद्भिश्च संस्तुता ।
प्रार्थनीयाभिगम्या च लक्ष्यभूता च जायते ॥ १८ ॥

राजासे सदा सम्मानित एवम् गुणियोंसे प्रशंसित, प्रार्थनीय, अभिगम्य, एवम् लक्ष्मभूत हो जाती है ॥ १८ ॥

राज्ञा पूजिता छत्रभृङ्गारादिदानेन । गुणवद्भिः संस्तुता असाधारणमस्याः कलाकौशलमिति प्रशंसिता । प्रार्थनीया कलोपदेशार्थिनामभिगमनार्हा । विदग्धानां रतार्थिनां लक्ष्यभूता निदर्शनभूता देवदत्तावत् ॥ १८ ॥

जो कला कौशलमें बढ जाती ह उसे राजालोग छत्र और सोनेके पात्रसे सम्मानित करते हैं । गुणीलोग उसके कलाकौशलकी प्रसंशा करते हैं कि इसके कलाकौशल असाधारण हैं । लोग उससे कला सीखनेके लिये उसकी प्रार्थना करते हैं । वह योग्य पुरुषोंके अभिगमनके योग्य बन जाती है । कामशास्त्रके उन कुशलपुरुषोंकी जो कि जानकारकी रति चाहते हैं उनकी वही लक्ष्य बन जाती है जैसी कि देवदत्ता थी ॥ १८ ॥

यही बात नहीं कि, ये कलाएँ वेश्याजनोंके ही उदयका कारण बनें किन्तु-

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्रसुता तथा ।
सहस्रान्तःपुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम् ॥ १९ ॥

योगोंके जाननेवाली राजपुत्री एवं सामन्त महासामन्त मंत्री आदिकी लड़कियां अपने पतिको वशमें कर लेती हैं चाहे हजार सौंत भी क्यों न हों १९॥

योगज्ञा गीतादिप्रयोगज्ञा । सहस्रान्तःपुरमिति प्रभूतदारोपलक्षणम् । स्ववशे आत्मनो वशे ॥ १९ ॥

योगका तात्पर्य्य गीत आदिक प्रयोग है । श्लोकमें आया हुआ 'सहस्रान्तः-पुर' शब्द अनेकस्त्रियोंका उपलक्षक है । श्लोकके 'स्ववशे' शब्दका अर्थ 'अपने वशमें' यह है (सबका तात्पर्य्य ऊपर दिया जा चुका ह) ॥ १९ ॥

तथा पतिवियोगे च व्यसनं दारुणं गता ।
देशान्तरेऽपि विद्याभिः सा सुखेनैव जीवति ॥ २० ॥

इसी तरह कला जाननेवाली पतिवियोगमें अर्थात् पतिके विदेशमें जानेपर, विधवा होनेपर, निर्वेदसे देश छोड़ देनेपर भी आनन्दसे समय विता सकती है ॥ २० ॥

तथा पतिवियोगे पत्यौ प्रोषिते, तथा व्यसनं दारुणं वैधव्यलक्षणं गता निर्वेदात्त्यक्तस्वदेशा अन्यस्मिन्नपि देशे सुखेनैव जीवति, विद्योपदेशदानात् ॥ २० ॥

दारुण व्यसन विधवा होनेपर ही प्राप्त होता है, इस कारण सूत्रके इन शब्दोंका विधवा होना अर्थ किया है । इससे पतिका वियोग पतिकी जीवित दशामें ही मानना होगा । निर्वेद शान्तिरसका स्थायी भाव है इससे घरका त्याग वैराग्यकी ही दशामें हो सकता है । ऐसी स्त्रियोंको इन कलाओंका अन्यको उपदेश देनेसे विदेशमें भी सुख मिलता है ॥ २० ॥

कलाज्ञानसे पुरुषोंको लाभ ।

पुरुषमधिकृत्याह—

स्त्रियोंके लाभ बताकर अब पुरुषोंको फायदे बताते हैं कि—

नरः कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारकः ।
असंस्तुतोऽपि नारीणां चित्तमाश्वेव विन्दति ॥ २१ ॥

कलाओंमें चतुर, वाचाल, चाटुकारक मनुष्य विना जान पहिचानके भी स्त्रियोंके चित्तको जलदी ही ले लेता है ॥ २१ ॥

नर इति । वाचाल इति कलासंबन्धद्वारेणैव बहुभाषी, नान्यथा । माभूदनागरकत्वप्रसङ्ग इति । चाटुकारकः प्रियस्य कर्ता । कलाग्रहणेन हि संस्कारवत्त्वात् । असंस्तुतोऽप्यपरिचितोऽपि चित्तं विन्दति गृह्णाति । आश्वेव न कालमपेक्षते । संप्रयोगात्स्त्रीपुंसयोः ॥ २१ ॥

कलाओंके संबन्धसे बहुत बोलनेवाला होना चाहिये गप्पी नहीं, अन्यथा अनागरक जँचेगा। बोलने ही बोलनेवाला न हो किन्तु प्यारे कामोंका करनेवाला भी हो । कला आ जानेके कारण विना जाने भी स्त्रियाँ उसे दिल दे दिया करती हैं केवल स्त्रीपुरुषोंका संप्रयोग होना चाहिये ॥ २१ ॥

कलानां ग्रहणादेव सौभाग्यमुपजायते ।
देशकालौ त्वपेक्ष्यासां प्रयोगः संभवेन्न वा ॥ २२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
विद्यासमुद्देशस्तृतीयोऽध्यायः ।

---

१ यदि ऐसी स्त्री हो तो वह पुरुषोंके मनको भी इसी तरह ले सकती है, केवल उसे पुरुषका संप्रयोग होना चाहिये ।

कलाओंके ग्रहणसे सौभाग्य पैदा हो जाता है । जो देश और काल देख-कर इनका प्रयोग होता है, वह कभी निष्फल नहीं होता ॥ २२ ॥

ग्रहणादेवाभिजायते सौभाग्यम् । अर्थोऽनर्थप्रतीघातः, कामो यशश्चेत्यर्थोक्तम् । तत्रापि देशकालपेक्षा । अस्मिन्देशे नागरकाः कलाकुशलाः, घटानिबन्धनादिकामा वेति प्रयोगः । नागरकशून्यो वा देशः, गुणद्विषो वात्र प्रतिवसन्ति, व्यसनकालो वा नागरकाणामिति, न वा प्रयोगसंभवः, अन्यथा तत्परिज्ञानं दोषफलं स्यादिति ॥ २२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे विद्यासमुद्देशस्तृतीयोऽध्यायः ।

कलाओंके जाननेसे ही पुरुषोंको अर्थ, अनर्थका नाश, काम और यश मिलता है । इसमें भी देशकालकी अपेक्षा है कि जिस देशमें नागरक कुशल हों वा घटानिबन्धन आदि चाहनेवाले हों तो प्रयोग करे। जो देश नागरकोंसे रहित हो अथवा जहां गुणके साथ द्वेष करनेवाले रहते हों तो प्रयोग उचित नहीं । यदि ऐसा न मानोगे तो इसका जानना दोषफलवाला होगा ॥ २२ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके तृतीयाध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

नागरकवृत्त प्रकरण ।

शास्त्रकार एव प्रकरणसंबन्धमाह—

अबतक टीकाकारका यह ढँग रहा है कि प्रकरणके आरंभमें ही उस प्रकरणका सम्बन्ध गत प्रकरणके साथ जो होता था उसे कह दिया है, पर इस प्रकरणका पूर्व प्रकरणके साथ जो सम्बन्ध है उसे नहीं बताया । इस न बतानेका कारण स्वयं ही टीकाकार बताते हैं कि कामसूत्रकार महर्षि वात्स्यायन स्वयं ही प्रथमसूत्रसे कह रहे हैं कि विद्याग्रहण करके ही नागर बन सकता है अतः पूर्व प्रकरणके साथ इसका कार्यकारणभाव सम्बन्ध है ।

नागर बननेका समय।

गृहीतविद्यः प्रतिग्रहजयक्रयनिर्वेशाधिगतैरर्थैरन्वयागतैरुभयैर्वा गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्तं वर्तेत ॥१॥

विद्या पढ़ा हुआ युवा, पहिले अर्थों अथवा दान, जीत और व्यापार आदिके अर्थों या दोनोंके अर्थोंसे गृहस्थ बनकर विदग्ध जनोंके वर्ताव करे ॥ १ ॥

गृहीतविद्य इति–तस्य नागरकवृत्तवर्तने योग्यत्वात्। गृहीतविद्यस्याप्यसति पत्नीयोगे नागरकवृत्तस्यासंभवादाह—गार्हस्थ्यमिति । पत्नीसंयोगेऽपि यदि गार्हस्थ्यं गृहकर्म नागरकयोग्यं तन्नार्थं विनेत्याह—अर्थैरिति । तेऽपि न विनोपायैरित्याह—प्रतिग्रहेति। तत्र ब्राह्मणः प्रतिग्रहेण, तद्वृत्तित्वात्। क्षत्रियः शस्त्रजीवित्वाज्जयेन। वैश्यः क्रयेण वार्तोपलक्षणार्थेन। शूद्रः कारुकुशीलवादिः कृते कर्मणि यो निर्वेशो भृतिस्तेनार्जितैः। गृहस्थकर्म प्राप्येति न निष्किंचनस्यायं विधिः।

पढ़ा लिखा ही नागरकोंकी वृत्तिके वर्तनेमें योग्य होता है। पढ़े लिखेको भी विना धर्मपत्नीके नागरकवृत्ति असंभव है, इसी कारण कहा है कि– गृहस्थ होकर वर्ते। यदि व्याह होनेपर गृहस्थ जीवन ही नागरकके योग्य है तो वह विना धनके नहीं हो सकता, इसी लिये कहा है कि अर्थोंसे वर्ते। अर्थ उपाय विना नहीं मिलते, इस कारण अर्थोंका उपाय बताया है। ब्राह्मण तो दानसे करे, क्योंकि यही उसकी जीविका है। क्षत्रिय तलवारसे जीविका किया करते हैं, इसी कारण उसके लिये जीत बताई है। अतएव वैश्य वाणिज्यसे या अर्थशास्त्रके बताये हुए उपाय कृषि, गोरक्ष आदिसे। कारु और कुशीलव आदिक शूद्र किये कर्मकी नौकरीसे संपादित किये हुए अर्थोंसे छैल-लीला करे। गृहस्थ कर्मको प्राप्त होकर वर्ते, इस कथनसे पता चलता है कि यह विधि अकिंचनोंके लिये नहीं है।

अन्वयागतैरिति–पितृपितामहागतैः। अत्र पत्नीयोगादनन्तरमेव गार्हस्थ्याधिगमः। उभयैर्वेति–प्रतिग्रहाद्यागतैरन्वयागतैश्च । सत्स्वप्यन्वयागतेष्वपूर्वार्जनं कार्यमिति दर्शयति। नागरको विदग्धजनः। एतद्वृत्त्यपेक्षया वा भविष्यद्वृत्त्या नागरकस्तस्य वृत्तं वर्तेतेति तस्य सामान्यवृत्तिर्नागरकविशिष्टा वृत्तिः कर्म वा भवति। चातुर्वर्ण्यगृहस्थमधिकृत्येदं शास्त्रम्। अस्य चेदं प्रकरणं शरीरम्। तदाश्रितस्य हि सर्वशास्त्रानुष्ठानात् ॥ १ ॥

कुल परंपरासे आये हुए धनको अन्वयागत कहते हैं । यहाँ विवाहके बाद ही गृहस्थकर्मकी प्राप्ति होती है । पहिलेके और अपने अपने दान उपायोंसे अर्जित किये अर्थसे दोनोंसे ही वर्ते । पर यह अवश्य करना चाहिये कि चाहें कितना भी पहिला हो पर अपूर्व अर्थ अवश्य पैदा करे, इसी बातको उपार्जनकी प्रक्रिया बताकर दिखा रहे हैं । विदग्धजनका नाम नागरक है । जो इस वृत्तकी अपेक्षासे या भविष्यके वृत्तकी अपेक्षासे नागरक हो उसके वृत्तको वर्त्ते । वृत्ति दो प्रकारकी है—एक सामान्यवृत्ति दूसरी नागरकोंकी विशिष्टवृत्ति वा कर्म होता है । चारों वर्णोंके गृहस्थोंके लिये यह शास्त्र बनाया है । इसका यही प्रकरण शरीर है, क्योंकि इसके आश्रित हुआ ही सब शास्त्रका अनुष्ठान कर सकता है[1] ॥ १ ॥

नागरकी नगरी ।

यत्र तस्य वृत्तं तत्र स्थितिमाह—

जहां उसका यह वृत्त हो वहां स्थिति बताते हैं कि—

नगरे पत्तने खर्वटे महति वा सज्जनाश्रये स्थानम् । यात्रावशाद्वा ॥ २ ॥

पत्तन, नगर, द्रोणमुख और खर्वट इनमेंसे कहीं भी सज्जनोंमें रहे अथवा जहां कहीं अपना निर्वाह हो वहीं रहे ॥ २ ॥

नगर इति—नगरमष्टशतग्रामीमध्ये तद्व्यवहारस्थानम् । पत्तनं यत्र राजधानी स्थिता । खर्वटं द्विशतग्रामीमध्ये । महति वेति—चतुःशतग्रामीमध्ये द्रोणमुख नाम खर्वटान्महद्भवति । एषामन्यतमेऽवस्थानं युज्यते । कुत इत्याह—सज्जनाश्रय इति प्रतिपदं योज्यम् । यात्रावशाद्वेति—यत्र वा स्याद्यापनं शरीरस्थितिर्ग्रामे तत्रावस्थानम्, तन्निबन्धनत्वादितरवृत्तेः ॥ २ ॥

आठ सौ गामोंका प्रवन्धक जहां रहता है उसे ' नगर ' कहते हैं, इन गामोंके मुकदमें यहीं तै होते हैं । जहां राजधानी रहती है उसे ' पत्तन ' कहते हैं । दोसौ गामोंके प्रबन्धक जहां रहते हैं उसे ' खर्वट ' कहते हैं । चारसौ गामोंके बीचमें, उनके ओपिसरकी रहनेकी जगह ' द्रोणमुख ' होता है, यह खर्वटसे बड़ा होता है । इनमेंसे किसीमें रहे पर जहां रह वहां

---

[1] क्योंकि उसे देखकर ही तो यह नागरक बनेगा ।

सज्जनोंके बीचमें रहे अथवा जहां जिस गाममें अपना निर्वाह आनन्दसे हो जाय वहां ही निवास करे, क्योंकि दूसरी बातें तो इसके पीछेकी हैं ॥ २ ॥

नागरका भवन ।

तत्रापि गृहमन्तरेण न संभवतीत्याह—

वहां भी घरके विना न हो सकेगा, इस कारण कहते हैं कि—

तत्र भवनमासन्नोदकं वृक्षवाटिकावद्विभक्तकर्मकक्षं द्विवासगृहं कारयेत ॥ ३ ॥

वहां पानीके पास, वृक्षोंकी वाटिकावाला वासके दो गृहोंसे युक्त घर बनाये, जिसमें कि जुदे जुदे कार्य्य करनेके लिये जुदी जुदी कक्षाएं बनी हुई हों।

तत्रेति—नगरादीनामन्यतमे भवनं गृहं कारयेदिति संबन्धः । आसन्नोदकं—नदीवाप्यादिसमीपे जलमकदर्थितं क्रीडाङ्गं च । वृक्षवाटिकावदिति—यस्यां दिशि जलं तस्यां वृक्षवाटिकया गृहोद्यानेन युक्तम् । विभक्तकर्मकक्षमिति—कर्मार्थं कक्षाः प्रकोष्ठकानि विभक्ता यस्य, उच्चावचेन हि गृहकर्मणि क्रियमाणे गृहमरमणीयं स्यात् । द्विवासगृहमिति—शयनार्थेन च युक्तम् । एतावद्वृत्तोपयोगिगृहविधानम्, शेषं वास्तुविद्यायां द्रष्टव्यम् ॥ ३ ॥

पत्तन, नगर, द्रोणमुख, खर्वट या गाम कहीं भी जहां अनुकूलता हो वहां ही घर बनाये । यह सूत्रका पूर्वके साथ सम्बन्ध है । पानीके पासका मतलब नदी वावडी आदिके पाससे है, क्योंकि पासमें शुद्ध पानी मिल जाता है तथा जलक्रीडा भी हो सकती है । वृक्षवाटिका उस दिशामें हो जिधर कि पानी हो । जुदी कक्षाओंको इस लिये बनाते हैं कि एक ही जगह छोटे बड़े सब काम करनेसे घरकी सुन्दरता नष्ट होगी । दो घरोंमेंसे एक शयन तथा दूसरा सामानसे भरा हो । नागरक कर्मका उपयोगी घरका विधान इतना ही है, इस कारण इताना ही कहा है, यदि घर बनानेके बारेमें अधिक देखनेकी इच्छा हो तो वास्तुविद्यामें देख लेना चाहिये ॥ ३ ॥

घरकी सजावट ।

तस्मिन्कारिते आधेयानां न्यासमाह—

घरके तयार होनेपर घरमें रखनेकी चीजोंके रखनेका क्रम बताते हैं कि—

बाह्ये च वासगृहे सुश्लक्ष्णमुभयोपधानं मध्ये विनतं शुक्लोत्तरच्छदं शयनीयं स्यात । प्रतिशय्यिका च ।

तस्य शिरोभागे कूर्चस्थानम् वेदिका च। तत्र रात्रिशेषमनुलेपनं माल्यं सिक्थकरण्डकं सौगन्धिकपुटिका मातुलुङ्गत्वचस्ताम्बूलानि च स्युः। भूमौ पतद्ग्रहः। नागदन्तावसक्ता वीणा। चित्रफलकम्। वर्तिकासमुद्गकः। यः कश्चित्पुस्तकः। कुरण्टकमालाश्च। नातिदूरे भूमौ वृत्तास्तरणं समस्तकम्। आकर्षफलकं द्यूतफलकं च। तस्य बहिः क्रीडाशकुनिपञ्जराणि। एकान्ते च तक्षतक्षणस्थानमन्यासां च क्रीडानाम्। स्वास्तीर्णा प्रेङ्खादोला वृक्षवाटिकायां सप्रच्छाया। स्थण्डिलपीठिका च सकुसुमेति भवनविन्यासः॥ ४॥

बाहिरके वास घरमें एक पलिंगपोश होना चाहिये, जो सुन्दर व चिकना हो, दरी गद्दा बिछा हो, दोनों ओर तकिया हों, ऊपर मुलायम सफेद चद्दर बिछी हो, बीचमें थोड़ा झुका हुआ भले ही हो पर उठा हुआ न हो। उसके पास एक छोटा पलिंग रहना चाहिये। पलिंगके शिरान्हेकी तरफ सुन्दर कुशासन बिछा हो तथा पास ही एक ऊँची वेदिका हो जिसपर रातका बचा चन्दन माला मोमकी डिब्बी, अतरपेटी, मातुलुंगकी त्वचा और पान रखे हों। जमीनपर पीकदानी हो। खुटीपर वीणा लटक रही हो। जिसपर चित्र काढ़ा जाय वह वस्तु एवम् काढ़नेका भी सब सामान रखा हो। कोई भी पुस्तक हो। पीले पियावासेकी माला हो। समीपमें ही जमीनपर एक लम्बा पूरा फर्स बिछा हो। चौपड़ और जूआका सामान तास आदि रखे हों। उसके बाहिर खेलनेके पक्षियोंके पिंजड़े हो। एकान्तमें बढ़ई आदिके कार्य्यकरनेका स्थान हो तथा दूसरे खेलोंकी जगहें हों। वृक्षवाटिकामें सघन छायामें झूला पड़ा हो। जिसपर कि चारों ओरके पुष्पवृक्षोंसे पुष्प पड़ते हों, ऐसा एक छोटा चबूतरा हो। यह नागरके घरमें रहनेवाली वस्तुएँ बता दीं॥ ४॥

बाह्य इति। आभ्यन्तरं वासगृहमन्तर्दाराणां शयनार्थम्। बाह्ये च प्रकोष्ठे कृते रत्यर्थं शयनीयं स्यात्। श्लक्ष्णं खट्वाश्रयप्रतिपादिकास्तरणतूलिकादिभिः सुरभितं च। उभयोपधानं शिरश्चरणभागयोर्न्यस्तोपधानम्। मध्ये विनतमाक्रान्तम्। मृदुकमित्यर्थः। शुक्लोत्तरच्छदमिति। शुक्लस्य प्रच्छदपटस्य प्रत्यहं द्वित्रैर्वा दिवसैः प्रक्षालनीयत्वादित्यवश्यं तदुपरि देयम्। प्रतिशय्यिका चेति। तस्य

समीपे संप्रयोगार्थं तत्प्रतिच्छन्दिका किंचिन्न्यूनोत्सेधा यस्यामाशय्यका स्यात् । इत्येवं विधिः । अयमाचारवताम् ।

भीतरका वासगृह अन्तःपुरकी स्त्रियोंके रहनेके लिये है अतः बाहिरका मकान और परकोटा बनवा लेनेपर उसमें रमणके लिये पलंग होना चाहिये । उसपर लेटने लायक गद्दे आदि बिछे रहने चाहियें, जिससे कि उसपर अच्छी लोटें ली जासकें। सिरानेकी ओर तकिया तथा पांयत भी उपधान (तकिया) रखे रहने चाहियें। वह बैठनेपर बीचमें लचीला तथा मुलायम होना चाहिये। उसके ऊपर सफेद चद्दर बिछी रहनी चाहिये, वह या तो रोज ही बदली जानी चाहिये या उसे दूसरे वा तीसरे दिन बदल देना चाहिये, यदि एक हो तो रोज अथवा दूसरे तीसरे दिन धुलनी चाहिये । उसके पास ही सहवास करनेके लिये एक उससे छोटी वैसी ही सजीली शय्या रहनी चाहिये, वह ऊंची कम हो । यह विधि तो आचारवालोंकी है ।

वेश्याकामिनस्तु शयनीयपदे उभयं निर्वर्तयन्ति । न तेषां प्रतिशय्यिका । तथा चोक्तम्—'संप्रयुज्येत यत्रस्थो नायकः प्रियया सह । न तत्रोपहते विद्वाञ्शयीत शयने शुचिः ॥' इति । तस्येति शयनीयस्य पश्चात्पार्श्वभागानां निकृष्टत्वाच्छिरोभाग एव कूर्चासनस्य देवतानुस्मरणार्थस्य स्थापनं स्यात् । यथोक्तम्—'शयनीयशिरोभागे न्यस्तकूर्चे शुचिः शुभे । कृतेष्टदेवतायोगो यायाच्छयनमात्मवान् ॥' वेदिका चेति । कुड्योपाश्रया शयनीयतुल्योत्सेधा हस्तमात्रविस्तारा कृतकुट्टिमा चतुरिका स्यात् । तत्र वेदिकायां रात्रिशेषं रात्र्युपयुक्तशेषमनुलेपनं चन्दनादिकं प्रातरुपभोगार्थं स्यात्, माल्यं रात्रिशेषम् । सिक्थकरण्डकं सिक्थकसंपुटिका । सौगन्धिकं सुगन्धद्रव्यनिर्वृतं स्वेदापनोदार्थम्, तस्य पुटिका तमालादिपत्रमयी । मातुलुङ्गत्वचो मुखवैरस्यापनोदार्थम्, दुष्टमारुतनिवारणार्थं च । यथोक्तम्—'सायं लीढ्वा कामी मध्वक्तं मातुलुङ्गदलकल्कम् । स्त्रीभुजपञ्जरसंस्थः खलेन नहि द्वेष्यते मरुता ॥' इति । ताम्बूलानि च सज्जितानि रात्रिपरिभोगार्थं स्युः । भूमौ पतद्ग्रहः । न वेदिकायाम् । प्रक्रान्तत्वाद्व्यवच्छिद्यते । यत्रस्थेन वा नायकेनोपयुक्तताम्बूलादि निष्ठीवितं पतद्गृह्णाति सा भूमिः तत्र स्यात् । नान्यत्र । अभूमित्वात् ।

वेश्याकामी तो सोनेके पलंगपर ही दोनों बातें कर लेते हैं, उन्हें सहवास करनेके लिये भि प्रलंगकी आवश्यकता नहीं होती । कहा भी है कि—

"जहां नायक अपनी प्यारीसे सहवास करे पवित्र विद्वान्को चाहिये कि उस विस्तरपर कभी शयन न करे।" सोनेके पलंगके पांयत और बगलके भागोंके निकृष्ट होनेके कारण सिराहनेकी ओर ही देवताओंके स्मरणके लिये कूर्चासन (कुशाका आसन) बिछावे । कहा भी है कि-"सिरानेकी ओरके पवित्र कूर्चासन पर पवित्रताके साथ इष्ट देवका स्मरण करके शयन करे।" भीतके सहारे या वैसे ही भीतमें बनी हुइ पलिंगकी बराबर ऊंची हाथभर चौड़ी फर्स लगी चौकुंठी वेदिका होनी चाहिये। उसपर रात्रिके बचे चन्दनादिकोंको सबेरेके लिये रख दिया जाय एवम् रातिकी घची माला, मोमकी पिटारी, अतरदान एवम् पसीनाकी दुर्गन्धिको मिटाने-वाला सामान और विगड़े मुखको ठीक करनेके लिये बिजोरा नींबूकी छाल रखी हो; जिससे कि बुरीवायुका निवारण हो सके । कहा भी है कि- " कामी सामके समय मातुलुङ्गके पत्तोंकी घुटी गोलीको सहद्में भिगोकर चाट, स्त्रीकी भुजरूपी पंजरपर विराजकर दुष्टवायुसे लज्जित नहीं होता ।" रातिके लिये सजेसजाये पान भी उसपर रखे रहें । पर पीकदान नीचे ही रखना चाहिये, इसे कभी भी वेदीपर न रखे। वह भी ऐसी जगह रखा रहना चाहिये जहां कि, पानपून चावे जायँ और उनकी पीक वहां कर दी जा सके दूसरी जगह न हो क्योंकि सिवा ऐसी जगहके उसके लिये दूसरी जगह नहीं है ।

वीणा निचोलावगुण्ठिता वादनार्था । चित्रफलकमालेख्यार्थम् । वर्तिकास-मुद्गकश्चित्रकर्मोपयोगी । यः कश्चिदिति सामान्यनिर्देशेऽपि यत्तदानीं काव्यं भावितं तस्य पुस्तको वाचनार्थं स्यादित्यर्थादेवावगम्यते । कुरण्टकमालाश्चेति । तासां शोभामात्रफलानां सुरतसंमर्देनाप्यम्लायमानत्वात् । तद्धारणे च सौभाग्यश्रुतेर्विशे-षाभिधानम् । एता वीणादयोऽनुपघ्रातार्थं वासगृहभित्तिनिहितनागदन्तेष्वासज्य स्थापिता यथाप्रयोजनं चादातव्याः । अनुरूपस्थाननिवेशनमपि वैदग्ध्यजनन-मिति गम्यते । नातिदूरे शयनीयस्य भूमौ, न पर्यङ्के वेत्रासने वा तत्रस्थस्या-शोभितत्वात् । वृत्तास्तरणं लोके प्रतीतम् । समस्तकमुपरिन्यस्तमस्तकमासनार्थं स्यात् । कूर्चेषु तावत्कालिकमासनम् ।

उसमें बजानेके लिये वीणा भी कपड़ा चढ़ी हुई लटकती रखनी चाहिये। चित्र काढ़नेका भी सामान रहे जिसपर कि चित्र काढ़े जाते हैं एवम् रंग पेटी तथा बुर्स और कलमें भी होनी चाहियें। यद्यपि कोई पुस्तक हो यह

सामान्यनिर्देश है पर इसका भाव यह है कि जो काव्य उस समय उसे प्यारा लगे वह वहां उसके पास होना चाहिये। पीले पियाबांसकी माला रमणके मर्दनसे भी नहीं कुम्हिलाती, इस कारण वह चांहकी वस्तु रहती है क्योंकि उससे शोभा बनी रहती है। ऐसा सुनते हैं कि इसके धारण करनेसे सौभाग्य बढ़ता है यह विशेष कथन है अथवा इसका यह भी अर्थ होता है कि इसके धारण करनेसे सौभाग्य बढ़ता है यह वेदका कथन है। वीणा आदिक टूट न जाय इस कारण इन्हें जावतेके साथ वहीं खुटीसे लटका दे जब जरूरत हो तब उतारकर बजाये। यथायोग्य स्थानपर सबको रखना भी चतुरता पैदा करता है। शयनके पासकी भूमिमें ही रखनेका विधान है, पर्यंक या वेतके आसन पर नहीं। क्योंकि वहां रखा सुन्दर न लगेगा। वृत्तास्तरणको सभी जानते हैं, यह साबित ऊपर बिछाने तथा जो समस्त न हो वह आसनके लिये होता है। कूर्चोंपर आसन उतने ही समयके लिये होता है।

आकर्षफलकं द्यूतफलकं च क्रीडार्थं भूमौ कुडयाश्रितं स्यात् काले च प्रसारयेत्। तस्येति वासगृहस्य—नातिदूरे बहिस्तत्सविधागारके क्रीडार्थं यानि शकुनानि तत्पूर्णानि पञ्जराणि नागदन्तावसक्तानि स्युः, नाभ्यन्तरे पुरीषोत्सर्गादिदोषात्। एकान्त इति—एकदेशे। यत्रासमये न पश्यति तत्र तक्षकर्मणस्तक्षणस्य च स्थानम्। अन्यासां च क्रीडार्थं लज्जाहेतूनामेकान्ते स्थानम्। स्वास्तीर्णेति—आतपपरिहारार्थमुपरि घनशाखाप्रतानत्वात्सुसंछन्ना। प्रेङ्खादोला प्रेरणया या दोल्यते। सुखावहा क्रीडार्थं स्यात्। वृक्षवाटिकायामित्येव न गृहाभ्यन्तरे। चक्रदोला तु चक्रपरिभ्रमणेन। सा प्रेङ्खेति निगद्यते। सप्रच्छायेति—उपरिपुष्पलतावच्छिन्नत्वात्प्रकृष्टच्छायोपेता। स्थण्डिलमयी पीठिका चेति—कृतकुट्टिमा वेदिका। सकुसुमेति—लतानिपतत्कुसुमावकीर्णा स्यात्। लतामण्डपिकेत्यर्थः। तत्रापानकादिभिरवस्थानात्। भवनविन्यास उत्थापनावस्थापनाभ्याम्॥ ४॥

पासे और जुआ खेलनेका भूमिमें भीतिके पास रखा हुआ होना चाहिये उससे जब समय हो तब ही वहां फैलाकर खेल ले। वासगृहके समीप ही बाहिर पासके घरमें खेलके लिये जो पक्षी हैं उनके भरे पींजरे खुटियोंपर लटकते रहें क्योंकि भीतर लटकाये जायँगे तो छेर आदि करेंगे। अपद्रव्य या काठकी चीजें बनाने एवं पर्देके खेलोंका एकान्तमें स्थान होना चाहिये जहां कि कोई बेसमय देख न सके। वृक्षवाटिकामें झूला हो घरके भीतर न हो

ऊपर सघन शाखाएँ और लताएँ लगी रहनेके कारण अच्छी तरह ढका भी रहे और घाम न आ सके । जो प्रेरणा यानी झोटा देनेसे हिले जिसपर कि झूलनेसे आनन्द आये यह झूला खेलके लिये होता है । जो चक्रडोला चक्रकी तरह घूमता है उसे प्रेङ्खा कहते हैं । 'सप्रच्छाया' का तात्पर्य्य प्रकृष्ट छायासे है, ऊपर फूलोंकी सघन लताएं होनेके कारण इसे श्रेष्ठ छायावाली कहते हैं । स्थंडिल चबूतराकी बनी पीठिका होनी चाहिये, उसपर फर्स बना रहना चाहिये, उसके ऊपर इतनी लताएं रहनी चाहिये कि उनके स्वतः गिरे हुए फूलोंसे व्याप्तसी रहे। लतासंडपिका वृक्षवाटिकासें होनी चाहिये, क्योंकि वहां आपानकादिकोंके कारण ही बैठते हैं। यह प्रारंभसे लेकर समाप्तितक रखने ढकनेतक घरका बनाना पूरा हुआ ॥ ४ ॥

नित्यके चरित्र ।

तत्रस्थस्य वृत्तं द्विविधम्—नित्यं नैमित्तिकं च । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

ऐसे घरमें रहनेवाले नागरकका चरित्र नित्य और नैमित्तिक भेदसे दो तरहका है, इन दोनोंमेंसे पहिले नित्यके चरित्र कहते हैं—

स प्रातरुत्थाय कृतनियतकृत्यः, गृहीतदन्तधावनः, मात्रयानुलेपनं धूपं स्रजमिति च गृहीत्वा, दत्त्वा सिक्थकमलक्तकं च, दृष्ट्वादर्शे मुखम्, गृहीतमुखवासताम्बूलः, कार्याण्यनुतिष्ठेत् ॥ ५ ॥

ऐसा नागरक प्रातःकाल उठकर शौचादिसे निवृत्त होकर, दाँतुन करके उचित मात्रामें चन्दन, धूप और माला अपने कार्य्यमें ला, लालरंग और मोम होठोंपर फेर, दर्पणमें मुख देख, पान और सुगन्धिकी गोली खा, दूसरे कामोंको करे ॥ ५ ॥

स इति । नायकः शयनात्प्रातरुत्थायाभ्युदितत्वपरिहारार्थं कृतनियतकृत्यः कृतमूत्रपुरीषोत्सर्गः गृहीतदन्तधावनो जग्धदन्तकाष्ठः । अत्रान्तरे यथास्वं संन्ध्यावन्दनादेर्धर्मस्यानुष्ठानमर्थप्राप्तम् । मात्रयेति । प्रभूतानुलेपनादिग्रहणादनागरकः स्यात् । कार्यानुष्ठाने प्रस्तुतत्वात् धूपमगुर्वादिना ।

इस प्रकारके वासस्थलोंवाला नागरक नींदसे प्रातःकाल ही मंगलपूर्वक उठ जाय एवम् यह सूर्य्योदयसे पहिले उठनेवाला है, इस बातके दिखानेके लिये उसी समय शौचादिसे निवृत्त हो दांतुन कर ले । इसके बाद नियम-

पूर्वक सन्ध्यावन्दन आदिक धर्मानुष्ठान करे। इस कारण उचित मात्रामें चन्दन लगाना कहा है कि अधिक लगानेसे अच्छा न लगनेके कारण लोग उसे वेसमझ कहेंगे । वह दूसरे कामोंको करनेके लिये तयार होता है इस कारण उसे धूपका उपयोग मांगालिक है पर धूप अगरबत्ती आदिकी होनी चाहिये।

स्रजं शेखरकमापीडं वा। अलक्तकं विशिष्टरागार्थम्, दद्यादित्यर्थादोष्ठयोः। ईषदार्द्रयालक्तकपिण्डया घृष्ट्वौष्ठं ताम्बूलमुपयुज्य सिक्थकगुटिकया ताडयेदित्यर्थक्रमः, आदर्शे मुखमवलोक्य, मङ्गलार्थं प्रसाधनगुणदोषज्ञानार्थं च गृहीतमुखवासताम्बूल इति । गन्धयुक्तिविहितां मुखवासगुटिकां कपोले निधाय पुनरुपयोगार्थं च ताम्बूलं हस्तवर्तिकायां गृहीत्वेत्यर्थः। कार्याणि त्रिवर्गसाधनान्यनुतिष्ठेत् ॥ ५ ॥

माला शेखरके लिये हो वा आपीडके लिये हो। विशिष्ट रागके लिये अलक्तकका ग्रहण है, यह अधिक लाली लानेके लिये होठोंपर लगाया जाता है। अलक्तककी गोली थोड़ी गीली हो, उससे होठ घिस लेने चाहियें, पीछे पान खाकर होठोंको चिकना बनानेके लिये मोंमकी गोली घिसले; यह इनके लगानेका क्रम है। दर्पणमें मुह मंगलके लिये देखा जाता है,जिससे चहरेकी खुशी व श्रृंगारके गुण दोषोंका पता चल जाय । सुगन्धितपानको गालमें रखले एवम् फिरके उपयोगके लिये डिब्बीमें रख कर डिब्बीको जेबमें रखले, फिर धर्म, अर्थ और कामके साधक कार्य्योंको करे ॥ ५ ॥

शरीरका संस्कार।

अनुष्ठितेषु तेषु शरीरसंस्कारार्थमाह–

इस प्रकार करनेवाले नायकोंको शरीरके परिष्कारके लिये कहते हैं कि–

नित्यं स्नानम् । द्वितीयकमुत्सादनम् । तृतीयकः फेनकः। चतुर्थकमायुष्यम्। पञ्चमकं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम् । सातत्याच्च संवृतकक्षास्वेदापनोदः॥६

नित्य नहाना, दूसरे दिन उबटन करना, तीसरे दिन फेन लगाना, चौथे दिन हजामत बनाना, पांचवें दिन नीचेके बाल साफ करना, दशवें दिन बाल नोंचना, ये काम अवश्य होने चाहिये। ढकी काखोंका पसीना सदा साफ करना चाहिये ॥ ६ ॥

नित्यमिति—प्रत्यहं स्नानम्, ओजस्करत्वात्पवित्रत्वाच्च । द्वितीयकमिति—यस्मिन् दिने कृतमुत्सादनं तदनन्तरं दिनं प्रथमम्, तस्माद् द्वितीयेऽह्नि शरीरदार्ढ्यार्थं स्यात् । एकान्तारितमित्यर्थः । तृतीयक इति—तृतीयेऽह्नि जङ्घयोः फेनको देयः स्यात् । द्विदिनान्तारित इत्यर्थः । अन्यथा ऊर्ध्वं जङ्घे कर्कशे स्याताम् । चतुर्थकमिति—त्रिः पक्षस्य च श्मश्रुनखरूपाणि वर्धयेदित्ययमागमः । अत्र केषांचिन्नागरकाणामुपायभेदात्कालभेदः । तत्रायुष्यं श्मश्रुकर्म क्षुरेण तच्चतुर्थेऽह्नि स्यात् । दिनत्रयान्तरितमित्यर्थः । कर्तर्या तु वपनमेव स्यात् ।

नित्य रोजको कहते हैं, रोजका स्नान ओजका बढ़ानेवाला तथा पवित्र करनेवाला है । जिस दिन उबटना करे उसके बादका दिन तो पहिला दिन है, उसके दूसरे दिन शरीरकी दृढताके लिये उबटना करे यानी इकातरे उबटना करता रहे । तीसरे दिन जांघोंसे समुद्रफेन मले, यह दोदिन बीचमें देकर तीसरे दिन होगा । यदि ऐसा न किया जाय तो इसके बाद जांघें कठोर हो जायँगी । शास्त्रमें लिखा हुआ है कि 'पक्षमें तीन बार मूँछ, दाढी और नाखूनोंको समारे, इस विषयमें किन्हीं नागरकोंका उपायभेदसे कालका भी भेद होजाता है । इसमें उस्तरासे दाढी मूछोंकी सँभार तो चौथे दिन होनी चाहिये यानी होनेके तीन दिन बाद होनी चाहिये। कैंचीसे जो बनाते हैं वह तो बनाना ही है, आयुष्य कर्म या सँभार नहीं है ।

प्रत्यायुष्यमिति—यद् गुह्ये क्षुरेण कर्म तत्पञ्चमेऽहनि, । यत्तु लोम्नामुत्पाटनेन तद्दशमे स्यादित्याह—दशमकं वेति । तत्र लोम्नां चिरेणोद्गमनात् । तथा चोक्तम्—'आयुष्यं तच्चतुर्थेऽह्नि स्याद्यत्तु क्षुरकर्मणा । प्रत्यायुष्य यदुद्धारालोम्नां तद्दशमेऽहनि ॥' इति । एवमर्थं च सामान्येन त्रिः पक्षस्यालंकारकर्मेति नोक्तम् । अहीनमिति—स्नानादिपञ्चकमविकलं स्यादित्यर्थः । सातत्यादिति—सर्वदा कक्षां त्रिवर्त्य स्थातव्यम् । यदा तत्किंचित्कुर्यात्स्यात्तदा संश्लेषान्नियतमस्याः स्वेदः । तं संततं कर्पटेनापनुदेत् । अन्यथा वैगन्ध्यमवैदग्ध्यं च जनयेत् ॥ ६ ॥

गुह्यस्थानके बाल उस्तरासे पांचवें दिन लेने चाहियें । यदि वहांके बाल नोंचने हों तो दशमें दिन करना चाहिये क्योंकि नोंचे पीछे बाल देरमें आते हैं। कहा भी है कि—'उस्तरासे चौथे दिन हजामत होनी चाहिये एवम् प्रत्यायुष्य (नीचेके

बाल साफ) पांचवें एवम् बालोंका नोंचना दशवें दिन हो । इसी कारण 'पक्षमें तीन वार अलंकार कर्म है ' ऐसा सामान्यरूपसे नहीं कहा। क्योंकि नोंचनेमें तो पक्षमें दो वार भी नहीं होता स्नानसे लेकर नीचेके बाल साफ करने तकके पांचों काम अचूक होने चाहियें, इसी कारण सूत्रमें 'अहीन' शब्द रखा है । कांखको सदा ही विना ढके रहना चाहिये, क्योंकि जो भी कुछ करेगा उसमें जरूर ही पसीना आयेगा इस कारण उसे सदा रूमालसे पोंछता रहे यदि ऐसा न करेगा तो उससे बदबू आने लगेगी जिससे उसकी अनागरिकता जाहिर होगी ॥ ६ ॥

भोजनका समय।

पूर्वाह्णापराह्णयोर्भोजनम् । सायं चारायणस्य ॥ ७ ॥

पूर्वाह्ण और अपराह्णमें भोजन होना चाहिये, किन्तु चारायण आचार्य्य कहते हैं, कि रातको भी भोजन करना चाहिये ॥ ७ ॥

पूर्वाह्णापराह्णयोरिति—दिनं रात्रिमष्टधा विभज्य पूर्वाह्णे त्रिभिर्भागैः कार्याण्यनुतिष्ठेत्, चतुर्थे स्नानादिकं कृत्वा भुञ्जीत । अपराह्णे च पश्चिमे भागे बलाधानार्थं पुनर्भुञ्जीतेत्याचार्याणां मतमनुक्तमपि ज्ञेयम्, मतान्तरोपन्यासात् । सायमिति—पूर्वाह्णे प्रदोषे च चारायणस्य मतम् । न तथापराह्णे द्वितीयभोजनं बलमाधत्ते यथा रात्रिरिति (रात्राविति) । तथा चोक्तम्—' अजीर्णे भोजनं यच्च यच्च जीर्णे न भुज्यते । रात्रौ न भुज्यते यच्च तेन जीर्यन्ति मानवाः' ॥ ७ ॥

दिन और रातके आठ भाग करके दिनके पहिले चार भागोंमेंसे तीन भागोंमें तो काम करता रहे एवम् चौथे भागमें स्नानादिक करके भोजन करें एवम् उत्तरके चार भागोंमेंसे पीछेके भागमें बलाधानके लिये फिर भोजन करे, यह कामशास्त्रके आचार्य्योंका मत है, यद्यपि यहां कहा नहीं है तो भी समझ लेना चाहिये क्योंकि, दूसरे भिन्नमती आचार्य्योंके यहांकी भोजनविधिका भी यहीं नाम निर्देशसे उल्लेख है । पूर्वाह्णमें और प्रदोषमें भोजन करनेका चारायण आचार्य्यका मत है । उनका कथन है कि अपराह्णमें किया हुआ भोजन

---

१ ' याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लङ्घयेत् ' पहिले पहरमें भोजन कभी न करना चाहिये तो दूसरे पहरको बीतने भी न देना चाहिये, यानी द्वितीय पहरके अन्ततक भोजन कर लेना चाहिये ।

२ इस समय कुछ जलपान किया जाता है । वैद्यकशास्त्रके ग्रन्थोंमें भोजनके विचारपर अध्यायके अध्यायें हैं ॥

उतना बल नहीं देता जितना कि रातिका भोजन देता है। कहा भी है कि-
"जो विना भोजनके हजम हुए भोजन किया जाता है एवं जो भोजनके
हजम होनेपर भोजन नहीं किया जाता, जोकि रातको भोजन नहीं होता,
इसीसे मनुष्य बुड्ढे होते हैं ॥ ७ ॥

दोपहरके भोजनके बादके मनोरंजन।

भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनव्यापाराः। लावककुक्कुटमेषयुद्धानि तास्ताश्च कलाक्रीडाः। पीठमर्दविटविदूषकायत्ता व्यापाराः। दिवाशय्या च ॥ ८ ॥

भोजन कर चुकनेके बाद मनोविनोदके लिये तोतामेंना आदिको बुलाना
चाहिये। लवा, मुरगा और मेंढा आदिकी लड़ाई देखनी चाहिये। चौंसठ
कलाओंमें गिनाई हुई समयोचित जो कलाएँ हों, उनसे भी मनोविनोद करना
चाहिये। विट, विदूषक और पीठमर्द आदिसे होनेवाले जो नायिकाओंके
साथ मेल आदि प्राप्त करने हैं, उनमें उनकी सलाह करे एवम् कमजोर हो तो
भोजनके बाद दिनमें नींद ले ॥ ८ ॥

भोजनानन्तरमिति। पूर्वाह्णे भोजनानन्तरं शुकसारिकाप्रलापनादयो दिवाशयनान्ता व्यापाराः स्युः, तेषामयमेव कालः। तास्ताश्चेति—या याः प्रहेलिकाप्रतिमालादिभिः क्रीडा उक्ताः। पीठमर्दादीन्वक्ष्यति, तेष्वायत्ता व्यापाराः संधिविग्रहादयः। दिवाशय्येति—दिवाशयनमधर्मोऽपि ग्रीष्म एव क्षयकाले शरीरपुष्ट्यर्थमनुज्ञातम्, शरीरस्य धर्मधारणत्वात् ॥ ८ ॥

दुपहरके भोजनके पीछे तोता, मेंना आदिको बुलाना तथा लेटने आदि
है, क्योंकि इनका यही समय है। जो जो प्रहेलिका, प्रतिमाला आदिक खेल
बताये हैं ये जो हो सकें सो होने चाहियें। पीठमर्दादिकोंको इसी अध्यायमें
कहेंगे। सन्धि, विग्रह आदि व्यापार उनहीसे होते हैं। इनमेंसे जिससे
जो कार्य्य लेना हो उसका इसी समय प्रबन्ध कर दे। यद्यपि दिनका सोना धर्म
नहीं है किन्तु गरमीके दिनोंमें एवम् शरीरकी कम जोरीकी हालतमें शरीरकी
पुष्टिके लिये सोनेका विधान है, क्योंकि सब धर्मोंका करनेवाला तो
शरीर ही है; शरीरके विना क्या है ॥ ८ ॥

दुपहरीके ढलजानेके बादके कार्य्य।

गृहीतप्रसाधनस्यापराह्णे गोष्ठीविहाराः ॥ ९ ॥

सब कामकाजको छोड़ शैरदारीका भेष बनाकर गोष्ठी-विहार करना चाहिये। यह दिनचर्य्या है ॥ ९ ॥

गृहीतप्रसाधनस्येति-प्रस्तुतव्यापारमुपसंहृत्य गृहीतवैहारिकवेषस्यापराह्णेऽह्नश्चतुर्थभागे गोष्ठीविहारा गोष्ठयां क्रीडा इति । एतद्दैवसिकं वृत्तम् ॥ ९ ॥

जिन कामोंमें लगा था उन कामोंको छोड़, विहारका भेष बना, उसके साथी जनोंको साथ लेकर बाग आदिमें शैर करनी चाहिये । ये पांचमें सूत्रसे लेकर यहाँतक दिनकी चर्य्या बताई गई है ॥ ९ ॥

रातिका चरित्र ।

प्रदोषे च संगीतकानि । तदन्ते च प्रसाधिते वासगृहे संचारितसुरभिधूपे ससहायस्य शय्यायामभिसारिकाणां प्रतीक्षणम् ॥ १० ॥

रातिमें सबसे पहिले सायंकालके समय सूर्य्यके छिप जानेपर संगीत होना चाहिये । संगीतके समाप्त होते ही अपनी निजी बैठकमें पीठमर्द, विट और विदूषकादिकके साथ कमरेमें जाय। वह सजा हुआ एवं धूप आदिसे पूर्ण सुगन्धित होना चाहिये, वहां शय्याके पास उचितस्थलपर बैठकर आनेवाली अभिसारिकाओंकी प्रतीक्षा करनी चाहिये ॥ १० ॥

रात्रिभवमाह—प्रदोषे चेति-प्रतिष्ठितायां संध्यायां रजनीमुखे संगीतकानि नृत्यगीतवादित्रकाणि प्रकाराणि स्युः । तदन्ते च संगीतकान्ते । प्रसाधिते संमार्जनपुष्पोपकारशयनरचनादिभिः, वासगृहे बाह्ये, संचारितो विस्तारितः सुरभिधूपो यत्रेति, वासगृहं व्याप्य बहिरुपक्रान्त इत्यर्थः । ससहायस्येति-सहायान् वक्ष्यति, तेषामप्यत्र व्यापारात् । शय्यायामिति-शय्यासमीपे स्थितस्य, गौरवानुरागख्यापनार्थं न तावदध्यासीत शय्याम्, स्वयं वा गमनं कदाचित्स्यादिति। आभिमुख्येन कान्तं सरन्तीत्यभिसारिकाः । तासां कृतसंकेतानां प्रतीक्षणम्॥ १०

दिनोंके छिपनेके बाद नाचना, गाना और बजाना आदि होना चाहिये । संगीतके समाप्त होते ही अपनी उस बैठकमें पहुँचजाय जो कि अन्तःपुरसे लगी हुई होते हुए भी उससे अलग हो (क्योंकि अपनीके सामने दूसरी स्त्रियां आ नहीं सकतीं) शृंगारके सहायक विट, चेट, पीठमर्द, विदूषक,

कुट्टिनी, दूत और दूतियां हैं, इन्हें अगाडी बतायेंगे । जो खासकर यारके स्थानपर पहुँचें वे अभिसारिका कहाती हैं एवम् स्वपतिके स्थानपर भी अभिसरण होता है । शय्याके पास बैठनेके लिये इस कारण कहा गया है कि आनेवालोको यह प्रतीत हो कि यह मेरी ही प्रतीक्षामें बैठा हुआ है । अथवा कहीं प्यारीके पास इसे ही जाना पड़ जाय तो फिर कपड़े पहिनने पड़ें । प्रतीक्षा भी उसी समय करनी चाहिये जब कि उनके आनेका समय हो ले । एवं जिसके आनेका संकेत हो ॥ १० ॥

अभिसारिकाके लिये दूती या आप ।

दूतीनां प्रेषणम्, स्वयं वा गमनम् ॥ ११ ॥

यदि आनेवाली ठीक समयपर न पहुँचे तो दूती भेजे, यदि उसके जानेपर भी न आये तो स्वयं आप जाय ॥ ११ ॥

दूतीनां संप्रेषणम्, संकेतितकालातिक्रमे तत्संप्रेषणेऽपि मानादनागमे स्वयं वा गमनं गौरवानुरागख्यापनार्थम् ॥ ११ ॥

जो उसने समय दे दिया हो यदि उस समय वह न आये तो उसके पास दूती भेजनी चाहिये, यदि दूतीके भेजनेपर भी मानसे वह न आये तो अपने अनुरागके गौरवको दिखानेके लिये आप जाय ॥ ११ ॥

अभिसारिकाओंका स्वागत ।

आगतानां च मनोहरैरालापैरुपचारैश्च ससहायस्योपक्रमाः ॥ १२ ॥

आई हुई अभिसारिकाओंका मनोहर आलाप और उपाचारोंसे मित्रमण्डली सहित स्वागत करना चाहिये ॥ १२ ॥

मनोहैररिति—स्वागतम्, इदमासनमास्यताम्, साधु कृतं दयिते यदागतासि, त्वत्प्रतिबद्धजीवित एवास्मि, तत्किमिति कालोऽतिक्रामितः, इत्यादिभिरालापैः । उपक्रमाः प्रत्युद्गमादयः । ससहायस्येति—सहाया अपि तद्वचनमनुकुर्वन्तः स्वव्यापारेणोपक्रमेरन् ॥ १२ ॥

---

१ रँगबाजोंकी लीलामात्र दिखायी है, परस्त्रीरमणको वात्स्यायन क्या कोई भी सत्पुरुष अच्छा नहीं समझता । ऋषिके खुलासा अक्षर हैं कि मैंने तो अपने घरकी रक्षा करनेके लिये इसे कहा है दुनियाँको भ्रष्ट करनेके लिये नहीं ।

जब वे आयें तो उनसे कहना चाहिये कि आइये! आइये ! बडी कृपा की, विराज जाइये। ऐ प्यारी! अच्छा किया जो चली आई क्योंकि मेरी जिन्दगी तो तुझसे ही है, इस बातको क्या आप जानती नहीं । फिर क्यों इतना समय लगाया ? इस तरह शुरूआत करनी व उसके तरफ झुकना चाहिये । उसके साथियोंको भी उससे उसी जैसी बातें करनी चाहियें कि वास्तवमें आंपके विना इनकी जिन्दगी कठिन है। ऐसी ऐसी बातें करके उसे पानवालेको पान और इलाइची सुपारीवालोंको इलायची सुपारीआदि देने चाहियें ॥१२॥

बुरेदिनमें भी न टलनेवालीका विशेष ।

वर्षप्रमृष्टनेपथ्यानां दुर्दिनाभिसारिकाणां स्वयमेव पुनर्मण्डनम्, मित्रजनेन वा परिचरणमित्याहोरात्रिकम्॥१३॥

बुरेदिनमें भी न चूकनेवाली जिन अभिसारिकाओंका पानीकी बूंदोंसे शृंगार विगड़ गया हो तो स्वयं ही उनका शृंगार करे । अपने मित्रोंसे अपनेको भी सजवाये यदि गोधी गिधाई हों तो मित्रोंसे उनकी पूरी टहल करा देनी चाहिये । यह नागरकोंका नित्यकृत्य पूरा हुआ ॥ १३ ॥

प्रमृष्टं विलुप्तम् । दुर्दिनाभिसारिका—दुर्दिनकालेऽभिसरन्ति याः स्वयमेव नान्येन । लक्ष्यभूतानां गौरवानुरागख्यापनार्थम्, पुनर्मण्डनं वर्षेणोत्पादितवैक्लृतत्वात्, आसन्नोपभोगकालत्वाच्च । मित्रजनेनात्मनि विशेषेण पुनर्मण्डनम् । नव्यवृत्तीनां परिचरणं चेति संवाहनवीजनादिकं सर्वासामेव परिचारकैः कारयितव्यम् । एतद्बाह्यस्त्रीषु नान्तदारेषु । आहोरात्रिकमहोरात्रभवम् । सांप्रयोगिकं च रात्रिभवं सांप्रयोगिके वक्ष्यति ॥ १३ ॥

जो घनघोर घटाओंके कालेकाले अँधियारेमें भी आये विना नहीं टलतीं, यदि उनका मेघकी बूदोंके मुखमण्डलपर पड़नेके कारण तिलकवेंदा बिगड़ गया हो या शृंगारमें कुछ वैरस्य आगया हो तो उनपर अनुराग प्रकट करनेके लिये उन्हें अपने हाथसे सजा देना चाहिये, क्योंकि ये तो वापिस जानेवाली हैं, इनका उपभोग तो जलदी ही होनेवाला है। अपने शृंगारके मित्रोंसे अपना शृंगार कराये । यदि नई २ हों तो अपने हाथसे ही करे यदि

---

१ इन लोगोंकी ऐसी बातोंमें तथ्य नहीं होता, पर बेसमझ ओरतें इन्हीं गप्पोंमें लट्टू वन जाती हैं। पतिके पास सच्चा प्रेम होता है बातोंका नहीं, इसी कारण वह बातें नहीं बनाता पर विना इस कृत्रिमताके व्यसनियाँ वहवह कर अपना सर्वस्व खो देती हैं।

गीधी हुई हों तो परिचारकोंसे ही उनकी हवा संवाहन आदि सभी टहलें करा देनी चाहियें । ये बातें बाहिरकी स्त्रियोंके विषयमें होती हैं, अन्तःपुरकी स्त्रियोंमें नहीं होतीं । पांचवें सूत्रसे लेकर यहां तक छैलाओंके दिनरातके सदाके व्यवहार कह दिये हैं । रातके संयोगकी बातें तो सांप्रयौगिक अधिकरणमें कहेंगे ॥ १३ ॥

नैमित्तिक कृत्य ।

नैमित्तकमाह—

छैलाओंके नित्यके काम बताकर अब कारण-वश होनेवाले कामोंको कहते हैं कि-

घटानिबन्धनम्, गोष्ठीसमवायः, समापानकम्, उद्यानगमनम्, समस्याः क्रीडाश्च प्रवर्तयेत ॥ १४ ॥

विदग्ध पुरुषोंको चाहिये कि, घटा निबन्धन, गोष्ठी समवाय, समापानक, उद्यानगमन और समस्याक्रीडा इन पांच कर्मोंको प्रवृत्त करें ॥ १४ ॥

घटानिबन्धनमिति-देवानामुद्दिश्य यात्रा घटा, नागरकाणां तत्र संहत्यमानत्वात् । तस्या निबन्धनं गणधर्मेण व्यवस्थापनम् । गोष्ठीसमवायो गोष्ठ्यां नागरकाणां काव्यकलाविषयं समवायनं संप्रधारणं प्रवर्धयेत् । यदपराह्णे गोष्ठीविहार इति नित्यकर्मोक्तं तस्य क्रीडामात्रफलत्वादिदं विशिष्यते । समापानकमिति-—संभूय समन्तात्पानमापानकमित्यर्थः । यन्नायिकया सहैकस्य मात्रया पानं तत्सरकाख्यं नित्यमेव स्यात् । उद्यानगमनमिति-बहिः स्वकारितेऽन्यकारिते वोद्याने गमनं च विहार इत्यर्थः । गृहवाटिकागमनं तु नित्यमेव स्यात् । समस्याः क्रीडाश्चेति-समस्यन्ते समग्रीभवन्ति नागरका यासु ताः समस्याः । अधिकरणे यप्रत्ययः । पूर्ववत्संभूय क्रीडा इत्यर्थः । ता द्विविधाः—माहिमान्यो देश्याश्च । एतत्पञ्चविधं कर्म नायकः प्रवर्तयेत् ॥ १४ ॥

घटानिबन्धन—देवताओंके उद्देशसे जो यात्रा हो उसे 'घटा' कहते हैं, क्योंकि इसमें नागरकजन इकट्ठे हो जाया करते हैं । समुदायरूपसे मिलकर इसकी व्यवस्था करना ही घटाका निबन्धन यानी देवयात्राके मेलेका इन्तजाम करना हैं । **गोष्ठीसमवाय**—नागरकोंकी गोष्ठी (विद्याकलाविषयक बातचीत) में उनकी काव्यकलाको बढ़ाये । पहिले जो अपराह्णमें गोष्ठीविहार कहा

वह नित्यकर्ममें कहा है, उसका तो खेलमात्र फल है एवम् यहां धारणा बढ़ानारूप विशेषफल है। इस कारण यह उससे भिन्न है। समापानक-सब मिलकर सब ओरसे पियें वह 'आपानक' एवं नायिकाके साथ जो उचित मात्रासे पीना है इसे 'सरक' कहते हैं। यह तो रोज ही होता है पर 'आपानक' कभी २ होता है। उद्यानगमन-बाहिरके अपने बनाये या दूसरेके बनाये बागमें खेलके लिये जाना ही बनविहार है। वृक्षवाटिकामें तो रोज ही जाना होता है। समस्याक्रीडा-जिन खेलोंमें सब नागरक इकट्ठे हो जायँ, उसे समस्या[1] कहते हैं। इस खेलको सब इकट्ठे होकर खेलते हैं। यह दो प्रकारकी है, माहिमानी और दूसरी देश्य। इन पांचों कामोंको विदग्धजन अवश्य करें ॥ १४ ॥

घटा निबन्धन।

तत्र घटानिबन्धनमाह—

इन पांचोंमें सबसे पाहिले घटानिबन्धन कहते हैं कि—

पक्षस्य मासस्य वा प्रज्ञातेऽहनि सरस्वत्या भवने नियुक्तानां नित्यं समाजः ॥ १६ ॥

बीतते हुए पक्ष वा महीनाके अन्तके दिन अथवा प्रज्ञात दिनसें सरस्वतीके मन्दिरमें नियुक्तोंका नित्य समाज हो ॥ १५ ॥

पक्षस्य मासस्य वातिक्रान्तस्यावसानिकेऽहनि। प्रज्ञात इति-यद्दिनं यस्या देवताया लोकप्रसिद्धं तत्प्रज्ञातम्, यथा गणपतेश्चतुर्थी, सरस्वत्याः पञ्चमी, शिवस्याष्टमीत्यादि, तत्र देवतायाः संनिधानात्। सरस्वती च नागरकाणां विद्याकलास्वपि देवता। तस्या आयतने पञ्चम्याम्। नियुक्तानामिति-नायकेन पूजाचारिकत्वे प्रतिपक्षं प्रतिमासं च ये नियुक्ता नागरकनटादयो नर्तितुं तेषां समाजः सव्यापारानुष्ठानेन मिलनम्। यस्मिन्प्रवृत्ते नागरकाः सामाजिकीभवन्ति। नित्यमिति तत्र तत्राहनि ॥ १९ ॥

बीतनेवाले पक्ष वा मासके अन्तके दिनमें मेला हो या जो दिन जिस देवताका लोकमें प्रसिद्ध है, उसे प्रज्ञातादिन कहते हैं। जैसे कि गणेशकी चौथ, सरस्वतीकी पंचमी, शिवकी अष्टमी, विष्णुकी द्वादशी एवम् और २ तिथियाँ

---

१ सम् पूर्वक अस् से अधिकरणमें य प्रत्यय होकर समस्याशब्द बनता है।

उनके अधीश देवताओंकी प्रसिद्ध हैं । क्योंकि इन २ तिथियोंमें इन २ देवताओंका सामीप्य रहता है । और बातोंमें है सो है ही किन्तु सरस्वती विद्या कलाओंमें भी छैलाओंकी देवता है, इस कारण सरस्वतीके मंदिरमें पंचमीके दिन मेला लगना चाहिये । हर एक पक्षकी या महीनाकी पंचमीके मेलेमें सरस्वतीका दर्शन आदि करनेको जो नागर नियुक्त किये हैं एवम् खेलतमासे दिखानेके लिये नट नियुक्त किये हैं, उनका मेलोंमें नाच होना चाहिये एवम् नागरोंको भी अपने २ ढंगसे आपसमें मिलकर उन खेलतमासोंमें सामिल होना चाहिये । इस प्रकार करनेसे नागरक सामाजिक यानी नाट्यकलाके रसिक बन जाते हैं ॥ १५ ॥

धूप विलेपन घटा ।

अन्येष्वहः सु धूपविलेपनघटा, तस्या निबन्धनमाह—

दूसरे दिनोंमें धूप विलेपन घटा होती है । उसके प्रबन्धको बताते हैं—

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः । द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजा नियतं लभेरन् । ततो यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा । व्यसनोत्सवेषु चैषां परस्परस्यैककार्यता ॥ १६ ॥

बाहिरके आये हुए नटोंके लिये चाहिये कि पाहिले दिन नागरोंको अपना तमासा दिखायें एवम् जो कुछ ठहरा हो उसे दूसरें दिन ले लें, यदि फिर भी देखनेकी श्रद्धा हो तो व्यवस्थाके साथ इनका खेल देखें, नहीं तो उन्हें विदा कर दें । वहांके नियुक्तोंको चाहिये कि आगन्तुकोंके कष्टके और आनन्दके समय मदद दें एवम् आगन्तुकोंको भी नियुक्तोंके साथ यही व्यवहार करना चाहिये ॥

कुशीलवाश्चेति—आगन्तवोऽन्यस्मादागता नटनर्तकाः प्रेक्षणकमेषां प्रज्ञातेऽहन्यन्यत्र वाहनि दद्युर्दर्शयेयुः, नियुक्तास्तु भृतिप्रतिबद्धाः यात्राकुशीलवत्वात्प्रज्ञात एव दर्शयन्ति । इदमुक्तं भवति—पूजाचारिकैः पात्रापात्रमनपेक्ष्यैव प्रेक्षणमवश्यं ते दर्शयितव्या इति । द्वितीय इति—प्रथमेऽहनि प्रेक्षणकव्यग्रत्वात् तृतीयादिष्वपि क्लिष्टदानं स्यात् । तेभ्य इति नियुक्तेभ्यः पूजाचारिकेभ्यः । पूजा प्रेक्षणकफलम् । नियतमिति । एतावत्प्रेक्षणकमूल्यमागन्तूनामिति पूर्व-

कल्पितं प्राप्नुयुः । अनियतान्प्रेक्षणकान् रागाद्दत्तादिदानलक्षणं प्रथमे वाहि रङ्गमध्ये नागरकेभ्यो लभेरन् ।

बाहिरके नट मेलेके दिन अथवा और किसी भी दिन अपना खेल दिखला सकते हैं, किन्तु जो मेलेके दिनके लिये अपने खेल तमासे दिखानेके लिये वेतनसे नियुक्त हैं वे तो मेलेके दिन ही अपने तमासे दिखायँगे, क्योंकि वे तो उसी दिनके वासते कुकर्रिर हैं । इससे यह बात सिद्ध हुई, कि पूजाचारको नियुक्त हुए नटोंको तो विना पात्र अपात्रका विचार किये सभीको खेल तमासे दिखाने चाहिये । दूसरा यह भी अर्थ होता है कि देवदर्शनको आये हुए नट और छैला व्यक्तियोंको आगन्तुकोंका खेल अवश्य दिखवाना चाहिये । जो कुछ तमासा दिखानेका ठहरा हो उसे दूसरे दिन ही लें, क्योंकि पहिले दिन तो तमासा देखनेमें व्यग्र रहते हैं, तीसरे चौथे दिन आदिमें फिर हाथसे पैसा निकलनेमें दर्द होता है । आगन्तुक नटोंकी यह व्यवस्था स्थायी नटोंको करनी चाहिये । जिनके तमासेका कुछ मूल्य न ठहरा हो उन्हें जिस समय तमासा रंगपर आये उस समय अन्न वस्त्राभूषण आदि मांग लेने चाहियें ॥

तत उत्तरकालम् । यथाश्रद्धमिति-पुनर्द्रष्टुं यदि श्रद्धास्ति पुनरागन्तूनां नृत्यतां दर्शनम् नो चेदुत्सर्गः प्रियालापैः संप्रेषणम् । यदा पुनःपुनर्दर्शनकौतुकं तदा दर्शनविशेषमाह—व्यसनोत्सवेषु चैषामिति—आगन्तूनां कस्यचिद्व्याधौ शोके वा व्यसने तथा विवाहादावुत्सवे व्यग्रस्य तत्कर्म तन्नियुक्तेन कुशीलवेन प्रेक्षणकाविघातार्थं संवाह्यम्, नियुक्तानां वा कस्यचिद्व्यसनोत्सवे तदागन्तुनेति परस्परैककार्यता स्यात् ॥ १६ ॥

इसके बाद यदि लोगोंकी देखनेकी रुचि हो तो फिर आये हुए नटोंका तमासा दिखा देना चाहिये, नहीं तो उन्हें अत्यन्त मीठी २ बातोंके साथ बिंदा कर देना चाहिये । यदि आये हुए नटोंके खेलोंको लोग वारंवार देखना चाहते हों तो नियुक्त नटोंको चाहिये कि—किसीको कोई ऐसी तकलीफ हो गई हो कि वह रंगमंचपर अपना पार्ट अदा नहीं कर सकता या शोकसे अभिभूत है या किसी बलासे व्याकुल है अथवा विवाहादि उत्सवमें लगा हुआ है तो खेल

---

१ यद्यपि आज नटशब्दका लोकमें व्यवहार रस्सीपर चढ़कर, ढोलक बजाकर तमासा करनेवालोंमें होता है । पर वास्तवमें इसका अर्थ बहुत बड़ा है । सिनेमामें चित्र देनेवाले, नाटकोंमें नाचनेवाले, मेंफिलोंमें स्वांग भरनेवाले, रामलीला या रासलीलाके अयोग्य सज्जिगारी स्त्रागिया व गानेबजानेका पेशा करनेवाले आदि सब इसके अर्थके भीतर आ जाते हैं ।

न रुके, इस कारण उसके पार्टको आप ही अदा कर देना चाहिये। नियुक्त नटोंके ऐसे समयमें आगन्तुकोंको भी यही व्यवहार कर देना चाहिये। इस प्रकार नियुक्त और आगन्तुक नटोंको मिलकर काम करना चाहिये ॥ १६ ॥

आगन्तुकोंका स्वागत।

आगन्तूनां च कृतसमवायानां पूजनमभ्युपपत्तिश्च । इति गणधर्मः ॥ १७ ॥

बाहिरके आये हुए नागरोंका स्थानीय नागर और उसकी ओरसे सत्कारको नियुक्त हुए पुरुषोंको सत्कार करना चाहिये एवम् स्थानीयोंको आपसमें एक दूसरेका मांगलिक सत्कार करना चाहिये ॥ १७ ॥

कृतसमवायानामिति—ये नागरकपदेऽभिषिक्ता घटां द्रष्टुमन्यस्मादागतास्तेषां पूजाचारिकैर्माल्यानुलेपनादिभिः पूजनम् । पारिषदनागरकैश्च यथापरिचयं माङ्गलिकम् । अभ्युपपत्तिश्चेति—व्यसने साहाय्यं तत्प्रतीकारेण । गणधर्म इति—तत्रत्यानामागन्तूनां कुशीलवनागरकाणां यथास्वपरधर्म उक्तः ॥ १७ ॥

जो छैलपनेके पद (सिंहासन) पर विराजे हुए बाहिरके पुरुष मेला या नृत्य आदि देखने आये हों, देवपूजन करनेवालोंको उनका माला, चन्दन आदिसे सत्कार करना चाहिये। जो समाजके नागर हों, उनमेंसे जिसके साथ जैसा परिचय हो उसके साथ उसी तरह जयरामजी आदिकी रीति होनी चाहिये। यदि किसीको कोई कष्ट हो तो उस समय दूसरोंको उसे निवारण करनेमें पूरा सहयोग देना चाहिये । इस तरह एक दूसरेको सहयोगी बना लेना चाहिये। यह स्थानीय तथा आये हुए नागर और नटोंको परस्पर मिलकर करना चाहिये, क्योंकि यह सबका धर्म या कर्तव्य है ॥१७॥

दूसरे देवदर्शनके मेलोंकी व्यवस्था।

एतेन तं तं देवताविशेषमुद्दिश्य संभावितस्थितयो घटा व्याख्याताः ॥ १८ ॥

इस सरस्वतीके मेलेकी व्यवस्थासे ही देश, कालके अनुसार होनेवाले और और देवताओंक मेलोंकी व्यवस्था भी कह दी गई ॥ १८ ॥

एतेनेति—सरस्वतीघटादिनिबन्धनेन । तं तमिति यो यः सांनिध्याल्लोके दृष्टातिशयः । संभावितस्थितय इति देशकालापेक्षया कृतव्यवस्थाः ॥ १८ ॥

जो यह सरस्वतीके मेलेकी व्यवस्था बताई है, यही व्यवस्था दूसरे देवताओंके मेलोंकी है। जिस देवताकी कि मानतासे लोग समृद्धियुक्त देखे जाते हों। जिस देशमें जैसी रीति हो तथा जैसा समय हो उसीके अनुसार मेलेका प्रबन्ध कर लेना चाहिये॥ १८॥

गोष्ठीसमवाय।

गोष्ठीसमवायमाह—

देवयात्राके मेलेठेले आदिकी व्यवस्था बता चुकनेपर क्रम प्राप्त नागरोंकी निज जनमण्डलीकी कलाचर्चा आदि बताते हैं कि–

वेश्याभवने सभायामन्यतमस्योदवसिते वा समानविद्याबुद्धिशीलवित्तवयसां सह वेश्याभिरनुरूपैरालापैरासनबन्धो गोष्ठी॥ १९॥

वेश्याओंके घर, सभामें, अथवा आपसमें एक दूसरेकी बैठकमें, विद्या, बुद्धि, शील, धन और अवस्थामें बराबरवालोंके और वेश्याओंके साथ उचित बातें करते हुए इकट्ठे होकर बैठनेका नाम गोष्ठी है॥ १९॥

वेश्याभवन इति। सभायां मण्डपे। अन्यतमस्य वा नागरकस्योदवसिते गृहे। एषु नागरकाणामविरुद्धं मेलनं समानविद्यादीनाम्, सुखातिशयानामसमानविद्यादीनाम्। बुद्धिः प्रज्ञा, अभिप्रायो वा। सह वेश्याभिरिति—स्त्रीप्रतिबद्धकलाप्रतिपत्त्यर्थमासां गोष्ठयामन्तर्भावः। अनुरूपैः परस्परस्तुत्यनुरागपरिहासानुविद्धैः। आसनबन्धो यथायथमासनेऽवस्थानम्। पक्षस्य मासस्य वा तद्योग्यतया प्रज्ञातेऽहनि स्यात्॥ १९॥

सभाका मतलब मंडपसे है। विद्यावयसे समानोंमें मिलना विरुद्ध नहीं है अथवा जिनके साथ बैठनेमें अधिक आनन्द आता हो तो उनके साथ असमान विद्यादिवालोंके साथ भी गोष्ठी हो सकती है। बुद्धिका तात्पर्य्य प्रज्ञा या अभिप्रायसे है, क्योंकि एकअभिप्रायवालोंका इकट्ठा होना भी विरुद्ध नहीं है। स्त्रियोंमें रहनेवाली कलाको वेश्याओंसे जाना जाता है, इस कारण गोष्ठीमें वेश्याओंको रखा है कि–गोष्ठीमें वेश्याएं भी रहें। आपसकी स्तुति, प्रेम और मधुर हँसी युक्त उचित बातें होनी चाहियें। आप ही अपनी २ योग्य जगहपर बैठ जाना 'आसनबन्ध' कहाता है। यह गोष्ठी पक्षमें, महीनामें अथवा मेलेठेलेके उचित दिन होनी चाहिये॥ १९॥

गोष्ठीका कार्य्य ।

तत्र चैषां काव्यसमस्या कलासमस्या वा ॥ २० ॥

गोष्ठीमें काव्यकी किसी गहरी या कलाकी किसी गहरी समस्यापर सबको मिलकर विचार करना चाहिये ॥ २० ॥

तत्रैषां समवायमाह—काव्यसमस्या कलासमस्या वेति । संभूयदर्शनं निरूपणं तत्समस्या चर्चेत्यर्थः । पूर्ववद्भावे प्रत्ययः । 'अस गतिदीप्त्यादानेषु' इति गत्यर्थस्य ज्ञानार्थत्वात् । भारतादिकाव्यस्य नृत्यादिकलाया वा चर्चा स्यात् । यत्तु काव्यसमस्यापूरणमित्युक्तं तस्य भिन्नार्थत्वात्कलासमस्या चेत्यत्रान्तर्भावः ॥२०॥

सबको मिलकर प्रेमपूर्वक भारतादि काव्य तथा नृत्य आदिकी समस्या (चर्चा) करनी चाहिये । जो तो औपायिकी चौंसठ कलाओंमें काव्योंकी समस्याकी पूर्ति कही है उसका विषय इससे भिन्न है, इस कारण उसका कलासमस्यामें अन्तर्भाव हो जाता ह ॥ २० ॥

गोष्ठीसम्मान ।

तस्यामुज्ज्वला लोककान्ताः पूज्याः । प्रीतिसमानाश्चाहारिताः ॥ २१ ॥

इस गोष्ठीमें परमसुन्दरी, जहां कि सहसा पहुँच नहीं हो सकती ऐसी वेश्याका सम्मान होना चाहिये एवम् बुलाये हुए पुरुषोंसे जिससे जैसा प्रेम हो, उसका वैसा ही सम्मान करना चाहिये ॥ २१ ॥

तस्यामिति—गोष्ठ्याम् । चर्चावसाने प्रीतिनिबन्धनार्थं वस्त्रादिदानेन परस्परस्य कलापूजाः स्युः । उज्ज्वला अग्राम्याः । लोककान्ता लोकमनोहराः । प्रीतिसमानाः प्रीत्यनुरूपाः । आहारिताः परिचारिकैरानायिताः ॥ २१ ॥

---

१ गोष्ठी सभाका नाम है, क्योंकि 'समज्या परिषद् गोष्ठी' यह गोष्ठीशब्द सभाके पर्य्यायमें आया है । सभाको यह नामके देनेका कारण यह है कि इसमें अनेकों पुरुष आपसमें बोलते हैं । सम् अव उपसर्गपूर्वक 'अय् गतौ' धातुसे घञ् प्रत्यय होकर समवाय शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'अच्छी तरह ज्ञान प्राप्ति' होता है । यही कारण है कि टीकाकारने समवायसे काव्यसमस्या और कलासमस्याको गिनाया है । समस्याका अर्थ दिखातीबार टीकाकार इसकी व्युत्पत्ति दिखाते हैं कि—सम् उपसर्गपूर्वक गति, दीप्ति और आदान अर्थवाली 'अस' धातुके गति (ज्ञान) अर्थको लेकर उससे 'ण्यत्' प्रत्यय कर एवं संज्ञापूर्वक विधि अनित्य होनेसे वृद्धयभाव मान करके समस्या शब्द सिद्ध किया जाता है ।

उस गोष्ठीमें काव्यचर्चा और कलाचर्चाके बाद प्रेम बाँधनेके लिये वस्त्रादिसे आपसकी कलापूजा हो । जो इन कलाओंमें चतुर हों उनका दूसरे लोगोंको इनाम इकरामोंसे सम्मान करना चाहिये, जो कि इन्हें ले सकते हों । दुनियांकी एक अद्वितीय रूपलावण्यमयी कलाकोविदा नोकरोंसे बुलाई हुई उस वेश्याका सन्मान करना चाहिये; जिसके कि लिये बड़े २ तड़फते हों॥२१॥

समापानक ।

समापानकमाह—

गोष्ठीसमवाय कहकर क्रम प्राप्त मयकसीके जलसे बताते हैं कि—

परस्परभवनेषु चापानकानि ॥ २२ ॥

आपसमें एक दूसरेकी बैठकमें सुरा आदिके पीनेकी गोष्ठी होती है ॥२२॥

परस्परभवनेषु चेति—एकस्यैकदा भवनेऽन्यदान्यस्य वा । पक्षस्य मासस्य वा तद्योग्यतया प्रज्ञातेऽहनि । आपानकानि पानगोष्ठ्यः स्युः ॥ २२ ॥

एक मौकेपर एकके यहां हो गया तो दूसरे मौकेपर दूसरेके यहां होना चाहिये । ऐसा पक्ष या मासमें ही होना उचित है अथवा नियत दिनमें होना चाहिये । पीनेकी गोष्ठीको 'आपानक' कहते हैं ॥ २२ ॥

पीनेकी गोष्ठीकी विधि ।

आपानकेषु विधिमाह—

ऐसे समापानकोंमें किस प्रकारका खानपान एवम् किस रीतिसे होता है सो बताते हैं कि—

तत्र मधुमैरेयसुरासवान्विविधलवणफलहरितशाकतिक्तकटुकाम्लोपदंशान्वेश्याः पाययेयुरनुपिबेयुश्च ॥ २३ ॥

वहां वेश्याएँ पानमें रुचिको पैदा करनेवाले अनेक तरहके नमकीन, फल, हरे शाक, तिक्त और कडुए भक्षोंके साथ नागरक जनोंको मधु, मैरेय, सुरा और आसवोंको पिलावें तथा उनके साथ आप भी पीयें ॥ २३ ॥

तत्रेति । मधु माध्वीकम् । मैरेयासवौ मद्यविशेषौ । तथा चोक्तम्—'मेषशृङ्गीत्वक्काथाभियुतो गुडप्रतीवापः पिप्पलीमरिचसंभारस्त्रिफलायुक्तो मद्यो मैरेयः। कपित्थपत्रफाणितप्रस्थो मधुनश्चासवयोगः ।' इति । सुरा वल्कलतण्डुलाभ्यां

---

१ इससे यह बात सिद्ध हो गई कि गोष्ठीमें भी कलाकोविदा परमप्रसिद्धा कलाजीविनी वसन्तसेना जैसी गणिकाका ही सम्मान करना चाहिये, यह न होना चाहिये कि किसी भी बाजारू औरतको गोष्ठीमें बुलाकर सम्मान करने लग जाय ।

निष्पन्नो गुडस्तत्र निक्षिप्यते । मद्यमिति वक्तव्ये विशेषोपादानं त्रैविध्यख्यापनार्थम् । तथा चोक्तम्—'गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ।' अत्र सुराशब्दः सामान्यवाची द्रष्टव्यः । एवं च विविधपानादापानकं भवति ।

मधुका अर्थ माध्वीक है, यह महुएके फूलोंसे बनाई जाती है । मैरेय और आसव ये दोनों एक प्रकारके मद्य हैं । कहा भी है कि–"जिस मद्यमें मेढासींगीका काढा, गुडका ओटा रस, पीपल, मिरच और त्रिफला पड़ा हो उसे 'मैरेय' कहते हैं । कैथके पत्तोंके एकसेर फाणितमें उचित मात्रामें महुएके फूलोंके योगसे आसव तयार होता है । जो मद्य, वल्कल और चावलोंसे तयार हो, जिसमें कि गुड डाला जाय उसे 'सुरा' कहा करते हैं । मद्य इतना ही कहना चाहिये था, विशेषका ग्रहण तो तीन भेद बतानेके लिये

मद्य पीनेका विचार ।

१ इस शराव पीनेकी गोष्ठीको देखकर यह आशंका होना स्वाभाविक है कि, ऐसी मैफिलोंमें प्यालोंका चलना युक्तियुक्त है क्या ? यदि इस विषयके गहरे विचारपर पहुँचते हैं तो यही निश्चय होता है कि गोष्ठीमें मद्य वेही लोग पी सकेंगे जो उसे पीते हैं, जो जिस नशेको नहीं करता वह किसी भी जगह नहीं कर सकता, चाहे घर हो, चाहे गोष्ठी आदि हों । यह बात किसीसे छिपी नहीं कि हिन्दू धर्मशास्त्र एवम् भव्य पुरुषोंकी सभ्यता इन कामोंके एकदम विरुद्ध है । आचार्य्यने देशदेशके उपचारोंमें देश और प्रकृतिसात्म्य लिया है एवम् रतावसानके खानपानमें भी प्रकृतिसात्म्यको मुख्य रखा है, उसे ही आरंभके खानपर एवम् आपानक आदिके समयके प्यालोंमें भी समझना चाहिये, क्योंकि यह न्यायसिद्ध बात है, कि जो साधारणतः नहीं पीता वह उस गोष्ठीमें भी नहीं पी सकता जिसको कि पीनेवाले अपने सौभाग्यका दिन समझते हैं । छा० उ० प्र० ५० ख० १० श्रु० ९ में लिखा है । कि–

'स्तेनो हिरण्यस्य, सुरां पिबँश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते ।
पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरँस्तैरिति ॥'

सोनेका चोर, शरावका पीनेवाला, गुरुपत्नीके साथ समागम करनेवाला और ब्रह्महत्याका हत्यारा ये चार नरकमें पड़ते हैं, पांचवां वह नरकमें पड़ता है जो इनके साथ व्यवहार करता है।

याज्ञवल्क्य–"अज्ञानात्तु सुरां पीत्वा रेतोविण्मूत्रमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥"

जो व्यक्ति अज्ञानके वश होकर सुरा पी ले और वीर्य्य, विष्ठा और मूत्र उसके खानेके कार्य्यमें आजाय तो यदि वह द्विजाति हो तो उसे पुनः संस्कार कराना चाहिये ।

"पतिलोकं न सा याति ब्राह्मणी या सुरां पिबेत् ।
इहैव सा शुनी गृध्री सूकरी चोपजायते ॥"—

किया है। कहा भी है कि—'गौडी, पैष्टी और माध्वीके भेदसे तीन तरहकी सुराएँ हैं।' यहां सुराशब्द सामान्यका वाचक है, विशेषका नहीं है, इससे मद्यमात्रका बोध होता है। इस प्रकार इसमें अनेकों तरहके मद्योंका पीना होनेके कारण इसे 'आपानक' कहते हैं।

विविधानि लवणतिक्तरसभूयिष्ठानि हरितकटुकानि च शिग्रुपर्णादीन्यवदंशो येषामिति तान्वेश्याः पाययेयुः, अभ्यर्थनापुरःसरमनुपिवेयुश्च। आदौ पिबद्भिर्गौरवानुरागौ न प्रकाशितौ स्याताम्। अत्र सह पृथग्वेति देशप्रवृत्तिरपेक्षणीया २३

इस पानकमें अनेकों तरहके नमकीन पदार्थ, तिक्त पदार्थ हों एवम् हरे कडुए शाक तथा सहँजनेके पत्ते आदि चबानेके लिये हों, इनसे मद्य पीनेकी रुचि बढ़ती है। मद्य पिलानेवाली वेश्याओंको चाहिये कि, साथमें इन्हें भी

—जो ब्राह्मणी सुरा पी ले वह पतिके लोकको नहीं जाती; वह अपने अदृष्टके अनुसार यहीं सूकरिया, कूकरिया या गीधिनी बनकर जन्म लेती है।

"सुराम्बुघृतगोमूत्रपयसामग्निसन्निभम्।
सुरापाऽन्यतमं पीत्वा मरणाच्छुद्धिमृच्छति॥"

जो शराबके पीनेके पूरे दुर्गुण जानकर भी मद्यसेवी बना है वह सुरा, जल, घी, गोमूत्र और दूधमेंसे किसीको भी अग्निके समान तपाकर पी ले, क्योंकि सदाके लिये गहरी नींदमें सोकर ही शुद्धिको प्राप्त होता है। यद्यपि आज इस प्रायश्चित्तके उदाहरण देखनेमें आने कुछ कठिन हो गये हैं किन्तु भारतका प्रसिद्ध सीसोंदिया वंश इसी प्रायश्चित्त करनेके कारण कहलाया है, मैंने उदयपुरके इतिहासमें देखा है कि इस घरानेके अत्यन्त प्राचीन पूर्वपुरुषने भूलसे शराब पी ली थी पता चलनेपर सीसा पीकर मरणान्त प्रायश्चित्त किया था, इसी कारण उनका यशस्वी वंश सीसोंदिया कहलाया। महाराना प्रताप इसी वंशमें हुए थे। भारतके राजवंशोंमें इस घरानेको आजतक इतिहासवेत्ता सर्वोच्च दृष्टिसे देखते हैं। भागवतमें नारदजीने नलकूबरको लेकर मद्यपोंकी मदलीलाका उल्लेख किया है। उसे विनाशकी ओर जानेवाले ही पीते थे। प्राचीनभारतमें यह काम बहुत बुरा समझा जाता था, लोग कभी औषधमें भी लेते थे तो विना सन्धान किया ही लेते थे पर जबसे भारतमें यवनोंका राज्य आया कि ये लोग शराब, वेश्या और सुन्दर बदचलनोंकी ओर अधिक झुके। इनके साहित्यमें भी साकी, मयकसी और मयकसोंके गीत गाये जाने लगे, यहां तक कि इस्लामी साहित्यमें जो मद्यका निषेध है उसके लिये भी कहने लग गये कि—

"ज़ाहिद शराबपीनेसे काफ़िर बना मैं क्यों?
क्या डेढचुलू पानीमें ईमान बह गया॥"

पर हमने तो किसी भी मजहबमें शराबका पीना जाइज नहीं देखा॥

चटाती जायँ । उनके साथ पीनेवाली वेश्याएं भी सीधी न पी लें, नाजनखरेके साथ पियें, यादि विना ही मनामनेके पी लेंगी तो गौरव और अनुराग प्रकट न होगा । साथ या अलग तो देशाचारके अनुसार करना चाहिये ॥ २३ ॥

वनविहारमें पीनेकी गोष्ठी ।

एतेनोद्यानगमनं व्याख्यातम् ॥ २४ ॥

यह जो आपानक विधि बताई है, बागमें भी इसी प्रकार करनी चाहिये २४

एतेनेति । आपानकविधिना। उद्यानगतैरप्ययमेवापानकविधिः कार्य इत्यर्थः २४

यह बाईसवें सूत्रमें जो मयकसींके जलसेकी बात बताई है यदि वनविहार करतीं बार बागमें भी मयकसीका जलसा करना हो तो इसी तरह करना चाहिये । उसम भी ये ही शराबें इसी तरह पीनी चाहियें ॥ २४ ॥

वनविहार ।

तत्रोद्यानगमने विशेषमाह—

बागके जानेमें विशेष बात होती है उसे बताते हैं कि-

पूर्वाह्ण एव स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढा वेश्याभिः सह परिचारकानुगता गच्छेयुः । दैवसिकीं च यात्रां तत्रानुभूय कुक्कुटयुद्धद्यूतैः प्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैः कालं गमयित्वा अपराह्णे गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्ना-स्तथैव प्रत्याव्रजेयुः ॥ २५ ॥

पूर्वाह्णमें ही वनविहारके शृंगारसे सजकर सुन्दर घोड़ेपर सवार हो वेश्या-ओंको साथ ले एवं पीछे पीछे परिचारकोंको लेकर वनविहार करने चल दे । वहां दिनकी यात्राका अनुभव कर देखने योग्य दृश्य एवम् मुर्गे आदिकी लाड़ई और नाच, गान आदिमें दिन बिताकर अपराह्णके समय बागविहार करनेके चिह्नोंको लेकर, जिस तरह गये थे उसी तरह आ जायँ ॥ २५ ॥

तदा हि गतानां दैवसिकी यात्रा संपद्यते । स्वलंकृता-गृहीतवैहारिकवेषाः । तुरगाधिरूढाः-तुरगाणां ललितयानत्वात् । वेश्याभिः सहेति-ता अपि पश्चा-दग्रतो वा तुरगमारोहयितव्याः । परिचारका यथास्वं कर्मभिः परिचरन्ति ये । तैरनुगताः । पक्षस्य मासस्य वा गमनयोग्यतया प्रज्ञातेऽहनि गच्छेयुः । दैव-सिकीं यात्रां प्रत्यहं क्रियमाणां शरीरस्थितिम् । तत्रैवोद्यानेऽनुभूय कुक्कुटयुद्ध-

द्यूतैः सजीवनिर्जीवैर्नटादिप्रेक्षाभिरनुकूलैश्च चेष्टितैर्यथास्वं वेश्याप्रतिबद्धैः कालं गमयित्वा अपराह्णे प्रशान्तवेलायां तथैवेति स्वलंकृतास्तुरगाधिरूढाः सह वेश्याभिः परिचारकानुगता इति । विशेषोऽत्र गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्ना इति । तदुद्यान-मुपभुक्तमिति यानि सूचयन्ति कुसुमस्तबककिसलयादीनि तानि गृहीतानि शिरः-कर्णकण्ठेषु कृतानि [यैः] । प्रत्याव्रजेयुः प्रतीपमागच्छेयुः ॥ २९ ॥

उस समय ही बागमें जाकर दिनमें वापिस आ सकते हैं । वनविहारके भेषसे सजकर जाना चाहिये । घोड़ेकी सवारी अच्छी लगती है, इस कारण इसे बताया है । वेश्याओंको भी अगाड़ी या पिछाड़ी घोड़ेपर चढ़कर चलना चाहिये । जो अपने कामोंसे सेवाएँ करते रहते हैं वे परिचारक कहाते हैं । परिचारकोंको भी पीछे पीछे जाना चाहिये । पक्षमें या महीनामें या जिस दिन जानेका मौका हो उसी नियत दिनमें बाग जाना चाहिये । प्रतिदिन की हुई शरीरकी स्थितिको उसी उद्यानमें अनुभव करके, सजीव और निर्जीव द्यूतसे तथा नटादिकोंके देखने योग्य तमासोंसे तथा वेश्याओंके नाचगानमें दिनको पूरा करके सूर्य्यकी तपिसके शान्त हो जाने पर जिस तरह आये थे उसी तरह घोड़ेपर सवार होकर पीछे पीछे नोकरोंको लेकर घर चल दे । इसमें आगमनसे इतनी ही विशेषता है कि वनविहार कियेके चिह्न फूलोंके गुच्छे और कमल आदिक विधिके अनुसार शिर, कण्ठ, कर्ण आदिकोंपर रखकर वापिस आ जायँ ॥ २५ ॥

जलविहार ।

एतेन रचितोद्ग्राहोदकानां ग्रीष्मे जलक्रीडागमनं व्याख्यातम् ॥ २६ ॥

---

१ यह कोई खास बात नहीं है कि, वनविहार वेश्याओंके ही साथ हो, महलके रहनेवाली राजमहिषी या दूसरी स्त्रियाँ भी रह सकती हैं । भगवान्कृष्ण जब द्वारिकासे इन्द्रप्रस्थको पाण्डवोंकी यज्ञमें गये थे उस समय अपनी रानियोंको भी साथ लेकर गये थे । मार्गमें रेवत पर्वतपर रानियोंके साथ वनविहार, जलविहार तथा उनकी पानगोष्ठीका वर्णन माघने किया है, पर साहित्यकोंको हम कामशास्त्रका इतना अनुयायी देखते हैं कि चाहे किसीकी भी पानगोष्ठीका वर्णन करना हो विना शीधु, सुरा, मधु, आसव और वारुणीके नहीं चलते । इससे कामसूत्रकी सार्वभौमता पर तो हमें आनन्द तथा भव्यपुरुषोंके नामसे शराबलीला वर्णनमें कष्ट होता है । सच्चे प्रेम या रागका ही एक ऐसा प्रचण्ड नशा है जिसके सामने दूसरे नशेकी आवश्यकता ही नहीं है । किसी प्रेमीने कहा है कि–' मद्यमें वह मस्ती नहीं है जो तेरे मस्ताने प्रेमसें मस्ती है । '

इस वनविहारसे ही जलविहार भी कह दिया, किन्तु यह बनाई हुई उन जगहोंमें होना चाहिये जहां कि, मगरमच्छोंका डर न हो ॥ २६ ॥

एतेनेति उद्यानगमनविधिना । तत्रापि गमनं दैवसिकयात्रानुभवनमागमनं च तुल्यम् । किंतु गृहीततदुद्यानोपभोगचिह्ना इति तेन तत्रैव प्रायशोऽन्तर्भूतमिति नैमित्तिकवर्गे पृथङ्नोक्तम् । योऽत्र विशेषस्तमाह—रचितोद्ग्राहोदकानामिति । उद्ग्राहमविद्यमानकुम्भीराद्युदकं यस्य तोयस्थानस्य तदुद्ग्राहोदकं वापीदीर्घिकादि । रचितमिति स्वार्थिकरायन्ताद्धेतुमण्ण्यन्तात्क्तप्रत्यये रूपम् । 'रच प्रतियत्ने' इत्यदन्तत्वान्न वृद्धिः । तीर्थविन्यासादिभिः कारितरचनमुद्ग्राहोदकं यैर्नागरकैरिति । ग्रीष्म इति । अन्यदा तु पुनः पुनर्निमज्जनोन्मज्जनोदकबाधविघातादिप्रकारायाः क्रीडाया असंभवात् ॥ २६ ॥

वनविहारके जो साधन हैं वे ही सब जलविहारके हैं, इस कारण जल विहारके साधन अलग नहीं कहे हैं । जलविहारमें जो विशेषता है उसे बताते हैं कि—जिस पानीमें मगर आदि दुष्ट जन्तु न हों ऐसा पानी जिन पानीके स्थान डिग्गी वावड़ी आदिमें हो यानी ऐसे पानीके स्थान रचित हों जहां कि, मगर आदिका विलकुल भय न हो । नागरकोंको जलविहारका स्थान तीर्थरचनाके रूपमें कर रखा होना चाहिये एवम् उसमें दुष्टजन्तु न रहने दिये जाते हों । जलक्रीडा गरमीके दिनोंमें ही अच्छी हो सकती है, क्योंकि दूसरे समयोंमें तो वारंवार डूबना, तिरना, पानीके बाँध बनाना, बिगाड़ना नहीं हो सकता ॥ २६ ॥

समस्याक्रीडाका समय ।

समस्याः क्रीडा आह—

जिन त्योहारोंमें मिलकर खेलते हैं उनको बताते हैं कि—

यक्षरात्रिः । कौमुदीजागरः । सुवसन्तकः ॥ २७ ॥

समस्याक्रीडा यक्षरात्रि, कौमुदीजागर और सुवसन्तकमें होती है ॥ २७ ॥

---

१ रच धातुसे स्वार्थ वा हेतुमें "णिच्" प्रत्यय होकर कृदन्तीय क्त प्रत्यय होनेपर रचित शब्द बनता है 'रच प्रतियत्ने' यह अदन्त धातु है कथकी तरह यहां भी वृद्धि नहीं होती ।

२ इसको धर्मशास्त्रोंमें कोजागरव्रतके नामसे लिखा है । व्रतराजने कौमुदी आश्विनकी पूर्णिमाकी राति बताई है । यह व्रत लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये किया जाता है । पासोंसे जुआ खेलना लक्ष्मीदायक बताया है ।

यक्षरात्रिरिति—सुखरात्रिः, यक्षाणां तत्र संनिधानात् तत्र प्रायशो लोकस्य द्यूतक्रीडा । कौमुदीजागर इति—आश्वयुज्यां हि पौर्णमास्यां कौमुद्या ज्योत्स्नायाः प्रकर्षेण प्रवृत्तेः, तत्र दोलाद्यूतप्रायाः क्रीडाः । सुवसन्तक इति—सुवसन्तो मदनोत्सवः, तत्र नृत्यगीतवाद्यप्रायाः क्रीडाः । एता माहिमान्यः क्रीडाः ॥ २७ ॥

यक्षराति सुखरातिको कहते हैं, क्योंकि उस रातिको यक्षोंका संनिधान रहता है, इसमें प्रायः लोग जुआ खेलते हैं । आश्विनकी पौर्णमासीको चांदनी खूब निकलती है, इसमें प्रायः डोला और जुएका खेल होता है । मदनोत्सवको सुवसन्तक कहते हैं, इसमें प्रायः नाचने, गाने और बजानेका ही तमाशा होता है । ये सब खेल ' महिमानी ' कहाते हैं ॥ २७ ॥

देशोंके खेल ।

देश्या आह—

जिन देशोंमें जो जो खेल खास करके खेले जाते हैं उन्हें बताते हैं कि—

सहकारभञ्जिका, अभ्यूषखादिका, बिसखादिका, नवपत्रिका, उदकक्ष्वेडिका, पाञ्चालानुयानम्, एकशाल्मली, कदम्बयुद्धानि, तास्ताश्च माहिमान्यो देश्याश्च क्रीडा जनेभ्यो विशिष्टमाचरेयुः। इति संभूय क्रीडाः॥२८॥

आम तोड़नेका खेल, कच्चे फलोंको पकाकर खानेका खेल, कमलके दानोंके खानेका खेल, नवीन कोपलवाले वनोंका खेल, बाँसकी पोरीसे पानीका खेल, पंजाबके खेल, एकशाल्मलीके फूलोंका खेल, कदम्बसे खेल और गेंदमार आदि खेल, तथा अपने और दूसरे देशोंके पाहिले चले हुए माननीय व्यापक खेल तथा प्रान्तीय खेल एवम् पाहिले बताये खेलोंको योग्य पुरुषोंके साथ खेले । ये मिलकर खेलनेके खेल पूरे हुए ॥ २८ ॥

सहकारभञ्जिकेति—सहकारफलानां भञ्जनं यत्र क्रीडायाम् । अभ्यूषखादिका—फलानां विटपस्थानामग्नौ प्लोषितानां खादनं यत्र । बिसखादिका—बिसानां मृणालानां खादनं यत्र । सरःसमीपवासिनाम्, इत्येते द्वे क्वचित्क्वचिद् दृश्येते ।

---

१ कामके पूजनके दिनको मदनोत्सव तथा वसन्तके पहिले दिनको सुवसन्तक मानते हैं पर जयमंगला इन दोनोंको एक मानती है, क्योंकि वसन्तके प्रथम दिन उत्सव मना, कामपूजन धूमधामके साथ होता है । रत्नावलीनाटिकाके प्रथम अंकमें यही देखनेमें आता है ।

जिस खेलमें आमके फल तोड़े जाते हैं उसे ' सहकारभञ्जिका ' कहते हैं। जिस खेलमें पेड़के फल आगमें भूनकर खाये जायँ उसे 'अभ्यूषखादिका' कहते हैं । जिस खेलमें कमलके बिस (मज्जा) आदि खाये जायँ उसे 'बिस-खादिका ' कहते हैं । इस खेलको कमलोंके सरोवरके पास रहनेवाले खेलते हैं पर अभ्यूष और बिसखादिका कहीं २ देखनेम आती है ।

नवपत्रिका—प्रथमवर्षणेन प्ररूढनवपत्रासु वनस्थलीषु या क्रीडा सा प्रायेणा-टवीसमीपवासिनामाटविकानां च । उदकक्ष्वेडिकेति—'वंशनाडी स्मृता क्ष्वेडा सिंहनादश्च कथ्यते ' इति, उदकपूर्णा क्ष्वेडा यस्यां क्रीडायां सा मध्यदेश्यानाम्, यस्याः शृङ्गक्रीडेति प्रसिद्धिः ।

पाहिली वर्षा पड़नेपर जो वनमें नये पत्ते आदि निकलें उस समय जो वनस्थलियोंमें खेल होता है उसे ' नवपत्रिका ' कहते हैं । इस खेलको प्रायः वनके पास रहनेवाले वनवासी लोग खेला करते हैं। बाँसकी नाडी और वीरोंके सिंहनादको ' क्ष्वेडा ' कहते हैं, जिस खेलमें बांसकी नली पानीसे भरते हैं उसे ' उदकक्ष्वेडिका ' कहते हैं। इस खेलको मध्य देशके लोग खेलते हैं, इसे वहां ' शृंगक्रीडा ' कहते हैं ।

पाञ्चालानुयानम्—भिन्नालापचेष्टितैः पाञ्चालक्रीडा, यथा मिथिलायाम् । एकशाल्मली—एकमेव महान्तं कुसुमनिर्भरं शाल्मलिवृक्षमाश्रित्य तत्रत्यकुसुमाभर-णानां क्रीडा यथा वैदर्भाणाम् । कदम्बयुद्धानि—कदम्बकुसुमैः प्रहरणभूतैर्द्विधा बलं विभज्य युद्धानि। कदम्बग्रहणं कुसुमसुकुमारप्रहरणसूचनार्थम् । यष्टीष्टकादि-युक्तानि तु न कार्याणि यथा पौण्ड्राणां युद्धं क्वचित्क्वचिद् दृश्यते ।

तरह २ की बातें और चेष्टाओंसे पांचाल खेल करना जैसा कि, मैथिलमें होता है, इसे ' पांचालक्रीडा ' कहते हैं । फूलोंसे लदबदाई हुई एक ही शाल्मलिका आश्रय लेकर उसके फूलोंके गजरे आदिकोंसे जो खेल होता है उसे ' एकशाल्मली ' क्रीडा कहते हैं । इस खेलका विदर्भ देशके लोग खेलते हैं। जो आपसमें पार्टी बनाकर कदम्बके फूलोंसे गेंदकी तरह मारामारी खेलते हैं उसे ' कदम्बयुद्ध ' कहते हैं । कदम्बका ग्रहण सुकुमार (कोमल) प्रहारका सूचक है अर्थात् जिसकी न लगे उन चीजोंकी मारामारी भी खेलनी

चाहिये, जैसे कि, लोग गेंदमार खेलते हैं । पर दण्डा छड़ी आदिकी मारके खेल तो न खेलने चाहियें जैसे कि, पौण्ड्रदेशमें कहीं २ दण्डामार देखे जाते हैं।

तास्ताश्चेति—या या लोके प्रवृत्तिपूर्वाः । माहिमान्य इति—महिमा महत्त्वं तद्विद्यते यासामिति । 'संज्ञायां मन्माभ्याम्' इतीनिप्रत्ययः, सर्वदेशव्यापिन्य इत्यर्थः । देशे भवा देश्याः, प्रादेशिन्य इत्यर्थः । जनेभ्यो विशिष्टमिति—घटादयो नागरकाणामिति । समस्यास्तु साधारणाः । तत्र जना नागरकाश्च क्रीडन्ति । तस्मात्तेभ्यो विशिष्टमाचरेयुः, नागरत्वद्योतनार्थम् । संभूयक्रीडा इति—आसु नागरकाणां द्रव्यमुपहार्य संभूय क्रीडनात् ॥ २८ ॥

जो जो त्योहार दुनियाँमें पहलेसे प्रचालित हों, जो कि 'माहिमानी' (महत्त्वशाली) हों यानी सब देशोंमें व्यापक हों । देशमें होनेवाली देश्या कहाती हैं, ये खास प्रदेशोंमें ही प्रचलित होती हैं । घटा आदिक नागरकोंकी क्रीडाएँ होती हैं तथा समस्या सर्वसाधारण है । इसमें नागरकजन खेलते हैं, इस कारण इन खेलोंको खेलने लायक व्यक्तियोंको साथ लेकर खेलें, क्योंकि इसीमें चतुरता प्रकट होगी । इनमें सब नागरक लोग धन इकट्ठा करके खेलते हैं, इस कारण ये मिलकर खेलनेके खेल हैं ॥ २८ ॥

अकेलेकी चर्य्या ।

एकचारिणश्च विभवसामर्थ्याद् ॥ २९ ॥

अकेला विचरनेवाला तो अपने वैभवके सामर्थ्यसे सब खेल करे ॥२९॥

नागरकाणामभावाददृष्टदोषाद्वा यः कश्चिदेक एव चरति तस्य स्वविभवानुरूपेण परिचारकैः सह यक्षरात्र्यादयः समस्या एव स्युः ॥ २९ ॥

नागरक जहां न हों अथवा जो अपने भाग्यके दोषसे अकेला ही विचरता हो वह अपने वैभवके अनुसार अपने नौकरोंके साथ ही यक्षरात्ति आदिक मनाये ॥ २९ ॥

---

१ महिमन् शब्दसे 'संज्ञायां मन्माभ्याम् ५-२-१३८' इस सूत्रसे इनि प्रत्यय होकर ष्यञ् ङीप् और बहुवचन होनेके बाद 'माहिमान्यः' शब्द बनता है ।

२ राजा महाराजा और दूसरे ऐसे ही व्यक्ति अपने नौकर चाकर व अनुयायियोंको इकट्ठा करके अकेले ही इन त्योहारोंको मनाते हैं, वे नागरोंकी तरह अपनी बराबरवालोंको नहीं देखते ।

गणिका और नायिकाका चरित्र ।

गणिकाया नायिकायाश्च सखीभिर्नागरकैश्च सह चरित-मेतेन व्याख्यातम् ॥ ३० ॥

इससे गणिका और नायिकाका चरित्र भी कह दिया । अधिकता यह है कि–नायिकाके साथ सखी एवम् गणिकाके साथ नागरकजन होने चाहियें ३०॥

एतेनेति स्थानगृहन्यासनित्यनैमित्तिकविधिना यथासंभवं गणिकाया नायि-कायाश्च चरितं व्याख्यातम् । तत्र नागरकाणां स्थाने सख्यः, वेश्यानां स्थाने नागरका इति ॥ ३० ॥

जो भी कुछ नायककी रहनेकी जगह, वास और नित्य नैमित्तिक चरित्र बताये हैं वे ही सब यथासंभव नायिका और गणिकाके हैं । अन्तर इतना ही है कि, नायिका अपने खेलोंमें सखियोंको साथ रखेगी एवम् वेश्याके साथ उसके नायक रहेंगे । यथा संभवका तात्पर्य्य यह है कि, जिन कामोंको स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं उनको नायिका न करेगी ॥ ३० ॥

उपनागर ।

उपनागरकाणां लक्षणद्वारेण वृत्तमाह—

नागरोंका तो चालचलन कह चुके, अब उपनागरोंका लक्षण करते हुए उनके चालचलन भी बताये देते हैं । इन सबमें भी सबसे पहले पीठमर्दका लक्षण और चरित्र बताते हैं, कि—

अविभवस्तु शरीरमात्रो मल्लिकाफेनककषायमात्रपरि-च्छदः पूज्यादेशादागतः कलासु विचक्षणस्तदुपदेशेन गोष्ठ्यां वेशोचिते च वृत्ते साधयेदात्मानमिति पीठ-मर्दः ॥ ३१ ॥

जो तो अकिंचन अकेला ही हो तथा बैठकमें सहारा लेनेकी मल्लिका और समुद्रफेन तथा पंचकषाय मात्र ही जिसके पास उपकरण हो एवम् पूज्य देशसे

---

१ इसकी छटा मालतीमाधव नाटकमें मिलेगी । अनेकों राजकुमारियाँ इन लीलाको करती हैं । कादम्बरीकी बहिन महाश्वेता वनके खेलमें ही ऋषिकुमार पुण्डरीकको दीवाना कर आइ थी, जिससे अन्तमें कादम्बरीको कारी रहना और महाश्वेताको प्यारेके वियोगमें जोगिनि बनना पड़ा था ।

आया हो, कलाओंमें परम प्रवीण हो तथा नागरकोंकी गप्पसप्पों और वेश्या-ओंके मुहल्लोंमें उनका आचार्य्य बन जाय उसे पीठमर्द कहते हैं ॥ ३१ ॥

तुशब्दो विशेषणार्थः । यस्तु निष्किंचनो यथोक्तं नागरकवृत्तं वर्तितुमयोग्यः शरीरमात्रः पुत्रकलत्राद्यभावात् । परिचारकद्वितीयो यथोत्पादितवित्ताभावाद्देश-हिण्डनकः । मल्लिका दण्डासनिका शरीरधारणात्पूर्वनागरकाचार्यैः संकेतिता । 'मल मल्ल धारणे' इति धातुपाठात् । सा तस्य पृष्ठत एवासनार्थं भ्राम्यते । प्रवृत्तविषयेच्छत्वाच्च जङ्घाघर्षणार्थं फेनककषायाविति । तन्मात्रं परिच्छदो विभवो यस्येति । पीठिकाद्यासनं तु नार्हति । पूज्याद्देशाच्छात्त्रकलाविदध्युषितात् । तत्रत्य एव देशदिदृक्षयागतः । कलासु कुशलः—स्वदेश एव गीतादिचतुःषष्टिं पाञ्चालिकीं चाधीतवान् । तदुपदेशेन कलोपदेशेन । गोष्ठ्यां नागरकाणाम् । वेशोचिते वेश्याजनोचिते वृत्ते साधयेदात्मानमिति आचार्यं निष्पादयेदित्यर्थः । स पीठमर्द उपदेशदानेऽधिकृतत्वान्मल्लिकाख्यं पीठं मृद्गातीति कृत्वा । एतेनाचा-र्यवृत्तमस्य वृत्तम् ॥ ३१ ॥

साहित्यका पीठमर्द ।

१ "दूरानुवर्तिनि स्यात् तस्य प्रासङ्गिकेतिवृत्ते तु ।
किञ्चित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः ॥"

जो नायकसे गुणोंमें थोड़ा ही कम हो एवम् बहुत बड़े प्रासंगिक कार्य्योंमें उसका सच्चा सहायक हो उसे पीठमर्द कहते हैं। यह पीठमर्द वीर आदि रसोंका है। इस कोटिमें सुग्री-वादि आ सकते हैं। यह बराबरका जोटिया साथी कहाता है। कामसूत्रका पीठमर्द इससे भिन्न है, यह एक कलाकोविद वेश्या तथा कामीजनोंको कलाएँ सिखाकर जीविका करनेवाला अतृप्त आदमी है। यही कारण है कि शृंगार रसके सहायकोंमें विट, चेट और विदूषकादिक गिनाये हैं कि—

"शृङ्गारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः ।
भक्ता कर्मसु निपुणाः कुपितवधूमानभञ्जनाः शुद्धाः ॥"

शृंगारमें इसके सहायक विट, चेट, विदूषक और मालाकार आदिक होते हैं, ये उसके अनुरक्त हँसी दिल्लगीमें चतुर एवम् कुपित हुई वधूका मान भंजन करनेवाले एवम् शुद्ध होते हैं। इस कारिकामें पीठमर्दको नहीं लिया है, क्योंकि बराबरका पुरुष जरा कुट्टनपना कम करता है। विश्वनाथ तो विट, चेट और विदूषक इन तीनोंको ही शुद्ध एवम् मानिनियोंके मानको दूर करनेवाले मान रहे हैं, किन्तु भानुकवि—"पीठमर्द सो जो करे, भङ्ग तियनिको मान।" इस कथनसे स्त्रियोंके मानभंजकको पीठमर्द बता रहे हैं।

जो कि, निर्धन एवम् अकिंचन है, नागरकोंके चारित्र नहीं कर सकता, अकेला ही है, पुत्र स्त्री कुछ नहीं है, एक नोकर साथमें ले रखा है, पैदा किया हुआ धन न होनेके कारण गुजारेके लिये देश विदेश फिरता है, उसके पास एक दण्डेका आसन है, जिसपर हाथोंको रखकर बैठता है वही उसके पीछे लटकती हुई हिलती है । पर विषयोंसे हृदय नहीं भरा, इस कारण जाघोंको मुलायम बनानेके लिये समुद्रफेन और ऐसा ही कषाय जांघोंपर मसलनेके लिये बांधे फिरता है । इतना ही उसके पास ऐश्वर्य्य है जो कि, पीठिका आदिक आसनोंको नहीं पा सकता । कला कोविदोंके रह्-नेके देशका वहां रहनेवाला है वहांसे देशके देखनेके लिये आ रहा है । जिसने अपने ही देशमें गीतादिक चौंसठ कलाएँ एवम् पांचालिकी चौंसठ कलाएँ सीखी हों । जो कि कलाओंक उपदेशद्वारा नागरकोंकी गोष्ठी तथा वेश्याजनोंके झुण्डमें उचितचरित्रसे अपनेको उनका आचार्य बना दे उसे पीठमर्द कहते हैं । क्योंकि यह उपदेश देनेके योग्य होनेके कारण मल्लिका नामकी दण्डा-सनिकाको मसलता है, इससे आचार्यका चारित्र ही इसका चारित्र है ॥२१॥

विट ।

भुक्तविभवस्तु गुणवान् सकलत्रो वेशे गोष्ठ्यां च बहु-मतस्तदुपजीवी च विटः ॥ ३२ ॥

जिसने अपने वैभवको तो भोग लिया हो, गुणी हो, स्त्री समेत हो, वेश्याओंके आश्रय हो और गोष्ठीमें जिसका बहुमान हो एवम् उन्हीं दोनोंके आश्रित जिसकी जीविका हो उसे ' विट ' कहते हैं ॥ ३२ ॥

साहित्यका विट ।

१ "सम्भोगहीनसम्पद् विटस्तु धूर्त्तः कलैकदेशज्ञः ।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम् ॥ "

जिसने नागरोंके कामोंमें अपनी सारी सम्पत्ति भोग ली, जोकि किसी भी कलाको पूरा न जानकर सभीमें कुछ २ जानता हो, जिसे कि समझातीवार डाटना आदि भी आता हो एवम् वेश्या या वैसी ही स्त्रियोंके उपचार अच्छी तरह जानता हो, बातोंकी सफाई एवम् मीठा बोलना अच्छा आता हो, जिसका कि गोष्ठीमें मान हो उसे विट कहते हैं । इसके लक्षणमें कामसूत्रसे कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं है किन्तु जो साहित्यदर्पणके टीकाकार वेशोपचारका नैपथ्यकलाकुशल अर्थ कर रहे हैं उसकी अनुचितता प्रतीत हो जाती है ।

भाषाके कवि यह लक्षण करते हैं--

दो०-"तासन सब 'विट' कहत हैं, जो सबकलाप्रवीन ।
लायो मोहनिको लिवा, सुना माधुरी बीन ॥ "

यस्तु यौवने नागरकवृत्त्या परिभुक्तसर्वस्वोऽप्यनुपरतो विषयेभ्यः, सविभवस्तु नागरक एव स्यात् । तत्रत्यो नान्यस्मादेशादागतः । भुक्तविभवस्त्वागन्तुकः पीठमर्दांश एव । गुणवान्नायकगुणयुक्तः, प्राक्तनस्य नागरकत्वात् । सकलत्रः सानुबन्धत्वान्न स्वदेशत्यागी । बहुमत इति बहुमतं यस्य । विशेषपरिज्ञानात् । तदुपजीवी विटगोष्ठ्युपजीवी । वृत्तिमन्यामनिच्छन्वेश्याजनं नागरकजनं चोपजीवति । तदुपजीवितया तयोः संदेशं परस्परं विटतीति कथयतीति विटः । ' विट शब्दे ' इति धातुपाठात् । वक्ष्यति च—' विटः पुरोगां प्रीतिं कुर्यात् ' इति । तेन तदुपजीविवृत्तमेवास्य वृत्तम् ॥ ३२ ॥

जिसने जवानीमें नागरकोंके चरित्रोंमें ही सब धन भोग लिया हो पर विषयोंसे विरक्त न हुआ हो, क्योंकि ऐसा पुरुष विभवशाली तो नागरक ही होगा । वहींका रहनेवाला हो, किसी दूसरे देशसे न आया हो, क्योंकि विभवको भोगकर आया हुआ तो पीठमर्दोंके भीतर गिना जायगा । पहलेका नागरक होनेसे उसमें नायकके सभी गुण होने चाहियें । स्त्री समेत हो यानी उसके अनुबन्धसे देश न छोड़ सकता हो । विशेष जानकारीके कारण लोग उसका सम्मान करते हों, वह विटोंकी गोष्ठीका उपजीवी हो यानी वह किसी दूसरी वृत्तिकी इच्छा न करके वेश्याजन और नागरकोंके सहारेसे ही अपना निर्वाह करता हो एवम् उनका आसरतू होनेके कारण एकका संदेश दूसरेके पास पहुँचाता हो वह ' विट ' कहाता है । ' विट शब्दे ' धातुसे ' क ' प्रत्यय होकर विट शब्द बनता है । इसका तात्पर्य्य इधरकी बात उधर एवं उधरकी बातोंको इधर कहनेवाला है । कहेंगे कि ' पहिले विट प्रीति करे ' इस कारण विट और गोष्ठीका चरित्र ही इसका चरित्र है ॥ ३२ ॥

विदूषक ।

एकदेशविद्यस्तु क्रीडनको विश्वास्यश्च विदूषकः । वैहासिको वा ॥ ३३ ॥

जो सब कलाओंके कुछ २ भागोंको जानता हो एवं नायकका खिलौना और विश्वासपात्र हो उसे ' विदूषक ' कहते हैं। इसका दूसरा नाम वैहासिक (हँसोरा) भी है ॥ ३३ ॥

यस्तु गीतादीनां प्रदेशज्ञः सोऽविभवो भुक्तविभवो वा शरीरमात्रः सकलत्रस्तत्रत्य आगन्तुको वा पूर्ववृत्त्यसंभवात् । क्रीडनको विश्वास्यश्च भवति । वेशे

गोष्ठ्यां च विश्वास्यतामुपगम्य परिहासशीलवृत्त्या वर्तत इत्यर्थः । स च वेश्यां नागरकं वा क्वचित्प्रमाद्यन्तं लब्धप्रणयत्वादपवदते इति विदूषकः । क्रीडनकत्वाच्च वेश गोष्ठ्यां च विविधेन हासेन चरतीति वैहासिक इत्युभयनामा ॥ ३३॥

जो तो गीत, वादित्र आदि चौंसठ कलाओंमेंसे सबके कुछ २ अंगोंको जानता हो, उसके पास कुछ न हो या सर्वस्वको भोग चुका हो, अकेला हो, सस्त्रीक हो और वहींका निवासी हो वा कहींसे आया हो, जब कि, पहिली जीविका न रही हो । वह खेलका सामान और विश्वासपात्र बन जाया करता है । यह वेश्याओंके बीच तथा गोष्ठीमें विश्वासपात्र बनकर हँसीले स्वभावके वर्तावसे रहता है । यह प्यारा होनेके कारण असावधान वेश्या वा नागरकको कभी २ कुछ कह भी देता है, इस कारण इसे ' विदूषक ' कहते हैं । यह वेश्याओंके बीच तथा गोष्ठीमें खिलोना होनेके कारण अनेक प्रकारकी दिल्लगियां करता रहता है, इस कारण इसे ' वैहासिक ' भी कहते हैं । ये दोनों ही इसके नाम हैं ॥ ३३ ॥

ये ही यहां मंत्री हैं।

एते वेश्यानां नागरकाणां च मन्त्रिणः सन्धिविग्रहनियुक्ताः ॥ ३४ ॥

ये वेश्या और नागरकोंके मंत्री हैं एवम् प्यार, वैरमें नियुक्त रहते हैं॥३४॥

साहित्यका विदूषक ।

१ कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्म्मवपुर्वेशभाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः ॥

कुसुमके नाम या वसन्त आदि नाम हो, जिसका भेष, शरीर और बोलचाल भी हसोंरी ही हो, जिसका हँसना हँसाना मुख्य काम हो, प्रणयकलहसे राजी होनेवाला हो, जो कि हँसानेमें परमनिपुण हो । विदूषक कौन हो सकता है ? इस बातको कामसूत्रने साहित्यकोंसे अधिक बता दिया है । आजके नाटकोंमें इसके पार्टको कॉमिक कहते हैं । हिन्दीके कवि विदूषकके कामोंपर कुछ अधिक प्रकाश डालते हैं कि—

सोइ विदूषक रचि, क्रिया दम्पति करे निहाल ।
चित्र कोक दिए लालकहँ त्यौं सारस कर बाल ॥

विदूषक उस मित्रका नाम है जो अनेकों ढंग रचकर दोनोंको प्रसन्न कर दे, जैसे कि किसी विदूषकने चकई चकवाका चित्र बनाकर तो नायकको नायिकाके उरोजोंका स्मरण दिलाया एवम् नायिकाको सारसकी जोडी बतलाकर उनकी प्रेमासक्त दशा दिखलाकर दाम्पत्य प्रेमका स्मरण कराया ।

एते नागरकाणां पार्श्ववर्तित्वादुपनागरका मन्त्रिणः संधिविग्रहनियुक्ता इति—सामान्यं वृत्तं संधिविग्रहयोर्ज्ञानं, मन्त्रिणः कर्मणि सांधिविग्रहिकाः । तथाहि—देशकालकार्यापेक्षया संधिविग्रहौ प्रधानगुणौ ज्ञानेनावधार्य तत्कर्मसु प्रवर्तन्त इति ज्ञानकर्मरूपौ संधिविग्रहौ ॥ ३४ ॥

पीठमर्द, विट और विदूषक नागरकोंके समीप ही रहा करते हैं, इस कारण उपनागरक कहाते हैं । प्यार और लड़ाईका ज्ञान रखना इनका साधारण चरित्र है । कर्ममें मंत्री यानी सन्धिविग्रह करानेवाले हैं । इनका यह कार्य्य है कि, ये देश, काल और कार्य्यकी अपेक्षासे सन्धिविग्रहरूप मुख्य-गुणोंको ज्ञानसे निश्चित करके उन २ कामोंमें लगते हैं, इस कारण इनका ज्ञान-कर्मरूप संधि विग्रह हैं ॥ ३४ ॥

कुट्टनी ।

तैर्भिक्षुक्यः कलाविदग्धा मुण्डा वृषल्यो वृद्धगणिकाश्च व्याख्याताः ॥ ३५ ॥

इनके गुण ज्ञानकर्मरूप संधिविग्रहसे कलाओंमें निपुण मुंडी, भिखारिन, वृषली और वृद्धवेश्या भी कह दीं ॥ ३५ ॥

तैरित्युभयात्मकैः भिक्षुकस्य भार्या । मुण्डगुणयुक्ताः । वृषल्यो बन्धक्यः । कलाविदग्धा इति सर्वत्र योज्यम् । ता अपि संधिविग्रहयोर्ज्ञाने कर्मणि च नियोक्तव्याः । ताश्च संधिविग्रहार्थं कुट्टनाचालनाच्च कुट्टन्य इत्युच्यन्ते ॥ ३५ ॥

ये जो नायकके दूत बताये हैं इससे यह बात भी कह दी कि, नायिका-ओंके भी होते हैं जैसे पीठमर्द, विट और विदूषकके जो प्रधान गुण संधिविग्रह कराना है, इससे भिखारी व संन्यासीकी मुंडी स्त्री, कुलटा (व्यभिचारिणी) स्त्रियां और वृद्धवेश्याएं भी कह दीं क्योंकि ये यही धन्दा करती हैं । सूत्रका कला विदग्धशब्द सबके साथ जुड़ना चाहिये यानी ये सब कामकलाओंमें चतुर होनी चाहियें । इन्हें सन्धि और विग्रहके कार्य्यमें नियुक्त करे । ऐसी स्त्रियोंमेंसे जो संधिविग्रहके लिये जाती हैं वे इसीसे 'कुट्टिनी' कहाती हैं ॥ ३५ ॥

---

१ पीठमर्दके विषयमें साहित्यिकोंका मत दिखा चुके हैं पर विट, विदूषक आदिकोंका यही कार्य्य रहता है, कि किसी मानिनीको समझाबुझाकर सीधी कर दें तथा किसीसे नायकको लड़ा दें । ये इन विधानोंको जानते हैं तथा करते भी ये ही काम हैं ।

२ दूतियोंके बारेमें विहारीदासने कहा है कि—

" कालबूत दूती विना, जुरै न और उपाय ।
फिर ताको तारे बने, पाके प्रेम लदाय ॥ "—

ग्रामीण नागर ।

यात्रावशाद् ग्रामवासिनो वृत्तमाह—

यात्रावश ग्रामवासियोंका भी चरित्र कहते हैं कि—

ग्रामवासी च सजातान्विचक्षणान् कौतूहलिकान् प्रोत्साह्य नागरकजनस्य वृत्तं वर्णयञ्श्रद्धां च जनयंस्तदेवानुकुर्वीत । गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत् । संगत्या जनमनुरञ्जयेत् । कर्मसु च साहाय्येन चानुगृह्णीयात् । उपकारयेच्च । इति नागरकवृत्तम् ॥ ३६ ॥

ग्रामवासी नागरकको चाहिये कि, अपनी जातके बराबरके चतुर कुतूहली व्यक्तियोंको उत्साहित कर एवम् नागरकजनोंके चरित्रोंको कह उनकी उस काममें श्रद्धा उत्पन्न करके उनका अनुकरण करावे और उनसे गोष्ठी प्रवृत्त कर दे एवं नागरकोंके साथ मल करा उन्हें प्रसन्न करे एवम् कामोंमें सहायता देकर उन्हें अनुगृहीत करे तथा उपकृत करे । यह नागरकोंका वृत्त पूरा हुआ ३६

ग्रामवासी चेति । सजातान्समानजातीयान् । तत्रापि विचक्षणान्प्राज्ञान् । कौतूहलिकान्कौतुकवतः । प्रोत्साह्य कथमित्याह—वृत्तं वर्णयन्नमुष्मिन्नगरे इत्थं गोत्रपुत्राणां नागरकाणां लोकमनोहारि चेष्टितं श्रूयते, भवतामपि युक्तं वैचक्षण्यानुरूपं जीवितफलं तदनुकर्तुमिति श्रद्धां च जनयन्यात्रामपि तद्दर्शनेन गोष्ठीश्च प्रवर्तयेत् । तैः सह संगत्या जनमनुरञ्जयेत् । संगतिमैत्रीभ्यामित्यर्थः । साहाय्येनानुगृह्णीयात् । यात्रोत्सवादिषु प्रवर्तमानमुपचारयंश्च परस्परमुपचरेत् ॥ ३६ ॥

गामका रहनेवाला अपनी जातके उनमें भी चतुरोंको जिन्हें कि नागरकोंके विषयमें अचरज हो उन्हें नागरकोंके चरित्र सुनाकर उत्साहित करे कि, इस नगरमें इस घरानेके इन आदमियोंका संसारको चकित कर देनेवाला ऐसा चरित्र सुना जाता है । आपको भी यही करना उचित है । आपकी चतुरताको देखते आपके लायक ही है । जिन्दगीका यही तो मजा है कि,

---

—इनकी माया बड़ी विलक्षण होती हैं । इनके झांसेमें भोली स्त्रियां शीघ्र ही फँस जाती हैं । इनमें पत्थरके पिघलानेकी भी शक्ति होती है । इनकी वाणी जितनी मीठी होती है उतनी ही ये जहरकी बुझी होती हैं । यदि ऊपर बताई हुई स्त्रियां अपने घर आयेंजायें तो इनका आनाजाना मतलबसे खाली न समझे । अपने घरकी स्त्रियोंके साथ ऐसी स्त्रियोंको भूलकर भी न बैठने दे ॥

उनकी नकल की जाय '। इस प्रकार श्रद्धा पैदा करके यात्रा कराये तथा नागरकोंमें ला उनकी गोष्ठीमें ले जाय, उनके साथकी मैत्रीसे अपने गामके लोगोंको भी प्रसन्न करे। यात्रा, उत्सव आदिमें गामके लोगोंको वहां ले जाय तथा इस प्रकार आपसमें उनसे नागरकोंकी तथा नागरकोंसे उनकी सेवा कराये, यह नागरकोंका वृत्त पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

गोष्ठीका माननीय।

तत्र चैषां काव्यसमस्याः कलासमस्याश्चेत्युक्तम् । तत्र विशेषमाह—भवन्ति चात्र श्लोकाः—

गोष्ठीमें जो काव्यसमस्या और कलासमस्या कही थी, उसीके विषयमें यहां विशेष कहते हैं कि—ये श्लोक उसीके बारेमें हैं—

नात्यन्तं संस्कृतेनैव नात्यन्तं देशभाषया ।
कथां गोष्ठीषु कथयंल्लोके बहुमतो भवेत् ॥३७॥

एकदम संस्कृत या एकदम देशभाषामें ही गोष्ठियोंमें कथा कहता हुआ माननीय नहीं होता ॥ ३७ ॥

नात्यन्तमिति—कश्चिदेव संस्कृतं वेत्ति देशभाषां च । कथां काव्यकलाविषयां च चर्चाम् ॥ ३७ ॥

इसका कारण यह है कि, कोई ही संस्कृत जानता है, अतः संस्कृतकी वातोंको वही समझ सकेगा दूसरा नहीं एवम् देशभाषामें कथाके कहनेपर लोगोंको यह खयाल होगा कि, यह विज्ञ नहीं है अतः इस तरह बोले कि, पठित और मूर्ख दोनों ही प्रसन्न रहें। काव्य और कलाकी चर्चाको कथा कहते हैं ॥ ३७ ॥

त्याज्य गोष्ठी।

या गोष्ठी लोकविद्विष्टा या च स्वैरविसर्पिणी ।
परहिंसात्मिका या च न तामवतरेद्बुधः ॥ ३८ ॥

जिस गोष्ठीसे लोग वैर करें, जो कि, अपने आप मनमुरादी चलनेवाली हो, जिसका उद्देश दूसरेकी हिंसा करना हो उस गोष्ठीमें बुद्धिमान् मनुष्यको न जाना चाहिये ॥ ३८ ॥

या गोष्ठीति—यदा स्वयं गोष्ठीं न प्रवर्तयेत्तदान्यप्रवर्तितां यायात् । तत्रापि या लोकविद्विष्टा लोकस्यासंमता । स्वैरविसर्पिणी—स्वातन्त्र्येण प्रवृत्ता निर-

ङ्कुशेत्यर्थः । परहिंसात्मिका परदूषणपरा न तत्रावतरेद् बुधः । तत्र ह्यवतरणमबुधस्य दृश्यते ॥ ३८ ॥

जो स्वयं गोष्ठी न प्रवृत्त कर सके तो दूसरेकी गोष्ठीमें जाय । इसमें भी जो लोगोंसे संमत न हो, स्वतंत्ररूपसे प्रवृत्त हो यानी नियमरहित निरंकुश हो, जो दूसरेका विगाड़ ही विगाड़ करे उसमें बुद्धिमान् न जायँ, क्योंकि ऐसी गोष्ठीमें जाना मूर्खोंका काम देखा जाता है ॥ ३८ ॥

जाने योग्य गोष्ठी ।

कौनसी गोष्ठीके साथ विचरे, इस विषयमें उत्तर देते हैं कि—

लोकचित्तानुवर्तिन्या क्रीडामात्रैककार्यया ।
गोष्ठ्या सहचरन्विद्वांल्लोके सिद्धिं नियच्छति ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
नागरकवृत्तं चतुर्थोऽध्यायः ॥

जो लोगोंके चित्तोंके अनुसार चलनेवाली एवं जिसका कार्य मनोरंजनका ही है, ऐसी गोष्ठीके साथ विचरता हुआ मनुष्य परमसिद्धिको पाता है॥

कया सह चरेदित्याह—लोकचित्तेति—लोकचित्तानुरञ्जनं क्रीडा च फलं गोष्ठ्याः । सिद्धिं नियच्छति प्राप्नोति । लोकसिद्धो भवति किं पुनः स्त्रीष्वित्यर्थः । स्वयं गोष्टीप्रवर्तनेऽप्ययमेव विधिः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरह-
कातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां
साधारणे प्रथमेऽधिकरणे नागरकवृत्तं चतुर्थोऽध्यायः ॥

जिस गोष्ठीका लोगोंका चित्त प्रसन्न करना तथा खेलमात्र फल हो, ऐसी गोष्ठीका खिलाड़ी लोकसिद्ध हो जाता है । स्त्रियोंमें सिद्धहस्त होना तो बात ही क्या है । यदि आप अपनी गोष्ठी चलाये तो उसकी भी यही विधि है ॥ ३९ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके चतुर्थ
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

नायकसहायदूतकर्मविमर्श प्रकरण ।

गार्हस्थ्यमधिगम्येति ससहायस्योपक्रमा इति दूतानां संप्रेषणमित्युक्तम् । तत्र को नायकः, कया नायिकया गार्हस्थ्यमधिगम्य नागरकवृत्तं वर्तेत, कैश्च सहायैः, किं च दूतस्य कर्मेति तेषां विमर्शो निरूपणमिति 'नायकसहायदूतकर्मविमर्श' उच्यते । 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषनिर्देशान्नायकयोरित्यर्थः । दूतकर्मेति दूतीदूतयोरित्यर्थः ।

गत अध्यायमें नायककी गृहस्थप्राप्तिसे लेकर शृङ्गारके साथी पीठमर्द, विट, विदूषक आदि सहायकोंसहित अभिसारिकाओंकी परिचर्या तक बता दी एवम् उसमें उनके न आनेपर दूतियोंका भेजना भी कह दिया है । इसमें यह विचार होता है कि नायक कौन होता है, उसे कौनसी नायिकाके साथ सम्बन्ध करके गृहस्थ हो छैललीला करनी चाहिये, इस छैललीलामें उसके सहाय सहायिका कौन कौन होती हैं, दूत दूतियोंके क्या काम होते हैं ? इस प्रकरणमें इन सब बातोंका निरूपण है, इस कारण इस प्रकरणका नाम 'नायकसहायदूतकर्मविमर्श' है ॥

नायिकाका विमर्श ।

तत्र बहुवक्तव्यत्वात्प्राङ्नायिका फलतोऽन्यकारणतश्च विमृश्यते—

कितनी तरहकी नायिकाएँ होती हैं, किस नायिकाके साथ पाणिग्रहण संस्कार करनेसे औरस पुत्र तथा कौनसे केवल सुखमात्रफल मिलता है, किन कारणोंको लेकर दूसरी भी नायिका की जा सकती हैं इत्यादि बहुतसी बातें नायिकाके विषयमें कहनी हैं, इस कारण इन सबमें पहिले नायिकाओंका विचार करते हैं । नायिका बनानेमें भी औरसपुत्रफलवाली सबसे श्रेष्ठ है । यह वैदिक विधानसे प्राप्त होती है । अतः सर्व प्रथम औरसपुत्रफलवाला योग्य सम्बन्ध कहते हैं—

---

१ यद्यपि इसमें पुरुषवाचक ही शब्द दीखते हैं पर प्रत्येक पुरुषवाचक शब्दके साथ वैसे ही भावका स्त्रीवाचक शब्द भी है, इस तरह नायक और नायिका, दूत और दूती इनके कामोंका प्रतिपादन इसका अर्थ है । व्याकरणमें एकसूत्र है कि 'पुमान् स्त्रिया' अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनोंमेंसे पुरुषवाचक शब्द बाकी रह जाता है, वही द्विवचनान्त होकर दोनोंको जताता रहता है । यही बात यहां भी है कि नायक शब्द नायिकाका तथा दूत शब्द दूतीका एवम् सहाय शब्द सहायिकाका बोध कर रहा है ॥

कामश्चतुर्षु वर्णेषु सवर्णतः शास्त्रतश्चानन्यपूर्वायां प्रयुज्यमानः पुत्रीयो यशस्यो लौकिकश्च भवति ॥ १ ॥

चारों वर्णोंमें सवर्णका सवर्णा कारी (व्याही) में शास्त्रपूर्वक प्रवृत्त हुआ काम औरसपुत्र, यशका कारण तथा लोकाचारके अनुकूल होता है ॥ १ ॥

कामश्चतुर्ष्विति । सवर्णत इति यथा ब्राह्मणेन ब्राह्मण्याम्, यथा च शूद्रेण शूद्रायाम् । शास्त्रत इति—शास्त्रोक्तेन वरणादिना विधानेन । अनन्यपूर्वायां भार्यात्वेनाधिगतायाम् । प्रयुज्यमानः—प्रवर्त्यमानः । पुत्रीय औरसस्य पुत्रस्य निमित्तम् । 'पुत्राच्छ च' इति छप्रत्ययः । यथोक्तम्—'स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु सुतमुत्पादयेद्द्विजः । तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्राथमकल्पिकम् ॥' इति । तत्र स्वक्षेत्रं सवर्णः । यशस्यो यशोनिमित्तम् । 'गोद्यचः—' इत्यादिना यत् । अत्र च यद्यपि कामो न संयोगस्तथापि स्त्रीपुंसयोर्योगे कामशब्द उपचरितः । तत्पूर्वकत्वात्कामस्य । इति भवति तत्पर्यायः । लौकिकश्च लोके विदितः । तद्ग्राह्य इत्यर्थः ॥ १ ॥

ब्राह्मणसे ब्राह्मणीमें, शूद्रसे शूद्रामें एवम् शास्त्रके कहे हुए वर्ण विधान आदिके साथ जो कि पहिले किसीको नहीं व्याही गई यदि वह स्त्रीके रूपमें मिल जाय तो उसमें प्रयुक्त हुआ काम पुत्रीय[2] यानी औरस पुत्रका निमित्त होता है ।

---

१ मनुने अ. ३ के १२ श्लोकमें कहा है कि—

"सवर्णाग्रे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।
कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥"

अर्थात् द्विजातियोंमें पहिले विवाहमें सवर्णा स्त्री श्रेष्ठ है । यदि वे कामसे प्रवृत्त हों तो वे वताई हुई विधिसे विवाह करें । वात्स्यायनका मुख्य सिद्धान्त सवर्णाके विवाहका ही है, असवर्णविवाहको तो ये लोकविरुद्ध मानते हैं । इसी अधिकरणके दूसरे अध्यायके पहिले सूत्रकी टीकामें सवर्णाको ही धर्मपत्नी शब्दसे कहा है एवम् इसी पत्नीके पुत्रको 'औरस' कहा है । वसिष्ठजीने इसी पुत्रके लिये प्रार्थना की थी । जो कि वेद और निरुक्तमें प्रतिपादित है । यदि सवर्णविवाहके वाद चित्तकी चंचलता व इच्छासे आकुल हो फिर विवाह करें तो उनके लिये ये स्त्रियाँ अच्छीं रहती हैं ।

२ पुत्रका निमित्त जो संयोग होता है वह पुत्रीय कहाता है । पुत्र शब्दसे 'पुत्राच्छ च ५-१-४ ।' इस सूत्रसे 'छ' प्रत्यय-होकर पुत्रीय शब्द वनता है । प्रत्यय 'तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ ५-१-३८ ।' इस अर्थमें होता है यानी जिसका निमित्त संयोग या उत्पात हो उससे प्रत्यय हो । यह कामसंयोग पुत्रका निमित्त है, इस कारण पुत्रसे छ प्रत्यय होकर उक्त शब्द वनता है ।

धर्मशास्त्रमें कहा भी है कि "जो द्विज अपने ही क्षेत्रमें विधिपूर्वक विवाही हुई पत्नीमें पुत्र उत्पन्न करे उसे औरस पुत्र कहते हैं। यह पहिला पुत्र है" इस श्लोकमें आये हुए स्वक्षेत्रका अर्थ सवर्ण है। यह काम यशस्य[1] यानी यशका भी निमित्त होता है। यहां यद्यपि कामका मतलब संयोग नहीं है तो भी इसमें काम शब्दका गौणवृत्तिसे प्रयोग देखा जाता है, क्योंकि काम पति-पत्नी संयोगके पीछे होता है, इस कारण संयोग भी कामका पर्य्याय होजाता है। लोकमें जो प्रसिद्ध हो उसे 'लौकिक' कहते हैं अर्थात् लोकके भीतर है लोकाविरुद्ध नहीं है ॥ १ ॥

विपरीत, प्रतिषिद्ध और सुखफलके सम्बन्ध।

तद्विपरीत उत्तमवर्णासु परपरिगृहीतासु च। प्रतिषिद्धोऽवरवर्णास्वनिरवसितासु। वेश्यासु पुनर्भूषु च न शिष्टो न प्रतिषिद्धः। सुखार्थत्वात् ॥ २ ॥

अपने वर्णसे ऊंचे वर्णकी स्त्रीमें प्रवृत्त हुआ, सवर्णामें विधिपूर्वक प्रवृत्त हुए कामसे विपरीत है। दूसरेंकी व्यांही स्त्रीमें चाहे वह अपने वर्ण (जाति) की हो चाहे दूसरे वर्णकी हो सर्वथा विपरीत और निषिद्ध है। अपनेसे छोटे वर्णकी एवम् अपनी ही जातिके बाहिष्कृत व्यक्तियोंमें तथा वेश्या और पुनर्भूमें[2] न तो विहित ही है एवम् न उसका निषेध ही कहीं किया गया है, क्योंकि वह तो केवल रतिसुखके अनुभवके लिये होता है ॥ २ ॥

---

१ न०२ की टिप्पणीमें जिस अधिकारमें छ प्रत्यय किया है उसीमें 'गोद्यचाऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ५-१-३९।' सूत्रसे यशस् शब्दसे यत् प्रत्यय होकर 'यशस्य' बनता है।

१ पुनर्भू-अक्षता और क्षता दो सामान्य भेद हैं। जिसने सहवास न किया हो वह अक्षता एवम् जिसने सहवास किया हो वह क्षता कहलाती है। अक्षता पुनर्भू तीन प्रकारकी है—जिसका वर विना विवाह कृत्यके पूरे किये मर जाय इसका विवाह हो सकता है पर कुछ धर्मपत्नीसे थोड़ी हीन ही समझी जायगी किन्तु यह सभी पुनर्भूओंमें श्रेष्ठ है। दूसरी वह जो विवाह करके विना भोगे ही छोड़ दी हो या उसने पति छोड़ दिया हो। तीसरी वह है जो ऐसी ही हालतमें विधवा हो गई हो। क्षतयोनि पुनर्भू भी तीन तरहकी हैं—एक तो विवाहसे पहिले ही उपभुक्त हो ले। दूसरी विवाहके बाद बालक पतिको छोड़ किसीके घर रहे, बालिग होनेपर फिर पतिको सँभाल ले। तीसरी भुक्तभोगिनी विधवा होकर फिर किसीके घर बैठना चाहे। (ये भेद हमने तिमिरभास्करमें सप्रमाण विस्तारके साथ दिखाये हैं)

उत्तमवर्णास्विति–क्षत्रियेण ब्राह्मण्याम्, वैश्येन ब्राह्मणीक्षत्रिययोः, शूद्रेण ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यास्वनन्यपूर्वास्वपि प्रयुज्यमानः। परपरिगृहीतासु चान्योढासु सवर्णास्वपि कामो विपरीतः, न पुत्रीयः, न यशस्यः, न लौकिकश्च। एवंविधः सुखार्थोऽपि न, परपरिगृहीतास्वेकान्तेन धर्मविरोधित्वात्।

विपरीत–पूर्वसूत्रमें जो सवर्णकन्याके साथ विवाह करनेके फल बताये हैं उनसे उस विवाहमें विपरीत फल होता है जो कि, उत्तम वर्णकी कन्याके साथ छोटे वर्णका करता है। यानी भले ही अविवाहिताएँ हों पर क्षत्रियका काम ब्राह्मणीमें, वैश्यका ब्राह्मणी और क्षत्राणीमें एवम् शूद्रका काम ब्राह्मणी,क्षत्रिया और वैश्यामें हो। विपरीत और प्रतिषिद्ध–यह बात तो हुई क्वांरीके साथ विवाह करनेकी, किन्तु छोटे वर्णके पुरुषका काम उच्चवर्णकी विवाहितामें होना तो जहाँ तहाँ रहा, स्वजातिकी विवाहितामें भी रमणकी इच्छा होना सर्वथा निषिद्ध है। इसमें औरसपुत्रकी प्राप्ति और यश नहीं है। न यह ऐसा ही है कि लोकमें खुले तौरसे प्रचलित हो। परदाररमण सुखका कारण भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि शास्त्रने इसे नितान्त अधर्म कहा है। सुख धर्मसे होता है अधर्ममें सुख नहीं है।

अवरवर्णास्विति–ब्राह्मणस्यावरवर्णाः क्षत्रियावैश्याशूद्राः। क्षत्रियस्य वैश्या-शूद्रे। वैश्यस्य शूद्रा। शूद्र एकजातिः। तस्य स्वजात्यपेक्षयावरवर्णाः। तत्रापि यद्यनिरवसिताः। पात्राद्बहिष्कृता इत्यर्थः। सन्त्येव हि काश्चित्क्षत्रियादयो याभिर्भुक्तं पात्रं न संस्कारमात्रेण शुद्ध्यति। ता एवंविधा बाह्याः। तथा चोक्तम्—'शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते। ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वा चाग्रजन्मनः॥' इति। तासु च बाह्यास्वपि।

---

१ यद्यपि शुक्राचार्य्यकी लड़की देवयानीका पाणिग्रहण चन्द्रवंशीय ययातिराजाके साथ देखा जाता है; किन्तु यह कचके शापके कारण हुआ है, वह भी कूआमें पड़ी देवयानीको निकालती वार देवयानीने ही महाराजाको अपने शापका वृत्तान्त सुनाकर पतिके रूपमें मान लिया है, उक्त राजाने विवाह होनेके पहिले देवयानीकी चाह नहीं की है। फिर भी ऐसे उदाहरण कोई ही मिलते हैं; पर उच्चवर्णकी कन्याका विवाह हीनवर्णमें करनेका विधान नहीं है।

सुखफलक विवाह—अपने वर्णसे छोटी वर्णकी कन्याके साथ विवाह एवम् अपनेसे छोटे वर्णोंके जातिबहिष्कृत लोगोंकी कन्या लेना केवल सुखके लिये है। ब्राह्मणसे छोटे वर्णकी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा हैं। क्षत्रियसे वैश्या और शूद्रा हैं। वैश्यकी शूद्रा है। शूद्र एक ही है उससे छोटा कोई वर्ण नहीं है, सूत्रके अवरवर्णाका यही तात्पर्य्य है। जातिबाहिरको 'अनिरवासित' कहते हैं। छोटे वर्णोंमें भी जातिबाहिर होते हैं। वे भी इतने कि पात्रसे बहिष्कृत। यानी क्षत्रियादिकोंमें स्वजाति बहिष्कृत ऐसे भी लोग हैं कि जिनका जूठा पात्र साधारण संस्कारसे शुद्ध नहीं होता, अग्निसंस्कार करना पडता है। ऐसे जो व्यक्ति हैं उनकी बाहिरोंमें गिनती होती है। पहिले सवर्ण (सजाति) की कन्याके साथ विवाह करके अपने छोटे वर्णकी कन्याके साथ पाणिग्रहण संस्कार भी मनुस्मृतिके तीसरे अध्यायके १३ वें श्लोकमें बताया है, कि—" ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, क्षत्रियकी क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा, वैश्यकी वैश्या और शूद्रा तथा शूद्रकी केवल एक शूद्रा ही भार्य्या हो सकती है।" इनमें जो जिस वर्णकी भार्य्या बताई हैं, उन वर्णोंके जातिबाहिर किये हुए व्यक्तियोंकी कन्याएँ भी भार्य्याएँ हो सकती हैं।

पुनर्भूष्विति या अन्यपूर्वाः क्षतयोनयो विधवा इन्द्रियदौर्बल्यादन्यस्य पुनर्भवन्ति तासु स्वीकृतासु वेश्यासु च सामान्यस्त्रीषु प्रयुज्यमानो न शिष्टो न विहितः, तत्र सवर्णामपरिगृह्य तत्परिग्रहस्यानभिहितत्वात्, परिगृह्यापि शूद्रा न प्रतिषिद्धत्वात् परिगृह्याप्रतिषिद्धः। सुखाधिकृता तदानीं सुखार्थैव प्रवृत्तिः, न पुत्रार्था। तत्रावरवर्णास्तदा तासु ये पुत्रा न तेषामौरसत्वम् पुत्रकार्याकरणात्। पुनर्भूषु वेश्यासु च पुत्राशैव नास्तीति द्विविधं फलम् ॥ २ ॥

न विहित एवं न प्रतिषिद्ध—जिनका विवाह हो गया हो वे खेलीखायी विधवा होनेपर इन्द्रियोंकी कमजोरीके कारण फिर किसीके घर बैठ जायँ तो पुनर्भू कहाती हैं। इनको स्वीकार करके इनके साथ रँगरेलियां करना न तो विहित ही है एवम् न ऐसी स्वयं प्राप्त कामातुराका निषेध भी नहीं है। इसी तरह वेश्या यानी साधारण स्त्रियें जिन्हें कि पारदारिक और वैशिक आधिकरणमें कहेंगे। ऐसी स्त्रियोंमें प्रवृत्त हुआ काम न तो शास्त्रसे कथित

ही है एवम् न निषिद्ध ही है। सुखफलक विवाहमें उस विवाहकी तो वैधमें गिनती है जो कि मनुस्मृतिमें सवर्णाके विवाहके बाद बताया गया है। विना भी सवर्णाके साथ विवाह किये कर लिया जाय तो उसका निषेध भी नहीं है। पर किसी वृत्तान्तमें यह लिखा नहीं मिलता कि ब्राह्मण क्षत्रियोंकी सवर्णाके बाद वा विना सवर्णाके भी सीधी शूद्रा भार्य्या हो। हां विशेष आवश्यकता हो तो सवर्णा विवाहकर फिर क्रमशः ही शूद्राके साथ भी शादी कर सकता है। इनके साथ सहवासकी प्रवृत्तिं केवल सुखके लिये होती है, पुत्रोंके लिये नहीं होती, क्योंकि इनमें केवल विषयसुखके अनुभवके लिये ही प्रवृत्ति बताई है। इनसे पैदा हुई सन्तान औरस नहीं होती, क्योंकि वे औरस पुत्रका कार्य्य नहीं कर सकते। पुनर्भू और वेश्यासे तो पुत्रकी आशा ही नहीं है, इस कारण परिग्रहके दो फल हैं, एक तो पुत्रके लिये तथा दूसरा सुखके लिये ॥ २ ॥

असवर्ण विवाहका निर्णय।

१ सवर्णाके साथके विवाहकी श्रेष्ठताका द्योतक मनुवाक्य पहिले सूत्रकी टिप्पणीमें दिखा चुके हैं। उसका जो क्रमसे १३ वां श्लोक होता है वह जयमंगलाने ले लिया है, जिसका अर्थ इसी सूत्रकी टीकामें कर चुके हैं। इसश्लोकके बाद १४ वां श्लोक है कि-

" न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापद्यपि हि तिष्ठतोः।
कस्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्राभार्य्योपदिश्यते ॥ "

गृहस्थ बननेकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण और क्षत्रियको सवर्णाके न मिलनेपर भी किसी इतिहासमें यह देखनेको नहीं भिलता कि किसी शूद्राके साथ विवाह किया। यह अर्थ हमने कुल्लूक भट्टकी टीकाके अनुसार ही कहा है। इसके आगे कुल्लूक कहते हैं कि-सवर्णाको व्याहकर तो क्रमशः शूद्रा विवाही जा सकती है, यह बात पहिले श्लोकमें कह आये हैं। फिर यह निषेध शूद्राके साथ सीधा विवाह करनेका है। ब्राह्मण और क्षत्रियोंको तो दोष है ही पर उस दोषसे वैश्य भी मुक्त नहीं हैं। इसमें यह बात सिद्ध होगई कि शूद्राको छोड़कर उच्चवर्णाका पुरुष छोटे वर्णकी बालिकाके साथ विना सवर्णाके व्याहे भी शादी कर सकता है। सवर्णाके साथ विवाह करके भी क्रमको छोड़ जो फिर सीधा शूद्राके साथमें विवाह है उसके विषयमें मनुने कहा है कि-

" हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहन्तो द्विजातयः।
कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रताम् ॥ "

जो द्विजाति सवर्णाके साथ विवाह कर मोहके वश हो शास्त्रके बताये हुए क्रमका ज्ञान छोड़कर सीधा शूद्राके साथ विवाह करते हैं वे सन्तान समेत जलदी ही पतित हो जाते हैं।-

नायिकाओंके भेद ।

तत्र नायिकास्तिस्रः कन्या पुनर्भूर्वेश्या च । इति ॥ ३ ॥

इस फलविभागमें कन्या, पुनर्भू और वेश्या ये तीन तरहकी नायिकाएँ हैं॥३॥

तत्र तस्मिन्फलविभागे तिस्रो नायिकाः-कन्या, पुनर्भूः, वेश्या चेति । तत्र कन्या द्विविधा--पुत्रफला, सुखफला चेति । पूर्वा सवर्णा श्रेष्ठा । द्वितीयाधमवर्णा न्यूना । तस्या अपि न्यूना पुनर्भूः । स्वीकारेऽप्यन्यपूर्वत्वात् अस्या वृत्तं भार्याधिकारिके वक्ष्यति । या त्वक्षतयोनिः पुनरुह्यते सान्यांश एव । यथोक्तम्—'पुनरक्षतयोनित्वादुह्यते या यथाविधि । सा पुनर्भूस्ततस्तस्यां पौनर्भव उदाहृतः॥' ततोऽपि वेश्या न्यूना । सामान्यत्वात् ॥ ३ ॥

यह जो पुत्रफल और सुखफलका विभाग किया है, इसमें कन्या, पुनर्भू और वेश्या ये तीन नायिकाएँ हैं । नायिकाओंमें दो तरहकी कन्याएँ संभाली गई हैं, एक तो 'पुत्रफला' तथा दूसरी 'सुखफला' । जिस कन्यासे औरस पुत्र मिलता है वह सवर्णा ही श्रेष्ठ है । दूसरी रतिसुखरूप फलवाली अधमवर्णकी है, यह सवर्णासे हलकी है । इससे भी छोटे दर्जेकी पुनर्भू है, क्योंकि स्वीकार कर लेनेपर भी वह पहिले दूसरेकी हो चुकी है । पुनर्भूका चरित्र भार्य्याधिकरणके दूसरे अध्यायमें कहेंगे । जो कि, अक्षतयोनि फिर विवाही जाती है वह तो और की 'अंश' मात्र ही होती है । कहा भी है कि-" जो अक्षतयोनि होनेके कारण फिर विधिपूर्वक व्याह दी जाती है वह पुनर्भू है उससे जो सन्तान हो, वह 'पौनर्भव' कहाती है । " पुनर्भूसे भी वेश्या छोटे दरजेकी है, क्योंकि वह तो सामान्य स्त्री है ॥ ३ ॥

नायिकाओंका बृहद्विवेचन ।

श्रीविश्वनाथ कविराजने अपने परमप्रसिद्ध ग्रन्थ साहित्यदर्पणके तीसरे

-क्रमपूर्वक व्याहपर दृष्टान्त-उज्जायिनीके रहनेवाले व्याकरण महाभाष्यके प्रवर्तक महा वैय्याकरण चन्द्र गुप्तजी ब्रह्मराक्षससे वैयाकरण महाभाष्य पढ़कर उज्जयिनीकी ओर लौट रहे थे। मार्गमें भूखसे व्याकुलीकी हालतमें एक शूद्रकी सुज्ञबालिका मिली, उसने उन्हें मक्खन खिलाकर प्रार्थना की कि आप मेरे साथ विवाह कर लें, यह सुन चन्द्रगुप्तजीने कहा कि मैं पहिले सवर्णाके साथ विवाह कर लूँ फिर क्रमशः क्षत्रिय और वैश्य कन्या विवाह कर तेरे साथ अवश्य विवाह करूँगा । वे क्रमशः तीनों वर्णोंकी कन्याएँ ले अन्तमें उसके साथ विवाह करके उसे उज्जयनी ले गये ॥

परिच्छेदकी ९८ वीं कारिकामें नायिकाओंको बताया है। उसीका अनुवाद कविवर मतिरामजीने अपने ग्रन्थ रसराजमें किया है कि-

" कहीं नायिका तीनविधि, प्रथम स्वकीया मान ।
परकीया पुनि दूसरी, गणिका तीजी जान ॥ "

कविलोग स्वकीया, परकीया और गणिका भेदसे तीन तरहकी नायिका मानते हैं। यद्यपि कारिकामें पहिले साधरणस्त्री लिखकर ११४ वीं कारिकामें वेश्याको सर्वसाधारण स्त्री बताया है एवं कामशास्त्रने वेश्यासे गणिकाको कुछ ऊंचा माना है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि साहित्यिक वेश्या और गणिकाको पर्य्यायवाची शब्द मानकर व्यवहार करते हैं। मतिरामजीने भी वेश्या या साधारणस्त्रीके पर्य्यायमें गणिकाशब्द रख दिया है । साहित्यदर्पणकारने-" विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया " यह स्वकीयाका लक्षण किया है। इसका अनुवाद मतिरामजीने इस दोहेमें किया है कि-

" लाजवती निशिदिन पगी, निजपतिके अनुराग ।
कहत स्वकीया शीलमय, ताको पति बड़ भाग ॥ "

लाजवाली कहनेसे विनय नम्रता आदि गुण कह दिये, पतिके अनुरागमें रातदिन सनी हुई कहनेसे पतिव्रता कह दी, शीलवती कहनेसे घरके कामकाज आदि उचित कर्तव्योंको कह दिया। इस दोहेका अर्थ हुआ कि-जो इतनी पतिव्रता हो कि रातदिन पतिके प्रेममें ही सनी रहे। नम्रता, लज्जा, विनय आदि सभी उत्तम गुण हों, घरके काममें सदा ही लगी रहे, ऐसी स्त्री अपनी या स्वकीया कहाती है। यदि यह स्वकीया सवर्णा है तथा विधिके साथ विवाही है तो यह औरसपुत्रफलवाली कन्या नायिकामें गतार्थ होती है । असवर्णकी विधिपूर्वक विवाहिता है तो सुखफला कन्याके भीतर आ जाती है। साहित्यकारके लेखसे भी यही बात सिद्ध होती है। उसने लिखा है कि-

" कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना । "

इसका अनुवाद मतिरामने किया है कि-

" अनव्याही कहु पुरुषसों, अनुरागी जो होय ।
ताहि अनूढा कहत हैं, कवि कोविद सब कोय ॥ "

विवाह न हुआ हो किन्तु वह वयःप्राप्त किसी पुरुषको भावीपति बनानेके लिये उसपर प्रेम करती हो पर अत्यन्त खुलखेलनेमें कारी होनेके कारण शरमाती हो ऐसी नायिकाको सब कन्या कहते हैं। जब भारतमें स्वयंवर था उस समय कन्याएँ अपने भावीपतिको आप चुन लिया करती थीं, जैसे—

जयचन्दकी लड़की संयोगिताने अपना पति पृथ्वीराज बनाया था । इन कन्याओंका भावी पतियोंमें अत्यन्त अनुराग हुआ करता था । यहां तक कि, किसीने दमयन्तीसे यह कह दिया कि, अब आपको आपके पिता नलके लिये न देंगे तो दमयन्तीने कहा कि–' जो पिता नलको छोड़ दूसरेके लिये मुझे छोड़ते हैं तो मन तो मेरा नलके चरणोंमें चला ही गया है इस खाली शरीरको आगमें डालकर क्यों नहीं स्वाहा कर देते । ' ऐसी कन्याएँ भी अविवाहितावस्थामें परकीया तथा विवाहके बाद स्वकीया बन जाती हैं एवम् आज भी वरणविधानके अनुसार विवाह होनेपर कन्याएँ ही स्वकीया बनती हैं । कामसूत्रके प्र० अ० पांचवें अध्यायके पांचवें सूत्रसे लेकर २१ वें सूत्रतक परस्त्रीगमनके कारण कहे हैं तथा परस्त्रीको भी काम निकालनेके समयमें नायिका माना है पर साहित्यकोंने इन कारणोंपर विचार नहीं किया है । सा० तृ० प० में १११ का० में लिखा है कि–" यात्रादिनिरताऽन्योढा कुलटा गलितत्रपा " इसके आधारपर काव्यप्रभाकरमें लिखा है कि–

" ऊढा व्याही औरकी, करै औरसों प्रीत ।
छूटै पति परिवार बरु, छुटै न मोहन मीत ।। "

जो दूसरेकी व्याही दूसरेसे प्रेम करे, चाहे पति और परिवार सभी छूट जायँ पर मोहन मित्र न छूटे । इस दोहामें पराई स्त्रीका परपतिमें अनुराग दिखाया है, किन्तु साहित्यदर्पणने व्यभिचारिणी स्त्रियोंका स्वभाव बताया है कि–" ये झारी झरोखे आदिमें सजी बैठी छैलोंको देखा करती हैं, यदि कोई दीख जाय तो नाजों नखरोंके साथ उसे आखें चला २ कर देखती हुई अपनी सुन्दरता दिखाती हैं एवं मेलों ठेलों तथा देवल आदिको भी जाती हुई नाज-नखरे दिखाती हुई जातीं हैं । व्यभिचारके लिये जहां यार बुलावे वहां पहुँच जाती हैं इन्हें लाज तो नाममात्रको भी नहीं होती । " यदि विचार करके देखा जाय तो व्याभिचारिणियोंमें ये बात आज भी पायी जाती हैं। सभ्य पुरुषोंको इस कलुषित सौन्दर्य्य और कपटभरी वाणीसे सदा बचना चाहिये । सा० कारने–"साऽपि कथिता त्रिविधा मुग्धा मध्या प्रगल्भेति" इस कारिकासे स्वकीयाके भेद दिखाये हैं । इसीका अनुवाद रसराजने लिखा है कि–

" त्रिविध स्वकीया जानियो, प्रथमाहि मुग्धा नाम ।
मध्या पुनि प्रौढा गिनो, वर्णत कवि मतिराम ।।"

स्वकीया भी मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेदसे तीन प्रकारकी होती है ।

मुग्धा ।

इसी अधिकरणके दूसरे अध्यायके दूसरे सूत्रमें सोलहवर्ष तक बाल बताया है । सोलहसे वीस तक इन्द्रिय आदिकोंकी वृद्धि होती है । वत्तीसतक युवा, ४० तक परिपूर्ण धातु एवं इसके वाद धातु कम होते २ सत्तरतक वृद्धकी सूरतमें पहुँच जाती है । इस रीतिसे मुग्धा वाला ही हो सकती है, क्योंकि मुग्धाके जो भेद दिखाये हैं वे वालामें ही घट सकते हैं । सा० दर्पणमें मुग्धाका लक्षण किया है कि–

" प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा ।
कथिता मृदुश्च माने समाधिकलज्जावती मुग्धा ॥ "

इसका भाव–' उपज्यो जाके प्रथम तन, यौवन मदन विकार ।
रतिवामा मृदु मानमें, मुग्धा लाज अपार ॥ '

इस दोहेके रूपमें रखें देते हैं कि जिसके वदनमें प्रथम ही यौवनका विकार अंगवृद्धि आदि हुई हों । जिसके प्रथम ही कामका विकार हुआ हो, जो रतिमें विपरीत चलती हो, जिसका मान वड़ा ही मृदु हो, जिसे कि अत्यन्त लज्जा हो । यद्यपि ये सब मुग्धाके विशेषण कारिकामें एक ही साथ दे दिये हैं किन्तु विचारके साथ देखा जाय तो ये सब मुग्धाके भिन्न २ भेद हैं, साहित्यिकोंने इन सबोंके उदाहरण दिखाये हैं । विहारीदासने प्रथम यौवनके कार्य्यका उदाहरण दिया है कि–

" भावक उभरोहौं भयो, कछुक परयो भरुआय ।
सीपहराके भिस हियो, निशदिन हेरत जाय ॥ "

सीना उभरा हुआसा होकर कुछ भारी पड़ गया, इस कारण सिपीके हारके वहाने इसे रातदिन हृदय देखते ही वीतते हैं । इस सीपहराके वहाने सीना देखनेका यही कारण है कि यह अपनी अंगवृद्धिसे अपनेको युवावस्थामें प्रविष्ट हुई समझ रही है । ऐसी भी मुग्धा होती है जिसे अपने यौवनके आगमनका भी पता नहीं चलता, जैसा कि मतिरामजी कहते हैं कि–

" लाल तिहारे संगमें, खेलें खेल बलाइ ।
मूंदत मेरे नयन हो, करन कपूर लगाइ ॥"

हे लाल ! आपके साथम हम वहुत खेल खेलतीं हैं, आप हाथोंमें कपूरको लगाकर मेरी आखें मूँदते हो । यह आँखमिचौनीके समयका प्रतीत होता है, इसमें सिवा लालाके साथ खेलनेके दूसरा कोई चिह्न नहीं प्रतीत होता, जिससे यौवनका आगम समझा जाय । किन्तु विहारीदासजीने अपने दोहोंमें इस वातको खूब दर्शाया है कि—

" छुटी न शिशुताकी झलक, झलक्यो जोवन अंग ।
दीपति देह दुहूँन मिलि, मनो ताफता रंग ॥"

यद्यपि शरीरपर जोवन झलक आया है पर अभी उसका बचपन न छूटा । शिशुता और जवानी दोनोंके मिलजानेसे देह ऐसे चमकती है जैसे कि धूप-छांहका रंगा कपड़ा चमका करता है । मेरी समझमें तो यहाँ बालकपनके न छूटनेका कारण युवावस्थाका भान न होना ही जँचता है । इसी बातको विहारीदासजीने अगाड़ी और भी परिस्फुट कर दिया है कि–

"लाल अलौकिक लरिकई, लखि लखि सखी सिहांति ।
आजकालमें देखियत, उर उकसोंहीं भांति ॥"

हे लाल ! उसके अलौकिक बचपनको देख २ कर सखी बड़ी सिहाती हैं, क्योंकि आजकलमें उसका सीना उठे हुओंकी तरह चमकने लगेगा । नायिकाको युवावस्थाका भान न होना भी उसकी अलौकिक लड़कई कहनेका कारण हो सकता है । जिस मुग्धावालाके प्रथम कामका अवतार हो, उसकी दशा भी विचित्र ही होती है । साहित्यदर्पणने इसका उदाहरण प्रभावती-परिणयके श्लोकका दिया है पर इसके उदाहरण शकुन्तलानाटक आदिके वे स्थल हो सकते हैं जिनमें कि मुग्धा बाला प्रथम मदनविकारका अनुभव करती है । जैसा कि दुष्यन्तको देखते ही शकुन्तलाने कहा था कि–

' याहि देखि मनमाहिं क्यों, उपज्यों मदन विकार ।
है विरुद्ध वनवाससों, कामिनको उपचार ॥ '

इसे देखकर हृदमें मदन क्यों उत्पन्न हुआ, क्योंकि यह तो कामियोंका उपचार तपोवनवासी तपस्वियोंके आचारसे भिन्न है । अधिक लज्जा होनेके कारण रमणमें वामाका उदाहरण मतिरामने दिया है कि–

" ज्यों ज्यों परसै लाल तन, त्यों त्यों राखै गोय ।
नवलवधू डर लाजसे, इन्द्रवधूसी होय ॥"

लाल ज्यों २ शरीरको छूता था वह तैसे ही तैसे शरीरको छिपानेका प्रयत्न करती थी । नई वधू प्रथम सहवासके मौकेपर डर और लज्जाके मारे रामजीकी गुड़िया बनी जाती थी । मानमें मृदुका उदाहरण भी यहीं दिये देते हैं कि–

" जानि निज पीतमकी प्रीति परबाला सँग,
मनमाहिं बालाके निरालो रोष छायो है ।

लोक चतुराईकी न नैक सीख पाई अजौं,
याते रंगढंगते न बोलि कछु आयो है ।
किन्तु ताके नैन अरविन्दसे अमन्द नीर,
बुन्द बुन्द ढुरिकै उरोजलौं सुहायो है ।
ऐसी दशा देखि पाति प्रेम बैन बोल्यो जब,
ह्वैकै प्रसन्न वेगि शान्ति सुख पायो है ॥ "

जो आखें चढ़ाकर मुख मरोर कुछ ताने मारना तक नहीं जानती थी, उसीने किसी तरह जान लिया कि मनभावनकी मनभावती कोई और है मैं नहीं हूं, तो क्रोधके मारे आखोंसे आसूं बहकर स्तनमण्डलपर हारकी शोभा देने लगे । पतिने जान लिया कि प्यारीको मेरे अपचारसे कोई कष्ट पहुँचा है । झट पास आ प्रेम भरी दो बातें सुनादीं, न जाने उसका मान कहां चला गया । इस तरह मुग्धा प्रथमावतीर्ण यौवनविकारा, प्रथमावतीर्ण मदनविकारा, रतिमे वाम, समधिकलज्जावती और मानमें मृदु होती हैं । इन सबके जुदे'जुदे उदाहरण दिखा दिये गये हैं। मध्या–जिसे जवानी पूरी आ गई हो, जिसके हृदयमें कामने पूरा वास कर लिया हो, जो कि रमणमें विचित्र हो, जिसकी वाणीमें कुछ प्रगल्भता (चञ्चली) आगई हो, जिसके लाज मध्यम हो । संस्कृतके साहित्यमें लक्षणकी प्रत्येक बातका जुदा जुदा उदाहरण दिया है, किन्तु भाषाके साहित्यवाले इन बातोंमेंसे लज्जा और यौवनको लेकर ही अपना लक्षण करते हैं कि–

" जाके तनमें होत है, लाज मनोज समान ।
तासों मध्या कहत हैं, कवि मतिराम सुजान ॥ "

जिसके दिलमें लाज और काम दोनों सम हों, मतिराम उसे ' मध्या ' कहते हैं । इस तरह ये यौवन और लाजको लेकर ही लक्षण पूरा करते हैं । यह भाषाके साहित्यमें संस्कृत साहित्यसे अभी कमी रह रही है । प्रौढा— ' कामसे अन्धी, थोड़ी लज्जावाली, रतके लिये सब विधानोंकी पण्डिता, हाव भावोंमें बढ़ी हुई और आक्रान्तनायिका (पतिसे अपना शृंगार करा लेनेवाली) हुआ करती है । यह संस्कृतसाहित्यका प्रौढाका लक्षण है। लक्षणकी एक एक बातका संस्कृतसाहित्यमें पृथक् पृथक् उदाहरण दिया है, उनमेंसे कुछएक यहीं दिखाते हैं—

कामान्ध तथा थोड़ी शर्मवाली–

" धन्याऽसि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि ।
विश्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु ॥
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण ।
सख्यः शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि ॥ "

आप धन्य हैं जो प्यारेके साथ रमण करते हुए भी अनेकों विश्वसनीय मीठी मीठी बातें किया करती हैं। मैं तो शपथ खाकर कहती हूं कि जिस समय प्यारा नीवी खोलनेके लिये हाथ करता है, मुझे तो कुछ भी याद नहीं रहती, सभी कुछ भूल जाती हूं। यह कामान्ध है, इस कारण इसे हाथ डालते ही सब भूल जाता है, इसे लज्जा कम है नहीं तो यह अपनी बात कहती क्यों ? राग कालमें इस बेहोशीको उत्तम समझा जाता है, इस कारण इसकी रति उत्तम है। भाषाके कवियोंने तो रतकेलिपंडिता और अल्पलाजको लेकर ही प्रौढाका लक्षण कर दिया है, कि–" प्रौढा लज्जा ललित कछु, सकलकेलिकी खान " थोड़ी लाजवाली एवम् कामकलाकोविदा प्रौढा कहाती है। अल्पलज्जाका उदाहरण पीछे दे चुके हैं। जिसे हिन्दी भाषाका साहित्य आनन्द सम्मोहिता कहता है यह स्मरान्ध ही है। यह जो पद्माकर कहते हैं कि–" नीवी न वार सँवारिबेको, सु भई सुधि नारिको चारि घरीमें " उस नारिको नीवी और बाल सँभालनेकी चारि घड़ी तक सुध न हुई। इससे हाथ डालते ही बेहोश होजाना कह देना अधिक रुचिकर प्रतीत होता है जैसा कि संस्कृतके उदाहणमें दिखा चुके हैं कि 'नीवीं प्रति' नीवीपर हाथ डालते ही सब भूल गई। गाढ तारुण्य–उस समय कहा जाता है जब कि जितने स्तनादि बढ़ने चाहिय उतने बढ़ लेते हैं। इसका वर्णन संस्कृतके कवियोंने किया है कि–

" अत्युन्नतस्तनमुरो नयने सुदीर्घे ।
वक्रे भ्रुवावातितरां वचनं ततोऽपि ॥
मध्येऽधिकं तनुरनूनगुरुर्नितम्बो ।
मन्दा गतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ॥"

सोनेपर स्तन भी काफी बड़े हो गये हैं, आखें भी जितनी बड़ी होनी चाहिये थीं उतनी बड़ी हो चुकीं। भौंहें कटीली एवम् वाक्चातुरी पूरी सीख चुकी है। कमर यथेष्ट पतली पड़ गई एवम् नितम्ब काफी भारी हो गये, इस अद्भुत यौवनवालीकी गति भी कुछ २मन्द हो गई है। इसी बातको विहारी दासने और ही तरीकेसे कहा है कि—

१२

"अपने अँगको जानिकैं, यौवन नृपति प्रवीन ।
स्तन नयन नितम्बको, बडो इजाफा कीन ॥"

परम चतुर यौवनराजने अपने निजी जानकर स्तन, नयन और नितम्बोंकी खूब वृद्धि कर दी है । यौवनसे इनकी वृद्धि होती है जब उतनी ही पूरी वृद्धि हो लेती है उसे ही गाढ तारुण्य कहते हैं । उसके श्लोकमें तो केवल कटिके पतले होनेकी ही बात है किन्तु विहारीदासने कैसे घटती है यह भी साथ बताया है कि-

"ज्यों २ यौवन जेठ दिन, कुचमिति अति अधिकाति ।
त्यों २ क्षण २ कटि क्षया, क्षीण परत नित जाति ॥"

जैसे २ जेठके दिनोंकी तरह यौवनके दिन बढ़ते हैं, वैसे ही वैसे छोटे २ स्तन भी अत्यन्त बढ़ते जाते हैं । उसी तरह दिन २ कमररूपी रात छोटी या पतली होती जाती है । हावभावोंको प्रायः सभी जानते हैं, इस कारण इसका उदाहरण न देकर आक्रान्त नायिकाका उदाहरण देते हैं कि—

"स्वामिन् ! भंगुरयालकं सतिलकं भालं विलासिन् कुरु ।
प्राणेश त्रुटितं पयोधरतटे हारं पुनर्योजय ॥
इत्युक्ता सुरतावसानसमये सम्पूर्णचन्द्रानना ।
स्पृष्टा तेन तथव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम् ॥"

खिले हुए पूर्णचाँदकेसे मुखवाली उस रमणीने रमणकार्य्यके पीछे अपने प्रियतमसे कहा है कि-मेरे शिरके वाल विखर गये हैं उन्हें फिर बाँध कर जुल्फें डाल दीजिये। ऐ विलासी ! मेरे माथेके तिलकको फिर माथेमें लगा दे, हार टूट गया है, इसे ठीक करके गलेमें डाल दो जो कि यह फिर पाहिलेकी तरह मेरे सीनेकी शोभा बढ़ाने लग जाय । उसके इतने कहनेसे उसके प्यारेने इन कामोंको करते करते जो छुआ तो फिर वह रागरँगमें रँग गई ।

मध्या और प्रौढाके कुछ भेद ।

मध्या और प्रगल्भा (प्रौढा) के धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन तीन भेद और होते हैं इस कारण दोनों मिलकर छः हो जाते हैं । धैर्य्य (दृढता) वाली धीरा, अधैर्य्य (दृढतारहित) अधीरा एवम् जो कुछ दृढता एवम् कुछ विचलित होनेवाली हो वह धीराधीरा कहाती है । प्यारेके अपराधको जान, मानके समय इन गुणोंका प्रायः प्रयोग देखा जाता है । इसमें यह विशेषता है कि-'मध्या धीरा क्रोधके कारण प्यारेको परितप्त करती है तो आक्षेप भरे हास्ययुक्त वक्रोक्तिसे उसे जलाती है । मध्याधीराधीरा रोकर एवम् अधीरा कठोर वचनोंसे उसे दुःखी करती है ।

यदि धीरा प्रगल्भा नाराज होती है तो अपने क्रोधको छिपा बाहिरके आदर तो दिखा देती है, किन्तु रतकेलि उस समय नहीं करती। धीराधीरा प्रगल्भा तो आक्षेपोंके वचनोंसे उसे दुःखी करती है। इसका उदाहरण देते हैं कि-

" अनलंकृतोऽपि सुन्दर ! हरसि मनो मे यतः प्रसभम्।
किं पुनरलंकृतस्त्वं सम्प्रति नखरक्षतैरस्याः ॥ "

हे सुन्दर ! जब आप कुछ भी अलङ्कार नहीं करते थे उस समय भी सुन्दर लगा करते हैं, फिर अब तो मुझे क्यों न अच्छे लगोगे जब कि उस अपनी प्यारीके नखोंसे अलंकृत हो रहे हो। यह आक्षेपके साथ कहना है इससे उसके हृदयमें सुनते ही वेदना होती है। अधीरा प्रगल्भा क्रोध करती है तो प्यारेकी ताडना करती है। ये छः ज्येष्ठा और कनिष्ठा भेदसे बारह प्रकारकी हो जाती हैं। नायककी प्रेमदृष्टिमें जिसका अधिक महत्त्व है वह ' जेष्ठा ' एवं जिसका थोड़ा महत्त्व है उसे ' कनिष्ठा ' कहते हैं। १२ ये और एक प्रकारकी मुग्धा इस तरह स्वकीयाके तेरह भेद हुए। दो तरहकी परकीया एवम् एक सामान्यनायिका, इस तरह सोलह भेद होते हैं। ये सौलहों प्रकारकी नायिकाओंके अवस्थाविशेषसे एक २ के आठ २ भेद और बताये हैं कि, इनके स्वाधीनभर्त्तृका, खण्डिता, अभिसारिका, कलहान्तारिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्त्तृका, वासकसज्जा ये भेद और हैं। इन आठ भेदोंका कामशास्त्रके ग्रन्थोंमें भी निरूपण आया है एवम् साहित्यशास्त्रमें भी देखते हैं, इस कारण यहाँ इनके लक्षणोंपर भी प्रकाश डालते हैं।

स्वाधीन पतिका।

साहित्य०-" कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात् स्वाधीनभर्त्तृका ॥ "

पंचशायक०-" यस्याः पतिर्मिल्वति केलिकलानुरक्तः।
पार्श्वं न मुञ्चति मनोभववेगयुक्तः ॥
स्यात्सुन्दरी सकल सौख्यकलानिधाना।
स्वाधीनपूर्वपतिकेति वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ "

अनंगरंग०-" वैराग्यवान् सकलकार्य्यकलाकलापे।
कान्तो जहाति न समीपमनङ्गलौल्यात्।
यस्याः स्त्रियाः सकलसौख्यसमन्विता सा।
स्वाधीनपूर्वपतिकेति बुधैः प्रदिष्टा ॥ "

काव्यप्रभाकर-' स्वाधिनपतिकाके रहत, पिया सदा आधीन '

रसराज-" सदा रूप गुण रीझि पिय, जाके रहै अधीन ।
स्वाधिनपतिका नायिका, वरणैं कवि परवीन ॥ "

उदाहृत पाँच ग्रन्थोंने ये लक्षण किये हैं। इन सब लक्षणोंको समन्वयके साथ सबका एक साथ ही अर्थ किये देते हैं कि-जिसे हावभाव आदिका पूरा चातुर्य्य प्राप्त हो, जिसकी कि रति अत्यन्त सुखकारी होती हो, जिसके सहवासकी पतिको यहाँ तक इच्छा बनी रहती हो कि उसकी बगलगीरीको कभी भी नहीं छोडता हो, और सब कामोंको छोड़ बैठा हो, ऐसी सुन्दरीको 'स्वाधीनपतिका' कहते हैं। यह उदाहृत वाक्योंका सार है, जो इनके पदार्थको आपसमें अन्वित करनेसे निकलता है ।

खण्डिता।

साहित्य०-" पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंभोगचिह्नितः ।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता ॥"

काव्यप्रभाकर-' दुखित 'खण्डिता' पीय तन, लखि परतिय रति अंक ।
को बड़भागिनि पिय रँगी, लाली नैनानि बंक ॥'

पंचशायक-" प्रातर्विनिद्रवदनस्मरभारचौरो ।
निद्रालसोऽलसगतिर्नखविक्षिताङ्गः ॥
यस्याः प्रयात्यभिमुखं सुदृशो युवत्याः ।
सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ॥"

अनङ्गरङ्ग-" निखिलसुरतचिह्नैरङ्किताङ्गः स पत्न्याः ।
सुभृशकलुषनेत्रो निद्रया जीवितेशः ॥
समयमधुरवाक्यं प्रातरभ्येति यस्याः ।
कथयति मुनिरेनां खण्डिताख्यां पुरन्ध्रीम् ॥"

रसराज-' पिय तन औरहि नारिके, रतिके चिह्न निहारि ।
दुखित होय सो खण्डिता, वर्णत सुकवि विचारि ॥'

मल्लिनाथ-"निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो ।
नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः ॥
यस्याः कुतोऽपि गृहमेति पतिः प्रभाते ।
सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ॥"

इसी तरह दूसरे दूसरे ग्रन्थकारोंने भी अपने अपने शब्दोंसे खण्डिताका लक्षण किया है। उदाहृत लक्षणोंमेंसे पहिले और पांचमें लक्षणका यही अर्थ होता है कि-जिसका पति दूसरी स्त्रीके संभोगके चिह्नोंसे चिह्नित होकर सामने

आये, जिसे देख उसका हृदय ईर्ष्यासे दूषित हो उसे खण्डिता कहते हैं। पांचवेंने उसके ईर्ष्याके कार्य्य दुःखको बता दिया एवम् पहिलेमें ईर्ष्या ही केवल है, यह अन्तर है। तीसरे, चौथे और छठे लक्षणमें खण्डिताके पतिके आनेका समय बताया है कि–'प्रातःकाल आये'। नाखूनोंके निशान संभोगके चिह्न हैं, इस बातको तीसरे और छठे लक्षणमें पाते हैं एवम् अनङ्गरंग नखक्षत, दंतक्षत आदिक सभी संभोगके चिह्नोंको ले रहा है। उसकी आखें लाल हों इस बातको दूसरे और छठे लक्षणमें बताया है। लालीके कारण नींदको चौथे और छठे लक्षणमें कहा है। निद्राके आलसमें हो एवम् अलसौं ही चाल हो, यह बात तीसरेमें एवम् नींदके आलससे आखें भी कुछ खुली कुछ मिची हों, यह बात छठे लक्षणमें है। इन सबका मिलकर यह अर्थ होता है, कि–'प्रातःकाल संभोगके नख दंतादि चिह्नोंसे चिह्नित होकर नींदके आलसके मारे लाल लाल अधखुली आखोंवाला अलसाया आलससे लड़खड़ाता हुआ जिसका पति जिसके पास मीठा बोलता आये उसे 'खण्डिता' कहते हैं। ये दो लक्षण अनेक ग्रन्थोंके साथ मिलान करके दिखा दिये हैं, किन्तु ऐसा करनेसे ग्रन्थका विस्तार बढ़ता है एवम् इसके तमाम लक्षणोंको वास्तविक रूपसे देखा जाय तो एक ही पदार्थको जुदी जुदी रीतिसे कहते हैं, इस कारण अत्र ऐसा न करके सामान्यरूपसे अगिले भेद बतायेंगे। यहां इतना मिलानेका यही कारण है, कि कामशास्त्र जो है वह वस्तुरूपसे साहित्यमें है, केवल इनके साथ अलंकार लगानेका साहित्यकोंका कार्य्य रह जाता है।

अभिसारिका।

साहित्यदर्पण–"अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताऽभिसारिका ॥"

काव्यप्रभाकर–"अभिसारिक बुलवै पियहि, कै आपुहि चलि जाय।
करि सिंगार भूषण पहिरि, तिया चली हरषाय ॥"

जो स्त्री यौवनके आरम्भमें ही चरित्रहीन होगयी हो ऐसी स्त्री ज्यों २ जवानी आती जाती है त्यों २ कामसे व्याकुल होकर छिपकर दूसरेके घर व्यभिचारके लिये जाया करती है। सिवा इसके अन्य पन्द्रह तरहकी नायिकाएँ भी अपने पतिके स्थानोंपर जाती हैं, यदि वे कामके वश होकर उस जगह छिपकर जाती हैं या छिपाकर बुलाती हैं तो इस कारण अभिसारिका भी कहाती हैं।

कलहान्तरिता ।

सा०-"चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या ।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तारिता तु सा ॥"

का०-कलहान्तारिता कलह कारि, पियसों पुनि पाछिताय ।
रसन नयन अजुगत नहीं, कर हटक्यो पिय आय ॥"

किसी साधारणसी बातपर नाराज होकर प्यारेको हटक पीछे पश्चात्ताप करे, उसे 'कलहान्तारिता' कहते हैं ।

विप्रलब्धा ।

साहित्यदर्पण-"प्रियः कृत्वाऽपि सङ्केतं यस्या नायाति सन्निधिम् ।
'विप्रलब्धा' तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता ॥"

काव्यप्रभाकर-'विप्रलब्ध अकुलाय, पियविहीन सङ्केत लखि ।
कहां गयो पिय हाय, सेज फूल अब शूल सम ॥'

जिसका प्यारा आनेका संकेत करके फिर उसके पास न आये तो ऐसी अत्यन्त अनाहत नायिका 'विप्रलब्धा' कहाती है ।

प्रोषितभर्तृका ॥

साहित्यदर्पण-"नानाकार्य्यवशाद्यस्या दूरदेशं गतः पतिः ।
सा मनोभवदुःखार्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका ॥"

काव्यप्रभाकर-'प्रोषित पतिका सोइ, पिय विदेशसों दुखित जो ।
निशिदिन कातर रोइ, पिय अवलौं बहुरे नहीं ॥'

अनेकों कामोंकी वजहसे जिसका पति विदेश गया हो और वह स्त्री मेघघटा आदि उद्दीपनोंसे आक्रान्त हो कामसे जल उठे एवम् उसे तारे गिनतेमें ही सवेरा हो, ऐसी स्त्री 'प्रोषितपतिका' कहाती है ।

वासकसज्जा ।

साहित्यदर्पण-"कुरुते मण्डनं यस्याः, सज्जिते वासवेश्मनि ।
सा तु वासकसज्जा स्याद् विदितप्रियसंगमा ॥"

काव्यप्रभाकर-"वासकसज्जा सेज सज, पीयामिलनके काज ।
सजी सेज पिय मिलनहित, सांझहितें तिय आज ॥"

जिसे यह पता हो कि पति आयेंगे, इस कारण रतारंभकी सब तयारी कर ली हो, घर सजा शृंगार करके प्यारेकी प्रतीक्षामें राह निहार रही हो, उसे 'वासकसज्जा' कहते हैं ।

विरहोत्कण्ठिता।

सा०—"आगन्तुं कृतचित्तोऽपि दैवान्नायाति यत्प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कण्ठिता तु सा॥"

का०—"उत्का सोच सहेटमें, क्यों आयो नहिं कन्त।
रात जात सियरात सव, पिय विलमे कहिं अन्त॥"

जो अनेकों तरहके रंगाविरंगे फूलोंकी सुहावनी मालाएँ पहिने हुए उस पतिकी प्रतीक्षा करती हुई आकस्मिक कारणपर विचार करती हुई कि—पति अवश्य आनेवाले थे क्यों नहीं आ रहे हैं उत्कंठित हो उठती है, उसे 'विरहोत्कण्ठिता' कहते हैं। इस तरह १२८ भेद होगये। फिर प्रत्येकके उत्तम, मध्यम और अधम स्वरूपसे ३८४ भेद होते हैं। इसके सिवा यह बात है कि इन भेदोंके लक्ष्योंमें सांकर्य्य भी देखा जाता है। इनके सिवा और भी अनेक तरहकी नायिकाएँ हैं जो कि हस्तिनी, पद्मिनी आदि नामोंसे कामशास्त्रमें व्यवहृत होती हैं, यहां उन्हें विस्तारके साथ न दिखाकर सांप्रयोगिकके पहिले अध्यायमें दिखाया है। यद्यपि यह भी बहुत संक्षेपसे कहा गया है, तो भी इतना विस्तृत हो गया है।

परदारपर गोणिकापुत्र।

अन्यस्मात्कारणाद्विमर्शमाह—

फलसे तो नायिकओंका विचार कर चुके, अब दूसरे कारणोंको लेकर जो नायिकाएँ बनाई जाती हैं, उनपर विचार करते हैं कि—

अन्यकारणवशात्परपरिगृहीतापि पाक्षिकी चतुर्थीति गोणिकापुत्रः॥ ४॥

यदि पुत्र और रतिसुखके अलावा दूसरे दूसरे और भी कारण ऐसे ही हों तो उस पक्षमें दूसरेकी व्याही स्त्री भी चौथी नायिका हो सकती है; ऐसा गोणिकापुत्र कहते हैं॥ ४॥

अन्यकारणवशादिति—पुत्रात्सुखाच्च यदन्यत्कारणं तद्वशात्, पाक्षिकीति—यदा कारणान्तरं तदा तस्मिन्पक्षे भवतीति पाक्षिकी। अन्यदा तु नैवेति बाभ्रव्यमतमनुसृत्याह॥ ४॥

पुत्र और रतिसुखसे भिन्न जो दूसरे कारण हैं उनके परवश हो यानी जब वे कारण हों उस समय उसी पक्षमें परनारि चौथी नायिका भी होती है, इस कारण यह पाक्षिकी नायिका है। यदि वे कारण नहीं तो यह नहीं, यह बाभ्रवीयका मत लेकर गोणिकापुत्रने कहा है॥ ४॥

गम्य परदारकी पहिचान ।

गोणिकापुत्रः पारदारिकं पृथक्प्रोवाचेत्युक्तम् । तत्र विषयस्तदर्थमाह—

गोणिकापुत्रने पारदारिक प्रकरण पृथक् कहा है यह पहिले अध्यायके बारहवें सूत्रमें कह चुके हैं। उसमें जो विषय है उसकी विशुद्धिके लिये यहां कुछ कहते हैं कि पारदारिक कबके लिये है-

स यदा मन्यते स्वैरिणीयम् ॥ ५ ॥

परनारीविषयक विचार।

१ छान्दोग्य उपनिषद् २-१३-१-२ " उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रतिस्त्रीं सह शेते स प्रतीहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनम्, एतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति । मिथुनान् मिथुनात् प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग् जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान् कीर्त्या न कांचन परिहरेत् तद्व्रतम् ॥ " इस श्रुतिपर श्रीरंगरामानुजमुनि लिखते हैं कि-" प्रार्थयमानामिति शेषः, प्रार्थयमानसर्वयोषिद् गमनस्य वामदेव्योपासनाङ्गत्वेन विधानात्, परदारगमनप्रतिषेधवचनानि तदतिरिक्तविषयाणि द्रष्टव्यानि " इस वामदेव्य सामको और इसके भाष्यको यहां रखा है, इसका अर्थ है कि ' स्त्रीके साथ संकेत करना (हिंकार) उसके स्वीकारसे उसे प्रसन्न करना (प्रस्ताव) उसके साथ सहवासकी खट्वापर पहुँच जाना (उद्गीथ) यन्त्रसंयोग करना (प्रतिहार), स्पर्श सुखके समय तक पहुँचना (निधन) एवम् मैथुनकी समाप्तिपर पहुँच जाना भी पूरा निधन है । यह वामदेव्य साम इस प्रकारके मिथुन (सहवास) में स्थित है, जो व्यक्ति इस सामको यथार्थरूपसे जानता है उसका ऐसा सहवास करना सफल है । वह तेजस्वी होता है । पूरी आयुको पाता है,प्रजा, पशु और कीर्तिसे बढ़ता है सपत्नीक रहता है। किसीका परित्याग न करे यही इसका व्रत है । यह मूलश्रुतिका अर्थ किया है । ' किसीका परित्याग न करे ' इसका भाष्य करते हुए श्रीशंकराचार्य्यजीने कहा है कि-' शय्यापर आई हुई कामार्त किसी भी स्त्रीका त्याग न करे । ' श्रीसंप्रदायके उपनिषद् भाष्यकार श्रीरंगरामानुज मुनिने भी लिखा है कि-" जो परस्त्रियां अपने सहवासके लिये अत्यन्त आकुल हैं उन स्त्रियोंके साथ सहवास करनेका वामदेव्य सामकी उपासनाके अंगके रूपमें विधान होनेसे परदार गमनके निषेधके स्मृति आदिके वचन, इस विषयसे अतिरिक्त स्थलके लिये समझने चाहियें; ऐसे स्थलके नहीं जहां कि इतनी दीवानीसे पाला पड़ जाय । ऐसी व्यवस्थाके सिवा कोई भी व्यवस्थापक, चाहे वह किसी भी कारणसे किया जाय परस्त्रीरमणमें पुण्य नहीं मानता, न कामशास्त्रका ही यह मन्तव्य है । वह तो इसे " आयुर्यशोरिपुरधर्मसुहृत्स चायम् " आयु और यशका शत्रु एवं अधर्मका दोस्त मानते हैं, किन्तु जिन कारणोंसे लोकमें परस्त्रीगमन होता है उनको गिनाया मात्र है, स्वतंत्र विधान नहीं है शय्यापर आई हुई उर्वशीके त्यागसे अर्जुनको बारह वर्ष क्लैब्य भोगना पड़ा था ॥

नायक जब यह समझे कि, यह व्यभिचारिणी है एवं इस काममें यह बिलकुल स्वतंत्र है तब ॥ ५ ॥

स इति नायकः । मन्यतेऽधिगच्छेत्स्वैरिणीयम् । स्वैरिणी–स्वतन्त्रा ।

जिस पुरुषका पुत्र और रतिसुखके सिवा और भी प्रयोजन हो वह यह निश्चितरूपसे जान जाय कि यह स्वतंत्र है, तभी उसे नायिका बनानेकी चेष्टा करे नहीं तो नहीं ॥ ५ ॥

तदेव दर्शयति–

निश्चय कैसे करे कि, इसके साथ प्रवृत्त होनेसें धर्महानि न होगी यही बात यहां दिखाते हैं—

अन्यतोऽपि बहुशो व्यवसितचारित्रा तस्यां वेश्याया-मिव गमनमुत्तमवर्णिन्यामपि न धर्मपीडां करि-ष्यति पुनर्भूरियम् ॥ ६ ॥

जो दूसरोंसे भी अनेकबार चारित्रभ्रष्ट हो चुकी हो, चाहे वह उत्तम वर्णकी भी क्यों न हो, उसमें वेश्याकी तरह प्रवृत्त हो। यह पुनर्भूकी भी प्रवृत्ति धर्मकी नाशक न होगी ॥ ६ ॥

अन्यतोऽपीति–यथा मामभियुञ्जाना शीलं खण्डयति तथान्येष्वपि, बहून्वारान् व्यवसितचारित्रा खण्डितशीला ततश्च वेश्यातुल्या । तस्यां वेश्यायामिव । 'पुन-र्भ्वामिव ' इत्यनाम्नायः पाठ. । यत एकस्माद्वितीयं प्राप्ता पुनर्भूः सा च न बहुशः खण्डितचारित्रेति न समानो दृष्टान्तः ।

यह जैसे मुझसे मिलती हुई बिगड़ती है, उसी तरह दूसरोंपर भी अनेक वार बिगड़ चुकी है, इस कारण यह वेश्याके बराबर है। ऐसी स्त्रीमें वेश्याकी तरह प्रवृत्त हो । किसी सूत्रमें वेश्याकी तरहकी जगह पुनर्भूकी तरह ऐसा पाठ करते थे, किन्तु वह पाठ ठीक नहीं है । क्योंकि पुनर्भू तो एकके बाद ही दूसरेको प्राप्त होतो है, उसका चारित्र अधिकोंका खराब किया नहीं होता इस कारण कुलटाका दृष्टान्त पुनर्भू नहीं हो सकती, क्योंकि वह पुनर्भू कुल-टासे हजारगुनी श्रेष्ठ है अतः यह बराबरका दृष्टान्त नहीं हो सकता ।

उत्तमवर्णिन्यामिति—किमसवर्णाधमवर्णयोरेवं वर्ण्यते तत्रापि न दोषः। यथो-क्तम्—'जालकार्मुकवस्त्रावीन्दद्यादात्मविशुद्धये । चतुर्णामपि वर्णानां नारीर्हत्वा

व्यवस्थिताः ॥ ' इति । अस्यार्थः—जालं जयधर्मभुवं ब्राह्मणीं दद्यात् । क्षत्रियां कार्मुकम् । वैश्यां वस्त्रम् । शूद्रामविमिति । यत्र हि सापि परिफल्गुदोषा तत्राभिगमनं न कस्यापि धर्मोपघाते स्यादित्याह—गमनमपि कारणवशात् क्रियमाणं न धर्मपीडां करिष्यति । अधर्मस्याभावात् ॥ ६ ॥

प्रश्न–उत्तमवर्णके विषयमें ही यह कह रहे हो वा असवर्णा और अधमवर्णाके विषयमें भी यही कहते हो ? उत्तर–उनमें भी कोई दोष नहीं है । कहा भी है कि—" चारों वर्णोंकी व्याभिचारिणी स्त्रियोंको छोड़ती वार जाल, कार्मुक, वस्त्र और अवि (भेड़) को आत्मशुद्धिके लिये दे " जाल–जीत और धर्मके धनको कहते हैं, इसे तो ब्राह्मणीके लिये दान कर दे, क्षत्रियाको धनुष दे दे, वैश्याको वस्त्र दे एवम् शूद्राको भेडें दे । इसमें निश्चय यह बात है कि यदि जिस परस्त्रीसे सहवास करना हो वह भी अत्यन्त दूषित हो तो उसमें अभिगमन करना किसीके भी धर्मघातके लिये न होगा । इसी लिये वात्स्यायन कहते हैं कि, यदि कारणवश ऐसी उत्तम अधम किसी भी वर्णकी स्त्रीके साथ गमन किया जाय तो वह धर्मको नष्ट न करेगा, क्योंकि इसमें कोई अधर्म नहीं है ॥ ६ ॥

पुनर्भूरियं कथमित्याह—

पीछेके सूत्रमें जो पुनर्भूमें प्रवृत्ति वताई है वह कैसीमें होनी चाहिये, क्यों उसमें अधर्म नहीं है ? इस बातको बतानेके लिये सूत्र करते हैं कि–

अन्यपूर्वावरुद्धा नात्र शङ्कास्ति ॥ ७ ॥

जो क्षतयोनि पुनर्भू है वह तो अन्यकी है ही तथा जो दूसरेकी स्त्री दूसरेने अपने घरमें डाल ली है वह भी विगड़ी हुई ही है इस कारण इनमें अधर्मकी शंका ही नहीं है ॥ ७ ॥

अन्यः पूर्वो यस्याः सेयं क्षतयोनिरनेनावरुद्धा संगृहीता नात्र शङ्कास्ति । गमने नाधर्मः स्यादिति । अनुत्तमवर्णिनीत्वात् । तत्र यद्यपि धर्मस्य पीडा नास्ति आशङ्का च, तथापि सुखं निमित्तीकृत्य न प्रवर्तेत निषिद्धत्वात् । किंतु वक्ष्य-

---

१ परनारीके साथ गमन करना तो अधर्म ही है पर उतना अधर्म नहीं है जितना कि किसी सचारित्राको चरित्रहीन करना है । किसी सदाचारिणीको हीन बनाना वज्र पाप है एवम् परदारगमन पाप है । वात्स्यायनने अपेक्षाको लेकर पापके लिये इनकार कर दिया है, क्योंकि भ्रष्टा तो बुरी है ही, पर वामदेव्य साममें जो विधान बताया है उसमें पाप नहीं है ।

माणमेव कारणं तेन विषयविशुद्ध्यर्थमिदमादावुक्तम् । यथोक्तम्—'विशुद्धिं विषयस्यादौ कारणानि च तत्त्वतः । प्रसमीक्ष्य प्रवर्तेत परस्त्रीषु न भावतः ॥' इति ॥ ७ ॥

पहिले जिसका कोई पति हो वह अन्यपूर्वा है ऐसी क्षतयोनि होती है । इस कथनसे उनका भी ग्रहण हो जाता है जो कि इसी तरह रख ली गई हैं, इनके गमनमें किसी प्रकारका अधर्म नहीं है, क्योंकि ये उत्तम वर्णकी नहीं हैं । इससे यह सिद्ध हो गया कि उत्तम वर्णोंमें धरेजे नहीं होते । यद्यपि इसमें अधर्म नहीं है न आशंका ही है तो भी इनमें सुखके लिये प्रवृत्त न हो, क्योंकि ऐसी स्त्रियोंके परिग्रहका शास्त्र समर्थक नहीं है । किन्तु प्रवृत्तिके कारण अगाड़ी बतायेंगे उनसे ही प्रवृत्त हो, यह तो विषयकी शुद्धिके लिये कह दिया है । कहा भी है कि 'पहिले विषयकी शुद्धि एवं वास्तविक रूपसे कारण देखे, पीछे परस्त्रियोंमें प्रवृत्त हो, केवल रतिके लिये ही प्रवृत्त न हो ७॥

परस्त्रीरमणके कारण ।

कारणान्याह—

अब परस्त्रीरमणके कारण बताते हैं, जिनके वश होकर मध्यस्थ वृत्तिके पुरुषोंको भी करना पड़ता है—

पतिं वा महान्तमीश्वरमस्मदमित्रसंसृष्टमियमवगृह्य प्रभुत्वेन चरति । सा मया संसृष्टा स्नेहादेनं व्यावर्तयिष्यति ॥ ८ ॥

इसका पति बड़ा और समर्थ है, हमारे वैरीके साथ उसकी मित्रता है, यह उसे रोककर मालिककी तरह चलती है, यदि यह मुझसे मिल जायगी तो उसे मेरे प्रेमके कारण उस वैरीके साथसे रोक देगी ॥ ८ ॥

पतिं वा महान्तमिति । अस्मदमित्रेण जातसख्यं पतिं तस्य शत्रोर्महात्त्वादैश्वर्यापकारसामर्थ्यं वेत्युभयमधिकृतं वेदितव्यम् (?) । अवगृह्य प्रभुत्वेन चरति—अवष्टभ्य स्वामिनं व्यवहरति । सा मया संसृष्टा स्नेहात्संयोगात्प्रवृद्धस्नेहात्तस्मादेनं व्यावर्तयिष्यति । अस्मदमित्रादपर्तुकामात्पतिं प्रभवन्ती निवर्तयिष्यति ततश्च

---

१ इस कथनसे यह प्रतीत होता है कि यशोधर उत्तमवर्णोंमें धरेजा या पुनर्विवाह नहीं मानता ॥

विशिष्टभावो मे भविष्यति । अन्यथा महान्तमीश्वरमाश्रितो मामेवाकृतपुरुषार्थं हनिष्यति ॥ ८ ॥

जिस समय परनारीकी ओर दृष्टि डाले तो यह बात अवश्य देख ले कि, इसका मालिक महापुरुष एवम् सामर्थ्यवान् है। उसीके आसरे हमारे वैरीका बड़प्पन एवम् सामर्थ्य है। वैरीके विषयको लेकर जहां तक परनारिविषयक सूत्र हैं उनमें भी इन दोनों बातोंको समझना चाहिये, यही अधिकारका तात्पर्य्य है। जिसपर हाथ डाले वह ऐसी होनी चाहिये जो मालिकको रोक-कर आप व्यवहार करे। उससे मिलनेका लक्ष्य यह होना चाहिये कि, यह मेरा प्रेम बढ़ जानेपर मेरे वैरीकी ओरसे अपने मालिकको खींच लेगी, मेरा उससे पीछे प्रेम हो जायगा। यदि ऐसा न होगा तो मेरा वैरी इतने बड़े विभवशा-लीके आसरे है, विना कुछ पुरुषार्थ किये मुझे मार लेगा ॥ ८ ॥

विरसं वा मयि शक्तमपकर्तुकामं च प्रकृतिमापाद-यिष्यति ॥ ९ ॥

मेरे अपकार करनेकी इच्छा रखनेवाले मेरेसे फिरे हुए अपने समर्थ पतिको मेरा पहिले जैसा ही मित्र बना देगी ॥ ९ ॥

विरसं वेति—कार्यवशान्मयि विरक्तं पतिं शक्तमप्रतिविधेयमपकर्तुकामं कदाह-मस्यापकरिष्यामीति बद्धानुशयं प्रकृतिमापादयिष्यति । प्रभवन्तीति मया संसृष्टा पूर्वावस्थं स्वभावं नेष्यति ॥ ९ ॥

जो कार्य्यवश मुझसे फिर चुका है जिसका कि प्रतीकार नहीं किया जा सकता, जो कि इस फिराकमें है कि मैं इसका कब अपकार करूं, यह यदि मुझसे मिल जायगी तो उसे ठीक कर देगी। यह समर्थ है मुझसे मिल-जानेपर पतिका पहिले जैसा स्वभाव कर देगी यानी जैसा मेरा उसका मेलथा वैसा ही करा देगी ॥ ९ ॥

तया वा मित्रीकृतेन मित्रकार्यममित्रप्रतीघातमन्यद्वा दुष्प्रतिपादकं कार्यं साधयिष्यामि ॥ १० ॥

इसके द्वारा इसके पतिको मित्र बना लेनेके बाद उच्चकोटिके मित्रोंसे होनेवाले कार्य्य तथा अपने वैरीका नाश एवम् दूसरे भी कठिन कामोंको सिद्ध कर लूंगा ॥ १० ॥

तया वेति । प्रभवन्त्या मया संसृष्टया मित्रीकृतेन तस्याः पत्या मित्रकार्यं तत्साध्यम् । मित्रकार्ये हि प्राणानपि त्यजेन्नरकमपि विशेत् । अमित्रप्रतीघातं स्वशरीरत्राणार्थम् । अन्यद्वा स्वकीयं दुष्प्रतिपादकं दुःसाधकं साधयिष्यामि १०॥

यदि यह समर्थ स्त्री मुझसे मिल जायगी तो इसके पतिके मित्र बन जानेके बाद उससे मित्रोंसे होनेवाले कार्य्य, सब करा लूंगा । सज्जन कहा करते हैं कि–" मित्रके लिये प्राणोंको भी दे दे नरक भी घुस जाय । " इसीके हाथोंसे वैरीको भी अपनी रक्षाके लिये मरा लूंगा । अथवा और भी जो कुछ मुझसे नहीं हो सकता वह सब अपना काम इससे करा लूंगा ॥ १० ॥

संसृष्टो वानया हत्वास्याः पतिमस्मद्भाव्यं तदैश्वर्यमेवमधिगमिष्यामि ॥ ११ ॥

मैं इससे मिलकर इसके पतिको मार, उस समय हमसे होनेवाले हमारे ऐश्वर्य्यको निश्चय ही पा जाऊंगा ॥ ११ ॥

संसृष्टो वानयेति । संप्रयोगादाहितस्नेहया कृतसंधिको हत्वास्याः पतिं द्विषन्तं तूष्णीं दण्डेन अस्मद्भाव्यमैश्वर्यमपि तदा भाव्यम् । केवलमस्मत्कुलं हत्वापि मत्तोऽपि वा हठादाच्छिद्यानेन प्रसह्य भुज्यते तत्प्राप्स्यामि । ततोऽस्य आततायित्वाद्व्यापादनमपि नाधर्माय ॥ ११ ॥

सहवासकी चतुरतासे इस स्त्रीके भीतर अपना प्रेम स्थापित करके इसे अच्छी तरह मिला लूँगा, फिर मुझसे वैर रखनेवाले इसके पतिको चुपचाप दण्डेसे इस प्रकार मार डालूंगा जो कि किसीको भी पता न चले । इस रीतिसे इसके मरनेके बाद हमारा होनेवाला ऐश्वर्य्य भी हमारा ही होजायगा । इसका पति हमारे कुलको मार, बचोखुचोंको जबरदस्ती दबा मुझसे भी बलपूर्वक अकेला ही भोग रहा है, मैं इस प्रकार उसे पा लूँगा । इसने ये काम किये हैं, इस कारण यह आततायी है अतः इसके मारनेमें पाप भी न होगा ॥ ११॥

---

१ धर्मशास्त्रमें लिखा है कि–" आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् " आततायी यदि अपनी तरफ लपके तो उसे विना बिचारे ही खतम कर दे । जो दूसरोंको धोकेसे मारकर धन संपत्ति हड़पते हैं, यदि ऐसोंको इनका सताया हुआ व्यक्ति युक्तिपूर्वक खपा दे तो उसे उचित ही है । कामसूत्रने दुखियोंको यह उपाय और दिखा दिया है जिसे दुनियाँमें देखते भी हैं, दुनियामें अनेकों ऐसी पापिनी स्त्रियाँ हो गई हैं जिन्होंने छोटे लोभके लिये अपने पतिपरमेश्वरोंको ही खपा दिया है ॥

निरत्ययं वास्या गमनमर्थानुबद्धम् । अहं च निःसार-त्वात्क्षीणवृत्त्युपायः । सोऽहमनेनोपायेन तद्धनमतिम-हदकृच्छ्रादधिगमिष्यामि ॥ १२ ॥

इसका गमन निर्दोष है, इससे धनकी प्राप्ति होगी, मैं सारहीन हूं, निर्धन हूं, मेरी जीविकाका कोई उपाय नहीं है । ऐसी स्थितिमें पड़ा हुआ मैं इस उपायसे इसके दिये हुए बहुतसे धनको पा जाऊँगा ॥ १२ ॥

निरत्ययं रक्षाद्यभावान्निर्दोषम् । अन्यत्राप्येतद्द्रष्टव्यम् । अर्थानुबद्धम्—आढय-त्वादस्याः । अहं च निःसारत्वान्निर्द्रव्यत्वात्क्षीणवृत्त्युपाय इति । वृत्तिर्जीविका तदुपायः कृष्यादिः स क्षीणो यस्येति । सोऽहं कुटुम्बभरणासमर्थोऽनेनोपायेना-भिगमनलक्षणेन तद्धनमतिमहद्धर्मादिसाधनमधिगमिष्यामि । स्वल्पाधिगमे तु नाधि-गच्छेदिति मन्यते । अकृच्छ्रादिति तया स्नेहाद्दीयमानम् । अन्यथा दृष्टादृष्टसा-धनं न स्यात्, तस्मात्कुटुम्बकार्थमकार्यमपि कार्यं स्यात् । तथा चोक्तम्—' माता वृद्धा पिता चैव साध्वी भार्या सुतः शिशुः । अप्यकार्यशतं कृत्वा भर्तव्या मनु-रब्रवीत् ॥ ' ॥ १२ ॥

इसके कोई भी हलकाबरजा नहीं है, इस कारण इसके पानेमें कोई बखेड़ा नहीं । यही बात सब जगह देख लेनी चाहिये । इसके साथ गमन करनेसे धन मिलेगा । मेरे पास कुछ भी नहीं है, न रोजगारको ही धन है । मेरी जीविकाका कोई उपाय नहीं है । वृत्तिनाम जीविकाका है, इसके उपाय खेती आदि हैं, मेरे ये सब नष्ट हो गये हैं । बेरोजिगार मैं अपने परिवारका भरण पोषण कैसे करूंगा, यदि इसके साथ मिल जाऊं तो बड़ा भारी धन सहजमें ही हाथ लग जाय, जिससे खूब धर्म कर सकूंगा । यदि थोड़े धनका लाभ हो तो न हाथ डाले; ऐसा कामशास्त्रके आचार्य्य मानते हैं । सहजका मिलना यही है कि वह प्रेमसे दे दे । विना ऐसा किये निर्धनसे इस लोक और परलोकके कार्य्य नहीं हो सकते, इस कारण कुटुम्बके पोषणके लिये अकार्य्यको भी करे । कहा भी है कि—" बुड्ढी मा, वृद्ध बाप, साध्वी स्त्री और गोदके बच्चे, सौ अकार्य्य करके भी पालने चाहियें । ऐसा मनुका कथन है ।" इस तरह इस प्रयोजनके लिये भी परस्त्रीरत हो ॥ १२ ॥

मर्मज्ञा वा मयि दृढमभिकामा सा मामनिच्छन्तं दोष-विख्यापनेन दूषयिष्यति ॥ १३ ॥

यह मेरे सारे रहस्यको जानती है, मुझमें दृढ अनुरक्त है, यदि मैं इसे न चाहूंगा तो यह मेरी बुराई करके दुनियांमें मेरा मुँह काला कर देगी ॥ १३ ॥

मयि दृढमभिकामेति। आभिमुख्येन कामयत इत्यभिकामा । दृढं मयि जातरागेत्यर्थः । मामनिच्छन्तं स्वतोऽन्यस्माद्वा दोषादोषविषयख्यापनेन मर्मज्ञत्वाल्लोके दूषयिष्यति । राज्यकामुकोऽयमिति येन मे विनाशः स्यात् । राजापथ्यकारीति ॥ १३ ॥

मुझे यह तहेदिलसे चाहती है, हर तरहसे मुझसे मिलनेकी अभिलाषा रखती है । यानी मुझमें इसका दृढ़ प्रेम है । यदि मैं इसे न चाहूंगा तो यह अपनेसे या दूसरेसे मेरे दोषोंको प्रकट कराके मुझे दुनियांमें दूषित करेगी, क्योंकि यह मेरा सारा हाल जानती है । मुझे यह कह देगी कि यह राजविद्रोही है, खुद राज करनेके लिये षड्यंत्र रच रहा है । इससे मेरा विनाश हो जायगा, क्योंकि राजा जरूर ही दबा देगा ॥ १३ ॥

असद्भूतं वा दोषं श्रद्धेयं दुष्परिहारं मयि क्षेप्स्यति येन मे विनाशः स्यात् ॥ १४ ॥

जो दोष नहीं भी है, उसे इस तरहसे कहेगी जिससे लोगोंको वह विश्वास हो जायगा जिसे कि मैं किसी प्रकार भी न धो सकूंगा; भलमानसी मिटकर व्यभिचारियोंमें सँभाला जाऊंगा, इस डरसे भी उस स्त्रीमें रत होजाय॥१४॥

असद्भूतं वेति । मया संप्रयुयुक्षुरिति मिथ्यैव दोषमुत्थाप्य श्रद्धेयं कृतकमदनलेखेन जातप्रत्ययम् । एवं च दुष्परिहारं मयि क्षेप्स्यति समारोपयिष्यति येन मे विनाशः स्यात् । पारदारिक इति ॥ १४ ॥

'मुझसे यह मिलना चाहता है' यह झूठा ही दोष लगा, झूठे प्रेमपत्र दिखा लोगोंको विश्वास करा देगी । इस प्रकार ऐसा दोष देगी कि मैं उसे मिटा

---

१ यह दशा उन प्राणियोंकी होती है जो राजमहलकी किसी स्त्रीके साथ सम्बन्ध रखते हैं एवम् जो उनके इस राजको जानती और चाहती है, उसकी तरफ दृष्टि भी नहीं करते । ऐसे आदमी यदि नहीं सँभलते या चाहनेवालीको राजी नहीं करते तो विशुद्ध यशको खोकर दुर्गतिके मुखमें चले जाते हैं ।

भो न सकूंगा एवम् उससे मेरे व्यक्तित्वका नाश हो जायगा । लोग मुझे व्यभिचारी कहेंगे ॥ १४ ॥

आयतिमन्तं वा वश्यं पतिं मत्तो विभिद्य द्विषतः संग्राहयिष्यति ॥ १५ ॥

प्रभाववाले वशवर्ती पतिको मुझसे जुदा करके वैरियोंमें मिला देगी इस कारण भी उससे मिल जाय ॥ १५ ॥

आयतिमन्तं प्रभावयुक्तं पतिं वश्यं यथोक्तकारिणं मत्तो विभिद्य मत्तोऽनिच्छतोऽपि मित्रीभूतं विश्लेष्य द्विषतः संग्राहयिष्यत्यस्मच्छत्रून्मैत्रीपूर्वं स्वीकारयिष्यति । ततश्च संगृहीतप्रभावा मां हनिष्यति ॥ १५ ॥

इसका पति प्रभावशाली आदमी है । जो यह कहती है वही करता है । यद्यपि वह मेरा मित्र है, मुझसे जुदा होकर मेरे वैरियोंसे मिलना नहीं चाहता; पर यह उसे मुझसे जुदा करके मेरे दुश्मनसे मिला देगी । इस तरह वह मेरा मित्र मेरा दुश्मन हो जायगा । इस प्रकार यह प्रभाव इकट्ठा करके मुझे मरा लेगी । इस परिस्थितिमें भी परदारगमन करे ॥ १५ ॥

स्वयं वा तैः सह संसृज्येत । मदवरोधानां वा दूषयिता पतिरस्यास्तदस्याहमपि दारानेव दूषयन्प्रतिकरिष्यामि ॥ १६ ॥

यदि उनके पतियोंने इसकी स्त्रीको भ्रष्ट कर रखा हो एवं उसका भी यह निश्चय हो, कि मैं भी इसकी स्त्रीको खराब करके बदला लूंगा तो आप ही अपने प्रयत्नसे उनसे मिले ॥ १६ ॥

स्वयं वा तैः सह संसृज्येत—समर्थैः अस्मदुपघातार्थम् । मदवरोधानां वेति—अस्मत्परिगृहीतानां दाराणामभिगमनेन दूषयिता । ततश्चानुरूपप्रत्यपकारेण शत्रोरानृण्यं गन्तव्यमिति । तदस्यापि दारानेवाभिगमनेन दूषयन्प्रतिकरिष्यामि १६॥

---

१ ये लीलाएँ शाही महलोंमें हुआ करती थीं शाहजादी और बेगमोंकी कामवासनाकी भेंट जिन्होंने अपने चारित्रको नहीं किया उन्हें अपना शरीर शूलीकी भेंट करना पड़ता था । एकवार एकसेनाके पदाधिकारीको बेगमकी गम न मिटानेके कारण सारी जवानी बेड़ियोंके प्यारमें काटनी पड़ी थी, शादने ही अपनी बेगमके इश्कका दुराग्रह अपनी आखोंसे देख स्वयम् छोड़ा तो छोड़ दिया, पर उस वीरने अपने मुखसे यह भी कहकर नहीं दिया कि बेगमसाहिबा मुझसे इश्कके गमको मिटवाना चाहती थी इसके लिये मेरी यह दशा हुई है ॥

अथवा उन समर्थोंके साथ आप ही मिले। यह बदला लेनेके लिये होता है, कि इसने मेरी स्त्रीको मुझे नुकसान पहुँचानेके लिये खराब किया है, मैं भी इससे बराबरका बदला लूं। क्योंकि वैरीसे बराबरका बदला लेकर ही उरिण हो। इस कारण मैं भी इसकी स्त्रियोंको खराब करके बदला लूंगा॥१६॥

राजनियोगाच्चान्तर्वर्तिनं शत्रुं वास्य निर्हनिष्यामि ॥१७॥

राजाने मुझे इसके लिये नियुक्त किया है। मैं इससे मिलकर भीतरके राजको निकाल लूंगा। इस तरह इस राजशत्रुको मार लूंगा ॥ १७ ॥

राजनियोगादिति । राज्ञाहमभ्यन्तरं निरूपयितुं नियुक्तस्तमुपायान्तराभावाद-स्याविश्वासया संसृज्य निष्क्रामयिष्यामि । गुरुत्वात्स्वामिकार्यस्य ॥ १७ ॥

राजाने मुझे इसके भेद लेनेके लिये नियुक्त किया है। रहस्य जाननेका दूसरा कोई उपाय नहीं है, सिवा इसके कि मैं इससे मिलकर इसका विश्वास-पात्र बन जाऊं, इसके पीछे तो सारा रहस्य निकाल लूंगा, क्योंकि स्वामीका कार्य्य सबसे बड़ा होता है, राजाके कामके लिये करना ही पड़ेगा ॥ १७ ॥

यामन्यां कामयिष्ये सास्या वशगा । तामनेन संक्र-मेणाधिगमिष्यामि ॥ १८ ॥

मैं जिस दूसरीको चाहता हूं वह इसके काबूमें है, मैं इससे मिलकर उसे पा लूंगा ॥ १८ ॥

यामन्यामिति । प्रस्तुतनायिकया अन्यां यां प्रकृष्टकारणवशात्कामयिष्ये, सास्या इति—प्रस्तुतनायिकाया वशगा यथोक्तकारिणी । तामप्रस्तुतामुपायान्तराभावाद-नया संक्रमायमाणया प्राप्स्यामि ॥ १८ ॥

बड़े गहरे कारणोंके कारण मैं जिस स्त्रीसे अपना मिलना जरूरी समझता हूं, वह स्त्री इस स्त्रीका कहा माननेवाली है। इस स्त्रीसे मिल जाना कठिन नहीं, पर उसके साथ मेरा विना इसके मिल लेना नितान्त कठिन है। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है, अतः पहिले मैं इससे मिलूं, फिर इसकी मारफत उसे प्राप्त करूंगा ॥ १८॥

कन्यामलभ्यां वात्माधीनामर्थरूपवतीं मयि संक्राम-यिष्यति ॥ १९ ॥

मुझे न मिल सकनेवाली कन्या इसके अधीन है, वह सुन्दर तथा धनवाली है, इसके मिलनेसे यह मुझे उससे मिला देगी ॥ १९ ॥

अलभ्या मया निर्धनत्वादियोगात् । आत्माधीनां तदायत्ताम् । अर्थरूपवतीं त्रिवर्गहेतुं मयि संक्रामयिष्यति। कन्यामिति । सा वा संप्रयुज्यमाना उभयं संघटयतीति तामेव तावदधिगच्छामि । एवं च कांचित्संप्रयुज्य या स्त्री वस्तु संघटयतीति ॥ १९ ॥

मैं निर्धन हूं, मेरे शिरपर कोई नहीं है अतः यह कन्या मुझे मेरे प्रयत्नसे नहीं मिल सकती, पर उसके आत्माधीन यानी वशमें है, इसके पास धन और रूप दोनों हैं । इस कन्याके मिलनेसे मेरे धर्म, अर्थ और काम तीनों बन जायँगे । यह उसे मेरे हाथमें कर देगी । इससे सहवास कर लेनेपर यह दोनों काम करा देगी । इस कारण पहिले इससे ही मिलूं । दुनियाँमें ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जो आप मिलकर खुसीसे दूसरीको मिलाती हैं ॥ १९ ॥

ममामित्रो वास्याः पत्या सहैकीभावमुपगतस्तमनया रसेन योजयिष्यामीत्येवमादिभिः कारणैः परस्त्रियमपि प्रकुर्वीत ॥ २० ॥

मेरा वैरी इसके पतिके साथ बिलकुल एक हो गया है, मैं इसके साथ मिलकर इसके हाथसे उसे जहर दिलवा दूंगा । इत्यादि कारणोंसे भी परस्त्रीगमन करे ॥ २० ॥

ममामित्रो वा प्राणहरोऽस्याः पत्या सहैकीभावमुपगतः सहासनशयनपानभोजनादिभिः । प्राक् 'पतिममित्रसंसृष्टम्' इति संश्लेषमात्रमुक्तम् । तमनया संसृष्टया रसेन कालान्तरप्राणहारिणा विषेण योजयिष्यामि । एवमादिकारणं यदा मन्येतेति प्रवर्तते तदा प्रकुर्वीत । प्रपूर्वः करोतिरभिगमे वर्तते । आत्मनेपदम् २०

मेरा वैरी वा जानो दुश्मन इसके पतिके साथ इतना एक हो गया है कि आसन, शयन, पान और भोजन सब एक हो गये हैं । आठवें सूत्रमें तो 'दुश्मने मिले हुए पतिको' इस टुकड़ेसे दुश्मनके साथ केवल मेलझोल मात्र ही कहा है और यहां तो इतनी एकता कही है, कि खाना पीना भी एक हो । मैं इस स्त्रीसे मिलकर उसपर प्राणहारी विषका प्रयोग कर सकता हूं । ऐसे कारणोंको माने तो भी परस्त्रीगमन कर सकता है । सूत्रमें 'प्रकुर्वीत' पद है जिसका 'अभिगमन करे' यह अर्थ है[1] ॥ २० ॥

---

[1] क्योंकि 'प्र' उपसर्गपूर्वक 'करोति' का अभिगमन ही अर्थ है, आत्मनेपद है, विधिलिंगका प्रयोग है ।

इति साहसिक्यं न केवलं रागादेव । इति परपरिग्रहगमनकारणानि ॥ २१ ॥

पराई स्त्रीका गमन, केवल रागमात्रसे ही नहीं होता । जो हमने ऊपर परस्त्रीगमनके कारण बताये हैं, लोग इन्हींके लिये किया करते हैं ॥ २१ ॥

साहसिक्यं न रागेण विषयस्याशुद्धत्वात्प्रकुर्वीत, किंतु कारणैरित्यर्थः॥ २१॥

परदारगमन रागसे न करे, क्योंकि रागसे किया हुआ विषय अशुद्ध है किन्तु इसके ऊपर बताये हुए कारण हों तो स्वार्थीजन कर लिया करते हैं । ये परदारगमनके कारण पूरे हुए ॥ २१ ॥

चारायणकी विधवा ।

एतैरेव कारणैर्महामात्रसंबद्धा राजसंबद्धा वा तत्रैकदेशचारिणी काचिदन्या वा कार्यसंपादिनी विधवा पञ्चमीति चारायणः ॥ २२ ॥

इन्हीं कारणोंसे महामात्रोंसे मिलनेवाली तथा राजासे मिलनेवाली एवम् इनके परिवारोंके किसी योग्य व्यक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली अथवा किसी औरसे सम्बन्ध रखनेवाली कार्य्यको कर देनेवाली 'विधवा' पांचवीं नायिका होती है, ऐसा चारायण आचार्य्यका मत है ॥ २२ ॥

एतैरिति यथोक्तैः । विधवा पञ्चमीति संबन्धः । प्राग्जीवद्भर्तृकेति विशेषः । तत्रापि पत्युरभावात् । महामात्रस्य राज्ञो वा संबन्धः । संबद्धा असंबद्धा वा । तत्रैकदेशचारिणी तदीयकुटुम्बैकदेशसंबद्धा । अन्या वा काचिदन्यजनसंबद्धा कार्यसंपादिनी यज्जनसंबद्धा तत्कार्येषु व्याप्रियमाणा । आसु तिसृषु विधवा स्वैरिणी पुनर्भूवेति विषयं विमृश्य पतिस्थाने राजानं महामात्रं अन्यं वा नियोज्य तत्प्रतिबद्धानि (नायिकाप्रतिबद्धानि) कारणानि योजयेत् ॥ २२ ॥

पहिले कहे हुए कारणोंसे ही पांचवीं नायका विधवा होती है । विधवाका पति विधवा होनेसे पहिले जीवित रहता है, इस कारण पहिली नायिकाओंसे इसमें इतनी विशेषता है । विचरतीबार भी किसीको पति मानकर नहीं विचरती । महामात्र, सामन्त-प्रधानमंत्री, सरदार तथा प्रधान सैनिक आदि कहाते हैं, इनसे सम्बन्ध हो वा राजाके साथ सम्बन्ध हो । अथवा इनके घरकी ही गुप्त चलवृत्तिकी हो अथवा इनके परिवारके किसी योग्य व्यक्तिके साथ सम्बन्ध रखनेवाली हो या किसी दूसरे व्यक्तिके साथ सम्बन्ध हो, पर

जिसके साथ सबन्ध हो उसके कामोंमें लगी रहनेवाली हो, तो उससे भी सम्बन्ध कर ले । कन्या, वेश्या और पुनर्भू इन तीनोंमें यह कौनसी नायिका है इस विषयका विचार करके विवाहिताके पतिसे जो कार्य्य हो वह कार्य्य राजा, महामात्र आदिके साथ लगा हुआ हो तो नायिकासे बँधे हुए मिलनेके कारणोंकी योजना करे। जो कर गुजरना हो कर गुजरे, मिलनेकी आवश्यकता हो तो मिल ले ॥ २२ ॥

सुवर्णनाभकी जोगिन ।

सैव प्रव्रजिता षष्ठीति सुवर्णनाभः ॥ २३ ॥

वैसी ही जोगिन बनी विधवा, छठी 'नायिका' होती है । ऐसा सुवर्ण-नाभ आचार्य्यका मत है ॥ २३ ॥

सैवेति । विधवा प्रव्रजिता राजमहामात्रयोरन्यस्य वा संबद्धा तत्कुलान्युपगच्छन्तीति नायिकानुवृत्त्या गृहधर्मत्वात्तत्रापि पूर्ववत्कारणानि योजयेत् ॥ २३ ॥

महामात्र, राजा या इन्हींके परिवार अथवा अन्य किसी योग्य व्यक्तिके साथ सम्बन्ध रखनेवाली जोगिन बनी विधवा हो । यदि पहिले बताये हुए कारणोंमेंसे कोई कारण हो तो इससे भी ताल्लुक पा ले । जिनसे इनका ताल्लुक होता है उसके साथ नायिकाओंके अनुसार इसका भी गृहधर्म देखा जाता है, इस कारण इसे भी नायिका कहते हैं ॥ २३ ॥

घोटकमुखकी वेश्याबालिका ।

गणिकाया दुहिता परिचारिका वानन्यपूर्वा सप्तमीति घोटकमुखः ॥ २४ ॥

पुरुषका संसर्ग न की हुई वेश्याकी वयःप्राप्त लड़की या ऐसी ही दासी सातवीं नायिका है, ऐसा घोटकमुख आचार्यका कथन है ॥ २४ ॥

गणिकाया दुहिता अनन्यपूर्वा पुरुषेणासंसृष्टा । परिचारिका वा चन्द्रापीडस्येव पत्रलेखा । तत्र पूर्वा वेश्या कन्याभासा वक्ष्यमाणपाणिग्रहणभेदाद्भिद्यते । द्वितीया कन्याप्यगृहीतपाणिर्नायकं परिचरन्तीति विशिष्यते ॥ २४ ॥

वेश्याकी लड़की जो कि बिलकुल भी बिगड़ी न हो अथवा ऐसी ही दासी

---

१ वेश्याओंमें यह रहता है कि रिगड़ापदीके अभ्यास करानेके लिये अपनी छोटी ही लड़कीको छिपे तौरपर उसके बराबरके लड़केसे लेकर धीरे २ बडे २ आदमियोंसे भी मिलाती रहती हैं । जब वह खूब मजबूत एवम् हरतरहके उपमर्द सहने लायक हो जाती है तो–

हो, जैसी कि कादम्बरीकी दासी पत्रलेखा चन्द्रापीडकी नायिका थी। तीनों नायिकाओंमें जिस वेश्याको गिनाया है, उनमें आई हुई वेश्या गुपचुप खेल खाकर भी कन्या कहलानेवाली वैशिक अधिकरणमें बताये हुए विवाहके भेदसे भिन्न हो जाती है तथा यह कन्या भी विना विवाह किये एवम् उससे पहिले विना किसीसे विगड़े नायककी सेवा करती है, इस कारण गिनी हुई वेश्यासे भिन्न है इसकी भी रश्म अदां हुई हुई नहीं होती ॥ २४ ॥

गोनर्दीयकी कुलयुवति।

उत्क्रान्तबालभावा कुलयुवतिरुपचारान्यत्वादष्टमीति गोनर्दीयः ॥ २५ ॥

बालभावको छोड़कर युवावस्थामें प्रवेश की हुई कुलयुवतिके दूसरे उपचार होते हैं इस कारण वह 'सातवीं' नायिका है, ऐसा गोनर्दीय आचार्यका कथन है ॥ २५ ॥

उत्क्रान्तबालभावा कुलयुवतिरिति—कुलकन्यैवोढा सती कालेनापक्रान्तबालभावा समुपारूढयौवना कुलयुवतिः। उपचारान्यत्वादिति—उपचारभेदात्सा हि न कन्यावदुपचर्यते। कन्यायामुपचारा अपरिस्फुटा विकल्पेन च प्रयुज्यन्ते। प्राप्तयौवनायास्तु परिस्फुटाः समुच्चयेन चेति ॥ २५ ॥

कुलकन्या ही विवाह हो जानेपर समयपर बालभाव छोड़कर युवावस्थाको प्राप्त होकर कुलयुवती बन जाती है। इसके उपचार जुदे तथा कन्याके उपचार जुदे हैं। कन्याकी तरह इसमें उपचार प्रयुक्त नहीं होते, क्योंकि कन्यामें उपचार छिपे तौरपर विकल्पसे प्रयुक्त होते हैं, पर जो जवान हो चुकी है उस कुलयुवतिमें समुच्चयसे परिस्फुट उपचार होते हैं यानी कुछ छिपे एवम् कुछ एक आवश्यकतावश खुले किये जाते हैं ॥ २५ ॥

—फिर किसी कामान्ध धनीको प्रथम समागमके नामपर बहका, एक अच्छी रकम ऐंठकर, जाहिराका सहवास कराती है, जिसे प्रचलित प्रथाके अनुसार (गूंज खेलना) कहते हैं। पर धनके पूरे कामके दीवाने यह नहीं समझ पाते कि यह सबसे पहिले मुझसे ही है या अनेकोंको पारकर चुकी है। घोटकमुख गुपचुपकी प्रथम संगताको नायिका गिनते हैं; बिगड़ी हुईको नहीं गिनते ॥

१ शिकार करनेके समय चन्द्रापीड किन्नरोंका पीछा करता हुआ मानससरोवरसे महाश्वेताके पास पहुँच, उसीके साथ कादम्बरीके यहाँ दाखिल हो गया है। कादम्बरीकी इच्छा इसके साथ शादी करनेकी हुई है। उसने चन्द्रापीडको बागमें टिकाकर पत्रलेखाको सेवामें छोड़ दिया है।

वात्स्यनका इन्हें पृथक् नायिका न माननेका कारण ।

कार्यान्तराभावादेतासामपि पूर्वास्वेवोपलक्षणम्, तस्माच्चतस्र एव नायिका इति वात्स्यायनः ॥ २६ ॥

कन्या, पुनर्भू, वेश्या और पराईस्त्रीके कार्य्यसे भिन्न इनका कार्य्य नहीं है, इस कारण इन्हीं चारोंके भीतर ही विधवा आदिक चारोंभी गतार्थ हो जाती हैं अतएव चारही नायकाएँ हैं, ऐसा वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥२६

कार्यान्तराभावादिति । कन्यादिषु चतसृषु यत्कार्यमुक्तं तद्व्यतिरिक्तानां विधवादीनां कार्याभावात्पूर्वास्वेवोपलक्षणमुपदर्शनम् । तत्रैव यथासंभवमुपलक्षयेदित्यर्थः । तत्र विधवा प्रव्रजितान्यकारणवशात्परपरिग्रहे द्रष्टव्या । गणिकादुहिता परिचारिका च सुखकार्यत्वाद्वेश्यायाम् । कुलयुवतिः पुत्रकलत्रफलत्वात्कन्यायाम् । उपचारभेदात्तद्भेदे नायिकातिसंप्रयोगात् । दृश्यते हि देशकालप्रकृतिसात्म्यभेदादेकस्यामुपचारबहुत्वम् ॥ २६ ॥

कन्या, पुनर्भू, वेश्या और परकीयामें जो कार्य्य कहा है वही उनसे जुदी कही गई विधवा आदिकोंमें भी है, भिन्न नहीं है इस कारण इनका भी दिग्‌दर्शन उन्हींसे हो जाता है । इन चारोंमेंसे जिसका अन्तर्भाव जिसमें हो सके, उसको उसीके भीतर गतार्थ कर देना चाहिये । इनमेंसे विधवा और जोगिनको अन्यकारणवश मिलाये जानेवाली परकीयाके भीतर गतार्थ समझनी चाहिये । वेश्याकी कन्या और दासी, सुखकार्य्यके लिये होनेके कारण वेश्यामें गतार्थ है ही । कुलयुवतिका पुत्र कलत्र फल है, इस कारण वह कन्यामें गतार्थ हो जाती है । यदि उपचारके भेदसे नायिओंका भेद मानोगे तो नायिकाओंके अधिक भेद हो जायँगे, इस कारण उनके संप्रयोगके विधान भी बढ़ जायँगे । क्योंकि देश, काल, प्रकृति और अनुकूलताके भेदसे एकमें भी बहुतसे उपचार देखे जाते हैं, इस कारण उपचार भेदसे नायिकाओंका भेद न मानना चाहिये ॥ २६ ॥

पांचवीं तृतीया प्रकृति ।

भिन्नत्वात्तृतीयाप्रकृतिः पञ्चमीत्येके ॥ २७ ॥

नपुंसक इन चारोंसे भिन्न है, इस कारण वह पांचवीं नायिका है, ऐसा भी किन्हीं आचार्य्योंका मत है ॥ २७ ॥

---

१ इसी कारण अग्नि पुराण आदिमें तीन, चार और अनेकके पक्ष दिखाये हैं ।

तृतीया प्रकृतिर्नपुंसकः स्त्रीत्वपुंस्त्वाभावाद्भिद्यते । तत्र चौपरिष्टकर्मणा सुखलाभात् । न रूपव्यापारभेदात्पञ्चमीत्येके । अन्यथा सुखकार्यत्वाद्वेश्याविशेष एव २७

तीसरी प्रकृति नपुंसक है। न यह स्त्री है एवं न पुरुष ही है, इस कारण यह भिन्न है । औपरिष्टक कर्मसे इससे सुखाभास मिलता है । कोई आचार्य इसका रूप और व्यापार भिन्न है, इसकारण इसे पंचमी नायिका नहीं मानते। यदि इसकी भिन्नता न होती तो सुखके लिये होनेके कारण यह भी एक प्रकारकी वेश्याकोटिमें आ जाती । वास्तवमें न इसमें रूप है एवं न नायिकाओंका व्यापार ही है, इस कारण यह नायिका नहीं है ॥ २७ ॥

नायकोंका[2] निरूपण ।

नायकविमर्शमाह—

नायिकाओंका विचार करके अब नायकोंका विचार करते हैं कि—

---

१ दूसरे अधिकरणका नौवाँ अध्याय इसी बुरे कामकी कहानीमें आया है । यह एक प्रकारका अप्राकृतिक व्यभिचार है ।

२ साहित्यदर्पणने तृतीयपरिच्छेदकी ६६ वीं कारिकासे लेकर ७७ कारिका तक नायकोंका वर्णन किया है । धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त ये चार तरहके नायक होते हैं । इनमेंसे प्रत्येकके दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ ये चार २ भेद और होकर सब मिलकर सोलह हो जाते हैं, इन सोलहोंमेंसे प्रत्येकके उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे ४८ भेद होजाते हैं ।

" त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता ॥

त्यागी, वीर, विद्वान्, खानदानी, अच्छी समृद्धिवाला, रूप, यौवन और उत्साहवाला, फुर्तीला, सबको प्रसन्न रखनेवाला, तेजस्वी, अपने अभिप्रायको जलदी न व्यक्त करनेवाला, और सुशीलव्यक्ति नेता कहलाया करता है । साहित्यवालोंने यह सब रसोंके नायकका एक ही लक्षण कह दिया है । मतिरामजीने नायकका लक्षण किया है कि—

तरुन सुघर सुन्दर सकल, काम कलानि प्रवीन ।
नायक यों मतिराम कहि, कवित गीत रस लीन ॥

इसमें कवित पद जो पड़ा है इससे नायकके अन्य गुण भी उसके अन्दर समझे जा सकते हैं । **धीरोदात्त**—जो अपनी आत्मश्लाघा न करे, क्षमाशील हो, अत्यन्त गंभीर स्वभाववाला एवम् हर्ष, शोक आदिसे स्वभाव न बदलता हो, निरभिमान या नम्रतायुक्त सचामानी और दृढव्रत हो । जैसे कि राम और युधिष्ठिर थे । **धीरोद्धत**—माया करनेवाला प्रचण्ड, चपल, अभिमानी और आत्मगौरवी एवम् अपने आप अपनी प्रशंसा करता हो । जैसे कि भीम—

एक एव तु सार्वलौकिको नायकः। प्रच्छन्नस्तु द्वितीयः। विशेषालाभात् । उत्तमाधममध्यमतां तु गुणागुणतो विद्यात्। तांस्तूभयोरपि गुणागुणान्वैशिके वक्ष्यामः२८॥

नायक तो एक ही है जिसे सारी दुनियाँ जानती है। इससे दूसरा तो छिपा हुआ है जो कि विशेषलाभके लिये लगता है। नायकोंमें उत्तमता, मध्यमता और अधमता तो गुण और गुणोंके अभावसे जानो। नायक और नायिकाके गुण अगुण तो वैशिक अधिकरणमें कहेंगे ॥ २८ ॥

एक एवेति। नायिकावद्भेदाभावादेक एव सार्वलौकिको नायकः कन्या-पुनर्भूवेश्यासु प्रवर्तमानः सर्वलोकविदितः। स एव परपरिगृहीतासु सुखव्यतिरे-

---

—सेन आदि। **धीरललित**—चिन्तारहित कोमल स्वभावका, वारंवार नृत्यगीतादि कलाओंमें लग जानेवाला व्यक्ति होता है। जैसे कि रत्नावलीनाटकमें वत्सराज आदि हैं। **धीरप्रशान्त**—जिसमें नायकके सामान्यगुण यथेष्ट हों, जो कि द्विज आदि हों, जैसे कि मालतीमाधव नाटकमें माधव देखा जाता है। **दक्षिण**—इन नायकोंमेंसे जो अपनी अनेकों महिलाओंमें समराग राखे। **धृष्ट**—जो अपराध करके भी निशंक रहे डाट फटकार पड़नेपर भी लज्जित न हो, दोष देखे जानेपर भी झूठ बोले। **अनुकूल**—जो एक ही नायिकामें आसक्त रहे। **शठ**—जो बाहिरसे तो दोनोंपर बराबरका प्रेम दिखा दे, किन्तु हृदय जिसपर पूर्ण अनुरक्त हो उसका भला एवम् जिसपर अनुरक्त नहीं उसकी छिपी बुराई करे। मतिरामजीने इसीपर कहा है कि-

दोहा-प्रिय बोले अप्रिय करे, निपट कपटयुत होय।
शठ नायक तासों कहत, कवि कोविद सब कोय॥

कवित्त-" मोतेतो न कछू अपराध भयो प्राणप्यारी,
मान करि रही यों ही काहेको अरसते।
लोचन चकोर मेरे, शीतलहिं होत तेरे,
अरुण कपोल मुखचंदके दरसते॥
कहै मतिराम उठि लागु उर मेरे कत,
करत कठोर मन आसुन बरसते।
कोपते कठोर बोल बोलत है तऊ मोकों
मीठे होत अधर सुधा रसके परसते॥ "

यह हमने सामान्यरूपसे नायकोंका निरूपण कर दिया है, जिसे इनके कार्यस्थल देखने हो उन्हें साहित्यका परिशीलन करना चाहिये, यदि यहां हम सबको भिन्न २ दिखायँगे तो ग्रन्थका विस्तार बहुत बढ़ जायगा।

केण कार्यविशेषलाभाद्वुस्या च प्रवर्तमानः प्रच्छन्नो द्वितीयः । गुणद्वारेण स त्रिविध इत्याह—गुणागुण इति । गुणसमुदायादुत्तमः । गुणपादद्वयाभावान्मध्यमः । पादत्रयाभावादधमः । सर्वगुणाभावादनायक इति । उभयोरिति । नायकस्य नायिकायाश्च ॥ २८ ॥

जैसे पुनर्भू, वेश्या आदि नायिकाओंके भेद हैं, उसतरह नायकके भेद नहीं हैं किन्तु सारे भूमण्डलमें प्रसिद्ध पति ही एक नायक है। तथा सुखके सिवा कार्य्यविशेषके लाभके लिये जो छिपकर प्रवृत्त हो वह दूसरा नायक है। गुणभेदसे नायक तीन तरहके होते हैं-जिसमें सभी गुण हों वह उत्तम है, जिसमें आधे गुण हों वह मध्यम है एवम् जिसमें चौथाई गुण हो वह अधम है, जिसमें बिलकुल गुण न हो वह नायक नहीं है। नायक और नायिकाके गुण और अवगुणोंको वैशिक अधिकरणमें कहेंगे ॥ २८ ॥

सहवासके अयोग्य स्त्रियाँ ।

कन्यादीनां विशेषानभिधानात्पुनरगम्यतया विमर्शमाह—

कन्या आदिकोंको वहुतीवार यह नहीं कहा था कि इनमें कौन मिलने योग्य हैं तथा कौन नहीं हैं, इस कारण यहां सहवास न करने योग्य स्त्रियोंको बतानेके द्वारा गम्योंका निश्चय किये देते हैं कि-

अगम्यास्त्वेवैताः—कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राययौवनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रव्रजिता संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च ॥ २९ ॥

कन्या, पुनर्भू, वेश्या और पराई स्त्री, इनमेंसे कोई भी हो, यदि कुष्ठ आदि महारोगोंसे युक्त हो, पगली हो, पतित हो, गुप्तबातको कह देनेवाली हो, उजगार चाहती हो, जवानी निकल गई हो, अत्यन्त गोरी वा अत्यन्त ही काली हो, जिससे बदबू आती हो, जो भाई, बहिन और लड़काके विवाहसे संबंधवाली हुई हो, संन्यासिनी हो, पत्नीकी सहेली हो एवम् विद्यासम्बन्ध अथवा गोत्रकी मित्र, श्रोत्रिय और राजाकी पत्नी हो ये कभी भी गमन करनेके योग्य नहीं हैं ॥ २९ ॥

नायकस्य तु कन्यादिविधावगम्यत्वं सूचयति । तुशब्दो विशेषणार्थः । एवकारो नियमार्थः । सत्स्वपि कार्येष्वेता अगम्या इत्यर्थः । कुष्ठिनीति जुगुप्सित-

व्याध्युपलक्षणार्थम् । उन्मत्ता यत्किंचनकारिणी न सुखावहा । पतिता स्वजात्यपेक्षया महापातकाचरणात् । तत्संपर्कात्पतितः स्यात् । भिन्नरहस्या लोके रहस्यं प्रकाशयन्ती नायकं लज्जयति । प्रकाशप्रार्थिनी प्रकटं नायकमभिलषन्ती त्रपयत्यनर्थं च करोति । गतप्राययौवना तत्सेवायामायुस्तेजश्च हीयते ।

ऐसी कन्या आदि नायिकाएँ नायकके गमन करने योग्य नहीं यह इस सूत्रसे सूचित होता है। 'तु' शब्द विशेषणके लिये है, 'एवकार' नियमके लिये है। इसका यह तात्पर्य्य है कि गमनके कारण होनेपर भी ये तो गमन करने योग्य ही नहीं है । कुष्ठिनी शब्द कोढ़िनीका बोध करता हुआ उनको भी इसीमें गिनाता है जिनके कि शरीरमें महाव्याधि हों, वे स्त्रियाँ भी गमनके योग्य नहीं हैं । पागल जो चाहे सो कर डाले इससे भी सुख नहीं मिलता । महापातक करनेके कारण अपनी जातिसे गिर गई हो तो ऐसीके साथसे पतित होना पड़ता है। जो कि गुप्त बातोंको प्रकट करके दुनियामें शरमिन्दा बनाये। जो कि जाहिरमें प्रार्थना करती और चाहती हो वह नायकको लज्जित करती हुई अनर्थोंको लाकर ढाती है। ढली जवानीकी स्त्रीसे तेज और आयुकी हानि होती है ।

अतिश्वेता अतिकृष्णा चाप्रशस्ता। कन्यापुनर्भूश्च ज्ञेया निन्द्यत्वादन्या अपि यथासंभवं योज्या । दुर्गन्धा गुह्ये वक्त्रे च । दुष्टगन्धा संयोगे वैमुख्यं जनयति। संबन्धिनी भ्रातुरपत्यस्य भगिन्या वा परिणयसंबन्धेन बाह्येन संबद्धा । सखी भार्यावयस्या तदनुरोधात्। प्रव्रजिता क्वचिच्छासने गृहीतव्रता धर्मार्थयोर्वैलोम्यात् ।

अत्यन्त काली अथवा अत्यन्त गोरी भी ठीक नहीं । ये दोनों कन्या या पुनर्भू समझनी चाहियें। यथासंभव और भी देख ले। जिसके मुँह वा गुह्यांगमें बदबू आती हो वह सहवासमें विरसता पैदा कर देती है। भाईके, लड़केकी वा बहिनके विवाहके सम्बन्धसे वा बाहिरके सम्बन्धसे सम्बद्ध हो । जो स्त्रीकी सहेली हो उसमें स्त्रीका अनुरोध होता है । किसी संप्रदायमें जिसने दीक्षा ले ली और संन्यासिन हो गयी उसमें धर्म और अर्थका नुकसान होता है ।

संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदाराश्चेति—विद्यासंबन्धेन राजसंबन्धेन वा संबद्धाः संबन्धिनस्तेषां दाराः । आचार्याणां शिष्यभार्या भ्रातृभार्या इत्यादयोऽपि धर्म-

वैलोम्यात् । सखिदारा मित्रभार्या, अधर्मद्रोहादिभयात् । तथा चोक्तम्—'रेतःसेकः स्वयोगेषु कुमारीष्वन्त्यजासु च । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः ॥' श्रोत्रियदरा ज्वलदग्निप्रख्याः, धर्मवैलोम्यात् । राजदाराश्च चतुराश्रमगुरुभार्या, दृष्टादृष्टविरोधात् । इत्येतदाचार्याणां मतमनुक्तमपि ज्ञेयम् । अत्र च यथोक्त-व्यतिरेकेण परपरिगृहीताः सर्वा एवागम्याः स्युरिति ॥ २९ ॥

जिनसे अपना विद्यासंवन्ध अथवा राजकीय संबन्ध हो, उनकी स्त्रियोंसे भी कोसों अलग रहे, जैसे कि आचार्य्योंको शिष्यपत्नी तथा भाईको भाई की पत्नी सवर्था आग्राह्य है, क्योंकि इसमें धर्मका नाश होता है । एवं मित्र-पत्नीके साथ गमन करनेपर अधर्म होगा तथा पता चलनेपर आपसमें वैर हो जायगा । मनु० ११–१८ में कहा भी है कि–"अपने सम्बन्धीकी स्त्रीमें, कुमारीमें, अन्त्यजाओंमें तथा मित्र और पुत्रकी स्त्रियोंमें वीर्य्यपात करना गुरुतल्प (गुरुपत्नी) के बराबर है"। वेदपाठीकी स्त्री दधकती हुई आगके समान है, क्योंकि इसमें धर्मका बड़ा नाश होता है । राजाकी रानी तो चारों आश्रमोंके गुरुकी स्त्री है इस कारण पाप भी है तथा पता चल जाय तो जानसे जाय । यह कामशास्त्रके आचार्य्योंका मत है, यहां कामसूत्रमें नहीं भी कहा गया है तो भी इसे समझना चाहिये । इन अगम्याओंके सिवा कामशास्त्रने जिनका जिस प्रकार ग्रहण वताया है उन्हें छोड़कर सभी परनारी आगम्या हैं २९॥

स्त्रीपर वैद्यक और धर्मशास्त्र।

चरक शारीरस्थान अध्याय ८—'अतिवालामातिवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन वा विकारेण उपसृष्टां वर्जयेत् ।' अत्यन्त छोटी अवस्थाकी 'अत्यन्तवृद्धा' दीर्घकालकी रोगपीडिता और अन्य किसी भयंकर विकारसे युक्त स्त्री सहवा-सके योग्य नहीं है ।

· सुश्रुतसंहिता शारीरस्थान अ० १०—'अतिवृद्धायां दीर्घरोगिण्यामन्येन वा विकारेण उपसृष्टायां गर्भाधानं नैव कुर्वन्ति पुरुषस्याप्येवंविधस्य त एव दोषाः संभवन्ति ।' अतिवृद्धा, दीर्घरोगिणी, और विकारोंसे संसृष्टामें गर्भा-धान न करना चाहिये, ऐसे ही पुरुषके भी ये ही दोष होते हैं ।

भावप्रकाश—'रजस्वला व्याधिमती विशेषाद् योनिरोगिणी ।
वयोऽधिका च निष्कामा मलिना गर्भिणी तथा ॥
एतासां सङ्गमात् पुंसां वैगुण्यानि भवन्ति हि ।'

रजस्वला, व्याधिमती, योनिरोगिणी, वृद्धा, निष्कामा, मलिना और गर्भिणी, इनके संगसे पुरुषोंमें विगुणता आ जाती है। कुष्ठिनीके सहवासके दोष-

' स्पर्शैकाहारशय्यादि सेवनात् प्रायशो गदाः ।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥ '
(अष्टाङ्गहृदय निदानस्थान अ० १४)

स्पर्शसे, एकस्थालीमें खानेसे, एकशय्यापर सोने या सहवास आदि करनेसे, प्रायः एकके रोग दूसरेके शरीरमें उतर आते हैं एवम् नेत्र और त्वचाके रोग तो विशेषरूपसे उतर आते हैं। कुष्ठ भी त्वचा रोग है, अतः कुष्ठिनीके सहवाससे कुष्ठ होनेका भय है। इसके सिवा सन्तानके भी कुष्ठ होना संभव है, यही भावप्रकाशने कहा है कि-

' दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ '

कुष्ठके बढ़ जानेसे दूषित रजवीर्य्यवाले दम्पतियोंका जो पुत्र पैदा होता है वह भी कुष्ठी ही होता है। अतिबालाके साथ सहवासका निषेध मृगीके सहवासकी विधिमें बतायेंगे। योगिरोगिणी, गरमी, सोजाक और योनिव्यापद् आदि रोगोंवालीके साथ सहवासका निषेध कर दिया है। कुष्ठिनीका सहवास कामसूत्र और वैद्यकशास्त्र दोनों ही नहीं चाहते। गतप्राययौवना वृद्धा ही होती है। वैद्यकशास्त्र कहते हैं कि-' वयोऽधिकां स्त्रियं गत्वा तरुणः स्थविरायते ' तरुण पुरुष भी अधिक अवस्थावालीके साथ सहवास करके बूढ़ा हो जाता है। अतिकृष्णा और अतिश्वेता एक प्रकारकी मलिन ही हुआ करती हैं। मनुस्मृति ३ अध्याय श्लोक ७ वाँ ८ वाँ तो-हीनक्रिय, लड़की जननेवाले, रोमवाले, बवासीर, क्षय, मन्दाग्नि, अपस्मार, श्वेतकुष्ठ, या कुष्ठवाले घराने तककी कन्याके लेनेका निषेध करता है। एवम् कपिला, छंगी, रोगिणी, लोमरहित, अतिलोमोंवाली, गप्पिन और कंजी लड़कीको कभी न व्याहे, यह लिखा है।

भावप्रकाश-' लिङ्गीनीं गुरुपत्नीं च सगोत्रामथ पर्वसु ।
वृद्धां च सन्ध्ययोश्चापि गच्छतो जीवनं क्षयः ॥ '

कहता है कि किसी भी संप्रदायकी संन्यासिनी, गुरुपत्नी, सगोत्रा, वृद्धा इनके साथ एवम् पर्व और सायंकालमें जो सहवास करता है उसकी आयु नष्ट हो जाती है। मनुस्मृति अध्याय ११ श्लोक ५४ में गुरुपत्नीके साथके गमनको महापाप माना है एवम् मित्रपत्नी आदिकोंके सहवासको इसी अध्यायके उदाहृत टीकाके श्लोकमें गुरुपत्नीके सहवासके समान बता दिया है।

परनारिपर बाभ्रव्य ।

बाभ्रव्यमतमाह—

बाभ्रव्यके मतमें पांचको देखे हुई कोई भी स्त्री अगम्या नहीं, इस बातको नीचेके सूत्रसे कहते हैं कि—

दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्या काचिदस्तीति बाभ्रवीयाः ॥३०॥

जिसने पांच पुरुषोंको देख लिया, वह कोई भी आगम्या नहीं है, यह बाभ्रवीय आचार्य्यका मत है ॥ ३० ॥

स्वपतिव्यतिरेकेण दृष्टाः पञ्च पुरुषाः पतित्वेन यया सा स्वैरिणी कारणवशात्सर्वैरेव गम्या । तथा च पञ्चातीता बन्धकीति पराशरः । एकद्वयादिदर्शने तु सत्स्वपि कारणेषु नैवेत्यर्थोक्तम् । द्रौपदी तु युधिष्ठिरादीनां स्वपतित्वादन्येषामगम्या । कथमेका सत्यनेकपतिरिति चैतिहासिकाः प्रष्टव्याः । बाभ्रवीया इति बाभ्रव्यशिष्याः । बाभ्रव्यमतानुसारिण एवमाहुः ॥ ३० ॥

जिसने अपने पतिके सिवा पांच पुरुष पतिके रूपमें देख लिये वह स्वैरिणी (व्यभिचारिणी) है । कारणवश उससे सभी सहवास कर सकते हैं । पराशर महर्षिने भी कहा है कि—" जिसने पांच खसम कर लिये वह बन्धकी है ।' यदि एक या दो देखे हों तो पाहिले कहे कारण हों तो भी प्रवृत्त न हो यह इसका तात्पर्य्य हुआ । यदि यह कहो कि, द्रौपदीके भी तो पांच पति थे तो इसका यही उत्तर है कि वह माता पिताने पांचोंको ही दी थी, इस कारण उसे कोई अधर्म नहीं है । इसीसे वह दूसरोंके गमन करने योग्य नहीं हो सकती । यदि यह कहो कि एक होकर अनेकोंके स्त्री कैसे हुई तो इतिहासके जाननेवालोंसे पूछो । ऐसा बाभ्रव्यके शिष्य तथा उनके मतके माननेवाले कहते हैं ॥ ३० ॥

इसपर गोणिकापुत्रका विशेष ।

तत्रापि गोणिकापुत्रो विशिष्यवक्तव्यमित्याह—

सीधा ही यह न मान लेना चाहिये, कि पांच देखे हुई कोई भी अगम्या नहीं इस विषयमें भी गोणिकापुत्रका विशेष कथन है कि—

---

१ भारतमें स्वयंवरके बाद विवाहसे पहिले द्रुपदने भगवान् वेदव्याससे इस बातका समाधान करा दिया था कि ये पांचो इन्द्र हैं । तथा द्रौपदी स्वर्ग की श्री है ।

संबन्धिसखिश्रोत्रियराजदारवर्जमिति गोणिकापुत्रः ॥३१॥

पांच पुरुषोंके साथ पतिकी तरह सहवास प्राप्त कर चुकनेवाली यदि सम्बन्धीकी स्त्री, स्त्रीकी सखी, वेदपाठीकी स्त्री और राजाकी रानी हो तो उससे अलग ही रहना चाहिये, ऐसा गोणिकापुत्रका मत है ॥ ३१ ॥

दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्येति वर्तते । अयमभिप्रायः—संबन्धिभार्या स्वैरिण्यपि त्रिद्यायोनिसंबन्धेनान्तरेण संबन्धेन संबद्धत्वादगम्या संबन्धित्वाद्बाह्येन तु गम्यैव । सखिभार्याप्यन्यस्य गम्या न नायकस्य । सखी त्वस्य भार्यावयस्या । स्वतो मैत्री व्यवहारस्याप्रस्तुतत्वात्, गम्यैव । श्रोत्रियस्य क्रियावत्त्वात्, राज्ञश्चतुराश्रमगुरुत्वात्, दाराः खण्डितशीला अपि दृष्टादृष्टविरोधादगम्याः ॥ ३१ ॥

पूर्व सूत्रसे इसमें ' दृष्टपञ्चपुरुषा नागम्या० ' जिसने पाँच पुरुषोंसे सहवास कर लिया हो वह कोई भी हो अगम्या नहीं—इस बातकी अनुवृत्ति आती है, जिसका मिलकर यह अर्थ होता है कि ये तो पांच खसम बनाये हुई भी गमन करने योग्य नहीं हैं। चाहे सम्बन्धीकी स्त्री छिनाल ही हो पर विद्या वा योनिका सम्बन्ध हो तो किसी भी ऐसे सम्बन्धकी स्त्रीके साथ गमन न करना चाहिये। यदि ऊपरका ही संबन्ध हो तो गम्या ही है। मित्रपत्नीके साथ चाहे तो नायकके दूसरे सम्बन्धी संसर्ग रख सकते हैं पर नायकको न रखना चाहिये। स्त्रीकी सेहली तो इसकी सखी है उसके साथ इसकी स्वतः मैत्री होना प्रस्तुत नहीं है, इस कारण गम्या ही है। वेदपाठी और अग्निहोत्री हमेशा वैदिक कर्मोंमें लगे रहते हैं, राजा चारों आश्रमोंका गुरु है, इनकी स्त्रियां व्याभिचारिणी भी हो तो भी पुत्रका नाश, पापकी प्राप्ति तथा मृत्युके अँदेशेके कारण उनसे अलग ही रहना चाहिये ॥ ३१ ॥

प्रेमसे मित्र ।

सहायविमर्शस्त्रिधा—स्नेहतो गुणतो जातितश्च । तत्राद्यमधिकृत्याह—

सहायका विचार तीन प्रकारका है—स्नेहसे, गुणसे और जातिसे । यानी स्नेह आदि तीन बातोंसे सहायक होते हैं, इनमेंसे स्नेहसे सहायकोंको गिनाते हैं—

सहपांसुक्रीडितमुपकारसम्बद्धं समानशीलव्यसनं सहा-

---

१ सहाध्यायी व शिष्य आदि व गुरु गृहका संबन्ध—विद्यासम्बन्ध व पारिवारिक संबन्ध योनिसम्बन्ध कहाता है ॥

ध्यायिनं यश्चास्य मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्, यस्य चायं विद्याद्वा धात्रपत्यं सहसंवृद्धं मित्रम् ॥ ३२ ॥

१ धूलिमें साथ खेले, २ उपकारसे बँधे हुए, ३ एकसे अच्छे चरित्रवाले एवं एकसी आदतवाले, ४ साथके पढ़े, ५ जो कि अपने कुकृत्योंको जाने, ६ जो कि और अपने रहस्यको जाने, ७ जिसके कि रहस्यको नायक जाने, ८ साथमें बड़ा हुआ धायका लड़का, ९ गामका साथ खेलनेवाले ये नौ प्रकारके प्रेमसे मित्र होते हैं ॥ ३२ ॥

मिद्यति स्निह्यतीति मि‍ं नवप्रकारम् । तत्र सहपांसुक्रीडितमेकत्रानुभूतबाल्यत्वात्स्निह्यति । उपकारसंबद्धमर्थेन जीवितरक्षया चोपकृतत्वान्मैत्र्या वर्तते । यच्चास्य नायकस्य मर्माण्यकार्याणि यच्च रहसि भवानि विद्यात्तदुभयं मर्मज्ञं रहस्यधरं च ‍ःनायकप्रतीतेरास्पदत्वात्प्रतिस्निह्यति । यस्य चेति—यस्य नायको मर्माणि रहस्यानि च विद्यात्तदुभयं तस्मिन्समानितस्नेहत्वात्प्रीत्या वर्तते । सहसंवृद्धं धात्रीक्रोडे नायकेन सह स्तन्यपानादिना संवृद्धं धात्रपत्यं सहपांसुक्रीडितत्वेऽप्यत्यर्थं स्निह्यतीति प्रकर्षार्थं वचनम् । यदेकस्मिन्ग्रामे वा सह संवृद्धं तत्सहपांसुक्रीडितं द्रष्टव्यम् । इति नवधा मित्रम् ॥ ३२ ॥

जो प्रेम करे उसका नाम मित्र है, मित्र नौ तरहके होते हैं—१ जिन्होंने एकसाथ बालकपनका अनुभव किया है, साथ ही धूलमें खेले हों, उनमें स्नेहका होना स्वाभाविक ही है । २ जिसे आवश्यकताके समयपर धन दिया हो या जिसकी जिन्दगी बचाकर जिसपर उपकार किया हो, इस कारण सच्ची मित्रता रखता हो । ३ शील और व्यसन एकसे हों । ४ सहाध्यायी, ५ जो कि, नायकके सारे कुकृत्योंको जानता हो पर किसीसे प्रकट न करता हो, इस कारण नायकका उसपर विश्वास हो, इसी कारण वह भी प्रेमके बदले प्रेम करता हो । ६ गुप्त भेदी हो, ७ जिसके कि अवगुणोंको नायक जानता हो, वह बात दोनोंमें एकसी हो इस कारण, दोनों आपसमें प्रेम करके रहते हों । ८ जिसने नायकके साथ धायकी गोदमें बैठकर दूध पिया हो ऐसा धायका लड़का साथमें खेलनेवालोंसे भी अधिक प्रेम करता है, इस अधिकताको दिखानेके लियेही साथके खेलनेवालोंसे पृथक् इसका निर्देश किया है । ९ जो एक गामके एक ही साथ बड़े हुए साथही बड़े हुए हों उन्हें लँगोटिया समझना चाहिये । इस तरह नौ प्रकारके मित्र हुए । मित्रका ही दूसरा नाम सहाय है ॥ ३२ ॥

गुणसे मित्र ।

गुणतो विमर्शमाह—

स्नेहके कारण सहाय होनेवालोंको बताकर अब मित्रोंके गुण बताते हैं कि—

पितृपैतामहमविसंवादकमदृष्टवैकृतं वश्यं ध्रुवमलोभशीलमपरिहार्यममन्त्रविस्रावीति मित्रसंपत् ॥ ३३ ॥

जिसके साथ मैत्री सम्बन्ध बापदादोंके समयसे चला आ रहा हो, जो जैसा देखे सुने वैसा ही बोलनेवाला हो। जिसका कभी विकार न देखा गया हो । जो अपने वशवर्ती हो, जिसे किसी भी प्रकारका लोभ न हो, जो सदा बना रहता हो । जो कि गुप्तबातें न कहता हो ये मित्रोंके गुण हैं ॥ ३३ ॥

पितृपैतामहम्—पितामहादागतं पैतामहम् । पितुः पैतामहम् नायकस्य तु प्रपितामहम् । यथानयोर्मैत्री तथा पित्रोः पितामहयोश्चासीदिति । अविसंवादकं यथादृष्टश्रुताधिकारिणम् । अदृष्टवैकृतं तादात्म्यककार्यस्यादिमध्यावसानेष्वदृष्टव्यभिचारम् । वश्यम् यथोक्तकारिणम् । ध्रुवं न त्यजति । अलोभशीलं न तृष्णया प्रवर्तते । अपरिहार्यं न परेण ह्रियते, अनुरक्तत्वात् । अमन्त्रविस्रावि गूढमन्त्रम् । मित्रसंपत्, मित्रसम्बन्धात् ॥ ३३ ॥

पिताके, पितामहके समयसे जिनका प्रेम चला आया हो, यह नायकके प्रपितामहके समयसे हो गया, जैसी नायक और उनकी मित्रता है वैसी ही बाप बाबा, परबाबा और दादेमें भी थी । शास्त्रोंने जैसी मित्रोंकी चर्या बताई है, जैसी कि उसने सुनी हो उनका पूरा अधिकारी हो, विपरीत न हो। आपसके कामोंमें आदि, मध्य और अन्तमें कभी व्यभिचार (उलट फेर) नहीं देखा गया हो । जो वश्य थानी जैसा कहा जाय वैसा ही करनेवाला हो। जो मैत्रीके निश्चयको किसी भी प्रकार न छोड़ता हो एवं सदा बना रहनेवाला हो । जो कि तृष्णासे न प्रवृत्त होता हो यानी लोभ रहित हो। जिसे दूसरा किसी तरह भी न फोड़ सकता हो इतना जिसे प्रेम हो । जो कि छिपी बात किसीसे न कहता हो । ये मित्रोंके गुण हैं । मित्रोंके विषयमें इतनी बातोंको अवश्य देखना चाहिये ॥ ३३ ॥

---

१ 'सन्मित्रलक्षणमिदंप्रवदन्ति सन्तः' ये अच्छे मित्रोंके लक्षण हैं। यद्यपि मित्रोंमें जो २ गुण चाहिये उन २ गुणोंवाले मित्रोंको दिखा दिया है, किन्तु यह गुणीके द्वारा गुणोंका विधान है । मित्रोंके विषयमें इन बातोंको अवश्य देखना चाहिये ।

जातिविशेषके मौकेके सहाय ।

मित्रगुणा धर्मिद्वारेणोक्ता जातितो विमृश्यन्ते—

गुणी मित्रोंके बतानेके द्वारा मित्रोंके गुण बता चुके, क्योंकि वे गुणोंके होनेके कारण ही तो गुणी हैं । अब उन जातियोंके लोगोंको बताते हैं, जो कि मौका पड़ेपर अपना कार्य कर गुजरते हैं—

रजकनापितमालाकारगान्धिकसौरिकाभिक्षुकगोपालक-ताम्बूलिकसौवर्णिकपीठमर्दविटाविदूषकादयो मित्राणि । तद्योषिन्मित्राश्च नागरकाः स्युरिति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

धोबी, नाई, माली, गांधी, कलाल, भिखारी, ग्वालिया, तमोली, सुनार, पीठमर्द, विट और विदूषक आदिक मित्र होते हैं । तथा इनकी स्त्रियाँ भी सहायिका होती हैं । किन्तु ये सब चतुर होने चाहियें । साथके नागरक (छैला) से भी सहायता मिलती है, यह वात्स्यायन आचार्यका मत है ॥३४॥

रजकादयो नायकं स्वकर्मभिरुपकुर्वन्तः परभवनं च विशन्ति । तत्र गान्धिको गन्धद्रव्यस्य विक्रेता । गन्धः पण्यमस्येति । तथा सौरिकः शौण्डिकः । भिक्षुको भिक्षणशीलः । पश्चात्कुत्सायां कः । तद्योषिन्मित्राश्चेति । न तथा पुरुषा यथा योषितः परभवनं विशन्ति विश्वासयन्ति च स्त्रियः ॥ ३४ ॥

धोवी आदिक अपने कामसे नायकका उपकार करते हुए दूसरेके घर घुस जाते हैं । यानी धोबी, धोविनि धोनेके लिये कपड़ा लेने एवम् धुले हुए कपड़ोंको घर देनेके लिये आनेके समय अपनी कारगुजारी दिखा सकते हैं । नाई हजामतके लिये आने एवम् नाइन सिर बाँधने आदिके समय अपना काम कर सकती है । फूलमाला आदि देने एवम् वनवाटिकाके विहारके समय माली, मालिनि काम बना देते हैं । ग्वालिया, ग्वालिनि पशुओंको चरने ले जाने एवम् घरमें बाँधने आदिके मौकेपर अपना कार्य्य करते हैं । तमोली, तमोलिनि पान खिलानेके समय नायकका काम करते हैं । सुनार सोने चाँदीकी चींजें बनाने एवम् लेने देने आदिके समय कह सुन देते हैं तथा इधर उधर करते हैं । सुगान्धित अतर तेल आदिके बेचनेवालेको गान्धिक (गन्धी) कहते हैं । यह और इसकी स्त्री दोनों अतर तेल आदि देनेके समय छैलाका काम करते हैं । सौरिकशौण्डिक यानी कलालको कहते हैं । इसके यहां शराब

---

१ गन्ध शब्दसे ' तदस्य पण्यम् ' से ठक् प्रत्यय और वृद्धि होकर ' गान्धिक ' शब्द बन जाता है । यानी जिसका गन्धका व्यापार हो वह गान्धिक (गन्धी) है ।

तयार होती है, यह उस समय इधर उधर करता है जब कि प्याले पिलाता है। भीख माँगकर खानेवालेको भिक्षुक[1] कहते हैं। जो स्त्री भीख माँगे वा भिखारीकी स्त्री हो वह भिखारिन कहाती है। धोबी, नाई इत्यादिकसे धोबिनि नाइन आदिमें इतनी विशेषता अवश्य है कि धोबी, नाई आदि पुरुष इतना काम नहीं कर सकते जितना कि इनकी स्त्रियाँ धोबिन, नाइन आदि कर सकती हैं। ये घरमें बेरोकटोक घुस जाती हैं तथा दूसरेकी स्त्रियोंको विश्वास दिलाकर बहका भी लेती हैं। बराबरके नागर भी समयपर सहायता दे गुजरते हैं ३४॥

दूतका काम लेने लायक।

दूतस्य यत्कर्म तत्कुर्यादित्याधारतो विमृश्यते—

ऊपर बताये हुए मित्रोंमें दूतका कार्य्य कौन कर सकता है, इस बातको दिखानेके लिये आधारसे मित्रोंका विचार करते हैं यानी जिसमें ये बातें हों वह दूतका कार्य्य कर सकता है कि—

यदुभयोः साधारणमुभयत्रोदारं विशेषतो नायिकायाः सुविस्रब्धं तत्र दूतकर्म ॥ ३५ ॥

जो नायक और नायिका दोनोंमें ही प्रेमभावसे प्रविष्ट हो, जो दोनोंमें ही उदार हो, जिसपर नायिका विशेषरूपसे विश्वास करती हो वही मित्र दूतका काम कर सकता है ॥ ३५ ॥

यदिति। मित्रमुभयोरिति—नायकस्य नायिकायाश्च मैत्र्या वर्तमानत्वात्साधारणं यथोक्तमभिधत्ते। उभयत्रोदारं आत्मभूतकार्यकार्श्यात् (?)। विशेषत इति। नायिकायाः सुष्ठु विस्रब्धं विश्वस्तम्। तस्याः साध्यमानत्वात्। तत्र मित्रे दूतकर्म दूतक्रिया, सिद्धिहेतुत्वात्, नान्यत्रेति ॥ ३५ ॥

जो कि नायक और नायिका दोनोंके साथ ही मित्ररूपसे एकसा हो एवम् दोनोंका ही कहा कर देता हो। जोकि दोनोंके ही काम करनेमें इतना तत्पर हो कि कृश हो गया हो, विशेष करके नायिकाका अच्छा विश्वासपात्र हो, क्योंकि नायिका ही तो सिद्ध करनी है। वह मित्र दूतका काम कर सकता है, इसमें कार्य्यसिद्ध करनेके कारण मौजूद हैं दूसरेसे सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि दूसरेमें कार्य्यसिद्धि करनेवाली ये बातें नहीं हैं ॥ ३५ ॥

दूतके गुण।

तत्रापि यदि दूतस्य गुणाः स्युरतो गुणतो विमृश्यते—

---

[1] 'भिक्ष' से शील अर्थमें 'सनाशंसभिक्ष उः' से 'उ' प्रत्यय होकर फिर 'कुत्सिते' से कुत्सा अर्थमें क प्रत्यय होकर 'भिक्षुक' शब्द बनता है।

केवल यही बात नहीं कि नायिकाका विश्वासपात्र हो, किन्तु उसमें दूतके गुण भी होने चाहियें अतएव यहाँ उसके गुणोंका निरूपण करते हैं कि—

पटुता धार्ष्ट्यमिङ्गिताकारज्ञता प्रतारणकालज्ञता विषह्यबुद्धित्वं लघ्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणाः॥ ३६॥

जिसे बोलनेकी चतुराई हो, जो कि काम करनेमें बड़ा भारी चतुर एवं निडर हो, जो इशारों और चेष्टाका अच्छा ज्ञान रखता हो, जिसे उत्साहित करनेके समयका भान हो, जो कि संदिग्धविषयोंमें आप ही निश्चय कर ले, जो कि थोड़ेमें ही सब कुछ समझ लेनेवाला हो, प्राप्तिके उपाय जिसके थोड़े ही हों, जो कि थोड़ेमें ही पा ले । ये सब दूतके गुण होते हैं ॥ ३६ ॥

पटुता प्रज्ञानुबद्धया वाचा वक्तुं कुशलता । धार्ष्ट्यं प्रागल्भ्यमिति । इङ्गितमन्यथा वृत्तिः, आकारो वदननयनादिगतविकारः, तज्ज्ञतया तदनुरूपमनुतिष्ठति । प्रतारणकालज्ञता कालेऽस्मिन्प्रोत्साहयितुं शक्यत इति । विषह्यबुद्धित्वमिति—संशयेषु विषह्या विमर्शक्षमा बुद्धिर्यस्येति विगृह्य भावप्रत्ययेन योज्यः । लघ्वी प्रतिपत्तिः सोपाया चेति दूतगुणा इति । कार्यं विमृश्य तदेवोपायपूर्वकमनुष्ठानं न कार्यातिपातनम्॥ ३६

बुद्धिमानीके साथ बोलनेकी चतुराईको होशियारी कहते हैं । धृष्टता यानी निडरपनेको प्रगल्भता कहते हैं । दूसरी जगह हुई मनोवृत्तिको इंगित तथा मुख और आखोंमें आनेवाले विकारको आकार कहते हैं । जो इन दोनोंको जानता हुआ इन दोनोंके अनुसार चलता हो । जिसे यह ज्ञान हो कि इस समय इसे उत्साहित करना उचित है, इसमें यह उससे मिलनेके लिये तयार की जा सकेगी । जिसकी कि बुद्धि संदेहकी जगह आप ही निश्चय कर ले, ऐसी बुद्धिवालेको विषह्यबुद्धि[1] कहते हैं, यह बात भी दौत्यकर्म करनेवालेमें रहनी चाहिये । जो कि बड़े कामके छोटेसे उपाय शोच रखता हो एवं थोड़े ही उपायमें अपना काम कर गुजरता हो । ये सब दूतोंके गुण होते हैं । कार्य्यको विचारकर उसका उपायके साथ अनुष्ठान करना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि कार्य्य बिगड़ जाय, यही दूतकी दूतता है ॥ ३६ ॥

अधिकरणके पदार्थोंका उपयोग ।

इदानीमधिकरणार्थानुष्ठाने फलं प्रयोजनं चाह—

इस समय अधिकरणके कहे पदार्थोंके अनुष्ठान करनेके विषयमें फल और प्रयोजन कहते हैं—

---

१ बहुव्रीहि समाससे पहिले 'विषह्यबुद्धि' शब्द बनाकर पीछे भावमें 'त्व' प्रत्यय करके 'विषह्यबुद्धित्व' बनता है ।

भवति चात्र श्लोकः—

आत्मवान्मित्रवान्युक्तो भावज्ञो देशकालवित् ।
अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं संसाधयेन्नरः ॥ ३७ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे साधारणे प्रथमेऽधिकरणे
नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥

इस विषयमें यह श्लोक है कि—नागरकोंके चरित्रोंसे युक्त मित्रोंवाला, देश और कालका वेत्ता, भावोंका जाननेवाला, आत्मवान् पुरुष, अलभ्य स्त्रीको भी विना प्रयत्न सिद्ध कर ले ॥ ३७ ॥

आत्मवानिति—तत्र त्रिवर्गप्रतिपत्त्या समुद्देशेन चात्मन्याहितगुणत्वादात्मवान् । सहायविमर्शेन मित्रवान् । युक्त इति— नागरकवृत्तानुष्ठानेन युक्तः स्वकर्मनिष्ठः । भावज्ञो नायकनायिकाविमर्शेन तत्स्वरूपज्ञ इत्यर्थः । दूतकर्मचित्तपरिमर्शनेनेति फलम् । अलभ्यामप्ययत्नेन स्त्रियं विपरिमर्शितां साधयत इति फलप्रयोजनम् । एवंभूतस्य हि स्त्रीसाधनयोग्यत्वादिति । नायकसहायदूतीविपरिमर्शः पञ्चमं प्रकरणं पञ्चमश्चाध्यायः॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां साधारणे प्रथमेऽधिकरणे नायकसहायदूतीकर्मविमर्शः पञ्चमोऽध्यायः ॥

धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति करनेवालोंमें जो गुण होने चाहियें, उसमें वे तमाम गुण हों । जैसे सहाय बताये हैं, वैसे ही उसके सहायक हों । एवं जैसे मित्र बताये हैं, वैसे ही मित्र हों । नागरकोंके चरित्रोंके अनुष्ठानमें जो लगा हुआ हो यानी अपने कर्ममें आस्था रखनेवाला हो । नायक और नायिकाके बताये हुए विचारके अनुसार उनका पूरा स्वरूप जानता हो । जिसके चित्तमें दूतके कामोंका पूरा विचार हो, उसीसे उसने नायिकाके भावोंका पता पाया हो । इसके जाननेका भी यही फल है कि दूतके काम आदिकोंको जान जाय । ऐसा पुरुष विचारी हुई अलभ्यस्त्रीको भी विना परिश्रमके सिद्ध कर ले । यह बतायेहुए फलका प्रयोजन है, क्योंकि ऐसा पुरुष ही स्त्रीके सिद्ध करनेके योग्य है । यह नायक, नायिका, दूत, दूती और सहायिका, सहायकोंके कामोंके विचारवाला पाँचवाँ प्रकरण और पांचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३७॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके पंचम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदं साधारणं प्रथममधिकरणम् ।

सांप्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम्।

प्रथमोऽध्यायः।

रतावस्थापन प्रकरण।

प्रथम वक्तव्य—तंत्र और आवाप भेदसे जो काम शास्त्रके दो भाग किये हैं उनमें यह साम्प्रयोगिक अधिकरण ही तन्त्र कहाता है इस तरह यह काम-शास्त्रका मुख्य भाग है। इसमें रतितंत्रके स्वतंत्र साम्राज्यकी वे वे अव्याहत आज्ञाएँ हैं जिनके सच्चे स्वरूपको जाने विना मानवजीवनका गृहसुख पशुओंके सांसारिक सुखके समान ही वास्तविकतासे विहीन रहता है। अपने सौरभसे दिगन्तोंको सुरभित कर देनीवालीं विकासोन्मुख कलियोंके असामयिक चांचल्यको एवम् आजकलके वेशभूषाके सुयोग्य तथा वाणी-मात्रके शिष्टाचारी भौंरों जैसी अस्थायी वृत्तिके पुरुपनामधारियोंकी भोग-वासनाको देखता हूं तो मेरी यही इच्छा होती है कि इन लोगोंको समझा दूं कि जिस पथके आप पथिक वननेका दावा कर रहे हैं वह मार्ग आपकी दृष्टिसे कतई ओझल है एवं जिसको तुम अपने आरामकी चीज समझ रहे हो वही तुम्हारे शारीरिक, अध्यात्मिक और मानसिक पतनका कारण है। संसारी सुख इस विधानमें नहीं है उसका विधान तो वह है जो कि मैं आपके आगे रख रहा हूं। यद्यपि संप्रयोग (सहवास) आजका नहीं है जवसे मैथुनी सृष्टि प्रचलित हुई है उसी दिनसे वरावर चल रहा है एवम् जवतक मैथुनीसृष्टिकी सत्ता रहेगी सहवास कभी मिट नहीं सकता। यह वात नहीं है कि महर्षि वात्स्यायन ही इसे जन्म दे रहे हों। न यही वात है कि वात्स्यायनकामसूत्र ही इसे सामने रख रहा हो। यह तो प्राणिमात्रमें निसर्गसे सिद्ध वस्तु है, पर कामसूत्रका सुपथ वता देना कार्य है। क्योंकि पहिले जो इसका रूप था आज उसका कुछका कुछ और हो गया है। पहिले—विद्यावल संपन्न सुयोग्य पुरुष स्वधर्मपत्नीके ऋतुमती होनेके वाद उसीकी प्रार्थनापर उससे ऋतुदान देनेकी भावनासे सहवास किया करते थे, किन्तु आजके लोग तो उनके भिखारीके समान उन समाजकी मोरियोंसे भी भीख मांगते फिरते हैं जिन्हें कि पहिले लोग देखना भी नहीं चाहते थे।

यह बात मैं अपनी ओरसे नहीं कह रहा हूं किन्तु यह व्याकरण महाभाष्य-कारने कहा है कि-" यथा सुवासा जाया पत्ये कामयमाना स्वात्मानं विवृणुते " जैसे ऋतुकालमें स्नानके पीछे स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुई स्त्री चाहसे पतिके लिये अपनेको खोल देती है उसी तरह शब्ददेव भी शब्दके ज्ञाताके लिये अपनेको खोलकर रख देता है। इस महाभाष्यकी पंक्तिसे सुतराम् पता चल जाता है कि पहिले पुरुष स्त्रियोंके क्रीडामृग नहीं थे, किन्तु स्त्रियोंकी प्रार्थनापर सहवास, दानके रूपमें देते थे। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि उनकी सहवासमें आज जैसी भावना नहीं थी जैसा कि आजके लोग इसे एक खेल समझते हैं। वे इसको भी एक पुत्रजनक वैधकर्म मानकर अग्नि-होत्रकी भावनासे किया करते थे। यह बात सामवेदकी छान्दोग्यउपनिषद् तथा बृहदारण्यसे परिस्फुट प्रतीत हो जाती है। जहां कि-" पांचवीं आहुतिमें हवन किये जल, कैसे पुरुष वाचक हो जाते हैं?" इस प्रश्नका निरूपण चलता है वहां कहा है कि-"हे गौतम! स्त्री ही अग्नि है (क्योंकि स्त्रीकी सबसे पहिले आवश्यकता है) इसका गुप्तअंग ही समिध है [क्योंकि उसीसे वह चमकती है जिसकी कोख पुत्रवती नहीं वह संसारमें दुर्भगा कही जाती है एवम् इसीकी उचिततापर उसकी चाह भी निर्भर है जैसा कि प्रमाणसे व्यवस्था करतीवार दिखाया है] सहवाससे पहिले पुत्रोत्पत्तिके लिये जो मंत्रपूर्वक स्त्रीके गुप्त-अंगका स्पर्श किया जाता है यही धूम है। स्त्रीके उपस्थका भीतरी भाग ही अग्निकी लाल २ लटें हैं। पुरुषकी गुप्त इन्द्रियके साथ संयोग हो जाना ही अंगार हैं। संयोगके पीछे भावप्राप्तिके समय जो आनन्द आता है एवं उससे स्त्री पुरुषोंको जो आनन्द उपलब्ध होता है वही इस अग्निसे उड़नेवाली चिनगारियाँ हैं। इस अग्निमें दिव्यपुरुष वीर्यरूपी आहुतिका हवन करते हैं, जिससे कि स्त्रियोंको गर्भ होता है।" औरस पुत्रकी प्राप्ति अपनी जातिकी विधिपूर्वक व्याही हुई स्त्रीसे होती है अतः यह सहवास पुत्रोत्पत्तिके लिये अग्निहोत्रकी भावनासे किया जाता था। इसी कारण इस साम्प्रयोगिक अधिकरणमें सहवासकी विधियाँ बताई हैं, जिनसे स्त्री पुरुष दोनों ही उचित और अनुचितका विचार करके श्रुतिके कहे हुए अभिनन्दोंको प्राप्त कर सकें एवम् अग्निमें जो आहुति डालें वह व्यर्थ न होकर पुत्रके रूपमें सामने आ उप-स्थित हों। जैसा कि अथर्वमें कहा है कि-'तत्र पुंसवनं कृतम्' जब उससे सहवासका भाव विधिपूर्वक धारण किया तो यही पुत्रका पैदा करना हो गया। यदि आजके विलासी जन, सहवासके इस महत्त्वको समझ जायँगे तो होने-वाले अनेकों बुरे अनर्थोंसे बचकर अपने मार्गको अच्छा बना लेंगे एवम्

अपनी धर्मपत्नियोंकी प्रसन्नताके उपाय जान, उन्हें अनेकों व्यभिचारोंसे बचा सकेंगे। दूसरा मेरे इसके विस्तृत लिखनेका एक और कारण यह है कि-प्राचीन साहित्यमें संभोग शृंगारकी कवितामें ये ही पदार्थ कहे जा रहे हैं। विना इसके जाने आजके कविलोग संभोग शृंगारकी उच्च कोटिकी ऐसी कविता नहीं कर सकते जिसमें कि अश्लीलता न आये इस कारण व्यर्थकी नखसिखकी कवितामें अपनी कवित्व शक्तिका व्यय करके विचलित व्यक्तियोंके चांचल्यके कारण बनते हैं। वे इस अधिकरणकी टीका तथा पहिले कवियोंके उपयोगको देख लेंगे तो सिद्धहस्त कवियोंकी तरह शृंगारके दोनों भागोंकी कविता कर सकेंगे, केवल वियोगकी आहोंसे आकाशको न भरेंगे। जब इतना इसका उपयोग हो लेगा उसी समय मैं मेरे परिश्रमको सफल समझूंगा।

इसके प्रथम कहनेका कारण।

स्त्रियं साधयत इत्युक्तं स्त्रीसाधनं चावापः स चाविज्ञातशास्त्रस्य न युज्यत इत्यावापात्प्राक्तन्त्रं सांप्रयोगिकमुच्यते ।

गत अधिकरणके अन्तमें कहा है कि 'अलभ्य भी स्त्रीको सिद्ध कर ले' पर स्त्रीका साधन आवाप है, यह साधारण अधिकरणके पहिले अध्यायके २२ वें सूत्रके अन्तमें कहा है। विना शास्त्रके जाने स्त्रीको सब ओरसे अपनी ओर खींचनेके प्रयत्न नहीं कर सकता, इस कारण आवापसे पहिले रति पैदा करनेके विधान बतानेवाले सांप्रयोगिक अधिकरणको कहते हैं।

प्रमाण, काल और भावसे सहवासकी व्यवस्था।

तत्रापि संप्रयोगो रतं तस्मिन्प्रमाणादिभिर्ज्ञातस्वरूपे यथायथमालिङ्गनादयः प्रयुज्यमाना रत्यर्था इति प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनमुच्यते। हेतौ पञ्चमी। प्रमाणादिना तस्य व्यवस्थापनमित्यर्थः।

तंत्रमें भी जो आभ्यन्तर संप्रयोग यानी रत है इसमें भी आपसके यंत्रोंके

---

१ स्त्रीको प्राप्त करनेके उपायका नाम है। इस अधिकरणको छोड़कर बाकी सभी अधिकरणोंमें प्राप्तिके उपाय बताये हैं, इस कारण इस अधिकरणको छोड़कर सब आवाप कहाते हैं, अत एव इन्हें जाननेकी आवश्यकता है।

२ साधारण अधिकरणके दूसरे अध्यायके १८ वें सूत्रमें संप्रयोग बता चुके हैं।

३ पुरुषके गुप्तेन्द्रियकी लम्बाई तथा स्त्रीके गुह्याङ्गकी गहराई। आजके कामान्धोंको इस बातका ज्ञान नहीं, इसी कारण कभी २ बड़े २ अनर्थ हो जाते हैं।

प्रमाण, रागोंकी लहरें एवम् ठहरनेके कालसे रतके स्वरूपको जान लेनेपर प्रयोगके क्रमके अनुसार सिलसिलेवार रतिके लिये आलिंगन आदिक प्रयुक्त होते हैं, इस कारण सवसे पहिले प्रमाणादिकसे सहवासकी व्यवस्था कैसे होती है यह जान लेना बहुत जरूरी है, अतएव इस प्रकरणको सवसे पहिले कहते हैं । इस प्रकरणमें इनसे रतकी व्यवस्था की है ।

प्रमाणसे रतकी व्यवस्था ।

तत्र लिङ्गसंयोगाद्भावकालाविति । ताभ्यामपि प्राक्प्रमाणतस्तावद्रतावस्थापनमाह—

जवतक स्त्रीपुरुष दोनोंका आपसमें संयोग नहीं होता तवतक रागकी बढ़ाचढ़ी एवं ठहरनेके कालका उपयोग नहीं हो पाता, इस कारण इन तीनोंमें भी पहिले प्रमाणसे रतकी व्यवस्था बताते हैं—

नायक और नायिकाओंकी जातियाँ ।

प्रमाणज्ञानमें जातिज्ञान सना हुआ है इस कारण इसे भी साथ ही कहते हैं कि—

शशो वृषोऽश्व इति लिङ्गतो नायकविशेषाः । नायिका पुनर्मृगी वडवा हस्तिनी चेति ॥ १ ॥

गुप्त इन्द्रियके प्रमाणसे शश, वृष और अश्व ये तीन प्रकारके नायक तथा मृगी, वडवा और हस्तिनी य तीन तरहकी नायिकाएँ होती हैं ॥ १ ॥

लिङ्गत इति । लिङ्ग्यन्ते स्त्रीत्वादयोऽनेनेति लिङ्गम् । लोकप्रतीत्या लिङ्गं मेहनमुच्यते । तत्र पौंस्नमुन्नतं प्रमाणं स्त्रीणां निम्नं प्रमाणं च शास्त्रव्यवहारयोः। अल्पात्पौंस्नाच्छश इव शशः । तथा समाद्वृषः । महतोऽश्वः । इति नायकभेदाः। नायिका पुनरिति । पुनःशब्दो विशेषणार्थः । लिङ्गस्य भिन्नत्वात्संज्ञाभेदः प्रयुज्यत इति पूर्वाचार्यैर्मृग्यादिभिरुपमिताः, शशादिभिः । तथा चाहुर्लक्षणम्—

---

१ राग–दिलकी चाहको कहते हैं जिसके कि कारण दोनों मिलते हैं तथा सहवास करते २ जो वीर्य्यपात होता है उसका नाम भी भाव है, पर यह यंत्रसंयोग होनेके पीछे रतिकी समाप्तिमें होता है, इस कारण काल इसके भीतर आजाता है । समयके वाद शुक्रक्षरण होता है, इस कारण समयसे पहिले व्यवस्था करके पीछे भावसे करनी थी, किन्तु जो चाहरूप भाव सहवासका कारण है उसीको लेकर कालसे पहिले भावका विचार किया है ।

२ संभोग करते २ वीर्य्यके पात होनेका समय ।

३ (' प्रमाणकालभावेभ्यो ' यह हेतुमें पंचमी है, इसीका अर्थ ' से ' है ।)

' षण्णवद्वादशेत्येवमायामेन यथाक्रमम् । शशादिभेदभिन्नानां त्रिधा साधनसंस्थितिः ॥ परिणाहेन तुल्यं स्यादायामस्य प्रमाणतः । नियतं नेति केचित्तु परिणाहं प्रचक्षते ॥ स्त्रीणां संसारमार्गोऽपि तद्वदेव प्रभिद्यते । आयामपरिणाहाभ्यां मृग्यादीनां शशादिवत् ॥ ' इति ॥ १ ॥

यद्यपि सूत्रमें आया लिंग शब्द, हेतु, प्रधान, चिह्न, शिवमूर्ति और पुरुषके शेष (मदनांकुश) में प्रयुक्त होता देखा जाता है, किन्तु स्त्रीके मदनमंदिर (गुप्तअंग) को कोई भी कभी इस शब्दसे कहता हुआ नहीं सुना । इसी कारण इसकी व्युत्पत्ति करके कहते हैं, कि जन्मके समय जिससे स्त्री है वा पुरुष है यह पता चले उसका यह नाम है । इसके साथ टीकाकार यह भी दिखाते हैं, कि इसके मेहन अर्थको लेकर ही यहां स्त्री और पुरुष दोनोंके गुप्तअंगके अर्थमें इसका प्रयोग कर दिया है । इन दोनोंमें पुरुषका उठा हुआ एवम् स्त्रीका गहरा होता है । शास्त्र और व्यवहारमें ऐसा ही देखा जाता है । जिनका बाल्यकालका पुरुषत्व द्योतक चिह्न छोटा है वे शशकी तरह हैं, इस कारण शश कहाते हैं । जिनका समान प्रमाणसे है वे वृष एवं साधारणसे बड़े साधनवाले अश्व कहाते हैं । ये नायकोंके संज्ञाविशेष यानी भेद हैं । गुप्त इन्द्रियकी गहराईके भेदसे नायिकाओंकी भी भिन्नसंज्ञा होनी उचित है, किन्तु उनके मृगी आदि भेद हैं । खरगोशिनी अश्वी आदि नहीं हैं । इसी विशेष बातको दिखानेके लिये सूत्रमें ' पुनर् ' शब्द दिया है । कामशास्त्रके ज्ञाता कहते भी हैं कि-" शश, वृष और अश्व भेदसे विभक्त हुए नायकोंके भोगसाधनकी क्रमशः छः, नौ और बारह अंगुलकी लम्बाईके भेदसे तीन प्रकारकी स्थिति मानते हैं । जितनी लम्बाई है उसकी सबओरकी चौड़ाई भी उतनी ही होनी चाहिये पर कोई इस चौड़ाईको नियत नहीं मानते, केवल गहराई और लम्बाईपर ही संज्ञा बाँधते हैं । शशादि पुरुषोंकी तरह मृगी आदि स्त्रियोंका भी संसारमार्ग आयाम और परिणाहसे भिन्न भिन्न होता है " ॥१॥

पद्मिनीआदिका विचार ।

यह कामसूत्र, कामशास्त्रके जितने भी आजकल ग्रन्थ प्रचलित हो रहे हैं, उन सबका मूल ग्रन्थ है । दूसरे ग्रन्थोंने इसीसे लेकर अपनी खिचड़ी अलग अलग पकाई है, किन्तु उन ग्रन्थोंमें पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी ये जातिभेद किये हैं । पर कामसूत्रमें मृगी, वडवा और हस्तिनी ये तीन भेद देखनेमें आरहे हैं तथा पुरुषजातियोंमें शश, मृग, वृष और अश्व मानते

हैं। यह अन्तर क्यों हो रहा है ? इस आशंकाका होना सहज है, यदि इसपर गहरी दृष्टिसे विचार करते हैं तो फिर इस शंकाके लिये कोई स्थान भी नहीं रह जाता। कामसूत्रके बताये हुए जातिभेदोंका ही नामान्तर मालूम होता है। कामसूत्रमें भी शश, वृष और अश्व नायक माने हैं पर इन दूसरे ग्रन्थोंमें सूत्रसे मृग अधिक दीखता है तथा हस्तिनी दोनोंमें है बाकी दोनोंमें नामभेद एवम् एक अधिक रहती दीखती है। मीननाथकी बनाई स्मरदीपिकामें जो जोड़ी बनाई है, उससे यह प्रश्न हल हो जाता है वे शश जातिके नायक और पद्मिनी नायिका, मृग नायक और चित्रिणी नायिका, वृष नायक और शंखिनी नायिका तथा अश्व नायक और हस्तिनी नायिकाकी बराबरकी जोड़ बताई है। कामसूत्र हस्तिनी और अश्वकी बराबरकी जोड़ मानता है, यह दोनोंका एक ही है। कामसूत्रने वृष और बडवाकी समजोट बताई है, अतः शंखिनीको बडवा ही समझनी चाहिये। इसी तरह शश नायक और मृगीकी बराबरकी जोट मानी है। अतः पद्मिनीको मृगी समझ लेना चाहिये। इस मृगीके दो भेद कर लेने चाहियें। सर्वगुणसंपन्न पद्मिनी तथा अल्प गुणोंवाली चित्रिणी समझ लेना चाहिये। इसी तरह शशके भी दो भेद कर लेने चाहियें। पद्मिनीको पत्नी बनानेकी मुकाबिलेकी पूर्णयोग्यता रखनेवाला शश तथा चित्रिणीका समकक्ष शश मृग कहायगा। इसी तरह शंखिनीको बडवा समझना चाहिये। बडवाकी और वृषकी तो बराबरकी जोट होती ही है। पाश्चात्यसंसार इस कामसूत्रको कोर्टसिपका मुख्यशास्त्र मान, इसी प्रकरणके आधारपर कल्पना करता है कि—' वात्स्यायनने जो मदनांकुशकी लंबाई और मदनमंदिरकी गहराई आदिके आधारपर बराबरकी जोड़का निश्चय किया है, इसको व्यवहारसे जानकर इसीके आधारपर प्राचीनभारतमें भी जोड़ीका निश्चय करके विवाह होता था।' उनकी इस बातसे आजके अनेक भारतीय भी ऐसे चक्करमें पड़े हैं कि वे भी उन्हींके बताये हुए जोड़ीके निश्चयको वैवाहिक सुखका साधन समझने लगे हैं। पर यह उनकी भूल है। संकल्पमात्रसे अंगसंग करनेके कारण ही अपनेको पत्नी मान, सती हो जानेवाली कुलललनाओंवाले धर्मप्राण भारतमें प्राचीनकालसें कोर्टसिपसे जोटका निश्चय होकर विवाह हो, इस बातको भारतके इतिहासका जाननेवाला कोई भी सहृदय पुरुष नहीं मान सकता। कामसूत्रकी पुरुषोंकी मदनांकुशकी लम्बाई तथा स्त्रियोंके मदनमंदिरकी गहराईपर जातिविभाग तथा उनकी आकृति विशेषोंको कहनेका तात्पर्य यह है कि नायिकाकी आकृति विशेषोंसे उसकी जातिका निश्चय कर ले। इससे उसके मदनमान्दिरका आप

ही अन्दाज हो जायगा। इसी कारण अनेकों लक्षणोंसे स्त्री पुरुषोंकी जातियोंका निश्चय किया गया है। यदि स्त्री पुरुषको देख उसकी जातिका निश्चय कर ले तथा पुरुष स्त्रीको देख उसके जातिका निश्चय कर ले तो उसके अनुसार मदनमंदिर और मदनांकुशकी गहराई लंबाईका अन्दाज अपने आप हो जायगा, इसके लिये कोर्टसिप् (परीक्षाके सहवास) की आवश्यकता ही न रह जायगी। इसी कारण हम स्त्रीपुरुषोंकी जातियोंकी पहिचान बताते हैं। **पद्मिनी**—के चकित मृगछोनाकेसे नेत्र होते हैं, उनके किनारोंपर लालीके डोरे पड़े रहते हैं। पूर्णचान्दके सम मुख खिला रहता है। शिरीष और कमलके फूलकी तरह शरीर कोमल होता है। इसके रतिजलसे खिले कमलके फूलोंकीसी सुगन्धि तथा शरीरसे बड़ी दिव्य गन्ध आती रहती है। इसके दोनों स्तन बिल्वफलकी तरह होते हैं। शीतकालमें उष्ण और गरमीके दिनोंमें ठण्डी रहती हैं। शरीरकी चमक सुवर्णपंकजसी तथा चम्पकके समान गौर होती है। तिलके फूलकीसी सुआसारी नाक एवं शरीर तनु होता है। सदा द्विज, गुरु और देवोंकी पूजामें इच्छा रखती है। इसका मदनमंदिर खिले कमल जैसा, भोजन थोड़ा, विलासमें चतुर पर थोड़ा चाहनेवाली, उदरपर त्रिवली, हंसकीसी वाणी और चाल तथा सुन्दर वेषवाली, सफेद साफ कपड़ोंकी प्रेमिनि, कम्बुकंठी और लज्जावती 'पद्मिनी' होती है। पिकवाणी, पादशोभा, पद्मगन्धा, थोड़ीनींद, पद्मबन्ध, स्वल्पभोगिनी, बहुकेशी, विस्तीर्ण गोलस्तनोंवाली और सुन्दर दांतोंवाली होती है। इसके मुखसे सुन्दर गन्ध आती रहती है। नागरसर्वस्व, इसे कफ प्रकृतिवाली, चिकने मुखकी बताता है तथा इसका मदनमंदिर ६ अंगुल गहरा होता है। जिस मृगी स्त्रीमें ये बातें पूरी हों वह पद्मिनी होती है। **चित्रिणी**—पतले शरीरवाली कदकी न छोटी और न बहुत बड़ी, सुन्दर चाल या गजगामिनि, कम्बुकंठी, चंचलनयनोंवाली, बड़े बड़े स्तनों और नितंबोंवाली, काकजंघा या पतली जांघोंवाली, पतली कमरवाली, छोटे पेटवाली, शीतमें गरम और गरमीमें थण्डी, संगीतकी जाननेवाली, शिल्पविद्यामें निपुण, विद्याकी बातोंमें रुचि रखनेवाली और मत्तमयूर व चकोरकेसे स्वरवाली होती है। शिरपर काले काले घुँघराले बाल हुआ करते हैं। गोल उठा हुआ थोड़े बालोंवाला

मदनमंदिर होता है । मदनजल मधुकी गन्धवाला होता है । यह बाह्य संभोगमें अधिक प्रीति रखती है । मधुर और थोड़ा भोजन करनेवाली चित्र बनानेमें रत स्त्री 'चित्रिणी' होती है। यह स्निग्धवाणी, केशशोभा, क्षारगन्धा, दीर्घनींद, लघुभोगवाली, वक्रकेशी, समदंती, शून्य गन्धवाली, समस्तनी, स्वल्पकेशी और मानिनी हुआ करती है । कफ अधिक होता है, यह मृगी ही है । शंखिनी—शरीर पतला या मोटा दोनों ही तरहका हो सकता है पर लम्बा और गरम होता है ।पैरोंका बीच भी लम्बा रहता है । रँगे कपड़ोंको पहिनना चाहती है । क्रोधी स्वभाव होता है । स्तन छोटे होते हैं । शरीर गरम रहता है । आखोंमें भूरी रंगत तथा टेढ़ा देखती है । जलदी चलती है । कामसे व्याकुल हो, सहवासमें नाखून आदि अधिक लगाना चाहती है । अत: कष्टप्रद रहती है तथा कष्टसे भोगी जा सकती है । मद्य आदि नसीली चीजें अधिक चाहती हैं । मध्यकोटिका भोजन तथा पित्त प्रकृतिकी होती है । गधे जैसा घरघर व रूखा स्वर और स्वभाव मलीन होता है । सहवासमें अल्पमदनजल तथा विना उठे अति—बालोंके गहरे मदनमंदिरवाली होती है । इसके कामजलमें क्षारकीसी गन्ध आया करती है । यह क्रूरवाणी, मुखशोभा, मीनगन्धा, घोरनींद, मीनबन्ध, बहुभोगा, दीर्घस्तनी, दीर्घ दांतोंवाली और ऊर्ध्वकेशी कलिहारी होती है। कामसूत्रमें इसे ही बडवा कहा है । रतिरहस्य इसका पीला एवं मांसकीसी सुगन्धिवाला कामजल मानता है । उसमें मांसकीसी सुगन्धि नागरसर्वस्व मानता है । हस्तिनी—इसकी चाल अच्छी नहीं होती । पैरोंकी अँगुलियाँ मोटी और टेढ़ी होती हैं । गर्दन छोटी और मोटी होती है । बाल सघन और कपिल एवं चेष्टा क्रूर तथा बहुत मोटी हुआ करती है । इसके शरीर तथा मदनजलसे हाथीके मदकी गन्ध आया करती है । प्राय: कडुआ कसेला दूना भोजन करती है । लज्जा इसे नहीं होती । लपलपाते बड़े २ होठ होते हैं । इसका मदनमंदिर भीतरसे अत्यन्त विशाल होता है। वदनपर अत्यन्त रोम होते हैं । सहवासमें कठिनतासे सिद्ध होती है । गद्गद् स्वर होता है । यह मेघवाणी, कटि शोभा, मदगन्धा, गजनींद और गजबन्धसे प्रीति रखनेवाली, विकटस्तनी या स्तनहीन मधुगन्धवाली एवं धन और भोगोंको अत्यन्त चाहती है ।

इसकी वात प्रकृति होती है। मेदा अधिक होता है। मदनमन्दिर सामान्यत १२ अंगुल गहरा होता है तथा आवश्यकतावश अधिक बढ़ जाता है।

पुरुषजातियोंका विचार।

शश—मृदुभाषी, प्रसन्नचेता, कान्तिवाला सुन्दर घुँघरालेबालोंवाला, सारे गुणोंका खजाना, सत्यवादी, न छोटा और न लम्बा, सदा प्रसन्न रहनेवाला, गोल मुखवाला, चरण, जघन और हाथ हलकोंवाला एवम् सघन उँगलियों-वाला, मानी, परस्त्रीको माताके समान माननेवाला, गुरुब्राह्मण सेवी, सुग-न्धित रतिजल एवं छः अंगुलके साधनवाला पुरुष 'शश' होता है। इसके शरीर तथा मदनजलसे सदा सुगन्धि आती रहती है। ये अल्प रमण करते हैं और मृदुवेगी होते हैं। **मृग**—कमलनयन, सुशील, सुवेश, उपकारी, धीर, प्रसन्नचेता, जवी, डरपोक, सुगन्धित शरीरवाला और गानप्रिय 'मृग' होता है। यह कामसूत्रके बताये हुए शशका ही एक हलका भेद है। ये शशसे कुछ ज्यादा रती होते हैं। **वृष**—मोटे गलेवाले, सुन्दर चाल चलनेवाले, लाल हाथ पैरोंवाले, मोटे, मृदुभाषी, स्थिरपलकोंकी आखोंके, कछुएकेसे पेटके, सुन्दर, मेदस्वी 'वृषभ' होते हैं। इनके वीर्य्य तथा वदनसे क्षारकी सी सुगन्ध आती है। ये मध्यवेगके होते हैं। इनकी पित्तकी प्रकृति होती है। **अश्व**—वदन, कान, शिर और ओठ बड़े और कृश हुआ करते हैं। बाल सघन तथा कुटिल, अंग और जंघा मजबूत होता है। अंगुली लंबी, मेघकी आवाज, मोटा ऊरु, शीघ्रगामी, सुन्दर नाखूनोंवाले अश्व होते हैं। ये चण्डवेगी होते हैं, इनके वदन व मदनजलसे मदकी बू आया करती है। वातल होते हैं।

मिश्रविचार।

स्त्रियोंमें पद्मिनी आदिका निरूपण तथा पुरुषोंमें शश आदिके भेद यद्यपि अनेकों लक्षण लेकर किये गये हैं, पर शरीरोंकी सुगन्धिमें कोई उलटफेर नहीं होता दूसरे लक्षण तो ऊकचूक भी हो जाते हैं। शरीरके गन्धसे मदन-जलकी गन्ध तथा उसके कामांकुश व मदनमंदिरकी गहराई और कामके वेगका पता चल जाता है। कामशास्त्रके निष्णात व्यक्ति तो सुगन्धिमात्रसे ही सारी पाहिचानें करके निश्चय कर लेते हैं तथा और भी लक्षणशास्त्र हैं, जिनसे सारी पाहिचानें हो जाती हैं। उन्हें सहवास करके जाननेकी आवश्य-कता नहीं होती। प्राचीन भारतमें अन्य शास्त्रोंकी तरह कामशास्त्रका भी

पर्य्याप्त पठन, पाठन था, अत एव उनके निश्चय कोर्टसिपके विना ही होते थे । इससे यह निश्चय हो जाता है कि भारतमें योरुप जैसी रीति न अत्र है एवम् न पहिले थी । जो भारतीय पाश्चात्य देशोंमें भ्रमण करके वहाँको गन्दगीको भारतके पवित्र वक्षःस्थलपर बखेरना चाहते हैं उनसे भगवान् भारतकी रक्षा करे ॥

समरत ।

तत्र सदृशसंप्रयोगे समरतानि त्रीणि ॥ २ ॥

पहिले सूत्रमें जो नायिक नायिकाओंके भेद दिखाये हैं, इनमें बराबरके यंत्रोंवाले नायिक नायिकाओंके समागम होनेके कारण तीन 'समरत' होते हैं॥

तत्रेति नायकनायिकयोर्भेदे । सदृशो विसदृशो वा संप्रयोगः स्यादित्याह—सदृशसंप्रयोग इति । शशस्य मृग्या, वृषस्य वडवया, अश्वस्य हस्तिन्या सह सदृशः संप्रयोगो रन्ध्रेन्द्रियसमाप्तिलक्षणः । अल्पादिभिर्लिङ्गसादृश्यात् । तस्मिन्सति त्रीणि समरतानि । रन्ध्रसाधनयोराश्रयाश्रयिभावेन यन्त्रसाम्यात् ॥ २ ॥

यह जो नायक और नायिकाका भेद पहिले सूत्रमें दिखाया है, इसमें बराबरका समागम या विना बराबरका समागम हो ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि, शशका मृगीसे, वृपका वडवासे तथा अश्व नायकका हस्तिनी नायिकाके साथ बराबरका समागम होगा, क्योंकि इसमें पुरुषके साधन (मदनाकुंश) की लम्बाईके बराबर नायिकाके गुप्त अंग (मदनमंदिर) की गहराई होनेके कारण दोनों यंत्र फिट् बैठ जायँगे, ऐसा होनेपर ऊपरके बताये हुए तीन बराबरके समागम हैं, क्योंकि पुरुषके आधेय भोगसाधन यंत्रके बराबर ही गहरा उस आधेययंत्रका आधार नायिकाका यंत्र भी है ॥ २ ॥

विषम रत ।

विपर्ययेण विषमाणि षट् । विषमेष्वपि पुरुषाधिक्यं चेदनन्तरसंप्रयोगे द्वे उच्चरते । व्यवहितमेकमुच्चतररतम् । विपर्यये पुनर्द्वे नीचरते । व्यवहितमेकं नीचतररतं च । तेषु समानि श्रेष्ठानि । तरशब्दाङ्किते द्वे कनिष्ठे । शेषाणि मध्यमानि ॥ ३ ॥

यंत्रोंके छोटे बड़े होनेके कारण छः विषम रत होते हैं, इनमें भी पुरुषका साधन बड़ा हो तो, दो अनन्तर उच्चरत होते हैं तथा पुरुषके साधनको अति-

बड़ा होनेपर एक व्यवहित उच्चरत रत होता है । साधन छोटे और छिद्र बड़ेमें, अनन्तर दो नीचरत होते हैं । व्यवहित एक नीचतर रत है । इनमें समरत श्रेष्ठ हैं, उच्चतर और नीचतर ये दोनों अधम रत हैं । बाकीके चार मध्यम हैं ॥ २ ॥

शशस्य वडवया हस्तिन्या च, वृषस्य मृग्या हस्तिन्या च, अश्वस्य मृग्या वडवया चेति विसदृशः संप्रयोगः, लिङ्गवैषम्यात् । तस्मिन्सति षड् विषमाणि रतानि । यन्त्रवैषम्यात् । विषमेष्वपि रतेषु व्यवहारार्थं विशेषसंज्ञामाह—पुरुषाधिक्यं चेति । यदा लिङ्गतः पुरुषाधिक्यं स्त्रिया न्यूनत्वं तदानन्तरो व्यवहितो वा संप्रयोगः स्यात् । तत्राश्वस्य वडवया वृषस्य मृग्येति वैलोम्येनान्तरसंप्रयोगः । तस्मिन्समरताद्वे उच्चरते साधनस्योच्चतया रन्ध्रमवपीडय व्याप्रियमाणत्वात् । व्यवहितमिति—अश्वस्य मृग्या सह व्यवहितसंप्रयोगः, वडवया व्यवधानात् । तस्मिन्सति उच्चरतादुच्चतररतम्, साधनस्यात्युच्चतया निष्पीडितेन कथंचिद्व्यापारात् ।

शशका वडवा और हस्तिनीके साथ, वृषका मृगी और हस्तिनीके साथ, अश्वका मृगी और वडवाके साथ जो समागम है, यह नायक नायिका दोनोंके यंत्रोंको बराबरके न होनेके कारण बराबरका समागम नहीं होता । ऐसा समागम होनेपर छः विषम रत होते हैं । विषम रतोंमें भी व्यवहारके लिये विशेष संज्ञा करते हैं कि—यदि पुरुषका गुप्त अंग बड़ा हो एवम् नायिकाका छोटा हो तो ऐसी हालतमें अनन्तर और व्यवहित दो संप्रयोग होते हैं । इसमें अश्वका वडवाके साथ तथा वृषका मृगीके साथ समागम हो तो यह विलोम (उलटा) होनेके कारण 'अन्तर सम्प्रयोग' है । ऐसा संप्रयोग होनेपर समरतसे दो "उच्चरत" होते हैं। क्योंकि इसमें साधन बड़ा है इस कारण वह छेदको पीडित करके व्याप्त होता है । अश्वका मृगीके साथ समागम "व्यवहित संप्रयोग" है । क्योंकि इसमें वडवाका व्यवधान है । इसके संप्रयोगके होनेपर यह उच्चरतसे भी उच्च होनेके कारण "उच्चतर रत" कहलाता है । क्योंकि इसमें साधनके अत्यन्त बड़े होनेसे छिद्रका अत्यन्त पीडन होनेके कारण किसी तरह ही व्यापार होता है, सुखपूर्वक नहीं ।

विपर्यये द्वे । पुनरिति—पुनःशब्दो विशेषणार्थः । स्त्रियाधिक्ये त्वनन्तरसंप्रयोगे शशस्य वडवया वृषस्य हस्तिन्येत्यानुलोम्येन समरताद् द्वे नीचरते । साधनस्य निकृष्टतया रन्ध्रे सम्यगनत्रपूर्य व्यवहारात् । व्यवहिते वडवयान्तरिते प्रयोगे

शशस्य हस्तिन्या सहेति नीचरतान्नीचतररतम्, तत्रानवपूर्यैव व्यवहारात् । एषामुत्तमादीन्याह—तेष्विति । नवसु रतेषु षड्भ्यो विषमरतेभ्यः समानि श्रेष्ठानि प्रशस्तानि । तत्र यन्त्रसाम्यादुभयोः परस्परसुखातिशयात् । तरशब्दाङ्किते कनिष्ठे उच्चतरनीचतरशब्दाङ्किते अधमे, तत्र यन्त्रस्यातिपीडनादतिशैथिल्याच्च स्पर्शसुखस्याभावात् । शेषाणि चत्वारि—उच्चरते द्वे नीचरते द्वे मध्यमानि श्रेष्ठकनिष्ठाभावात् । तत्र ह्यनतिपीडनादनतिशैथिल्याच्च स्पर्शसुखस्य समत्वात् ३॥

अनन्तर उच्चरतसे उलटे दो नीचरत होते हैं यानी अनन्तर उच्चरतमें जैसे साधन बड़ा रहता है उसी तरह इसमें मदन मंदिर बडा रहता है इसी कारण उन्हें विपरीत कहा है। सूत्रमें आया पुनः शब्द इस विशेष बातके कहनेके लिये है कि पुरुषसे स्त्रीके साधनके बड़े होनेपर तो शशका वडवाके साथ समागम तथा वृषका हस्तिनीके साथका समागम समरतसे अनुलोम (उलटा) एवं पूर्वसे उलटा होनेके कारण दो समरतसे अनन्तर नीचरत हैं। क्योंकि इनमें पुरुषके साधनको निकृष्ट होनेके कारण वह छिद्रमें अच्छी तरह विना फिट् बैठे ही स्त्री पुरुषोंका रति व्यवहार होता है। शशका हस्तिनीके साथ समागम हो तो इसमें बीचमें वडवाका व्यवधान है, इस कारण यह व्यवहित नीचतर रत है। क्योंकि शशका वडवाके साथ अनन्तर नीच एवम् यह नीचसे भी नीच है। क्योंकि इसमें छिद्रको विना ही पूरित किये व्यवहार होता है। इन सब रतोंमें उत्तम, मध्यम और अधम रत वताते हैं कि—नौ रतोंमें छः विषम रतोंसे तीन 'समरत' श्रेष्ठ हैं। क्योंकि इसमें यंत्रोंके बराबरके होनेके कारण आपसमें अत्यन्त सुख होता है। उच्चतर और नीचतर शब्दसे कहे गये रत अधम हैं, क्योंकि अश्वके मृगीके साथ सहवासमें तो स्त्रीके यंत्रका अत्यन्त पीडन होता है एवम् शशके हस्तिनीके साथ समागममें पुरुषका भोगसाधन उसमें अत्यन्त ढीला रहता है, इस कारण स्पर्शके सुखका भान नहीं होता। दो उच्चरत तथा दो नीचरत मध्यम हैं, क्योंकि न तो श्रेष्ठ हैं एवम् न कनिष्ठ हैं क्योंकि इनमें न तो छिद्रका अत्यन्त पीडन ही होता है एवम् न अधिक साधन ही शिथिल रहता है, इस कारण स्पर्शसुख सम रहता है ॥ ३ ॥

सार।

शश, वृष और अश्व इन नायकोंकी क्रमशः मृगी, वडवा और हस्तिनीके साथ बराबरकी जोटें हैं । सिवा इसके दूसरी रीतिसे जोट बिठानेपर बरा-

वरकी न होनेके कारण विसदृश समागम कहा जायगा, यह विपयसमागम छः प्रकारका होता है । शश–अपनी बराबरकी जोट मृगीको छोड़कर वडवा और हस्तिनीके साथ भी समागम कर सकता है । इसमें यदि वह वडवासे समागत होता है तो मृगीके पासकी ही नायिकासे समागम करनेके कारण यह समागम अनन्तरनीचरत कहाता है तथा हस्तिनीके साथ हुआ समागम बीचमें वडवाके रहनेके कारण व्यवहितनीचतर–रत बोला जाता है । यदि वृष अपनी बराबरकी जोटकी अश्वीको छोड़, नीचेकी नायिका हस्तिनीके साथ संगत होता है तो यह रत अनन्तरनीच कहाता है एवम् मृगीके साथ संगत होता है तो यह अनन्तरउच्चरत होता है । अश्व अपनी बराबरकी जोट हस्तिनीको छोड़कर, यदि अश्वीके साथ समागम करता है तो उसका यह अनन्तरउच्चरत होता है । यदि यह मृगीके साथ संगत हो तो यह व्यवहितउच्चतररत होगा । इसमें बराबरकी जोट श्रेष्ठ है । उच्चतर और नीचतर रत अधम हैं एवम् दो अनन्तर उच्चरत तथा दो अनन्तर नीचरत मध्यम है ॥

अनन्तर नीचोंसे अनन्तर उच्चरत श्रेष्ठ हैं।

तत्रापि मध्यमानां विशेषमाह—

इसमें भी मध्यम रतोंमें विशेष कहते हैं, कि–

साम्येऽप्युच्चाङ्कं नीचाङ्काज्ज्यायः । इति प्रमाणतो नवरतानि ॥ ४ ॥

मध्यम रतोंमें भी अनन्तर उच्चरत, अनन्तर नीचरतसे अच्छा है । ये प्रमाणसे नौ रत कह दिये ॥ ४ ॥

ज्येष्ठकनिष्ठाभावाद्रतस्य साम्येऽपि—मध्यस्थेऽपीत्यर्थः, उच्चाङ्कं नीचाङ्काज्ज्याय इति । उच्चरते हि योषित उत्फुल्लकादिना प्रसार्य जघनं संविष्टायाः साधनाधिक्यात्कण्डूतिप्रतीकाराधिकलाभः । नीचरते तु संपुटकादिनावह्रासितजघनाया अपि न तत्प्रतीकारोऽस्ति । यथोक्तम्—'न त्वल्पसाधनः कामी चिरकृत्योऽपि वा नरः । कण्डूतेरप्रतीकारान्नातिस्त्रीप्रिय उच्यते ॥' इति उक्तमेवेति ॥ ४ ॥

ज्येष्ठ और अधमके अभाव होनेके कारण, मध्यम समागमोंमें रतके मध्यम होनेपर भी अनन्तर उच्चरत, अनन्तर नीचरतसे श्रेष्ठ है। क्योंकि अनन्तर उच्चरतमें उत्फुल्लकादिक[1] आसन विशेषोंसे जघनको फैलाकर संविष्ट[2] होनेवाली स्त्रियोंके साधनके बड़े होनेके कारण खाजके प्रतीकारका अधिक लाभ होता है। पर अनन्तर नीचरतमें संपुटक[3] आदिक आसन विशेषोंसे जघनको छोटा कर लेनेपर भी खाजका प्रतीकार नहीं हो सकता। कहा भी है कि-" छोटे साधनवाला[4] कामी चाहे बहुत देरतक ठहरनेवाला भी हो पर भीतरकी खाजके न मिटा सकनेके कारण स्त्रियोंका अत्यन्त प्यारा नहीं हो सकता " ॥ ४ ॥

भावसे रतकी व्यवस्था।

भावतो रतावस्थापनमाह—

यंत्रोंकी छुटाई बड़ाईसे रमणकी व्यवस्था करके अब रमणके समयकी तन्मयता और उसके वेगसे व्यवस्था करते हैं कि—

यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना वीर्यमल्पं क्षतानि च न सहते स मन्दवेगः ॥ ५ ॥

रमणके समय जिसकी रुचि उदासीनसी हो यानी साधारण चाह हो, पुरुषार्थ थोड़ा हो जो कि नाखून और दांतों आदिके जख्म व प्रहारोंको कम सहे वह मृदुराग नायक है ॥ ५ ॥

भावतो हि कालस्य पश्चाद्भावित्वात्फलरूपत्वाभावात्तस्यापरिच्छेदात् । तथा हि हेतुफलभेदादत्र द्विविधो भावः । तत्र कामिताख्यो हेतुः । तस्मिन्सति संप्रयोगात् । रतान्ते च भावः फलम् । तस्मादुभयरूपाद्रतमवस्थाप्यते स च मृदुमध्यमातिमात्रभेदात्त्रिविधः । तत्र यस्य संप्रयोगकाले प्रीतिरुदासीना संप्रयोगेच्छा मनाग्भवति रतिर्वा वीर्यमल्पं संप्रयोगे मन्दो व्यापारः शुक्रधातुर्वा स्तोकः क्षतानि

---

१ इसी अधिकरणके छठे अध्यायके आठवें सूत्रमें इस विधिको बताया है।

२ इस आसनसे रति करनेवाली।

३ इसी अधि० के छ० अ०के सोलह सतर और अठारहवें सूत्रमें इसका विधान बतलायाहै।

४ इसी अध्यायके ३४ वें सूत्रमें अत्यधिक काल तक ठहरनेवाले शशकी प्रशंसा की है। यह निन्दा मामूली तौरसे ज्यादा ठहरनेवालेकी है अत्यधिककी नहीं, नहीं तो पूर्वापर विरोध होगा।

च नायिकया दन्तनखैः प्रयुज्यमानानि उपलक्षणत्वात्प्रहरणं च न सहते य इत्यर्थाद्विभक्ति [वि] परिणामः । मृदुभावत्वान्मन्दवेगः । मृदुराग इत्यर्थः ॥ ५ ॥

भावसे कालको पीछे होनेवाला होनेके कारण तथा उसे फलरूप न होनेके कारण एवम् उसका विभाग न होनेके कारण (कालसे पहिले भावसे रमणकी व्यवस्था करते हैं) । भावके भेद–हेतु और फलके भेदसे भाव दो प्रकारका है । इन दोनोंमें चाहरूप जो भाव है वही हेतु है, क्योंकि विना चाहके समागम कैसा ? इसीके होनेपर रति होती है । रमणके अन्तमें जो सुखकी उपलब्धिके समय शुक्रक्षरण होता है यह फलरूप भाव है । इस कारण दोनों ही तरहके भावसे रतकी व्यवस्था करते हैं । यह भाव मृदु, मध्य और अधिमात्र भेदसे तीन प्रकारका है । मृदुवेग[1]–जिसका संप्रयोग (सहवास) के समय प्रीति उदासीन हो, सहवासकी इच्छा थोड़ी हो, रति थोड़ी हो, पुरुषार्थ थोड़ा हो, व्यापार भी थोड़ा करें, शुक्र धातु भी थोड़ा हो । नायिकाके लगाये दाँत और नाखूनोंको जो[2] न सह सके । दंत नख प्रहणनके उपलक्षक हैं यानी ये ही नहीं और भी किसी तरहके प्रहारोंको न सह सके । वह मृदुभाववाला होनेके कारण मन्दवेग यानी कोमल रागका पुरुष है ॥ ५ ॥

मध्यम और चंडवेग ।

तद्विपर्ययौ मध्यमचण्डवेगौ भवतः । तथा नायिकापि ६॥

---

१ रतिरहस्यके जातिअधिकारमें लिखा है कि–'**वेगः कामुकता ज्ञेयः**' कामकी प्रवल चाहको वेग कहते हैं किन्तु जयमंगलाकार रागको वेग बताते हैं । राग लौका नाम है, जिसे कि रँग जाना भी कहा जा सकता है, जिसका कि दूसरा पर्याय आसक्ति भी है । मेरी समझमें राग उस इच्छाका कार्य्य है जो इष्ट वस्तुमें चित्तकी वृत्तियोंको रंग देती है अतः मेरी धारणाके अनुसार वेग और राग (आसक्ति) का नाम है । अतः कामुकताका राग या आसक्ति ही अर्थ उचित है । **प्रीतिरुदासीना** (प्रीति उदासीन हो) यह मृदु रागका अर्थ है दन्तक्षत आदिका न सहना तो इसका कार्य्य है, क्योंकि राग हो तो उसे इसकी प्रतीति ही होना कठिन है ।

२ पहिले प्रीति और वीर्य्यके योगमें, यस्य–जिसकी, यह सम्बन्धमें षष्ठी की थी । फिर ' सहते ' क्रियाके योगमें, ' अर्थके वश विभक्ति बदल जाती है ' इस नियमसे ' यस्य का ' य ' हो जाता है । इसका अर्थ ' जो ' किया गया है ।

मृदुवेगका उलटा मध्यम और चण्डवेग होता है। इन तीनों नायिकोंकी बातें नायिकाओंमें भी होती हैं, इस कारण ये भी मृदुवेगा मध्यवेगा और चण्डवेगा हुआ करती हैं ॥ ६ ॥

यथोक्तस्य विपर्ययौ–यस्य संप्रयोगे प्रीतिर्मध्या वीर्यं मध्यं क्षतानि च यः सहते स मध्यभावत्वान्मध्यवेग इत्येको विपर्ययः । संप्रयोगे प्रीतिरधिका वीर्यं महत्क्षतानि चात्यर्थं सहते सोऽधिकभावाच्चण्डवेग इति द्वितीयः । तथेति पुरुषवत् । यस्य संप्रयोग इत्यादिना मन्दमध्यचण्डवेगा इति नायिकास्तिस्रः ॥ ६ ॥

जिसकी संप्रयोगके समयमें मध्यम प्रीति हो, जो कि नखदन्त–क्षत आदि प्रहारोंको मध्यमरूपसे सह सके तो यह मध्यमकोटिका रागवाला होनेके कारण 'मध्यवेग' कहाता है, यह एक पहिलेसे उलटा हुआ । संप्रयोगमें जिसकी प्रीति अधिक हो, बड़ा पुरुषार्थ हो, जो कि प्रहारोंको खूब सह सके वह अधिक रागके कारण 'चण्डवेग' कहाता है, यह दूसरा विपरीत हुआ। यानी पहिला तो मन्दवेग है ही उससे पहिला विपरीत मध्य तथा दूसरा विपरीत चण्डवेग होता है । पुरुषोंकी तरह स्त्रियाँ भी तीन तरहकी हैं। उदासीन प्रीति, अल्प रज तथा प्रहणनोंकी असहनतामें मन्दवेगवाली एवम् मध्यमा प्रीति, मध्यम रज तथा मध्यम सहनमें मध्यम वेगवालीं और इन बातोंकी प्रचण्डतामें चण्डवेगवाली होती हैं ॥ ६ ॥

भावरतके भेद ।

तत्रापि प्रमाणवदेव नवरतानि ॥ ७ ॥

प्रमाणसे की हुई रतिकी व्यवस्थाकी तरह भावसे रतिव्यवस्थामें भी नौ प्रकारके रत होते हैं ॥ ७ ॥

प्रमाणवदेवेति–सदृशसंप्रयोगे समरतानि त्रीणि । विपर्यये विषमाणि षट् ॥ ७ ॥

बराबरके वेगवाले नायक नायिकाओंके समागम होनेपर तीन 'समरत' होते हैं । एवं विपरीत वेगवाले नायक नायिकाओंके समागमसे छः विषम रत होते हैं ॥ ७ ॥

---

१ समरत–मृदुरागी पुरुषका मृदुरागिनी स्त्रीके साथ, मध्यम दर्जेके रागवाले पुरुषका मध्यम दर्जेके रागवाली स्त्रीके साथ तथा प्रचण्ड रागवाले पुरुषका प्रचण्ड रागवाली स्त्रीके साथ समागम होना वेगसे समरत है । क्योंकि दोनोंकी एक दूसरेके प्रति एकसी ही आसक्ति है । अनन्तर उच्चरत–मध्य वेगवाले पुरुषका मन्द वेगवाली नायिकाके साथ एवम् चण्ड–

कालसे रतकी व्यवस्था।

तद्वत्कालतोऽपि शीघ्रमध्यचिरकाला नायकाः ॥ ८ ॥

प्रमाण और रागकी तरह कालसे भी रतकी व्यवस्था है, क्योंकि नायक और नायिका शीघ्र, मध्यम और चिरकालमें रतिके समाप्त करनेवाले होते हैं ॥ ८॥

यथा भावप्रमाणाभ्यां तथा कालतो नव रतानि। भावोत्पत्तिनिमित्तस्य कालस्य शीघ्रादिभेदेन त्रैविध्यात्। यदाह—शीघ्रमध्यचिरकाला इति। शीघ्रेण कालेन रतिर्यस्य। तथा मध्यचिरकालाभ्याम। नायका इति नायकश्च नायिका चेति 'पुमान्स्त्रिया' इत्येकशेषनिर्देशः ॥ ८ ॥

जैसे भाव और प्रमाणसे नौ २ प्रकारके रत हैं, उसी तरह कालसे भी नौ रत हैं। क्योंकि भावकी उत्पत्तिका निमित्त जो काल है वह शीघ्र, चिर और

—वेगवाले नायकका मध्य वेगवाली नायिकाके साथ समागम अनन्तर उच्चरत है। **अनन्तर नीच**—मन्द वेगवाले नायकका मध्य वेगवाली नायिकाके साथ एवम् मध्य वेगवाले नायकका चण्डवेगवाली नायिकाके साथ समागम अनन्तर नीचरत होता है। **उच्चतर**—चण्ड वेगवाले नायकका मन्दवेगवाली नायिकाके साथ समागम होना उच्चतर रत है। **नीचतर**—मन्द वेगवाले नायकका चण्डवेगवाली नायिकाके साथ समागम करना नीचतर रत है। पहिले जो प्रमाणसे नौ प्रकारकी रतिकी व्यवस्था की है उसमें प्रत्येकके ये नौ भेद घट सकते हैं।

१ पांचवें सूत्रमें सं० टीकाकारने राग और सहवास करते २ स्खलित होना ये दो अर्थ भावके किये थे। भावसे रतिकी व्यवस्थामें उसने रागसे रतिव्यवस्था वेगके नामसे कही है। यहां स्खलित होनेके समयको लेकर रतिव्यवस्था कर रहे हैं। कोकमहाराजने भी कहा है कि—

> " स्त्रीपुंसोर्विसृष्टिश्च लघुमध्यचिरोदया।
> नवधा रतमेवं स्यात् कालतोऽपि प्रमाणवत् ॥ "

स्त्री पुरुषोंमेंसे कोई कोई 'प्रसंग' करते २ जलदी, कोई देर तथा कोई न तो देर तथा न जलदी ही शुक्रक्षरण करते हैं, इस कारण कालसे भी प्रमाणादिकी तरह नौ प्रकारका रत होता है। **समरत**—जलदीवालेका जलदीवालीके साथ, देरवालेका देरवालीके साथ एवम् साधारणका साधारणकालमें स्खलित होनेवालीके साथ समागम करना समरत है। इस तरह ये तीन समरत हैं। **अनन्तर उच्च**—साधारणकालमें भाव प्राप्त होनेवालेका शीघ्र ही स्खलित हो जानेवालीके साथ एवम् देरसे भावप्राप्त होनेवालेका साधारण कालतक ठहरनेवालीके साथ समागम अनन्तरउच्चरत कहलाता है। **अनन्तर नीचरत**—शीघ्र हो जानेवालेका साधारण कालमें होनेवाली नायिकाके साथ एवम् साधारणकालमें होनेवाले नायकका देरसे होनेवाली नायिकाके साथ समागम अनन्तरनीचरत कहलाता है। **उच्चतर**—बहुत देरसे होनेवालेका शीघ्र हो—

मध्य भेदसे तीन प्रकारका है। इसी कारण सूत्रमें कहा है कि शीघ्रकाल, मध्यकाल और चिरकालवाले नायक हैं। यानी जलदी ही जिनकी रति हो ले वे तथा जिनकी देरमें रति हो एवम् जिनकी रति न तो जलदी ही हो न देरसे ही हो। सूत्रमें नायक शब्द पढ़ा है इसका नायक और नायिका दोनों ही अर्थ हैं, क्योंकि नायक और नायिका इन दोनों शब्दोंमेंसे संस्कृत व्याकरणके एकशेष प्रकरणके अनुसार दोनोंमेंसे एक नायक शब्द रह गया है। यह अकेला ही नायक और नायिका दोनोंका अर्थ करता है। जिस तरह नायक शीघ्रादि कालवाले होते हैं उसी तरह स्त्रियाँ भी होती हैं। बहुतसी स्त्रियोंकी रति जलदी होती है, बहुतसी स्त्रियोंकी देरमें रति समाप्त होती है एवम् कुछ एक ऐसी हैं, जिन्हें न तो देर ही होती हैं एवं न जलदी ही ॥८॥

भावप्राप्तिमें स्त्रियोंके विषयमें मतभेद।

तत्र स्त्रियां विवादः ॥ ९ ॥

इसमें स्त्रियोंके बारेमें मत भेद है ॥ ९ ॥

नायकनायिकयोः स्त्रीपुंसयोः। स्त्रियां विवादः–स्त्रीविषये मतभेद इत्यर्थः॥९॥

नायक और नायिकामेंसे, स्त्रियोंके विसृष्टि सुखके विषयमें कामशास्त्रके आचार्य्योंका मतभेद है॥ ९ ॥

इसीपर श्वेतकेतुका मत।

तत्र औद्दालकेर्मतम्—

स्त्रियोंकी भावप्राप्तिके विषयमें औद्दालकिका मत दिखाते हैं कि–

–जानेवाली नायिकाके साथ सहवास उच्चतर रत कहाता है। नीचतर–बहुत जलदी शुक्रक्षरण करनेवालेका देरसे भावप्राप्त होनेवालीके साथ समागम नीचतर रत कहाता है। इस तरह तीन सम,दो उच्च,दो नीच,एक उच्चतर तथा एक नीचतर, ये सब मिलकर पूरे नौ हो जाते हैं॥

१ इस विषयमें श्वेतकेतु और बाभ्रव्यका मतभेद है। श्वेतकेतु कहते हैं कि–पुरुष केवल अपने साधनसे सहवासके समय स्त्रीके गुप्तअंगकी भीतरकी खाज मिटाता है इससे स्त्रीको सुख मिलता है तथा मन चाहे युवकके आलिंगन, चुम्बन आदिसे आनन्द मान लेती है एवम् इसीके साथ पुरुषके यंत्रके स्पर्शके सुखका अपने यंत्रसे अनुभव करती है। इन तीनों सुखोंके मिल जानेसे उसे निराला आनन्द मिल जाता है। पुरुषकी तरह स्त्री स्खलित नहीं होती किन्तु बाभ्रव्य कहते हैं कि–स्त्री स्खलित तो होती है पर पुरुषकी तरह नहीं होती, सहवासके प्रारंभसे लेकर उसका रज झरना शुरू होता है और जबतक रागकालमें अपने स्थानसे हटा हुआ कुल झर चुकता है तब स्त्रीकी रमणसे तृप्ति हो जाती है एवं पुरुष अन्तमें एक साथ स्खलित होकर हट जाता है॥

न स्त्री पुरुषवदेव भावमधिगच्छति ॥ १० ॥

स्त्री, पुरुषकी तरह भावको नहीं प्राप्त होती ॥ १० ॥

यादृशं सुखं विसृष्टिप्रभवं पुरुषोऽनुभवति तादृशमेव न स्त्री । शुक्राभावात् १०

जैसा कि सुख शुक्रपात होनेके समय पुरुष अनुभव करता है, वैसा स्त्री अनुभव नहीं करती, क्योंकि स्त्रियोंमें वीर्य्य नहीं है ॥ १० ॥

खाज मिटानेको सहवास ।

किमर्थं तर्हि पुरुषेण संप्रयुज्यत इत्याह—

स्त्रियोंको यदि उस सुखका ही अनुभव नहीं होता तो क्यों पुरुषोंका समागम करती हैं—

सातत्यात्त्वस्याः पुरुषेण कण्डूतिरपनुद्यते ॥ ११ ॥

पुरुष, साधनके निरन्तर व्यापारसे खाजको दूर करता है ॥ ११ ॥

संबाधकस्य स्वभावतः कृमिजुष्टत्वात्तत्र निसर्गसिद्धा कण्डूतिः । तथा चोक्तम्—'रक्तजाः कृमयः सूक्ष्मा मृदुमध्योग्रशक्तयः । स्मरसद्मसु कण्डूतिं जनयन्ति यथाबलम् ॥' सा त्वस्याः पुरुषेणापनीयते । सातत्यादिति अनवरतसाधनव्यापारेणेत्यर्थः । अन्यथा तत्प्रतिवन्धे कण्ड्वा उत्कोप एव स्यात् ॥ ११ ॥

स्त्रीके गुह्य अङ्गमें कीड़े स्वभावसे ही रहा करते हैं, इस कारण वहां खाजका उठना स्वाभाविक ही है । कामशास्त्रके आचार्य्य कोकाने कहा भी है कि—"रक्तसे पैदा होनेवाले अत्यन्त छोटे २ कीड़े हैं उनमेंसे कोई मृदुशक्ति, कोई मध्यमशक्ति तथा कोई अत्यन्त तीव्रशक्तिवाले भी हैं । वे जिसकी जितनी शक्ति है उतनी ही खाज पैदा करते हैं ।" स्त्रीकी वह खाज तो पुरुषके सहवाससे ही दूर होती है, वह भी तव, जव कि पुरुष अपने भोगसाधन यंत्रसे निरन्तर रिगड़ २ कर दूर करता है । यदि इसमें प्रतिवन्ध हो तो दूनी खाज उठ सकती है, क्योंकि इसके प्रतिवन्धमें खाज एकदम उठ खड़ी होती है ॥ ११ ॥

---

१ यद्यपि कीड़े रजमें हैं पर स्त्रीके गुप्तअंगमें रजके वहनेके कारण वे वहां खाज करते हैं ।

२ रक्तका मतलब इस लोहूसे नहीं जो चोट लग जानेपर मनुष्यके शरीरसे निकलता है, किन्तु मनुष्योंके शरीरमें जैसे वीर्य्य होता है उसी तरह स्त्रियोंके शरीरमें रज होता है, यह स्त्रियोंके वीर्य्यकी जगह होता है, पुरुषके वीर्य्यकी तरह रतिके समय स्त्रियोंके भोगयन्त्रसे यह गिरता है ॥

अपद्रव्यसे आभिमानिक सुख न होनेके कारण पुरुषकी सापेक्षता।

अपद्रव्येणापि सा स्वयमपनयतीति चेदाह—

यदि खाजके दूर करनेके लिये ही पुरुषके सहवासकी आवश्यकता है तो काठ आदिके पुरुषके भोगसाधन जैसे बने हुए दण्डोंसे, आप ही अपनी खाजको दूर कर लेंगी ? इस बातका उत्तर देते हुए कहते हैं कि—

सा पुनराभिमानिकेन सुखेन संसृष्टा रसान्तरं जनयति तस्मिन्सुखबुद्धिरस्याः ॥ १२ ॥

खाजका मिटना यदि चुम्बन, आलिंगन आदि मानताके सुखके साथ हो तो एक निराले आनन्दको पैदा कर देता है। स्त्रीकी उस आनन्दमें सुखबुद्धि होती है कि सुख पाया ॥ १२ ॥

सा च कण्डूतिप्रतिरपनीयमाना शलाकिकया कर्णकण्डूतिरिव । आभिमानिकेनेति—आभिमानिकं चुम्बनादिसुखं वक्ष्यति । तेन संसृष्टानुगता । रसान्तरमिति—सुखान्तरं जयनति, यत्कण्डूत्यपनोदसुखं यच्च चुम्बनादिसुखं तयोः संसृष्टयो रसान्तरत्वात् । तस्मिन् रसान्तरे सुखबुद्धिरस्याः सुखितास्मीति । कण्डूतिप्रतीकारमात्रे तु न सुखबुद्धिः, तस्या अप्राधान्यात् । ततः 'स्पर्शविशेषविषया आभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात्' इत्येतद्विशेषलक्षणं तुल्यम् । विशेषो यदत्र न फलवती शुक्राभावात् । तच्च रसान्तरमारम्भात्प्रभृति संतानेन सर्वथा कण्डूत्यपनोदात्प्रवर्तते । पुरुषसुखं तु विसृष्टिभावित्वात् । अत एव तयोः स्वरूपतः कालतश्च न सादृश्यमिति न कालभावाभ्यां नवरतानि ॥ १२ ॥

इस खाजका दूर करना ऐसा ही है जैसा सलाईसे कानकी खाज दूर करना है । इस सुखके साथ चुम्बन, आलिङ्गन आदि करनेका माना हुआ सुख और मिल जाता है तो इन दोनों सुखोंके मिल जानेपर एक निराला ही स्वाद मालूम होता है, जिसे चाखकर वह यह समझती है कि मैं सुखी हूं । केवल खाजके मिट जानेमें तो स्त्रीकी सुखबुद्धि नहीं होती, क्योंकि यह कोई मुख्य थोड़ा ही है । इससे यह सिद्ध हुआ कि पहिले अधिकरणकी दूसरी अध्यायके १२ वें सूत्रमें विशेषकाम बताया है उसका तात्पर्य्य यह है कि— "चुम्बन आदिके सुखके साथ उचित रीतिसे यंत्रसंयोग एवम् यंत्रोंका व्यापार

होनेपर अपने यंत्रकी त्वचाद्वारा जो दूसरेके यंत्रके स्पर्शका विशेष सुख अनुभूत होता है तथा उसी समय शुक्रक्षरण एवं आनन्दकी प्राप्ति होती है यह सब प्रधान विशेष काम कहाता है'' यह स्त्री और पुरुष दोनोंके यहां एक है। इसमें इतना ही अन्तर है कि–स्त्रीके शुक्र नहीं होता, इस कारण शुक्रपातके एवं उसके समयका जैसे पुरुषको आनन्द प्राप्त होता है उस प्रकार न तो स्त्रीके शुक्र ही पात होता है एवं न उसका आनन्द ही आता है। क्योंकि जब कि शुक्र ही नहीं तो उसका पात कहां तथा पातका सुख भी कहांसे होगा। पर वह निराला सुख आरंभसे लेकर निरन्तर खाजके दूर होने तक बना रहता है, किन्तु पुरुषको तो स्खलन होनेके समय ही सुखकी अनुभूति होती है। इस कारण दोनों स्वरूप और कालसे समान नहीं हैं, इस कारण काल और भावसे नौ २ रत नहीं हैं ॥ १२ ॥

श्वेतकेतुके मतपर शंका ।
(सुखके बाह्य प्रत्यक्षका अभाव)

ननु च पुरुषवद्रतिं स्त्री नाधिगच्छतीति कथमेतदुपलभ्यते ।

जैसे पुरुष सहवासमें रतके अन्तमें च्युत होकर उस समयके निराले सुखका अनुभव करता है उसी तरह स्त्रियाँ स्खलित (खलास) हों और उस सुखको पावें ऐसा नहीं होता; यह आपने कैसे जाना ? क्योंकि—

पुरुषप्रतीतेश्चानभिज्ञत्वात्कथं ते सुखमिति प्रष्टुमशक्यत्वात् ॥ १३ ॥

सुख मनका एक धर्म है, इसे मन ही अनुभव करता है। बाह्य प्रत्यक्ष नहीं है इस कारण एकेको दूसरा जान नहीं सकता अतः इसका कथन भी नहीं हो सकता तब पूछना भी नहीं बनता। इस हालतमें आपने कैसे जाना कि पुरुषोंको सुख होता है एवं स्त्रियोंको नहीं होता ? ॥ १३ ॥

यस्मात्पुरुषप्रीतिश्चेतोधर्मत्वेनातीन्द्रियायाः प्रत्यक्षेणानभिज्ञत्वात् । कस्य ज्ञातुः पुरुषस्येत्यर्थः । चशब्दात्स्त्रीप्रीतेश्च ।

सुख, दुःख ये मनके धर्म हैं तब स्त्रीका सुख उसके मनका एवम् पुरुषका सुख पुरुषके मनका धर्म होगा इसमें सन्देह ही क्या है। मानसिक होनेके कारण इन्द्रियां उस तक नहीं जा सकतीं इस कारण उसे प्रत्यक्ष रूपसे दूसरा कोई नहीं जान सकता तब जिसने अनुभव किया है उससे पूछा भी नहीं जा सकता। सूत्रमें जो च शब्द पड़ा है यह सूत्रमें स्त्रीकी प्रतीतिका भी बोध करता है इसी कारण हमने स्त्री और पुरुष दोनोंके सुख गिनाये हैं।

वचनसे भी नहीं जाना जा सकता ।

यदा स्त्री पुरुषायमणा स्वव्यापारेणात्मनः प्रीतिं जनयति ततश्च तदसंवेदनादेव स्वभावात्प्रीतिरस्या इति कथमुपलभ्यते । पृष्ट्वा ज्ञास्यतीत्यपि नास्तीत्याह—कथमिति । कथं केन प्रकारेण तव सुखं किं विसृष्ट्या यथास्माकं किं वान्येनेति । तत्र स्त्रिया विसृष्टिसुखस्यासंवेदनात्प्रकारान्तरसुखस्य च पुरुषेणासंवेदनात् प्रष्टुमपि न शक्यते । किमुत तद्वचनात्परिज्ञानम् ॥ १३ ॥

नायकके थक जानेपर उसे उत्साहित करनेके लिये जब पुरुषकी तरह अपने पुरुषके ऊपर होकर रमण करती हुई अपनी प्रीति करती है । विना ही भाव प्राप्तिके सुखको जाने स्वभावसे उसकी इसमें प्रीति है जिससे प्रेरित होकर उसे प्रवृत्त करती है यह कैसे जाना जाय । यदि यह कहो कि उस स्त्रीसे पूछकर जाना जा सकता है तो यह भी नहीं हो सकता, क्योंकि यह पूछकर जाननेकी वस्तु नहीं है । यदि आप स्त्रीसे पूछेंगे तो यही पूछेगें कि तुझे कैसे सुख है । क्या हमारी तरह सुख है ? जैसा कि हमें शुक्रक्षरणके समय मिलता है वा दूसरी तरह सुख है । इस प्रश्नमें यह बात होगी कि शुक्रक्षरणके सुखको पुरुष जानता है तो स्त्री नहीं जानती, जिस दूसरे सुखको स्त्री जानती है उसे पुरुष नहीं जानता, इस कारण पूछा भी नहीं जा सकता । दूसरे वचनसे जाननेमें भी क्या है ? जबतक कि उसका अनुभव न किया जाय ॥ १३ ॥

रतिसुखके अनुमानसे उत्तर ।

तस्मात्पुरुषवद्भावं नाधिगच्छतीति कथमेतदुपलभ्यत इत्याशङ्क्यौद्दालकिरुपलब्ध्युपायमाह—

इसी कारण स्त्रियाँ पुरुषकी तरह भावको प्राप्त नहीं होतीं, इस बातको आप जान कैसे गये ? इस आशंकाको लेकर औद्दालकि दोनोंके सुखके जाननेकी रीति बताते हैं कि—

कथमेतदुपलभ्यत इति चेत्पुरुषो हि रतिमधिगम्य स्वेच्छया विरमति, न स्त्रियमपेक्षते, न त्वेवं स्त्री-त्यौद्दालकिः ॥ १४ ॥

यदि 'आपने इस वातको कैसे जाना' यह शंका करो तो मेरे जाननेका यही कारण है किं पुरुष रतिको पाकर अपने आप अपनी ही इच्छासे सह-

वास करते करते हट जाता है वह स्त्रीकी ओर नहीं देखता, पर स्त्रियोंकी यह बात नहीं है, इससे प्रतीत होता है कि उन्हें विसृष्टि सुख नहीं मिलता; ऐसा श्वेतकेतुका मत है ॥ १४ ॥

पुरुषो हीति–पुरुषो रतिमधिगम्य विसृष्टिसुखमनुभूय कृतकृत्यत्वात्स्वेच्छया व्यापाराद्विरमति न स्त्रियमपेक्षते व्याप्रियमाणामपि । न त्वेवं स्त्रीति । सापि यदि पुरुषवद्विसृष्टिसुखमधिगच्छेत्तदा तदधिगम्य पुरुषनिरपेक्षा स्वेच्छया यन्त्र-विश्लेषपूर्वकं विरमेत् । न चैवमन्यत्र पुरुषविरामात् । विरतेऽपि पुंसि पुरुषान्तर-सापेक्षत्वात् । तथा हि केनचित्पुंसा संप्रयुज्य तथावस्थितै [रे] वापरैः संप्र-युज्यमाना काचिद्दृश्यते । अत एवोक्तम्—'अग्निस्तृप्यति नो काष्ठैर्नापगाभिः पयोदधिः । नान्तकः सर्वभूतैश्च न पुंभिर्वामलोचना ॥' इति । तस्मात्स्वेच्छया विरामाभावान्न विसृष्टिसुखाधिगमो यथा प्राग्विसृष्टेः पुरुषस्येति ॥ १४ ॥

सुखको मनका धर्म होनेके कारण उसका बाह्य प्रत्यक्ष नहीं होता, न वह कहा ही जा सकता है तब आपने कैसे जान लिया कि पुरुषकी तरह स्त्रीको रतिसुख नहीं मिलता । इसी आशंकाको लेकर श्वेतकेतु इस बातके जाननेके उपाय बताते हैं कि—पुरुष शुक्रक्षरणके सुखका अनुभव करके अपने कार्यके पूरे हो जानेके बाद अपने आप अपनी ही इच्छासे सहवास करनेसे हट जाता है वह सहवासमें तत्पर हुई स्त्रीकी भी ओर नहीं देखता पर स्त्रियोंकी यह बात नहीं देखते । यदि उन्हें भी पुरुषोंकी तरह शुक्रक्षरणके समयका सुख मिल जाय तो वह उसे पा, पुरुषकी ओर न देखती हुई अपनी ही इच्छासे पुरुषके यंत्रसे अपना शरीर हटा, समागमको पुरुषकी तरह बन्द कर दें । पर पुरुषका विराम देखा जाता है, स्त्रियोंका नहीं देखने आया । क्योंकि लोकमें ऐसी स्त्रियाँ देखनेमें आती हैं कि एक पुरुषके साथ अच्छी तरह समा-गम करके उसी समय वैसे ही कितनोंकेही साथ कर डालती हैं । इसी कारण राजनीतिमें कहा है कि—"काठोंसे कभी आग तृप्त नहीं होती, नदियोंसे कभी समुद्र तृप्त नहीं होता, प्राणियोंको खाते खाते कालका पेट कभी नहीं भरता और व्यभिचारिणियाँ पुरुषोंसे कभी तृप्त नहीं होतीं ॥" इस वचनसे मालूम होता है कि स्वेच्छासे स्त्रियां सहवाससे कभी नहीं हटतीं । इससे प्रतीत होता है कि उन्हें स्खलित होनेके सुखका वैसा अनुभव नहीं होता जैसा कि स्खलित होनेसे पहिले, पुरुषको होता है ॥ १४ ॥

स्त्रियोंकोभावप्राप्तिको माननेवालेका अनुमान ।

तत्रैतत्स्यात्। चिरवेगे नायके स्त्रियोऽनुरज्यन्ते,शीघ्रवेगस्य भावमनासाद्यावसानेऽभ्यसूयिन्यो भवति । तत्सर्वं भावप्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणम् ॥ १९ ॥

स्त्रियोंकी भावप्राप्तिके वारेमें यह वात अवश्य है कि—चिरकालतक ठहरनेवाले नायकमें स्त्रियाँ प्रेम करती हैं एवं भाव न पा सकनेके कारण, शीघ्र ही स्खलित हो जानेवालोंकी निन्दा करती हैं । यह सव स्खलित होनेके सुख और सुखके अभावका द्योतक है ॥ १९ ॥

मा भूत्स्वेच्छया विरामोपलम्भात्स्त्रीषु विसृष्टिसुखानुभूतिः, अनुरागदर्शनात्तु स्यात्। तद्यथा चिरवेगे नायके—चिरमुपसृत्य विसृष्टिसुखाधिगमाद्विरते स्त्रियोऽनुरज्यन्ते। स्निह्यन्तीत्यर्थः। शीघ्रवेगस्य च नायकस्य क्षिप्रमुपसृत्य सुखाधिगमाद्विरतस्य। रतान्तेऽभ्यसूयिन्यो द्वेषिण्यो भवन्ति। तत्सर्वमिति—अनुरागो विरागश्चोभयं लक्षणम्। ज्ञापकमित्यर्थः। कस्येत्याह भावस्य प्राप्तेरप्राप्तेश्चेति। तत्रानुरागो योषितां सुखप्राप्तिं ज्ञापयति। विरागश्च दुःखाधिगमात्सुखाप्राप्तिम्। विरागस्य विरुद्धकार्यत्वात्। अनुरागविरागौ च सुखदुःखहेतुकौ पुरुषेषु दृष्टान्तत्वेन सिद्धौ। तेऽपि हि पुरुषायिते चिरं व्यापृत्य विरतायां योषित्यविगतसुखाश्चिरवेगा अनुरज्यन्ते। तत्क्षणविरतायां च दुःखाधिगमादनवाप्यते [इति सुखं] रतिसुखमिति विरज्यन्ते। तस्मात्पुरुषस्येव योषितोऽप्यनुरागोपलम्भाद्विसृष्टिसुखाधिगमः प्रतीयते इति ॥ १९ ॥

स्त्रियां स्वतः ही सहवासका त्याग नहीं करती,इस कारण स्खलित होनेके सुखका अनुभव न हो, किन्तु अनुरागके देखनेसे तो यह वात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि, स्खलित होनेके समयके सुखका उन्हें अनुभव होता है। इसी वातको अगाडी दिखाये देते हैं कि—जो वहुत समय तक सहवासके सुखका अनुभव करके शुक्र क्षरणके समयके सुखका अनुभव कर, अपना काम वनाकर अलग होता है स्त्रियां उसपर स्नेह करती हैं। जो जलदी सहवास करके उसका सुख पा काम वनाकर निवृत्त हो जाता है रतके अन्तमें उससे द्वेष करने लगती हैं। ये अनुराग और द्वेष वता रहे हैं कि रस मिला या न मिला। इसमें अनुराग वताता है कि इससे सुख मिलता है तथा द्वेष वताता है कि इससे इसे दुःख मिला है,क्योंकि दुःखके विना विराग नहीं होता। अनुरागका

सुख तथा द्वेषका दुख कारण है, यह मनुष्योंमें प्रत्यक्ष दीखता है। स्त्रियोंकी तरह ही पुरुषोंमें भी देखा जाता है कि, जो चिरकालतक पुरुषकी तरह सहवासकी चेष्टा करके विरत हुई स्त्रीमें सुख पाये हुए चिरवेग अनुरक्त हो जाते हैं एवं उसी समय विरत हुई स्त्रीमें दुख पानेके कारण एवम् रतिसुखके न मिलनेसे विरक्त हो जाते हैं। इससे यह बात सिद्ध जाती है कि-पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंकोभी अनुराग होता है। इससे प्रतीत होता है कि उन्हें भी स्खलित होनेका सुख मिलता है॥ १५॥

उसे श्वेतकेतुका उत्तर।

तच्च न । कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हि दीर्घकालं प्रिय इति । एतदुपपद्यत एव । तस्मात्संदिग्धत्वादलक्षणमिति ॥ १६ ॥

वह चिह्न नहीं है, क्योंकि खाजका मिटाना भी दीर्घकालका काम है, यह भी स्त्रियोंको प्यारा लगता है। यह आपके मतमें भी होता ही है एवं, ठीकभी है। इस कारण कण्डूतिके प्रतीकारसे सुख है वा विसृष्टि (खलास) का सुख है इन दोनोंका संदेह होनेसे यह ज्ञापक ठीक नहीं है, जिस तरह कि सुखकी उपलब्धि आप बता रहे हैं॥ १६ ॥

तच्च नेति-अनुरागो भावप्राप्तेर्लिङ्गमित्येतन्नास्ति, साधारणत्वादस्य । तदाह-कण्डूतिप्रतीकारोऽपि हीति-तस्माच्चिरवेगेन कण्डूतेर्यः प्रतीकारः प्रतिक्रिया, दीर्घकाल इत्यतिचिरकालः सोऽपि स्त्रीणां प्रियः । न केवलं विसृष्टिसुखजननमेतदुपपद्यते [एव न तु नोपपद्यते] एवेत्यनेन योगव्यवच्छेदेन भवत्पक्षेऽप्येतदस्तीति दर्शयति । अन्यथा विसृष्टिसुखाधिगमेऽपि कण्डूतेरप्रतीकारान्न तत्रानुरागः । ततश्च किं विसृष्टिसुखाधिगमादनुरागोऽस्याः किं वा कण्डूतिप्रतीकारसमुत्थ इति संदिग्धः । तथानधिगमात् । विरागोऽपि शीघ्रवेगे योज्यते । तस्मादेतदुभयं संदिग्धत्वाद्विसृष्टिसुखस्य प्राप्तेरप्राप्तेश्च लक्षणमज्ञापकम् । उभयत्र वर्तमानत्वात् । तस्मात्स्वेच्छया विरामाविरामावेव ज्ञापकौ । तौ च स्त्रियां वर्तमानौ स्तः इति न पुरुषवद्रतिमधिगच्छतीति स्थितम् ॥ १६ ॥

अनुराग, भावकी प्राप्तिको बताता है यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि यह तो साधारण है। क्योंकि बहुत समयके बाद स्खलित होनेवाले नायकसे जो

खाजका निवारण होता है यह भी थोड़े समयमें नहीं होता चिरकालकी ही आवश्यकता है। यह भी तो स्त्रियोंको प्यारा है, यही बात नहीं है कि केवल स्खलित होनेके समयका सुख उत्पन्न करना ही प्यारा हो। यह बात आपके यहां भी है। आप भी इस बातको मानते हैं कि खाज मिटाई जाती है, इससे सुख होता है। यहां 'एव' का योगका विभाग करना अर्थ है, उसीसे ऐसा अर्थ निकलता है। यदि ऐसा न मानोगे तो स्खलित समयके सुखका अनुभव होनेपर भी खाजके विना मिटे अनुराग न हो सकेगा। इससे यह सन्देह होता है कि-स्त्रीका अनुराग, स्खलितके सुखके मिल जानेके कारण है या खाजके मिटानेके कारण है एवम् खाजके प्रतीकारके सुखके न मिलनेसे जलदी स्खलित होनेवालेमें विराग होना भी उचित ही है। किससे अनुराग विराग है? स्खलितसे या 'खाजके' मिटनेसे, इन दोनोंको संदिग्ध होनेके कारण विसृष्टिके सुखके मिलने न मिलनेसे राग द्वेष हैं यह बात निश्चय नहीं की जा सकती। यह तो दोनों जगह वर्तमान हैं, इस कारण अपनी इच्छासे होनेवाले विराम और अविराम ही ज्ञापक हैं। ये दोनों, स्त्रियोंमें वर्तमान हैं इससे यह सिद्ध हो गया कि स्त्रियां पुरुषकी तरह रतिको नहीं प्राप्त होतीं॥१६॥

श्वेतकेतुके मतका सामान्यरूपसे संग्रह।

एतदेव मतमौद्दालकिगीतेन श्लोकेनाह—

इसी मतको श्वेतकेतुके कहे श्लोकसे कहते हैं कि-

संयोगे योषितः पुंसा कण्डूतिरपनुद्यते।
तच्चाभिमानसंसृष्टं सुखमित्यभिधीयते॥ १७॥

पुरुषके साथ संयोग होनेपर स्त्रीकी खाज मिट जाती है। यदि इसके साथ आलिंगन, चुम्बन आदिका माना हुआ सुख और मिल जाय तो यह एक निराला आनन्द हो जाता है॥ १७॥

कण्डूत्यपनोदसमुत्थं स्पर्शसुखमभिमानसंसृष्टमिति कारणे कार्योपचारादाभिमानिकसुखानुविद्धं सुखमित्यभिधीयते योषिद्भिः॥ १७॥

यानी खाजके दूर करनेसे उत्पन्न हुए स्पर्शसुखके साथ माना हुआ सुख और मिल जाय तो इन दोनोंके मिलजानेसे एक अपूर्व आनन्द उत्पन्न हो जाता है। ये दोनों मिलकर उस आनन्दके कारण होते हैं। वही नहीं हो

जाते किन्तु सुखके कारणमें सुखका आरोप करके आलिंगन, चुम्बन आदिके माने हुए सुखके साथ, खाजके दूर होनेका सुख सुख कहाया जाता है। स्त्रियां इस संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सुखको सुख कहती हैं ॥ १७ ॥

आरंभसे अन्ततक स्त्रियोंको एवम् अन्तमें पुरुषोंको भावप्राप्ति माननेवाला-बाभ्रव्य ।

बाभ्रव्यमतमाह—

औद्दालकिके मतको बताकर अब बाभ्रव्यके मतको कहते हैं कि—

सातत्याद्युवतिरारम्भात्प्रभृति भावमधिगच्छति । पुरुषः पुनरन्त एव । एतदुपपन्नतरम् । नह्यसत्यां भावप्राप्तौ गर्भसंभव इति बाभ्रवीयाः ॥ १८ ॥

निरन्तर सहवासमें स्त्री आरंभसे अन्ततक निरंतर भावको प्राप्त होती रहती है और पुरुष अन्तमें ही भावको प्राप्त होता है । यह बात ठीक भी है, क्योंकि विना भावके मिले गर्भ नहीं रह सकता, यह बाभ्रवीय आचार्य्यका मत है ॥ १८ ॥

द्वावपि विसृष्टिसुखमधिगच्छतः । स्त्री त्वारम्भाद्यन्त्रयोगात्प्रभृति सातत्यान्निरन्तर्येण । सा हि पुरुषेणोपसृप्यमाणा प्रभिन्नजलभाण्डवच्छनैः क्लिन्नसंबाधा भवतीति प्रत्यक्षसिद्धमेतत् । सुखं च पुरुषस्येव विसृष्टयनुविद्धमित्यारम्भात्प्रभृति भावमधिगच्छति। पुरुषः पुनरन्ते भावमधिगच्छति। तदानीं शुक्रविसर्गात् । एतदिति यथोक्तमुपपन्नतरम् । प्रमाणसिद्धत्वात् । ततश्च तयोर्भिन्नकालत्वान्न सादृश्यमिति न कालतो नव रतानि। भावतस्तु सन्ति । विसृष्टिसुखसादृश्यात् ।

दोनों ही स्खलित होनेके सुखको पाते हैं । स्त्री तो यंत्र संयोगके समयसे लेकर निरन्तर इस सुखको पाती रहती है । पुरुषसे यंत्र संयोग होनेपर फूटे हुए पानीके बरतनकी तरह धीरे २ गुप्तअंग भींग जाता है, यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है । जैसे पुरुषको स्खलित होनेके समय, सुख मिलता है वैसा ही सुख आरंभसे ही स्त्रियोंको मिलता है । पर पुरुष अन्तमें भावको प्राप्त होता हैं क्योंकि उसी समय वह स्खलित होता है यह प्रमाण सिद्ध है, इस कारण

---

१ कण्डूतिके निवारणसे होनेवाला सुख प्यारा है पर जिससे वह होता है वह भी प्यारा लगता है ॥

बिलकुल ठीक है। इससे यह सिद्ध हुआ कि स्त्रीके स्खलित होने और पुरुषके स्खलित होनेके समय भिन्न भिन्न हैं, इस कारण कालसे तौ रत नहीं हो सकते भावसे तो हो सकते हैं। क्योंकि स्खलित होनेका दोनोंही जगह समान सुख है।

ननु संबाधो व्रणस्वभावत्वादुपनुद्यमानः क्लिद्यतीत्याह—नहीति। रसप्राप्तौ विसृष्टिसुखाधिगमे तृप्ता हि स्त्री गर्भं धत्ते। यथाह चरककारः—'निष्ठीविका गौरवमङ्गसादस्तन्द्राऽप्रहर्षो हृदयव्यथा च। तृप्तिश्च बीजग्रहणं स्वयोन्यां गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिङ्गम् ॥' इति। तृप्तिश्च भावः। स च न शुक्रविसृष्टिं विनेत्यभिप्रायः। आर्तवं विसृजति न शुक्रमिति केचित्। यथाह—कामाग्नितप्तचित्तस्त्रीपुंसयोरन्योन्यदेहसंसर्गादरणीदण्डाभ्यामिव वह्निः शुक्रार्तवमथनादिति। अस्ति तावत्तृप्तिनिबन्धनं किं तदिति चिन्त्यते। यदि तन्न शुक्रं कथं योषितो गर्भसंभव उत्पद्यते। यथा हि पुरुषसंसर्गात्स्त्री गर्भं धत्ते तथा योषित्संयोगादपि। यथोक्तं सुश्रुते—'यदा नारी च नारी च मैथुनायोपपद्यते। अन्योन्यं मुञ्चतः शुक्रमनस्थिस्तत्र जायते ॥' तस्माद्रसधातोरुत्पन्नोऽसृग्धातुरेव कस्यांचिदवस्थायामार्तवम्। शुक्रधातुस्तु मज्जाधातोरुत्पद्यत इति ॥ १८ ॥

यदि यह शंका करो कि स्त्रीका यंत्र व्रण जैसे स्वभावका है, यदि वह पुरुषके साधनसे पीडित होता है तो भीगता है। इस बातका उत्तर देते हैं कि-रसकी प्राप्ति होनेपर शुक्र क्षरणके सुखके मिलनेसे तृप्त हो जानेपर ही स्त्री, गर्भवती होती है। यही चरककारने शारीरस्थानमें कहा है कि-"थूकका आना, शरीरका भारी होना, जांघोंका रहसा जाना, आलस्य, अखुसी, दिलदर्द, तृप्ति, वीर्य्यका बाहिर न आना, ये तत्काल गर्भ रहेके लक्षण हैं ॥" भावका नाम तृप्ति है। यह बिना शुक्र क्षरणके नहीं हो सकता। कोई कहते हैं कि रजका क्षरण करती है, शुक्रका नहीं करती कहा भी है कि-"कामकी अग्निसे तपे चित्तवाले स्त्री पुरुष आपसके शरीरके संसर्ग होनेसे जैसे अरणियोंके मथनेसे आग निकलती है, उसी तरह वीर्य्य और रजके मथनसे गर्भ होता है। कुछ तृप्तिका कारण भी है, वह क्या है, इस बातका विचार करते हैं। यदि वह वीर्य्य नहीं है तो स्त्रियोंके गर्भ कैसे होता है जैसे स्त्री पुरुषके संसर्गसे गर्भ धारण करती है उसी तरह स्त्रीके संसर्गसे भी गर्भ रहता है। यह बात सुश्रुतमें कही है कि-"यदि स्त्री स्त्री आपसमें मैथुन करने लगें तो आपसके स्खलित हुए वीर्य्यसे बिना हड्डीकी सन्तान पैदा होती है" इससे

यह सिद्ध हो गया कि रस धातुसे उत्पन्न हुआ रज धातु ही किसी अवस्थामें आर्तव होता है । शुक्र धातु तो मज्जा धातुसे उत्पन्न होता है ॥ १८ ॥

पुरुषवद् भावप्राप्ति माननेवालेकी बाभ्रव्यके मतपर शंका
और अपने आक्षेपका उत्तर ।

अत्रापि तावेवाशङ्कापरिहारौ भूयः ॥ १९ ॥

बाभ्रव्यके मतमें भी फिर वे ही शंका और समाधान हैं ॥ १९ ॥

अत्रापीति—बाभ्रव्यमतेऽपि । तावेवेति पूर्वोक्तावाशङ्कापरिहारौ वाच्यौ । तत्र यद्यारम्भात्प्रभृति भावाधिगमस्तदा चिरवेगेऽनुरज्यन्ते शीघ्रवेगस्य चावसानेऽभ्यसूयिन्य इत्ययं भेदो न युज्यते । तत्र यत्राप्यासां भावाधिगमाद् दृश्यते च भेदः । यस्मादनुरागस्तस्मादन्ते पुरुषवद्भावस्य प्राप्तिः । यतः सासूया तस्मान्नारम्भात्प्रभृतीत्याशङ्कापरिहारोऽपि । तन्न । कण्डूतिप्रतीकारोऽपि दीर्घकालः प्रिय इति कण्डूत्यपनोदाभावाच्च शीघ्रवेगे च प्रद्वेषः । सत्यपि भावाधिगमे कण्डूत्यपनोदस्याधिककालस्याभावात् । अथवा दीर्घकालं भावजननमपि प्रियमिति योज्यम् । भावस्याधिकृतत्वात् । शीघ्रवेगे च विरज्यन्ते । चिरकालं भावस्याजननात् । योषितो हि चिरानुबन्धनं भावमुत्पद्यमानमिच्छन्ति । तासामष्टगुणकामत्वात् । एवं सति न पुंभिर्वामलोचनास्तृप्यन्तीति युक्तम् । तेषामेकगुणकामत्वात्, न पुनर्विसृष्टिसुखाभावादिति । भूयश्चेति पुनराशङ्कापरिहारः ॥ १९ ॥

बाभ्रव्यके मतमें भी पहिले कहे हुए ही शंका समाधान हैं । वहां यदि आरंभसे लेकर अन्ततक स्त्री स्खलित होती रहती है तो देरसे स्खलित होनेवालेमें अनुराग और देरसे स्खलित न होनेवाले पर द्वेष, यह भेद युक्त न हो सकेगा । अतः उस पक्षमें यहां भी इनकी भावकी प्राप्तिसे भेद देखा जाता है । जिससे अनुराग है उससे अन्तमें पुरुषकी तरह भावप्राप्ति देखी जाती है; पर जिसपर अनुराग न होकर द्वेष होता है उससे आरंभसे भी भावकी प्राप्ति नहीं होती यह आशंकाका परिहार भी है । यह बात नहीं, क्योंकि खाजका मिटना भी तो है यह भी जलदी नहीं देरसे ही होता है, इस कारण देरतक ठहरनेवाला नायक प्यारा होता है । जलदीवालेसे खाज नहीं मिटती, इस कारण वह बुरा लगता है । भले भी थोड़ी ही देरमें स्त्री स्खलित हो जाय पर खाजका मिटानेवाला, अधिक काल ठहरनेवाला तो नहीं है । अथवा यों और जोड़ लीजिये कि दीर्घ कालकी भावकी उत्पत्ति भी

प्यारी है, क्योंकि यह विचार भावके अधिकारका है, कंडूतिकी व्यवस्था उचित नहीं है। शीघ्र ही स्खलित होनेवालेमें इसलिये द्वेष होता है कि वह देरसे च्युत नहीं होता, क्योंकि स्त्रियां देरसे होनेवाले भावको चाहती हैं । पुरुषोंसे क्यों तृप्त नहीं ? इसका तो यही उत्तर ही है कि उनके पुरुषसे अठगुना काम होता है । तब पुरुषोंसे स्त्रियां तृप्त नहीं होतीं यह ठीक ही है, क्योंकि पुरुषोंमें स्त्रियोंके कामका आठवां हिस्सा होता है । यह बात नहीं है कि उन्हें स्खलित होनेके समयका सुख नहीं मिलता, इस कारण नहीं धापतीं । यह फिर शंकाका समाधान है ॥ १९ ॥

बाभ्रव्यके सतत क्षरणपर शंका ।

यदाह—

जो निरंतर क्षरण मानते हैं उनपर कहते हैं कि–

तत्रैतत्स्यात्—सातत्येन रसप्राप्तावारम्भकाले मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता च । ततः क्रमेणाधिको रागयोगः शरीरे निरपेक्षत्वम् अन्ते च विरामाभीप्सेत्येतदुपपन्नमिति ॥ २० ॥

उनके मतमें यह शंका होगी कि आरंभसे लेकर अन्ततक निरन्तर स्त्रियोंके रज झरते हैं तो रमणके आरंभमें उनका चित्त मध्यस्थ रहता हुआ कष्टके कामोंको नहीं सह सकता ? पर ज्यों २ राग बढ़ता जाता है, वे शरीरसे निरपेक्ष होती चली जाती हैं एवम् अन्तमें विरामकी इच्छा होती है ये सब बातें न बन सकेंगी ॥ २० ॥

रतस्यारम्भकाले मध्यस्थचित्तता नखक्षतादीनामप्रयोगः । नातिसहिष्णुता च नखक्षतादीनां प्रयुज्यमानानां नातिक्षमिता । ततश्च क्रमेणारम्भादुत्तरकालं तरतमभेदादधिकरागयोग इति मध्यस्थचित्तंतायां विपर्ययः । शरीरेऽपि निरपेक्षत्वमित्यतिसहिष्णुतया । अन्ते च विरामाभीप्साप्रयोगनिवृत्तीच्छा । एतत्सर्वमवस्थान्तरं योषितः सातत्याद्रसप्राप्तौ सत्यामनुपपन्नम् । प्रारम्भात्प्रभृत्येकरूपतया सातत्येन विसृष्टिसुखस्य प्रवृत्तत्वात् । पुरुषस्य विसृष्टयवस्थायामेतदवस्थान्तरं दृश्यत इति ॥ २० ॥

रतके आरंभकालमें चित्त मध्यस्थ रहता है, इस कारण नख आदिके प्रहारोंका प्रयोग नहीं होता, यदि उस समय इनका प्रयोग भी किया जाय तो

ये अधिक सहन भी नहीं होते । इसके बाद आरंभ कालसे अगाड़ी २ अधिकाधिक राग बढ़ता चला जाता है, चित्तकी मध्यस्थतामें बिलकुल उलटी बातें होती हैं । अत्यन्त सहनशील होनेके कारण शरीरकी भी उतनी चिन्ता नहीं रहती । अन्तमें प्रयोगके निवृत्त करनेकी इच्छा होती है। यह सब एक प्रकारकी दशाविशेष हैं, ये यदि आरंभसे लेकर निरन्तर स्त्रीको रसकी प्राप्ति हो तो नहीं घट सकतीं, क्योंकि प्रारंभसे लेकर निरंतर क्षरणका सुख मिल रहा है फिर दशाओंका परिवर्तन कैसे होगा, कि कभी सह सकना कभी न सह सकना । दूसरी बात यह है कि-पुरुष तो जब स्खलित होनेको आता है तब ये दशाएँ देखी जाती हैं ॥ २० ॥

चाकके दृष्टान्तसे बाभ्रव्यका उत्तर ।

तच्च न । सामान्येऽपि भ्रान्तिसंस्कारे कुलालचक्रस्य भ्रमरकस्य वा भ्रान्तावेव वर्तमानस्य प्रारम्भे मन्दवेगता ततश्च क्रमेण पूरणं वेगस्येत्युपपद्यते । धातुक्षयाच्च विरामाभीप्सेति । तस्मादनाक्षेपः ॥ २१ ॥

यह बात नहीं है, क्योंकि-चाक और भौंराका घूमनेका संस्कार, आदि, मध्य और अन्तमें वही होनेपर भी वे प्रारंभमें मन्दवेगसे घूमते हैं, फिर धीरे २ वेग पूरा होता है । इसी तरह स्त्रीकी भी तीन अवस्थाएँ हो सकेंगी एवम् च्युतहुए सारे धातुके झर जानेपर संभोगसे हटनेकी इच्छा होगी, इस कारण शंका करना ठीक नहीं है ॥ २१ ॥

नैवानुपपन्नम् । कुलालचक्रादिवदुपपद्यत एव । भ्रमरकं काष्ठमयं क्रीडनकद्रव्यम् । यद्दीर्घेण सूत्रेणावेष्ट्य लाडिका भ्रमयन्ति । यथा तयोर्दण्डे सूत्रप्रत्याक्षिप्ते भ्रान्तिसंस्कारे समानेऽप्यादिमध्यावसानेषु भ्रान्त्यामेव वर्तमानयोरन्यथा भ्रान्त्यभावात्तत्संस्कारोऽस्तीति कथं प्रतीयते । प्रारम्भे मन्दवेगता मन्दभ्रमणम् । ततः क्रमेण तरतमभेदेन पूरणं वेगस्य । यथा तत्कुलालचक्रं भ्रमरकं वा निश्चलतरमिव स्थितमिति एवं योषितोऽपि पुरुषेणोपसृप्तादिभिः प्रत्ययैरुत्पद्यमाने विसृष्टिसुखे समानेऽप्यादिमध्यावसानेषु प्रारम्भकाले मन्दवेगता मृद्वी रतिः । तत्र मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता च । ततः क्रमेण पूरणं वेगस्याधिक्यं रतेः । यत्राधिकचित्तवृत्त्या शरीरनिरपेक्षत्वमिति ।

सततक्षरण नहीं हो सकता यह बात नहीं है । कुम्हारके चाक आदिकी तरह हो सकता है । भ्रमरक काठकी खेलनेकी चीज है जिसे हिन्दी भाषामें भौंरा एवं राजपूतानेमें लट्टू कहते हैं । इसपर डोरी लपेटकर फिराते हैं । चाक दण्डेसे घुमाया जाता है एवम् लट्टू डोरसे घुमाया जाता है । जब उसमें घूमनेका संस्कार आ जाता है तो चाकसे दण्डा एवम् लट्टूसे डोरी निकाल ली जाती है । यद्यपि घुमानेवाला संस्कार, आदि, मध्य और अन्तमें समान ही है । वे आदिसे अन्ततक घूम ही रहे हैं विना घूमनेके संस्कारके कभी घूम नहीं सकते, क्योंकि जो घूमनेसे बन्द हो चुका उसमें घूमनेका संस्कार ही नहीं फिर मालूम भी कैसे पड़ेगा । प्रारंभमें ये दोनों मन्दवेगसे घूमते हैं फिर क्रमशः एकसे एक ज्यादा हो जाते हैं । जैसे चाक वा भौंरा अत्यन्त निश्चलकी तरह स्थित रह जाते हैं इसी तरह स्त्रियाँ भी उपसृप्त आदिक प्रत्ययोंसे पुरुषके समान स्खलित होनेका सुख उत्पन्न होनेपर भी, आदि, मध्य और अवसानोंमेंसे प्रारंभमें मन्दवेग तथा मृदुरति होती है । उसमें चित्त भी उदासीन रहता है और प्रहारोंके सहनकी शक्ति भी नहीं रहती । इसके बाद वेगका आधिक्य रतिकी पूर्ति करता है । जब उसमें अधिकचित्त लग जाता है तो फिर शरीरका भी अनुसन्धान नहीं रहता ।

सातत्येन भावस्य प्रवृत्तत्वात्कथं विरामाभीप्सेत्याह—धातुक्षयाच्चेति । समुत्पन्ने कामिताख्ये भावे यः शुक्रधातुः स्वस्थानाच्च्युतः स्वनाडीं प्रतिपद्यते तस्यारम्भात्प्रभृति शनैः शनैः स्यन्दनात्क्षये निवृत्तरागत्वाद्विरामाभीप्सा । तस्मादनाक्षेप इति—अचोद्यं विसृष्टिप्रभवस्य भावस्य संतानेन प्रवृत्तस्यावस्थान्तरमनुपपन्नमिति ॥ २१ ॥

यदि निरन्तर क्षरण होता रहता है तो फिर विरामकी इच्छा क्यों होती है ? इसका उत्तर देते हैं कि रागके उत्पन्न हो जानेपर शुक्र धातु अपने स्थानसे हटकर अपनी नाडीको प्राप्त होता है । वह आरंभसे लेकर धीरे २ गिरता रहता है, जब सब गिर लेता है तो राग निवृत्त हो जाता है और स्त्रीकी सहवास बन्द कर देनेकी इच्छा हो जाती है । इस कारण यह कहना ठीक नहीं कि खलासीके समग्रमें होनेवाला आनन्द तो स्त्रीको निरन्तर मिलता रहता है फिर मन्दवेग आदि दशाएँ कैसे होंगी ? क्योंकि कुलालके चक्रके वेगकी तरह उसकी सब दशाएँ हो सकती हैं ॥ २१ ॥

बाभ्रव्यके मतका सार।

अमुमेवार्थं बाभ्रव्यगीतेन श्लोकेनाह—

इसी अर्थको बाभ्रव्यके कहे श्लोकसे कहते हैं कि-

सुरतान्ते सुखं पुंसां स्त्रीणां तु सततं सुखम्।
धातुक्षयनिमित्ता च विरामेच्छोपजायते॥ २२॥

"पुरुषोंको सहवास करते २ स्खलित होनेके समय सुख तथा स्त्रीको निरन्तर सुख मिलता है। स्थानसे च्युत हुए सारे धातुके गिर जानेके कारण सहवाससे हटनेकी इच्छा होजाती है"॥ २२॥

महर्षि वात्स्यायनका मत।
(दोनोंको एकसी भावप्राप्ति है)

एवं पक्षद्वयमुपन्यस्य सिद्धान्तमाह—

इस प्रकार दोनों पक्षोंको कहकर कामसूत्रकार अपना सिद्धान्त कहते हैं कि-

तस्मात्पुरुषवदेव योषितोऽपि रसव्यक्तिर्द्रष्टव्या॥ २३॥

इसी कारण पुरुषकी तरह स्त्रियोंको भी अन्तके निराले सुखका भान होता है, यह समझना चाहिये॥ २३॥

यत एवं विवादस्तस्माद्रसव्यक्ती रत्युत्पत्तिर्यथा पुरुषस्य विसृष्टिरन्ते च तद्वदेव योषितोऽपि द्रष्टव्या॥ २३॥

जिस कारण ऐसा विवाद है उस कारण, जैसे पुरुषको अन्तमें शुक्रपातके समयका सुख प्रतीत होता है, उसी तरह स्त्रीको भी निराला आनन्द मिलता है २३

स्त्री और पुरुषको परस्पर भिन्न सुख क्यों?

पुरुषसुखेन हि स्त्रीसुखस्य वैसादृश्यं स्वरूपतः कालतो वा स्यादित्याक्षिपति—

पुरुषके सुखके साथ स्त्रीके सुखकी विभिन्नता स्वरूपसे होगी वा कालसे? यह आशंका, उनपर करते हैं जो कि स्त्री पुरुषोंके सहवासके सुखको जुदी २ तरहका मानते हैं-

कथं हि समानायामेवाकृतावेकार्थमभिप्रपन्नयोः कार्यवैलक्षण्यं स्यात्॥ २४॥

---

१ कामशास्त्रकारने यह मान लिया है कि सततक्षरण होते रहनेपर भी स्त्रियाँ पुरुषकी तरह रतान्तमें स्खलित होनेके समयके सुखका भी अनुभव कर लेती हैं।

एक ही जातिमें एक ही कार्य्यके सिद्ध करनेमें लगे हुए दो व्यक्तियोंका कार्य्य विलक्षण कैसे होगा ॥ २४ ॥

तत्र विजातीययोः पुरुषवडवयोर्भवेत्सुखं वैसादृश्यमित्याह—समानायामेवाकृताविति । तुल्यायां मनुष्यजातौ । तुल्यजातीययोरपि स्नानभोजनार्थं प्रवर्तमानयोः स्यादित्याह—एकमिति । एकं रताख्यमर्थमाभिमुख्येन प्रवृत्तयोः । कथं कार्यवैलक्षण्यं स्यात् ॥ २४ ॥

संप्रयोगमें विजातीय पुरुष और घोड़ीका सुख आपसमें विलक्षण हो एवं एक मनुष्य जातिमें भी स्नान, भोजन आदि जुदे २ कामोंमें लगे हुओंके सुखमें भेद हो जाए, पर जहां एक जातिके दोनों एक ही रतरूप कार्य्यमें प्रधान रूपसे लगे हुए हों वहां विलक्षण कार्य्य कैसे होगा ॥ २४ ॥

उपाय और मानतामें भेद होनेसे ।

उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च ॥ २५ ॥

उपायोंके विलक्षण होनेसे एवम् अभिमानके विलक्षण होनेसे कार्य्य भी विलक्षण होंगे ॥ २५ ॥

उपायवैलक्षण्यादभिमानवैलक्षण्याच्च । कथमुपायवैलक्षण्यं च । निसर्गात् । तत्र विजातीययोः पुरुषवडवयोर्भावसुखस्य वैजातीयकार्यस्य सुखस्य स्वरूपतः कालतश्च भेदो नेत्यर्थः । ये च समानाकृतयः सन्त एककार्याभिपन्नास्तेषां सदृशं कार्यम् । 'नहि मेषयोः समानाकृत्योरेकस्मिन्युद्धलक्षणार्थे प्रवृत्तयोरभिघातः कार्यं कालस्वरूपाभ्यां भिद्यते' इति पुनः पुनः शास्त्रकार एव परपक्षमपोहयन्नाह—स्यादुपायवैलक्षण्यादिति । भवेत्तत्र कार्यभेद उपायभेदात् ॥ २५ ॥

जुदे २ उपाय एवम् जुदी २ मानताके कारण कार्य्य भी विलक्षण हो जायगा । उपाय कैसे विलक्षण हैं, ये स्वभावसे हैं, यह अगिले सूत्रमें कहेंगे । इसमें विजातीय जैसे पुरुष और घोड़ी इन दोनोंके समागमके भावका सुख विजातीयोंका कार्य्य है पर उसका सुखके स्वरूप और कालसे भेद नहीं है । जो एक जातिके एक ही कार्य्यमें लगे हुए हों उनका समान कार्य्य होगा, यह बात नहीं है कियुद्धरूप एक कार्यमें प्रवृत्त हुए बराबरके दो मेंढोंका अभिघातरूप कार्य, काल और स्वरूपसे भिन्न हो, इस लिये शास्त्रकार बारबार परपक्षकी आशंका लेकर कहते हैं कि इसमें उपायके भेदसे कार्यका भेद भी होगा ॥ २५ ॥

उपाय और मानताका स्वरूप एवं भावप्राप्तिकी समता ।

कथमुपायवैलक्षण्यं तु सर्गात्। कर्ता हि पुरुषोऽधिकरणं युवतिः । अन्यथा हि कर्ता क्रियां प्रतिपद्यतेऽन्यथा चाधारः । तस्माच्चोपायवैलक्षण्यात्सर्गादभिमानवैलक्षण्यमपि भवति। अभियोक्ताहमिति पुरुषोऽनुरज्यते। अभियुक्ताहमनेनेति युवतिरिति वात्स्यायनः॥ २६॥

उपाय भेद तो प्राकृतिक है, पुरुष कर्ता है, युवति अधिकरण है। कर्ताका कुछ और काम होता है तथा आधारका कुछ और धन्दा है। इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि प्राकृतिक उपायके भेदसे व्यापारका भी भेद होजाता है। मैं करनेवाला हूं यह समझकर पुरुष अनुरक्त होता है तथा मुझसे मिलता है यह समझकर युवती अनुरक्त होती है। यह वात्स्यायनका मत है॥२६॥

कथमिति—स चोपायभेदो निरूप्यमाणः स्त्रीपुंसव्यापारव्यतिरेकेण नास्तीत्याह—उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति। उपायभेदः सृष्टेरित्यर्थः। एषैव हि सृष्टिः स्त्रीपुंसयोर्यदेकः कर्तान्यश्चाधार इति । तदेव योजयन्नाह—अन्यथेति। एकस्य निम्नं मेहनमपरस्योन्नतम्। ततश्च ग्रास्यग्रासकभावान्मेहनयोः क्रियाभेदः। तस्माच्चैवंभूतव्यापारात्मकत्वादुपायवैलक्षण्यान्न केवलं भवति तत्कार्यभेदोऽभिमानभेदोऽपि भवति तदेव दर्शयन्नाह—अभियोक्तेत्यादि। अहमेनां रन्तुमनुयुञ्जे इति कर्तृव्यापारापेक्षया पुरुषोऽभिमन्यमानोऽनुरज्यते। अहमनेनाभियुक्ता रन्तुमिति चाधारव्यापारापेक्षया युवतिरभिमन्यमानानुरज्यते। ततश्च तावुत्पन्नाभिमानानुरागौ संप्रयोगे व्याप्रियमाणावपि कालस्वरूपाभ्यां सदृशं भावमभिगच्छतः। न तु क्रियाभेदमात्राद्विसदृशम्। ततो ह्यभिमानमात्रं भिद्यते न कार्यमेतच्चेतसि कृत्वा शास्त्रकारो व्यक्ताभिप्रायं स्वपक्षं दर्शयति स्वनाम्ना॥ २६॥

जिस उपाय भेदका आप निरूपण करते हैं वह स्त्री पुरुषोंके व्यापारके सिवा और कुछ नहीं है, इस कारण कहते हैं कि—सृष्टिसे ही उपाय भेद है। स्त्री पुरुषोंकी यह रचना है कि इनमें एक कर्ता तथा एक आधार है। इसीकी योजना करते हुए कहते हैं कि—एकका गुप्त अंग गहरा है तथा एकका लम्बा है। एक खानेवाली है तथा एक खाये जानेवाला है। इस कारण स्त्रीके यंत्रका कार्य्य भिन्न तथा रुषके यंत्रका काम भिन्नहै, इस तरह दोनों यंत्रोंकी

क्रियाएँ भी भिन्न २ हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि, उनके जैसे व्यापार हैं व्यापाररूप ही उपाय भी हैं, व्यापारसे उपाय कोई भिन्न वस्तु नहीं हैं, इससे उनके केवल लेनेखाने और खाये जानेवाले रूप कार्य्यका ही भेद हो यह बात नहीं,किन्तु अभिमान (मानता) का भी भेद होता है, इसी बातको दिखानेके लिये कहते हैं कि—पुरुष तो करता मानता हुआ अनुरक्त होता है कि मैं इसे रमण करनेको अनुयुक्त कर रहा हूं यानी मैं इससे रमण कर रहा हूं अर्थात् मैं करता हूं और स्त्री यह मानती है कि इसने रमणके लिये संयुक्त की हूं यानी यह मुझसे करता है, मैं इसके रमणका आधार हूं, युवती यही मानती हुई अनुरक्त होती है । इससे यह सिद्ध होता है कि इस प्रकारके उत्पन्न अभिमान और अनुरागवाले स्त्री पुरुष दोनों सहवासमें लगे हुए भी काल और स्वरूपसे समान भाव (विसृष्टिसुख) को प्राप्त होते हैं । यह बात नहीं कि क्रिया और मानताके भेदमात्रसे जुदी २ तरहके भावको पायें । इससे यह बात सिद्ध हो गई कि माननामात्र ही भिन्न २ है, कार्य्य एक है । इसी बातको मनमें करके शास्त्रकार खुले अभिप्रायसे अपने पक्षको अपने नामसे दिखाते हैं कि यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ २६ ॥

दोनोंके सुखमें भेद माननेवालेका खण्डन ।

परस्यापि शास्त्रकारेण भिन्नवैलक्षण्यमभ्युपगतोपायवैलक्षण्यमभ्युपगतं तस्मात्त्वयं कथं कार्यभेदः, परं नाभ्युपगच्छेदित्यभिप्रायो वर्तते तन्निराकर्तुं शास्त्रकारः प्रकटयति—

स्त्री और पुरुषोंके परस्परमें भिन्न व्यापार और उनकी भिन्न २ प्रकारकी मानताएँ मानते हुए शास्त्रकार महर्षि वात्स्यायनने जब दूसरेका भी उपाय भेद स्वीकार कर लिया तब उनकी तरह भावप्राप्तिके सुखमें भी भेद क्यों न स्वीकार करेंगे, यह वात्स्यायनके मतपर शंका करनेवालोंका अभिप्राय है । उसकी इस शंकाका खण्डन करनेके लिये शास्त्रकार स्वयम् उसका पक्ष उठाकर नीचेके सूत्रसे खण्डन करते हैं कि—

तत्रैतत्स्यादुपायवैलक्षण्यवदेव हि कार्यवैलक्षण्यमपि कस्मान्न स्यादिति । तच्च न । हेतुमदुपायवैलक्षण्यम् । तत्र कर्त्राधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादहेतुमत्कार्यवैलक्षण्यमन्याय्यं स्यात् । आकृतेरभेदादिति ॥ २७ ॥

यदि आप यह कहें—आपके सिद्धान्तमें यह शंका होती है कि जैसे आप रमणके समय स्त्री और पुरुषका जुदा २ व्यापार मानते हो, उसी तरह उनके रतिसुखको भी जुदा २ क्यों नहीं मान लेते ? तो हम इसका उत्तर यह देते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता, व्यापारके हेतु स्त्री और पुरुष जुदे २ हैं । स्त्री लैनेवाली तथा पुरुषका साधन उसमें, जानेवाला है, इस कारण उनके व्यापार भी लैने जाने रूप जुदे २ हैं, पर वह जो अपने व्यापारसे रतिरूप कार्य सिद्ध कर रहे हैं वह एक है, उसको विना हेतुके भिन्न मानना अन्याय्य है, जो एक जातिके हैं उनको एकसा सुख होता ही है ॥ २७ ॥

उपायवैलक्षण्यवदिति । यथानयोर्व्यापारो भिन्नोऽभ्युपगतस्तद्वदेव सुखाख्यमपि कार्यं भिन्नं कस्मान्नाभ्युपगम्यते तज्जन्यत्वादित्याशङ्क्याह—तच्च नेति । तज्जन्यत्वे कार्यस्य न वैलक्षण्यमेव युक्तं तस्माद्धेतुमदुपायवैलक्षण्यं कुत इत्याह—कर्त्राधारयोर्भिन्नलक्षणत्वादिति । स्वतन्त्रः कर्ता । अधिकरणमाधारः । तयोर्हेत्वोर्भिन्नस्वभावत्वाद्व्यापारावपि तज्जन्यत्वाद्भिन्नावित्यर्थः ।

पूर्वपक्षी शंका करता है कि जैसे आपने स्त्री और पुरुषोंका व्यापार भिन्न माना है, उसी तरह सुखरूप कार्य्यको भी भिन्न क्यों नहीं मानते ? क्योंकि सुख भी तो उनके व्यापारसे ही होता है । इसी शंकाको लेकर कहते हैं कि यद्यपि सुख उनके व्यापारसे ही पैदा होता है पर तो भी विलक्षण नहीं है । यही ठीक भी है, क्योंकि जो उपायके हेतु हैं उनके भिन्न होनेपर उपाय भिन्न हो सकते हैं । इन दोनोंके भिन्न होनेका यह कारण है कि कर्ताका कुछ लक्षण और है तथा आधारका लक्षण और है । क्रियाका करनेवाला कर्ता होता है, क्रियाका अधिकरण आधार होता है । जब ये दोनों व्यापारके हेतु भिन्न २ स्वभावके हैं तो उनसे होनेवाले व्यापार भी भिन्न ही होंगे ।

यत्तु कार्यस्य तज्जन्यत्वेऽपि न वैलक्षण्यं तस्य निरूप्यमाणोऽन्यो हेतुर्नास्तीत्याह—अहेतुत्वाच्च कार्यवैलक्षण्यमिति । अन्याय्यं युक्तिशून्यमभ्युपगतं स्यात् । तामेव युक्तिं स्मारयन्नाह—आकृतेरभेदादिति । समानायामेव मनुष्यजातावेकाभिसंधानयोः स्त्रीपुरुषयोर्व्यापारौ परस्परापेक्षौ कालस्वरूपाभ्यां सदृशं सुखं जनयतः ॥ २७ ॥

पर हम जो यह कहते हैं कि व्यापार जुदे २ होनेपर भी उनका कार्य्य एक है, क्योंकि व्यापरको भिन्न करनेवाले जैसे हेतु भिन्न है उसी तरह कार्य्यको

भिन्न करनेवाला कोई हेतु नहीं है। विना ही हेतुके कार्य्यको भिन्न मानना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानना युक्तिशून्य मानना होगा। शास्त्रकार अपने सिद्धान्तमें युक्ति दिखाते हैं, कि स्त्री पुरुषोंकी मनुष्यजाति एक ही है, यदि ये दो एक ही कार्यमें यानी रतमें लगें तो इन दोनोंके खाने खिलाने एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि विना खानेके खिलाना नहीं तथा विना खाद्य ग्रसनेवालेके खाना नहीं हो सकेगा, अतः दोनोंके व्यापार काल और स्वरूपसे दोनोंके लिये एकसा सुख पैदा करते हैं ॥ २७ ॥

जुदे २ स्वार्थोंके साधकोंको एकसा सुख कैसे।

तत्रैतत्स्यात । संहत्य कारकैरेकोऽर्थोऽभिनिर्वर्त्यते । पृथक्पृथक्स्वार्थसाधकौ पुनरिमौ तदयुक्तमिति ॥ २८ ॥

आपके कथनमें हमें यह शंका होती है कि—सभी कारक मिलकर एक कामको करते हैं। पर स्त्री पुरुष ये दोनों अपने २ मतलबको जुदा २ सिद्ध करते हैं। इस कारण यह ठीक नहीं कि सुखरूप एककामको सिद्ध करते हैं ॥ २८ ॥

देवदत्तः काष्टैः स्थाल्यामोदनं पचतीत्यादौ देवदत्तादिभिः कर्तृकरणाधारैः कारकैः संभूयौदनं दृश्यते। परस्परसाधकौ पुनरिमौ स्त्रीपुंसौ। यतो युवतिराधारः पुरुषव्यापारापेक्षः स्वसंतानेषु सुखाख्यं स्वार्थं साधयति पुरुषश्च कर्ता व्यापारापेक्ष इति। एतच्च भिन्नार्थसाधकत्वं कारकाणामयुक्तम्। ओदनादावदृष्टत्वात्। दृश्यते च स्त्रीपुंसयोः कर्त्राधारयोः सुखरूपं पृथक्कार्यं तथासमानाकृतित्वमपि। तदेव कार्यं कालस्वरूपाभ्यां विसदृशं स्यादित्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

'देवदत्त लकड़ियोंसे बटलोईमें भात सिद्ध कर रहा है' ऐसी जगह कर्ता देवदत्त, करण काठ और अधिकरण बटलोई; इन सबोंके मिल जानेसे एक भातकी सिद्धि दीखती है यानी ये सब मिलकर एक भातको तयार करते हैं किन्तु ये रमणमें लगे स्त्री पुरुष तो अपना २ काम बनाते हैं। क्योंकि स्त्री, पुरुषके व्यापारकी अपेक्षासे आधार है, वह अपने व्यापारसे सुखरूप स्वार्थको सिद्ध करती है एवम् पुरुष अपने व्यापारसे कर्ता है, वह अपने स्वार्थको सिद्ध करता है। पर यह बात कारकोंमें नहीं है, वे सब मिलकर एक ही क्रियाको सिद्ध करते हों, जैसा कि भातके सिद्ध होनेमें देखा जाता है। पर कर्ता पुरुष और आधार स्त्री इन दोनों कारकोंका सुखरूप कार्य्य भिन्न दीखता है एवम्

स्त्री और पुरुषकी आकृतिमें भी भेद दीखता है । उनका यही सुखरूप कार्य्य, काल और स्वरूपसे भिन्न होना चाहिये । यह इसका अभिप्राय है ॥ २८ ॥

दृष्टान्तपूर्वक समानसुखकी सिद्धि ।

तच्च न । युगपदनेकार्थसिद्धिरपि दृश्यते । यथा मेषयोरभिघाते कपित्थयोर्भेदे मल्लयोर्युद्ध इति । न तत्र कारकभेद इति चेदिहापि न वस्तुभेद इति । उपायवैलक्षण्यं तु सर्गादिति तदभिहितं पुरस्तात् । तेनोभयोरपि सदृशी सुखप्रतिपत्तिरिति ॥ २९ ॥

वह बात नहीं है, एकसाथ अनेकोंकी भी एकसी कार्य्यसिद्धि देखी जाती है, जैसे कि मेंढोंकी टक्करमें, कैथसे कैथ मारकर फोरनेमें, मल्लोंकी कुस्तीमें एकसी कार्य्यसिद्धि देखी जाती ह । यदि यह कहो कि इनमें करता ही करता है, कारकभेद नहीं है तो यहां भी वास्तविक भेद नहीं है । जो स्वभावसे व्यापारोंकी विलक्षणता बताई उसका भी उत्तर हो चुका । इससे यह सिद्ध हो गया कि दोनोंको एकसे ही सुखकी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

तच्च नेति । नैतदयुक्तं किं तु युक्तमेव । युगपदनेकार्थसिद्धिदर्शनात् । यथा मेषयोरभिघात इति । अभिघातविषये युगपदनेकार्थसिद्धिर्दृश्यते । युगपद्द्विधा चाभिघातो भवतीत्यर्थः । एवं कपित्थयोर्भेदे मल्लयोर्युद्ध इति । तथा स्त्रीपुंसयोः कारकयोः पृथक्कार्यं सदृशं च स्यादिति ।

जो आप यह कहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनोंका रतिसुखरूप एक कार्य्य नहीं हो सकता यह कहना ठीक नहीं; किन्तु दोनोंका रतिसुखरूप एक कार्य्य भी होसकता है, क्योंकि एक साथ अनेकों पुरुषोंके कार्य्योंकी सिद्धि भी देखी जाती है । जैसे कि दो मेंढे आपसमें टक्कर लेते हैं, उससे आघात होता है, उसका फल (चोट) दोनोंको होता है । अभिघातके विषयमें एक ही समयमें अनेकोंकी प्रयोजनसिद्धि देखी जाती है, क्योंकि अभिघात एक ही साथ दो प्रकारसे हो जाता है जिसका कि टक्कर करनेवाले दोनोंपर असर होता है, इसी तरह कैथेको एकसे एक मार कर तोड़नेमें तथा मल्लोंकी लड़ाईमें

---

१ इसी बातको लेकर टीकाकारने काल और स्वरूपको सत्ताईसवें सूत्रकी अवतरणिकामें दिखाया है ।

भी यही बात देखी जाती है, इसी तरह कर्ता और आधार कारक स्त्री पुरुषोंका सदृश जुदा २ कार्य्य होगा ।

मेषकपित्थमल्लग्रहणं तिर्यगचेतनमनुष्येष्वप्यस्य न्यायस्य प्राप्तिख्यापनार्थम् । तत्र को भेद इति चेत्, तत्रैतत्स्यात् । मेषादियुद्धादावपि प्रतियोगिनौ कर्तारौ न तत्र कारकान्तरम् । इह तु कर्त्राधाराविति । कथं न विसदृशं कार्यमित्याशङ्कयाह—इहापीति । स्त्रीपुंसयोरपि न कश्चित्परमार्थतः कारकयोर्भेदः, अपि तु द्वावप्येतौ कर्तारौ क्रियां निर्वर्तयतः । केवलं करणाधिकरणादयो भेदा बुद्धिकल्पिता व्यवहारार्थं व्यवस्थाप्यन्ते ।

सूत्रमें मेष, कैथ और मल्लका ग्रहण, तिर्यग्, अचेतन और मनुष्योंमें भी इस न्यायकी प्राप्तिके दिखानेके लिये है । दृष्टान्तसे प्रकृतमें क्या भेद है ? यह कहो तो उसमें यह भेद है कि मेढा आदिकी आपसकी टक्करोंमें आमने सामनेके दोनों ही टक्करके करनेवाले हैं भिन्न कारण नहीं हैं; किन्तु रमणमें तो पुरुष कर्ता तथा स्त्री आधार है, फिर क्यों न विसदृश कार्य्य होगा ? इसी आशंकाको लेकर कहते हैं कि स्त्री और पुरुषका भी कोई वास्तविक कर्ता और आधारका भेद नहीं है, क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों ही कर्ता हैं । रमणरूप क्रियाको पूरा करते हैं, केवल करण, अधिकरण आदिक भेद बुद्धिकल्पित हैं वे व्यवहारके लिये स्थापित किये हैं ।

एवं च सति 'उपायवैलक्षण्यं तु सर्गात्' इति यदुक्तं तदभिहितं प्रतिविहितं पुरस्ताद्द्रष्टव्यम् । कर्त्राधारलक्षणस्यैवावास्तवत्वात् । तेन प्रतिविहितेनोभयोरपि स्त्रीपुंसयोः सदृशी सुखप्रसिद्धिः । कालस्वरूपाभ्यां सदृशं सुखमुत्पद्यत इत्यर्थः । अन्यथा कथं तयो रागज्वरोपशमः । तामेवात्यन्तिकीमानन्दावस्थामधिकृत्योपस्थेन्द्रियमानन्देन्द्रियमिति गीयते ॥ २९ ॥

इस व्यवस्थामें 'सर्गसे तो व्यापारका भेद होता है' ऐसा जो पहिले कहा है इसका उत्तर तो हम पहिले ही दे चुके हैं कि, यह वास्तविक नहीं है, इससे यह सिद्ध हो गया, कि स्त्री पुरुष दोनोंको भी काल और स्वरूपसे सदृश सुख मिलता है । यदि ऐसा नहीं तो रागका ज्वर शान्त कैसे होता है, अत्यन्त आनन्दकी उसी अवस्थाको लेकर उपस्थेन्द्रियको आनन्देन्द्रिय कह दिया है ॥ २९ ॥

समान सुखवाले सिद्धान्तका सार।

अमुमेवार्थं शास्त्रकारः संग्रहश्लोकेनाह—

शास्त्रकार इसी अर्थको संग्रह श्लोकसे कहते हैं कि—

जातेरभेदाद्दम्पत्योः सदृशं सुखमिष्यते ।
तस्मात्तथोपचर्या स्त्री यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम् ॥ ३०॥

यदि एक जातिके दम्पती हों तो उन्हें एकसा सुख मिलता है, इस कारण स्त्रीके उपचार आदि इस प्रकार होने चाहिये कि जिससे वह पुरुषसे पहिले रति पा जाय ॥ ३० ॥

दंपत्योः स्त्रीपुंसयोः । एकार्थाभिप्रपन्नयोरित्यर्थः । एतावत्तु स्यात्, अवान्तर-स्त्रीजातिभेदाद्यदपरमस्याः कण्डूत्यपनोदसुखं यच्चोपमृद्यमाने संबाधे स्यन्दनं शुक्रस्य विसृष्टिसुखं तु पुरुषवदन्त एवेति । यथोक्तम्—' कण्डूत्यपगमात्स्त्रीणां क्षरणाच्च सुखं द्विधा । स्यन्दनं च विसृष्टिश्च शुक्रस्य क्षरणं द्विधा । क्लिन्नता केवलस्यन्दा-द्विसृष्टेर्मथनात्सुखम् ॥ अन्ते त्वाक्षिप्तवेगाया विसृष्टिर्नरवत्स्मृता ॥' तत्र रसादंपत्योः समकालौ चेद्रतिरुत्तमः पक्षः । समरतत्वात् । भिन्नकालौ चेत्, पुरुषस्य प्रागधिगतभावत्वाद्ध्वजभङ्गे न स्त्री भावमधिगच्छेत् । तस्मात्समरताद्विषमरते तथोपचर्या स्त्रीचुम्बनालिङ्गनादिभिरुपचरणीया यथाग्रे प्राप्नुयाद्रतिम् । स्त्रिया प्रागधिगते भावे पुरुषो युक्तयन्त्रो वेगं कुर्यादात्मनो भावं निर्वर्तयितुमिति॥३०॥

एक काममें लगे हुए स्त्रीपुरुषोंको एकसा रतिसुख होता है, इसमें इतनी बात तो अवश्य है कि स्त्री जातिके भीतरके भेदके कारण खाजके मिटनेका अधिक सुख एवम् पुरुषसाधनसे खुजती वार शनैः शनैः रजके झरनेका सुख पुरुषसे अधिक मिल जाता है किन्तु स्खलित होनेका सुख तो पुरुषकी तरह अन्तमें ही मिलता है । ऐसा ही कामशास्त्रके दूसरे २ ग्रन्थोंमें भी कहा है कि—" स्त्रियोंको खाजके मिटनेका भी सुख होता है तथा रजके झरनेका भी सुख होता है, इस तरह स्त्रियोंको दो सुख होते हैं, शुक्रका झरना तथा स्खलित होना यह दो तरहका शुक्रपात है । रजके झरनेसे स्त्रीका गुप्त अंग भीग जाता है तथा पुरुषके साधनसे वारंवार मथनेसे स्खलित होती है तब उस समयका सुख होता है । बढ़े हुए वेगवाली स्त्रीकी अन्तमें मनुष्यकी तरह खलासी होती है ।" सहवासमें यदि स्त्री पुरुष दोनों एक ही समयमें एक साथ स्खलित हों तो यह उत्तम पक्ष है, क्योंकि यह ' समरत ' है । यदि वे एक-

साथ न होकर आगे पीछे होते हैं तो स्त्री पहिले हो ले तो ठीक है, क्योंकि पुरुषके पहिले स्खलित होनेपर साधनके ढीले होजानेके कारण स्त्री स्खलित न हो सकेगी, इस कारण सम रतसे अलैदा विषम रतमें स्त्रीका आलिंगन चुम्बन आदिसें वह उपचार होना चाहिये जिससे कि अपनेसे अगाड़ी ही स्खलित हो जाय। यदि स्त्री पहिले स्खलित हो चुकी हो, तब फिर पुरुषको भी स्खलित होनेके लिये जलदी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

कालके रतके भेद।

सदृशत्वस्य सिद्धत्वात्, कालयोगीन्यपि भावतोऽपि कालतः प्रमाणवदेव नव रतानि ॥ ३१ ॥

स्त्री और पुरुष दोनोंकी रति एकसी ही है, इस बातके सिद्ध हो जानेपर कालके साथ योग रखते हुए भी भावसे युक्त रहनेवाले तथा भावसे और कालसे, प्रमाणकी तरह नौ रत होते हैं ॥ ३१ ॥

कालयोगीन्यपीति। अपिशब्दाद्भावयोगीन्यपि । अन्यथा कण्डूत्यपनोदसुखस्य विसृष्टिसुखस्य वा वैसादृश्यात्कथं भावतो नव रतानि ॥ ३१ ॥

सूत्रमें 'कालयोगीनि'–कालके साथ योग रखते हुए, इसके साथ 'अपि' भी लगानेका यह तात्पर्य्य है कि भावके साथ योग रखनेवाले। यदि ऐसा अर्थ न करें तो खाज मिटनेके सुख और विसृष्टिके सुखको भिन्न होनेके कारण भावसे नौ रत सिद्ध न हो सकेंगे ॥ ३१ ॥

रतिके समसुखपर काव्य।

१ स्नेहभावजनने स तु प्रियां बाहुमूलकुचनाभिचुम्बनैः।
निर्ममे रतरहः समापनाः शर्मसारसमसंविभागिनीम् ॥
(नैषध–स० १८ श्लो० ११७)

जब नलकी भावप्राप्तिका समय हुआ तो उसने विचारा कि दमयन्ती भी मेरे ही साथ स्खलित हो, इस कारण उल्लासित होकर दमयन्तीके बाहुमूल, स्तन और नाभिमूलको चूमने लगे। इस तरह उसे भी अपने साथ ही स्खलित करके भावप्राप्तिके सुखका हिस्सेदार बना लिया। इस श्लोकमें नल और दमयन्तीकी एक ही साथ भावप्राप्ति बताई है एवम् चुम्बन आदि उपचार भी दिखा दिया है। जिसके करनेसे दमयन्ती नलके साथ ही भावप्राप्तिके सुखको प्राप्त हुई है। यह सिद्धान्त झलकता है । इसमें चुम्बनके तीन स्थान दिखाये हैं । स्तनोंका चुम्बन तो सार्वत्रिक है एवम् बाहुमूल और नाभि या नाभिमूलका चुम्बन लाटोंका आगया है।

२ भाव शब्दके राग और स्खलित होनेका सुख ये दो अर्थ पहिले कर चुके हैं। यंत्रोंकी लम्बाई गहराईका तो पीछे पता चलता है। राग ही पहिले उन्हें प्रवृत्त करता है तथा–

रति और सुरतके पर्य्याय ।

रतिरतयोर्व्यवहारार्थं पर्यायान्तरमाह—

शास्त्रमें व्यवहार करनेके लिये रति और रतके पर्य्याय बताते है कि—

रसो रतिः प्रीतिर्भावो रागो वेगः समाप्तिरिति रतिपर्यायाः । संप्रयोगो रतं रहः शयनं मोहनं सुरतपर्यायाः ॥ ३२ ॥

रस, रति, प्रीति, भाव, राग, वेग और समाप्ति ये रतिके पर्य्याय हैं तथा संप्रयोग, रत, रह, शयन और मोहन ये सुरतके पर्य्याय वाचक शब्द हैं॥३२॥

फलावस्था रतिः । हेत्ववस्था च रतम् । तयोः पर्यायशब्दानामेकार्थविषयत्वेऽपि निमित्तं भिद्यते । यथा—ऐश्वर्ययोगादिन्द्रः शक्तियोगाच्छक्रः । तत उपस्थेन्द्रियेण रसनादनुभवनाद्रसः । फलावस्थायां सुखत्वेन चित्तपरिस्पन्देन रमणाद्रतिः । चित्तप्रणयात्प्रीतिः । कामिताख्येन भावेन भाव्यमानत्वाद्भावः । कामिताख्योऽपि भाव्यते फलरूपोऽनेनेति भावः । चित्तरञ्जनाद्रागः । शुक्रधातोः सुखानुविद्धस्य नाडीसुखात्पृथग्भवनाद्वेगः । रतस्य समापनात्समाप्तिरिति ।

सहवास करनेके फलका नाम रति तथा इस रतिको पैदा करनेवाले संगमका नाम रत है । यद्यपि रतिके पर्य्याय रति अर्थको तथा रतके सभी पर्य्याय रत अर्थको कहते हैं पर जिस कारण ये इनके पर्य्याय बने हैं वे सब अर्थ सबके जुदे २ हैं । जैसे कि एक ही देवराज ऐश्वर्य्यशाली होनेके कारण इन्द्र तथा शक्तिशाली होनेके कारण शक्र कहाता है । ऐसे ही रतिके पर्य्याय भी हैं—उपस्थ इन्द्रियसे चाखा जानेके कारण 'रस' कहाता है । फलकी अवस्थामें चित्तकी सुखरूप वृत्ति बनकर रमण करनेके कारण 'रति' कहाता है । चित्तके प्रणयके कारण 'प्रीति' कहाता है । कामिताख्य भाव (चाह) से यह फलती है, इस कारण इसे 'भाव' भी कहते हैं अथवा जिससे कामित नामका भाव फलरूप हो उसे भाव कहते हैं । चित्तके रंगनेके कारण 'राग' कहाता है । सुखसे व्याप्त शुक्रधातुका नाडीसे जुदा होनेका नाम 'वेग' है । इसपर रतकी समाप्ति हो जाती है इस कारण इसे 'समाप्ति' कहते हैं ।

—स्खलित होनेके समयसे पीछे रमणका भेद होता है, अतः कालका भावप्राप्तिके साथ गहरा सम्बन्ध है । यह स्त्रीपुरुष दोनोंको एकसा मिलता है, इससे खाजके मिटने और रजके झरनेका सुख स्त्रीको ही मिलता है ॥

असंगतयोः स्त्रीपुंसयोः सम्यक्प्रकृष्टो योगः संप्रयोगः । हेत्ववस्थायां वा क्वापि चित्तपरिस्पन्देन रमणाद्रतम् । दम्पतिव्यतिरिक्तमन्यं रहयतीति रहः । शयनीयप्रतिशय्यिकयोः शयनाच्छयनम् । अन्यव्यापारेषु मोहनाद्वैचित्यकरणान्मोहनमिति ॥ ३२ ॥

विना मिले स्त्री पुरुषोंका भले प्रकार जो उत्कट योग हो वह ' संप्रयोग ' कहलाता है । रतिकी कारण अवस्थाके रूपसे चित्तवृत्तिके रूपमें रमण करनेसे 'रत' कहलाता है । दम्पतियोंको छोड़ दूसरोंसे जो अलग कर दे उसका नाम 'रहः' है । पलँग और सहवासकी खाटपर सोनेके कारण इसे ' शयन ' कहते हैं । दूसरे कामोंमें यह बेहोश कर देता है इस कारण इसे ' मोहन ' भी कहते हैं ॥ ३२ ॥

संकीर्ण रत ।

प्रमाणकालभावजानां संप्रयोगाणामेकैकस्य नवविधत्वात्तेषां व्यतिकरे सुरतसंख्या न शक्यते कर्तुम् । अतिबहुत्वात् ॥ ३३ ॥

प्रमाण, काल और भावसे होनेवाले तीनों संप्रयोगोंमेंसे एक २ को नौ २ प्रकारका होनेके कारण रतोंकी संकीर्णतामें अत्यन्त ज्यादा होनेके कारण रतसंख्या कर सकना कठिन है ॥ ३३ ॥

प्रमाणकालभावजानां त्रयाणां रतानामेकैकस्य नवविधत्वात्समुदायेन सप्तविंशतिः । द्विविधं रतम्—शुद्धं संकीर्णं च । तत्र शुद्धस्यासंभवात्संकीर्णमेव युक्तमभिधातुमिति मन्यमानः शास्त्रकार आह—तेषामिति । सप्तविंशतिसंख्यानां व्यतिकरे संयोगे । तत्रापि न द्वाभ्याम् । असंभवात् । त्रिभिरेव व्यतिकरः । सुरतसंख्या न शक्यते वक्तुम् । प्रत्येकनिर्देशेनातिबहुत्वात् । तेषु हि प्रत्येकं निर्दिश्यमानेषु ग्रन्थगौरवं स्यात् । संक्षेपेण च संख्यानस्य प्रयोजनं नास्ति । तस्मात्पूर्वसंख्ययैव योजनीयमित्यभिप्रायः ।

प्रमाण, काल और भावसे होनेवाले तीनों रतोंमेंसे एक २ को नौ तरहका होनेकें कारण सब मिलकर सत्ताईस होते हैं । शुद्ध और संकीर्ण भेदसे रत दो प्रकारका है । शुद्धके तो वे भेद हैं नहीं इस कारण संकीर्ण रतके भेदोंका निरूपण करना ही ठीक है, ऐसा मानते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि–

'सत्ताइसों रतोंके संकीर्ण संयोगमें' इसमें भी दोओंका नहीं हो सकता, क्योंकि असंभव है तीनोंसे ही व्यतिकर होता है । प्रत्येक संकीर्णका निर्देश करनेसे बहुत ज्यादा संख्या हो जायगी उनमेंसे हर एकको दिखानेसे ग्रन्थ बड़ा हो जायगा। संक्षेपसे कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है, इस कारण पूर्व संख्याकी ही योजना करनी चाहिये । यह इसका अभिप्राय है ।

तत्र समं विषमं च संकीर्णकम् । तद्यथा—शशस्य मन्दशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य मध्यमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डचिरवेगस्य मृग्या तथाविधया । शशस्य मन्दमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया,शशस्य मन्दचिर-वेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य मध्यशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया । शशस्य मध्यचिरवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डशीघ्रवेगस्य मृग्या तथाविधया, शशस्य चण्डमध्यवेगस्य मृग्या तथाविधया । इति सदृशसंप्रयोगे समानि नव संकीर्णरतानि ॥

सम आर विषम भेदसे संकीर्ण रत दो तरहका है, इन दोनोंमेंसे सबसे पहिले सम संकीर्णका निरूपण करते हैं कि—

१ मन्दशीघ्र[1] वेगवाले शशका वैसी ही मृगीसे, ५ मध्य मध्य वेगवाले शशका वैसी ही मृगीसे, ९ चण्ड चिर वेगवाले शशका वैसी ही मृगीसे सहवास करना समरत है । २ मन्द मध्यवेगवाले, ३ मन्द चिरवेगवाले और ४ मध्य शीघ्र वेगवाले शशोंका क्रमशः वैसी मृगियोंके साथ रत होना भी सम संकीर्ण रत है । ६ मध्य चिर वेगवाले, ७ चण्ड शीघ्र वेगवाले और ८ चण्ड मध्य वेगवाले शशोंका क्रमशः वैसी ही मृगीके साथ संप्रयोग होना सम संकीर्ण रत है । इसतरह सदृश (बराबर) के संप्रयोगमें ना सम संकीर्ण रत हैं ।

---

१ इस अध्यायके पांचवें और छठें सूत्रमें मृदु (मन्द) मध्य और चण्ड ये तीन रागके भेद किये हैं, जिसके कि कारण मनुष्यकी रंगरेलियोंमें प्रवृत्ति होती है एवम् शीघ्र, मध्य और चिर ये च्युत होनेके समयका नाम है । इन तीनों तरहके रागियोंमेंसे कोई मन्दरागका पुरुष जलदी और कोई मध्यमें एवं कोई देरसे स्खलित होता है । इस तरह मन्द रागी तीन तरहसे च्युत होते हैं । यही व्यवस्था मध्य और चण्ड रागियोंकी भी है । जैसी कि यह पुरुषोंकी व्यवस्था है वैसी ही स्त्रियोंकी भी है, इस कारण नवों शश पुरुषोंकी बराबरकी मृगियोंके साथ जोट होनेपर ये ९ तरहके संकीर्ण रत अवश्य ही होंगे । लोग इनके भेदोंको आसानीसे समझ जायँ इस कारण हमने उनपर अंक भी दे दिये हैं, क्योंकि समझानेके लिये यही क्रम उत्तम है ।

एवमेव नवानां शशानामेकैकस्य सदृशीं मृगीमेकां त्यक्त्वा शेषाभिरतथाविधाभिरष्टभिर्योगे द्वासप्ततिरिति विषमाणि संकीर्णरतानि ॥ यथा शशस्य नवप्रकारतया तथाविधया वडवया विषमाणि नव संकीर्णरतानि । अतथाविधाभिरष्टभिर्योगे द्वासप्ततिरिति विषमाण्येव । एवं हस्तिन्या तावन्त्येव विषमाण्यतिविषमाणि चेति संक्षेपेण शशस्य त्रिचत्वारिंशशतद्वयम् (२४३) । तावदेव वृषस्याश्वस्य च । समुदायेन चैकोनत्रिंशानि सप्तशतानि (७२९) ॥ ३३ ॥

इन्हीं नौ शशोंके, एक एकके बराबरकी मृगीको छोड़कर बाकी रहीं असमान आठ तरहकी मृगियोंके साथ संप्रयोग होनेसे ७२ विषम संकीर्ण रत होते हैं । इसी तरह नवों प्रकारके शश पुरुषोंको वैसी ही वडवाओंके साथ सहवास प्राप्त हो तो ये नौ विषम संकीर्ण रत होंगे । यदि बराबरके वेगवाली वडवाको छोड़, बाकीकी आठोंके साथ प्रत्येकका योग हों तो ये ७२ विषम संकीर्ण रत होंगे । इसी प्रकार हस्तिनीके भी विषम और अतिविषम भेद हैं, इस प्रकार शशके रतके २४३ भेद होते हैं । वृष और अश्वके भी इतने ही इतने होते हैं । सबके मिलकर ७२९ भेद होजाते हैं ॥ ३३ ॥

संकीर्णरतको प्रयत्नसे सम बनाना ।

तेषु तर्कादुपचारान्प्रयोजयेदिति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

संकीर्णरतोंमें अपनी विचारशक्तिसे आलिंगन आदिका प्रयोग करे । यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ३४ ॥

संकीर्णरतेषु बुद्ध्या परिच्छिन्नेषु, तर्कादुपचारान्प्रयोजयेत्—यथाप्रमाणकालभावजेषु ये यथायथमालिङ्गनादय उपचारास्तान् रहयित्वा संकीर्णानेव योजयेत् । यथा तत्समरतमेव प्रायत्निकं स्यादित्यर्थः । अत्र बाभ्रवीयाः श्लोकाः—' पौरुषं मेहनं यत्र मेहने परिघृष्यते । भावकालौ समानौ च तद्रतं श्रेष्ठमुच्यते ॥ भिद्यते मेहनं यत्र घृष्यते च न सर्वशः । विषमौ कालभावौ च कनिष्ठं तदुदाहृतम् ॥ सुरतं सर्वसाम्ये स्याद्वैषम्ये दूरतं स्मृतम् । मध्यमानि तु सर्वाणि तेषु चाहुर्बलाबलम् ॥ बलीयान्सर्वतः कालः कालेऽपि हि शशोऽपि सन् । संस्पृशत्येव सर्वत्र हस्तिनीमेहनोदरम् ॥ एवं वाजी च कथ्येत मृगीकालप्रकर्षणः । तस्मात्प्रमाणमेवाहुर्बलीयः सर्वतः परे ॥ बलीयान्वेग इत्यन्ये यस्मादश्वोऽप्यवेगवान् । नैव साधयितुं शक्तो वेगः कालप्रकर्षणः ॥ एवं तु नैव क्लिद्येत मन्दवेगापि नायिका ।

यथाविषयमेतासां तस्माज्ज्ञेयं बलाबलम् ॥ हीनो भावप्रमाणाभ्यां वेगवान्काल-वर्जितः । कालप्रमाणहीनश्च तत्र शेषेण साधयेत् ॥ ' इति ॥ ३४ ॥

बुद्धिसे विभक्त किये गये इन संकीर्णरतोंमें अपनी विचारशक्तिसे आलिंगन आदि उपचारोंका प्रयोग करे । जैसे कि, प्रमाण, भाव और कालसे होनेवाले रतोंमें जो सिलसिलेवार आलिंगन आदिक उपचार हैं, उन्हें उस रूपसे न कर संकीर्णोंके रूपमें ही प्रयुक्त करे, जिससे कि वह प्रयत्नसे समरत हो जाय । इस विषयमें बाभ्रव्यके शिष्य श्लोक करते हैं कि-" जिस संप्रयोगमें पुरुषका साधन स्त्रीके गुप्तअंगके भीतर घिसता है तथा एकसी ही चाहसे लगकर एक ही साथ स्खलित होते हैं, उस रतको श्रेष्ठ कहते हैं । जिस रतमें साधन सारा न घिस सके एवं स्त्रीका यंत्र फटने जैसी पीड़ा पाये, प्रवृत्त होनेकी चाह और स्खलित होनेका समय भिन्न हो तो उसे कनिष्ठ कहते हैं । जिसमें सब बराबरका मामला हो वह सुरत कहाता है एवम् जिसमें सब बातें विपरीत हों वह 'दूरत' कहाता है, बाकी सब मध्यम रत हैं । उनमें भी बलाबलका विचार करते हैं कि-सबमें काल बलवान् है, यदि बहुतदेर तक ठहरनेवाला शश भी होगा तो और तो क्या हस्तिनीके गुप्तअंगके भीतरको भी पूरा छू लेगा, इस प्रकार मृगीको जो काल चाहिये उससे बढ़े हुए कालवाला पुरुष शश भी वाजी कहा जाता है, इस कारण कालको सबसे बलवान् मानते हैं, मनुष्यमें संगमके समय ठहरनेकी शक्ति होनी चाहिये । कोई वेगको ही सबसे श्रेष्ठ मानते हैं, यदि अश्व हो पर वेगवान् न हो तो वह स्त्रीको सिद्ध नहीं कर सकता, इस कारण वेग ही कालको बढ़ानेवाला है । इस प्रकार तो मन्दवेगवाली नायिका भी न दुःखी होगी । इस कारण नायिकाओंकी आवश्यकताके अनुसार इनका बलाबल समझना चाहिये । भाव और प्रमाणसे हीन हो कालसे भी रहितहो वेगवान् हो तो वह उसके पास जो वेग है उसीसे नायिकाको सिद्ध करे॥३४॥

चन्द्रकला ।

इसका ज्ञान भी स्त्रियोंके सिद्ध करनेमें उपयोगी है, अतः इसका प्रतिपादन करते हैं । कविराज श्रीकोकने अपने कामसूत्रके भावको व्यक्त करनेवाले रति-रहस्य नामक ग्रन्थमें स्त्रियोंकी सब जातियोंके लिये पृथक् ही ' चन्द्रकलाधि-कार ' निरूपण किया है । महाकवि श्रीकल्याणमल्लजीने अपने ग्रन्थ ' अनंग-रंग ' में ' द्वितीयस्थल ' इसी विषयका रखा है । कविशेखर श्रीज्योतिरीश्वरने भी अपने ग्रन्थ ' पंचसायकमें ' प्रथम सायकमें इस विषयका प्रतिपादन किया है । यदि हम उसको जैसेका तैसा रखते हैं तो ग्रन्थका विस्तार बढ़ता है

इस कारण इन सबके समन्वय करनेके साथ जो सार निकलता है उसीको यहाँ रखे देते हैं। जिस प्रकार कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षसे मासके दो भाग होते हैं उसी तरह देह भी बायें और दायें इन दो भागोंमें बांटा जा सकता है. वामअंग बायें भागमें तथा दाहिने अंग दाहिने भागमें आजायँगे । चन्द्रकलाका यह हिसाब रहता है, कि कृष्णपक्षमें शिरके बायें भाग या जुल्फसे लेकर प्रतिदिन नीचेकी ओर नीचेके अंगोंपर उतरती हुई पन्द्रहवें दिन बाँये पैरके अँगूठेपर पहुँचती है । तथा शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे दाहिने पैरके अँगूठेसे लेकर प्रतिदिन ऊपर चढ़ती हुई पन्द्रहवें दिन दाहिनी माँग या जुलुफपर पहुँचती है । जिन जिन तिथियोंके जो जो अंग चन्द्रकलाके वासके बताये हैं, उन उन तिथियोंमें उन अंगोंके कामशास्त्रके बताये हुए ' प्रयोग ' करनेसे स्त्रीका राग प्रचण्ड बनाया जा सकता है । यह तो नियम ही है कि प्रचण्डरागकी हालतमें चित्तके अत्यन्त चंचल होजानेके कारण अधिन नहीं ठहर सकता, वह जलदी ही स्खालित होजाता है । जिस दिन स्त्री रजस्वला हो उस दिन कृष्णपक्षकी प्रातिपदा समझनी चाहिये । चन्द्रकलाके विषयमें जो हम विचार कर रहे हैं इन सबमें इसी हिसाबसे तिथियाँ लेनी चाहियें । चारों जातिकी नायिकाओंमेंसे जिस तिथिके दिन जिसका जिस समय उपचार करना चाहिये वह बताये देते हैं–कि, पद्मिनीस्त्री प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी और पंचमी तिथिमें रातिके चौथे पहर व दिनके किसी भी पहरमें[1] सहवास करनेसे शीघ्र ही भावको प्राप्त होजाती है । चित्रिणी[2] स्त्री षष्ठी, अष्टमी, दशमी और द्वादशी तिथिमें रातके पहिले पहरमें रंगरेली करनेसे जलदी ही भावको प्राप्त होती है । शंखिनी[3] स्त्री तृतीया, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशीके दिन व रातके तीसरे प्रहर संगम करनेसे जलदी तृप्त होती है । हस्तिनी[4] नायिका–नौमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें रातिके किसी भी पहरमें एवम् दिनके तीसरे और चौथे पहरमें रति करनेसे जलदी रतिको प्राप्त होती है ।

---

१ रति०–रातिकी तरह दिनका भी चौथा ही पहर लेता है ।

२ रति०–इन तिथियोंके सिवा, द्वितीया, चौथ और पंचमी अधिक लेता है तथा रातिकी तरह दिनका भी पहिला ही पहर लेता है ।

३ रति०–सप्तमीकी जगह प्रतिपदा ग्रहण करता है तथा अमावसे अधिक मानता है ।

४ रति०–अमावस्याके स्थानमें सप्तमी ग्रहण करता है । एवम् दिन और रात्रिके दूसरे प्रहरको उत्तम बताता है ।

चन्द्रकला साधारण कोष्ठक।

शुक्लपक्ष दाहिने अंग		प्रयोग	कृष्णपक्ष बाँये अंग	
तिथि	अंग		अंग	तिथि
१५	केश व मस्तक	बालोंको पकड़ना, माथेको चूँमना।	केश व मस्तक	१
१४	नेत्र	चुम्बन।	नेत्र	२
१३	नीचेकाहोठ	चूषणादिक।	होठ	३
१२	कपोल	चुम्बन।	कपोल	४
११	गला	नाखून लगाना।	गला	५
१०	काँख	नाखून लगाना।	काँख	६
९	स्तन	हाथसे खूब पकड़ना।	स्तन	७
८	हृदय	मुट्ठी मारना।	हृदय	८
७	नाभि	धीरे २ चपेट मारना।	नाभि	९
६	कुल्ला	नाखून, गुदगुदी।	कुल्ला	१०
५	मदनमंदिर	करिकरसे द्रवित करना।	मदनमंदिर	११
४	जांघें	अपनी जांघोंसे दबाना।	जांघें	१२
३	घोंटू	अपने घोंटू मारना, दबाना।	घोंटू	१३
२	पैर	अपने पैरसे दबाना।	पैर	१४
१	अँगूठा	अपने अँगूठेसे दबाना रिगड़ना।	अँगूठा	३०

स्त्री पुरुषोंका कम ज्यादा ठहरना ।

तत्र स्वभावतो यो यस्य भावः कालश्च स भावान्तरं कालान्तरं च यदा प्रतिपद्यते तदा भावकालान्तरसंक्रान्तिः । तां दर्शयितुमाह---

स्वभावसे जो जिसका भाव और काल है वह जब अपने भाव और कालसे बढ़ घट कर दूसरे भाव काल पर पहुँचे, उस समय उसे भावान्तर संक्रान्ति कहते हैं । इसीको दिखानेके लिये सूत्र करते हैं कि---

प्रथमरते चण्डवेगता शीघ्रकालता च पुरुषस्य, तद्विपरीतमुत्तरेषु । योषितः पुनरेतदेव विपरीतम् । आ धातुक्षयात् ॥ ३५ ॥

प्रथम सहवासमें पुरुषका राग अपने स्वाभाविक रागसे आगे बढ़ जाता है एवम् जितने समयमें उसका शुक्रपात स्वाभाविक होता है उससे जलदी ही हो जाता है । इसके आगे राग कम एवम् अधिक कालतक ठहरता जाता है । पर स्त्रियोंमें बिलकुल इसका उलटा होता है, उनका राग स्वाभाविक रागसे कम एवम् वे स्वाभाविक समयसे कुछ ज्यादा देर ठहरजाती हैं । पर पीछे राग ज्यादा २ एवं ठहरती कम कम है, यह बात उतने ही समय तक होती है जब तक कि पुरुषका अपने स्थानसे हटा शुक्र एवम् स्त्रीका हटा रज कुल का कुल गिर नहीं लेता ॥ ३५ ॥

शीघ्रमध्यचिरवेगाणां मन्दमध्यचण्डवेगानामन्यतमस्य प्रकृतिस्थस्य प्रथमरते स्वभेदापेक्षया शीघ्रवेगता चण्डवेगता च द्रष्टव्या । तदानीं प्रवृद्धत्वाद्रागश्चण्डायमानो द्रुतं प्रशाम्यति । तद्यथा—चिरचण्डवेगस्य प्रथमरते मध्यवेगता चण्डतरवेगता च कालभावाभ्याम् । मध्य [मध्य] वेगस्य शीघ्रवेगता चण्डवेगता च । शीघ्रमन्दवेगस्य शीघ्रतरवेगता मध्यवेगता च । शीघ्रमध्यवेगस्य शीघ्रतरवेगता चण्डवेगता च । शीघ्रचण्डवेगस्य शीघ्रतरवेगता चण्डतरवेगता च । मध्यमन्दवेगस्य शीघ्रवेगता मध्यवेगता च । मध्यचण्डवेगस्य शीघ्रवेगता चण्डतरवेगता च । चिरमन्दवेगस्य कालभावाभ्यां [मध्यवेगता] मध्यवेगता च । चिरमध्यवेगस्य मध्यवेगता चण्डवेगता च । इति नव प्रथमरते संक्रातिरतानि ॥

बहुत, साधारण एवम् बहुत ही थोड़े समय तक ठहरनेवाले क्रमशः मन्द, मध्य और प्रचण्डरागके स्त्री पुरुष हुआ करते हैं । यह आठवें सूत्रमें बता चुके

हैं । पर प्रथम रतमें इनके स्वभावमें कुछ परिवर्तन होता है यानी पुरुष स्खलित होनेके स्वाभाविक समयसे जलदी स्खलित होता एवम् स्वाभाविक रागसे कुछ राग प्रचण्ड रहता है । उस समय रागके प्रचण्ड होनेसे प्रचण्डताके साथ प्रवृत्त होकर जलदी ही शान्त हो जाता है । इनके रागके बढनेके एवं जलदीके क्रमको बताते हैं कि-(९) प्रथम रतमें चिरकाल तक ठहरनेवाला चण्डरागी, साधारण समयतक ठहरता है एवम् राग उसका चण्डसे चण्डतर हो जाता है । (५) मध्य यानी साधारण समयतक ठहरनेवाला मध्य यानी साधारण रागवाला पुरुष, चण्डरागी एवम् थोड़े ही समयमें स्खलित हो जाता है । (१) जलदी शान्त होनेवाला मन्दरागी पुरुष मध्यरागी होकर अत्यन्त शीघ्रताके साथ स्खलित हो जाता है । (२) शीघ्र ही स्खलित होनेवाला मध्यवेगी पुरुष, अत्यन्त जलदी ही शुक्रपात करनेवाले चण्डवेगी बन जाते हैं । (३) शीघ्रपात करनेवाला चण्डवेगी, अत्यन्त चण्डवेगवाला होकर अत्यन्त जलदी शुक्रपात करता है । (४) मध्यका ठहरनेवाला मन्दवेगी मध्यरागी होकर जलदी ठंडा होता है । (६) मध्यके समयका रुकनेवाला चण्डवेगी, अत्यन्त प्रचण्ड होकर शीघ्र ही शुक्रपात कर बैठता है । (७) चिरकालतक ठहनेवाला मन्द रागी पुरुष, मध्य रागी होकर साधारण ठहरता है । (८) चिरं कालतक ठहरनेवाला मध्यरागी पुरुष, चण्डरागी होकर अति साधारण समयतक ठहरता ह । प्रथम रतमें ये नौ संक्रान्त रत होते हैं ॥ ३५ ॥

तद्विपरीतमुत्तरेष्विति-प्रथमरते यदुक्तं तस्य विपरीतं द्वितीयादिषु रतेष्वित्यर्थः । तत्र कामस्यैकगुणत्वात्पुरुषस्य प्रशान्तरागत्वाद्वितीये रते प्रकृतिस्थैव भावकालान्तरसंक्रान्तिः । ततः शनैः शनैर्हीयमानरागत्वात्तृतीयादिषु स्वभेदापेक्षया चिरतरतमवेगतादयो मन्दतरतमवेगतादयश्च धर्माः । यावच्छुक्रधातुक्षयः । इति पुरुषस्य भावकालान्तरसंक्रान्तिः ।

पर प्रथम रतमें जो बातें कही हैं वे द्वितीय तृतीय आदि रतोंमें उलटी होती चली जाती हैं । इसका कारण यह है कि पुरुषमें आठका एक अंश ही

---

१ भाव और कालके बतानेवाले इसी अध्यायके प्रतिपादनके क्रमको लेकर ये एकसे लेकर नौ तक नम्बर दिये गये हैं किन्तु टीकाकारने चिरकाल तक ठहरनेवाले चण्ड रागीको पिछले सूत्रके अनुसार श्रेष्ठ मानकर सबसे पहिले रख दिया है । यही बात संकीर्ण रतोंमें शशके संकीर्णरत दिखाती वार की है सूत्रके प्रतिपादनकी शैलीको याद दिलानेके लिये नम्बर देना आवश्यक है ।

काल रहता है। पाहिले सहवासमें जब राग शान्त हो लेता है तो जैसा सहज राग है वैसा ही राग एवम् स्वभावसे जितनी देर ठहर सकता है उतनी ही देर ठहरता है। इस दूसरे नंबरके बाद जब तीसरा चौथा नंबर चलता है तो उसी तरह नंबरोंके अनुसार राग भी कम होता चला जाता है तब अपने स्वाभाविक भेदसे ज्यादासे ज्यादा देर तक ठहरता चला जाता है एवम् राग भी मन्दसे मन्द पड़ता चला जाता है। तथा दूसरी बातें भी कम होती चली जाती हैं। उस टायममें पुरुष उतनी ही बार सहवास कर सकता है जबतक अपने स्थानसे हटा कुल वीर्य्य गिर नहीं लेता। यह पुरुषकी भाव और कालकी संक्रान्ति बता दी है कि इस प्रकार वह अपने स्वाभाविक ठहरनेके समयको छोड़ अधिक और कम ठहरता तथा अधिक और कम रागवाला होजाता है।

योषितः पुनरेतदेव विपरीतमिति—अत्रापि प्रकृतिस्थायाः प्रथमरते स्वभेदापेक्षया चिरवेगता मन्दवेगता च द्रष्टव्या। तस्या अष्टगुणो हि रागो निसर्गादेव प्रथमरतेन संधुक्षते। ततश्च तदानीं मन्दायमानश्चिरेण प्रशाम्यति। तद्यथा—चिरचण्डवेगायाः प्रकृतिस्थायाश्चिरतरवेगता मध्यवेगता च कालभावाभ्याम्। मध्य [मध्य] वेगायाश्चिरवेगता मन्दवेगता च। शीघ्रमन्दवेगाया मध्यवेगता मन्दतरवेगता च। इत्येवं शेषास्वपि षट्सु योज्यम्।

पुरुषों जैसा ढंग स्त्रियोंका नहीं है, वे इसके बिलकुल विपरीत हैं यानी जैसे पुरुष अपने स्वाभाविक राग और कालमें रागमें अगाड़ी एवम् कालमें हलके पड़ जाते हैं उसी तरह स्त्रियां रागमें पिछाड़ी एवम् कालमें अधिक देर लगानेवाली होती हैं। इसमें भी यों समझना चाहिये कि स्त्रीकी जितने समय ठहरनेकी एवं जिस रागकी प्रकृति होती है वह उससे कुछ ज्यादा ठहरनेवाली एवम् कम रागवाली प्रथमवारके सहवासमें रहती है, क्योंकि पुरुषसे उसमें आठगुना राग स्वभावसे ही है वह प्रथम समागममें संदीप्त हो उठता है, इसके बाद उसी समय मन्द पड़कर चिरकालमें शान्त होता है। इसी बातको समझाकर बताते हैं कि—जो स्त्री स्वभावसे ही चिरकालतक ठहरनेवाली एवम् चण्डरागकी हो, वह प्रथम रतमें उससे भी ज्यादा ठहरेगी एवम् राग भी उसका चण्डका मध्य (साधारण) ही रहेगा। जो साधारण ठहरनेवाली और साधारण रागवाली स्त्री है वह मन्दरागकी रहकर चिरकालतक ठहर जाती है। जो शीघ्र ही रजपात करनेवाली मन्दरागकी स्त्री है वह

साधारण समयतक ठहरती एवं अत्यन्त मन्द वेगकी रहती है । यह हमने ९ चिर चण्ड, ५ मध्य मध्य और १ शीघ्र मन्दकाल राग वाली स्त्रियोंका प्रथम रतका उतार चढ़ाव दिखा दिया, इसी तरह (२) शीघ्र मध्य, (३) शीघ्र चण्ड, (४) मध्य मन्द, (६) मध्य चण्ड, (७) चिर मन्द और (८) चिर मध्य काल भाववाली छहों स्त्रियोंके उतार चढ़ावको भी समझना चाहिये ।

तद्विपरीतमुत्तरेषु द्वितीये रते प्रकृतिस्थतैव संक्रान्तिः । ततः शनैः शनैः संधुक्षणात्प्रवर्धमानरागवेगयोः स्वभेदापेक्षया तृतीयादिरतेषु शीघ्रतरतमवेगतादयश्चण्डतरतमवेगतादयश्च धर्माः । यावच्छुक्रधातुक्षयः । इति स्त्रीपुंसयोस्तुल्ये धातुक्षये विशेषः ॥ ३५ ॥

यह बात पहिले ही रतमें रहती है कि स्त्रियाँ स्वाभाविक समयसे अधिक ठहरतीं एवम् राग कम रहता है, किन्तु इसके आगे ठीक इसका उलटा होता है यानी दूसरे नम्बरमें वे अपने स्वाभाविक काल और भावपर आजाती हैं एवम् तीसरे और चौथे नम्बरपर धीरे धीरे रागके प्रदीप्त हो जानेके अनुसार ही राग भी बढ़ता जाता है तथा उसीके अनुसार जलदी च्युति होती जाती है । यानी चिरकालतक ठहरनेवाली प्रथम बार अत्यन्त चिर एवम् द्वितीय बार चिर एवम् तीसरी बार साधारण, चौथी बार शीघ्र एवम् पांचवीं बार अत्यन्त जलदी स्खलित हो लेती है । रागका भी यही हाल होता है–चण्डराग प्रथम बार मध्य, द्वितीय बार चण्ड, तृतीय बार अत्यन्त चण्ड तथा चौथेबार उससे भी चंड एवम् पांचवें वार उससे भी प्रचण्ड हो जाता है । जबतक कि स्थानसे च्युत हुआ रज बिलकुल नहीं गिर लेता यहीं होता है, कुलके गिर जाने पर सहवाससे हटनेकी इच्छा होती है । स्त्री पुरुष दोनोंका स्खलित होना एक जसा होनेपर भी यह उनमें विशेषता है, कि इस तरह पुरुषके भावकालोंसे स्त्रियोंके भाव कालोंमें यह अन्तर पड़ता है ॥३५॥

प्रायः पुरुष स्त्रीसे पहिले होता है ।

प्राक्च स्त्रीधातुक्षयात्पुरुषधातुक्षय इति प्रायोवादः॥३६॥

स्त्रीके स्खलित होनेसे पहिले पुरुष स्खलित हो लेता है, यह बात प्रायः देखनेमें आती है ॥ ३६ ॥

यत्पुरुषस्य धातोरेकगुणत्वाद्योषितश्च पश्चादष्टगुणत्वात्तदाह––प्राक्चेति ।

प्रायोवाद इति न पुंभिर्वामलोचना तृप्यतीति । प्रमाणान्तरं संक्रान्तिं च योषितो जघनप्रसारणाद्व्राह्वंसाभ्यां पुरुषस्य च वृद्धिविधिना वक्ष्यति ॥ ३६ ॥

पुरुषके पहिले स्खलित होलेनेका कारण यह है कि उसमें एकगुना धातु है । स्त्रीमें पुरुषसे अठगुना काम या धातु है, इस कारण वह पुरुषसे पीछे स्खलित होती है । इसी कारण यह प्रायोवाद है कि स्त्रियाँ पुरुषोंसे तृप्त नहीं होतीं । प्रमाणान्तरसंक्रान्ति—स्त्रियोंके छोटे मदनमंदिरको बड़ा एवम् बड़ेको छोटा करना तो आसनोंके प्रकरणमें कह देंगे एवम् मदनांकुश बढ़ाने घटानेकी भी विधि औपनिषदिकमें बतायेंगे यही परिमाणान्तरसंक्रान्ति है ३६॥

प्रायत्निक समरत पर नैषध ।

तत्क्षणावहितभावभावित—द्वादशात्मसितदीधितिस्थितिः ।
स्वां प्रियामभिमतक्षणोदयां भावलाभलघुतां नुनोद सः ॥ १८–११६ ॥

यदि कभी ऐसा होता कि दमयन्तीकी भावप्राप्ति होनेके पहिले महाराजा नल ही भावप्राप्त होने लगते तो उस समय सूरज और चाँदकी स्थितिका विचार करने लगते अथवा योगप्रक्रियासे कुम्भक करने लग जाते यानी चलते श्वासको रोक लेते, क्योंकि दाहिनी नाकके रोकनेसे पुरुष कुछ देरतक स्खलित होते २ भी वहीं रुक जाता है । इस तरह जबतक स्त्रीको भावप्राप्ति नहीं होती उतने समय तक अपने शुक्रका क्षरण नहीं होने देते थे ।

तीनों कालवालियोंकी प्रकृति एवम् उन्हें शीघ्र प्रसन्न करनेका उपाय ।

शीघ्रमध्यचिरवेगा नायिका इत्युक्तम् । काः पुनस्ता इत्याह—

आपने शीघ्र, साधरण और चिरकालतक ठहरनेवाली स्त्रियाँ तो बता दीं पर वे कैसे स्वभावकी होती हैं इस पर कहते हैं कि—

मृदुत्वादुपमृद्यत्वान्निसर्गाच्चैव योषितः ।
प्राप्नुवन्त्याशु ताः प्रीतिमित्याचार्या व्यवस्थिताः ॥३७॥

जो स्त्रियां स्वभावसे ही नाज़ुक हैं एवम् जो स्वभावसे ही उपमर्दन करने योग्य हैं उन सबोंको विधिके साथ उचित रीतिसे रतिसुखसे प्रसन्न किया जा सकता है, ऐसा कामशास्त्रके आचार्य्योंका मत है ॥ ३७ ॥

निसर्गात्स्वभावतो याः स्त्रियो मृद्वङ्ग्यः, अमृद्वङ्ग्योऽपि याश्चुम्बनादिभिर्बाह्यै-रान्तरैश्चांगुलिकर्मादिभिरुपमृद्यन्ते ताः शीघ्रतरं प्रीतिं प्राप्नुवन्ति । ताः शीघ्रवेगा

इत्यर्थः। तद्विपर्यये ता मध्यचिरवेगा इत्यर्थ इत्युक्तम्। तथा पुरुषोऽपीति। तत्र मृदुत्वं स्वाभाविकं लक्षणम्, शेषं कृत्रिमम्। इत्याचार्या व्यवस्थिता इति सर्वेषामेतदेव मतम्। अव्यभिचारित्वात्॥ ३७॥

जो स्त्रियां स्वभावसे ही नाजुक होती हैं वे शीघ्र वेगवाली होती हैं, वे जलदी ही रतिका सुख पा लेती हैं एवम् जो नाजुक न होकर कठोर देह और स्वभाववाली हैं और मध्य तथा चिरकालतक ठहरती हैं वे भी आलिंगन आदिक बाहिरके उपचारों तथा मदनमंदिरमें अँगुलियाँ डालना आदि भीतरके उपचारोंसे मर्दन होनेके वाद सहवास करनेसे जलदी ही रतिके सुखको पा लेती हैं। यही वात पुरुषोंकी भी है। यहां मृदुत्व, स्वाभाविक लक्षण है. एवम् वाकी सब कृत्रिम हैं। यह सभी आचार्य्योंका मत है, क्योंकि इस बातमें कोई फर्क नहीं दीखता॥ ३७॥

स्त्रीको ठहरानेपर नैषध।

वीक्ष्य भावमधिगन्तुमुत्सुकां पूर्वमच्छमणिकुट्टिमे मृदुम्।
कोऽयमित्युदितसम्भ्रमीकृतां स्वानुविम्बमदर्शतप ताम्॥ १८-११५॥

दमयन्ती उस समय वाला थी स्वभावकी मृदु थी इसकारण अधिक समय तक सुरतके भारको नहीं सह सकती थी, क्योंकि पद्मिनी अधिक समयतक नहीं ठहरा करतीं। अतएव नलके साथ सहवास करते करते स्खलित होनेके समयके रतिसुखको जलदी लेनेके लिये आखोंको मीचने एवम् गाढ़ आलिङ्गन आदि करने लगी। नलने देखा कि यदि यह मुझसे पाहिले स्खलित हो जायगी तो हमारा विषम रत होगा, इस कारण उसे रोकनेके लिये दमयन्तीका ध्यान चुकाने लगा कि देख, यह कौन है? वहां और तो कोई नहीं था किन्तु मणियोंके फर्सपर नलकी परछाईं दीख रही थी, नल अपनी ही परछाइको दिखा रहा था। उसे देखकर दमयन्तीने समझा कि कोई दूसरा नल वनकर तो मुझे भ्रष्ट नहीं कर रहा है, इस संभ्रममें जब दमयन्तीका वह ध्यान चूक गया तो नलने उसे समझा दिया कि, किस भ्रममें पड़ गई? यह तो मेरा ही प्रतिविम्ब है। दमयन्ती स्वभावसे ही मृदु है, इस कारण शीघ्र ही भाव प्राप्त कर लेना चाहती है।

अधिक प्रतिपादनका कारण।

एतावदेव युक्तानां व्याख्यातं सांप्रयोगिकम्।
मन्दानामवबोधार्थं विस्तरोऽतः प्रवक्ष्यते॥ ३८॥

सुयोग्य पुरुषोंके लिये इतना कहा ही साम्प्रयोगिक बहुत है, किन्तु मन्द-बुद्धिके पुरुष भी जान जायँ, इस कारण विस्तारके साथ कहेंगे ॥ ३८ ॥

रतावस्थापनमात्रेण सांप्रयोगिकं संक्षेपेण व्याख्यातम् । शास्त्रेण विदित्वालिङ्गनादीनुपचारानुत्प्रेक्ष्य योजयन्ति न मन्दबुद्धय इति तदेवावापोद्वापार्थं विस्तराभिधानम् । प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥ ३८ ॥

प्रमाण, काल और भावसे रतिकी स्थापना करने मात्रसे सांप्रयोगिकका संक्षेपसे व्याख्यान हो गया । योग्य पुरुष इसे शास्त्रसे देख, आलिंगनादिक उपचारोंकी कल्पना करके प्रयुक्त कर सकते हैं, पर मन्दबुद्धि नहीं कर सकते, इस कारण इसका आवाप (करने) और उद्वाप (उठाने) के लिये विस्तारके साथ कहेंगे । यह प्रमाण, भाव और कालसे रतिकी व्यवस्था करनेका प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

प्रीतिविशेष प्रकरण ।

यथा त्रिधा रतमवस्थापितं तथा स्थूलसूक्ष्मरूपाभ्यां प्रीतिरपि व्यवस्थापिता । किंतु तद्व्यतिरेकेणान्या अपि प्रीतयोऽस्मिञ्शास्त्रे संभवन्तीति दर्शनार्थं प्रीतिविशेषा उच्यन्ते—' अभ्यासात् ' इत्यादिना ।

जैसे कि तीन प्रकारसे रतकी व्यवस्था की है, उसी तरह राग और स्खलित होनेके समयके सुखके रूपमें प्रीति (सुख) भी बता दी । पर इसके सिवा और भी प्रीतियाँ इस शास्त्रमें हैं, उन्हींको दिखानेके लिये यह प्रकरण कहते हैं—

प्रेमके भेद ।

अभ्यासादभिमानाच्च तथा संप्रत्ययादपि ।
विषयेभ्यश्च तन्त्रज्ञाः प्रीतिमाहुश्चतुर्विधाम् ॥ ३९ ॥

बारंबारके करनेसे, उसमें आनन्द मान लेनेसे, विश्वाससे और विषयोंसे प्रीति होती है, इस कारण तंत्रज्ञ लोग चार प्रकारकी प्रीति कहते हैं ॥ ३९ ॥

तन्त्रज्ञाः कामसूत्रज्ञाः ॥ ३९ ॥

तंत्र कामशास्त्र है, इसके जाननेवाले तंत्रज्ञ कहाते हैं ॥ ३९ ॥

अभ्याससे होनेवाली प्रीति ।

आसां लक्षणमाह—' शब्दादिभ्यः ' इत्यादिना ।

अब नीचेके श्लोकोंसे इन प्रीतियोंके लक्षण करते हैं—

शब्दादिभ्यो बहिर्भूता या कर्माभ्यासलक्षणा ।
प्रीतिः साभ्यासिकी ज्ञेया मृगयादिषु कर्मसु ॥ ४० ॥

जो शब्दादिकोंसे बाहिरके कर्मोंमें लगे रहनेसे प्रीति उत्पन्न हो उसे 'आभ्यासिकी' प्रीति कहते हैं, जैसी कि शिकार आदिमें देखी जाती है॥४०॥

कर्मसु क्रियमाणेषु तत्रत्याञ्शब्दादिविषयानाश्रित्य या स्यात्सा विषयप्रीतिरेव । या तु कर्माभ्यासलक्षणा । कर्मणां पुनः पुनरनुष्ठानमभ्यासः । तेन लक्ष्यमाणत्वात्तल्लक्षणा प्रीतिः सक्तिः । साभ्यासेन निर्वृत्ताभ्यासिकी कर्माश्रयकलाव्यासक्तानां भवति। यदाह—मृगयादिष्विति । आखेटकं मृगया व्यायामिकी विद्या । आदिशब्दान्नृत्यगीतवाद्यचित्रपत्रच्छेद्याद्युपसंग्रहः ॥४०॥

किये जानेवाले कामोंमें उनके शब्दादिक विषयोंको लेकर जो प्रेम होता है उसे तो विषयप्रीति ही कहते हैं, किन्तु जो किये जानेवाले कामोंमें उनके बारंवार करनेके खित पड़ जानेके कारण जो प्रेम हो । क्योंकि कामोंको बारबार करनेका नाम अभ्यास है, इससे यह प्रेम देखा जाता है, इसी कारण यह आभ्यासिकी[1] प्रीति है, इसीको आसक्ति कहते हैं । जैसे कि शिकार यद्यपि परिश्रमकी विद्या है किन्तु बारंवारके कियेसे प्रेम पैदा होता है । श्लोकके आदि शब्दसे नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र और पत्रच्छेद्य आदिका संग्रह है ॥४०॥

मानी हुई प्रीति ।

अनभ्यस्तेष्वपि पुरा कर्मस्वविषयात्मिका ।
संकल्पाज्जायते प्रीतिर्या सा स्यादाभिमानिकी ॥४१॥

पहिलेका उसमें अभ्यास किया हो चाहे न किया हो किन्तु विना विषयोंके भी उसमें जो मनके सुख माननेसे प्रीति उत्पन्न हो उसे आभिमानिकी यानी मानी हुई प्रीति कहते हैं ॥ ४१ ॥

पुरा पूर्वम् । कर्मस्वनभ्यस्तेष्वपीत्यपिशब्दादभ्यस्तेष्वपीति । येनापि मृगयाकर्म नाभ्यस्तमभ्यस्तं वा सोऽपि तत्कर्म कृत्वा मनसा सुखायते । आभ्यासिकी कर्माभ्यासादेवेति विशेषः । अविषयात्मिकेति । नापि विषयेभ्यः शब्दादिभ्य आत्मलाभोऽस्या इत्यर्थः । कुतस्तर्हीत्याह—संकल्पाज्जायत इति । मनसः संकल्पात्मकत्वान्मानसीत्यर्थः । सा चैवंविधाभिमानिकीत्युच्यते । अभिमानोऽहंकारः स प्रयोजनमस्या इति ॥ ४१ ॥

---

१ अभ्यास शब्दका अर्थ कर दिया, इससे बननेवाला ही यह 'आभ्यासिकी' शब्द है । अभ्यास शब्दसे 'तेन निर्वृत्तम्' इस अधिकारमें 'अभ्याससे जो बने' इस अर्थमें ताद्धितीय 'ठक्' 'ङीप्' प्रत्यय होकर 'आभ्यासिकी' शब्द बनता है ।

पहिले विना अभ्यास किये कर्ममें भी, इस भी का अर्थ होता है कि अभ्यास किये हुए भी कर्ममें प्रीति होती है जैसे कि जो शिकार खेलनेका अभ्यासी है वह तो सुखी होता ही है किन्तु जिसे खेलनेका कतई अभ्यास नहीं है वह भी शिकार खेलना चाहनेवाला शिकारके खेलमें सुखी होता है। आभ्यासिकी प्रीति तो अभ्याससे ही होती है यह उसमें इससे विशेषता है। इसमें यह भी नहीं होता कि शब्दादिक विषयोंसे उत्पन्न हो जाय। मानी हुई प्रीति होती कैसे है इसको बताते हैं कि संकल्पसे होती है। इस प्रकारकी प्रीतिको आभिमानिकी प्रीति कहते हैं। यानी अभिमानअहंकार ही इसका प्रयोजन होता है ॥ ४१ ॥

कामशास्त्रमें माना हुआ सुख।

सा कथमस्मिञ्शास्त्रे संभवतीत्याह—

आपने जो माना हुआ सुख या प्रेम बताया है वह इस कामशास्त्रमें कैसे होता है, इस बातको बताते हैं कि—

प्रकृतेर्या तृतीयस्याः स्त्रियाश्चैवोपरिष्टके।
तेषु तेषु च विज्ञेया चुम्बनादिषु कर्मसु ॥ ४२ ॥

तृतीया प्रकृति (नपुंस) का और कुटिला स्त्रीकी जो बुरे कर्ममें प्रीति होती है एवम् आलिंगन, चुम्बन, प्रहणन, च्छेद आदिमें जो स्त्री पुरुषोंकी प्रीति होती है वह मानी हुई प्रीति है ॥ ४२ ॥

तृतीया प्रकृतिर्नपुंसकं तस्याः स्त्रियाश्च मुखचपलाया औपरिष्टके मुखे जघनकर्मण्यभ्यस्तेऽपि विज्ञेया । प्रयोजयितुः पुनः पुनः कायिकी विषयप्रीतिः । तेषु तेषु चेति—स्वभेदभिन्नेषु चुम्बनादिषु । आदिशब्दादालिङ्गननखरदनच्छेद्यप्रहणनेष्वनभ्यस्तेष्वपि रतिकाले प्रयोक्तुर्मानसी प्रीतिः यस्या अपि प्रयुज्यन्ते तस्या अपि तत्र तत्र स्थाने प्रयुज्यमानेषु रागसंकल्पवशान्मानसी प्रीतिर्न कायिकी । स्पर्शमात्रसंवेदनात् । दुःखाभिभूते तु काये तत्प्रीतिकारणाभावात्सा न कायिकी ॥ ४२ ॥

तृतीया प्रकृति नपुंसकको कहते हैं, इसमें एक स्तन केशवाली एवम् एक पुरुष जैसी होती है। यह चाहे अभ्यास किया हो चाहे न किया हो पर औपरिष्टक कर्म जो कि मुखमें बुरा काम किया जाता है (जिसे कि इसी अधिकरणके नववें अध्यायमें कहेंगे) उसमें इसे. प्रसन्नता प्राप्त होती है।

जो स्त्री मुखचपला होती है वह भी इस बुरे काममें सुख मानती है। पर जो इस कर्मको इनसे कराता है उसे शारीरिक विषयप्रीति होती है, क्योंकि वह इनके मुखको मदनमंदिरकी जगह वर्तता है। सहवासके समय जो अभ्यस्त हों या न हों सब तरहके चुम्बनोंमें एवम् श्लोक जिनका आदि शब्दसे बोध करा रहा है ऐसे सभी तरहके आलिंगन, नखच्छेद, दंतच्छेद और प्रहणन आदिमें, करनेवाले और जिसपर किये जाते हैं वे सभी स्त्री पुरुष मनमें सुख मानते हैं यानी जो इनका प्रयोग करता है उसकी भी मनसे मानी हुई प्रीति होती है एवम् जिस स्त्रीपर इनका जिस २ स्थानमें प्रयोग होता है वह भी रागके संकल्पके कारण मनसे सुख मानती है वह उसका मनका माना ही सुख कहा जा सकता है, क्योंकि शरीरको तो मर्दा जाता है इस कारण वह कोई शारीरिक थोड़ा ही है, क्योंकि स्पर्श मात्रका ही भान होता है। प्रहणन आदिसे शरीर तो पीडित होता है, इस कारण वे इसकी प्रीतिके कारण कैसे हो सकते हैं, अतः उनमें शारीरिकी प्रीति भी नहीं है तब इसे मानसी ही मानना पड़ेगा ॥ ४२ ॥

विश्वासखे प्रीति ।

नान्योऽयमिति यत्र स्यादन्यस्मिन्प्रीतिकारणे ।
तन्त्रज्ञैः कथ्यते सापि प्रीतिः संप्रत्ययात्मिका ॥ ४३ ॥

किसी अपूर्वव्यक्तिपर जो यह वही है ऐसा मानकर प्रेम होता है, कामशास्त्रके जाननेवालोंने उस प्रीतिको संप्रत्ययात्मिका यानी विश्वासकी प्रीति कहा है ॥ ४३ ॥

स एवायमित्यर्थः । यत्र क्वचन अन्यस्मिन्नित्यपूर्वस्मिन्विषये पुंसि स्त्रियां वा स एवायमिति पूर्वप्रीत्यध्यारोपणायाः स्त्रियाः पुंसो वा चित्तवृत्तिः । प्रीतिकारणा इति–प्रीतिहेतावध्यारोपणनिबन्धनमेतत् । पूर्वप्रीतस्य ये गुणाः प्रीतिहेतवस्तेऽत्रापि सन्तीति दर्शयति । एवं च सा पूर्वप्रीतिः संप्रत्ययादुत्पन्नस्वभावत्वात्संप्रत्ययात्मिका कामसूत्रविद्भिः कथ्यते । तथा च 'प्रियसादृश्यं गमनकारणम्' इति वक्ष्यति ४३॥

जिस किसी भी अपूर्व स्त्री वा पुरुषमें पहिले अपने प्रेमपात्र स्त्री वा पुरुषकी बुद्धि करके जो प्रेम उत्पन्न होता है यह प्रेम अपने प्रेमपात्र स्त्री वा पुरुषके आरोपके कारण हुआ है यानी पहिले प्रेमपात्रमें जो वे गुण थे जिनके कि कारण प्रीति थी वे इस अध्यारोपके स्थानमें भी हैं जिसके कारण यह वही है उसकी ऐसी भावना होती है, यह बात अध्यारोपके कारणोंसे दिखाई है। इस प्रकार वही पूर्वप्रीति विश्वासके कारण अपने भावको प्राप्त हो जाती

है, इस कारण कामसूत्रके जाननेवाले उसे संप्रत्ययात्मिका यानी विश्वाससे उत्पन्न हुई प्रीति कहते हैं । यही बात अगाड़ी कहेंगे कि–" प्यारेकी समानता भी गमनका कारण होती है "॥ ४३ ॥

विषयरूपा प्रीति ।

प्रत्यक्षा लोकतः सिद्धा या प्रीतिर्विषयात्मिका ।
प्रधानफलवत्त्वात्सा तदर्थाश्चेतरा अपि ॥ ४४ ॥

जो विषयरूपा प्रीति है यह प्रत्यक्ष है एवम् लोकसे सिद्ध है, वही प्रधान फलवाली है, बाकीकी तीनों प्रीति तो उसीके लिये हैं ॥ ४४ ॥

शब्दादिविषयाननुकूलानालम्ब्य श्रोत्रादिद्वारेण या प्रीतिरुत्पद्यते सा विषयव्यवसायानुगतत्वात्प्रत्यक्षा सती लोकत एव सिद्धत्वान्नात्र लक्षणाभिनिवेशः । सा चैवंविधा नैमित्तिकनागरवृत्ते द्रष्टव्या । प्रधानफलवत्त्वात्सेति–साक्षाद्विषयोपभोगफलेन युक्तत्वादित्यर्थः । इतरा अपि तिस्रस्तदर्थाश्चेति–विषयप्रीत्यर्था एव, तदङ्गत्वात् । चशब्द एवकारार्थः ॥ ४४ ॥

अपनी मनोवृत्तिको अनुकूल पड़नेवाले शब्दादि विषयोंका कान आदिके द्वारा आलम्बन लेकर, जो प्रीति उत्पन्न होती है वह विषयोंके व्यवसायके पीछे होनीवाली होनेके कारण स्वतः प्रत्यक्ष है; वह लोकसे ही सिद्ध है, इस कारण उसके लक्षण करनेकी आवश्यकता नहीं है । इस प्रीतिको नागरोंके नैमित्तिक चरित्रोंमें प्रत्यक्ष देख लो कि वे इन्हें कितने शौकसे करते हैं । विषयरूपा प्रीतिमें विषयोंका साक्षात् उपयोग सना हुआ है, इस कारण यह प्रधान है । जिन तीन प्रीतियोंका पीछे इसी प्रकरणमें प्रतिपादन कर चुके हैं वे भी इस विषयरूपा प्रीतिके लिये ही हैं, क्योंकि इसीकी अंगरूपा हैं । श्लोकमें आये हुए ' तदर्थाश्च ' के ' च ' का एव अर्थ है । जिसका कि अर्थ ' लियेहीमें ' ही कर रहे हैं ॥ ४४ ॥

प्रीतियोंके प्रतिपादनका उपयोग ।

प्रीतीरेताः परामृश्य शास्त्रतः शास्त्रलक्षणाः ।
यो यथा वर्तते भावस्तं तथैव प्रयोजयेत् ॥ ४५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं प्रीतिविशेषा
इति प्रथमोऽध्यायः ।

आदितः षष्ठः ।

शास्त्रकी बताई हुई इन चारों प्रीतियोंको शास्त्रसे विचार करके, जो भाव जिस प्रीतिका हो उसे उसी प्रीतिसे युक्त कर दे ॥ ४५ ॥

चतस्रः शास्त्रतः परामृश्य निरूप्य । शास्त्रलक्षणा इति तेषु तेषु स्थानेषु शास्त्रेणानेन लक्ष्यमाणत्वात् । यो यथा वर्तते भाव इति कर्माभ्यासादीनां चतुर्णां प्रकाराणां येन प्रकारेण योऽभिप्रायो वर्तते स तेनैव प्रकारेण वर्तयेत् । तज्जन्य-प्रीत्यर्थमेव । तथा हि—अतथाप्रवर्तनादनीप्सिता प्रीतिरप्रीतिरेव स्यात् । इति प्रीतिविशेषाः सप्तमं प्रकरणम् । आदितः षष्ठ इति प्रथमाध्यायात्प्रभृति षष्ठो-ऽयमित्यर्थः । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् ॥ ४९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-करणे प्रमाणकालभावेभ्यो रतावस्थापनं प्रीतिविशेषाः प्रथमोऽध्यायः ॥

जो जिस तरहकी प्रीतिकी जगह है वह उसी जगह, इस शास्त्रसे पहि-चानी जा सकती है, अतः इनमेंसे जिस स्थानमें जो हो उसे शास्त्रसे पहिचान ले एवम् शास्त्रसे ही उसका कर्तव्याकर्तव्य विचार कर इन चारों प्रकारोंकी प्रीतियोंमेंसे सामनेवालेका जैसा अभ्यास हो उसी प्रकारकी प्रीतिका उसके साथ बर्ताव करना चाहिये; जिससे उस प्रीतिके कार्य्योंके कारण उससे प्रेम पैदा किया जा सके। क्योंकि जिसे जिस प्रकारकी प्रीति चाहिये उस प्रीतिके विरुद्ध दूसरी प्रीति करनेसे वह प्रीति भी अप्रीति ही हो जायगी, इस कारण जिस प्रीतिका जो स्थल हो वहां उसी प्रीतिका व्यवहार करना चाहिये। यह प्रीतिविशेष नामक सातवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

आलिंगनविचार प्रकरण ।

एवं रतमवस्थाप्य तदङ्गभूतां चतुःषष्टिं निर्दिदिक्षुराह—

इस साम्प्रयोगिक अधिकरणके पहिले अध्यायमें प्रमाण, काल और भावसे रतकी व्यवस्था करके, सहवासके अंगरूप पांचालिकी चौंसठ कलाओंके दिखा-नेकी इच्छासे सबसे पहिले **चतुःषष्टिका अर्थ**—कहते हैं कि—

संप्रयोगाङ्गं चतुःषष्टिरित्याचक्षते । चतुःषष्टिप्रकरणत्वात् ॥ १ ॥

पूर्वाचार्य्य, पांचालिकी चतुःषष्टिको संप्रयोगका अंग मानते हैं, इसी कारण उन्होंने इस अधिकरणमें चौंसठ प्रकरण रखे थे ॥ १ ॥

संप्रयोगस्य चतुःषष्ट्यात्मकत्वात्तस्याङ्गं चतुःषष्टिरित्याचक्षते पूर्वाचार्यास्तस्मात्तां वक्ष्यामः ॥ १ ॥

संप्रयोगको चौंसठ कला स्वरूप होनेके कारण चौंसठ (चतुःषष्टि) संप्रयोगके अंग हैं, ऐसा पहिले आचार्य्य कहते हैं । इसी कारण पांचालिकी चतुःषष्टिका निरूपण करते हैं ॥ १ ॥

तत्र चतुःषष्टिशब्दः शास्त्रे तदेकदेशे वा वर्तते, उभयथापि व्यवहाराङ्गमिति दर्शयन्नाह—

'आपके यहां चतुःषष्टि' शब्द कामशास्त्रको कहता है वा कामशास्त्रके एक अंग सांप्रयोगिक अधिकरणको कहता है ? क्योंकि इसका व्यवहार हम दोनोंमें देखते हैं । (चतुःषष्टि शब्द कामशास्त्रके एक अंग साम्प्रयोगिक अधिकरणको कहता है, यह बात तो पीछे दिखा चुके हैं । कामशास्त्रका भी नाम चतुःषष्टि है, यह अगले सूत्रसे दिखाये देते हैं) कि—

शास्त्रमेवेदं चतुःषष्टिरित्याचार्यवादः ॥ २ ॥

कामशास्त्रका ही नाम चतुःषष्टि है, यह भी आचार्य्योंका मत है ॥ २ ॥

शास्त्रमेवेदमितीति—शास्त्रमाह तच्च संप्रयोगस्याङ्गम् । तदुपायस्य तन्त्रावापाख्यस्य प्रकाशनात् । आचार्यवाद इति । शब्दविदो ह्याचार्या एवंविधा एव किंचिन्निमित्तमाश्रित्य चतुःषष्टिशब्दस्य प्रवृत्तिं वदन्ति ॥ २ ॥

इस शास्त्रका नाम 'चतुःषष्टि' होनेका कारण बताते हैं कि—कामशास्त्रने जो भी कुछ कहा वह सब सहवासका ही अंग कहा है, क्योंकि सहवासके उपाय जो तंत्र[२] और आवाप हैं, उनका ही तो यह प्रकाश करता है । इस

---

१ पूर्वाचार्योंने संप्रयोगके चौंसठ अंग मानकर, एक २ अंगके निरूपणमें एक २ प्रकरण इस अधिकरणमें दिया था, उनकी इस कारगुजारीसे पीछेवालोंको उनके विचारका पता चलता है, इसी कारण इन चौंसठ प्रकरणोंको हेतुके रूपमें दे रहे हैं ॥

२ तंत्र और आवाप शब्दका विस्तृत अर्थ पचीसवें पृष्ठमें कर आये हैं ।

कारण वैयाकरणाचार्य्य, इसी मतलबको लेकर, चतुःषष्टि शब्दका कामशास्त्र अर्थ करते हैं ॥ २ ॥

चतुःषष्टिका नाम पांचालिकी दशतयी ।

तच्चेहाप्यस्तीति शास्त्रैकदेशे वा विद्यासमुद्देशे वर्तत इत्याह—

जिस प्रकार चतुःषष्टि शब्दके ये दो अर्थ कर लिये गये हैं, उसी तरह वात्स्यायनप्रणीत कामशास्त्रमें भी विद्यासमुद्देश प्रकरणमें जो चौंसठ कलाएँ बताई हैं उनको तथा कामशास्त्रके एक भाग साम्प्रयोगिक अधिकरणको कहते हैं । इसी बातको इस सूत्रसे दिखाते हैं—

कलानां चतुःषष्टित्वात्तासां च संप्रयोगाङ्गभूतत्वात्कलासमूहो वा चतुःषष्टिरिति । ऋचां दशतयीनां च संज्ञितत्वात् । इहापि तदर्थसम्बन्धात् । पञ्चालसंबन्धाच्च बह्वृचैरेषा पूजार्थं संज्ञा प्रवर्तिता इत्येके ॥ ३ ॥

विद्यासमुद्देश प्रकरणमें चौंसठ कलाएँ कही हैं इस कारण 'चतुःषष्टि' शब्दसे उनका एवम् संप्रयोगकी अंगभूत जो पांचालिकी चतुःषष्टि है उसका बोध होता है । ऋग्वेदके दशतयी नामकी तरह संप्रयोगका नाम ही चतुःषष्टि है एवं जैसे ऋग्वेदका दशतयी नाम है उसी तरह इस अधिकरणका भी नाम 'दशतयी' है, क्योंकि वैसा ही अर्थ दशतयी शब्दका यहां भी है । पंचालोंके सम्बन्धसे इसका नाम पांचाली है । ऋग्वेदियोंने आदरसे इन नामोंको प्रवृत्त किया है ॥ ३ ॥

अत्र हि गीतादयः कलाश्चतुःषष्टिरुक्ताः । ततस्तत्समूहो वा संप्रयोगाङ्गम् । चतुःषष्टिः सांप्रयोगिके वा शास्त्रैकदेशे वर्तते । तत्र हि पाञ्चालिकी चतुःषष्टिः कथ्यते । कथं ताश्चतुःषष्टिरित्याह—दशतयीनां चेति । दशावयवा मण्डलानि यासामृचाम् । इत्यवयवे तयप् । दशतय्यस्ताश्चतुःषष्टिरिति संज्ञिताः । इहापीति संप्रयोगाङ्गे । तदर्थसंबन्धादिति दशावयवमण्डलार्थसंबन्धात् । चतुःषष्टिरिति संज्ञा प्रवर्तत इति संबन्धः । संप्रयोगाङ्गं हि दशावयवाः । यथोक्तम्—'आलिङ्गनं चुम्बनदन्तकर्म नखक्षतं सीत्कृतपाणिघातम् । संवेशनं चोपसृतौपरिष्टं नरायितं चेति दशाङ्गमाहुः ॥' इति ।

कामशास्त्रमें गीतादिक चौंसठ कलाएँ पहिले कही गई हैं, इस कारण उनका समूह संप्रयोगका अंग है । या चतुःषष्टि कामशास्त्रके एक भाग सांप्र-

योगिक अधिकरणके अर्थको कहता है, क्योंकि इसमें पांचालिकी चतुःषष्टि कही गई है । पांचालिकियोंको चतुःषष्टि क्यों कहते हैं ? इसका उत्तर देते हैं कि- जैसे ऋग्वेदमें दशमंडल हैं वे ही अवयव हैं जिसके ऐसे ऋग्वेद या ऋचाओंको 'दशतयी'[1] कहते हैं, इसी तरह ही चौंसठ अवयवोंवाली 'चतुःषष्टि' कहाती है । जिस प्रकार कि दशमण्डलरूप अवयवोंसे उनका दशतयी नाम है, उसी तरह आलिंगन आदिक दश अंग यानी अवयवोंके होनेके कारण, सांप्रयोगिकका भी दशतयी नाम है । इसके-" आलिंगन, चुम्बन, दन्त लगाना, नाखून लगाना, सीत्कार, हाथ मारना, संवेशन, उपसृत, औपरिष्टक और नरायित ये दश अंग कहाया करते हैं । "

पञ्चालसंबन्धाच्च प्रवर्तिता । पञ्चालेन महर्षिणा ऋग्वेदे चतुःषष्टिर्निगदिता । बाभ्रव्येणापि पाञ्चालेन स्वकृते सांप्रयोगिकेऽधिकरण आलिङ्गनादय उक्ताः । ततश्च द्वयोरप्येकगोत्रनिमित्तसमाख्येन पाञ्चालेन निगदनात्संबन्धोऽस्ति । पूजार्थेति उभयोरपि पक्षयो ऋग्वेदैकदेशवर्तिन्यपि संज्ञा बहृचैरशिष्टाचारैरालिङ्गनादिषु पूजार्था प्रवर्तिता । केचिदाहुः—"तत्पूजां च वक्ष्यति—'विद्वद्भिः पूजितामेतां खलैरपि सुपूजिताम् । पूजितां गणिकासंघैर्नन्दिनीं को न पूजयेत् ॥ " इति ॥ ३ ॥

पंचाल महर्षिने ऋग्वेदमें चतुःषष्टि (आलिंगनादिक ६४ कलाएं) कही हैं एवं पांचाल बाभ्रव्यने भी अपने संगृहीत सांप्रयोगिक अधिकरणमें ये ही आलिंगन आदिक कह दिये हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि एकगोत्रके कारण पांचाल कहलानेवाले महर्षि पांचाल और बाभ्रव्यपांचालने[2] इन चौंसठोंको कहा है इस कारण उनका इससे संबन्ध है । दोनों ही पक्षोंमें यह ऋग्वेदके एक-

---

१ 'संख्याया अवयवे तयप् ५-२-५२' संख्यावाची शब्दसे अवयव अर्थमें 'तयप्' प्रत्यय होता है । इस सूत्रसे दश शब्दसे अवयव अर्थमें 'तयप्' प्रत्यय हुआ । इससे दशतय शब्द बन कर 'टिड्ढाण, ४-१-१५' इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय होकर 'दशतयी' शब्द बन गया । (ऋग्वेदमें मण्डल और अष्टक ये दो क्रम चलते हैं । सारेमें आठ अष्टक एवम् एक २ अष्टकमें आठ आठ अध्याय होते हैं । इस क्रमका समभाव आलिंगनोंके भी क्रमोंमें देखते हैं अतः इसे दृष्टान्तमें देते तो दृष्टान्त और दार्ष्टान्त एक बैठ जाते पर आठके सिवा दश अंगोंपर आचार्य्यका ध्यान था इसी कारण दशतयी रखा है ।)

२ मूल विना शाखाएँ नहीं होती, वेदके विना इनका ज्ञान भी नहीं हो सकता । इस कारण इन कलाओंके मूलका भी ऋग्वेदमें होना असंभव नहीं है, पर किसी पांचाल ऋषिने कहा यह बात नहीं ध्यानमें आती, क्योंकि पांचाल नामका कोई ऋग्वेदका ऋषि नहीं है । हां पांचालगोत्रीय या पंजाबी बाभ्रव्यके योगसे 'पांचालिकी' कहाये तो यह अच्छा ही है ।

देशकी हुई भी 'पांचालिकी' संज्ञा अशिष्टाचारी ऋग्वेदियोंने आलिंगन आदिसें सम्मानके लिये प्रवृत्त की है, ऐसा कोई कहते हैं। उनके कथनमें आई हुई उस पूजाको भी कहे देते हैं कि—"जिसे विद्वानोंने भी पूजा है एवम् खल जिसे अच्छी तरह पूजते हैं, जिसे कि गणिकाओंका संघ पूजता है उस आनन्ददायक पांचालीको कौन न पूजेगा" ॥ ३ ॥

चतुःषष्टिका स्वरूप ।

आलिङ्गनचुम्बननखच्छेद्यदशनच्छेद्यसंवेशनसीत्कृतपुरुषायितौपरिष्टकानामष्टानामष्टधा विकल्पभेदादष्टावष्टकाश्चतुःषष्टिरिति बाभ्रवीयाः ॥ ४ ॥

आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेद, दन्तच्छेद, संवेशन, सीत्कृत, पुरुषायित, औपरिष्टक, इन आठोंके आठ आठ प्रकारके विकल्प (भेद) होनेके कारण सब मिलकर ६४ हो जाते हैं, यह बाभ्रवीयोंका मत है ॥ ४ ॥

आलिङ्गनेत्यादि । बाभ्रव्यस्य शिष्याः पुनरन्वर्थतामाहुः—अष्टधा विकल्पभेदादिति । एकैकस्याष्टधा विकल्पभेदादित्यर्थः । ततश्चाष्टौ सन्तोऽष्टगुणा अष्टावष्टकाश्चतुःषष्टिः ॥ ४ ॥

कामशास्त्रके आचार्य्य बाभ्रव्यके शिष्य इस विषयमें चतुःषष्टि संज्ञाको अन्वर्थक यानी यथानाम तथागुण बनाते हैं कि—ये आठ हैं, एक एकके आठ आठ भेद होनेके कारण चौंसठ होते हैं। अतएव चतुःषष्टि (६४) कहाते हैं, क्योंकि आठ आठ २ तरहके हैं तो आठसे आठका गुणा करनेपर ६४ हो ही जाते हैं ॥ ४ ॥

यह प्रायोवाद है ।

विकल्पवर्गाणामष्टानां न्यूनाधिकत्वदर्शनात्प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्ररतादीनामन्येषामपि वर्गाणामिह प्रवेशनात्प्रायोवादोऽयम् । यथा सप्तपर्णो वृक्षः पञ्चवर्णो बलिरिति वात्स्यायनः ॥ ५ ॥

एक २ के जो आठ २ विकल्प (भेद) किये हैं, वे पूरे ही आठ नहीं किन्तु कम ज्यादा भी देखे जाते हैं। सिवा चुम्बनादिक आठके उनसे इतरोंका भी प्रहणन, विरुत, पुरुषोपसृप्त और चित्ररत आदिक वर्गोंका इसमें प्रवेश

देखते हैं। इससे संप्रयोगके अंगके ये चौंसठ कलाएँ अंग हैं, यह प्रायोवाद है, जैसे कि सप्तपर्ण वृक्ष और पंचवर्ण बलि कहाता है। यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ५ ॥

विकल्पेति । न्यूनाधिकत्वदर्शनादिति—आलिङ्गनादीनां ये विकल्पवर्गा वक्ष्यमाणास्तेषां कस्यचिदूनत्वं दृश्यते पुरुषायितस्य, केषांचिदाधिक्यमेवा लिङ्गनादीनाम्, ततश्च नाष्टावष्टावेव, विकल्पवर्गाणामष्टानां न्यूनाधिकत्वदर्शनात् । अन्येषामपीति-प्रकृतत्वाच्चुम्बनादीनाम् । तेभ्योऽन्येषामपि प्रहणनविरुतपुरुषोपसृप्तचित्ररतादीनामिति सम्बन्धः । न तु प्रहणनादिभ्यश्चतुर्भ्योऽन्येषामपीति, तेषामसम्भवात् ।

आलिंगनादिकोंके जो भेद कहेंगे उनमें किसीके मतमें पुरुषायितको कम देखते हैं एवम् किसीके मतमें आलिंगन आदिके अधिक भेद देखते हैं, इस कारण वे आठकेआठ, आठ भेद करके चौंसठ नहीं बनाये जा सकते । क्योंकि जिन आठोंके आप आठ २ भेद करते हैं, उनके भेद कम और ज्यादा देखे जाते हैं एवम् चुम्बन आदिसे इतर (भिन्न) भी, प्रहणन, विरुत पुरुषोपसृप्त और चित्ररत आदिक देखे जाते हैं, उनका भी इसमें प्रवेश देखते हैं । सूत्रमें इतरोंका भी यह कहा है, इसका प्रहणन आदिके साथ सम्बन्ध है । यह बात नहीं है, कि प्रहणन आदिके चारोंसे भी अन्य दिखा रहे हों, क्योंकि इन चारोंसे भिन्न दिखाना असंभव है ।

इहेति—अष्टवर्गे प्रवेशनात्—एतान्यपि हि संप्रयोगोऽपेक्षते । ततश्च नाष्टावेवाष्टधा । कथं तर्ह्युक्तमित्याह । प्रायोवादोऽयमिति—प्रायिकमेतद्वचनम् । कथमित्याह—यथेति, पर्णानां न्यूनत्वेऽपि पर्णानां च बहुत्वेऽपि बाहुल्येन क्वचिद्दर्शनात्तद्व्यपदेशो रूढिवशात् । तथाष्टानां बाहुल्येनाष्टधा भेदात्तद्व्यपदेशेनाष्टावेवाष्टधेति ॥ ६ ॥

इनको भी इन आठ आलिंगनादिकोंमें प्रविष्ट किया है, क्योंकि संप्रयोगमें इनकी भी आवश्यकता पड़ती है, इस कारण ये आठों ही आठ प्रकारके नहीं हैं, किन्तु इनके साथ और भी हैं । चतुःषष्टि (६४) का व्यवहार प्रायिक है । कैसे है ? इस बातमें दृष्टान्त देते हैं कि जैसे पत्ते चाहे कम हों वा ज्यादा छतिवनके वृक्षको सप्तपर्ण ही कहेंगे । यही बात पंचवर्ण—पांच वर्णकी, बलि यहां है । ये नाम तो रूढिके कारण हैं इससे यह बात सिद्ध होगई कि,

आठोंसे अधिकोंके आठ २ प्रकारके भेद हैं, इस कारण आठसे आठको गुणा करके व्यवहार नहीं किया है। केवल रूढि संज्ञा है, इस कारण किया है॥५॥

चतुःषष्टिका प्रतिपादन ।

तत्र शास्त्रस्य चतुःषष्टया प्रस्तुतत्वात्कलासमूहस्य च विद्यासमुद्देशे समुद्दिष्टत्वात्पाञ्चालिकी चतुःषष्टिमाह—

चौंसठ अवयववाले शास्त्रके प्रस्तुत होनेसे एवम् चौंसठ कलाओंको विद्यासमुद्देश प्रकरणमें कह देनेके कारण, अब पांचालिकी चौंसठ कलाओंको कहते हैं—

आलिंगनके प्रथम कहनेका कारण ।

तत्रालिङ्गनपूर्वकत्वाच्चुम्बनादीनामालिङ्गनविचारा उच्यन्ते । विचाराश्च कालस्वरूपाभ्याम् । तत्रालिङ्गनमसमागते समागते च । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

इनमें भी पहिले आलिंगन होकर पीछे चुम्बन होता है इस कारण पहिले आलिंगनके विचार करते हैं, कि किस आलिंगनका कौनसा स्वरूप एवम् क्या समय है। आलिंगन मिले हुए और विना मिले दोनोंके साथ होता है। इनमें सबसे पहिले विना मिलेके साथ होनेवाले आलिंगनोंका स्वरूप, एवम् समय कहते हैं—

विना मिले हुओंके आलिंगनोंके नाम ।

अपनी तरफ खींचकर फिर दूसरे उपचार प्रयुक्त किये जा सकते हैं, अतः आलिंगनोंमें सबसे पहिले विना मिले व्यक्तिको अपनी ओर खींचनेके ही आलिंगन कहते हैं कि—

तत्रासमागतयोः प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमालिङ्गनचतुष्टयम् । स्पृष्टकम्, विद्धकम्, उद्घृष्टकम्, पीडितकम्, इति ॥ ६ ॥

जो पहिले नहीं मिले हैं उनमें परस्पर प्रीतिकी पहिचानको बढानेके लिये, चार आलिंगन होते हैं। वे स्पृष्टक, विद्धक, उद्घृष्टक, पीडितक, ये हैं॥६॥

असमागतयोरिति—असंघटितपूर्वयोः । संघटितयोः । प्रीतिलिङ्गद्योतनार्थमिति—अनुरागस्य लिङ्गिनः स्पृष्टकादि लिङ्गम्, तत्प्रकाशनात् । तदभियोगकाले द्रष्टव्यम् । स्पर्शगोचरे सति । तदभावे सति संक्रान्तकमाभियोगिकं वक्ष्यति॥६॥

जो पहिले संघटित नहीं हुए उनके परस्परके सामीप्यमें अनुरागको प्रकट करनेके लिये, ये आलिंगन होते हैं, क्योंकि इनसे अनुरागकी पहिचान हो

जाती है । (अत एव अनुराग लिंगी और ये उसके लिंग हैं) इन आलिं-गनोंका प्रयोग स्त्रीको अपनी ओर खींचती बार किया जाता है । यदि स्पर्शका विषय है तो ये होते हैं, यदि नहीं स्पर्श हो सकता हो तो उस स्थलके लिये संक्रान्तक आभियोगिक अगाड़ी कहेंगे ॥ ६ ॥

सर्वत्र संज्ञार्थेनैव कर्मातिदेशः ॥ ७ ॥

सब जगह जिसका जो नाम रखा है उसीसे उसमें होनेवाले कामको कह दिया है ॥ ७ ॥

सर्वत्रेति–चुम्बनादिष्वपि । संज्ञार्थेन कर्मातिदेश इति–अन्वर्थतां दर्शयति । स्पृष्टकादिसंज्ञानां प्रवृत्तिनिमित्तार्थः स्पर्शनादिकः, तेनैव कर्मातिदेश इदमेव कार्यमिति ॥ ७ ॥

आलिंगन चुम्बनादिकोंमें जिसका जो नाम है उसमें वही बात है क्योंकि नाम, जैसा है वैसा ही गुण है । ये रूढि संज्ञा नहीं हैं किन्तु यौगिक हैं । स्पृष्ट-कादिक संज्ञाओंके होनेका कारण छूना आदिक है, उसीसे यह निर्देश हो गया है कि क्या करना चाहिये । जिसमें छुआ जाय वह स्पृष्टक कहाता है । ताडित करना विद्धक कहाता है । ऊपर घिसनेका नाम घृष्टक है । अच्छी तरह रिगड़नेको 'पीडितक' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्पृष्टक ।

संमुखागतायां प्रयोज्यायामन्यापदेशेन गच्छतो गात्रेण गात्रस्य स्पर्शनं स्पृष्टकम् ॥ ८ ॥

जिसके पानेके लिये प्रयत्न चालू हो यदि वह सामने आ रही हो तो किसी बहाने चाहनेवालेका शरीर उसको शरीरसे छुवा देना 'स्पृष्टक' आलिंगन है ॥ ८ ॥

संमुखागतायामिति–नायिकायामभिमुखमागतायाम् । प्रयोज्यायामिति–आलि-ङ्गनादि प्रयोजयितुं तत्र वा प्रयोक्तुं न शक्यते । अन्यापदेशेनेति–अन्यदपदि-श्यागच्छतः प्रयोक्तुः, यथान्यो न जानाति बुद्धिकारितमस्येति । गात्रेण स्वस्य गात्रस्य प्रयोज्यायाः स्पर्शनमिति संज्ञात्वेन कर्मातिदिशति । स्पृष्टकमिति 'नपुं-सके भावे क्तः' पश्चात् 'संज्ञायां कन्' । एवमुत्तरत्रापि योज्यम् । अस्याः संमुखागतेन नायकेनापि ॥ ८ ॥

वह नायिका सामने आ रही हो जिसपर कि आलिंगनादि प्रयोग किये जा सकें, प्रयोग करनेवाला किसी बहानेसे, इस प्रकार चलता हुआ कि कोई दूसरा न जान सके, कि—इसने जानकर छूआ है । अपने शरीरसे उसके शरीरको छू दे; इसे स्पृष्टक कहते हैं । इसका जो स्पृष्टक नाम रखा है इसका स्पर्शनसे विवरण करते हुए उसका काम व अर्थ परिस्फुट कर दिया है, कि इसमें स्पर्श होता है । पुरुषकी तरह नायिका भी अपने सामने आते हुए नायकसे इसो रीतिसे स्पर्श कर सकती है ॥ ८ ॥

अन्य आचार्य्य ।

रतिरहस्यमें आलिंगनाधिकारमें कहा है कि—

" यद्योषितः संमुखमागताया अन्यापदेशाद् व्रजतो नरस्य ।
गात्रेण गात्रं घटते रतज्ञा आलिंगनं स्पृष्टकमेतदाह ॥ "

इसका अर्थ वही है जो कि सूत्रका किया गया है । पंचसायकमें स्पृष्टक, विद्धक, उद्घृष्टक और पीडितक, ये चार आलिंगन नहीं रखे, किन्तु अगाड़ीके सभी आलिंगन उसमें हैं । अनंगरंगमें भी यह आलिंगन नहीं है । नागरसर्वस्वके २४ वें परिच्छेदके चौथे श्लोकमें कहा है कि—" संस्पर्शपूर्वमबलापरिरम्भणं यत् । तत् स्पृष्टकं मुनिजनैः कथितं पुराणैः ॥ " इसके टीकाकार महाराज जगज्ज्योतिर्मल्लने कुछ भी परिस्फुट नहीं किया है, किन्तु उसपर टिप्पणी करनेवाले तनुसुखरामजीने ' संस्पर्शम् ' इसपर लिखा है कि—" संस्पर्शः मिषतः परगात्रेण स्वगात्रघटनम्, तत् पूर्वम् आदौ यस्मिन्, तत् संस्पर्शपूर्वम् " यानी बहानेसे अपने शरीरको दूसरेके शरीरसे लगा देनारूप संस्पर्श पहिले ही पहिल हुआ हो जिसमें वह संस्पर्शपूर्व है । इस अर्थके होनेसे नागरसर्वस्वके वाक्यका भी वही अर्थ हुआ जो कि सूत्रार्थमें दिखा चुके हैं । किन्तु इस वाक्यका अर्थ करतीवार ना० स० के टीकाकार तथा संशोधक श्रीमान् पं. राजधर झा काव्यतीर्थ और आयुर्वेदाचार्य्य श्रीभगीरथजी स्वामी इसी आलिंगनमें दोनोंको अच्छीतरह एक दूसरेका स्पर्श करा देना चाहते हैं ।

---

१ तुदादि परस्मैपदी ' स्पृश स्पर्शने ' धातुसे ' नपुंसके भावे क्तः ३–३–११४ ' इस सूत्रसे ' क्त ' प्रत्यय होकर स्पृष्ट शब्द बना है । पीछे 'संज्ञायां कन् ५–३–८७' इससे स्पृष्टसे 'क' होकर ' स्पृष्टक ' बन जाता है । इसी तरह ' विध ' से ' क्त ' और ' कन् ' होकर विद्धक तथा उद् उपसर्ग पूर्वक ' घृषु संघर्षे ' से 'क्त' और ' कन् ' होकर ' उद्घृष्टक ' शब्द बनता है एवम् 'पीड' से ' क्त ' और ' कन् ' होकर ' पीडितक ' बनता है ।

काव्यमें इसका प्रयोग ।

" स तत्कुचस्पृष्टकचोष्टिदोर्लता चलद्दलाभव्यजनानिलाकुलः ।
अवाप नानानलजालशृङ्खला निबद्धनीडोद्भवविभ्रमं युवा ॥ "
(नै. १२-६३)

वह युवा जिस पंखा करनेवालीको देखकर कामार्त हुआ था वह, पंखा करतीवार पंखेवालीके स्तनमण्डलके 'स्पृष्टक' आलिंगनमें परिपूर्ण चेष्टा करनेवाले, उसके हाथोंके चलाये हुए, उस पंखेकी हवासे आकुल हो गया । इससे उसकी ऐसी दशा हो गई, जैसी पिंजड़के पक्षीकी हुआ करती है यानी स्पृष्टक आलिङ्गनमें लगे हुए हाथोंकी हवा लगनेसे उसने रंग तो हाथोंका ही अपना मान लिया पर लज्जाके मारे अधिक चेष्टा नहीं कर सका, मन मारकर रह गया । यहां श्रीहर्षने कामसूत्रके ' स्पृष्टक ' आलिंगनका प्रयोग किया है ।

विद्धक ।

प्रयोज्यं स्थितमुपविष्टं वा विजने किंचिद्गृह्णती पयोधरेण विध्येत् । नायकोऽपि तामवपीड्य गृह्णीयादिति विद्धकम् ॥ ९ ॥

नायिका जिसे पाना चाहती है, वह एकान्तमें बैठा या खड़ा हो, उस समय किसी वस्तुके रखनेके बहाने, अपने सीनेको उससे छुवा दे एवं नायक भी उसे विधिपूर्वक भींचकर पकड ले । यह विद्धक कहाता है ॥ ९ ॥

नायिका प्रयोक्त्री प्रयोज्यं नायकं स्थितमुपविष्टं वा न गच्छेत् । तत्प्रयोक्तुमप्रयोगात् । न संविष्टम् । असंगतत्वात् । विजने, अन्यत्र तु स्तनप्रदर्शनस्यापि दुर्लभत्वात् । अथ व्यधनोपायमाह--किंचिदिति । तद्धस्तात्तत्समीपे वा किंचिदर्थजातमाददाना । पयोधरेणेति । यथासंभवं प्राप्तेष्वङ्गेषु सा तमाक्षिपेदित्यर्थः ।

चाहनेवाली नायिका जिसे चाहती है वह प्यारा यदि खड़ा वा लेट रहा हो तो न जाय, क्योंकि उस समय उसपर इस कामके करनेका मौका नहीं है । यदि वह तकिया आदिके सहारे बैठा हो तो भी उसपर इसका प्रयोग होना कठिन है । प्रयोग करतीवार एकान्त हो, क्योंकि विना एकान्तके सीनेका दिखाना भी तो कठिन है । सीनेसे ताडित करनेका उपाय बताते हैं- कि या तो उसके हाथसे या उसके एक पाससे किसी चीजको लेती हुई अपने उभरे हुए सीनेसे जो नायकका अंग लग जाय उसे स्तनोंसे रिगड़ दे ।

नायकोऽप्यपविध्यमानस्तां तथा बहुशो व्याप्रियमाणां पार्श्वयोस्तद्भावित्वात्स्तनप्रहणनस्य । स्वेनांसकूटेनापविध्येदिति । वक्षसि पृष्ठे पार्श्वयोरेकेन बाहुपाशेन पुरस्ताद्द्वाभ्यां पृष्ठतश्च प्रतिनिवृत्ताभ्यामवपीडय गृह्णीयात् यथाकथंचिदनुरागं मयि यदि प्रकाशेत मामपविध्यतीति एवं च द्वयोः स्तनस्यानल्पवदन्तःप्रविष्टत्वाद्विद्धकं भवतीति ।

उसके स्तनोंका बींधा हुआ नायक भी बहुतबार इस प्रकार कर चुकी हुई नायिकाको अपने कंधोंसे छू दे या उसकी बगलमें कन्धा मार दे, क्योंकि इसके बाद सीनेपर हाथ मारा जाता है । यदि एक हाथसे उसे मसलकर पकड़ना हो तो सीनेपर, पीठमें और बगलमें एकहाथसे गुलगुली आदि करके व्यथित करे एवम् सामनेसे ग्रहण करना हो तो दोनों हाथोंको बगलोंमें होकर पीठकी तरफ ले जा, उसे अपने हृदयसे लगा ले । यह समझकर कि इसने जो पहिले अपना सीना मेरेसे चाहसे प्रेरित होकर लगाया था कि यह भी किसी तरह अपना प्रेम मुझपर प्रकट करे । आलिंगनके समय दोनोंके सीने वड़ेकी तरह एक दूसरेके भीतर घुस जानेके कारण इसे 'विद्धक' कहते हैं ।

क्षेपणं तु केवलमपविद्धकं नाम तदेकत्वादत्रैवागतम् । अस्य कर्मणीव प्रयोक्त्री । विद्धकस्योभयजन्यत्वाद्द्वावपि । तथा चोक्तम्—' विचेष्टितापविध्येत कामिनी स्तनमालिनी । विद्धकेनेतरस्तत्र कचाकर्षणकर्मणि ॥ ' इति ॥ ९ ॥

जहां केवल नायिका ही अपनी ओरसे अपना काम करे वह 'अपविद्धक' है, यह भी इसके भीतर गतार्थ हो जाता है । पर ' विद्धक ' दोनोंसे होता है, इस कारण इसके प्रयोग करनेवाले दोनों हैं । यही कहा भी है कि— " वड़े २ स्तनोंपर लहलहाती हुई मालावाली कामिनी चाहकर केवल आप ही स्तनोंसे अपविद्ध करे वह ' अपविद्धक ' है । यदि दूसरा भी उसके सीनेको अपने सीनेसे लगा ले तो यह ' विद्धक ' हो जाता है । इस 'विद्धक' का बालोंके खींचनेमें भी प्रयोग देखा जाता है ॥ ९ ॥

दूसरोंके साथ समन्वय ।

रति०—" यद् गृह्णती किंचन वंचिताक्षं स्थितोपविष्टं पुरुषं स्तनाभ्याम् ।
नितम्बिनी विध्याति तां च गाढं गृह्णात्यसौ विद्धकमुच्यते तत् ॥

यह श्लोक इसी सूत्रका अनुवाद मालूम होता है क्योंकि इसका वही अर्थ है जो कि हम सूत्रार्थमें ऊपर लिख चुके हैं । अन्तर केवल इतना ही है कि कोक-

महाराज नायिकासे इतना और अधिक चाहते हैं कि नायकके शरीरसे अपना सीना आँख बचाकर लगाये। यह बात यद्यपि सूत्रने साक्षात् नहीं कही, पर हम इस चमत्कारको भी सूत्रमें पा लेते हैं। सूत्रके 'स्थितमुपविष्टं वा'–खड़े या बैठे, इस टुकड़ेको लेकर जयमंगलामें जो यह कहा है कि–" वह प्यारा यदि खड़ा, बैठा या लेट रहा हो तो न जाय" यह इसी श्लोकके 'स्थितोपविष्टम्' के भावको लेकर कहा है, क्योंकि जब वह खड़ा होकर बैठता हो उसी समय नायिकाका भी किसी बहाने वहां नीचेको झुकना हो तब सहजमें ही नायिकाके स्तन उससे लग सकेंगे। अनंगरंगमें तो–

" स्थितं पतिं मीलितनेत्रयुग्मं विध्यत्युरोजेन तु यत्र कान्ता।
गृह्णात्यसौ तामपि विद्धकाख्यमालिङ्गनं तन्मुनिभिः प्रणीतम् ॥"

यह विद्धकाका लक्षण किया है। इसमें पहिले लक्षणोंसे इतनी बात और अधिक है कि–" प्रेयसी जब नायकको अपने स्तनोंसे बींधे, उस समय वह आँख मींचकर खड़ा रहे" बाकी सब बातें एक हैं। इस खड़ेके विधानको देखकर तो सूत्रके 'खड़े या बैठे नायकको' यह अर्थ ठीक प्रतीत होता है, इन तीनोंकी एक वाक्यता करें तो यह अर्थ निकलता है कि—नायक असावधान खड़ा, बैठा या खड़ा होकर बैठता हो, इस दशामें नायिका उसे स्तनोंसे बींध दे यानी उसे अपने स्तनोंसे इस प्रकार छू दे कि उसे उत्तेजना मिले, यहां तक कि वह भी उसे भींचकर पकड़े। कैसे पकड़े इस बातपर जयमंगलामें यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है।

स्पृष्टक और विद्धकका उपयोग।

तदुभयमनतिप्रवृत्तसंभाषणयोः ॥ १० ॥

जिनमें अत्यन्त बातचीत नहीं है, उन्हींके ये दो आलिंगन होते हैं ॥१०॥

तदुभयमिति–स्पृष्टकं विद्धकं च। अनतिप्रवृत्तसंभाषणयोरेवासमागतयोः। तत्रोभयस्य साधयितुं शक्यत्वात्। अतिप्रवृत्तसंभाषणयोस्तु न सिद्धमेव। अप्रवृत्तसंभाषणयोः पुनः साधयितुमशक्यत्वादशक्यमेव विज्ञेयम् ॥ १० ॥

स्पृष्टक और विद्धक ये दोनों, जिनमें अधिक बोलचाल नहीं है, ऐसे ही विना मिले नायकनायिकाओंमें प्रवृत्त होते हैं, क्योंकि इसी दशामें दोनोंको सिद्ध किया जा सकता है। जिनमें अत्यन्त बातचीत है उनमें तो इनकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि वहां तो अनुराग प्रकट है ही। पर जिनमें बातचीत ही नहीं है उनमें कोई किसीको सिद्ध ही कैसे कर सकता है, इस कारण इनका भी प्रयोग असंभव है ॥ १० ॥

उद्घृष्टक ।

तमसि जनसंबाधे विजने वाथ शनकैर्गच्छतोर्नातिह्रस्वकालमुद्धर्षणं परस्परस्य गात्राणामुद्घृष्टकम् ॥ ११॥

अँधेरेमें, एकान्तमें, जहां मनुष्योंके ठठ्ठ लगते हैं, ऐसी सवारी, उत्सव और मेले आदिकोंमें, इन तीनों जगहोंमेंसे कहीं, धीरे २ जातेहुए, कुछ समय तक यथावकाश शरीरसे शरीरको रिगड़ते चलें तो इसका नाम 'उद्घृष्टक' है॥११॥

जनसंबाध इति । जनसंकुले । अन्धकारादिषु संभवात्प्रयोगसांकर्यम् । अतथागतैर्गमनमपि युक्तम् । एवं च सति नातिह्रस्वकालं चिरकालमुद्धर्षणं सिद्धं भवति । परस्परस्येति नायकगात्रेण नायिकागात्रस्य तद्गात्रेण चेतरगात्रस्य घर्षणमुद्घृष्टकमुभयजन्यम् । एकनिष्पाद्यं तु घृष्टकं वा मतोऽत्रैवान्तर्गतम्॥११॥

जनसंबाधका अर्थ, मनुष्योंकी भीड़ है। अँधेरे आदिमें इस आलिंगनके साथ हो सकनेवाले और २ भी प्रयोग हो सकते हैं। यदि धीरे २ न जा रहे हों तो वह भी जाना ठीक है। इस तरहकी परिस्थिति होनेपर अत्यन्त जलदी नहीं, किन्तु देर तक अंगोंका संघर्ष सिद्ध हो सकता है। नायकके शरीरसे नायिकाके शरीरका एवम् नायिकाके शरीरसे नायकके शरीरका घिसना 'उद्घृष्टक' है, अतएव यह दोनोंसे होता है। यदि नायक और नायिका इन दोनोंमेंसे एक इस कामको करे तो वह 'घृष्टक' है वह भी इसके भीतर आ जाता है॥ ११ ॥

इसपर दूसरे आचार्य्य ।

रतिरहस्य—"यात्रोत्सवादौ तिमिरे घने वा, यद्गच्छतोः स्याच्चिरमङ्गसङ्गः । उदघृष्टकम् ॥"

इस लक्षणका मूल सूत्रके साथ एक अर्थ है, ये इस आलिंगनको अधिक समय तक चाहते हैं। यदि इनकी चाहको सूत्रके चश्मेसे देखें तो यह तात्पर्य होगा, कि जवतक किसीकी दृष्टि पड़नेकी संभावना न हो तवतक तो यात्रा मेले आदिकोंमें इस आलिंगनको करता रहे एवम् एकान्तमें उतने समय तक करे जवतक कि निर्भयता और सरसता रहे। इसकी देरका मतलब एक लम्बे अर्शेसे नहीं है। अनंगरंग, नागर सर्वस्व और पंचसायकमें यह आलिंगन नहीं दिखाया है।

पीडितक।

तदेव कुडयसंदंशेन स्तम्भसंदंशेन वा स्फुटकमवपीडयेदिति पीडितकम् ॥ १२ ॥

यही उद्घृष्टक आलिङ्गन, यदि भींत या खंभके सहारे हो तो, शरीरोंकी रगड़ोंसे परस्परका पीडन होनेके कारण 'पीडितक' कहाता है ॥ १२ ॥

तदेवेति । उद्घृष्टकं पीडितकं भवति । कथमित्याह—कुडयसंदंशेनेति । संदंश उभयतो ग्रहणम् । अर्थान्नायकः परतः कुडयं स्तम्भो वा । तेन स्फुटकं दृढमवपीडिते सति तत्पीडितकमेकजन्यमेव द्विविधम् ॥ १२ ॥

वही उद्घृष्टक, पीडितक बन जाता है, कैसे बनता है? इसी प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं कि दीवारके संदंशसे वा खंभके संदंशसे परली तरफ यह संदंशका अर्थ है । यह भीत और खंभ दोनोंके साथ लगा हुआ है । इसका तात्पर्य्य यह है कि जिधर नायक इसका प्रयोग करे उधर ही नायिका भीत या खंभेके सहारे खड़ी हो, वहां अपने सीनेसे नायिकाके सीनेको रिगड़ देनेसे यह 'पीडितक' होता है । यह एकजन्य भी दो तरहका है । एक तो ऐसा पीडन जिससे कि उसे इसका पता चल जाय एवम् दूसरा वह जो अच्छी तरह किया जाय ॥ १२ ॥

रतिरहस्य—"तत् पुनरेव कुडये ।
निपीडनात् पीडितसंज्ञकं स्यात् ॥"

इसका तात्पर्य्य वही है जो कि सूत्रका है । अन्तर केवल इतना ही है कि ये खंभका जिकर न कर, केवल भीतके सहारे ही इस आलिंगनको चाहते हैं ।

पर, नागरसर्वस्व—"कुडयाश्रयेषु परिपीडनमंगनायाः ।
कुर्य्यात् पतिर्यदिह पीडितमेतदाहुः ॥"

के ये वाक्य तो इस भावको और भी बढ़ाये देते हैं कि—"भीत या अन्य सहारोंपर जो पति, प्यारीका पीडितक आलिंगन करे" इसमें सहारोंके कहनेसे खंभ आदि सभीका ग्रहण हो जाता है । यह आलिंगन अनंगरंग और पंचशायकमें नहीं है ।

उद्घृष्टक और पीडितकके उपयोग ।

तदुभयमवगतपरस्पराकारयोः ॥ १३ ॥

ये दोनों उनमें होते हैं जो एक दूसरेके दिलको टटोले बैठे हैं, कि यह मुझे चाहती है, मैं इसे चाहता हूं ॥ १३ ॥

उभयमुद्घृष्टकं पीडितकं च द्रष्टव्यम् । अवगतपरस्पराकारयोरिति गृहीतान्योन्यभावयोरसमागतयोः । पूर्वस्मादनयोरधिकोऽयक्रमत्वात् । अगृहीताकारयोस्तु नैवेत्यर्थोक्तम् ॥ १३ ॥

उद्घृष्टक और पीडितक आलिंगन, इन दोनोंके विना मिले व्यक्तियोंमें होते हैं, जो कि रंगढंगोंसे एक दूसरेके हृदयका पता पा गये हैं, कि इस दिलमें मेरी चाह है। पाहिली दशासे ये अधिक आगे बढ़ चुके हैं, इस कारण उनके उपाय भी पाहिलेसे अगाड़ी बढ़ गये हैं, किन्तु दिलके जाचे विना इनका प्रयोग नहीं होता ॥ १३ ॥

रतिरहस्य यही कहता है कि—" भाव प्रबोधार्थमजातरत्योः ।

चतुर्विधोक्ता परिरम्भलीला ॥ "

जिन्होंने आपसमें मिलकर रतिसुख नहीं भोगा, जो कि एक दूसरेके हृदयको टटोलनेमें ही लगे हैं, उनके दिलोंका पता ये आलिंगन उन्हें दे देते हैं। यही इन चारों आलिंगनोंका कार्य्य है।

सहवासकालके आलिंगन ।

लतावेष्टितकं वृक्षाधिरूढकं तिलतण्डुलकं क्षीरनीरकमिति चत्वारि संप्रयोगकाले ॥ १४ ॥

लतावेष्टितक[1], वृक्षाधिरूढक[2], तिलतण्डुलक[3] आर नीर[4] क्षीरनीरक, ये चार आलिगन संप्रयोगके होते हैं ॥ १४ ॥

संप्रयोगकाल इति। कृतार्द्रीकरणयोस्तु समागतयोः संप्रयोगः । तत्काले चत्वार्युपगूहनानि । तत्राद्ययोरेकजन्यत्वेऽपि नायिकैव प्रयोक्त्री । तदनुरूपत्वात् । शेषयोरुभयजन्यत्वादुभावपि ॥ १४ ॥

---

१ जिस तरह लता लिपटती है उस तरह लिपटना ।

२ जैसे वृक्षपर चढ़ते हैं उस तरह चढ़ना ।

३ चावल और तिलकी तरह जो आलिंगन करते हुए जुदे दीखें ।

४ जैसे दूध पानी मिल जाते हैं, उसी तरह मिलते हों ।

५ रतिरहस्य—" संजातरत्योस्त्वनुरागवृद्ध्यै,
बुधैरसावष्टविधोपदिष्टा ॥

जो कि आपसमें मिलकर मिलनेकी यहारमें वह चुके हैं, उनके आपसके अनुरागको वढ़ानेके लिये लतावेष्टितकसे लेकर एक अंगके आलिंगन तक आठ आलिंगन कहे गये हैं। ये आठों आलिंगन रतिरहस्य, अनंगरंग, पंचसायक और नागरसर्वस्व आदि सभी ग्रन्थोंमें देखनेको मिलेंगे ।

जबतक नायिकाकी तबियतके चलनेके कारण, उसका गुप्तअंग भीतरसे न भीग लेगा एवम् पुरुष तयार न होगा तबतक वे आपसमें सहवास न कर सकेंगे, इस कारण उस दशाको लानेके लिये आलिंगन होते हैं। इन चारोंमेंसे पहिले दो लतावेष्टितक और वृक्षाधिरूढक आलिंगन एकसे होनेवाले हैं तो भी इनका प्रयोग नायिका ही करती है, क्योंकि ये उसीके योग्य हैं। बाकी तिलतण्डुलक और नीरक्षीरक ये दो आलिंगन स्त्री और पुरुष दोनोंसे ही होते हैं, इस कारण दोनो ही इनका प्रयोग कर सकते हैं॥ १४॥

लतावेष्टितक।

लतेव शालमावेष्टयन्ती चुम्बनार्थं मुखमवनमयेत् । उद्धृत्य मन्दसीत्कृता तमाश्रिता वा किंचिद्रामणीयकं पश्येत्तल्लतावेष्टितकम् ॥ १५ ॥

जैसे कि लता, शालसे लिपटती है उसी तरह पुरुषसे लिपटती हुई उसके मुँहको चूमनेके लिये उसके मुखको नवाये उसके रागको बढ़ाकर मन्द सीतकार करे अथवा उसीसे लिपटी हुई किसी सुन्दर चिह्नको देखे। यह लतावेष्टितक' आलिङ्गन है॥ १५॥

लतेव शालमिति। यथा लता वृक्षमावेष्टयते तद्वन्नायिका नायकमूर्ध्वस्थितमभिमुखं कक्षयोः कण्ठे बाहुलताभ्यामावेष्टयेति चतुर्विधं लतावेष्टितकम्। चुम्बनार्थिनी यत्तु मुखमवनमयेत्, नायकवृक्षस्योच्चत्वात्। तथा श्लिष्टाभ्यामेव बाहुपाशाभ्यां तच्छरीरावनमनान्मुखमवनमितं भवति। अनेन प्रयोगे फलं दर्शयति। अत्र प्रयोज्यं चुम्बनफलस्य विवक्षित्वान्मौलम्। प्रयोगस्य, यद्रागस्य जननं वर्धनं च।

जैसे कि लता, वृक्षसे लिपटती है, उसी तरह नायिका सामने ऊंचे खड़े हुए नायककी काखों और गलेमें लता जैसे कोमल हाथोंको लिपटाकर लिभड़ी हुई बाहोंके फन्देसे उसकी गर्दनको झुकाकर इसका मुँह नीचेको झुकाये। क्योंकि नायकरूपी कल्पवृक्ष ऊंचा है, विना शरीरके नवाये मुख नीचा नहीं हो सकता तथा विना मुख नीचा हुए चूंबा भी नहीं जा सकता। चुम्बनके लिये जो मुखके नवानेके लिये कहा है इससे लतावेष्टित आलिंगनका फल दिखा दिया है, कि इस प्रकार चुम्बन करे। आलिंगनसे जब कुछ राग प्रदीप्त कर लिया जाता है तो फिर चुम्बनसे उसे और भी प्रदीप्त किया

बढ़ाया जाता है । यह चुम्बनका फल चुम्बनके प्रकरणमें बतायेंगे । यह फल ही इस आलिंगनके साथ चुम्बन करनेका मूल है ।

मन्दसीत्कृतेति । सीत्कृतं वक्ष्यति । तन्मन्दं यस्या । उल्वणस्य रागकालवत्त्वात् । अनेन प्रयोगसंस्कारमाह । प्रयोगान्तरपरिष्कृतं सुतरां मनोहारि स्यात् । तमाश्रिता वेति द्वितीयं फलम् । यद्वा तथैव नायकमाश्रिता अन्यत्र वामलेख्यादेः स्तनमुखस्य दशनपदाङ्कितस्य वा रामणीयकमुन्मुखी पश्येत्तल्लतावेष्टितमिव लतावेष्टितकम् । प्रतिकृतौ कन् ॥ १५ ॥

चुम्बनकी तरह, सीत्कार भी आलिंगनसे भिन्न है, यह भी रागको पैदा करने और बढ़ानेके लिये किया जाता है । चूमकर सीकारें ले । इसी अधिकरणके अध्यायमें सीत्कार कहे हैं । सीत्कार इस प्रयोगको सजानेके लिये किया जाता है, क्योंकि दूसरे प्रयोगसे उचित रीतिसे सजा देनेपर अच्छा लगता है । आलिंगनमें चुम्बन और सीत्कार कह देनेसे तो एक फल हो गया । इसके बाद जो यह कहा जा रहा है कि–' अथवा उक्त आलिङ्गन करती हुई किसी सुन्दर वस्तुको देखे ' यह दूसरा फल है । वस्तुका देखना, नायकके साथ उक्त आलिङ्गन किये हुए ही होना चाहिये । वह सुन्दर वस्तु और कुछ नहीं, किन्तु स्तनके मुख मण्डलपर जो नायकके दाँतोंके निशान हों अथवा दूसरे अंगपर उसके नाखूनोंके निशान हों उनको टकटकी लगाकर देखने लग जाय । [नायकके सामने उसे इशारेसे जताकर देखनेसे उस पुरुषका राग प्रदीप्त हो उठता है कि ये मेरे किये हुए हैं ।] जैसे वृक्षका वेष्टन लता करती है उसी तरह नायिका पुरुषरूपी वृक्षका वेष्टन (लिभेड़ना) करती है, इसी कारण इसे ' लतावेष्टितक '[1] कहते हैं ॥ १५ ॥

इसीपर दूसरे आचार्य्य ।

"प्रियमनुकृतवल्ली विभ्रमा वेष्टयन्ती द्रुमामिव सरलाङ्गी मन्दसीत्का तदीयम् ।
वदनमुदितखेलाक्रन्दमाचुम्बनार्थं नमयति विनमन्ती तल्लतावेष्टितं स्यात् ॥"

रतिरहस्य कहता है कि–लताके विभ्रमकी नकल करती हुई शरीर सबल करके पतिके शरीरसे लताकी तरह लिभड़ जाय एवम् हलके सीकारें लेती हुई उसके मुखको चूमनेके लिये वारवार नवाये, ऊँचा नीचा करे। पतिका मुख भी चुपचाप न हो किन्तु उससे भी खेलकी ' ना, या, हैं, हैं ' आनन्दके साथ

---

१ ' लतावेष्टित ' शब्दसे ' इवे प्रतिकृतौ ' ५–३–९६ इस सूत्रसे ' कन् ' होकर ' लतावेष्टितक ' बन जाता है ।

निकल रही हो । इसी भावको अनंगरंगमें भी कहा है । इसतरह महाकवि कल्याणमल्ल और कोकने इस आलिंगनका फल और संस्कार तो कह दिया, किन्तु स्तनादिकोंके चिह्नदर्शनोंको ये छोड़ गये हैं । पंचसायक और नागरसर्वस्वने इस आलिंगनको कहकर इसका चुम्बन तो साथ कहा, पर इसको खिलाने सीकारे और नाखून और दाँतोंके चिह्न नहीं बताये हैं । इससे यह बात सिद्ध होती है कि पीछेके कामशास्त्रके लेखकोंने कामसूत्रके ही भावको कहा है ।

"वल्लीव वृक्षं सरलाङ्गयष्टिः पतिं समालिङ्गति यत्र कान्ता ।
चुम्बेच्च रागात् कृतमन्दसीत्का प्रोक्तं बुधैर्वल्लरिवेष्टितं तत् ॥"

सूत्रसे इतनी बात अनंगरंगने सूत्राशयको लेकर अधिक कह दी है कि शरीरको सीधा रखकर यह आलिंगन करे ।

कविशेखरने–"ऊर्ध्वं भुजाभ्यां सरलाङ्गयष्टी क्षोणीरुहं वल्लिरिवाधिरुह्य ।
नारी प्रियं चुम्बति निस्तरङ्गा भवेल्लतावेष्टितसंज्ञकं तत् ॥"

इसको थोड़ीसी विधि कह दी है कि–'अपने शरीरको सीधा रखके दोनों हाथोंसे पतिके ऊपरका अंग तथा पैरसे उसका कटितट आक्रान्त करे एवम् निश्चलतासे प्यारेको चूमे' यह आलिंगन भी आमनेसामनेमें होता है, स्त्रीका एक पैर पुरुषके दोनों पैरोंके बीचमें हो दूसरा पैर पुरुषकी कमरमें लिभेड़ दिया हो, एक हाथ पुरुषकी एक कांखमें होकर पीठके पीछेसे दूसरे हाथकी कांखकी तरफ निकलगया हो दूसरा हाथ पुरुषके खवे या उसके पास हो एवम् पुरुष भी अपने दोनों हाथोंसे उसकी बाँथी भरे हुए हो तो यह 'लतावेष्टित' आलिंगन होगा । इसमें इतनी ही बात है जो आलिंगनमें कही जा सकती है; चुम्बन और सीत्कार इससे भिन्न कलाएँ हैं, इनसे यह आलिंगन खिल जाता है ॥

अनङ्गरंग–"उद्दामकामोन्मथितोऽङ्गनायाः,
संदंशितस्वोरुयुगेन यत्र । आपीडयेत् कान्त..."

इस श्लोकसे कामीकी प्रचण्डावस्थाका वर्णन करते हैं; जिसके आवेशसे वह अपनी जांघोंके बीचमें नायिकाकी जांघोंको देकर भींचता है ।

किन्तु कोकाजीने–"मनसिजतरलायाः, संभृतानङ्गरङ्गो,
यदि पतिरबलायाः पीडयत्यूरुयुग्मम् ।
दरदलितनिजोरुद्वन्दसन्दंशयोगात्,
तादिह मुनिमतज्ञैरुक्तमूरूपगूढम् ॥"

उस स्त्रीको भी मदनसे चंचल बताया है। बाकी सब सूत्रका ही अनुवाद है एवम् यह भी सूत्रके भावके आधारपर कहा है। कामकी तरङ्गोंसे चपल हुआ कामी कामसे इतराई हुई स्त्रीकी दोनों जांघोंको अपनी दोनों जांघोंके बीचमें देकर भींचे तो ऊरूपगूहन होता है। इसमें खड़े २ की ही हालतमें नायिका अपने भरको नायकके खवे और हाथ पकड़कर अपनेको थामती है। बैठे तथा लेटकर इस आलिंगनके करनेमें विशेष सुविधा है।

वृक्षाधिरूढक।

चरणेन चरणमाक्रम्य द्वितीयेनोरुदेशमाक्रमन्ती वेष्टयन्ती वा तत्पृष्ठसक्तैकबाहुर्द्वितीयेनांसमवनमयन्ती ईषन्मन्दसीत्कृतकूजिता चुम्बनार्थमेवाधिरोढुमिच्छेदिति वृक्षाधिरूढकम् ॥ १६ ॥

अपने एक पैरसे नायकके एक पैरको आक्रान्त कर दूसरेसे उसके उरुदेशको आक्रान्त वा वेष्टित करके, एक हाथ उसकी पीठपर लगा, दूसरेसे उसके कन्धेको नवा, मन्द सीकारेके साथ अव्यक्त शब्द करती हुई चुम्बनके लिये चढ़ना चाहे तो यह 'वृक्षाधिरूढक' कहाता है ॥ १६ ॥

चरणेनेति। स्वेन चरणेन नायकस्य चरणमाक्रम्य द्वितीयेन चरणेनोरुदेशपार्श्वभागेनाक्रमन्ती यथा जघनघटनस्थानं संश्लिष्टं स्यात्। तत्र वामदक्षिणभेदाद्विविधम्। वेष्टयन्ती वेति बहिर्नीत्वा द्वितीयभागमानमयेच्चरणमित्यर्थः। तदपि वामदक्षिणभेदाद्विविधम्। द्वाभ्यां च यदाक्रमणमूर्वोर्वेष्टनं तदुभयमपि वृक्षाधिरूढकमत्रैवान्तर्गतम्। सामान्यविधिमाह—तत्पृष्ठसक्तैकबाहुरिति। नायकपृष्ठे लतावेष्टनवल्लग्न एको बाहुर्वामो दक्षिणो वा यस्याः। द्वितीयेन बाहुना स्कन्धभागमवनमयन्ती। ईषदिति। अनुरागकालत्वात्। मन्दानि खिन्नानि श्वसितकादीनि यस्या इत्यर्थः। अनेन संप्रयोगसंस्कारमाह। अत्र सीत्कृतं सीत्करणमेव। कूजितस्य लक्षणं वक्ष्यति। चुम्बनार्थमेव न रामणीयकदर्शनार्थम्। मनागूरूव्यावृतस्यासंभवात्। अधरपल्लवचुम्बनेनोरुव्यत्यासेन प्रयोगफलम्। वृक्षाधिरूढकमिति पूर्ववत्॥ १६ ॥

अपने एक पैरको नायकके पैरपर रखकर, दूसरे पैर उरुके बगलकी तरफसे इस प्रकार चढ़े, जिससे कि जांघोंकी आपसमें लगनेकी जगह आप

समें चिपट जायँ । यह वाम और दक्षिण भेदसे दो प्रकारका है । दूसरे भागको बाहिर ले जाकर चरणको नवा दे, यह भी वाम और दक्षिण भेदसे दो तरहका है । जब दोनोंसे ही नायककी जांघोंको लपेटना हो तो ये दोनों भी वृक्षाधिरूढक इसीके अन्तर्गत हैं । प्रयुक्त किये जा सकते हैं । सामान्य विधि—बायाँ या दायाँ एक हाथ, नायककी पीठपर लताकी तरह लगा हो एवम् दूसरे हाथसे नायकके कन्धे नवा रही हो । अनुरागका समय होनेके कारण मन्द २ श्वसितकादिक सीत्कार कर रही हो । इससे इन्होंसे संप्रयोगका संस्कार कह दिया, क्योंकि इससे आलिंगनमें चमत्कार आ जाता है । यहां सीत्कृतका सीत्करण (सीकार) ही अर्थ है । कूजितके लक्षण सीत्कार प्रकरणमें कहेंगे । चुम्बनके लिये ही चढ़ना चाहे, सुन्दर चिह्नोंसे या सौन्दर्य्य दिखानेके लिये नहीं, क्योंकि जांघोंको थोड़ा चौड़ा करनेसे नहीं हो सकता । जांघोंके चौड़ानेसे ही झलकेगा । अधरपल्लवके चुम्बनसे और जांघोंके उलटा करनेसे प्रयोगका फल हो जाता है । पहिला जिस प्रकार सिद्ध किया उसी रीतिसे वृक्षाधिरूढक शब्दकी भी सिद्धि होती है ॥ १६ ॥

विशेषविधि—यह आलिंगन दोनोंके आमनेसामने होनेपर होता ह । स्त्री अपने एक पैरको नायकके पैरके ऊपर रखकर दूसरेको उसके घोटूपर टेक अपना उस पैरका घोटूँ मोड़ती हुई जो कि नायकके घोंटूपर टिका हुआ है एक हाथको उसकी पीठके पीछे तथा दूसरे हाथसे उसके कन्धे या कुहनीके ऊपर पकड़े, नायिकाका घोंटू मुड़कर नायकके जघनसे और जांघें नायककी जांघोंसे मिल जाती है, मुख नायकके मुखके पास इस प्रकार रहता है मानो मुख चूमनेकी तयारी कर रही हो । इस आलिंगनमें नायकका उरुभाग वहीं आक्रान्त होता है जिधरके पैरके घोंटूपर नायिका पैर रखती है । पैर क्रमशः दोनोंपर ही रखा जा सकता है, इस कारण इसके वाम और दक्षिण दो भेद हो जाते हैं । यह नायककी पीठ और खवेका सहारा लेकर दोनों घोंटुओंपर पैर टेककर भी किया जा सकता है पर वेष्टन न हो सकेगा ॥ १६ ॥

तदुभयं स्थितकर्म ॥ १७ ॥

ये दोनों आलिंगन खड़े हुएके हैं ।

तदुभयं स्थितकर्मेति । ऊर्ध्वस्थितयोर्यत्र योगः स्यात्, द्वाभ्यां रागजननार्थं तावदिदं कर्म ॥ १७ ॥

ऊपर खड़े हुओंका जहां योग हो वहां दोनोंजने राग पैदा करनेके लिये इसे करते हैं ॥ १७ ॥

* तिलतण्डुलक ।

शयनगतावेवोरूव्यत्यासं भुजव्यत्यासं च ससंघर्षमिव घनं संस्वजेते तत्तिलतण्डुलकम् ॥ १८ ॥

पलिंगपर लेटे हुए दोनों आपसमें जिह्वाजिह्वोके रूपमें इस तरह गाढ आलिङ्गन करें, जिसमें कि जांघें और भुजाएँ विपरीतरूपसे मिलें, इसका नाम 'तिलतण्डुलक' है ॥ १८ ॥

शयनगतावेवेति । अत्रोरुव्यत्यासं चेति क्रियाविशेषणम् । व्यत्यासो विपर्यासः । तत्र वामपार्श्वसुप्तायाः स्त्रिया ऊर्वन्तरे दक्षिणपार्श्वे सुप्तः पुमान्वाममूरुम्, दक्षिणकक्षान्तरे च वामभुजं प्रवेशयेत् । योषिदपि पुंसः । इत्येको व्यत्यासः । इतरपार्श्वसुप्ताया द्वितीयस्य संघर्षार्थमिव घनं निरन्तरं संस्वजेते स्त्रीपुंसावुपगूहेते इति । तिलतण्डुलकमिति ऊरुभुजानां तनुस्थानां तिलतण्डुलानामिवोर्ध्वस्थित्या संमिश्रणात् ॥ १८ ॥

सूत्रमें आये हुए 'ऊरुव्यत्यासम् और भुजव्यत्यासम्' ये दोनों 'संस्वजेते' इस क्रियाके विशेषण हैं । उरु (जंघा और जघन) तथा व्यत्यास विपर्यय यानी उलटेको कहते हैं, भुज हाथोंका नाम है । इसकी विधि यह है कि नायिका पुरुषके बांये एवम् पुरुष नायिकाके दांये ओर सो रहा हो, उस समय नायक अपनी बाई जांघको और जघनको नायिकाकी जाँघों (जघन) के बीच रख दे एवम् अपने बाँये हाथको नायिकाकी दाहिनी बगलमें दाँये हाथके नीचे होकर कर दे । इसी तरह स्त्री भी करे । एक तरफ स्त्री लेटी हो तो दूसरी तरफ पुरुष हो, वे दोनों मानों संघर्षके लिये कर रहे हों, इस प्रकार गाढ आलिंगन करें तो यह 'तिलतण्डुलक' कहाता है । इसके इस नामके रखनका कारण यह है कि शरीरपर पड़े हुए जांघ और हाथोंको तिल और चावलोंकी तरह ऊपर रखकर मिलते हैं ॥ १८ ॥

---

* क्योंकि आमनेसामने लेटे हुओंका इसीप्रकार आलिंगन हो सकता है । यदि नायिका जिधर थी उधर पुरुष होजाय एवम् जहां पहिले पुरुष था उस दायीं तरफ स्त्री लेट रही हो तो वह भी पुरुषकी तरह कर सकती है । यदि उधरसे करना चाहे तो इसका क्रम पुरुषसे उलटा होगा । यदि दोनों एक ही ओर मुख करके सो रहे हों, उस समय यह आलिंगन गतार्थ होता है ॥

इसीपर दूसरे आचार्य्य ।

'भुजगुह्यविपर्य्ययं मिथो, घटयेच्चेत् मिथुनं सुनिश्चलम् ।'

अनंगरंगने कामसूत्रके 'उरु' के स्थानमें 'गुह्य' का ग्रहण किया है, इसका पं० रामचन्द्रजी शर्म्माने टिप्पणीमें जघन अर्थ किया है। पञ्चसायकने भी-

'बाहूरुवक्षोजघनेन गाढमन्योन्यसंसक्तशरीरयष्टयोः ॥'

इसमें ऊरु और जघन दोनोंका ग्रहण किया है । नागर सर्वस्वमें कवि-शेखर पद्मश्रीजीने कहा है कि-

"तल्पे वितन्वदवगूहनकेलिमुच्चैर्यान्निस्तरङ्गमिथुनं घटयेत रागात् ।
रागातिरिक्तपरिवर्धितगौरवेण तत्कीर्तितं मुनिवरैस्तिलतण्डुलाख्यम ॥"

रागके अतिरेकसे बढ़े हुए गौरवके साथ जो शय्यापर आलिङ्गन करते हुए रागसे निश्चल मिथुन घटित करे, उसका नाम 'तिलतण्डुल' है । कामसूत्र-कारने जो शयनपरका इसका विधान बतलाया है, उसीके भावको तल्पपद परिस्फुट कर रहा है, कि निश्चलता शय्या ही पर हो सकती है, इस तरह अनङ्गरंगमें भी तल्प (शय्या) का ग्रहण हो ही जाता है । यही कारण है कि-

कोकाने-"असकृदपि विगाढाश्लेषलीलां वितन्वन्,
जनितजघनबाहुव्यत्ययं स्पर्धयेव ।
मिथुनमथ मिथोऽङ्के लीयते निस्तरङ्गम्,
निगदति तिलपूर्वं तण्डुलं तन्मुनीन्द्रः ॥"

इस श्लोकमें उक्त सूत्रका अनुवाद करतीवार सूत्रके शयनपदको छोड़, उसके अर्थको जनानेवाला निरतरंगपद डालते हैं। इसका और सूत्रका एक ही अर्थ है, सूत्रमें उरु और जघन दोनों ही चाहिये ॥

क्षीरजलक ।

रागान्धावनपेक्षितात्ययौ परस्परमनुविशत इवोत्सङ्गतायामभिमुखोपविष्टायां शयने वेति क्षीरजलकम् १९

रागके तीव्र उदयसे विवेक-हीन होनेके कारण आपसके लग जानेकी चिन्ता छोड़कर, एक दूसरेके भीतर घुसते हुओंके समान प्रतीत हों, इनका यह आलिंगन होता है । इसकी रीति यह है कि नायिका नायकके सामने नायककी गोदमें बैठ जाती है अथवा पलिंगपर लेटे २ ऐसा होता है इसका नाम 'क्षीरजलक' है ॥ १९ ॥

अनपेक्षितात्ययाविति । रागान्धत्वादनपेक्षितास्थिभङ्गदोषौ परिष्वजमानौ परस्परमनुप्रविशत इव । बाहुयन्त्रेणातिपीडनान्मृत्पिण्डाविव क्षीरोदकवच्च तादात्म्यं प्रतिपद्येते इव । यथोक्तम्—'भावासक्ताः कामुकाः कामिनीनामिच्छन्त्यङ्गेष्वम्भसीव प्रवेष्टुम्' इति । कथमिदं निष्पद्यत इत्याह—उत्सङ्गगतायामिति । नायकोत्सङ्गे बहिरूरू विन्यस्याभिमुखमुपविष्टायां सत्याम् । अत्र कक्षयोर्वै कक्षयोर्यथायोगं संश्लिष्टयोः कुचयोर्बाहुयन्त्रं स्यात् । शयने वेति । पार्श्वसुप्तयोरित्यर्थः । तिलतण्डुलकं पुनरत्रैव ॥ १९ ॥

अपने हाड़ोंको टूटनेकी इसी लिये चिन्ता नहीं करते हैं कि बढ़ा हुआ राग इसका विवेक नहीं रहने देता । आलिंगनमें इस प्रकार चिपटते हैं कि मानों एक दूसरेके वदनमें घुस ही जायँगे । हाथोंके बीचमें सीनेसे लगाकर आपसमें अत्यन्त भींचकर मिट्टीके दो पिण्डोंकी तरह या दूध पानीकी तरह एकहोगयेकी तरह लगते हैं । कहा भी है कि—" भावमें आसक्त हुए कामीजन कामिनियोंके अंगोंमें इस तरह घुसना चाहते हैं जैसे कि, पानीमें घुसते हैं " यह होगा कैसे ! इसके उत्तरमें कहते हैं कि जब नायिका, नायककी गोदमें नायकके सामने बैठ, अपने दोनों पैरोंको जांघों तक उसकी बगलोंमें निकाल करके नायिकाके हाथ, नायककी काखोंमें होकर पीठकी ओरसे आपसमें गफ गये हों तथा उसके सीने अपने लगनेकी जगह लग गये हों । यदि शयनमें हो तो आमनेसामने सो रहें हों और इसी तरह यथासंभव लिपटते हों । इस तरह यह आलिंगन तो यानी बैठे और लेटे दोनों तरह हो सकता है, पर ' तिलतण्डुलक ' तो लेटकर ही होता है ॥ १९ ॥

अन्य आचार्य ।

"अभिमुखमुपविष्टा योषिदङ्केऽथ तल्पे रचितरुचिरगाढालिङ्गनो वल्लभश्च ।
प्रसरदसमरागावेशनश्यद्विचारौ विशत इव मिथोऽङ्गे क्षीरनीरं तदाहुः ॥"

सूत्रका अविकल अनुवाद किया है । ये इसको अंक तल्प दो जगह बताते हैं । शय्यापर पार्श्वसुप्तोंका होता है यह टीकाकारने परिस्फुट कर दिया है । इसका अर्थ सूत्रका अर्थ समझना चाहिये । किन्तु अनंगरंग इस आलिंगनको कुछ दूसरी ही रीतिसे बताता है कि–" अङ्केऽथ तल्पे पतितं सुखस्था कान्ता समालिङ्गति यत्र गाढम् । मिथो प्रवेशं कुरुते निजाङ्गैः स्यात् क्षीरनीरं परिरम्भणं हि ॥" इसका अर्थ किसी महाराष्ट्रने निज देश भाषामें यह किया है कि–' पति पलँगपर किसी तरह पड़ा हो; स्त्री उसके सामने पड़कर उससे चिपट जाय ' पर ये. महाशय अंगका अर्थ छोड़ गये हैं । हमें श्लोकमें

'अङ्केऽथ' देखकर निश्चय होता है कि पतिकी गोदमें सामने बैठकर जो आलिंगन होता है उसकी पूरी रीति तो कामसूत्रने बता दी है; यह शय्यापरके भेद मात्र को बताता है कि शय्यापर पति लेट रहा हो तो आनन्दमें निमग्न हुई स्त्री पहिले उसका सामनेसे आलिंगन करने लग जाय एवम् पति भी एकदम उससे चिपट जाय, किसी लगने आदिके विचारको छोड़कर, तो यह नीरक्षीर आलिंगन है। नागरसर्वस्व इसे अंक और शय्या दोनों स्थलोंमें स्त्रीका किया मानता है कि–

"अङ्के स्थिताऽथ शयने मृगशावकाक्षी गात्रेऽपि यस्य विशती वनितानुरागात्।
गाढोपगूढहनवशेन निरन्तरं यत् संश्लेषमाहुरिह येन जलाभिधानम् ॥"

अंकमें वा शय्यापर मृगनयनी वनिता अनुरागके वश हो निरन्तर गाढालिंगन इस प्रकार करे कि पतिके शरीरमें ही घुस जाना चाहती है, तो उसे 'नीरक्षीर' कहते हैं। हो सकता है, इसे स्त्री भी अकेली कर सकती है एवम् पुरुष भी अकेला कर सकता है किन्तु दिग्दर्शी कामसूत्रने मुख्य रूपसे दोनोंका ही कहा है।

पंचसायकने–"गात्रोपरिष्टादथ तल्पमध्ये संलीयते यन्मिथुनं शरीरे ।
कामातिरेकात् कृतपूर्णचेष्टमालिङ्गनं क्षीरजलं प्रदिष्टम् ॥"

इसमें 'गात्रोपरिष्टात्' यह पद उत्संगका बोधक है, बाकीका इसका भी इससे मिलाझुला ही अर्थ है॥

इन दोनोंका समय।

तदुभयं रागकाले ॥ २० ॥

ये दोनों बढ़े हुए रागके समयमें ही होते हैं ॥ २० ॥

तदुभयमिति रागस्य वृद्धत्वात्तत्काल एव द्रष्टव्यम् । सम्प्रयोगकालविशेषश्च रागकालः । यत्र पुंसः स्थिरलिङ्गता, स्त्रियाश्च क्लिन्नसम्बाधता, तत्र च यन्त्रयोगात्प्राग्यथोक्तमेवालिङ्गनम् । यन्त्रयोजनेन तु संवेशनप्रकारानुरोधाद्योज्यम् ॥२०॥

'तिलतण्डुलक' और 'क्षीरजलक' इन दोनों आलिंगनोंके करनेके समय राग बढ़ जाता है, इस कारण ये दोनों उसी समय होते हैं। रागकाल–संप्रयोगके समयका भेद रागकाल भी है, जिस समय कि पुरुष, तबियत चलाकर तयार हो जाता है तथा स्त्रीका गुप्त अंग भीतरसे गीला हो जाता है, ऐसे समय यंत्रोंके संयोगसे पहिले ये आलिंगन होते हैं। गुप्त अंगोंके मिला लेनेपर तो संवेशन (आसन) की रीतिसे अनुरोधसे ही आलिंगनोंकी योजना करनी चाहिये ॥ २० ॥

इत्युपगूहनयोगा बाभ्रवीयाः ॥ २१ ॥

बाभ्रव्यके कहे हुए ये आलिंगन पूरे हुए ॥ २१ ॥

बाभ्रवीया इति बाभ्रव्येन प्रोक्ता उपगूहनप्रकाराः ॥ २१ ॥

आलिंगन बाभ्रवीय इसीलिये कहाते हैं कि बाभ्रव्यके कहे हुए हैं, वे आठों कह दिये गये हैं ॥ २१ ॥

सुवर्णनाभके एकाङ्गके चार आलिंगन ।

सुवर्णनाभस्य त्वधिकमेकाङ्गोपगूहनचतुष्टयम् ॥ २२ ॥

बाभ्रव्यके कहे हुए आठ आलिंगनोंसे, सुवर्णनाभके मतमें एक २ अंगके चार आलिंगन और अधिक हैं ॥ २२ ॥

सुवर्णनाभस्य । बाभ्रवीयादुपगूहनाष्टकादनेन विकल्पवर्गस्याधिक्यमित्येकः प्रकारः । तेनोरोरूर्ध्वभागेन जघनेन यन्त्रस्यायोगे वा जघनमवपीडयेत्याधिक्यं दर्शयति । एकाङ्गोपगूहनचतुष्टयं संप्रयोगकाल इति वर्तते । एकेनाङ्गेन सजातीयस्याङ्गस्य प्राधान्येन संश्लेषणात्तथोक्तम् ॥ २२ ॥

सुवर्णनाभ पहिले कहे हुए बाभ्रवीयके आठ भेदोंसे अधिक चार भेद और मानते हैं । 'यंत्रसंयोगके होते हुए वा यंत्रोंके पृथक् रहते हुए, जंघाके ऊपरके भागसे जंघाको दबाकर' यह जो इनमें कहना है इससे पूर्वके आलिंगनोंसे इनमें अधिकता दिखाते हैं कि पहिलेसे यह बात इनमें अधिक है, ये चारों रतके समय किये जाते हैं । इनमें प्रधानरूपसे एक अंगसे एक वही अंग मिलता है । जैसे कि स्त्रीको जांघसे पुरुषकी जांघें । इसी कारण इनका नाम एक अंगका आलिंगन है ॥ २२ ॥

ऊरूपगूहन ।

तत्रोरुसन्दंशेनैकमूरुमूरुद्वयं वा सर्वप्राणं पीडयेदित्यूरूपगूहनम् ॥ २३ ॥

नायिकाकी एक वा दोनों जांघोंको अपनी जांघोंके भीतर देकर, नायक पूरी ताकतसे भींचे या इसी प्रकार नायिका करे तो इसे 'उरूपगूहन' कहते हैं ॥ २३ ॥

एकमूरुमूरुद्वयं वेति पार्श्वसुप्तस्य पुंसः स्त्रिया वा । अत्र विशेषाभावाद्द्वयोरपि प्रयोक्तृत्वम् । यस्योरुस्थलमतिविपुलं स प्रयोक्तेति केचित् । सर्वप्राणमिति क्रियाविशेषणम् । अतिपीडनं हि मांसस्थानेऽत्यन्तसुखकारि स्यात् ॥ २३ ॥

पुरुषकी वगलमें स्त्री हो एवं स्त्रीकी वगलमें पुरुष हो, इसमें कुछ विशेष नहीं कहा, इस कारण इसे अपने २ समय पर दोनों ही प्रयोग कर सकते हैं। कोई ऐसा भी कहते हैं कि जिसकी जांवें बड़ी हों वही इसका प्रयोग कर सकता है । ' सर्वप्राण ' (पूरी ताकतके साथ) यह ' पीडयेत्-दवाये ' इसके साथ सम्बन्ध रखता है, तभी इन दोनोंके योगसे ' पूरीताकतके साथ दवाये ' यह अर्थ निकल आता है। रतिके समय मांसकी मोटी जगह जांवें आदि दवानेसे अत्यन्त सुख होता है ॥ २३ ॥

जघनोपगूहन ।

जघनेन जघनमवपीड्य प्रकीर्यमाणकेशहस्ता नखदशनप्रहणनचुम्बनप्रयोजनाय तदुपरि लङ्घयेत्तज्जघनोपगूहनम् ॥ २४ ॥

बिखरे हुए वालोंको हाथमें लिये हुए, प्यारेके जवनको अपने जघनसे दबा, नाखून गड़ा, दाँतें लगा, मुखका चुम्बन कर उसके ऊपर ठहर जाय । इसे ' जवनोपगूहन ' कहते हैं ॥ २४ ॥

जघनेन जघनमिति । पार्श्वशयनेन वराङ्गेण साधनं वाडवकेनापीडयेत्येकः प्रकारः । नाभेरधोभागेन जवनेन यन्त्रस्यायोगे वा जवनमवपीडयेति द्वितीयः । तत्र स्त्रीजवनस्यातिशृङ्गारत्वात्सैव शोभते । विशेषतो विपुलजघना । प्रकीर्यमाणकेशहस्तेति प्रयोगसंस्कारः । नखादीनि स्वेच्छया प्रयोज्येति । तत्प्रयोजनं तु फलम् । उपरि लङ्घयेन्नायकस्योपरि तिष्टेदित्यर्थः ॥ २४ ॥

वगलमें लेटकर अपने यंत्रके भीतर घुसे हुए पुरुषके गुप्त अंगको घोड़ीकी तरह भींचकर अन्य प्रयत्न करे यह एक विधि है। अथवा विना ही यंत्रसंयोग किये नाभिके नीचेसे लेकर गुप्तअंग तकके शरीरसे, पुरुषके ससाधन जघनको दबाकर अन्य प्रयत्न करे, यह इसकी दूसरी रीति है । इसमें स्त्री, नाभिसे लेकर जंघातकोंके अपने शरीरको अत्यन्त शृंगारमय होनेके कारण अपने इस अंगसे इन कामोंको करतीबार वही सुशोभित होती है । विशेषरूपसे वह, जिसके कि कुले मोटे हों । बिखरे हुए वालोंको हाथमें लिये हुए होनेसे इस प्रयोगका परिष्कार हो जाता है । नखादिके प्रहार तथा चुम्बन करना ही इसका फल है। नायकके ऊपर बैठ जाना ही ऊपर लाँघना है ॥ २४ ॥

स्तनालिङ्गन ।

स्तनाभ्यामुरः प्रविश्य तत्रैव भारमारोपयेदिति स्तना-लिङ्गनम् ॥ २५ ॥

नायिका अपने प्यारेके सीनेपर अपना सीना झुकाकर स्तनोंका भार रख दे तो यह 'स्तनालिङ्गन' कहाता है ॥ २५ ॥

स्तनाभ्यामुर इति । आसने पार्श्वशयने वा पृष्ठभागं निम्नीकृत्य स्तनाभ्यां नायकोरःस्थलं प्रविश्य तत्रैवेत्युरसि भारमारोपयेत् । स्तनस्येत्यर्थात् । एवं हि नायकः स्तनभाराक्रान्ते पिण्डीकृतमिवोरसि स्पर्शसुखमनुभवति ॥ २५ ॥

आसनपर या पार्श्वशयनमें, पीठके भागको नवाकर, स्तनोंसे नायकके सीने-पर प्रविष्ट होकर, उसीपर स्तनोंका भार रख दे । इस प्रकार होनेपर हृदयको प्यारीके स्तनोंसे दब जानेपर, नायकको इस प्रकार स्पर्शका सुख होता है मानो सुखके लड्डू मिल गये हों ॥ २५ ॥

ललाटिका ।

मुखे मुखमासज्याक्षिणी अक्ष्णोर्ललाटेन ललाटमाह-न्यात्सा ललाटिका ॥ २६ ॥

मुखसे मुख एवम् आखोंसे आखें मिलाकर माथेसे माथेको जिस आलिं-गनमें लगाया जाता है उसे 'ललाटिका' कहते हैं ॥ २६ ॥

उत्तानसंपुटे पार्श्वसंपुटे वा वक्रे वक्रं संयोज्य अक्ष्णोरक्षिणी दृष्ट्या लक्षी-करणेनासज्य । नासिकाया मुखनयनमध्यानुवर्तिनीत्वात्तत्संयोजनमर्थोक्तम् । ललाटे ललाटं द्विस्त्रिराहत्य च तत्रैव भारमारोपयेदित्येवास्य नायिका प्रयोक्त्री । तेन ललाटिकेव ललाटिका । नायकललाटस्य संक्रान्तिविशेषेणालंक्रियमाणत्वात् २६॥

इसी अधिकरणके छटे अध्यायसे प्रतिपादन किये हुए पार्श्वसंपुट व उत्तान-संपुटसे रति करते हुए मुखपर मुख रख, दृष्टिद्वारा आखोंसे आखें मिलाये । नाक तो मुँह और आँख दोनोंके बीचमें होनेवाली है, जब मुँह और आँखें मिलेंगी तो नाकसे नाक तो आप ही मिलेंगी ही, तब इनका मिलना भी इसके कहनेसे कहा हुआ समझे । माथेसे माथा दो तीन बार लगाकर, माथेका भार माथेपर रख दे । इस आलिंगनका प्रयोग करनेवाली नायिका है । इनका नाम ललाटिका रखनेका कारण यह है कि नायकके शिरमें टिकीकी तरह शिरको लगाते हैं । इसके लगानेसे शिर विशेष सुशोभित होता है२६॥

वात्स्यायनके यहां संवाहन आलिंगन नहीं ।

संवाहनमप्युपगूहनप्रकारमित्येके मन्यन्ते । संस्पर्शत्वात् ॥ २७ ॥

एक आचार्य्य संवाहनको भी एक प्रकारका आलिंगन मानते हैं, क्योंकि इसमें भी स्पर्श होता है ॥ २७ ॥

संवाहनमपीति । त्वङ्मांसास्थिसुखकरणेन त्रिविधं संवाहनमङ्गमर्दनम् । तदपि संस्पर्शयुक्तत्वादुपगूहनविकारमेव द्रष्टव्यमित्येके ॥ २७ ॥

त्वचा, मांस और हड्डियोंको सुख पहुँचानेसे तीन तरहका पैर दबाना या उबटन होता है । इसमें स्पर्श है, इससे यह भी एक आलिंगनका विकार ही है । अतः इसे भी एक प्रकारका आलिंगन मान लो । ऐसा एक आचार्य्यका मत है ॥ २७ ॥

पृथक्कालत्वाद्भिन्नप्रयोजनत्वादसाधारणत्वान्नेति वात्स्यायनः ॥ २८ ॥

इसपर वात्स्यायन ऋषि कहते हैं कि—संवाहनका समय आलिंगनके समयसे दूसरा है । आलिंगनका फल दोनों एवम् संवाहनका फल एकको मिलता है । संवाहनका प्रयोजन भी आलिंगनसे भिन्न है । इन कारणोंसे संवाहन, आलिंगनोंमें नहीं सँभाला जा सकता ॥ २८ ॥

पृथक्कालत्वादाचार्याः सर्व एव । पृथक्कालोऽस्येति पृथक्कालम् । उपगूहनात्संस्पर्शित्वेनाभेदेऽपि संवाहनं कालतो भिन्नम् । असाधारणत्वात् । उपगूहनं ह्यनन्तरप्रयुक्तं द्वयोरप्येकस्मिन्काले कार्यकारीति साधारणम् । संवाहनं तु पुंसा प्रयुक्तं स्त्रियाः कार्यकारि, स्त्रिया च नायकस्येत्यसाधारणम् । अतो गीतादिचतुःषष्ट्याम् ‘ उत्सादने केशमर्दने कौशलम् ’ इत्यत्र द्रष्टव्यम् । संस्पर्शत्वे च चुम्बनादीनामपि तद्विकारप्रदानप्रसङ्गात् ॥ २८ ॥

यद्यपि संवाहन (दबाने, उबटन, मसलने आदि) में भी स्पर्श होता है एवम् आलिंगनमें भी होता ह पर इसका समय कुछ और एवम् आलिंगनोंका समय कुछ और ही होता है । दोनोंके भी अव्यवहित प्रयुक्त आलिंगन, एक समयमें कार्य्य करते हैं, इस कारण साधारण हैं, पर संवाहनका यह काम है कि पुरुषने स्त्रीका किया तो स्त्रीके कार्य्यको करनेवाला होगा, एवम् स्त्रीने पुरु-

षका किया तो पुरुषके त्वचा, मांस और हड्डियोंको सुख देगा । इन कारणोंसे उसे असाधारण कहा गया है। यही कारण है कि इसे गीतादिक चौंसठ कला-ओंमें रख दिया है, जहां कि-"अंग मलने और बालोंके बाँधने आदिमें कौशल दिखाया है" । दूसरे यदि केवल स्पर्शवाला होनेके कारण ही आलिंगन हो तो चुम्बन वगैरहोंमें भी स्पर्श होता है इस कारण वे भी आलिंगनके ही भेद हो जायँगे, अतः आलिंगनोंमें संवाहन नहीं, ऐसा सब आचार्य्योंका मत है ॥२८

आलिङ्गनपर वेद ।

वेदके लिये कहा है कि-'यस्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यते' जिस देवका काव्य न तो नष्ट होता है एवम् न जीर्ण ही होता है, तब वेदमें भी साहित्यकी छटा अवश्य ही रहनी चाहिये, अतः वेदसे ही उक्त विषयको दिखाते हैं कि—"ॐ यथा वृक्षं लिबुजा समन्तं परिषस्वजे ।

एवापरिष्वजस्व मां यथा मां कामिन्यसोयथा मन्नापगा असः ॥"

अथर्व अ० २, ७, १ ।

जैसे बेल, वृक्षके चारों ओर लिभिड़ जाती है, उसी तरह तू भी मुझसे लिभिड़ जा । इस लिभिड़नेसे भी कुछ नहीं है जवतक कि तू मेरी चाहने-वाली न बन ले, अतएव उस प्रकार ही लिभिडना जिस तरह कि चाहनेवाली लिभिड़ा करती है । इन शब्दोंसे इन्होंने इस आलिंगनके साथ होनेवाली अन्य क्रियाओंको और भी संकेत कर दिया है। रही सही कमीको इस कथ-नसे पूरा किये देते हैं कि-'मुझसे इस तरह लिभिड़ना कि फिर बिलकुल मिल जानेका ही इरादा हो ।' इससे रागके प्रदीप्त करनेकी दूसरी विधियोंको भी कह दिया है, जिन्हें रामणीयदर्शनमें दिखा चुके हैं ।

"ओं वाञ्छ मे तन्वं पादौ वाञ्छाक्ष्यौ वाञ्छ सक्थ्यौ ।
अक्ष्यौ वृषण्यन्त्याः केशा मां ते कामेन शुष्यन्तु ॥" अथर्व. अ.२-९-१।

आठवेंमें 'लतावेष्टितक' कहकर अब नवमेंके पाहिले मंत्रमें दूसरे दूसरे आलिंगनोंको बताते हुए कहते हैं कि-"कामसे अकुलाई हुई तू मेरे शरी-रके परिपूर्ण आलिंगन करनेकी इच्छा कर । कामसे आकुलोंका सर्वाङ्गीण आलिंगन 'क्षीरनीरक' व 'तिलतण्डुलक' होता है, मंत्र इन्हींकी ओर सङ्केत कर रहा ह। अपनी आखोंसे मेरी आखोंको मिला। इस कथनसे 'ललाटिक' आलिङ्गन कह दिया, क्योंकि इसीमें आँखोंसे आँखें मिलती हैं । मेरी कटि (जघनसे) अपने (जघन) को मिलानेकी इच्छा कर । इस

कथनसे 'जघनोपगूहन' आलिङ्गन कह दिया। सहवास करनेकी इच्छासे अकुलाई हुई तेरे केश मेरा ही उद्देश लेकर कामसे सूखें यानी सुखानेके समय जो खोलकर हाथमें ले लिये जाते हैं उसी तरह हाथमें हों। इस कथनसे मंत्र भगवान्ने उस संस्कारको कह दिया, जिसे वात्स्यायनने इसी अध्यायके २४ वें सूत्रमें कहा है। इसीकी तरह दूसरे दूसरे आलिंगनोंके संस्कार भी (स्थालीपुलाक न्यायसे) वेदप्रतिपाद्य ही समझने चाहियें। तू अपने पैरोंसे मेरे पैरोंको चाह। इस कथनसे 'ऊरूपगूहन' की ओर संकेत किया ह, क्योंकि उसमें जाँघ आदिसे जाँघ आदि दबाये या भींचे जाते हैं। इस तरह इस मंत्रने पांच आलिंगनोंका प्रतिपादन कर दिया है॥

इसीपर साहित्य।

इसी विषयको वेदमें दिखाकर साहित्यमें भी दिखाते हैं, कि किस प्रकार उन्होंने कामशास्त्रके सिद्धान्तोंका कवितामें उपयोग किया है।

माघ-"उत्तरीयविनयात् त्रपमाणा रुन्धती किलतदीक्षणमार्गम्।
आवरिष्ट विकटेन विवोढुर्वक्षसेव कुचमण्डलमन्या॥" १०-४२।

जब प्यारेने सीनेको ढका रखनेवाला उत्तरीय और कंचुकी हाथसे झटककर दूर कर दिये तो स्तनमण्डल आवरणरहित होगया। यह देख, प्यारीने इस बहानेसे कि प्यारेकी दृष्टि मेरे स्तनमण्डलपर न पड़ जाय, इस कारण उसे प्यारेके सीनेसे चिपका दिया।

मा०-" अंशुकं हृतवता तनुबाहुस्वस्तिकापिहितमुग्धकुचाग्रा।
भिन्नशङ्खवलयं परिणेत्रा पर्य्यरम्भि रभसादचिरोढा॥" १०-४३।

उत्तरीय वस्त्रोंके खींचनेके वाद सीनेसे सीना इसी तरह ही नहीं लगा दिया था किन्तु सबसे पहिले अपने दोनों हाथोंसे उन्हें छिपानेका पूरा प्रयत्न किया गया था। पर जब झटकापटकीके साथ पतिने दोनों हाथोंको वहांसे हटा दिया। यहां तक कि इसमें उसकी चुरी भी मौर गई तो उसके हाथ वहांसे हट गये एवम् पतिने उसके दोना हाथोंसे भींचकर हृदयसे लगा लिया और उसने भी सीनेसे सीना लगा दिया।

मा०-"सम्प्रवेष्टुमिव योषित ईषुः श्लिष्यतां हृदयमिष्टतमानाम्।
आत्मनः सततमेव तदन्तर्वर्तिनो न खलु नूनमजानन्॥" १०-४८।

कामवेगसे अकुलाई हुई स्त्रियोंको यह तो याद रहा नहीं कि हमसे गाढ आलिङ्गन करनेवाले प्रियतमोंके हृदयोंमें हम पाहिलेसे ही घुसी हुई हैं, इस कारण इतने वेगसे आलिंगन करने लगीं इनके हृदयमें घुस जाना ही चाहती हैं।

मा०—" दीपितस्मरमुरस्युपपीडं वल्लभे घनमभिष्वजमाने ।
वक्रतां न ययतुः कुचकुम्भौ सुभ्रुवः काठिनतातिशयेन ॥"

जिस तरह काम प्रदीप्त हो उसी रीतिसे पतिने उसके हृदयका आलिङ्गन किया । वह भी इस तरह कि स्तन अच्छी तरह दवें, फिर भी वे इतने कठोर थे कि इतना होनेपर भी जैसेके तैसे ही रहे, दवे नहीं, न टेढ़े ही पड़े ।

मा०—" आहतं कुचतटेन तरुण्याः साधु सोढममुनेति पपात ।
त्रुटयतः प्रियतमोरसि हारात् पुष्पवृष्टिरिव मौक्तिकवृष्टिः" १०–७४॥

प्यारीने जो अपने स्तनोंकी नोकोंसे प्यारेके सीनेपर टक्कर दी तो प्रियके सीनेका हार टूटकर उसके मोती इधर उधर विखर गये । इसपर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि वह ' प्यारेने अच्छा सहा ' इस खुशीमें एक प्रकारकी फूलोंकी वर्षा ही हुई ।

सूरदास—" वेनी छूटि लटें वगरानी, मुकुट लटकि लटकानो ।
फूल खसत शिरते भए न्यारे, सुभग स्वातिसुत मान्यो ॥
गान करति नागरि रीझे पिय, लीन्ही अंक भलाई ।
रसवश ह्वै लपटाइ रहे दोउ, सूर सखी वलि जाई ॥ "

केशपाश खुल गया, लटें खुलकर नींचे विखर गईं । मुकुट लटककर लटका ही रह गया । वालोंमें पुवे हुए जो फूल थे वे वालोंसे निकलकर जो बिखरे तो उन्होंने उन्हें मोती समझा । प्यारी रसभरे गान गा रही थी, उनपर प्यारेने रीझकर उसे हृदयसे लगा लिया । फिर आश्लेषरसके वश होकर दोनों आपसमें लिपट गये । इस छविपर सूरदास ! सखी तो वलिहार जाती है ।

विहारीदास—" मैं भिसहा सोयो समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय ।
हँस्यो खिसानी गर गह्यो, रही गरे लिपटाय ॥ "

इसी तरह इन आलिंगनोंका सभी भाषाके कवियोंने अपनी २ कृतियोंमें प्रयोग किया है । जिसने कामशास्त्रके विधानके अनुसार किया है, उसके कथनपर चमक आ गई है । पर जिसने इस वातपर ध्यान नहीं रखा उसकी कवितापर उतनी सरसता भी नहीं आई ।

आलिंगनोंका आदर ।

आलिङ्गनविधावादरार्थमाह—

आलिंगनोंको आदरकी दृष्टिसे देखा जाय, इस कारण इनका प्रयोजन बताते हैं कि—

पृच्छतां शृण्वतां वापि तथा कथयतामपि ।
उपगूहविधिं कृत्स्नं रिरंसा जायते नृणाम् ॥ २९ ॥

आलिंगनोंकी सारी विधिको पूछते, सुनते और कहते २ मनुष्योंकी रमणके करनेकी इच्छा हो जाती है ॥ २९ ॥

पृच्छतामिति । पृच्छतां शृण्वतां पार्श्वस्थानाम् । कथयतां परेभ्यः । उपगूहविधिमिति । उपगूहनमुपगूहः । भावे घञ् वा । कृत्स्नं निरवशेषम् । कचित्कस्यचिदभिप्रायात् । रिरंसा रन्तुमिच्छा संजायते । किं पुनर्ये प्रयुञ्जते ॥ २९ ॥

पासके लोगोंसे पूछते, सुनते तथा दूसरोंसे कहते २ रमणकी इच्छा होजाती है । चाहे ये आलिंगन किसीका प्रकरण लेकर कहे जा रहे हों या किन्हीं नायकनायिकाओंके कहकर साधारण रीतिसे कहे जा रहे हों । जो इन्हें सहवासके समय काममें ला रहे हैं उनकी इच्छा हो, इसमें तो कहना ही क्या है २९

विना कहे हुओंकी विधि ।

अनुक्तातिदेशमाह—

विना कहेहुए आलिङ्गनादिकोंके भी ग्रहणके लिये एक उनका संग्राहक वाक्य कहते हैं कि-

येऽपि ह्यशास्त्रिताः केचित्संयोगा रागवर्धनाः ।
आदरेणैव तेऽप्यत्र प्रयोज्याः सांप्रयोगिकाः ॥ ३० ॥

जो ऐसे योग हो कि रागके वढानेवाले हों, पर शास्त्रमें न कहे गये हों तो रतके समयके उन योगोंको यहां भी आदरके साथ काममें लाये ॥ ३० ॥

येऽपीति । अभिधायकत्वेन शास्त्रं संजातं येषां ते शास्त्रिताः । येनैवंविधाः किं तु स्वेच्छयोत्प्रेक्षिताः संयोगाः संश्लेषाः । आदरेणैव । अवज्ञया न अशास्त्रिता इति । अत्र ते सुरते रागवर्धनत्वात्प्रयोज्याः । सांप्रयोगिकाः संप्रयोगप्रयोजनाः ३०

जिनका कि कामशास्त्रने उल्लेख किया है वे योग, शास्त्रित कहाते हैं । जिनका नहीं किया वे अशास्त्रित हैं । जो कि शास्त्रीय नहीं हैं केवल अपनी विचारशक्तिसे कल्पित करके व्यवहारमें लाये जा रहे हैं, यदि वे रंगरेलीके

---

१ 'उप' उपसर्गपूर्वक 'गूह आलिंगने' धातुसे भावमें 'घञ्' प्रत्यय होकर, उपगूह शब्द बनता है । उसका आलिंगन अर्थ है ।

समय रागको बढ़ाते हैं तो उनका आदरके साथ प्रयोग होना चाहिये, यह न हो कि शास्त्रके न मानकर उनका अनादर हो । संप्रयोग (रतिकेलि) जिनका प्रयोजन हो वे ' संप्रयोगके प्रयोजनवाले ' कहाते हैं ॥ ३० ॥

इसका कारण ।

किमित्यशास्त्रिताः प्रयोज्या इत्याह—

जो शास्त्रने नहीं कहे उनका भी प्रयोग करनेके लिये क्यों कहते हो ? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि—

शास्त्राणां विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः ।
रतिचक्रे प्रवृत्ते तु नैव शास्त्रं न च क्रमः ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे आलिङ्गनविचारा द्वितीयोऽध्यायः ।
आदितः सप्तमः ।

जब तक राग हलका है तभी तक शास्त्रोंका विषय है । रागके परिपूर्ण वढ़ जानेपर न तो शास्त्र है एवम् न उसका वताया हुआ क्रम ही चलता है ॥३१॥

शास्त्राणामिति । अप्रवृद्धरागा हि शास्त्रोक्तक्रमसंयोगे क्रमं चापेक्षमाणाः शास्त्राणां विषयः । रतिचक्रे रागोत्पीडे प्रवृत्ते तद्वशादशास्त्रितानामप्यनुष्ठाना-त्तदानीं न शास्त्रं स्यान्नापि क्रमः । संयोगानां लोपे पौर्वापर्यमुच्चावचेन प्रवर्तनम्। तस्मान्मा भूच्छास्त्रस्य क्रमस्य चानर्थक्यमित्यनुक्तमतिदिश्यते । इत्युपगूहनविचा-रोऽष्टमं प्रकरणम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-करण आलिङ्गनविचारा द्वितीयोऽध्यायः ।

जिनका कि राग नहीं बढ़ा है वे पुरुष, शास्त्रके बताये हुए क्रमसे संयोग करते हुए शास्त्रके बताये हुए क्रमकी अपेक्षा रखते हैं, पर जब उनका राग इनता वढ़ जाता है कि उसमें अन्धे हो जाते हैं तो उस समय उसके आवेशमें शास्त्रके न कहे हुए योगोंको करके उसे और भी प्रचण्ड करते हैं, इस कारण न तो वहां शास्त्र है एवं न क्रम ही है । संयोगोंके लोपमें आगे, पीछेका क्रम

नहीं रहता, प्रत्युत आगेका पीछे और पीछेका आगे भी हो जाता है । इससे शास्त्र और क्रम व्यर्थ न हो, इस कारण पहिले श्लोकसे विना कहे हुए प्रयोगोंका भी संग्रह कर दिया है । यह आलिंगनोंके विचारवाला आठवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

चुम्बन-विकल्प (भेद) प्रकरण ।

एवं परिरभ्य चुम्बनादयः प्रयोक्तव्याः, तत्रापि किं प्राक्चुम्बनं नखच्छेद्यं दशनच्छेद्यं वा पश्चादिति नास्त्येषां प्रयोगक्रम इत्याह—

दूसरे अध्यायके वताये हुए आलिङ्गनोंके विधानके अनुसार, आलिंगन करके पीछे चुम्बन आदिका प्रयोग करना चाहिये । इनमें पहिले चुम्बन हो और नाखून वा दाँतोंका पीछे प्रयोग हो, ऐसा कोई क्रम नहीं है । इसी बातको दिखानेके लिये सूत्र करते हैं कि-

चुम्बननखदशनच्छेद्यानां न पौर्वापर्यमस्ति । रागयोगात् प्राक्संयोगादेषां प्राधान्येन प्रयोगः । प्रहणनसीत्कृतयोश्च संप्रयोगे ॥ १ ॥

चुम्बन, नाखून और दांतोंके निशानोंके लगानेमें पूर्वापरका क्रम नहीं है, क्योंकि ये सब काम रागकें योगसे होते हैं । पर इतनी विशेषता अवश्य है कि यंत्रसंयोग होनेसे पहिले इनका प्रधानरूपसे प्रयोग होता है एवम् प्रहणन आर सीत्कारोंका संप्रयोगमें ही प्रयोग होता है ॥ १ ॥

न पौर्वापर्यमिति । रागवशादिति रागयोगात् । रागाविष्टो हि न क्रममपेक्षते । अयं तु विशेषः—यदेषां प्राक्संयोगात्प्राग्यन्त्रयोगात् । यन्त्रयोगे प्राधान्येन बाहुल्येन रागाभ्यासाद्वा प्रबोधनार्थं प्रयोगः । नायकनायिकाभ्यां यन्त्रयोगे तु प्राधान्येनेत्यर्थोक्तम् । प्रहणनसीत्कृतयोस्तु संप्रयोगे यन्त्रयोगे प्राधान्येन प्रयोग इत्येव । तदा हि प्रवृद्धरागयोः प्राधान्येन घातसहत्वम् । प्रहणनबाहुल्ये च तदुद्भवस्य सीत्कृतस्यापि बाहुल्ये प्रागप्राधान्येनेत्यर्थोक्तम् ॥ १ ॥

चुम्बन, नाखून और दांतोंका लगाना रागके परवश होकर होता है। रागसे अन्धा हुआ पुरुष क्रमकी अपेक्षा नहीं करता। पर चुम्बन, नखच्छेद, दन्तच्छेद और प्रहणन, सीत्कृतमें इतनी विशेषता अवश्य है कि यंत्रयोग होनेसे पहिले तो रागको जगानेके लिये इनका प्रायः प्रयोग होता है एवम् यंत्रयोग कर लेनेपर नायक और नायिका रागके परवश होकर प्रधानरूपसे इनका प्रयोग करते हैं। किन्तु प्रहणन, सीत्कारोंका तो यंत्रयोग होनेपर ही प्रधानरूपसे प्रयोग होता है, विना यंत्रयोगके तो प्रहणन और सीत्कारोंका प्रयोग प्रायिक है। क्योंकि यंत्रयोग होनेसे बढ़े हुए रागवाले पुरुष प्रायः प्रहार सह सकते हैं। यदि बारबार प्रहणनोंका प्रयोग होगा तो उससे सीत्कार भी बहुत होंगे, अतः उसी समय इनका भी मुख्यरूपसे प्रयोग होता है। यंत्रयोगसे पहिले प्रहणन और सीत्कारके प्रयोग होते हैं, पर मुख्यरूपसे नहीं होते, यह पहिले ही लिख चुके हैं ॥ १ ॥

एकीयमतमेतत् । उत्तरपक्षदर्शनात् । यदाह——

यह एक पक्षीय मत है कि–'चुम्बनादिक तीनोंका यंत्रयोगसे पहिले बहुलता एवम् बादको प्रधानतासे, पर प्रहणन और सीत्कारोंका प्रयोग, योगसे पहिले कांचित्क एवम् बादमें मुख्यरूपसे होता है' क्योंकि इसका उत्तरपक्ष देखा जाता है। उसीको दूसरे सूत्रसे दिखाते हैं कि–

सर्वं सर्वत्र । रागस्यानपेक्षितत्वात् । इति वात्स्यायनः॥२

सबका सबजगह प्रयोग होता है, क्योंकि इनके प्रयोगोंमें दोनोंके रागकी अपेक्षा नहीं है। ऐसा वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ २ ॥

सर्वं सर्वत्रेति । चुम्बनादिपञ्चकं प्राक्प्रयोगे च प्राधान्येन प्रयोक्तव्यम् । रागस्यानपेक्षितत्वादिति । चण्डवेगो हि प्राधान्येनाप्राधान्येन वाश्रययोगमपेक्षते । मन्दवेगेयोस्तु पूर्व एव पक्षः ॥ २ ॥

चुम्बन, नखच्छेद्य, दन्तच्छेद्य, प्रहणन और सीत्कृतका यंत्रयोग होनेसे पहिले और होनेपर प्रधानरूपसे प्रयोग होता है, क्योंकि इनके प्रयोगमें दोनोंके रागकी अपेक्षा नहीं है। इसका कारण यह है कि चण्डवेगवाला नायक, प्रधानरूपसे वा अप्रधान रूपसे जिसपर प्रयोग करता है उसकी अपेक्षा रखता है। जिसपर प्रयोग करे वह मिलनी चाहिये, किन्तु मन्दवेगके नायक और नायिकाओंके विषयमें पहिले सूत्रका बताया हुआ ही सिद्धान्त ठीक है॥२॥

अयं तु विशेषः पक्षद्वयेऽपि तुल्य इत्याह—

दोनों ही पक्षोंमें जो यह विशेषता एकसी है, उसे बताते हैं कि-

तानि प्रथमरते नातिव्यक्तानि विश्रब्धिकायां विकल्पेन च प्रयुञ्जीत । तथाभूतत्वाद्रागस्य । ततः परमतित्वरया विशेषवत्समुच्चयेन रागसंधुक्षणार्थम् ॥ ३ ॥

ये पांचों प्रथम रतमें अत्यन्त व्यक्त नहीं होते, पर धीजी हुईमें इनका विकल्पसे प्रयोग होता है, क्योंकि रागका ऐसा ही ढंग है । इसके बाद अत्यन्त फुरतीके साथ इनके विकल्पोंका एक साथ, राग प्रदीप्त करनेके लिये प्रयोग करे ॥ ३ ॥

तानि चुम्बनादीनि पञ्च । प्रथमरत इति रतस्यारम्भे । नातिव्यक्तानि नातिस्फुटानि । यथालक्षणस्यासमापनात् । विश्रब्धिकया विकल्पेन चेति । इदं वेदं वेत्येकमेव प्रयुञ्जीत । न समुच्चयेन । तद्यथा—चुम्बनं वा नखच्छेद्यं वा । [चुम्बनं वा] दशनच्छेद्यं वा । चुम्बनं वा प्रहणनं । वा चुम्बनं वा सीत्कृतं वेति । चतुर्धा । नखच्छेद्यं त्रिधा । दशनच्छेद्यं द्विधा । प्रहणनमेकं वेत्यनुलोमा दश । तावन्त एव प्रतिलोमाः, एकत्र विंशतिः प्रयोगाः ।

चुम्बनसे लेकर सीत्कार तकके पांचों कार्य्य रतके आरंभमें पूरेके पूरे न करे, कुछ कसर रह जाने दे । विश्वस्त हो जानेपर चुम्बन हो वा नखच्छेदादि हों, एकका ही प्रयोग करे, समुच्चयसे प्रयोग न करे । इसी बातको दिखाते हैं कि-चुम्बन हो वा नखच्छेद हो, चुंबन वा दन्तप्रयोग हो, चुंबन हो वा प्रहणन हो, चुंबन हो वा सीत्कृत हो, इस तरह चार प्रकारका चुंबनका प्रयोग हो । नखच्छेद हो वा दन्तच्छेद हो, नखच्छेद हो वा प्रहणन हो, नखच्छेद हो वा सीत्कार हो । इस प्रकार तीन तरहका नखच्छेद हो। दन्तच्छेद्य हो वा प्रहणन हो, दन्तच्छेद्य हो वा सीत्कार हो इस प्रकार दो तरहका दन्तच्छेद हो। प्रहणन हो वा सीत्कार हो । इस तरह एक प्रकारका प्रहणन होता है । इस प्रकार इन पांचोंके दश तरहके सीधे क्रम होते हैं । दश ही भेद उलटे क्रमसे भी हो जाते हैं कि-सीत्कार वा प्रहणन, सीत्कार वा दन्तच्छेद्य, सीत्कार वा नखच्छेद्य, सीत्कार वा चुंबन । ये चार तो सीत्कारके भेद हुए । प्रहणन वा दन्तच्छेद्य, प्रहणन वा नाखून, प्रहणन वा चुंबन । ये तीन प्रहणनके विकल्प हुए । दन्त वा नाखून, दन्त वा चुंबन, ये दो दाँतोंके लगानेके

भेद हुए। नखच्छेद्य वा चुंबन, यह एक नाखून लगानेका भेद हुआ। इस तरह दोनों तरहके दश २ मिलकर बीस होते हैं।

तथाभूतत्वादिति–आरम्भकाले हि मन्दो रागः । ततश्च मध्यस्थचित्तता नातिसहिष्णुता चेति । तदनुरूप एव प्रयोगः । ततः परमिति । आरम्भादुत्तरे काले समधिको रागयोगः । शरीरेऽपि च निरपेक्षत्वमिति तदनुरूपमतित्वरया विशेषवद्विकल्पवर्गानुष्ठानात्समुच्चयेन चेदं वेत्यत्रापि विंशतिप्रयोगाः । किमर्थमेवं प्रयुञ्जीतेत्याह—रागसंधुक्षणार्थम् । अनेन क्रमेण रागो वर्धत इत्यर्थः । अन्यथा विच्छिन्नरसं रतं स्यादिति । एवं परस्परविश्रब्धयोर्न चुम्बनादीनां पौर्वापर्यम् । यदा तु विश्वासनार्थमुपक्रमस्तदास्त्येवेत्येषां पौर्वापर्यम् । उत्तरोत्तरस्याधिक्यात् । सहसा कर्तुमशक्यत्वादिति ॥ ३ ॥

आरंभमें राग मन्द रहता है, चित्त मध्यस्थ रहता है, सहन शक्ति अधिक होती नहीं, इस कारण इसके अनुरूप ही प्रयोग होना चाहिये। ज्यों २ देर होती जायगी, त्यों २ राग अधिक प्रचण्ड होता चला जायगा एवम् शरीरकी निरपेक्षता भी बढ़ती चली जायगी, अतएव जितना राग हो उसके अनुसार ही विकल्पवर्गोंका समुच्चयसे प्रयोग करे। जो कि चुंबनादि बीस विकल्पवर्ग यानी इसी सूत्रमें बीस भेद दिखाये जा चुके हैं। इनका क्यों प्रयोग करे? इस बातका स्वयं ही सूत्रकार उत्तर देते हैं, कि इस क्रमसे राग बढ़ता है, नहीं तो रमण, विच्छिन्न रसवाला ही हो जायगा। पर जिनमें आपसमें विश्वास बढ़ा हुआ है उन व्यक्तियोंमें चुंबन आदिका पूर्वापरका क्रम नहीं है। यदि विश्वासके लिये मिलनेसे पहिले चुंबन आदिका प्रयोग करना हो तो इनके पूर्वापरका क्रम है ही, क्योंकि इन पांचोंमें एकसे एक अधिक है, इसी कारण सबको एकदम नहीं किया जा सकता॥ ३ ॥

चुम्बनके स्थान ।

आलिङ्गनानन्तरं चुम्बनविकल्पा उच्यन्ते—ते च चुम्बनभेदा न च स्थानभेदं विनेत्याह—

आलिंगनके पीछे चुंबनके भेद प्रतिपादन किये हैं, वे भेद, विना स्थानभेद हुए नहीं हो सकते, इस कारण सबसे पहिले चुंबनके स्थान बताते हैं कि—

ललाटालककपोलनयनवक्षःस्तनोष्ठान्तर्मुखेषु चुम्बनम् ४

माथा, बाल, गाल, आखें, वक्षः, स्तन, ओष्ठ और मुखके भीतरके तालु आदिमें चुम्बनका प्रयोग होता है ॥ ४ ॥

ललाटेति । तत्र वक्षः पुरुषस्य । स्तनौ योषितः । शेषा उभयोरपि । ओष्ठमुत्तरमधरं च । अन्तर्मुखो मुखान्तस्तात्वादि । तत्रान्तर्मुखे जिह्वया चुम्बनं वक्ष्यति । एतेष्वष्टसु स्थानेषु चुम्बनमविरुद्धत्वात्पूर्वाचार्याणां मतम् ॥ ४ ॥

पुरुषके वक्षस्थल एवम् स्त्रीके स्तनोंका चुम्बन होता है । बाकी सबका दोनोंका ही चुम्बन होता है। नीचे और ऊपर दोनों होठोंका चुम्बन होता है। मुखके भीतरके भाग तालु आदि 'अन्तर्मुख' कहाते हैं। इनका चुम्बन जीभसे होता है, उसे २१ वें सूत्रसे २३ वें सूत्रतक कहेंगे । इन आठों स्थानोंमें चुम्बनका प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि यहां करना विरुद्ध नहीं है, ऐसा पूर्वाचार्य्योंका मत है ॥ ४ ॥

इन्हींपर अन्य आचार्य्य।

"नयनगलकपोलं दन्तवासो मुखान्तः ।
स्तनयुगलललाटं चुम्बनस्थानमाहुः ॥"

आखें, गला, कपोल (रुखसार), दोनों होठ, मुखका भीतरी भाग तालु आदि, दोनों स्तन और माथा, ये चूमनेकी जगह हैं ऐसा रतिरहस्यने कहा है। इसमें कामसूत्रसे 'गला' ज्यादा तथा बाल और वक्षःस्थल कम हैं।

पंचसायक—" गण्डस्थलीमस्तकदन्तवासो ग्रीवाकुचोरःस्तनचूचुकानि ।
आलिङ्गनानन्तरमेव यूनोः स्थानानि चुम्बस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ॥"

गण्डस्थल, मस्तक, होठ, ग्रीवा, स्तन, सीना, स्तनोंकी नोंक, ये चूमनेके स्थान हैं। इसमें कामसूत्रसे गण्डस्थल, ग्रीवा और स्तनोंकी नोंक, ये अधिक स्थान बताये हैं । तथा बाल, कपोल (रुखसार), आखें और मुखके भीतरका भाग तालु आदि कामसूत्रसे कम हैं।

अनङ्गरङ्ग—" अधराक्षिकपोलमस्तकं वदनान्तःस्तनयुग्मकन्धरे ।
विहितानि पदानि पण्डितैः परिरम्भादनुचुम्बनस्य हि ॥"

अधरपल्लव, आखें, कपोल, मस्तक, मुखके भीतरके भाग, दोनों स्तनकुम्भ और कन्धर, ये चुम्बनकी जगहें हैं। इसमें कामसूत्रसे कन्धर अधिक एवम् बाल, माथा, वक्ष और ऊपरका होठ कम कहा है। इन सभी ग्रन्थोंके चुम्बनस्थानोंको इकट्ठा करदें तो—" माथा, बाल, आखें, वक्षःस्थल, स्तन, ओठ, मुखके

भीतरके ताल्लु आदि, गला, स्तनोंकी नोंक और कोठा " ये जगहें चुम्बन करनेकी हैं । यह सार निकलता है ।

लाटदेशवासियोंका चुम्बन ।

ऊरुसंधिबाहुनाभिमूलयोर्लाटानाम् ॥ ५ ॥

लाट देशके रहनेवाले, स्त्रीके मदनमंदिरके होठ आदि एवम् उसके पासके स्थलको, काखोंको तथा घोंटुओंको चूमते हैं ॥ ५ ॥

ऊरुसंधिबाहुनाभिमूलेष्विति । ऊरुसंधिर्वंक्षणम् । बाहुमूलं कक्षौ । तथापरं दशनक्षतं वक्ष्यति । नाभिमूलं वराङ्गं पूर्वोक्तम् । लाटानामिति । तेषामेकादश स्थानानीति मतम् ॥ ५ ॥

जहां ऊरु आकर मिले हो, कोशकारोंने उसे, वंक्षण (जघन) कहा है । बाहोंका मूल काखें हैं । नाभिमूल वरांग (स्त्रीके गुप्त अंग)को कहते हैं । लाटदेशके वासियोंके ये तीन स्थान साधारण स्थानोंसे अधिक हैं, इस तरह इनको चुम्बन लेनेकी ग्यारह जगें होती हैं ॥ ५ ॥

इसका विचार ।

" दधाति जघननाभीमूलकक्षासु चुम्ब-
व्यतिकरसुखमुच्चैर्देशसात्म्येन लाटाः ॥"

इसमें ऊपर लिखे कामसूत्रके पदार्थको ही खुलासा करके दरशाया है तब ही रतिरहस्यकार कामसूत्रके वंक्षणके स्थानमें जघन (मदनमंदिरके पासके स्थल) को ले रहे हैं, कि—"यह लाटदेशके रहनेवालोंको अनुकूल पड़ता है, इस कारण जघन, मदनमंदिर और काखोंको और अधिक चूमते हैं । " पर दूसरे सभ्य लोग इसे पशुचुम्बन कहते हैं ।

पंचसायक—"कक्षायुगं चापि नितम्बिनीनां कन्दर्पगेहं च रतिप्रवीणाः ।
चुम्बन्ति कामं तरलायताक्ष्याः देशस्य सात्म्येन सदैव लाटाः ॥"

इस वचनसे लाटदेशवासियोंके लिये काखें और मदनमन्दिर ये दो स्थान ही चुम्बनके अधिक मानता है । जयमंगलाटीकाके कर्ताने नाभिमूलका वरांग (स्त्रीका मदनमंदिर) अर्थ किया है । अनंनरंगके यह विरुद्धसा प्रतीत होता है, क्योंकि उसमें मदनमंदिरसे भिन्न, नाभिके मूलका ग्रहण है । उसे यहीं दिखाते हैं—

" कक्षायुगं मन्मथमन्दिरं च, नाभेश्च मूलं स्मरलोलचित्ताः ।
चुम्बन्ति लाटा निजदेशसात्म्यान्नैषां स्तनाःचुम्बनरीतिरेषा ॥"

कामसे चंचलचित्त हुए लाटदेशवासी—दोनों कांखें, स्त्रीका मदनमन्दिर और नाभिमूलका भी चुंबन करते हैं, क्योंकि इसका उनके यहां देशाचार है किन्तु स्तन और स्तनाग्र चूमनेकी उनमें रीति नहीं है। नाभिके नीचे तो जघन है, इस कारण जघनका चुंबन भी सिद्ध होता है, रतिरहस्यने इसे भी कहा है। अतएव इन सबकी एकवाक्यता करें तो लाटदेशवासियोंके तीन चूमनेकी जगहें होती हैं—कांखें, मदनमन्दिर और मदनमंदिरके पासकी जगहें हैं। जो यह कहते हैं कि स्तन तथा स्तनाग्रोंके चूमनेकी लाटोंके यहां रीति नहीं है, यह लाटोंके यहां ही क्यों, प्रायः इस चुंबनका सार्वत्रिक प्रचार नहीं है।

चुम्बनस्थानोंपर वात्स्यायन ।

रागवशाद्देशप्रवृत्तेश्च सन्ति तानि तानि स्थानानि, न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति वात्स्यायनः ॥ ६ ॥

रागके कारण या देशाचारसे जो जो जिन २ जगहोंको चूमते हैं, वे उनके चूमनेकी जगहें हैं, सबकी नहीं हैं। ऐसा वात्स्यायन आचार्य्यका मत है॥६॥

रागवशादिति। यानि रागार्थानि देशप्रवृत्तानि स्थानानि चुम्बन्ति। देशप्रवृत्तेश्चेति। यथा लाटविषये प्रवृत्तत्वादूरुसंध्यादीनि तत्रत्याश्चुम्बन्ति तानि सन्ति न तु सर्वजनप्रयोज्यानि सर्वेण जनेन प्रयोक्तुमशक्यानि। शिष्टैरशुचित्वादशक्यानि। तेषामष्टावेव स्थानानि ॥ ६ ॥

जिन स्थानोंसे राग उपजता है यानी जो अंग सुन्दर दीखते हैं, जिनके कि सौन्दर्य्यका प्रभाव पड़ता है एवम् जिनका कि जिस देशमें चूँबनेका प्रचार है, उन स्थानों और उन अंगोंको चूमा जाता है। जैसे कि लाट देशमें घोंट और मदनमंदिर आदिका चुंबन, प्रचलित है, वहांके रहनेवाले अपने यहांके चुंबनोंको करते हैं, इन्हें सब जगहके व्यक्ति प्रयुक्त नहीं कर सकते, क्योंकि शिष्टजन इनको पशुधर्म बताते हैं, इस कारण उनके प्रयोगके विषय नहीं हैं, उनके तो आठ ही चुंबनकी जगहें हैं॥ ६ ॥

मुखचुम्बन ।

तत्र मुकुलीकृतेन वक्त्रेण संयोजनमिति लोकप्रतीतम्। तत्र स्थानविशेषेण यद्ग्रहणकर्म तस्य भेदेन चुम्बनभेदाः कथ्यन्ते। तत्र चुम्बनस्थान आस्यस्य मुख्यत्वात्तत्र चुम्बनमुच्यते।

मुखको कलीकी तरह गोल करके चुंबन लिया जाता है इस बातको प्रायः सभी जानते हैं, इस कारण इसपर कुछ न कहकर जिन २ जगहोंको जिस २

रीतिसे चूमा लिया जाता है, इस लेनेके भेदसे ही चुंबनके भेद हो जाते हैं। चूमनकी सब जगहोंमें मुख मुख्य है, इस कारण मुखके चुंबनोंको कहते हैं।

कन्याके चुम्बन ।

तत्राप्युत्तराधरसंपुटकभेदात्त्रिविधम् । तत्र कर्मबहुत्वादधरमधिकृत्याह—

ऊपर, अधर और संपुटक भेदसे मुखचुम्बन तीन प्रकार है, इनमें अधिक उपयुक्त होनेसे अधर-चुम्बन कहते हैं—

तद्यथा—निमित्तकं स्फुरितकं घट्टितकमिति त्रीणि कन्याचुम्बनानि ॥ ७ ॥

निमित्तक, स्फुरितक और घटितक, ये तीन कन्याओंके चुम्बन हैं ॥ ७ ॥

कन्याचुम्बनानीति । असंगताप्यजातविश्रम्भत्वात्कन्यैव । नायिका एषा प्रायोक्त्री ॥ ७ ॥

असंगता भी विना विश्वास पैदा हुए कन्यासी ही है। इन तीनों चुम्बनोंका प्रयोग करनेवाली नायिका है; इनका प्रयोग पुरुष नहीं करते ॥ ७ ॥

निमितक ।

बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते न तु विचेष्टत इति निमितकम् ॥ ८ ॥

जो कि आग्रहके साथ चुम्बन करनेमें नियुक्त की गई हो; पर प्रियतमके मुखपर मुखमात्र रखकर और कुछ न करे, उसे 'निमितक' चुम्बन कहते हैं ॥८॥

१-लोलदृष्टिवदनं दयिताया३चुम्बति प्रियतमे रभसेन ।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ॥ कि० ९-४७॥
प्यारीके चंचलदृष्टिवाले मुखको प्यारेने जब जबरदस्ती चूम लिया तो लाजके साथ ही साथ, खुली गाँठोंवाला जघनवस्त्र भी नितम्बमण्डलपर ढीला पड़ गया। मुखचुम्बन शब्दसे प्रायः कपोल चुम्बनका ही अधिक व्यवहार होता है। इसमें मुखमात्रके सब चुम्बन आ सकते हैं। कविने सामान्यरूपसे मुखचुम्बनोंको कह दिया है।

२-चुम्बनेऽप्यधरदानवर्जितं सन्नहस्तमदयोपगूहने ।
क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभं प्रतिकृतं वधूरतम् ॥ कु० ८-८ ॥
चुम्बनोंमें उसका यह हाल रहता था कि अधरदान नहीं होता था। निर्दय आलिंगनमें उसके हाथ जैसेके जैसे रहते थे। यद्यपि वधूका रत संक्लिष्ट भी रहता है, उसमें नखादिकोंका प्रयोग भी नहीं हो पाता तो भी समर्थ वरको प्यारा लगता है। इसमें कालिदासने प्रारंभिक चुम्बनोंका रूप खींच दिया है।

बलात्कारेण हठाच्चुम्बने नियुक्ता मुखे नायकस्य मुखं स्वमाधत्ते न्यस्यति लज्जया न विचेष्टतेऽधरग्रहणेन । निमितकमिति सञ्ज्ञायां कन् । चुम्बनक्रियामात्रत्वात्परिमितमित्यर्थः ॥ ८ ॥

जिसे कि समझाबुझाकर पतिके चुम्बन करनेके लिये तयार किया हो, इस कारण उसने नायकके अधरपल्लवको चूमनेके लिये मुख तो कर दिया हो, पर लज्जाके कारण उसे पकड़नेकी और कोई चेष्टा वह न करे, उसे निमितक कहते हैं । क्योंकि इसमें चुम्बनकी क्रियामात्र होनेके कारण यह परिमित है ॥ ८ ॥

इसका विवेचन ।

" निमितकमिदमाहुर्योजिता यद् बलेन ।
प्रियमुखमभिवक्त्रं न्यस्य तिष्ठत्युदात्मा ॥ "

इस श्लोकमें इस सूत्रका अर्थ, कोकमहाराजने कह दिया है । पर श्लोकका अर्थ करतीवार श्रीभगीरथजीने आग्रह करनेवालियोंका भी निर्देश कर दिया है, कि–सखियोंने आग्रहके साथ पतिके चुम्बनके लिये कह दिया हो । यदि सखियोंके कहनेपर भी पूरा काम न करे तो सखियां बेचारी क्या करें । यहां अनंगरंग तो बिलकुल उलटी ही गंगा बहाता है । वह कहता है, कि–

" नारीमुखान्ते वदनं स्वकीयं समानयेद् यत्र बलेन कान्तः ।
शनैश्च चुम्बेदतिरागयुक्तः स्याच्चुम्बनं तन्निमिताभिधानम् ॥ "

प्रियतम प्रियतमाके अधरपल्लवपर अपना मुख जबरदस्ती रख दे । एवम् अत्यन्त प्रेमके साथ, धीरे धीरे उसका चुंबन करे तो इसे ' निमित ' कहते हैं । इसका जयमंगलाके साथ विरोध होता है, क्योंकि ये इस चुंबनको कन्याकी ओरसे होनेवाला बताते हैं ।

स्फुरितक ।

वदने प्रवेशितं चौष्ठं मनागपत्रपावग्रहीतुमिच्छन्ती स्पन्दयति स्वमोष्ठं नोत्तरमुत्सहत इति स्फुरितकम् ॥९॥

अपने मुखमें नायकके अधर कर देनेपर, शर्म थोड़ी हठ जानेके कारण नायकके अधरको पकड़ लेनेकी इच्छासे अपने अधरको तो चलाये, पर ऊपरके होठको न चला सके, इसे ' स्फुरितक ' कहते हैं ॥ ९ ॥

---

१ 'नि' उपसर्गपूर्वक 'माङ् माने' धातुसे भावमें 'क्त' होकर, निमित शब्द बनता है। जिसका परिमित अर्थ होता है । इससे संज्ञामें 'कन्' होकर ' निमितक ' शब्द बन जाता है ।

वदने नायिकायाः प्रवेशितं चौष्ठं स्वमधरं नायकेन । किंचिच्छ्लथीकृतलज्जा अनुग्रहीतुमिच्छन्ती । समग्रहणेन कथं तत्क्रियेतेति चेदाह—स्पन्दयतीति । स्वमोष्ठमधरं चलयतीति [ते] नोत्तरमोष्ठमुत्सहते । स्पन्दयितुमर्थात् । तमपि यदि चलयति गृह्णात्येव समग्रहणेन । स्फुरितकमधरस्फुरणात् ॥ ९ ॥

जब नायक, नायिकाके मुखमें अपना अधरपल्लव कर दे तो नायिका कुछ लाजके कम हो जानेके कारण वह उसके अधरको दबानेकी इच्छासे अपने नीचेके होठ (अधर) को तो चला दे, पर ऊपरके होठको चलानेका उत्साह न करे, जिससे कि नायकका होठ उसके दोनों होठोंके बीच दब जाय। इस चुम्बनमें नायिका नीचेके अधरको चलाती है, इसी कारण से 'स्फुरितक' कहते हैं। इस क्रियाको नायिका ग्यारहवें सूत्रके बताये हुए 'सम' चुम्बनकी रीतिसे करती है, इसी कारण जयमंगलाने यह कहा है, कि–'समके ग्रहणसे कैसे करेगी, इस बातको कहते हैं।' यानी दोनों एक दूसरेके ठीक सामने होकर इसे करते हैं। कैसे ? यह ऊपर बता चुके हैं ॥ ९ ॥

घट्टितक।

ईषत्परिगृह्य विनिमीलितनयना करेण च तस्य नयने अवच्छादयन्ती जिह्वाग्रेण घट्टयति इति घट्टितकम्॥१०॥

शर्मके और भी हट जानेपर अपने होठोंके बीचमें आये हुए नायकके अधर-पल्लवको अपने दोनों होठोंसे भींच कर, शर्मसे आखें मीचे हुए ही प्यारेकी आखोंको अपने दोनों हाथोंसे मींचती हुई, अपनी जीभ उसके होठपर फेरे तो इस चुम्बनका नाम 'घट्टितक' है ॥ १० ॥

ईषत्परिगृह्येति सर्वथा त्रपानपगमात् । समं नायकाधरौष्ठाभ्यां समन्ततो गृहीत्वा। स्पष्टग्रहणात्समग्रहणं नाम चुम्बनं वक्ष्यति । निमीलितनयना लज्जया । जिह्वाग्रेण घट्टयन्ती सर्वतो भ्रमणेन स्पृशन्तीत्यर्थः । करेण नयने तस्यावच्छाद-यन्ती मैवमवस्थां मामयं द्रक्ष्यतीति । घट्टितकमधरघट्टनात् । सर्वत्र संज्ञार्थेनैव कर्मातिदेश इत्यधिकृतौ वेदितव्यम् । एषामानुपूर्व्येणैव प्रयोग इति ॥ १० ॥

पहिले चुम्बनके समयसे कुछ लज्जा तो कम हुई पर पूरी नहीं गई, इस कारण जिस समय जितना होठ नायकने नायिकाके मुखमें दिया था उसे उतना ही या जितना नायिकाने चुम्बनमें पकड़ा था उतना ही अपने दोनों

होठोंसे चारों ओरसे पकड़ती हुई । शर्मसे अपनी आखें बन्द करके 'ऐसा करती हुई मुझे यह न देखे' इस कारण अपने दोनों हाथोंसे प्यारेकी दोनों आखोंको मींचती है तथा उसके होठपर अपनी जीभ भी फेरती जाती है । इस चुम्बनमें थोड़ा ही पकड़ा जाता है, क्योंकि स्पष्ट ग्रहण करनेसे तो सम चुम्बन हो जायगा जिसे कि हम अगाड़ी कहेंगे । इस नायकके अधरपल्लवपर जीभकी घट्टना (फेरना) भी होता है, इस कारण इसे 'घट्टितक' कहते हैं । इस अधिकरणमें जिसका जो नाम दिया है उसके शब्दार्थको ही लेकर दिया है । इन तीनों चुम्बनोंका प्रयोग तो क्रमसे ही होता है ॥ १० ॥

बाकी की नायिकाओंके चुम्बन ।

इदानीं शेषाणां नायकनायिकानां कर्मभेदादधरचुम्बनविकल्पानाह—

ऊपरके तीन चुंबन तो प्राथमिक सहवासवालोंके हो गये, अब इनसे बाकी जो प्रिया प्रेयसी हैं, उनके भी चुंबनोंको, चुंबनके व्यापारोंके भेदसे भिन्न भिन्न करके कहते हैं, कि—

समं तिर्यगुद्भ्रान्तमवपीडितकमिति चतुर्विधमपरे ॥ ११॥

बाकीके नायिका नायकोंके—सम, तिर्यग्, उद्भ्रान्त, अवपीडितक, ये चार चुंबन होते हैं । इन पाँचों चुंबनोंमें दोनों होठोंसे दूसरेका अधर ग्रहण किया जाता है ॥ ११ ॥

सममिति । ओष्ठपुटेनाधरे पञ्चकग्रहणम् । तत्र यत्सर्वमभिमुखं गृह्यते तत्सम-ग्रहणम् । यत्साचीकृतेनोष्ठपुटेन सर्वं वर्तुलीकृत्य गृह्यते तत्तिर्यग्ग्रहणम् । यच्चिबुके शिरसि च गृहीत्वा मुखं भ्रमयित्वा गृह्यते तद्भ्रान्तम् । परस्पराधरग्रहणमित्यर्थः । तदेव त्रितयमवपीडितम् । अवपीड्य ग्रहणात् । पूर्वत्रितयं पीडितमिति विशेषः । तत्रोभाभ्यामेव यत्पीडितं तच्छुद्रपीडितम् । यज्जिह्वाग्रेण सह तदवलीढपीडितम् । तच्चूषणमधरपानं चेति नामद्वयेनोच्यते ॥ ११ ॥

१—यन्मुखग्रहणमक्षताधरं दत्तमव्रणपदं नखं च यत् ।
यद्रतं च सदयं प्रियस्य तत्पार्वती विषहते स्म नेतरत् ॥ कु० ८-९ ।

नई दुलदिन, उस रतको सह लेती थी जिसमें अधरमें विना ही दाँत लगाये मुखग्रहण होता था । एवम् जिनसे जखमें न हों ऐसा नाखूनोंका प्रयोग होता था । इससे जो रत उलटा होता था, वह उसे नहीं सह सकती थी । कालिदासजीने इस कथनसे उन सब प्राथमिक चुम्बनोंका ग्रहण कर लिया है जो कष्ट विना होते हैं ।

सम–जो सामनेसे पूरे होठको परिस्फुट दबाकर परस्परका चुंबन हो उसे ' समग्रहण ' कहते हैं । तिर्यग्–जो कि दोनों होठोंको टेढ़ा करके उनसे चूमनेके नायिकाके होठको गोल करके परस्परका ग्रहण किया जाता है, इसे ' तिर्यग्ग्रहण ' कहते हैं । उद्भ्रान्त–जो कि ठोढ़ी और शिरको पकड़ अपनी ओर मुख घुमा, एक दूसरेका अधरपल्लव पकड़ा जाता है, इस 'भ्रान्त' कहते हैं । यह ' परस्परका अधरग्रहण ' चुंबनके तीनों भेदोंके साथ योग रखता है, इसी कारण हमने ऊपरके दोनोंमें भी परस्पर दिखा दिया है । क्योंकि जो चुंबन करेगा उसे यह क्रिया करनी होगी । यदि दूसरेको दुःख देते हुए शिर घुमाकर चुंबन किया जाय तो यही ' अवपीडितक ' हो जायगा । यदि अवपीडन न हो तो ' उद्भ्रान्त ' है ही । इस अवपीडितकसे पहिले तीनों चुंबन ' पीडित ' कहाते हैं, यानी इनमें सामान्य पीडन होता है । यह पीडित और अवपीडितमें विशेपता ह । यदि इनचुंबनोंमें अपने दोनों होठोंसे ही अधर दबाया जाय तो यह शुद्ध पीडित है । यदि दोनों होठोंके साथ जीभ भी सामिल कर ली जाय तो यह ' अवलीढपीडित ' है । इस अवलीढपीडितको ही चूषित और अधरपान इन दो नामोंसे कहते हैं इनमें ओठपुटसे अधरमें चुम्बन ग्रहण होता है ॥ ११ ॥

आकृष्टचुम्बन ।

पञ्चमग्रहणमाह—

इन चार चुम्बनोंके सिवा सबका पहिलासा पांचवाँ चुम्बन भी कहते हैं कि–

अङ्गुलिसंपुटेन पिण्डीकृत्य निर्दशनमोष्ठपुटेनावपीडयेदित्यवपीडितकं पञ्चममपि करणम् ॥ १२ ॥

अँगूठा और तर्जनीसे नायिकाके अधरको गोल करके, विना ही दाँत लगाये, अपने दोनों होठोंसे भींच ले । यह अवपीडितनामक पांचवां भी चुम्बन है ॥ १२ ॥

अंगुलिसंपुटेनेति तर्जन्यंगुष्ठसंपुटेन । पिण्डीकृत्य गृहीत्वा । ततो निर्दशनं दशनव्यापारं विना ओष्ठपुटेनावपीडयेत् । अत्र पीडनेऽपि बहिः पिण्डिताकर्षणं विशेषः । पञ्चके तदाकृष्टचुम्बनं नाम ग्रहणम् ॥ १२ ॥

अँगूठा और उसके पासकी अँगुली दोनोंसे, जिसके अधरका चुम्बन करना है उसके अधरको अगलबगलसे पकड़कर, अपने दोनों होठोंमें दबा,

खिना दाँत लगाये ही भींचे तो इसका नाम 'आकृष्टचुम्बन' है। यद्यपि इसमें भी पीडन है पर अगलबगलसे अँगूठा तथा उसके पासकी अँगुलीसे उसे दवाकर खींचना भी होता है, यह इसमें विशेषता है। पांचवें चुम्बनमें इस 'आकृष्टचुम्वन' का ग्रहण है ॥ १२ ॥

एवं कर्मभेदादष्टविधमधरचुम्बनमुक्तं त्रीणि कन्याचुम्बनानि पञ्च ग्रहणचुम्बनानीति ।

इस तरह क्रिया भेदसे आठ तरहका चुम्बन कह दिया। इसमें तीन कन्याओंके चुम्बन तथा बाकी औरोंके चुम्बन हैं।

चुम्बनका द्यूत ।

तत्र कर्मणा चुम्बनभेदमशेषं समाप्यैवमवसरप्राप्तत्वादधरचुम्बने द्यूतमाह—

यहां व्यापार भेदसे चुम्बनके सारे भेद दिखाकर मौकेके अनुसार, अधरचुम्बनकी जिद्दाजिद्दी या द्यूतको कहते हैं कि—

द्यूतं चात्र प्रवर्तयेत् ॥ १३ ॥

इस चूँमाचामीमें जिद्दाजिद्दी या जूआ शुरू कर दे ॥ १३ ॥

द्यूतं चेति । अत्रेत्यस्मिन्नधरचुम्बने । नान्यस्थाने । चुम्बने विशोभत्वाद् द्यूतमनुरागवर्धनं स्यात् ॥ १३ ॥

अधरके चूँवनेमें ही हार जीत चले, दूसरी जगहके चुंबनमें नहीं, क्योंकि इसीमें हार जीत अच्छी लगती है। इससे अनुराग बढ़ता है ॥ १३ ॥

इसका लक्षण व हार जीत ।

तत्र जयपराजयफलत्वाद्द्यूतस्य लक्षणमाह—

इसमें हार-जीतरूप फल होनेके कारण, इस जूआका भी लक्षण करते हैं, कि—

पूर्वमधरसंपादनेन जितमिदं स्यात् ॥ १४ ॥

हम तुममें जो पहिले अधर चूमेगा वही जीतेगा ॥ १४ ॥

पूर्वमिति । आवयोः परस्परं चुम्बतोर्येन पूर्वं प्रथमतोऽधरस्य ग्रहणविधिना संपादनं कृतं तस्मिन् सति तेन जितम् । किं तदित्याह—इदम् । इत्यनेन द्वयोरभिमतपणं सूचयति । द्यूतं च कपटेनाकपटेन वा स्यात् । तत्र यल्लौकिकेनैव चुम्बनेन द्वावेव परस्परस्याधरं चुम्बतस्तदकपटं च वक्ष्यति । तत्र तस्मिन्नकपटे

द्यूते प्रवृत्ते नायकेन पूर्वमन्यतमेन ग्रहणम् । चुम्बनेन गृहीताधरत्वाज्जिता । अकपटद्यूते नायिकाया अबलत्वात्सैव जिता शोभते । कपटद्यूते चास्यास्तदनुरूपत्वाज्जयं वक्ष्यति । नायकेन तु कपटद्यूते न जेतव्या । तस्या अननुरूपत्वात् १४

मैं आपके अधरपल्लव (नीचेके होठ) को चूमता हूं, आप मेरेको चूमो । हम तुम दोनोंमें जिसने विधिके साथ पहिले अधर चूम लिया वही जीता तथा जिसका ले लिया वही हारा समझा जायगा । यह दोनोंकी शर्त रहनी चाहिये । इस बातको आचार्य्य यह जीत होगी इस कथनसे बता रहे हैं । यह जूआ कपटसे और विना कपटके भी हो सकता है । यदि दोनों ही लौकिक चुंबनसे आपसके अधरको चूमते हुए शर्त पूरी करें यह निष्कपट चुंबन है । इस बातको भी अगाड़ी कहेंगे । यदि विना कपटके जूआ मचा हो तो उसके सामनेवाले नायकको पहिले लेना चाहिये, क्योंकि यदि नायक उसका पाहिले अधर पान कर लेगा तो उसे जीत लेगा । यदि साफ खेल है तो नायिकाको कमजोर होनेके कारण वही हारी अच्छी लगती है। यदि कपटका खेल हो तो इसमें विजय नायिकाकी ही अच्छी लगती है, इस कारण उसे ही जीतने देना चाहिये, यह आगे कहेंगे । कपटके इस जूएमें नायकको प्यारी न जीतनी चाहिये, क्योंकि इसमें उसका जीतना उचित नहीं है ॥ १४ ॥

द्यूतका कलह ।

तत्रान्यतरस्य जयेऽपरस्य कलहोऽवश्यं भावी । द्यूतस्य कलहास्पदत्वात् । इति कलहयोजनं रागोद्दीपनार्थमाह--

यदि एक जीतेगा तो दूसरा अवश्य झगड़ा करेगा, क्योंकि इसमें तो झगड़ा होता ही है । इस बातको ध्यानमें रखकर कहते हैं, कि इसकी लड़ाईसे भी राग प्रचण्ड होता है, इस कारण द्यूत-कलहको निचले सूत्रसे दिखाते हैं, कि--

तत्र जिता सार्धरुदितं करं विधुनुयात्प्रणुदेद्दशेत्परिवर्तयेद्बलादाहृता विवदेत्पुनरप्यस्तु पण इति ब्रूयात् । तत्रापि जिता द्विगुणमायस्येत् ॥ १५ ॥

इस द्यूतमें यदि जीत ली गई हो और जीतका अधरचुम्बन होता हो तो कुछ २ रोनेके साथ हाथोंको कपाने लग जाय, बोलीठोली मार दे, दांतोंसे काट ले, होठ छुड़ानेके लिये इधर उधर हो, बलपूर्वक जीतनेपर विवाद करने

लग जाय कि-' फिर शर्त हो ' यदि उसमें भी जीत ली जाय तो इन्हीं बातोंको दुबारा दूना करे ॥ १५ ॥

सार्धरुदितमिति क्रियाविशेषणं चैतत् । अधरपीडोपख्यापनार्थं सहार्धरुदितेन कृतकेन करं विधुनुयात्कम्पयेत् । प्रणुदेत्तर्जयेत् । भङ्गचैलक्ष्यान्नायकं क्षिपेत् । दशोच्छ्लेषमधरग्रहणं बुद्ध्वा दन्तैः खण्डयेत् । परिवर्तेत मुखेनाशक्ता चेत्कायेनाधरमोक्षार्थम् । विवदेन्नैव जितास्मि मयैव जितमिति कलहयेत् । पुनरस्त्वपरः पण इति । पुनः क्रीडामः । पूर्वस्मात्पणादयमपरः पण इति ब्रूयात् । तत्रापीति द्वितीयेऽपि पणे । द्विगुणमायस्येदिति करधूननाद्याधिक्येन कुर्यादित्यर्थः ॥ १५ ॥

' कुछ रोती हुई ' यह वाक्य, कँपाने आदिके साथ सम्बन्ध रखता है, जिससे यह तात्पर्य्य निकलता है कि जीतका अधरचुम्बन नायक करने लग जाय तो रोते हुए ही हाथोंको कँपाने आदिका काम करे . जिससे यह मालूम हो कि इसके अधरमें मेरे चुम्बनसे बड़ा कष्ट हो रहा है । रंगढंगके साथ बोली मार दे । मिले हुए अधर ग्रहणका जानकर दांतोंसे खण्डित कर दे यानी दाँतोंके प्रयत्नसे उसे हटाये । यदि मुख न छुटा सके तो उसे छुटानेके लिये शरीरको इधर उधर ही करने लगे । झगड़ा करने लग जाय, कि-' आपने मुझे नहीं जीता, मैंने ही आपको जीता है । ' अबकी यह शर्त है, लाओ अब खेलें, पहिलेसे अलग अबकी यह शर्त और अधिक है । यदि उसमें भी जीत ला जाय तो फिर और दूना पाखण्ड करे ॥ १५ ॥

कपट द्यूत ।

कपटद्यूतमाह--

विना कपटके चुम्बन आदिकी शर्तके अधर-चुम्बनको बता कर, अब कपटसे जीतनेके ढंग बताते हैं, कि-

विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाधरमवगृह्य दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा हसेदुत्क्रोशेत्तर्जयेद्वल्गेदाह्वयेन्नृत्येत्प्रनर्तितभ्रुणा च विचलनयनेन मुखेन विहसन्ती तानि तानि च ब्रूयात् । इति चुम्बनद्यूतकलहः ॥ १६ ॥

विश्वासमें आये हुए अथवा असावधानके अधरको अपने होठोंसे इस प्रकार पकड़े, कि दांतोंके बीचमें आकर स्वतः निकाला न जा सके । फिर हँसे, चिढ़ाये, डराये, शरीर मटकाये, बुलाये, नाचे, भौंहे मटकाकर, आखें चलाकर, हँसती हुई, राग बढानेवाली बातोंको कहे ॥ १६ ॥

विश्रब्धस्येति । तस्मिन्नेव सुखे मुखचुम्बनद्यूते अन्तरा विश्रब्धिकया नायिका विश्रम्भयेत् । ततो विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाकस्मादन्यत्र गतचेतसोऽधरमवगृह्यौष्ठ-संपुटेन ततो दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा यथा तदन्तर्गतमपि प्रमादान्न निर्गच्छति । सापराधत्वात् । पश्चाद्गृहीताधरा मुक्ताधरा वा यथासंभवमुत्तरं व्यापारमनुति-ष्ठेत् । इतरत्रापि कपटद्यूते स्खलितप्रमादापेक्षयैव जयो दृष्टः । इत्येवं कपटेन जित्वा हसेत् । सशब्दमितरं वा । अत्यन्तपरितोषणात् । उत्क्रोशेन्मया जित-मिति पूत्कुर्यात् । यथास्य मित्राणि शृण्वन्ति स्वसख्यो वा । तर्जयेल्लब्धोऽसी-दानीं खण्डयामि तेऽधरमिति । वल्गेत्सविलासं गात्राणि विक्षिपेत् । आह्वयेत्स-ख्यन्तमेव वापसृत्य गच्छ दर्श्यतां स्वपौरुषमिति नृत्येत्तत्परितुष्टया भ्रूणा चेति एकोद्धारक्रमेण समुन्नमितभ्रूणा मुखेनेति विहितसंस्कारः । विहसन्ती कलहावसा-नत्वात् । तानि तानीति यानि यथार्थयुक्तानि रागदीपनानि मन्यते । चुम्बनद्यूत-कलह इति । अकपटे कपटे च चुम्बनद्यूते कलह उक्तः ।

मुखचुम्बनकी शर्तके सुखके बीच, किसी निजी सखीसे अथवा अपनी गप्पशप्पोंसे नायकको विश्वास दिला दे, कि तेरे साथ कोई बेईमानी न होगी, यदि वह इस विश्वासमें आकर असावधान हो जाय, उस समय या अचानक जब कि उसका खयाल न हो, दोनों होठोंसे उसका होठ इस प्रकार पकडे कि वह दातोंके बीच इस प्रकार आ जाय कि जरासी असावधानीमें भी निकल न सके, क्योंकि नायक अनेकवार इसका अधरपान कर चुका है, अभी हाथ आया है । पीछे यथासंभव होठको छोड़कर या पकड़े ही पकड़े दूसरे कामोंको करे । इस कपटद्यूतमें पुरुषकी भी विजय, असावधानी आदिकी हालतमें ही होती है । इस प्रकार कपटसे जीतकर हँसे । हँसी अत्यन्त परि-तोष होनेके कारण आती है, यह हँसी चाहे शब्दसहित हो, चाहे दूसरी हो । लो, मैंने तुझे जीत लिया, इस प्रकार कहकर चिढ़ाये, जिससे उसके मित्र और अपनी सखियाँ सुन लें । डराये कि लो अब हाथ आगये, कहो तो काट लूं । विलासके साथ शरीरको भी चलाती जाय । उससे कहे कि मुझसे छुटाकर अब तुम जाओ, अपना पुरुषार्थ अपने दोस्तोंके भीतर दिखाओ । खुशीमें आकर नांचने लगे । एकको उठानेके क्रमसे भौंहोंको नवा मुखसे हँसती हुई कहे । क्योंकि इस प्रकार करते हुए कहनेमें उस कथनपर रंग आ जाता है । कल-

इके अवसानके कारण हँसी होती है । रागको बढानेवालीं सभी बातें होनी चाहियें । यह कपट तथा निष्कपटकी चूँमाचाटीकी शर्ताशर्ती कह दी ।

यदि नायकोऽपि जेता जितो वा तथा चेष्टेत । अन्यथा कथं कलहः स्यात् । तद्यथा—दृढमधरमवपीडयन्ससीत्कृतं च शिरो विधुनुयात् । नुदतीमुपसर्पेत् । दशन्तीं प्रतिदशेत् । परिवर्तमानां प्रतिनिवर्तयेत् । विवदमानां प्रतिविवदेत् । तेषु त्वयमपरः पण इति पूर्वकमेव तावत्प्रयच्छेति च ब्रूयात् । तत्रापि जेता द्विगुणमायस्येदिति पणद्वयसाधनार्थं साधयेत् । जितोऽपि वैलक्ष्याद्विहसेत् । जितं जितं मयेत्युत्क्रोशन्त्या मिथ्या मिथ्येत्युत्क्रोशेत् । तर्जयन्तीं प्रतितर्जयेत् । वल्गन्तीं तद्गात्रसंयमनेन प्रतिवल्गयेत् । आह्वयन्तीं प्रत्याह्वयेत् । नृत्यन्तीं करतालिकया प्रतिनर्तयेत् । विहसन्तीं तानि तानि ब्रुवन्तीं तद्वचननिषेधार्थं प्रतिब्रूयादिति । यथा चोक्तम्—जितो वा यदि वा जेता चुम्बनद्यूतकर्मणि । तस्या एव विचेष्टाभिः कलहं प्रतियोजयेत् ॥ ' इति ॥ १६ ॥

यदि नायक भी जीता हो तो जीतनेकी बातें तथा हारा हो तो हारनेकी बातें करे, नहीं तो कलह कैसे होगा ? जैसे कि—अधरको अच्छी तरह दाबता हुआ, सीकारे लेता हुआ शिर हिलाये । यदि वह रंगढंगके साथ बोलीढाले तो उससे छेड़खानी करने लग जाय । नायिका जिधर हो आप भी उधरको हो जाय । काटे तो काटने लग जाय । यदि वह अपनी जीतके गीत गाये तो उसे अपनी जीतके गाने चाहियें, कि यह तो पीछेकी शर्त थी पहिले पहिलेकी तो चुका दे । यदि जीत जाय तो दो पण पूरे करनेके लिये सिद्ध करे, जीता जानेपर भी लक्ष्यरहित हँसे । यदि नायिका कहे कि मैं जीती तो आप भी, मैं जीता मैंने जीत ली तू झूठी है, यह झूंठा हल्ला ही मचा दे । यदि वह डराये तो आप भी डराने लग जाय । यदि वह शरीर मटकाये तो आप भी अपने शरीरको संभालकर मटकाये । यदि वह बुलाये तो आप भी उसके बदलेमें बुलाने लगे । यदि वह नाचे तो आप ताली बजाकर उसे बदलेमें नचाये । यदि वह हँसती हुई कुछ कहे तो आप भी उसके खण्डनमें हँसता हुआ ही उसका उत्तर दे दे । कहा भी है कि—" चुम्बनके द्यूतकर्ममें चाहे तो हारा हो चाहे जीता हो; जैसी चेष्टा प्यारी करे उसे वैसी ही चेष्टाएँ करके लड़ाई करनी चाहियें " ॥ १६ ॥

नोखूनादि लगानेका कलह ।

एतेन नखदशनच्छेद्यप्रहणनद्यूतकलहा व्याख्याताः ॥ १७ ॥

इससे नखच्छेद, दशनच्छेद और प्रहणनके, द्यूतके यानी इनकी शर्तोंके कलहोंको भी कह दिया है ॥ १७ ॥

एतेनेति चुम्बनद्यूतकपटेनाकपटेन च । तत्राप्ययमेव विधिः । तद्यथा—पूर्वं नखच्छेद्यादिसंपादिते जितमिदं स्यादित्यादि । अत्र च द्यूतप्रवर्तनं नखदशनहस्तानां प्रहणनस्थानेष्वेव मोहनेन स्यात् । सीत्कृतद्यूतकलहस्तु प्रथमं न संभवति । प्रहणनकलहे द्रष्टव्यः । तदुद्भवत्वात् । तत्र जेता ससीत्कृतं प्रहण्यात् । जीयमानस्य प्रहणनं प्रतीच्छेत् ॥ १७ ॥

चुम्बनके कपट और निष्कपट द्यूतके कलह विधानसे नखच्छेद आदिके कलह भी कह दिये गये, क्योंकि उनमें भी यही विधि है । जैसे कि—विना कपटके नखच्छेदमें जीत जानेपर यह इसकी जीत तथा कपटकेमें इसकी हारसे यह हारा है । इसमें जुएका खेल, नाखून, दाँत और हाथोंके मारनेकी जगहोंपर ही असावधानीमें मारनेसे होता है । सीकारेकी शर्तकी लड़ाई तो पहिले नहीं होती । इसे प्रहणनके कलहमें देखना चाहिये, क्योंकि सीकार प्रहारसे ही होता है, उसकी शर्तका कलह भी इसमें ही होगा । इसमें जीतनेवाला सीकारेके साथ प्रहार करे और जिसे जीते उसपर प्रयोग करे ॥ १७ ॥

---

१ आलिंगनमें भी इस जूआका प्रयोग साहित्यशास्त्रने किया है कि—

"स्मितेनोपायनं दूरादागतस्य कृतं मम ।
स्तनोपपीडमाश्लेषः कृतो द्यूते पणस्तया ॥"

जब मैं दूरसे उसके पास आया तो उसने मन्द हास दूरसे ही भेंट कर दिया । उसने जिद्दाजिद्दीमें 'स्तनोपगूहनको ही दाँवपर रख दिया है । कहीं २ हम चौपड़ आदि जूआओंकी हारजीतोंमें भी आलिंगन, चुम्बन आदिकी शर्तें देखते हैं । इस हारजीतकी ओर तो भगवान् वेदव्यासका भी ध्यान चला गया है । उन्होंने अनिरुद्ध-ऊषाके विषयमें कहा है, कि—

"दीव्यन्तमक्षैः प्रियया ऽभिनृणमया, तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तदांग्रमासीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥"

बाणासुरने जाकर देखा तो राजकुमारीके महलमें एक अद्वितीय सुन्दर पुरुष, उसके साथ पाशोंसे खेल रहा है । वह खेल केवल खेल ही नहीं है, किन्तु उसकी हारजीतका सुहावना फल उसके शरीरपर है, यानी दाँवको जीतके जो अंगसंग किये गये हैं, उनसे राजकुमारीके स्तनोंके लगे कुंकुम और हृदयके लहलहाते हार उसके शरीरसे लग गये हैं एवम् ऊषाके हाथके नई चमेलीके गजरे उसके हाथोंमें पुर गये हैं । वह इतनी जीतोंपर भी सामने ही खेल रहा है ।

नाखूनादिकोंका प्रयोग करनेवाले ।

चण्डवेगयोरेव त्वेषां प्रयोगः । तत्सात्म्यात् ॥ १८ ॥

इनका प्रयोग भी प्रचण्ड रागवाले प्रेमी प्रेमिकाओंमें ही होता है, क्योंकि उन्हींको यह अनुकूल पड़ता है ॥ १८ ॥

एषामिति कलहानाम् । तत्सात्म्यादिति ईदृशैरेव चेष्टितैश्चण्डवेगयोः सात्म्यम् । न मन्दवेगयोः तद्विमर्दाक्षमत्वात् ॥ १८ ॥

ये कलहें प्रचण्ड रागवालोंके यहां ही होती हैं, क्योंकि उन्हें ही ऐसी चेष्टायें अनुकूल पड़ती हैं । मन्दरागवालोंके यहां नहीं हो सकतीं, क्योंकि वे विमर्द (रिगड़ापदी) नहीं सह सकते ॥ १८ ॥

उत्तरोष्ठ ।

तत उत्तरोष्ठविधिमाह—

इसके बाद अब ऊपरके होठके चुम्बनकी विधि बताते हैं कि—

तस्यां चुम्बन्त्यामयमप्युत्तरं गृह्णीयात् । इत्युत्तरचुम्बितम् ॥ १९ ॥

यदि नायिका अधरपान कर रही हो तो नायक भी मौका देख ऊपरके होठको चूमें, इसे 'उत्तरोष्ठ' कहते हैं ॥ १९ ॥

तस्यामिति । समग्रहणेन नायकाधरं चुम्बन्त्यां नायिकायामयमपि नायकः प्रसङ्गादस्या उत्तरोष्ठं समग्रहणेन गृह्णीयात् । उत्तरचुम्बितमुत्तरोष्ठग्रहणेन । प्रासङ्गिकमिदम् । केवलं तु सत्यधरे न प्रयोक्तव्यम् । ग्राम्यत्वान्नासिकापुटवत् । प्रासङ्गिके च तिर्यग्ग्रहणादीनामसंभवात् । एवमुत्तरचुम्बितमेकविधमेव । समग्रहणं नामास्या नायिकापि प्रयोक्त्री । यदि पुरुषो न जातव्यञ्जनस्तदा ॥ १९ ॥

यदि समग्रहण चुम्बनकी रीतिसे नायिका नायकके अधरको चूम रही हो तो नायक भी मौका लगाकर उसी चुम्बनकी रीतिसे ऊपरके होठको अपने मुखमें ले ले, यह 'उत्तरचुम्बित कहाता है, क्योंकि इसमें ऊपरके होठका ग्रहण होता है । यह इसी प्रसंगमें चुंबन होता है, यानी अधरके अभावके मौके पर। इस कारण अधरके रहते हुए उत्तर होठका चुंबन न करना चाहिये । यह नासिकाके पुटके चुंबनकी तरह ग्राम्य चुंबन है । जब कि तिर्यग्ग्रहण आदि न हो सकें, उस समय ही इसे करे। इस प्रकार यह उत्तरचुंवित एक ही तरहका है ।

समग्रहणका यह तात्पर्य्य है कि पुरुषके मूछें न आई हों तो इसका प्रयोग स्त्री भी कर सकती है, यदि मुछारा हो तो इसमें शोभा नहीं ॥ १९ ॥

दोनों होठोंकी एक साथ चूमनेकी विधि ।

द्वयोरपि युगपद्विधिमाह—

ऊपर और नीचेके होठोंके अलग अलग चूमनेकी विधि बताकर, दोनोंके एक साथ चुम्बनकी विधि बताते हैं कि—

ओष्ठसंदंशेनावगृह्यौष्ठद्वयमपि चुम्बेत । इति संपुटकं स्त्रियाः, पुंसो वाजातव्यञ्जनस्य ॥ २० ॥

दोनों होठोंसे सामनेवालेके दोनों होठोंको अपने मुहमें देकर चुंबन करे तथा इसी प्रकार स्त्री भी विना बालोंके चिकने होठोंको अपने मुँहमें ले सकती है, नहीं तो पुरुष ही करे । इसे 'संपुटक' कहते हैं ॥ २० ॥

ओष्ठसंदंशेनेति । उभाभ्यां ग्रहणं संदंशः । तेनौष्ठद्वयमवगृह्य वक्त्रान्तः प्रवेश्याभिचुम्बेदिति । ससीत्कारं स्वमोष्ठपुरं संकोचयेदित्यर्थः । सर्वत्र चुम्बन-विधावायाते शब्दोच्चारणं कार्यम् । संपुटकमोष्ठद्वयग्रहणात् । एतच्चतुर्विधम्— समं तिर्यग्भ्रान्तमवपीडितं च । आकृष्टं न योज्यमशोभित्वात् । स्त्रिया इति । पुंसा प्रयोक्तव्यम् । तदोष्ठयोर्निर्लोमत्वात् । स्त्रियापि पुंसश्चाजातव्यञ्जनस्याप्ररूढ-श्मश्रोः । इतरथा लोमभिर्वक्त्रपूरणमसुखावहं स्यात् ॥ २० ॥

दोनों होठोंसे पकड़नेका नाम 'संदंश' है । अपने दोनों होठोंसे सामने-वालेके दोनों होठोंको अपने मुँहके भीतर देकर चूमे और सीकारेके साथ अपने होठोंको सिकोड़े । सभी चुंवनोंमें जोरसे शब्द बोलना चाहिये । इसमें दोनों होठोंसे पकड़ते हैं, इस कारण इसे 'संपुटक' कहते हैं । यह चार प्रकारका है—सम, तिर्यग्, भ्रान्त और अवपीडितक । यानी यह पहिले बताये हुए इन चारों चुंवनोंकी रीतिसे होता है, इसमें 'आकृष्टचुंवन' का प्रयोग तो इसलिये नहीं होता कि वह अच्छा नहीं लगता । इसका पुरुष प्रयोग कर सकता है, क्योंकि स्त्रीके होठोंपर बाल नहीं होते तथा स्त्री भी प्रयोग कर सकती है पर निमूछा सामने हो । क्योंकि मूछोंवालोंके चुंबन करनेमें तो उतना आनन्द नहीं आता, जितना कि विना बालोंवालेकेमें आता है । बालोंसे मुँह भर जाना अच्छा नहीं लगता ॥ २० ॥

मुखके भीतरका चुम्बन ।

एवमोष्टचुम्बनं त्रिविधमुक्त्वा संपुटान्तर्गतत्वान्तर्मुखचुम्बनविकल्पानाह—

नीचेके होठका, ऊपरके होठका और नीचे ऊपरके दोनों होठोंका चुंबन कहकर संपुटके भीतर आजानेके कारण मुखके भीतर होनेवाले चुंबनोंको कहते हैं कि—

तस्मिन्नितरोऽपि जिह्वयास्या दशनान्घट्टयेत्तालु जिह्वां चेति जिह्वायुद्धम् ॥ २१ ॥

एकके संपुट चुंवन करनेपर जिसका चुंवन किया, वह अपनी जीभको चुंवन लेनेवालेके दाँतोंपर फेरे एवम् तालु तथा उसकी जीभपर भी फेरे तो यह ' जिह्वायुद्ध ' कहाता है ॥ २१ ॥

तस्मिन्निति संपुटचुम्बने । इतरो नायको नायिका वा यस्य संपुटकं प्रयोक्तुमस्येति (इच्छति) । प्रयोक्तुर्विवृतास्यत्वादुपर्यधश्च दशनाञ्जिह्वया घट्टयेत् । संमार्जयेदित्यर्थः । तालुं जिह्वयोर्ध्वप्रसारितया, जिह्वां वा ऋजुप्रसारितया घट्टयेत् । जिह्वायुद्धं च । कुर्यादिति शेषः । परस्परप्रेरणेन । एतच्चतुर्विधम्—अन्तर्मुखचुम्बनं दशनचुम्बनं जिह्वाचुम्बनं तालुचुम्बनं चेति ॥ २१ ॥

नायक हो वा नायिका हो, जिसपर संपुट चुंवनका प्रयोग सामनेवाला करता हो । संपुट चुंवन करनेवालेका मुख फैला रहता है, इस कारण जीभको दाँतोंपर अच्छी तरह फेरे । ऊपर जीभको फैलाकर तालुपर फेरे तथा सीधी फैलाकर जीभपर फेरे, जीभ जीभोंकी लड़ाई करे । जीभसे जीभकी लड़ाई दोनोंके कराये होती है । यह चार तरहका है । **अन्तर्मुखचुम्बन**—ऊपरकी वताई हुई रीतिके अनुसार मुखके भीतरका चुंवन । **दशनचुम्बन**—दाँतोंका चुंवन । **जिह्वाचुम्बन**—जीभका चुंवन । **तालुचुम्बन**—तालूका चूमना । इन चारों चुंवनोंकी रीति एक ही है ॥ २१ ॥

मुखदन्तयुद्ध ।

एतेन बलाद्वदनरदनग्रहणं दानं च व्याख्यातम् ॥ २२ ॥

इस जिह्वायुद्धसे मुँह और दाँतोंका देना लेना भी कह दिया ॥ २२ ॥

जिह्वायुद्धेन वदनरदनग्रहणमिति हठाद्वदनेन वदनस्य दशनैर्दशनानां ग्रहणे परस्परस्य युद्धमिति ग्रहणपूर्वकं वदनयुद्धं रदनयुद्धं च व्याख्यातम् । दानं चेति ।

एकश्चुम्बयितुं हठाद्वदनं ददाति ग्राहयितुं वा दशनानन्यो गृह्णातीत्युभयोर्ग्रहणदानपूर्वकं वदनयुद्धं रदनयुद्धं चेति ॥ २२ ॥

जबरदस्ती मुखसे मुखका तथा दाँतोंसे दाँतोंका ग्रहण करके जो आपसका मुखयुद्ध और दंतयुद्ध होता है, वह भी कह दिया । एक बलपूर्वक चुंबन करानेके लिये मुख एवं पकडानेके लिये दाँतोंको देता है, दूसरा ग्रहण करता है । इस तरह दोनोंका देने लेनेके साथ वदनयुद्ध और रदनयुद्ध चलता है ॥ २२ ॥

बाकीके अंगोंके चुम्बन ।

समं पीडितमञ्चितं मृदु शेषाङ्गेषु चुम्बनं स्थानविशेषयोगात् । इति चुम्बनविशेषाः ॥ २३ ॥

बाकी अंगोंमें उनके अनुसार सम, पीडित, अंचित और मृदु ये चार चुंबन होते हैं । ये चुंबनोंके भेद कह दिये ॥ २३ ॥

शेषाङ्गेष्विति ओष्ठान्तर्मुखेभ्योऽन्येषु ललाटादिस्थानेषु कर्मभेदात्समचुम्बनं पीडितचुम्बनमञ्चितचुम्बनं मृदुचुम्बनं चेति चतुर्विधम् । स्थानविशेषयोगादिति। यद्यत्र प्रयुज्यते तत्तत्र स्यादित्यर्थः । तत्रोरुसंधिकक्षावक्षःसु समम्, न पीडितं नातिमृदु । तेन कपोलकक्षामूलनाभिमूलेषु पीडितम् । ललाटचिबुकयोः कक्षापर्यन्ते चुम्बनमञ्चितम्। ललाटे नयनयोर्मृदुस्पर्शमात्रकरणमिति । एवमेते कर्मभेदाच्चुम्बनभेदा उक्ताः ॥ २३ ॥

होठ और मुखके भीतरके दाँत, तालु, जिह्वा आदिको छोड़कर, माथे आदिमें चुंबनके व्यापारके भेदसे सम, पीडित, अञ्चित और मृदु, ये चार तरहके चुंबन होते हैं । इनमेंसे जो जिस जगहका है वह उसी जगह प्रयुक्त होता है । घोंटू, छाती और कक्षामें सम चुंबन होता है, न तो वह मृदु ही होता है एवम् न उन्हें पीडित ही करता है, इस कारण सम कहाता है । इससे सिद्ध हो गया कि कपोल, कक्षामूल और नाभिमूलका पीडित चुंबन होता है । माथे और ठोड़ीसे लेकर काखों तकका अंचित चुंबन होता है । माथे और आखोंका चुंबन मृदु होता है यानी इन्हें छू मात्र दे । इस प्रकार क्रियाभेदसे चुंबनके भेद कह दिये गये हैं ॥ २३ ॥

स्वाभिप्राय चुम्बन ।

त एवावस्थाभेदान्नामान्तरं प्रतिपद्यन्त इत्याह—

ये ही चुंबन अवस्थाके भेदसे और २ नामोंको भी पा जाते हैं । इसी वातको कहते हैं—

सुप्तस्य मुखमवलोकयन्त्या स्वाभिप्रायेण चुम्बनं रागदीपनम् ॥ २४ ॥

अपने अभिप्रायसे सोते हुएके मुखको देखती हुईका नायकके मुखका चूमना उसके रागको बढ़ाना है ॥ २४ ॥

सुप्तस्येति । मुखमालोकयन्तीत्याहितभावत्वं दर्शयति । स्वाभिप्रायेणेति यथा स्वयं धृतिं लभते तथा चुम्बतीत्यर्थः । एवं च सति तस्या एव रागसंधुक्षणाद्रागदीपनम् । नायकस्य चुम्ब्यमानस्य प्रतिबोधात् । जाग्रतोऽप्येतत्संभवति । तत्र तदवस्थिकं सांप्रयोगिकमेव स्यात् ॥ २४ ॥

'मुँह देखती हुई' इस कथनसे भरे हुए भावपनेको दिखाते हैं । 'अपने अभिप्रायसे' इस कथनसे यह बात दिखाते हैं कि जिस प्रकार अपनेको धृति (शान्ति) मिले उस तरह चूमती है । इस प्रकार करनेपर उस नायिकाके ही रागका वर्धन होता है, क्योंकि ऐसा चुंबन करनेसे सोता हुआ नायक जग जाता है। यह जागते हुएका भी हो सकता है । उसमें वह अवस्थिक (इसी अवस्थामें होनेवाले) संप्रयोगमें ही होता है ॥ २४ ॥

चलितक ।

प्रमत्तस्य विवदमानस्य वान्यतोऽभिमुखस्य सुप्ताभिमुखस्य वा निद्राव्याघातार्थं चलितकम् ॥ २५ ॥

किसी काममें लगे हुए, कलहमें मस्त, दूसरी ओर दृष्टि दिये हुए वा सोनेवालेकी नींदको मिटानेके लिये 'चलितक' चुंबन होता है ॥ २५ ॥

निद्राव्याघातार्थमित्युपलक्षणमेतत् । प्रमत्तस्य गीतालेख्यादिषु प्रसक्तस्य । प्रमादव्याघातार्थं विवदमानस्य । तया सह कलहव्याघातार्थमन्यतोऽभिमुखस्य । अन्यतो दृष्टिव्याघातार्थं सुप्ताभिमुखस्य । सुषुप्सतो निद्राव्याघातार्थम् । 'सुषुप्सितो निद्रादिव्याघातार्थम्' इति पाठान्तरम् । चलितकमिति प्रमादादिना नायकस्य चलनं चलितकम् । 'तत्करोति—' इति णिच् । तदन्ताच्चलयतीत्यच् । ततः संज्ञायां कन् । चलितकम् । अत्र नायिकैव प्रयोक्त्री शोभते ॥ २५ ॥

गीत और आलेख्य (चित्रकाढने) आदिमें लगे हुएके प्रमादको दूर करनेके लिये, कलहकरनेमें लगे हुएके कलहको मिटानेके लिये, दूसरेकी तरफसे दृष्टि हटानेके लिये एवम् सोतेकी नींद उड़ानेके लिये इसका प्रयोग होता है। कोई 'सोते हुएकी नींद उड़ानेके लिये' इसके स्थानमें 'सोनेकी इच्छावालेकी नींद उड़ानेके लिये' ऐसा पाठ मानते हैं। इस चुंबनको चलितक इस कारण कहते हैं, कि इसमें प्रमाद आदिकसे नायकका चलन होता है। इसका प्रयोग करते नायिका ही अच्छी लगती ह ॥ २५ ॥

प्रातिबोधिक ।

चिररात्रावागतस्य शयनसुप्तायाः स्वाभिप्रायचुम्बनं प्रातिबोधिकम् ॥ २६ ॥

रातको देरसे आया पुरुष, पलिंगपर सोती हुई नायिकाका चुंबन अपने अभिप्रायसे करे तो यह 'प्रातिबोधिक' कहायेगा ॥ २६ ॥

चिररात्राविति । असंचारवेलायामागतस्य प्रयोक्तुः । संबन्धलक्षणा षष्ठी। शयनसुप्तायाः प्रयोज्यायाः । रागतश्चपल इति (?) । प्रातिबोधिकं प्रतिबोधप्रयोजनम् । मुखावलोकनस्वाभिप्रायाभावाद्रागदीपनान्न विद्यते । तत्र विस्रब्धिकायां रागदीपनम् ॥ २६ ॥

जब कि सब लोग आकर अपने २ घरोंमें सो रहे हों उस समय आये हुए चुंबन करनेवाला 'अपने अभिप्राय (इच्छा) से चुंबन' करता है। इससे नायिका जग जाती या भाव जान जाती है इसी कारण इसे 'प्रातिबोधिक' कहते हैं। इसका प्रयोग करनेवाला रागसे चपल हुआ प्रतीत होता है। इसका प्रयोग उसी नायिकामें होता है जिसके कि पानेके लिये नायकका प्रयत्न चालू रहता है, क्योंकि जो अपनेपर विश्वास कर चुकी हो उसके विषयमें इसका प्रयोग नहीं होता, क्योंकि न तो वहाँ मुख देखनेका अभिप्राय है एवम् न राग ही प्रदीप्त करना है। वहां तो राग स्वतः ही प्रदीप्त है, जिसके कि कारण वह विश्वास किये बैठी है ॥ २६ ॥

इसकी विधि ।

सापि तु भावजिज्ञासार्थिनी नायकस्यागमनकालं संलक्ष्य व्याजेन सुप्ता स्यात् ॥ २७ ॥

---

१ 'चलित' शब्दसे 'णिच्' प्रत्यय करके नामधातु बनाकर फिर 'अच्' प्रत्यय करके चलित बनाकर, पीछे 'संज्ञायां कन्' से 'कन्' होकर 'चलितक' शब्द बनता है।

जिसपर 'प्रातिबोधिक' प्रयुक्त किया जाता है वह नायिका नायकके प्रेमको जाननेके लिये नायकके आगमनकालको देख झूठे ही सो जाय ॥२७॥

सापि स्विति प्रातिबोधिकम् । भावजिज्ञासार्थिनी किंचित्पश्यामि मय्यनुरागोऽस्ति नेति संमानार्थिनी नायकादेव वैलक्ष्यसुप्ता स्यादिति । व्याजेन कृतकनिद्रया शयितेत्यर्थः । यदि मयि भावितस्तदा प्रातिबोधिकं दद्यान्मानयिता वा । कुपितेति मानेन पादपतनादिना संमानात्स्वापयेत् । एतद्विविधमावश्यकं समागतयोराह ॥ २७ ॥

जो कि यह देखना चाहे कि मुझपर प्रेम है वा नहीं वह नायकसे सम्मान चाहनेवाली झूठे ही सो जाय कि नायक न पहिचान सके कि सोती है या जगी सोती है । सोच ले कि यदि मुझसे प्रेम है तो मुझे अवश्य जगायेगा, यदि उसे यह भ्रम हो जायगा कि यह नाराज होकर सोई है तो मुझे प्रातिबोधिकसे जगा, चरण पड़कर भी मनायेगा । नायकको चाहिये कि, रुष्ट हुईको चरण पड़ने आदि सम्मानसे सुलाये । ये तीनों चुम्बन मिले हुओंके लिये परम आवश्यक बताये गये हैं ॥ २७ ॥

इसके उदाहरण ।

प्रातिबोधिक चुम्बन और उसकी विधि बताकर, अब इस बातको दिखाते हैं कि साहित्यने इसे किस प्रकार प्रयुक्त किया है, कि—

" शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै-
निंद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम् ।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ॥"

रहनेके घरको सूना देखकर, शय्यासे धीरे २ उठकर, कपटसे सोये हुए पतिका मुख बहुत कालतक देख, बालाने उसे निःशंक चूमा । पर उसके इस चुम्बनसे पतिके रोम खड़े हो गये तो जान गई कि इसने मुझे देख लिया है तब लाजके मारे मुख नीचा कर लिया, यह देखकर पतिने हँसते हुए उसे चिरकाल तक चूमा । बिहारीदासजीने भी इसी तरहका एक चुम्बन कहा है, कि—

" मैं मिस हा सोयो समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय ।
हँस्यो खिसानी गर गह्यो, रही गरे लिपटाय ॥ "

मैंने यह समझा कि प्यारा बहाना करके सो गया है, इस कारण पास पहुँचकर उसका मुख चूंम लिया, मुझे यह करती देखकर वह हँसा तो मैं खिसानीसी रह गई । उसने मेरा हाथ पकड़ लिया, मैं उसके गले लिपटी ही रह गई। यहां कवि पुरुषका भी ' प्रातिबोधिक ' कह रहे हैं। पहिले उदाहरणमें पुरुषकी ओरसे तथा दूसरे उदाहरणमें प्यारीकी ओरसे प्रयोग किया गया है । तीसरेमें यह दिखाते हैं कि प्यारेके पास आनेपर प्यारीने सोते २ ही जो क्रिया की है–

" सोवति लखि मन मानघर, ढिग सोयो प्यो आय ।
रही सुपनकी मिलन मिलि, पिय हियसों लिपटाय ॥ "

प्यारेने सोचा कि प्यारी मनमें मान करके घरमें अकेली सो गई है, तो वह भी प्यारीके पास जा सोया । प्यारी जान गई कि प्यारा आ सोया है तो सोते २ ही उसी हालतमें प्यारेके गलेसे लिपट गई, मानों प्यारेसे सोते २ स्वप्नमें मिल रही हो । और भी अनेकों तरहसे प्रातिबोधिकोंका प्रयोग होते देखते हैं ।

छायाचुम्बन ।

आदर्शे कुड्ये सलिले वा प्रयोज्यायाश्छायाचुम्बनमाकारप्रदर्शनार्थमेव कार्यम् ॥ २८ ॥

दर्पण, भींत या पानीमें पड़ी हुई, चाहे हुए या चाही हुईकी परछाईं चूमना, अपने भाव दिखानेके लिये होता है ॥ २८॥

आदर्श इति । कुड्ये दीपाद्यालोकयुक्ते । प्रयोज्याया इत्युपलक्षणार्थत्वान्नायकस्यापि प्रयोज्यस्य । विशेषाभावात् । छायाचुम्बनमिति दर्पणादिषु प्रयोज्यप्रतिबिम्बस्य समीपालौकिकमेव चुम्बनं वैहासिकं कार्यम् । आकारप्रदर्शनार्थमिति । भावसूचकमाकारं प्रदर्शयितुमित्यर्थः। यतस्तदवस्थां दृष्टो नरो मन्यते मय्यनुरक्तो यदेवमाकारयतीति । कुड्ये तु न वैहासिकम्। किं तु छायावदने वदनं विदध्यादेवमित्याकारप्रदर्शनार्थम् ॥ २८ ॥

भींतपर दीपककी रोशनी या धूपमें परछाईं दीखती है । सूत्रमें केवल चाही हुई इतना ही लिखा है, इसका तात्पर्य्य चाहे हुए नायकसे भी है । क्योंकि इसमें कुछ विशेष नहीं है जो नायिकाका भी समझा जाय । इस छायाचुम्बनकी रीति यह है कि दर्पण आदिमें जहां उसका प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो,

उसके समीप जा, अपने भी हँसीका चूमनेका मुख जैसा बना देना चाहिये। इस प्रकार करके सामनेवालोंको अपनी तवीयत दिखाई जा सकती है। क्योंकि इस अवस्थाको देखकर चाहनेवाली व चाहनेवाला मान लेता है कि यह मुझपर आसक्त है, तभी ऐसा करता है। भीतपर हँसीका चुम्बन तो नहीं हो सकता, किन्तु उसके मुँहकी छायापर अपनी छाया डाली जा सकती है, जिससे कि सामनेवाला अपनी तवीयत जान जाय ॥ २८ ॥

साहित्यके उदाहरण।

इसे बताकर अब यह भी बताये देते हैं, कि कविलोग इस पदार्थका अपनी कविताओंमें किस प्रकार प्रयोग करते हैं कि--

" ययौ न कोऽपि क्षममास्यमेलितं
जलस्य गण्डूषमुदीतसंमदः ।
चुचुम्ब तत्र प्रतिबिम्बितं मुखं
पुरः स्फुरन्त्याः स्मरकार्मुकभ्रुवः ॥ " नै० १६-६६ ।

कामदेवके धनुप जैसी भौंहोंवाली किसी अपूर्व सुन्दरीके मुखका कुल्हेके पानीमें प्रतिबिंव पड़ रहा था जिसे देख, कोई युवा आनन्दमें निमग्न हो गया, वह उस प्रतिबिंबित मुखका ही चुंवन करने लगा। यह कामशास्त्रका बताया हुआ छायाका ही चुंवन है।

"चुचुंब नोर्वीवलयोर्वशीं परं पुरोऽधिवारिप्रतिबिम्बितां विटः ।
पुनः पुनः पानकपानकैतवाच्चकार तच्चुंबनचुंकृतान्यपि ॥" नै० १६-९९ ।

भोजन करनेवाले किसी विटके पानकरससे भरे पात्रमें भूमण्डलकी उर्वशीका प्रतिविंब पड़ रहा था, यह देख, उसने उस परछाईका चुंबनमात्र ही किया हो यह बात नहीं, किन्तु पानकके पीनेके समयके अनुकरणके वहाने 'चूँ चाँ' आदि सीकारे भी ले डाले। यहां छायाके चुम्बनके साथ कामशास्त्रके बताये हुए इसके साथी सीत्कारका भी प्रयोग कर डाला है।

संस्कृतके कवियोंकी तरह भाषाके कवियोंने भी इनका अत्यन्त प्रसन्नताके साथ प्रयोग किया है, इसी बातको हम विहारीदासकी कवितामें दिखाते हैं कि--

" चितई ललचौंहैं चखनि, डटि घूँघट पटमाहिं ।
छलसों चली छुवायके, क्षणक छबीली छाँहिं ॥ "

उस सुन्दरीने घूँघटके कपड़ेके भीतरसे ही ललचाई हुई आखोंसे प्यारेको देखा और बड़ी ही चतुरतासे छलसे थोड़ी देर प्यारेकी छायासे अपनी छायाका

आलिंगन कराके चट चल दी । यह छायाका आलिंगन है, इसका प्रयोग करनेवाली नायिका है । प्रयोग करनेवालीने अपनी छाँहको नायककी परछाईंके साथ मिलाया है ।

संक्रान्तक चुम्बन और आलिङ्गन ।

बालस्य चित्रकर्मणः प्रतिमायाश्च चुम्बनं संक्रान्तकमालिङ्गनं च ॥ २९ ॥

बालकके चित्रको और प्रतिमाको चूँमना वा आलिंगन करना 'संक्रान्तक' आलिंगन वा चुम्बन होता है ॥ २९ ॥

बालस्येति । स्वाङ्कगतस्य लाडीकस्य चित्रकर्मण आलेख्यस्य प्रतिमाया मृच्छिलाकाष्ठादिमय्याः प्रयोज्यासमक्षं चुम्बनं संक्रान्तकम् । तदध्यारोपादालिङ्गनं च संक्रान्तकम् । यथासंभवं चुम्बनाधिकारेऽपि प्रसङ्गादुक्तम् । छायाचुम्बनं संक्रान्तकं चोभयमावस्थिकं स्पर्शगोचरातीतयोरभिनवृत्तसंभाषणयोरसमागतयोर्द्रष्टव्यम् ॥ २९ ॥

गोदमें बैठे हुए लाड करने लायक गोदके बच्चेके फोटूको या मिट्टी, शिला वा काठकी बनी प्रतिमाको, उसके सामने चूंमे या आलिंगन करे, जिसे कि चूंमना या हृदयसे लगाना चाहता है तो इसे संक्रान्तक कहते हैं । क्योंकि जिसके सामने इसका प्रयोग होता है उसके चूमने या लगानेकी भावनासे प्रतिमा आदिक लगाये या चूमें जाते हैं इसी आरोपके कारण इसका नाम 'संक्रान्तक' है । यह आलिंगनमें पहिले कहा जा सकता है पर प्रकरणवश चुम्बनके अधिकारमें भी कह दिया है । छायाचुम्बन और संक्रान्तक ये दोनों आवस्थिक (अवसर विशेषके लिये) हैं । जो कि आपसमें एक दूसरेको इसी तरह नहीं छू सकते, जिनमें कि बातचीत भी नहीं है, जो कि नहीं मिले हैं, उन व्यक्तियोंमें ये प्रयुक्त होते हैं ॥ २९ ॥

दोनोंके उदाहरण ।

प्रतिमा आदि जड़ वस्तु इस भावसे चूंमे या हृदय लगाये जाते हैं एवम् वात्सल्यसे छिपाकर गोदके बच्चे आदिको चूंमा जाता है । इसीपर विहारीदासका एक दोहा देते हैं कि—

" विहँसि बुलाय विलोक उत, प्रौढ तिया रस धूमि ।
पुलकि पसीजति पूतको, पिय चूम्यो मुख चूमि ॥ "

प्यारे पतिने आकर गोदके बच्चेको मुख चूंम दिया, इसे देखकर किसी रति-निपुणाको अपनी याद आ गई । हृदयमें कामका आविर्भाव हुआ, जिससे सात्त्विक भावके उदय होनेसे पुलकावलि हो गई, शरीरपर पसीना आ गया । इसके पीछे उसने यह किया कि पतिके चूंमे मुखको आप भी वारवार चूंमने लगी । यह संक्रान्तिक चुम्बन है, बच्चेके लाड़का चुम्बन नहीं किन्तु किसी दूसरे ही भावसे आकुल होकर चूंमती है । यह संक्रान्तिक चुम्बनका उदाहरण तो दिखा चुके अब आलिंगनका और दिखाते हैं कि—

" लखि गुरुजन विच कमलसों, सीस छुपायो श्याम ।
हरि सन्मुख करि आरसी, हिये लगाई वाम ॥ "

कृष्ण राधाको गुरुजनोंके बीचमें बैठी देखकर, केवल शिरमें कमल छिवा लिये, इसके उत्तरमें श्रीराधाने यह किया कि भगवान् कृष्णके सम्मुख अपनी आरसीको करके, उसे अपने हृदयसे लगा लिया । इसका तात्पर्य्य यह है कि आरसीमें कृष्णका प्रतिबिम्ब पड़ा था, इसी कारण उसे छातीसे लगाया । यह संक्रान्तिक आलिंगन है, किन्तु आरसीमें पड़ी प्यारेकी परछाईंको देखती है तो उस समय उसकी परछाई भी जरूर ही उसमें पड़ी होगी, वह पड़ी होगी तो प्यारेकी छायासे भी लगी ही होगी । इसके बाद ही वह आरसी हृदयसे लगा ली जाती है । वह प्यारेकी छायावाली मानकर लगाई यह हो या प्यारेके लगानेकी भावनासे लगाई गई हो तो मिश्र दोनों हैं । अतः इसमें साधारणसे चमत्कार अधिक अवश्य है । क्योंकि दूसरे प्रयोगका संस्कार हो गया है ।

अङ्गुलि-चुम्बन ।

तथा निशि प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपे गतस्य प्रयोज्याया हस्ताङ्गुलिचुम्बनं संविष्टस्य वा पादाङ्गुलि-चुम्बनम् ॥ ३० ॥

रातमें, खेल तमासोंमें, कुटुम्बियोंके बीचमें, पासमें बैठा हुआ चाहनेवाला या चाहनेवाली, अपनी चाहकी व्यक्तिके हाथकी अंगुलियां चूंब ली वा सोते-हुएके पैरकी अंगुलियाँ चूम ली जा सकती हैं ॥ ३० ॥

तथेत्याकारप्रदर्शनार्थम् । निशि रात्रौ प्रेक्षणके वा नटादिदर्शने वा स्वजन-समाजे वा ज्ञातिसंबन्धिषु संभूय स्थितेषु प्रयोज्यायाः समीपोपविष्टस्य प्रयोक्तुः उपलक्षणार्थत्वात्प्रयोज्यस्य वा समीपोपविष्टायाः प्रयोक्त्र्याः । हस्तांगुलिचुम्बन-

मिति । तदा हस्तस्य सुलभत्वात् । तमन्यापदेशेनाकृष्य तदंगुलिचुम्बनम् । संविष्टस्येति नायिकासमीपे शयितस्य च तद्धस्तांगुलिचुम्बनं च तदानीमुभयोरपि सुलभत्वात् । तत्र हस्तांगुलिचुम्बनस्य द्वावपि प्रयोक्तारौ । पादांगुलिचुम्बनस्य नायिकैव । न नरः । गर्हितत्वात् ॥ ३० ॥

अपने मनके भावोंको जतानेके लिये रातमें, खेल तमासोंके देखते हुए अथवा जातिके बाँधवोंके बीच मिलकर बैठे हुओंमें, अपनी चाहकी चीजके पास बैठा हुआ चाहनेवाला या चाहनेवाली अपनी चाहकी चीजके पास बैठ, उसके हाथकी अंगुलियोंका चुम्बन करे, क्योंकि ऐसे समयमें हाथोंका मिल जाना अत्यन्त सहल है । उसे किसी वहानेसे खींचकर हाथ चूंमें । यदि नायक नायिकाके पास ही सो रहा हो तो दोनोंको एक दूसरेके हाथको चूंमना सुलभ है । इस हस्तचुम्बनको स्त्री पुरुष दोनों ही कर सकते हैं पर पैरोंकी अंगुलियोंका चुम्बन नायिका ही कर सकती है । नरको उसे न करना चाहिये, क्योंकि निन्दित है । यद्यपि सूत्रमें प्रयोज्या पर, प्रयोक्ताका प्रयोग करना कहा है पर प्रयोज्या शब्द प्रयोज्यका और प्रयोक्ता प्रयोक्त्रीका भी उपलक्षक है, इसी कारण हमने ' चाहनेवाला या चाहनेवाली ' ऐसा अर्थ किया है ॥ ३० ॥

संवाहिकाके अभियोग।

संवाहिकायास्तु नायकमाकारयन्त्या निद्रावशादकामाया इव तस्योर्वोर्वदनस्य निधानमूरुचुम्बनं चेत्याभियोगिकानि ॥ ३१ ॥

जो शरीरको दाबकर उसके जरियेसे ही उससे मिल लेना चाहती है, उसे चाहिये कि उसे इशारे करे । यदि नायक उनपर ध्यान न दे तो मानो इसे इसकी कोई चाह ही नहीं, इस तरह नींदके वहाने उसकी जाघोंपर अपना मुँह रख दे फिर चूंम ले । ये सब उसके मिलनेके उपाय हैं ॥ ३१ ॥

संवाहिकायास्त्विति । नायकं संवाहयति या काचित्संवाहनद्वारेण नायकमभियुङ्क्ते । आकारयन्त्या भावसुचकमाकारं ग्राहयन्त्याः । अकामाया इवेति चुम्बितुमनिच्छन्त्या इव । नायकाकारस्यागृहीतत्वात् । अतः कृतकनिद्रया सा नायकस्योर्वोश्चुम्बितुं वदनं निधत्ते । पादांगुष्ठचुम्बनं तु पादावाकृष्य संवाहयन्त्या बुद्धिकारितमपि न दोषाय । मुखांगुष्ठयोस्तदानीं परस्पराश्लेषसंभवात् । एतांगुलिचुम्बनादीति स्पृष्टकादिना असोढगात्रस्पर्शयोरनतिप्रवृत्तसंभाषणयोरसमागतयोः ।

आभियोगिकानीति अभियोगप्रयोजनानि छायाचुम्बनादीनि । तदानीं प्रयोगान्तराणि च लौकिकचुम्बनवत्प्रयोक्तव्यानि । कर्मभेदासंभवात् ॥ ३१ ॥

जो नायकके पैरोंको दाबती है, जो कि इसी तरीकेसे उसे पा लेना चाहती है, उसे चाहिये कि अपने भावके जतानेवाले इशारोंसे उसे जतलाये । यदि नायक बदलेमें अपनी चाह न दिखलाये तो अपनी भी इस प्रकारकी शूरत बनाये कि यह जो कर रही है वह किसी चाहसे नहीं अतः नींदके बहाने दाबते २ उसकी जाँघोंपर शिर मुखकर फिर उन्हें चूस ले । यदि पैरोंकी अंगुलियाँ चूमनी हों तो खींचकर चटकाती वार चूस ले । यदि उसे यह पता चल जाय कि इसने जानकर चूंमी तो भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि उस समय मुखसे उँगलियाँ छूं सकती हैं । अंगुलिचुंबनसे लेकर पादांगुष्ठचुम्बन तक उनमें प्रयुक्त होते हैं, जिनमें कि स्पृष्टकादि आलिंगनसे भी शरीरका स्पर्श नहीं सहाया जा सकता, जिनमें थोड़ीसी ही बोलचाल है, जो कि संगत नहीं हुए हैं । छायाचुंवन आदिका अभियोग (उपाय) प्रयोजन है, उस समय इनके दूसरे भा प्रयोग लौकिक चुम्बनोंकी तरह प्रयुक्त करना चाहिये, क्योंकि व्यापारमें भेद नहीं हो सकता, काम एक ही है ॥ ३१ ॥

अधरादिचुम्बनोंके साहित्यमें प्रयोग ।

" निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोधरो
नेत्रे दूरमनञ्जन पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् " ॥

इस श्लोकको प्रायः साहित्यके सभी लक्षण ग्रन्थोंमें पाते हैं फिर इससे पद्माकर ही क्यों पीछे रह जायँ, उन्होंने भी अपने जगद्विनोदकाव्यके एक कवित्तमें इसका अनुवाद किया है, कि—

" धोइ गई केसर कपोल कुच गोलनिकी,
पीक लीक अधर अमोल न लगाई है ।
कहैं पदमाकर त्यों नैन हू निरंजन हैं,
तजति न कंप देह पुलकनि छाई है ॥
वाद मति ठानै झूठ वादिनि भई री तू अब,
दूतपनो छोड़ि धूतपनमें सुहाई है ।
आई तोहिं पीर न पराई महापापिन तू,
पापी लौं गई न कहूं वापी न्हाइ आई है ॥ "

रे अपनी सहेलीके कष्टको न जाननेवाली, झूठ बोलनेवाली दूती! क्या तू वापी नहाने ही गई थी, उस पापीके पास नहीं गई? ये तेरे सब लक्षण तो वापीके स्नानके ही हो रहे हैं, क्योंकि-" गोल २ स्तनोंपर लगी हुई सारी चन्दन मिश्रित केशर धुल या पुछ गयी है। इतने तूने गोते लगाये हैं कि अधरपरकी लाली नाममात्रको भी नहीं रह गई है। अथवा इसका तात्पर्य्य यों समझ लीजिये कि उस नीचने इतना गाढ आलिंगन किया है कि सोनेपर चन्दन नहीं रह गया है तथा अधरका इतना पान हुआ है कि सब लगाई लाली पुछ गई है, पर आखोंका अंजन प्रान्तके भागमें ही पुछा है, क्योंकि स्नान करतीवार आखें मींच लीं होंगी। रतिपक्षमें यों समझिये कि नेत्रके चुम्बनका ऊपरका ही कामशास्त्रमें विधान है, इस कारण जो भाग चूसा गया हैं उसीका अंजन पुछा है; जो नहीं चूमा गया उसमें अंजन लगा, जैसेका तैसा बना हुआ है। इस श्लोकमें अधरपान और नेत्रचुम्बनका, कामशास्त्रका पूरा विधान आ गया है। ऊपर जो उदाहरण दिया है वह अधरपानके साथ नेत्रचुम्बन है। अब केवल अक्षिचुम्बनका प्रयोग दिखाते हैं कि-

माघ-" केनचिन् मधुरमुल्वणरागं वाष्पतप्तमधिकं विरहेषु।
ओष्टपल्लवमपास्य मुहूतः सुभ्रुवः सरसमक्षि चुचुम्बे॥" १०-५४

किसी विलासीने विरहके गर्म स्वासोंसे तपे हुए, अत्यन्तलाल मीठे अधरको भी छोड़कर, सुन्दर नेत्रोंवालीके सरस नेत्रोंको चूँमा। इसमें वियोगिनीके तप्त अधरको छोड़, सरस ठण्डी आखोंके चुम्बनमें अधिक आनन्द बताया है, पर नेत्रचुम्बन प्रान्तभागमें ही आस्तीके साथ होना चाहिये, जो कि कामशास्त्रमें विधान है, जैसा कि गत श्लोकमें दिखाया जा चुका है।

अधरपानका आदर।

कामशास्त्रके बताये हुए अधरचुम्बनका प्रयोग दिखाकर, अब इसके आदरको बताते हैं, कि-

" स्वच्छात्मतागुणसमुल्लसितेन्दुबिम्बं बिम्बप्रभाधरमकृत्रिमहृद्यगन्धम्।
यूनामतीव पिबतां रजनीषु यत्र तृष्णां जहार मधु नाननमङ्गनायाः॥"

चाँदकी चाँदनीमें युवक युवतियोंकी पानलीला हो रही थी तथा साथमें और भी कुछ होता जाता था। उस समय जो प्यालोंमें लाल २ पुराना जाम रखा था वह इतना स्वच्छ था कि उसमें चाँदका प्रतिबिम्ब चमक रहा था। साथमें जो सुन्दरियाँ थीं, उनके भी गोरे २ कपोलोंपर चांदका प्रतिबिम्ब

पड़कर चमकता जाता था । प्यालेमें जितनी लाली थी, वैसे ही लाललाल उनके अधर भी थे, इस तरह अधर आर मधुका साम्य होता था । पर रसीले युवक प्याले पीते २ तो अघा गये, किन्तु प्यारियोंके अधरामृतका पान करते २ न अघाये । यहां पानका चूषणसे तात्पर्य्य है । कामशास्त्रके इस पदार्थको साहित्य कितना बढ़ाकर ले रहा है । यह काव्यप्रकाशके दशवें उल्लासमें आया है । हिन्दीके कवियोंने अधरके चुम्बनोंका जिसरीतिसे प्रयोग किया है वह कहते हैं कि-

" सुदुति दुराई दुरति नहिं, प्रगट करति रतिरूप ।
छुटे पीक औरै उठी, लाली ओठ अनूप ॥ "

यह अच्छी चमक छिपाई नहीं छिप सकती । यह तो रतिकालकी रँगरेलीको प्रकट करके ही मानेगी । देखो न; जो पान चबाया था उसके पीककी जो लाली होठोंपर थी वह तो छूट गई है । अब तो और ही निराली लाली उठ आई है, बताओ तो सही कि इसे किस तरह छिपा लोगी । इसे तो यही बतायेंगे कि किसीने इसे अच्छी तरह चूसा है जिससे यह लाल हो उठा है । यहां कामसूत्रके बताये हुए अधरपान और दशन पदको देखते हैं ।

अभियोगोंकी सामान्यविधि ।

संप्रयोगाभिकालयोः सामान्यविधिमाह—

सहवासके समय और आपसमें मिलनेके उपायोंको करतीबारकी दोनोंकी एकसी विधि बताते हैं-

भवति चात्र श्लोकः--
कृते प्रतिकृतं कुर्यात्ताडिते प्रतिताडितम् ।
करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रतिचुम्बितम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे चुम्बनविकल्पास्तृतीयोऽध्यायः ।
आदितोऽष्टमः ।

इस विषयमें यह श्लोक है कि-" सामनेवाला जो करे उसके बदलेमें वही करे, यदि वह हस्तप्रहार कर तो उसके उत्तरमें वैसे ही हस्तप्रहार तथा जैसे वह चुम्बन करे उसी रीतिसे चुम्बन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

भवति चात्रेति । कृत इति । सांप्रयोगिके आभियोगिके वा प्रयोक्तृकृते प्रयोज्यः प्रतिकृतं कुर्यात् । एकोदाहरणार्थमाह—ताडिते चुम्बिते चेति । अन्यतरः संप्रयोगे स्तम्भमिवैनं मन्यमानो निर्विद्यते । ततश्च निकृष्टः संप्रयोगः स्यात् । अभियोगे वा कारिते नावचुम्ब्यत इति पशुमिव परिभवेत् । ततश्च न समागमोऽर्थः सिध्येत् । तत्रापि करणेन च तेनैवेति येनैव कर्मभेदेन संप्रयुंक्ते तेनैव प्रयोजयेत् । एवं रतमाकारग्रहणेन स्फुटरसं स्यात् । तच्चित्तानुविधानादिति । इति चुम्बनविकल्पा नवमं प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे चुम्बनाविकल्पास्तृतीयोऽध्यायः ।

सहवासके समय या अपनी ओर खींचनेके समय, एक जो काम करे वह दूसरेको भी करना चाहिये । इसका उदाहरण देते हैं कि—" एकने ताडनका जो प्रयोग किया हो तो दूसरेको वही करना चाहिये एवम् एकने जिस रीतिसे चुम्बन किया हो, दूसरेको उसी रीतिसे उसका चुम्बन करना चाहिये ।" यदि एक प्रयोग करे और दूसरा उसका जवाब न दे तो वह उसे खंभकी तरह मानकर विरक्त हो जायगा । इससे सहवास उत्तम न होकर अधम हो जायगा । यदि उसे पानेके लिये प्रयत्न चालू हैं, वह बदलेका चुम्बन न करे तो पशुकी तरह समझकर अनादर होजायगा, इससे समागमरूप प्रयोजन सिद्ध न हो सकेगा । करनेमें भी यह वात है कि जिसरीतिसे सामनेवाला करे उसी रीतिसे अपनेको करना चाहिये । इस प्रकार एक दूसरेके आकार ग्रहण करनेसे रस स्फुट हो जायगा, क्योंकि सामनेवालेकी तबीयतके अनुसार काम हो जायगा । यह चुम्बनोंके भेदका नौवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके तृतीय अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

नखरदन जाति प्रकरण ।

एवं चुम्बनेनोपक्रम्य ततोऽधिकेन नखच्छेद्येनोपक्रमयितुं नखरदनजातय उच्यन्ते । नखविलेखनप्रकारा इत्यर्थः ।

तीसरे अध्यायमें चुम्बनकी रीतियाँ बताई गई हैं, जिस परिस्थितिमें चुम्बन किया जाता है, यदि राग उससे भी अधिक प्रदीप्त हो उठा हो तो फिर नाखूनोंकी शुरुआत की जाती है, इस कारण चुम्बनके बाद इस चौथे अध्यायमें नाखूनोंसे निशान करना बताया जाता है, कि इस प्रकार लगाते हैं ।

नख लगानेका स्वरूप ।

तदेव स्वरूपेण दर्शयन्नाह—

ऊपर लिखी हुई बातोंसे यह तो सिद्ध हो गया, कि रागकी वृद्धिमें नाखून भी लगाये जाते हैं, पर कैसे लगाने चाहियें, इस बातको बतानेके लिये नाखून लगानेका सामान्यरूप बताये देते हैं कि—

रागवृद्धौ संघर्षात्मकं नखविलेखनम् ॥ १ ॥

रागके बढ़ जानेपर खोंसेके रूपमें नाखून चलते हैं ॥ १ ॥

संघर्षात्मकमिति प्रदेशस्य नखैर्यत्समन्ततो घर्षणमवयवपृथक्करणं तन्नखविलेखनम् । तत्स्वभावत्वात् । तच्च रागवृद्धौ सत्याम् । यत्तु नखाग्रेण तुदनं तद्रागमान्द्ये सति । तत्र च्छेद्यस्याभावात् । नखविलेखनस्यैव प्रकाराः कथ्यन्ते ॥१॥

जिस जगह नाखून लगाने हैं वहां चारों ओरसे खोसा लगाकर निशान कर देना नाखून लगाना है, क्योंकि नौहोंकी इसी प्रकार लगती है, यह रागके बढ़ जानेपर ही होना चाहिये, जो कि नौहोंकी नोंकोंसे पीडा की जाती है वह तो मन्दरागके समय दी जाती है, क्योंकि उस समय खोंसे लगाकर निशान नहीं किये जा सकते । अब नाखूनोंसे खोंसा लगानेकी विशेष रीति बताते हैं॥१॥

समय और जगह ।

तस्य क्व प्रयोगः कदा चेत्याह—

रीतिसे पहिले नाखूनोंके निशान करनेका समय और स्थान कौनसा है ? इस बातको बतानेके लिये कहते हैं, कि—

तस्य प्रथमसमागमे प्रवासप्रत्यागमने प्रवासगमने क्रुद्धप्रसन्नायां मत्तायां च प्रयोगः । न नित्यमचण्डवेगयोः ॥ २ ॥

इसका प्रथमसंगममें, विदेशसे आनेके समयमें, विदेश जानेके समयमें, क्रोधके बाद, प्रसन्न होनेपर और प्यारीके नशेमें मस्त होनेपर इसका प्रयोग होता है। जो प्रचण्डरागवाले नहीं हैं उनमें इसका सदा प्रयोग नहीं होता ॥

तस्येति नखविलेखनस्य । अचण्डवेगयोरिति मन्दमध्यवेगयोः । न नित्यप्रयोगः । कदा तर्हीत्याह––प्रथमसमागमे तथा प्रवासप्रत्यागमने तयोरुत्कण्ठितयोः प्रवृद्धरागत्वात् । प्रवासगमने स्मरणार्थम् । क्रुद्धप्रसन्नायामिति नायकेन प्रसादिता सती हर्षाद्विवृद्धरागा भवति । मत्तायां च मद्यमदेन रागस्योच्छ्रितत्वात् । एवं क्रुद्धप्रसन्ने मत्ते च नायके द्रष्टव्यम् । चण्डवेगयोस्तदा च प्रयोगो नित्यमर्थोक्तम् ॥ २ ॥

इस नख लगानेका प्रयोग, मन्द और मध्यम रागवालोंमें नित्य नहीं होता, उनके लगानेका समय तो सूत्रने बता दिया है कि प्रथम समागममें तथा विदेशसे वापिस आनेके समय एकका दूसरेके मिलनेकी उत्कंठासे राग बढ़ा रहता है। विदेश जातीवार यादगारीके लिये लगाये जाते हैं। यदि किसी कारण नाराज हो एवम् नायकने उसे मना लिया हो तो खुशीके मारे उसका भी राग बढ़ जाता है, इस कारण वहां भी चलाये जा सकते हैं। जामके नशेमें राग बढ़ा रहता है, इस कारण उसमें भी ये चलते हैं। इसी प्रकार क्रुद्ध होकर राजी हुए एवम् जाममें मस्त हुए नायकपर भी नायिका प्रयोग कर सकती है। इससे यह बात तो आप ही सिद्ध हो गई कि प्रचण्डरागवाले स्त्री पुरुषोंमें इसका सदा ही प्रयोग हो सकता है ॥ २ ॥

इसी तरह दन्तप्रहार ।

तथा दशनच्छेद्यस्य सात्म्यवशाद्वा ॥ ३ ॥

इसी तरह अनुकूलतापर ही दाँतोंका लगाना भी निर्भर है ॥ ३ ॥

तथा दशनच्छेद्यस्य प्रयोग इत्येव । तस्यैतावता तुल्यत्वादित्यतिदेशः । तेन स्वरूपमपि योज्यम् । रागविवृद्धौ संघर्षात्मकं दशनच्छेद्यम् । रागमान्द्ये तु दशनग्रहणमिति । सात्म्यवशाद्वा तयोः प्रयोगो यदि तदा अचण्डवेगौ प्रकृतिसात्म्यान्न सहेतां तदा नैवेत्यर्थः ॥ ३ ॥

जो समय जिस वेगवाले प्यारी प्यारोंका नाखून चलानेका है, वही समय वैसे ही स्त्री पुरुषोंका दाँत लगानेका भी है, यह बात दोनोंमें एकसी है, इसी कारण दन्तविलेखनको नखविलेखनके तुल्य बता रहे हैं । इसी प्रकार इनका स्वरूप भी समझना चाहिये, कि रागकी वृद्धिमें रगड़के रूपमें दन्तच्छेद तथा राग मन्दा हो तो दांतोंसे पकड़नेकी चीजको पकड़ना मात्र है । यदि मन्द और मध्यम राग (अनुराग) वाले अपनी प्रकृतिके विरुद्ध होनेके कारण न सह सकें तो नहीं होता ॥ ३ ॥

नाखूनके निशानके नाम ।

तदाच्छुरितकमर्धचन्द्रो मण्डलं रेखा व्याघ्रनखं मयूरपदकं शशप्लुतकमुत्पलपत्रकमिति रूपतोऽष्टविकल्पम् ॥४

छुरितक, अर्धचन्द्र, मण्डल, रेखा, व्याघ्रनख, मयूरपदक, शशप्लुतक, उत्पलपत्रक ये आठ नखविलेखनके भेद हैं ॥ ४ ॥

तदिति नखविलेखनम् । रूपत इति संस्थानतः । द्विविधं हि तत्—रूपवदरूपवच्च । तत्र यत्कस्यचिदनुकारि तद्रूपवद्दृष्टप्रकारकमाच्छुरितकादि । तस्य लक्षणं वक्ष्यति । यदननुकारि तदरूपवत्त्रिविधम् । मृदुमध्यातिमात्रयोगात् ॥ ४ ॥

रूपवत् और अरूपवत् भेदसे नखविलेखन दो तरहका है, जैसे कि कामसूत्रमें लगाना बताया है उसीके अनुसार लगानेको रूपवत् कहते हैं, इसमें किसका अनुकरण किया जाता है, इनके लक्षणोंको अगाड़ी कहेंगे जो किसी विधानके अनुसार न किये जायँ उसे 'अरूपवत्' कहते हैं । ये मृदु, मध्य और अधिमात्र (तीव्र) भेदसे तीन तरहके हैं ॥ ४ ॥

नख लगानेके स्थान ।

कक्षौ स्तनौ गलः पृष्ठं जघनमूरू च स्थानानि ॥ ५ ॥

कांख, स्तन, कंठ, पीठ, जघन और ऊरु, नाखून लगानेकी जगहें हैं ॥५॥

स्थानानि कक्षास्तनगलपृष्ठजघनोरुष्वेतेष्वेव षट्सु नखक्षतैः स्त्रीपुंसयोरत्यर्थनिर्वृतेः । इत्याचार्याणां मतम् । उत्तरपक्षदर्शनात् । तत्र गल इति सामीप्यात्तत्पार्श्वम् । जघनशब्दः समुदायेन कटिभागे तदेकदेशे च पुरोभागे वर्तते । तदिह समुदायवृत्तिः । तेन नितम्बलेखनमपि सिद्धम् । तथा चोक्तम—'ग्रीवापार्श्वोरुकक्षेषु कटिपृष्ठस्तनेषु च । संप्रयोगे प्रयुञ्जीत नखच्छेद्यानि योषिताम् ॥' इति॥५

रतिके लिये सुख पहुँचानेके कारण, ऊपर बताये छओं स्थानोंमें नाखून चलते हैं, ऐसा आचार्य्योंका मत है, क्योंकि समाधानके रूपसें यही सिद्धान्त पाते हैं। कंठकी जगह कंठ व कंठके पास अगलबगलोंमें चलते हैं, क्योंकि उसके समीपीका भी ग्रहण है । जघन शब्दका अर्थ, समुदायरूपसे कमर एवं उसके सामनेका भाग है । यहां भी समुदायरूपसे ही इसका ग्रहण है, इस कारण इससे नितम्बोंका ग्रहण भी सिद्ध हो जाता है, उनपर भी नाखून लगाये जा सकते हैं । यही कहा भी है कि—"स्त्रियोंके ग्रीवा, पार्श्व, ऊरु, कक्षा, कमर, पीठ और स्तनोंपर रतके समय, नाखून लगाये जाया करते हैं" ॥ ५ ॥

नाखूनोंके स्थानोंपर दूसरे आचार्य्य ।

कामसूत्रमें छः स्थान बताये हैं एवम् जयमङ्गलाने कंठसे कंठके आसपास यानी गंडस्थल एवम् जघनसे उसके पीछेके नितम्ब आदि स्थानोंका भी ग्रहण कर लिया है । इस तरह जयमंगलाके लेखक वियोगी यशोधरने उसीके आधार पर और अधिक ले लिये हैं । इनके सिवा और आचार्य्योंके यहां भी स्थानोंकी कम ज्यादा संख्या देखी जाती है, अतः उनका भी यहां उल्लेख करते हैं—

रति०—" कक्षाकरोरुजघनस्तनपार्श्वपृष्ठ-
हृत्कन्धरासु नखराः खरवेगयोः स्युः ॥ "

चण्डवेगवाले खाजयुत स्त्री पुरुषोंमें, काँख, हाथ, जघन, स्तन, बगल, पीठ, हृदय और कंठ, इन स्थानोंमें नाखून चलते हैं । इसमें सूत्रसे हाथ, बगल और हृदय, ये तीन स्थान अधिक बता दिये । तथा कंठसे गण्ड और जघनसे नितम्बोंका यहां भी ग्रहण हो जायगा ।

अनङ्गरंग—" ग्रीवाकरोरुजघनस्तनपृष्ठकक्षा-
हृत्पार्श्वगण्डविषये नखराः खराः स्युः ॥ "

कण्ठ, हाथ, जांघें, जघन, स्तन, पीठ, काँख, हृदय, बगल और गण्डस्थल, इनमें चण्ड रागियोंके नाखून चलते हैं । इसमें गण्डका साक्षाद् उच्चारण कर दिया है। पूर्वकी तरह यहां भी, जघनसे नितम्बोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये।

पंचसायक—" कक्षाकुचोरःस्थलकुक्षिनाभि-
श्रोणीललाटांघ्रिकरेषु सद्यः ॥ "

काँख, कुच, उरःस्थल, कोंख यानी सुहावनी दोंद, नाभि, कमर, ललाट, पैर और हाथ, ये नाखून लगानी जगहें हैं। इसमें पूर्वसे पीठ, गण्ड

और वगल कम तथा नाभि, कमर, ललाट और पैर ज्यादा हैं । नागरसर्वस्वने 'आच्छुरित' के प्रयोगमें कपोल अधिक ग्रहण किये हैं और कामसूत्रने इसीमें अधर और हनुको भी ले लिया है तथा मण्डलके प्रयोगमें नितम्बोंके गड्ढे अधिक ग्रहण किये हैं, अतः सब मिलकर नाखूनोंके स्थान—ललाट, कपोल, अधर, हनु, कण्ठस्थल, गण्ड, हृदय, स्तन, काँख, वगलें, हाथ, पीठ, पैर, नाभि, वस्ति, जघन, कटि, नितम्ब, इनके गड्ढे, जांघें और मदनमंदिरके होठ आदि हैं । पर जिन जगहोंमें जैसे नाखूनोंका विधान है, वह कामसूत्रने बता दिया है।

रागोद्रेकमें स्थानोंपर दृष्टि नहीं होती ।

प्रवृत्तरतिचक्राणां न स्थानमस्थानं वा विद्यत इति सुवर्णनाभः ॥ ६ ॥

बढ़े हुए रागोंवालोंके रमणके प्रारंभ होनेपर उनकी दृष्टि, स्थान और अस्थानपर नहीं रहती ॥ ६ ॥

प्रवृत्तरतिचक्राणामिति प्रवृत्तरागोत्पीडानाम् । नास्थानमिति अङ्गप्रत्यङ्गं वा सिद्धं सर्वमेव नखक्षतस्य स्थानम् । यद्येवं तथापि शास्त्रकारो रूपवतां नियतस्थानं वक्ष्यति । तत्र हि परभागं लभन्ते इति ॥ ६ ॥

रमण करती वार जो रागअंध हो एक दूसरेसें नाखून आदि मारते हैं या रिगड़ते हैं उनके लिये स्थान, अस्थानका भेद नहीं रहता, उनके यहां तो अंग, प्रत्यङ्ग सभी नाखून लगानेके ही स्थान हैं । यद्यपि यह बात है तो भी शास्त्रकार रूपवत् जो आच्छुरितक आदिक हैं उनके लिये नियत स्थान कहते हैं कि ये स्थान भेद पाते हैं । इससे यह बात पाई जाती है कि ये प्रायः तो अपनी २ जगहोंपर ही होते हैं, पर जो 'अरूपवत्' यानी सीधे खोंसे हैं वे शरीरपर कहीं भी किये जा सकते हैं ॥ ६ ॥

नाखूनोंके आश्रय स्वरूप ।

छेद्यस्य नखाधीनत्वात्तेषामाश्रयतः कल्पनातो गुणतः प्रमाणतश्च विधिमाह—

नाखूनोंसेही निशान होता है इस कारण नाखूनोंके आश्रयसे, स्वरूपसे, गुणसे, प्रमाणसे, समझाये विना प्रयोगके विधान नहीं हो सकते इस कारण पहिले इन चारों बातोंको वताये देते हैं कि—

---

१ जिसमें नाखून रहें वही उनका आश्रय है, जैसे कि बाँये हाथके नाखूनोंका बाँया हाथ आश्रय है । नाखूनोंकी आकृति वताना ही उनके स्वरूपकी कल्पना है । आठवें सूत्रमें नाखूनोंके गुण वताये हैं तथा नवें, दशवें और ग्यारवें सूत्रमें नाखूनोंका प्रमाण भी बताया है ।

तत्र सव्यहस्तानि प्रत्यग्रशिखराणि द्वित्रिशिखराणि चण्डवेगयोर्नखानि स्युः ॥ ७ ॥

प्रचण्ड रागवाले स्त्री पुरुषोंके, बायें हाथके पैने नुकीले दो वा तीन नोंके निकले हुए, नाखून होते हैं ॥ ७ ॥

तत्रेति नखकर्मणि । सव्यहस्तानीति आश्रयभावेन वामो हस्तो येषामिति । दक्षिणस्य प्रायशोऽत्यन्तव्यापारादेषां भङ्गोऽपि स्यात् । प्रत्यग्रशिखराणीत्यभिनवघटिताग्राणि । द्विशिखरकाणि त्रिशिखरकाणि वा क्रकचमुखवत्कल्पितानि । तद्विशिखरकाणि अनतिविस्तीर्णस्थलत्वाद्रुतं भिद्यन्ते । तद्विपर्ययाणि मध्यमन्दवेगयोरित्यर्थोक्तम् । तत्रेषत्प्रमृष्टाग्राणि शूकाकृतीनि मध्यवेगयोः । प्रमृष्टाग्राण्यर्धचन्द्राकृतीनि मन्दवेगयोः । इति तिस्रो नखकल्पनाः ॥ ७ ॥

दाहिने हाथसे अनेकों काम होते रहते हैं, इस कारण उसके नाखून ओंथरे भी हो जाते हैं, इसी कारण प्रचण्ड रागवाले बायें हाथको काममें लाते हैं । उसमें नाखून रहते हैं, इस कारण इसका काममें लाना, इसके नाखूनोंको काममें लाना है । इनकी नोंकें विना घिसी होती हैं अथवा जैसे कि क्रकच पक्षीका मुख होता है उसी तरह दो वा तीन नोंकें इनके नाखूनोंकी निकली हुई हों । दो तीन जगहसे नुकीले नाखून भी बहुत विस्तीर्ण स्थलवाले न होनेके कारण जलदी ही लग जाते हैं । पर मन्द और मध्यम वेगवालेंके नाखून, इनसे उलटे होते हैं, यह बात चण्डवेगके बतानेसे आप ही प्रतीत हो जाती है । इसमें कुछ थोड़ी ओंथरी नोंकवाले शूकाकृतिवाले, मध्यवेगी स्त्री पुरुषोंके नाखून होते हैं । मन्द वेगवाले स्त्री पुरुषोंके घिसे हुए अर्धचन्द्र जैसे नाखून होते हैं । नाखूनोंकी तीन प्रकारकी कल्पना होती है॥७॥

नाखूनोंके गुण ।

अनुगतराजि सममुज्ज्वलममलिनमविपाटितं विवर्धिष्णु मृदुस्निग्धदर्शनमिति नखगुणाः ॥ ८ ॥

अनुकूल यानी जैसी चाहिये वैसी लैनवाले, चमकने, साफ, विना उभरे, बढे हुए, कोमल और सुन्दर नाखून, अच्छे समझे जाते हैं ॥ ८ ॥

अनुगतराजीत्यनुगता विवर्णा मध्ये लेखा यस्य । सममनिम्नोन्नतपृष्ठम् । उज्ज्वलमागन्तुकमलाभावादमलिनम् । नीतितः (?) अविपाटितमविस्फुटितम् ।

विवार्धिष्णु वर्धनशीलम् । मृदु, न काष्ठप्रख्यम् । स्निग्धदर्शनमिति दृश्यत इति दर्शनं रूपम् । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति ल्युट् । तदरूक्षमस्येति ॥ ८ ॥

जिनके बीचमें विवर्ण यानी निकली हुई रेखाएँ हों, जिनकी पीठ ऊंची नीची न हों, जिनमें किसीसे मैल न लगा हो, इस कारण साफ हों, नीतिसे बाहिर न निकले हुए हों, ऐसे न भी हों, कि बढनेवाले न हों, किन्तु बढनेवाले हों, मृदु लकड़ेकी तरह कड़े न हों, रूखे न दीखते हों यानी चमकीले हों, वे नाखून सुन्दर लगते हों ॥ ८ ॥

गोडोंके नाखून ।

दीर्घाणि हस्तशोभीन्यालोके च योषितां चित्तग्राहीणि गौडानां नखानि स्युः ॥ ९ ॥

हाथको स्वभावसे ही सुशोभित करनेवाले और देखनेमात्रसे ही स्त्रियोंके मनको हरनेवाले गोडोंके बड़ २ नाखून होते हैं ॥ ९ ॥

प्रमाणतस्त्रिधा तत्र दीर्घाणि हस्तशोभीनि हस्तं शोभयितुं शीलं येषाम् । नखच्छेद्यं कर्तुमक्षमत्वात् । आलोके दर्शने । चित्तग्राहीणि योषिद्भिर्दृश्यमाणानि तासां चित्तं हरन्तीति गुणद्वययुतानि । स्पर्शकरत्वात्प्रायशो गौडानाम् ॥ ९ ॥

नाखून प्रमाणसे तीन तरहके होते है। ह्रस्व, मध्य और दीर्घ, उनमें हाथको सुशोभित करनेवाले, देखनेमात्रसे ही स्त्रियोंके चित्तको पकड़ लेने यानी हरने वाले, गोड़ोंके नख होते हैं, क्योंकि गोड़ प्रायः स्पर्श करनेवाले होते हैं। उनके नाखून खुरसर नहीं लगाते, ये दो उनके नाखूनोंके गुण होते है । इस सबका तात्पर्य्य यह होता है कि इनके नाखून बड़े होते हैं इसी कारण नख जाते हैं पूरा काम नहीं कर सकते ॥ ९ ॥

दाक्षिणात्योंके नाखून ।

ह्रस्वानि कर्मसहिष्णून विकल्पयोजनासु च स्वेच्छापातीनि दाक्षिणात्यानाम ॥ १० ॥

ह्रस्व, कर्मोंके सह सकनेवाले एवम् विकल्पोंकी योजनामें इच्छाके अनुसार गिरनेवाले दाक्षिणात्योंके नाखून होते है ॥ १० ॥

---

१ दर्शन रूपको कहते हैं, क्योंकि वही दीखता है । 'कृत्यल्युटोर्वहुलम्' इस सूत्रसे कर्ममें 'ल्युट्' प्रत्यय होकर दर्शन शब्द बना है। यह करण और अधिकरणके 'ल्युट्' का रूप नहीं है अत एव दर्शनका अर्थ सुन्दर रखा है।

ह्रस्वानि कर्मसहिष्णूनि लेखनादि कर्म सहन्ते । दीर्घाणि तु भज्यन्ते । विकल्पयोजनासु अर्धचन्द्रादयो ये विकल्पास्तत्संपादनासु स्वेच्छावपातीनि प्रयोक्तुरिच्छया स्थाने योऽवपातः स विद्यते येषाम् । न तु दीर्घाणाम् । इति गुणद्वयम् । तानि खररागत्वाद्दाक्षिणात्यानाम् ॥ १० ॥

इनके नख छोटे होते हैं, लेखनादिक कर्मोंको कर सकते हैं क्योंकि बड़े तो टूट या नव जाते हैं । जब अर्धचन्द्र आदि करने हों तो वे जैसा प्रयोग करनेवाला चाहे उसी रीतिसे प्रयुक्त किये जा सकते हैं । बड़ोंका वैसा प्रयोग नहीं किया जा सकता । ये दो गुण, दक्षिणादियोंके नाखूनोंमें होते हैं । इन्हें चाहिये भी ऐसे ही, क्योंकि ये खर रागवाले होते हैं ॥ १० ॥

महाराष्ट्रोंके नाखून ।

मध्यमान्युभयभाञ्जि महाराष्ट्रकाणामिति ॥ ११ ॥

छुटाई बड़ाई रूप दोनों गुणोंवाले यानी मध्यम नाखून, महाराष्ट्रोंके होते हैं ११

मध्यमानि न दीर्घाणि नातिह्रस्वानि । उभयभाञ्जि दीर्घह्रस्वगुणभाञ्जि । तानि वैचक्षण्यात्प्रायशो महाराष्ट्रकाणाम् ॥ ११ ॥

मध्यम यानी न तो बड़े एवम् न छोटे 'ह्रस्व, दीर्घ' दोनों गुणोंवाले नाखून, प्रायः महाराष्ट्रोंके होते हैं, ये उत्तम हैं ॥ ११ ॥

आच्छुरितक ।

आच्छुरितकादेर्लक्षणं परभागार्थं च प्रयोगस्थानमाह—

परभागके लिये आच्छुरित आदिके लक्षण और उनके प्रयोगस्थानोंको बताते हैं—

तैः सुनियमितैर्हनुदेशे स्तनयोरधरे वा लघुकरणमनुद्गतलेखं स्पर्शमात्रजननाद्रोमाञ्चकरमन्ते संनिपातवर्धमानशब्दमाच्छुरितकम् ॥ १२ ॥

स्तन, अधर या हनुदेशमें, आपसमें मिले हुए पांचों मध्यम कोटिके नाखूनोंसे, हलके हाथसे जिससे कि खोंसा न हों, जिसमें अँगूठेके नाखूनसे दूसरे २ नाखूनोंके रगड़जानेसे रोमांच हो, अन्तमें चटचटा शब्द बढ़े, उसे 'आच्छुरितक' कहते हैं ॥ १२ ॥

तैरिति मध्यमैर्नखैः पञ्चभिरपि । सुनियमितैरिति सुसंश्लिष्टैः मध्यमावस्थापेक्षया इदं वचनम् । प्रागसंश्लिष्टान्येव स्थाने निवेश्यन्ते ततश्च शनैराकृष्यमाणानि सुसंयमितानि भवन्ति । न प्रागेव सुसंयमितानि । लोके तथा प्रयोगदर्शनात् । लघुकरणमिति लध्वी क्रिया यस्मिन्निति । यथा क्षतं न भवति यदाह—अनुद्गतलेखमिति । किमर्थं तर्हीत्याह—स्पर्शमात्रजननाद्रोमाञ्चकरमन्त इति । स्पर्शनक्रियाया नखघातादिभिरंगुष्ठनखेन प्रतिनखस्फालनाद्वर्धमानचटचटाशब्दं यदेवंविधं कर्म तदाच्छुरितकम् । नखैराच्छुरणात् । एवं च नखच्छेद्याभावे तत्र हनुदेशेऽधरे च सर्वासामेव नायिकानामाच्छुरितकमेव नान्यन्नखकर्मेति दर्शनार्थमुभयोर्ग्रहणम् । स्तनयोराधिक्येन प्रयोक्तव्यमिति ख्यापनार्थं वचनम् । तत्रापि स्पर्शकरत्वात् ॥ १२ ॥

'तैः' अर्थ है उन, वे कौन,' इसके उत्तरमें पूर्वसूत्रके बताये हुए मध्यम नख, आ उपस्थित होते हैं। यानी आपसमें मिले हुए पांचों मध्यम नखोंसे यह कहना भी पूर्वसूत्रके कहे मध्यम नखोंकी अपेक्षासे है, क्योंकि पहिले सूत्रमें मध्यमनखोंका विधान आया हुआ है । जगहपर नाखून पहिले तो बिना मिले ही प्रयुक्त किये जाते हैं, फिर धीरे २ एक दूसरेकी तरफ खिंचकर, आपसमें अत्यन्त नजदीक आ जाते या मिल जाते हैं । ऐसा नहीं होता कि प्रयोग करतीवार भी मिलाकर प्रयोग किया गया हो, क्योंकि दूनियांमें देखते हैं कि प्रयोग करतीवार दूर तथा पीछे धीरे २ मिलते हैं । इसमें इतना हलका हाथ रहता है कि घाव नहीं हो पाता, इसी कारण कहते हैं, कि नाखूनोंकी धार न खिंची हो । इसके करनेका कारण तो यह है, कि नखघात आदिकोंसे अँगूठेके नाखूनके द्वारा हर एकको चलानेसे इसमें चटचटा शब्द बढ़ता है, जो इस प्रकारका कर्म है उसे 'आच्छुरितक' कहते हैं, क्योंकि इसमें नाखूनोंसे आस्फालन होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि सभी नायिकाओंके हनुदेश और अधरपर नाखूनके घावके अभावमें केवल एक 'आच्छुरितक' कर्म होता है, दूसरा नहीं होता, इसी बातको दिखानेके लिये और हनुका ग्रहण है । इसका प्रयोग स्तनोंपर अधिक रूपसे करना चाहिये, इस कारण स्तनका ग्रहण है, क्योंकि यहां भी वैसा स्पर्श हो सकता है ॥ १२ ॥

इसीपर अन्य आचार्य्य ।

कामशास्त्रके दूसरे आचार्य्योंके यहां आच्छुरित तो सर्वत्र है, किन्तु इसके प्रयोगमें स्थानभेद देखते हैं, इस कारण उनके विधानोंको भी यहां दिखाये देते हैं—

रति०–“ अव्यक्तरेखमणुकर्मनखैः समस्तैः
रोमाञ्चकृच्चटचटाध्वनि ‘योजितान्तम् ॥
अंगुष्ठजाग्रनखताडनतो नखानाम्
गण्डस्तनाधरगमाच्छुरितं वदन्ति ॥ ”

सारे नखोंको मिलाकर, उनसे वेमालूम थोड़ी ही रेखाएँ करनी चाहियें। इसमें सब नखोंका अँगूठेके नखसे ताडन होता है । इसके प्रयोगसे रोमांच तथा चटचटा ध्वनि होती है । इसका प्रयोग गण्डस्थल, स्तन और अधरपर होता है । ये जगहें अल्प प्रयोगकी हैं, इसी कारण इसे आच्छुरित कहते हैं। ऐसा ही मत अनंगरंगका है । इनमें कामसूत्रसे गण्डस्थल अधिक तथा हनु कम कहा है कहीं गंडका कपोल अर्थ भी लिया है ।

पंचसायक–“ संज्ञापनं मन्मथरागराशेः । उक्तं मुनीन्द्रैरच्छुरिताभिधानम् ।
वक्षोजकन्दर्पगृहाधरेषु । देयं नवोढाप्रमदाजनानाम् ॥ ”

अपने उत्कट प्रेमकी स्मृति रखनेके लिये, मुनियोंने ‘ आच्छुरित ’ कहा है । इसका प्रयोग, स्तनोंपर, मदनमंदिरपर और अधरपर, नई व्याही प्रमदाके यहां होता है । इसमें कामसूत्रसे हनु तथा अ० और रतिरहस्यसे गण्ड, कम हैं एवं दोनोंसे ‘ मदनमंदिर ’ अधिक है।

नागरसर्वस्व–“ अव्यक्तरेखैर्नखरैः समस्तै रोमाञ्चकृत् सत्कणिताभिरामम् ।
स्तने कपोले च हनुप्रदेशे प्रयोज्यतामाच्छुरितं प्रियायाः ॥”

अपरिस्फुट रेखा करनेवाले सारे नखोंसे प्यारीके स्तन, कपोल और हनु-प्रदेशपर सत्कणित पूर्वक रोमाञ्चकारी ‘ आच्छुरित ’ का प्रयोंग होता है । इसमें कामसूत्रसे कपोलका अधिक ग्रहण किया है । यदि सबको एक करके देखा जाय तो इसके, अधर, हनु, कपोल, गण्डस्थल, स्तन और मदनमंदिर, इसके स्थान हैं । वियोगी यशोधरकी इनपर दृष्टि चली गई थी इसी कारण उन्होंने यह कह डाला कि–‘ अधर और हनुपर, इसका ही प्रयोग होता है दूसरेका नहीं’ इससे यही ध्वनि निकलती है कि अवस्थाविशेषमें, इन जगहोंमें इसका प्रयोग हो सकता है ।

अपेक्षासे स्थान ।

अन्येषु तु स्थानेष्ववस्थापेक्षया प्रयोगमाह—

दूसरे स्थानोंमें तो अवस्थाकी अपेक्षासे प्रयोग होता है कि—

प्रयोज्यायां च तस्याङ्गसंवाहने शिरसः कण्डूयने पिटकभेदने व्याकुलीकरणे भीषणेन प्रयोगः ॥ १३ ॥

जिससे संयोग प्राप्त करना हो, उसके शरीर मसलने या दबाने आदिमें, शिरके खुजानेमें, छोटी २ फुंसियोंके फोडनेमें एवम् अकुलानेमें, इसका भीषण रूपसे प्रयोग होता है ॥ १३ ॥

प्रयोज्यायां च कन्यायां तस्य प्रयोग इति विस्रम्भणार्थं नान्यस्येतरस्य कर्मणः । संवाहने यत्र यत्र स्थाने मर्दनं तत्र तत्र शिरःकण्डूयने शिरस्येव । पिटकभेदने स्वल्पपिटकानां शरीरस्थानां भेदने । तद्वश एव (१) व्याकुलीकरणे किंचित्कर्तुमप्रयच्छन्त्यां भीषणेन भयं दर्शयितुमित्यर्थः । एते संवाहनादिष्ववस्थिकाः सर्वास्वेव नायिकासु। अस्यावस्थिककार्यवशान्नायिकापि प्रयोक्त्री ॥ १३॥

इस आच्छुरितका उस प्रेयसीमें प्रयोग होता है, जो कि अभी सहवासको भी नहीं जानती, उसके विश्वासके लिये इसका प्रयोग होता है, दूसरे किसी भी कर्मका प्रयोग नहीं होता । जहां २ मर्दन किया जाय, वहाँ २ इसका प्रयोग हो सकता है । शिरके खुजातीवार शिरमें, शरीरकी छोटी २ फुंसियोंके खुजातीवार उस जगह भी इसका प्रयोग किया जासकता है । जो कुछ करना नहीं चाहती, उसे डर दिखानेके लिये इससे आकुल किया जाता है । ये संवाहन आदिकोंमें सभी नायिकाओंमें अवस्थासे होते हैं । अवस्थाके कार्य्यके वश, नायिका भी इनका प्रयोग कर सकती है ॥ १३ ॥

अर्धचन्द्र और स्थान ।

ग्रीवायां स्तनपृष्ठे च वक्रो नखपदनिवेशोऽर्धचन्द्रकः ॥ १४

ग्रीवामें या स्तनके ऊपर जो नाखूनका निशान होता है, उसे 'अर्धचन्द्रक' कहते हैं ॥ १४ ॥

ग्रीवायामिति ग्रीवापार्श्वे बहिर्मुखाः स्तनपृष्ठे चोर्ध्वमुखाः । अर्धचन्द्रवद्वक्रोऽर्धचन्द्रः । सूच्यग्रेण कनिष्ठामुखेन निष्पाद्यो मध्यमामुखेनार्धचन्द्रेण ॥ १४ ॥

ग्रीवाकी बगलमें बहिर्मुख एवम् स्तनोंपर ऊर्ध्वमुख जो अर्धचन्द्रकी तरहका

---

१ कामसूत्रमें वक्रको अर्धचन्द्र कहा है, पर कैसा वक्र, अर्धचन्द्र होता है ? इस प्रश्नका उत्तर, श्रीयशोधरने " सब जगह संज्ञाशब्दसे उसके कर्मका अतिदेश है " इस सिद्धान्तको दृष्टिमें रखकर ' अर्धचन्द्रक ' शब्दके व्युत्पन्न अर्थसे ' अर्धचन्द्रकी तरह, टेढा ' इस अर्थसे निकाल लिया है । इसी भावको लेकर पंचसायकने कहा है, कि--

" अर्धेन्दुसङ्काशमिदं नखज्ञैरर्धेन्दुसंज्ञं कथितं समासात् "

जो चिह्न अर्धचन्द्रके समान बनाया जाता है, उसे नाखूनोंके कर्मको जाननेवाले 'अर्ध–

टेढा निशान हो, उसे 'अर्धचन्द्रक' कहते हैं। यह सुईकी नोंककी तरह पैंनी छोटी अंगुलीके नाखूनकी मध्यम नोंकसे 'अर्धचन्द्राकार' किया जाता है ॥१४

मण्डल ।

तावेव द्वौ परस्पराभिमुखौ मण्डलम् ॥ १५ ॥

यदि दो अर्धचन्द्र आपसमें आमनेसामने होकर मिल जायं तो यह 'मंडल' होगा ॥ १५ ॥

तावेव द्वाविति अर्धचन्द्रौ क्रोडभावेन परस्पराभिमुखौ मण्डलम् । तदाकारत्वात् ॥ १९ ॥

दोनों ही अर्धचन्द्र, कोष्ठककी तरह आमने सामने होजायँ तो इसे 'मण्डल' कहेंगे, क्योंकि मण्डलका भी ऐसा ही आकार होता है ॥ १५ ॥

प्रयोगका स्थान ।

नाभिमूलककुन्दरवंक्षणेषु तस्य प्रयोगः ॥ १६ ॥

इसका, नाभिमूल, कुल्हे और उरुसन्धिपर मुख्यरूपसे प्रयोग होता है१६॥

नाभिमूले रशनानायकवदेव स्थितम् । ककुन्दरयोर्नितम्बस्योपरिकूपकयोरन्तर्निहितप्रतिकूपकं मनोहारि । वंक्षणयोरूरुसंध्योः कर्णिकालंकारवजघनस्य १६

नाभिमूलमें लगानेसे रशनाके रत्नजडित झब्बेकी तरह शोभा देता है । चूतड़ोंके ऊपर उनके गढ्ढोंके भीतर दूसरे गढ्ढोकी तरह सुन्दर लगता है । दोनों उरुसन्धियोंमें लगानेके बाद जघनके कर्णभूषणकी तरह सुन्दर लगता है॥१६

ऊरुसन्धिका खुलाशा।

जाघें जहां आकार मिलती हैं उसको उरुसान्धि कहते हैं सूत्रमें उरुसन्धिका मतलब 'मदनमंदिर' से भी है । तब ही रतिरहस्यने इस सूत्रका श्लोकमें अनुवाद करते हुए लिखा है कि—

"तौ सम्मुखौ वदति मण्डलकं मुनीन्द्रः ।
स्थानं च तस्य भगमूर्धककुन्दरोरु ॥"

यदि दो अर्धचन्द्र आमनेसामने भिड़ जायँ तो उसे वात्स्यायनने मण्डल कहा है, इसका स्थान, मदनमंदिरका ऊपरी भाग, नितम्बोंके ऊपरके गढ्ढे

—चन्द्रक' कहते हैं । अर्धचन्द्र बीचसे कटा हुआ गोल होता है । इसे इसकी जगह बनाना कैसे? इस बातको श्रीयशोधरने "ग्रीवाकी बगलमें बहिर्मुख" इत्यादिसे बता दिया है । पंचसायकने, काखें और स्तनपार्श्व नितम्ब ये स्थान अधिक माने हैं ।

और जाये हैं । जैसे कोकाने स्पष्ट शब्द रख दिया है वैसा यशोधरजी रखनेमें हिचपिचाये मालूम होते हैं । पंचसायकने भी यही कहा है कि—

" उरूतटे कामगृहे नितम्बे प्रोचुर्मुनीन्द्रा विनियोगमस्य ॥ "

उरुतट यानी उरुमूल, मदनमन्दिर और नितम्बोंपर इसका प्रयोग होता है । पर अनंगरंग इसका कपोलोंपर ही प्रयोग मा..तं हैं कि—

" इत्येव भेदाः सुमुखे प्रयोज्या—स्तदा बुधा मण्डलकं वदन्ति । "

यदि अर्धचन्द्रोंका सुन्दर कपोलोंपर प्रयोग किया जाय तो विज्ञजन उसे ' मण्डल ' कहते हैं ।

रेखाका स्थान ।

सर्वस्थानेषु नातिदीर्घा लेखा ॥ १७ ॥

रेखा बहुत बड़ी न हों, ऐसी सभी स्थानोंमें की जा सकती हैं ॥ १७ ॥

सर्वस्थानेति लेखायाः स्थानविशेषाभावान्न स्थानविशेषाः । तेन ग्रीवात्रिकपृष्ठपार्श्वोरुमूलबाहुषु नातिदीर्घस्थानविशेषाद्व्यंगुला त्र्यंगुला वा प्रत्यग्रशिखरानिष्पाद्या ॥ १७ ॥

लेखाका कोई स्थान विशेष तो है ही नहीं, जो अलग बता दिया जाय, इस कारण ग्रीवा, त्रिकपृष्ठ, उरु और बाहुमूलमें अधिक जगह देख कर, बहुत बड़ी न कर देनी चाहिये, केवल दो वा तीन अंगुलकी लम्बी नुकीली बनानी चाहियें ॥ १७ ॥

व्याघ्रनखक ।

सैव वक्रा व्याघ्रनखकमास्तनमुखम् ॥ १८ ॥

यदि वही ' व्याघ्रनखक ' कहाती है, यदि स्तनके मुखसे उठाकर टेढी हों॥१८॥

सैवेति । लेखा स्तनमुखादुत्थाप्याग्रतो वक्रीकृता व्याघ्रनखखण्डवत्स्तनकण्ठमलङ्करोति ॥ १८ ॥

यदि लेखा ही स्तनके मुखसे उठा अगाड़ी टेढी की जाकर, व्याघ्रके नाखूनोंके टुकड़ोंकी तरह, स्तनके कंठको सुशोभित करती हैं, इस कारण इसको ' व्याघ्रनख ' भी इस दशामें कहते हैं ॥ १८ ॥

---

१ पं. सा. ने स्तनान्त, कक्षा और जघनस्थल, एवं अनंगरंगने मूर्धा, ऊरु, गुह्य और कुचदेश तथा नागरने ऊरु, पृष्ठ और श्रोणीतट बताया है ।

मयूरपदक ।

पञ्चभिरभिमुखैर्लेखा चूचुकाभिमुखी मयूरपदकम् ॥ १९ ॥

सामनेके पांचों नाखूनोंसे, चूचुकके सामनेकी रेखा 'मयूरपदक' कहाता है॥

पञ्चभिरपि नखैः सूच्यग्रशिखरकैश्चूचुकाभिमुखा इति स्तनमुखस्याधस्तादंगुष्ठकनखं विन्यस्योपरि च संश्लिष्टांगुलिनखानि चूचुकस्याभिमुखमाकर्षयेत् । मयूरपदकं तदाकारत्वात् ॥ १९ ॥

सुईकी तरह नुकीले पांचों नाखूनोंसे, स्तनके अग्रभागमें जो काली २ जगह है उसके नीचे अँगूठेका नाखून लगा, ऊपर मिले हुए नाखूनोंके खोंसे चूचुकके सामने तक लाये, इसे 'मयूरपदक' कहते हैं, क्योंकि यह मोरके पंजेकी शकलका होता है ॥ १९ ॥

प्रयोगकी रीति ।

यह कैसे बनाया जाता है, इसपर अनंगरंगने कहा है कि—

"रेखा कृता सर्वनखैरधस्तादंगुष्ठमाधाय तु चूचुके या"

इसे करतीवार चूचुकपर अँगूठा रखकर उसके पासकी काली २ जगहपर उँगलियोंसे रेखाएँ की जायँ । रतिरहस्य अँगूठेको नीचे रखनेके लिये कहता है कि—

"अंगुष्ठजं नखमधो विनिवेश्य कृष्टैः सर्वांगुलिकररुहैरुपरि स्तनस्य ।
तच्चूचुकाभिमुखमेत्य भवन्ति रेखास्तज्ज्ञा मयूरपदकं समुदाहरन्ति ॥"

जिधरकी तरफ खोंसा देना है उधर अंगूठा रखकर, बाकी चारों उँगलियोंके नाखुनोंसे चूचुककी ओर खींचे तो इसीका नाम 'मयूरपदक' है। चूचुकपर अँगूठा रखकर, उसकी ओर श्याम जगहपर बाकी अँगुलियोंके नाखूनोंके निशान किये जा सकते हैं ।

शशप्लुतक ।

तत्संप्रयोगश्लाघायाः स्तनचूचुके संनिकृष्टानि पञ्चनखपदानि शशप्लुतकम् ॥ २० ॥

संप्रयोगकी तारीफ चाहनेवाली प्रेयसीके स्तनोंके चूचुक तक खिची हुई बिलकुल पास २ की रेखाएँ 'शशप्लुतक' कहाती हैं ॥ २० ॥

तदिति मयूरपदकम् । संप्रयोगश्लाघाया इति नायकसंप्रयोगश्लाघा यस्यास्तस्या विधेयम् । सर्वा एव हि स्त्रियः स्तनमुखं सर्वनखविलुप्तं बहु मन्यन्ते । यथोक्तम्—'स ते मनसि तन्वङ्गि सखि प्रागिव वर्तते । स्तनवक्त्रं विशालाक्षि

यत्ते शिखिपदाङ्कितम् ॥' स्तनचूचुक इति सामीप्ये सप्तमी । संनिकृष्टानीति नखाग्रपञ्चकमेकीकृत्यावष्टभ्य निदध्यात्ततः पञ्च पदानि संनिकृष्टानि शशप्लुतकम् । तदाकारत्वात् ॥ २० ॥

जिसे कि नायकके सहवासकी श्लाघा हो, उसके स्तनोंपर ' शशप्लुत ' करना चाहिये, क्योंकि—सभी स्त्रियाँ खूब नाखूनोंसे चिह्नित हुए स्तनोंके काले २ भागको अच्छा समझती हैं । यही कहा भी है कि—" ऐ पतले शरीरवाली सहेली ! वह तो तेरे दिलमें पहिलेकी तरह ही रहता होगा, क्योंकि—ए बड़े नयनोंवाली ! तेरे स्तनोंका काला २ अग्रभाग, नाखूनोंके ' शिखिपद ' चिह्नसे चिह्नित है ।" स्तनोंके चूचुकपर यह कहना उसके समीपके भागको लेकर है, कि उस चूचुकके पासतक खिंची हों । रेखाएँ पास २ जभी होंगी जब कि पांचों नाखूनोंको मिलाकर, फिर रोपकर रखे । इसके रखनेसे पांचों निशान पास २ होंगे, अतः 'शशप्लुत' कहायेंगे, क्योंकि खरगोशके पंजे भी ऐसे ही होते हैं ॥२०

दूसरे आचार्य्य ।

पंचसायकने कहा है कि—" समैश्च सर्वैर्नखरैः सुलग्नैः " पृष्ठ और स्तन गुल्फपर, आपसमें लगेहुए बराबर किये, सब नाखूनोंसे ' शशप्लुत ' बनाया जाता है । नागरसर्वस्व भी इन्हीं स्थानोंपर इसका प्रयोग कहता है पर वह— " शशप्लुतं पञ्चनखव्रणानि । सान्द्राणि—" पांचों सान्द्र नखव्रणोंको ' शशप्लुत ' कहता है । अनंगरंग—" शशप्लुतं सर्वनखैः कुचाग्रे " सारे नखोंसे कुचके अग्रभागपर किया, शशप्लुत बताता है । इन वचनों तथा कामसूत्र और जयमङ्गलाका समन्वय करनेके बाद यही सिद्धान्त निकलता है, कि ये रेखाएं चूचुकके पास उससे मिली हुई काली जगहपर लगाई जाती हैं ।

उत्पलपत्रक ।

स्तनपृष्ठे मेखलापथे चोत्पलपत्राकृतीत्युत्पलपत्रकम् ॥२१

स्तनोंकी पीठ एवम् जहां मेखला बाँधी जाती है, वहा जा नखचिह्न होवा है, वह ' उत्पलपत्रक ' है ॥ २१ ॥

उत्पलपत्राकृतीत्युत्पलपत्रसंस्थानम् । तदेकमेव स्तनपृष्ठे मेखलापथे चेति । यथा मेखला निबध्यते । तत्र पथग्रहणान्नैकम् । अपि तु तिर्यगुत्पलपत्रमालामिव शोभार्थं निदध्यात् । नाभिमूलस्तनमण्डलेऽस्या नायकरत्नवदाभाति ॥ २१ ॥

उसकी आकृति, कमलके पत्ते जैसी होती है इस कारण उसे 'उत्पलपत्रक' कहते हैं। यह एक ही, स्तनकी पीठ एवम् नाड़ेके बांधनेकी जगह किया जाता है। सूत्रमें मेखलापथपर ऐसा कहा है, पथके कहनेसे यह बात सिद्ध होती है कि उसके बँधनेकी जगहोंपर और भी किये जाते हैं। वे कमलकी टेढ़ी मालाकी तरह करने चाहियें। ये नाभिमूल और स्तनमण्डलपर नायकके पहिनाये हुए रत्नकी तरह अच्छे लगते हैं ॥ २१ ॥

बनानेकी रीति।

इसमें कमलके पत्तेकी सूरतमें तीन रेखाएँ बनाई जाती हैं, यही अनंगरंगने कहा भी है, कि—"रेखात्रयं पृष्ठकुचेऽथ गुह्ये तथा भवेदुत्पलपत्रवद् यत्।" कमलके पत्तेकी सूरतकी तीन रेखाओंका, कुचपृष्ठ वा गुह्यस्थानपर किया जाना, 'उत्पलपत्रक' कहाता है। कोई कुचपृष्ठके स्थानमें पृष्ठ और कुच, ग्रहण करते हैं, पर उनका ऐसा करना ठीक नहीं है। रतिरहस्यकार भी यही कहते हैं कि—"ह्यन्वर्थमुत्पलदलं स्तनगुह्यपृष्ठे" स्तनपृष्ठ और गुह्यपृष्ठपर कमलपत्र बनाना 'उत्पलपत्रक' कहाता है।

विदेश जातीबार।

ऊर्वोः स्तनपृष्ठे च प्रवासं गच्छतः स्मारणीयकं संहताश्चतस्रस्तिस्रो वा लेखाः। इति नखकर्माणि ॥ २२ ॥

विदेश जाते हुए पुरुषकी, प्यारीके ऊरु या स्तनमण्डलपर स्मारणीयक (अपनी यादगारी) के लिये मिली हुई चार वा तीन रेखाएँ होवो हैं ॥२२॥

स्मारणीयकमिति प्रोषितं स्मारयति यन्नखच्छेद्यं लेखाख्यम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्तर्यनीयर्। ततः संज्ञायां कन्। ततः प्रयोज्याया ऊर्वोः प्रवासं गच्छतः प्रच्छन्नस्य नायकस्य प्रयोक्तुः, स्तनपृष्ठे सार्वलौकिकस्य। संहता इति निरन्तरा मेखलार्थम्। मा भूच्चिरविप्रयोग इति चतस्रो दीर्घप्रवासे तिस्रो ह्रस्वप्रवासे संख्याङ्कवल्लेखाः। एषामर्धचन्द्रादीनां देशकालकार्यवशान्नायिकापि प्रयोक्त्री। नखकर्माणीत्येतानि नखच्छेद्यानि रूपवन्तीत्यर्थः। अरूपिणां त्वनिबद्धरूपत्वात्तत्स्थानानियमः। सर्वत्रैवोक्तस्थाने प्रयोगः ॥ २२ ॥

---

१ 'स्मृ चिन्तायाम्' धातुसे प्रेरणामें 'णिच्' करके फिर कर्तामें 'अनीयर्' प्रत्यय करने एवं संज्ञामें 'कन्' प्रत्यय करनेके बाद 'स्मारणीयक' शब्द बनता है।

स्मरणके लिये किया काम, विदेशमें गयेकी याद करा दिया करता है। जार पुरुषका यह काम होता है कि विदेश जातीवार अपनी यादके लिये ऊरु जाघोंपर छिपे निशान कर देता है एवम् बाकी सब लोगोंकी रेखाएँ स्तनों-पर होती हैं। रेखाएँ बीच रहित होनी चाहियें, जो कि मेखलाकी नकल कर सकें। चिरकाल तक वियोग न हो, इस कारण दीर्घप्रवासमें चार एवम् छोटे प्रवासमें तीन संख्याके अंकोंकी तरह रेखाएँ करनी चाहियें। इन अर्धचन्द्र आदि नाखूनोंके चिह्नोंका प्रयोग देश, काल और कार्य्यकी अपेक्षासे नायिका भी कर सकती है, ये रूपवाले नखोंके निशान हैं जो कि साधा है किसीकी सूरतमें नहीं बनाये जाते उनके स्थानका नियम नहीं है, वे कहीं भी मारे जा सकते हैं, किन्तु आकृति युक्तोंका बताई हुई जगहोंमें ही प्रयोग होता है।।२२।।

नखपदोंका साहित्यमें उपयोग।

माघ–"कामिनामसकलानि विभुग्नैः स्वेदवारिमृदुभिः करजाग्रैः।
अक्रियन्त कठिनेषु कथञ्चित् कामिनी कुचतटेषु पदानि।।" १०–५७।

कामियोंको प्यारीके स्पर्शसे जो सात्विक हुआ, उससे जो अँगुलियोंपर पसीना आया, उससे नाखून भीगकर कोमल हो गये, इस कारण उन्होंने अपने नाखूनोंसे कामिनियोंके स्तनोंके मुखमण्डलपर किसी तरह असमग्र निशान किये। स्तनोंके तटोंपर कामशास्त्रके आचार्य्योंके सिद्धान्तके अनु-सार अर्धचन्द्रसे लेकर शशप्लुत तक, सभी किये जा सकते हैं।

कु०–"ऊरुमूलनखमार्गराजिभिस्तत्क्षणं हृतविलोचनो हरः।
वाससः प्रशिथिलस्य संयमं कुर्वतीं प्रियतमामवारयत्।।" ८–८७।

जिस समय प्यारी अपनी कमरके खुले वस्त्रको बाँध रही थी, उसी समय प्यारेकी दृष्टि उसके ऊरुमूलपर पड़ी, जिसपर नाखूनोंके निशान चमक रहे थे। निगाह जाते ही आँखें उनपर टिक गईं, जिसे देखकर उसकी वृत्ति पुनः प्रदीप्त हो गई, अतः प्यारेने प्यारीको वस्त्र सँभालनेसे रोक दिया। यहां मण्ड-लका प्रयोग होता है।

नै०–" भीमजोरुयुगलं नलार्पितैः पाणिजस्य मृदुभिः पदैर्बभौ।
तत्प्रशस्तिरतिकामयोर्जयस्तम्भयुग्ममिव शातकुम्भजम्।। "

दमयन्तीकी दोनों जांघें, नलके कोमल नाखूनोंके निशानोंसे ऐसे सुन्दर मालूम होने लगीं, मानो रति और कामके सोनेके जयस्तम्भोंपर लिखी हुई प्रशंसापत्रिका हैं। यहां रेखाका प्रयोग होता है।

कु०-" नखव्रणश्रेणिधरे बबन्ध नितम्बबिम्बे रशनाकलापम् ।
चलस्वचेतोमृगबन्धनाय मनोभुवः पाशमिव स्मरारिः ॥ " ९-२५ ।

स्मरारिने चंचल चित्तके हिरणोंको फँसानेके लिये कामदेवके पाशकी तरह नाखूनोंसे निशानोंकी लैनको धारण किये हुए, नितम्ब बिम्बोंपर अपने हाथसे रसना (नीवी) बाँधने लगे । नितम्बपर अर्धचन्द्र और मण्डलका प्रयोग होता है; यहां रशना कलापके बांधनेका प्रकरण है, इस कारण उत्पलपत्रक भी हो सकता है ।

नै०-" यौ कुरंगमदकुंकुमाञ्चितौ नीललोहितरुचौ वधूकुचौ ।
स प्रियोरसि तयोः स्वयंभुवोराचचार नखकिंशुकार्चनम् ॥" २०-१०२ ।

वधूके कस्तूरी और कुंकुम लगे हुए नीली और लाल कान्तिवाले स्तनोंपर, नाखूनोंके चिह्नोंकी लालीरूपी ढाकके फूलोंसे मानो कामका पूजन ही किया हो । यानी कस्तूरी कुंकुम लगे हुए दमयन्तीके स्तनोंपर इतने आहिस्ते एवम् दर्द न करनेवाले नखचिह्न बनाये कि वे उसके स्तनोंकी एक निराली शोभा बढ़ाने लग गये । यह आच्छुरितका प्रयोग प्रतीत होता है ।

अपठितोंका भी ग्रहण ।

अन्येषामतिदेशमाह—

जो आकृति, नाखून आदिके चिन्होंकी कामसूत्रने बताई हैं उनसे इतरोंका भी ग्रहण हो जाय, इसके लिये सूत्र करते हैं कि-

आकृतिविकारयुक्तानि चान्यान्यपि कुर्वीत ॥ २३ ॥

इन आठोंके सिवा किसी वस्तुकी सूरतको लिये हुए और भी चिह्न करे२३

आकृतिविकारयुक्तानीति संस्थानविशषयुक्तानि । अन्यान्यपि पक्षिकुसुमकलशपत्रवल्ल्यादीनि नखकर्माणि प्रयोक्तव्यानि । अनेन विकल्पस्याधिक्यं दर्शयति ॥ २३ ॥

और २ भी फूल, कलश, पत्ता और वल्ली आदिकी सूरतके निशान, नाखूनोंसे कर दे । इस कथनसे आठसे भी अधिक विकल्प दिखा दिये ॥ २३ ॥

भेद और कौशल ।

विकल्पानामनन्तत्वादानन्त्याच्च कौशलविधेरभ्यासस्य च सर्वगामित्वाद्रागात्मकत्वाच्छेद्यस्य प्रकारान् कोऽभिसमीक्षितुमर्हतीत्याचार्याः ॥ २४ ॥

भेद अनन्त हैं । उनके कौशलका कोई ठिकाना नहीं है । यह अभ्यासके ऊपर निर्भर है । अभ्यास सब जगहका होना चाहिये । इसके सिवा यह भी कारण है, कि नाखून, रागमें अन्धे होकर लगाते हैं । इन कारणोंसे इनके भेदोंकी कौन समीक्षा कर सकता है, ऐसा आचार्य्योंका मत है ॥ २४ ॥

आचार्याणां मतं विकल्पानामिति । अष्टविकल्पमेवास्तु नान्यानि । तेषां छेद्यप्रकाराणां निरूप्यमाणानामानन्त्यात् । अतस्तान्कोऽभिसमीक्षितुमर्हतीति संबन्धः । तदभिसमीक्षिणा कौशलमप्यपेक्षणीयम् । तस्य च प्रतिविकल्पं भिन्नत्वादानन्त्यमित्याह—आनन्त्याच्चेति । कौशलविधिः कौशलकरणम्, स च नाभ्यासं विनेत्ययमपरस्तृतीयोऽपेक्षणीयः । सोऽप्येकत्र कृतोऽन्यत्र न कौशलं निष्पादयतीति सर्वगामिना भवितव्यमित्याह—अभ्यासस्य च सर्वगामित्वादिति । तदियं महती परम्परेति कः प्रकारानभिसमीक्षते । किं च रागात्मकत्वाच्छेद्यस्येति रागजन्यत्वात्तदात्मकं नखच्छेद्यम् । रागविवृद्धौ हि नखविलेखनम् । तच्च तदानीं रागान्धत्वादरूपवदेव प्रयुंक्ते । कोऽत्र च्छेद्यवस्तुनि प्रकारं प्रयोक्तुमर्हति तदानीमष्टविकल्पमपि न वक्तव्यम् ॥ २४ ॥

विकल्पोंके विषयमें आचार्य्योंका मत कहते हैं, कि आठ भेद ही रहें, नखच्छेद्यके अधिक न मानने चाहियें । क्योंकि अगाड़ी एवं गतसूत्रके बताये हुए विधानके अनुसार अनन्त हो जाते हैं, इसकारण कौन उन्हें कह सकेगा, यह इस सूत्रका तात्पर्य्य है । जो इन भेदोंपर विचार करेगा उसे नाखून लगानेके कौशलपर भी विचार करना पड़ेगा । यह तो हरएक भेदका अनन्त है, इस कारण करनेकी चतुरताका पार नहीं पाया जा सकता । चतुरता भी अभ्याससे होती है, इस कारण इसका भी विचार करना पड़ेगा । इसकी भी यह बात है कि एक जगह किया हुआ दूसरी जगह कुशलता पैदा नहीं करता अतः यह भी सभी जगहोंका होना चाहिये, क्योंकि अभ्यास सर्वगामी है । इस प्रकार यह एक बड़ी भारी परंपरा है, इसके भेदोंका विचार कौन कर सकता है । इसके सिवा एक और बात यह है कि रागमें अन्धे होकर नाखून लगाते हैं, इस कारण इनका लगाना रागके ऊपर निर्भर है । इसमें आकृतियोंका ध्यान नहीं रहता, विना रूपके ही लगाते हैं, इस कारण कौन इस निशान लगनेवाली वस्तुके भेदोंका प्रयोग कह सकता है । इससे परिस्थितिमें आठ भेद कहना भी ठीक नहीं है ॥ २४ ॥

विचित्रताका उपयोग ।

भवति हि रागेऽपि चित्रापेक्षा । वैचित्र्याच्च परस्परं रागो जनयितव्यः । वैचक्षण्ययुक्ताश्च गणिकास्तत्कामिनश्च परस्परं प्रार्थनीया भवन्ति । धनुर्वेदादिष्वपि हि शस्त्रकर्मशास्त्रेषु वैचित्र्यमेवापेक्ष्यते किं पुनरिहेति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

रागमें एवं विना रागमें भी विचित्रताकी आवश्यकता रहती है, क्योंकि अस्वाभाविक रतोंमें आपसमें राग, विचित्रतासे ही पैदा किया जाता है। कामकलाकोविद गणिका और कामी आपसमें एकदूसरेके प्रार्थनीय होते हैं। धनुर्वेदादिक शस्त्रविद्याके शास्त्रोंमें भी खूबी देखी जाती है तो फिर कामशास्त्रोंमें क्यों न देखी जाय ? यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ २५ ॥

भवति हि रागेऽपीति । हिशब्दोऽवधारणे । रागकालेऽपि केषांचित्सत्यप्यानन्त्ये वैचित्र्यापेक्षा भवत्येव । अपिशब्दादरागकालेऽपि । यदाह—वैचित्र्याचेति । आहार्यरागे कृत्रिमरागे च रते परस्परस्य राग उत्पद्यमानः सन्विना (?) वैचित्र्यमिति तज्जननार्थं च वैचित्र्यापेक्षा । के पुनस्ते रागे सत्यरागे च वैचित्र्यमपेक्षन्त इत्याह—वैचक्षण्ययुक्ताश्चेति । तज्ज्ञतया युक्ता देवदत्तासदृश्यो गणिकास्तत्कामिनश्च मूलदेवसदृशाः । ते च विशिष्टरतार्थिनः परस्परस्य प्रार्थनीयास्तज्ज्ञा भवन्ति । मा भूदन्यत्र खलरतमिति । ततश्च तेषां वैचित्र्यमेव रागं जनयति । धनुर्वेदादिष्वपीति शास्त्रान्तरेणास्य साधर्म्यं दर्शयति । आदिशब्दात्कुन्तखड्गादिशास्त्रपरिग्रहः । शस्त्रकर्मशास्त्रेष्विति ज्ञानविद्या कर्मविद्या चेति द्विविधा विद्या । धनुर्वेदे हिं परशराणामागच्छतां शरैश्छेदनमेकसंधानेनानेकशरमोक्षणमित्यादिकं कर्मवैचित्र्यम् । किं पुनरिह कामसूत्रे यत्र वैचित्र्यमेव मुख्यमभिप्रेतम् । अन्यथा नागरकानागरकयोः को भेदः ॥ २९ ॥

सूत्रमें आया हुआ ' हि ' शब्द निश्चय अर्थको कहता है । किन्हींको अनन्त रहनेपर भी रागकालमें भी विचित्रताकी आवश्यता होती ही है । ' रागकालेमें भी ' के साथ जो भी शब्द है इससे अरागकालका भी ग्रहण होता है । इसी बातको दिखानेके लिये सूत्रमें वैचित्र्य हेतु दिखाया है, कि आहार्य्य और कृत्रिम रागवाले रमणोंमें विना विचित्रताके राग उत्पन्न

नहीं होता, अतः इनमें राग पैदा करनेके लिये विचित्रताकी आवश्यकता है । वे कौन हैं, जो राग और सत्य रागमें वैचित्र्यकी अपेक्षा रखते हैं ? इसका उत्तर देते हैं कि—" वैचित्र्यके जाननेवाली देवदत्ताके समान गणिका एवम् बड़े भारी वैचित्र्यके जाननेवाले मूलदेवके समान कामी हों, यदि ये दोनों भी रँगीला रमण चाहें तो आपसमें एक दूसरेके ये चाहनेकी चीज होंगे, इसी तरह बराबरके ज्ञाताओंमेंसे एक दूसरेकी चाहकी चीज होते हैं, क्योंकि ये दूसरे जगहके खलरतको नहीं चाहते । इससे यह बात सिद्ध हुई कि इनकी रतनिपुणता ही आपसमें एक दूसरेका मुस्ताक बना देती है । दूसरे शास्त्रोंके साथ इसकी समानता दिखाते हैं कि-शस्त्र कर्मवाले धनुर्वेदादिक शास्त्रोंमें भी विचित्रता ही देखी जाती है । इसमें आये हुए आदिशब्दसे आचार्य्यने बता दिया है कि भाले फेंकने तथा तलवार चलाने आदिके शास्त्रमें भी चतुरताकी आवश्यकता है । ज्ञानविद्या और कर्मविद्या ये दो तरहकी विद्याएँ हैं । धनुर्वेदमें इस बातकी विचित्रता है, कि अपनी ओर आते हुए वैरीके बाणोंको अपने बाणोंसे बीचसे ही काट देना एवम् एक ही बारमें अनेकों तीर चला देना यह कर्मवैचित्र्य है । जब सभी जगह वैचित्र्य, मुख्य है तो इस कामसूत्रमें भी वैचित्र्य, मुख्य क्यों न होगा । यहां भी यह इष्ट है । नहीं तो नागर और अनागरमें भेद ही क्या होगा ॥ २५ ॥

इनका परनारीके विषयमें निषेध ।

सर्वत्र च वैचक्षण्ययुक्तेषु वैचित्र्यप्रतिषेधमाह—

चिन्होंकी सर्वत्र विचित्रता है तो कहीं उसका निषेध भी है, उसे ही दिखाते हैं कि—

न तु परपरिगृहीतास्वेवं कुर्यात् । प्रच्छन्नेषु प्रदेशेषु तासामनुस्मरणार्थं रागवर्धनाच्च विशेषान्दर्शयेत् ॥ २६ ॥

परनारीमें इस प्रकारके काम न करने चाहियें, किन्तु उसके मालिकके सामने न आनेवाली जगहोंमें यादगारीके लिये जरूर कर दे । यदि सहवासके समय करे ही तो वह विशेषता दिखा दे जिससे कि अधिक आनन्द आये, ऐसे निशान न करे जो कि देरतक बने रहें ॥ २६ ॥

न त्विति । परपरिगृहीतासु वैचक्षण्ययुक्तास्वपि । एवमिति वैचित्र्यं युक्तम् । तासां प्रच्छन्ननायकोपभोग्यत्वात् । प्रच्छन्नेष्विति ऊरुजघनवंक्षणादिषु । अनुस्मर-

णार्थमिति ये नखच्छेद्यविशेषास्तान्दृष्ट्वा स्मरन्ति । नित्यसमागमस्य दुर्लभत्वात् । रागवर्धनाच्चेति । प्रमोदमात्रस्वरूपत्वाद्विसृष्टिलक्षणां प्रीतिं महतीं जनयन्ति २६

कामकलामें निष्णात भी पराई नारीके विषयमें इन्हें न करे, क्योंकि ये तो छिपे नायकसे भोगी जाती हैं, किन्तु उनके मालिकके जलदी सामने न आनेवाले ऊरु, जघन और उसकी सन्धि आदिमें यादगारीके लिये कर दे, जिन्हें कि देखकर उसे याद आजाय । क्योंकि उससे रोजका मिलना तो बड़ा कठिन है तथा प्रमोदमात्रके स्वरूपवाले होनेके कारण स्खलित होनेके समय बडी भारी प्रसन्नताको पैदा करते हैं ॥ २६ ॥

नाखूनोंके चिन्होंकी प्रशंसा ।

स्मरणमधिकृत्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रशंसामाह—

स्मरणके अधिकारको लेकर अन्वयव्यतिरेकसे नाखूनोंके निशानोंकी प्रशंसा कहते हैं कि—

नखक्षतानि पश्यन्त्या गूढस्थानेषु योषितः ।
चिरोत्सृष्टाप्यभिनवा प्रीतिर्भवति पेशला ॥ २७ ॥

अपने छिपे अंगोंमें नाखूनोंके निशान देखकर, बहुत दिनोंकी बिछुरी भी प्रीति, सहजमें नई हो जाती है ॥ २७ ॥

नखक्षतानीति गूढस्थानादिषु । अभिनवा प्रथमसमागम इव प्रीतिः स्नेहः । पेशला अकृत्रिमा ॥ २७ ॥

गूढ स्थान तथा नख लगानेकी जगह, स्त्रियां नाखूनोंके निशानोंको देख लें तो प्रथम समागमकी तरह उनका स्वाभाविक स्नेह हो जाता है ॥ २७ ॥

चिरोत्सृष्टेषु रागेषु प्रीतिर्गच्छेत्पराभवम् ।
रागायतनसंस्मारि यदि न स्यान्नखक्षतम् ॥ २८ ॥

यदि रागके घरोंकी याद दिलानेवाले नाखूनोंके चिह्न न हों तो चिरकालके छूटे हुए रागमें प्रीति, पराजयको प्राप्त हो जाय ॥ २८ ॥

चिरोत्सृष्टेष्वनुभूय चिरपरित्यक्तेषु । पराभवं विनाशम् । रागायतनसंस्मारीति रूपं यौवनं गुणाश्चेति रागायतनम्, तत्स्मारयितुं शीलं यस्येति । नखक्षतदर्शनात्तद्रूपादिषु स्मरणम् । ततः प्रीतिवासनात्प्रबोधः ॥ २८ ॥

रागका अनुभव करके, फिर बहुत दिनोंसे छोड़ देनेपर प्रीति नष्ट हो जाय यदि रागके घररूप, यौवन और गुणोंको याद दिलानेवाले नखचिह्न न हों तो।

नाखूनोंके निशान देखकर उसके रूप आदिकोंकी याद आ जाती है, यानी इन्हें देख, प्रीतिकी वासनाओंसे उसका स्मरण हो आता है ॥ २८ ॥

चिह्नोंकी प्रशंसा ।

सामान्येन प्रशंसामाह—

नाखून और दाँतोंके चिह्नोंकी सामान्यरूपसे प्रशंसा करते हैं कि—

पश्यतो युवतिं दूरान्नखोच्छिष्टपयोधराम् ।
बहुमानः परस्यापि रागयोगश्च जायते ॥ २९ ॥

नाखूनोंके निशान, जिसके स्तनोंपर दीखनेमें आ रहे हैं, ऐसी सुन्दरी युवतीको दूरसे ही देखकर, दूसरेको भी उसमें बहुमान और अनुराग हो जाता है ॥ २९ ॥

दूरादिति तत्प्रकारमनुपलभ्यापि । उच्छिष्टं परिभुक्तम् । बहुमानोऽतिगौरवम् । परस्यापि येनापि न संगता । रागयोग इति रागेण युज्यत इत्यर्थः २९

चाहे उसे उसका कोई भी परिचय नहीं है पर पतली अँगियामेंसे स्तनोंके नाखूनोंके निशान झलक जायँ तो उसके दिलमें भी उसके लिये आदर होगा एवम् इसके साथ ही साथ उसके दिलमें उसके लिये चाह पैदा हो जायगी२९

पुरुषश्च प्रदेशेषु नखचिह्नैर्विचिह्नितः ।
चित्तं स्थिरमपि प्रायश्चलयत्येव योषितः ॥ ३० ॥

यदि नख लगानेकी जगह पुरुषके भी नाखून लगे हों तो स्त्रियोंका स्थिर चित्त भी प्रायः चलायमान हो जाता है ॥ ३० ॥

पुरुषश्चेति यथा पुरुषस्य तथा योषितोऽपि पुरुषं दृष्ट्वा रागः । प्रदेशेषु सदृशेषु । विचिह्नितो विलिखितः । तपश्चरणादिभिर्नियतमपि प्रायश्चलयतीति प्रकृतेरित्यर्थः ॥ ३० ॥

जिस प्रकार स्त्रीको देख, पुरुषको राग होता है उसी तरह, स्त्रियोंके दिलमें भी ऐसे पुरुषको देखकर, राग होता है । जिन जगहोंमें स्त्रियोंके नाखून लगाये जाते हैं, उन जगहोंमें पुरुषोंके भी नाखून लगाये जाते हैं । यदि स्त्रियां नाखूनोंके निशानोंके सौभाग्यवाले पुरुषको देख लें तो चाहे तपश्चर्य्या आदिसे मन रोक भी लिया है तो भी प्रायः अपनी प्रकृतिसे चलायमान हो ही जाता है ॥ ३० ॥

नान्यत्पटुतरं किंचिदस्ति रागविवर्धनम् ।
नखदन्तसमुत्थानां कर्मणां गतयो यथा ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके
द्वितीयेऽधिकरणे चतुर्थोऽध्यायः ।
आदितो नवमः ।

राग बढ़ानेमें ऐसी दूसरी कोई वस्तु योग्य नहीं है, जैसे कि नाखून और दांतोंके निशान हैं ॥ ३१ ॥

नान्यदिति रागयोगेभ्यः । पटुतरं रागवृद्धौ योग्यतरम् । दन्तग्रहणं तुल्यफलत्वदर्शनार्थं प्रासङ्गिकम् । कर्मणां गतय इति छेद्यानां प्रवृत्तयो यथा देहान्तरस्थिता न तथा लोकेऽन्यदस्ति संप्रयोगेऽपि रागवर्धनम् । पूर्वपूर्वमिति वक्ष्यति । इति नखरदनजातयो दशमं प्रकरणम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण
गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-
करणे नखरदनजातयश्चतुर्थोऽध्यायः ।

जितने भी राग बढ़ानेके योग हैं, उनमें ऐसा कोई योग नहीं, जैसे कि ये हैं । यद्यपि नाखूनोंके निशानोंका प्रकरण चल रहा है पर जो ये कार्य करते हैं वही दाँतोंके निशान भी करते हैं, इस कारण दांतोंके निशानोंका जिक्र भी कर दिया है, जैसे कि दूसरे देहमें स्थिर रहकर ये स्मरण दिलाते हैं। लोकमें दूसरा कोई इस प्रकार राग बढ़ानेवाली वस्तु नहीं है । पाहिले २ को क्रमसे कहते जाते हैं, नाखूनोंके निशानोंको कहकर, फिर अब दांतोंके निशानोंकी बातें कहेंगे ॥ ३१ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके चतुर्थ
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भापाटीका समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

दशनच्छेद्यविधि प्रकरण ।

एवं नखच्छेद्यानुपक्रम्य तदधिकेन दशनच्छेद्येनोपक्रमितुं दशनच्छेद्यविधयस्तथालिङ्गनादयो देशप्रवृत्तिमननुरुध्य प्रयुज्यमाणा न रागहेतव इति देशेषु भवा देश्या उपचारा इति प्रकरणद्वयमत्राध्याये ।

रागकी जिस परिस्थितिमें नाखूनोंका प्रयोग किया जाता है, यदि नाखूनोंके प्रयोगोंके बाद और भी रागकी प्रचण्डता बढ़ गई हो तो फिर दाँतोंके विधिपूर्वक वार किये जाते हैं, इस कारण नाखूनोंके प्रयोगोंको बताने के बाद, अब दाँतोंके लगानेकी विधि बताते हैं ।

चुम्बनालिङ्गन और नाखूनादिकोंमें ध्यान रखने लायक बात ।

यद्यपि आलिंगनसे लेकर नाखून लगाने तकके विधिविधानोंको बता चुके हैं एवम् दाँतोंके लगानेकी विधि बतानेके लिये चले हैं, किन्तु इन सबोंमें जो बात ध्यानमें रखनेकी है, उसे हम दाँतोंके वारोंके बतानेसे पहिले कहे देते हैं, कि—" आलिंगनोंसे लेकर दाँतोंके वारतकोंके कार्य्य, तब ही काममें लाने चाहियें जब कि जिसपर प्रयोग किये जायँ, उसकी देशरीति और स्वभाव एवम् रुचिको देख ले । यदि ये उसे रुचें तो प्रयोग करे, नहीं तो प्रयोगका नाम भी न ले । रुचिका पता व्यवहारसे लग जाता है एवम् जिस बातका जिस देशवासीका देशाचार है उसे इसी अध्यायमें दाँतोंके वारोंको बतानेके बाद कहेंगे, अतः इस अध्यायमें ये दो प्रकरण हैं ।

दाँत लगानेके स्थान ।

तत्र च्छेद्यस्य स्वरूपविषयकालानां पूर्वत्रनिर्दिष्टत्वात्स्थानानीत्याह—

इनमें वारका स्वरूप, विषय और समय पहिले बता चुके हैं, कि–प्रचण्डरागी दम्पति या प्रेमियोंमें आपसमें रागके प्रदीप्त हो जाने पर इस प्रकारके नाखून आदि चलते हैं । अब दाँत कहां चलते हैं ? इस प्रश्नको हल करनेके लिये दाँत लगानेके स्थान बताते हैं कि–

उत्तरौष्ठमन्तर्मुखं नयनमिति मुक्त्वा चुम्बनवद्दशनरदनस्थानानि ॥ १ ॥

ऊपरके होठ, जीभ और आखोंको छोड़कर, बाकी चुम्बनके स्थान ही काटनेके या दाँत लगानेके भी स्थान हैं ॥ १ ॥

उत्तरौष्ठमिति चुम्बनस्यैव न । तत्राप्युत्तरौष्ठं छिद्यमानमसुखावहम् । अन्तर्मुखं जिह्वां शेषमपि । दशनगोचरत्वात् । नयनयोश्छेद्यासंभवात्पर्यन्तपीडाकरत्वाद्वैरूप्यकरणाच्च मुक्त्वा शेषा ललाटाधरोष्ठगलकपोलवक्षःस्तनाः, तथा लाटानामूरुसंधिबाहुमूलनाभिमूलानि सन्ति तानि स्थानानि न तु सर्वजनप्रयोज्यानीति । एतत्सर्वं योज्यम् । चुम्बनेन सहैकविषयत्वात् । दशनरदनस्थानानि दन्तविलेखनस्थानानि । उत्तरोत्तरवैचित्र्यदर्शनार्थं चुम्बनविकल्पानन्तरमिदं नोक्तम् ॥ १ ॥

जैसे ऊपरका होठ चूँमनेकी जगह है, उस तरह काटने या दाँत लगानेकी जगह नहीं है । इस कथनपर यह आशंका होती है कि अधरसे ज्यादा उत्तरोष्ठमें क्या महत्त्व है, जो उसमें दाँत नहीं लगाया जा सकता ? इसका उत्तर देते हैं कि–' अधरपर तो पीडाका अनुभव नहीं हो पाता और अधिकतर दबा रहनेके कारण कोई देखता भी नहीं है, किन्तु दाँत लगा हुआ ऊपरका होठ अच्छा न लगेगा । अन्तर्मुख–मुँहके भीतर जीभ तथा अधरको छोड़कर दूसरा भाग, यह भी दाँत लगानेकी जगह नहीं है । यानी मुखके अन्दरके जिस किसी भी स्थानमें दाँत लगाये जा सकें न लगाये । पर मुख्यरूपसे जीभ ही ध्यारीमें आ सकती है और दूसरे अंग कम आते हैं । चुम्बनके तीन स्थान ऊपरका होठ, अन्तर्मुख और नेत्रोंको छोड़कर, बाकीके चुम्बनके जो ललाट, अधर, गला, कपोल, वक्ष और स्तनादि सर्वसाधारणके स्थान हैं वे दांतोंके निशानोंकी भी जगहे हैं । इनके सिवा और भी उरुसन्धि, बाहुसन्धि और नाभिमूल, लाटोंका चुम्बन स्थान है । इन स्थानोंका सर्वसाधारण इस काममें उपयोग नहीं करते; लाट ही करते हैं । यह जो बात चुम्बनस्थलपर विशेषरूपसे कही गई थी उसे दाँत लगानेमें भी समझना चाहिये । इसी सिद्धान्तके

---

१ कामसूत्रने तो उत्तरोष्ठ (ऊपरके होठ) का दाँत लगाना, एकदम निषिद्ध कर दिया है, जयमङ्गलाका सीधा इनकार न करके इतने घुमाकर कहनेका कारण यह है कि–कविशेखर श्रीज्योतिरीश्वर आदि कामशास्त्रके आचार्य्य यह कहते हैं कि–"वक्रान्तराक्षिद्वितयं विहाय" यानी अन्तर्मुख और आखोंको छोड़कर चुम्बनके स्थानोंपर दांतोंका भी वार किया जा सकता है । इस तरह ये इन दो जगहोंको छोड़कर बाकीके स्थानोंको ले रहे हैं, अतः इनके लेनेमें ऊपरका होठ भी दांत लगानेकी जगहोंमें आ जाता है । इसी आशंकाको लेकर श्रीयशोधरने अपनी प्रसिद्धटीका जयमंगलामें कहा है कि–" दाँत लगा हुआ ऊपरका होठ खूब सूरत न लगेगा " इस कारण उक्त आचार्य्योंके मतानुयायियोंको भी ऊपरके होठमें दाँत न लगाना चाहिये, क्योंकि वह अधरकी तरह सुशोभित न होगा ।

अनुसार लाटोंके विशेष चुम्बनस्थानोंको उनके दाँत लगानेका भी विशेष स्थान कह दिया है, क्योंकि दाँत लगानेका विषय और चुम्बनका विषय एक है, इस कारण चुम्बनके विशेषस्थल, उसी रीतिसे दाँतोंके भी नियत विशेष स्थल होंगे जैसे कि लाटोंके चुम्बनका ऊरुमूल (मदनमंदिर) उनके दाँतोंके लगानेका भी स्थल जयमंगलाने बता दिया है । सूत्रके कहे दाँतोंके रहनेके स्थानका मतलब, दाँतोंके निशान करनेकी जगहसे है । यद्यपि इसका चुम्बनसे इतना सम्बन्ध है पर क्रमिकविचित्रता दिखानेके लिये चुम्बनके बाद न कहकर नखविलेखनके बाद ही कहा है ॥ १ ॥

चुम्बनस्थानोंका विशेष विचार ।

कामसूत्रमें जो चुम्बनके तुल्य ही दाँत लगानेके स्थान बताये हैं, इस अतिदेशसे श्रीयशोधरजीने लाटोंके चुम्बनके विशेष स्थलोंसे उनके दाँतोंके लगानेके विशेषस्थलोंका भी संकेत कर दिया है । किन्तु अनंगरंग कहता है कि– " नखप्रदेशेषु रदा प्रयोज्याः " नाखूनोंके निशान लगानेके जो स्थान हैं उन्हीं-पर दाँतोंका भी प्रयोग करना चाहिये । इसकी ही ' हां ' में हां मिलाता हुआ पञ्चसायक कहता है कि–

" दन्तप्रकाराश्च नखप्रकारैर्ज्ञेयाः समा एव समैश्च सद्भिः ॥"

दाँतोंके लगानेकी रीति भी नाखूनोंके लगाने जैसी ही है । इस कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि चुम्बनातिदेशकी जगह नाखून लगानेका अतिदेश ले रहे हैं ।। पर विचार करके देखते हैं तो चुम्बनके साथ दन्तच्छेदको क्रियात्मक रूपमें पाते हैं, इस कारण जो चुम्बनके स्थान, नाखून लगानेकी भी जगहें हैं उन्हीं स्थानोंमें दंतक्षत और नखच्छदकी एकता रहे तो भले ही रह सकती है पर सब जगह एकता नहीं है, यदि सब जगहकी होती तो कोक भी कभी न चूकते । पर चुम्बनके तीन स्थानोंको छोड़कर बाकीके स्थानोंमें चुम्बनके साथ एकता,अनुभव सिद्ध है इसी कारण कोकने कहा है कि–

" अन्तर्मुखोत्तररदच्छदनेत्रवर्जं
स्थानेषु चुम्बनविधौ कथितेषु योज्यः ॥"

अन्तर्मुख, ऊपरका होठ और नेत्रोंको छोड़कर, चुम्बनविधिमें जो स्थान बताये हैं, उनमें दाँतोंका भी प्रयोग करना चाहिये । यहां " चुम्बनविधिमें जो स्थान बताये हैं " इस कथनसे कामसूत्रने जो ' चुंबनवत् ' इस पदसे ' चुम्बन की तरह ' यह अतिदेश किया था, यानी चुम्बन की समता दिखाई

थी उसका भी खुलासा कर दिया है । इन सबसे यही सिद्धान्त निकलता है, कि– चुम्बनके स्थान ही दाँत लगानेके स्थान हैं, जिनपर चुम्बन भी होता हो और नखच्छेद्य भी, तो वे नखच्छेदके संयोगी भी रहे आयें, और कोई समता नखछेदसे नहीं है ।

दांतोंके गुण ।

गुणानाह––

दाँत लगानेके स्थान बताकर अब दाँतोंके गुण बताते हैं कि––

समाः स्निग्धच्छाया रागग्राहिणो युक्तप्रमाणा निश्छिद्रास्तीक्ष्णाग्रा इति दशनगुणाः ॥ २ ॥

दाँत बराबर हों स्निग्धच्छाय यानी सुन्दर चमकवाले हों, जिनके ऊपर पानका रंग चढ़ जाता हो, जितने लम्बे चौड़े होने चाहियें उतने ही हों, उनके बीचमें जगह न हो एवं नुकीले हों, ये दाँतोंके गुण हैं ॥ २ ॥

समा अकरालास्तुल्यच्छेद्यं निष्पादयन्तीति । स्निग्धच्छाया अपरुषाः । रागग्राहिणस्ताम्बूलभक्षणादौ पुष्पदन्ताः । इति गुणद्वयं शोभार्थम् । युक्तप्रमाणा न श्लक्ष्णा न पृथवः । निश्छिद्रा घनाः । तीक्ष्णाग्राः । इति गुणत्रयं छेद्यार्थं शोभार्थं च ॥ २ ॥

जो दाँत टेढकमेढे होंगे, वे प्रयुक्त करनेपर बराबरका निशान न कर सकेंगे इस कारण सम होने चाहियें । चमकदार हों, रूखे न हों, पानकी लाली जिनपर खाते ही आजाय, यह बात न हो कि कलीकी तरह सफेद ही बने रहें । ये दोनों गुण दाँतोंकी शोभाको बढ़ानेवाले हैं । ऐसे न हो कि पतले हों तो एकदम ही महीन एवम् मोटे हों तो एकदम हो मोटे हों । सघन हों,

---

१ रति रहस्यने भी–"स्निग्धत्विषः शितशिखानतिदीर्घखर्वा रागस्पृशः समघनाः दशनाः प्रशस्ताः ॥ "
इन शब्दोंमें इस सूत्रका अनुवाद किया है । 'स्निग्धच्छाय' शब्द जिसका कि अर्थ चमकदार हों रूखे न हों यह किया है । उसीके पर्य्यायमें 'स्निग्धत्विषः' शब्द आया है, यानी उसका और इसका एक ही अर्थ है । इसी बातको दिखाते हैं कि––छाया शब्द–सूर्य्यप्रिया, कान्ति, प्रतिबिम्ब और छायाको कहता है एवम् त्विष् शब्द–कान्ति, वाणी और रुचि अर्थको कहता है । इनमें कान्ति अर्थ दोनोंका एक है । इसमें दातोंसे पांचोंगुण एक साथ दिखा दिये हैं । विदग्ध पुरुषोंके दांत ऐसे ही होने चाहिये । यद्यपि दन्तसौन्दर्यपर भारतका ध्यान कम है, किन्तु पाश्चात्य देशोंमें इसे मुख्य माना है, यहांतक कि चित्र उतरवातीवार भी सुन्दर दाँतोंवाले, दाँत दिखा देना चाहते हैं ॥

बीचमें जगह खाली न हो, अगाड़ीसे पैने हों । ये तीनों गुण दातोंकी शोभा भी बढ़ाते हैं और उन्हकें काटनेमें भी उपयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

दन्तोंके दोष ।

कुण्ठा राज्युद्गताः परुषाः विषमाः श्लक्ष्णाः पृथवो विरला इति च दोषाः ॥ ३ ॥

दाँतोंके ये ही दोष हैं, जो कि वे ओंथरे, लैनसे वाहिर, रूखे, टेढकमेढे, पतले, मोटे और अलग अलग हों ॥ ३ ॥

राज्युद्गता इति मध्ये स्फुटिता लेखा उद्गता येषामित्याहिताग्न्यादिषु द्रष्टव्यम् । गुणविपर्यये दोषाः सिद्धा अपि प्रधानदोषख्यापनार्थं पुनरुक्तम् । तेन रागाग्राहित्वं न दोषः । शुद्धा एव दशना प्रायशो वर्ण्यन्ते । अत्रापि राज्युद्गतपरुषविषमाणामाननकान्तिपरिपन्थित्वम् । कुण्ठादीनां तु शेषाणां कार्यकरणे असामर्थ्यं दोषश्च ॥ ३ ॥

जो गुण बताये हैं उनमेंसे जिसका उलटा होगा वही दुर्गुण हो जायगा ही, फिर यहां दोष गिनानेका यही तात्पर्य्य है, कि ये प्रधान दोष हैं, उनका विपर्य्यय होना दोष नहीं, जैसे कि गुणोंमें दाँतोंपर पानकी लाली चढ़ना शुमार किया है, यदि यह न चढ़े तो दोष कुछ भी नहीं है, क्योंकि कविलोग चमकीले सफेद दाँतोंका ही प्रायः वर्णन किया करते हैं । यहां भी लैनसे बाहिर निकले, रूखे और विषम दाँत शोभाके दुश्मन हैं । इनसे बाकी बचे गिनाये कुण्ठ आदिक दाँत अपना काम नहीं कर सकते तथा यह दोष भी है ३॥

दांतोके श्वेतगुणपर कवि ।

गीतगोविन्द-" वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी ।
हरति दरतिमिरमतिघोरम् ॥ " १०-१ ।

जब आप कुछ कहती हैं तो आपके दांतोंकी स्वच्छ चमकरूपी चाँदनी, मेरे भयरूपी अन्धकारको एकदम दूर कर देती है । मुझे आशा हो जाती है, कि कृपा होगी । इस जगह श्रीजयदेवजी दांतोंकी रोशनीको चाँदनी कह गये हैं अधिक नहीं कहा; किन्तु बारहवें सर्गके छठे श्लोकमें इन्होंने ही कहा है कि—"अव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम्" छिपे तौरपर अकुलाई हुई प्यारीके, केलिमें भयकी, अव्यक्तध्वनियोंके कहतीबार जो सफेद दांते चमकें तो उनके चमककी चांदनीके पड़नेसे उसका अधर भी सफेद हो गया। इस तरह यहां दातोंके श्वेतगुणको कहा है । जब दाँतोंकी चमकको चाँदनी

कह दिया तो दाँतोंको चांद भी कहना चाहिये, इस कारण इनकी सफेदीके उसकी चमकके ही आधारपर की हुई दूसरे २ कवियोंकी कल्पनाओंको बताते हैं, कि—

" द्विधा विधाय शीतांशुं कपोलौ कृतवान् विधिः ।
तन्व्यास्तद्रसनिष्यन्दबिन्दवो रदनावलिः ॥"

ब्रह्माने प्यारीके कपोलोंको बनातीवार चांदको बीचसे चीरकर, उससे ही रच दिया । चांदको चीरतीवार जो चाँदके रसकी बूंदे गिर गई थीं, उसीसे इन सुंदर दांतोंको बनाया है । चांदके रसके बने दांतोंकी चांदनी हो हीगी, उसमें क्या बखेड़ा है । उर्दूके किसी कविने कहा है, कि—

" दाँत यूं चमके हँसीमें रात उस महँपाराके ।
हमने जाना माहेपारा पारा पारा हो गया ॥"

जब उस चन्दवदनीके दाँत, रातको हँसीमें चमके तो हमें यह सन्देह हो गया, कि चाँदके टुकड़े २ तो नहीं हो गये ? ये चाँदके टुकड़ोंके बनानेपर पहुँचे, पर संस्कृतसाहित्यने तो चाँदके रसके दाँत बना उसकी इतनी उत्कट चांदनी चमकाई कि लाल अधर भी सफेद हो चमका । अब कौन इस सफे-दीको दांतोंका दुर्गुण कहनेका साहस कर सकता है । हिन्दीके किसी कविको तो यह निश्चय ही नहीं हो पाया, कि उस चंदवदनीके दाँत किस चीजके बने हैं; पर जो २ उन्हें सूझा वही २ कह डाला कि—" कैधौं कली वेलाकी चमेलीकी चमक परैं, कैधौं कीर कमलमें दाडिम दुराये हैं । कैधों मुकताहल महावरमें राखे रंग, कैधों मनि मुकुटपै सीकर सुहाये हैं ॥ कैधों सातों मण्ड-लके मण्डन मयङ्क मध्य, बीजुरीके बीज सुधा सींचिके उगाये हैं । केशौदास प्यारीके वदनमें रदन छवि, सोरहों कलाको काटि वत्तिस बनाये हैं ॥" क्या यह बेला चमेलीकी कलियाँ चमक रही हैं ? अथवा तोतेकी चोंचके ग्रासमें अनारके दानें दुवके हुए हैं क्या ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मुक्ताओंको महावरमें रंग रखा हो ? यही भासता है । मति कहीं मणिमुकुटपर अम्बुकण शोभा दे रहे हों ? मुझे तो ऐसा जचता है कि सातों मण्डलोंका मण्डन जो चाँद है उसके भीतर विजुरीके वीज अमृतसे सींचकर उगा दिये हैं । ए केश-वदास अथवा यूं समझ ले कि चाँदकी सोलहों कलाओंके दो दो टुकड़े करके बत्तीस बना दिये हैं । उस प्यारीके दाँतोंकी इस प्रकार शोभा है ।

दांत लगानेके नाम ।

गूढकमुच्छूनकं बिन्दुर्बिन्दुमाला प्रवालमणिर्मणिमाला खण्डाभ्रकं वराहचर्वितकमिति दशनच्छेदनविकल्पाः ॥४

गूढक, उच्छूनक, बिन्दु, बिन्दुमाला, प्रवालमणि, मणिमाला, खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक ये आठ दाँत लगानेके भेद हैं ॥ ४ ॥

छेदनविकल्पा इति संक्षेपत उक्ताः ॥ ४ ॥

संक्षेपसे दाँतोंसे काटनेके भेद कह दिये हैं, ये दाँतोंक चिह्नोंके नाम हैं। इन नामोंका जो अर्थ है वही काम इनके प्रयोगमें होता है ॥ ४ ॥

इनका लक्षण और प्रयोग स्थान ।

तेषां लक्षणं प्रयोगस्थानं चाह—

अब ऊपर जो गूढक. आदि नाम बताये हैं, उनका विशेष लक्षण और उनमेंसे कौन कहां करना चाहिये इन बातोंको बताते हैं। लक्षण और स्थान, मिले जुले ही चलते हैं, इस कारण एक ही स्थलपर मिल जुले ही दिखा रहे हैं, कि—

गूढक ।

नातिलोहितेन रागमात्रेण विभावनीयं गूढकम् ॥ ५ ॥

अत्यन्त लाल रंगमात्र होनेके कारण, जाना न जाय कि दाँत लगा है, उसे ' गूढक ' कहते हैं ॥ ५ ॥

रागमात्रेणेति । राग एव रागमात्रम् । क्षताभावात् । अतिलोहितेनेति तस्याधिक्यमाह । तेन विभावनीयं विज्ञेयम् । एवं च गूढमिव गूढकम् । अस्फुटितत्वात् । तदेकेनैव राजदन्ताग्रेणावष्टभ्य निष्पाद्यम् ॥ ५ ॥

क्षत न हो, केवल रंगमात्र ही हो, वह भी ऐसे ही नहीं किन्तु अत्यन्त लाल हो, इसी कारण यह न पहिचाना जा सके कि यहां दाँत लगा है, उसे 'गूढक' कहते हैं। क्योंकि गूढ (छिपा) एवं छिपे हुए की तरह होनेके कारण गूढक कहाता है, यह पहिचाना नहीं जाता। इसके लगानेकी तो रीति यह है कि एक ही दाँतोंके राजा (एक बडे दांत) की नोंकसे पकड़कर किया जाता है, यानी आगेके दांतोंमेंसे एकसे होता ह ॥ ५ ॥

उच्छूनक ।

तदेव पीडनादुच्छूनकम् ॥ ६ ॥

यदि गूढक, मिसलनेके साथ निष्पादन किया जाय तो यही 'उच्छूनक' हो जायगा ॥ ६ ॥

---

१ इसमें अधरपर खाली लाली हो आती है, दाँत लगा नहीं प्रतीत होता, दाँतका माजरा छिपा रहता है, इस कारण इसे ' गूढक ' कहते हैं। यही अन्य आचार्य्योंका भी मत है।

तदोच्यते गूढकं यदापीड्य निष्पाद्यते । तदा जातश्वयथुत्वादुच्छूनकम् ॥ ६ ॥

जब कि मिसलकर गूढक किया जाय तो वही 'उच्छूनेक' कहा जाता है । ऐसा करनेसे उस जगहपर थोड़ी सूजन आ जाती है, इसी कारण यह इस नामसे बोला जाता है ॥ ६ ॥

ये दोनों और बिन्दुका स्थान ।

तदुभयं बिन्दुरधरमध्य इति ॥ ७ ॥

पिछलेके दोनों और बिन्दु, निचले होठके बीच होते हैं ॥ ७ ॥

तदुभयं गूढकमुच्छूनकं च । बिन्दुरिति । अयमितिशब्दश्चार्थे । बिन्दुश्च वक्ष्यमाणलक्षणः । त्रितयमधरमध्ये । तेषां स्वल्पाभोगत्वात् ॥ ७ ॥

गूढक और उच्छूनक, ये दोनों और बिन्दु अधरपर होते हैं, क्योंकि सूत्रके इति शब्दका 'और' अर्थ है । बिन्दुका लक्षण इसी अध्यायके १२ वेंसूत्रमें कहेंगे । ये तीनों अधरपल्लवके बीच होने चाहियें, क्योंकि ये तीनों थोड़ी ही जगह घेरते हैं ॥ ७ ॥

अधरके दाँतपर साहित्य ।

कामशास्त्रके विधिविधानोंके अनुसार अधरपर दांतोंके वारोंका साहित्यमें प्रसंग दिखाया गया है उसे हम भी दिखाते हैं—

"कस्य वा न भवति रोषो दृष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् ।
सभ्रमरपद्माघ्राणशीले वारितवामे सहस्वेदानीम् ॥ "

(काव्यप्रदीप ५ उ० पृ० १६०)

अपनी प्यारीका व्रणयुक्त अधर देखकर किसे गुस्सा न आयगी, ए भौंरा-घुसे हुए कमलके सूँघनेके स्वभाववाली ! रोकनेपर भी उलटा ही करती है, इस कारण अब जो भी कुछ हो उसे सहन कर । इसमें अधरको सव्रण बताया है । अधरपर व्रण, बिन्दुके प्रयोगमें होता है ।

---

१ उच्छून उठे हुए या सूजे हुएको कहते हैं, इसमें जखम नहीं होता, पर दबनेके कारण सूजन आ जाती है । अधर या गंड दो जगह यह होता है । रतिरहस्य वामगंड लेता है । कामसूत्र इसका स्थान कपोल और अधर बताता है । इस स्थलमें वामगंड या गण्डका अर्थ अन्य टीकाकार बाँया गाल करते हैं । कामसूत्रने भी बाँया गाल बताया है, अतः इसका स्थान अधर और बायाँ कपोल समझना चाहियें ।

२ गूढक और उच्छूनककी तरह बिन्दु भी अधरपर होता है यह तो बता दिया, किन्तु वह कैसे होता है, इस बातको इसी अध्यायके बारहवें सूत्रमें बतायेंगे ।

विहारीदास–" पटको ढिग कत ढापियत, शोभित सुभग सुवेष ।
हद रदछद छबि देखियत, सद रदछदकी रेष ॥ "

तू इसे कपड़ेके कोनेसे क्यों ढाप रही है? यह तो सौभाग्यका सुहावना वेष परम सुशोभित है, आज तूने देखने लायक होठोंकी शोभाकी हद होगई है। इसपर अभी नई ही दांतोंकी खुरसरकी रेखा बनी है।

कु०–"सप्रजागरकषायलोचनं गाढदन्तपदताडिताधरम् ।
आकुलालकमरंस्त रागवान् प्रेक्ष्य भिन्नतिलकं प्रियामुखम् ॥" ८–८४ ।

वह रागी, रातके जगनेके कारण लाल लाल आखोंवाले एवम् दाँतके गहरेवारके कारण ताडित हुए अधरवाले, प्यारीके आकुल मुखको, कुछ पुछा तिलकका देखकर फिर रागसे आकुल होकर रमण करने लगा ।

कुं०–"पल्लवोपमितिसाम्यसपक्षं दृष्टवत्यधरबिम्बमभीष्टे ।
पर्य्यकूजि सरुजेव तरुण्यास्तारलोलवलयेन करेण ॥" १०–५२ ।

दोनोंकी पल्लव उपमा होनेके कारण अपने पक्षवाले अधरको प्यारेके काट लेनेपर, उस नवयौवनाके जोरसे बाजने कड़ूलोंवाले हाथोंके दर्दमन्दकी तरह 'परिकूजित' किया ।

कुछ एक नखपद और दशनपद ।

" शशपदमणिमालं चन्द्ररेखाभिरामं
ललितपुलकजालं लक्ष्म विन्दुप्रवालम् ।
वपुरनघममुष्या वक्ति कस्यापि यूनः
सुरतकलहलीलासूक्ष्ममार्गाभियोगम् ॥ "

स्तनश्यामपर शशप्लुत नामक नखपद विराजमान है। वाम कपोलपर प्रवालमणि विराजमान है। अधरपर बिन्दु नामक दाँतोंका चिह्न शोभित हो रहा है। ग्रीवापर अर्धचन्द्र नामक नखपद तथा नाभिमूल आदिपर मण्डल तथा अन्यत्र नाखूनोंकी रेखाएँ मौजूद हैं। इनसे सुन्दर शरीर, पुलकित हो रहा है। ऐसा शरीर ही इस बातको बता रहा है कि रतिकेलिकी लड़ाईकी लीलाओंमें इनपर कोई अभियोग लगाया गया था, जिसकी सजाके ये निशान मौजूद हैं। अथवा लड़नेके समयके ये सब बखेड़े हैं, ये इस बातको बता रहे हैं। इस श्लोकमें शशप्लुत, मण्डल, अर्धचन्द्र और रेखा, ये नखपद तथा प्रवालमणि, बिन्दु ये दो दन्तपद आगये हैं।

उच्छूनक और प्रवालमणिका स्थान कपोल है ।

उच्छूनकस्य वैशेषिकं स्थानमाह—

उच्छूनका गूढक और बिन्दुकी तरह अधर स्थान तो एकसा है ही, अब उसका इनसे विशेष स्थान बताते हैं, कि—

उच्छूनकं प्रवालमणिश्च कपोले ॥ ८ ॥

उच्छूनक और प्रवालमणि, कपोलपर होते हैं ॥ ८ ॥

उच्छूनकं प्रवालमणिश्च वक्ष्यमाणलक्षणः । कपोले तस्य शक्यक्रियत्वात् ८॥

उच्छूनकका लक्षण, छठें सूत्रमें कह चुके, प्रवालमणिका लक्षण १० वें सूत्रमें इसी अध्यायमें कहेंगे । ये दोनों कपोलपर हो सकते हैं, इस कारण कपोलपर किये जाते हैं ॥ ८ ॥

बायें कपोलके भूषण ।

कस्मिन्कपोल इत्याह—

वाम और दक्षिण, दोनों कपोलोंमेंसे किसपर करना चाहिये ? इसका उत्तर देते हैं कि—

कर्णपूरचुम्बनं नखदशनच्छेद्यमिति सव्यकपोल-मण्डनानि ॥ ९ ॥

कर्णपूर, चुम्बन, नाखूनोंके खोंसे और दाँतोंके निशान बाँये कपोलके भूषण हैं ॥ ९ ॥

सव्यकपोलमण्डनानीति यथा कर्णपूरश्चारुत्वाद्वामे कर्णे विन्यस्तो वाम-कपोलस्य मण्डनं तथा । यथोक्तम्—'दन्तच्छेद्यं चुम्बनं सताम्बूलं रागम-ण्डनम्' ॥ ९ ॥

जैसे कर्णपूर सुन्दर होनेके कारण बाँये कानमें लगानेपर बाँये कपोलकी शोभा बढ़ाता है, इसीतरह ये भी बढ़ाते हैं । कहा भी है कि—" चुम्बन एवम् पानकी लालीसे लाल रँगे दाँतोंके निशान और रँगलगाना बायें कपोलके भूषण हैं ॥ ९ ॥

कपोलोंके दातोंपर साहित्य ।

कपोलपर साहित्यके लक्षणग्रन्थोंमें भी दन्तप्रयोग पाया जाता है, इसीका हम एक उदाहरण रखते हैं कि—

" यस्यैव व्रणस्तस्यैव वेदना भणति तज्जनोऽलीकम् ।
दन्तक्षतं कपोले वध्वाः वेदना सपत्नीनाम् ॥ "

दुनियाँ जो यह कहती है कि जिसके लगे उसको ही दर्द होता है दूसरेको नहीं होता, यह उनका कहना गलत है । क्योंकि वधूके कपोलपर तो दाँतका क्षत है, पर दर्द उसकी सोतोंको हो रहा है । इस श्लोकमें कपोलपर दंत-पदका प्रयोग परिस्फुट दीखता है ।

प्रवालमणि ।

दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनात्प्रवालमणिसिद्धिः ॥१०॥

दाँत और होठोंको लगा बारंबार दबानेसे ' प्रवालमणि ' होता है ॥ १० ॥

दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनादिति । उत्तरदन्ताधरोष्ठाभ्यां वा स्थानस्य संयोगाय गृहीत्वा पीडनं तस्याभ्यासः पुनः पुनः करणं स एव निष्पादनं यस्याः सिद्धेः । निष्पाद्यतेऽनेनेति कृत्वा । तथा हि तदभ्यासात्प्रवालमणिरिव लोहितः क्षतविवार्जितो दन्तौष्ठपदविन्यासो निष्पाद्यते ॥ १० ॥

ऊपरके दाँत और नीचेके होठसे वामकपोलकी दांत लगानेकी जगहको पकड़कर, उसे बारंवार दबानेसे इसकी सिद्धि होती है । जिससे सिद्ध हो, उसे निष्पादन[1] कहते हैं । इस प्रकार करनेसे प्रवालमणिकी तरह लाल, जख्म-हीन होठ और दाँतें[2] बाँयेकपोलपर लगाये जा सकते हैं ॥ १० ॥

मणिमाला ।

सर्वस्येयं मणिमालायाश्च ॥ ११ ॥

सबकी प्रवालमणि, मणिमाला कहाती है ॥ ११ ॥

मणिमालायाश्च दन्तौष्ठसंयोगाभ्यासनिष्पादनात्सिद्धिरित्येव । अत्राप्ययमेव प्रकारः । किं त्वेकं निष्पाद्यं तदनन्तरमपरं यावन्माला भूतेति ॥ ११ ॥

सभी दाँत होठोंको लगाकर, बारबार दबानेसे ' मणिमाला ' की सिद्धि होती है । इसकी रीति यह है, कि पहिले एक लगाकर पीछे दूसरा लगाना चाहिये, जबतक कि मणिमाला न बन जाय ॥ ११ ॥

बिन्दु ।

अल्पदेशायाश्च त्वचो दशनद्वयसंदंशजा बिन्दुसिद्धिः १२

---

१ ' निर् ' उपसर्गपूर्वक णिजन्त ' पद ' धातुसे भावमें 'ल्युट्' प्रत्यय होकर 'निष्पादन' शब्द बनता है ।

२ बीचका प्रधान दाँत हीं लगाया जाता है । इसमें भी व्रण नहीं होता, खाली निशान-मात्र ही हो पाता है ।

ऊपर और नीचेके दो दाँतोकी नोंकसे दबानेपर थोड़ी खाल कट जाय, इसे बिन्दु कहते हैं ॥ १२ ॥

अल्पदेशाया इति स्थानापेक्षया । तत्र गले मुद्गमात्राया अधरे तिलमात्रा-यास्त्वचः । दशनद्वयसंदंशजेति । उत्तरेणाधरेण च दशनाग्रेण त्वचमाकृष्य संदंशः खण्डनं तस्माज्जायत इत्यर्थः । बिन्दुसिद्धिरिति । बिन्दुरिव बिन्दुः । स्वल्पदेश-खण्डनात् । सिद्धिरित्युत्तरैश्चतुर्भिर्दशनैरल्पदेशायास्त्वचो युगपत्संदंशजेत्यर्थः॥ १२

यह थोड़ी खाल स्थानके अनुसार होनी चाहिये । इसकी रीति यह है, कि गलेमें मूंगकी बराबर और नीचेके होठमें तिलकी बराबर चर्म खुर्द जाय। यह ऊपरके और नीचेके दोनों दाँतोंकी नोंकोंसे त्वचाको खींचकर किया जाता है, इससे ' बिन्दुकी सिद्धि ' होती है, क्योंकि इसमें थोड़ी ही खालमें लगती है । ऊपरके अगले चार दाँतोंसे एक साथ वारंवार एकसाथ पीडन करनेसे थोड़ी खाल विदीर्ण हो जाती है ॥ १२ ॥

बिन्दुमाला ।

सर्वैर्बिन्दुमालायाश्च ॥ १३ ॥

सब दांतोंसे बिन्दुमालाकी सिद्धि होती है ॥ १३ ॥

बिन्दुमाला तदाकारत्वात् ॥ १३ ॥

बिन्दुओंकी मालाके आकारमें होनेके कारण, इसे बिन्दुमाला कहते हैं॥१३॥

दोनों मालाओंका स्थान ।

तस्मान्मालाद्वयमपि गलकक्षवंक्षणप्रदेशेषु ॥ १४ ॥

इससे ये दोनों मालाएँ, गले, काँख और वंक्षण(जघनादि)पर होती हैं ॥१४॥

तस्मान्मालाद्वयमपीति मणिमाला बिन्दुमाला च । गलकक्षवंक्षणप्रदेशेषु । श्लथत्वक्त्वादेषाम् ॥ १४ ॥

मणिमाला और बिन्दुमाला, ये दोनों गले, कांख और जघन आदिमें की जाती हैं, क्योंकि इन जगहोंकी खाल ढीली होती है ॥ १४ ॥

बिन्दुमालाका स्थान ।

ललाटे चोर्वोर्बिन्दुमाला ॥ १५ ॥

माथे और उरुओंपर, बिन्दुमालाका प्रयोग होता है ॥ १५ ॥

---

१ रतिरहस्यने कहा है कि-" मध्येऽधरं तिलश एव विखण्डने तु " अधरके बीचमें तिल-भर व्रण हो जाना बिन्दु है ।

ललाटे चोर्वोरिति । तत्राप्यूर्वोस्तिलपंक्तिरिव स्थिता स्यान्न तिर्यक्परिमण्डलमिवेति । सृक्कभागयोर्विच्छेदेऽपि परिमण्डलमिव लक्ष्यते ॥ १५ ॥

इस बिन्दुमालामें इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि, ऊरुओंपर तिलपंक्तिकी तरह स्थित रहनी चाहिये, टेढ़ी न होनी चाहिये किन्तु परिमण्डलकी तरह होनी चाहिये, यानी त्वचाके दोनों भागोंके अलग हो जानेपर भी परिमण्डलकी तरह दीखे ॥ १५ ॥

खण्डाभ्रक और स्थान ।

मण्डलमिव विषमकूटकयुक्तं खण्डाभ्रकं स्तनपृष्ठ एव ॥१६

मण्डलकी तरह दांतोंके विषम चिह्नोंवाला 'खण्डाभ्रक' कहाता है, इसका प्रयोग स्तनपर ही होता है ॥ १६ ॥

विषमकूटकयुक्तमिति । विषमैः पृथुमध्यसूक्ष्मैर्दशनपदैः समन्ततो युक्तं खण्डाभ्रकम् । तत्सादृश्यात् । स्तनपृष्ठे सौकर्याच्छोभितत्वाच्च । पुरुषस्य वक्षसीत्यर्थादवगन्तव्यम् । तच्च कण्ठोपग्रहेण निष्पाद्यम् ॥ १६ ॥

सब ओर, खूब, मध्यम और सूक्ष्म, दाँतोंके निशान लगे हों तो इसे 'खण्डाभ्रक' कहते हैं, क्योंकि खण्डाभ्रककी तरह गोल बन जाता है। स्तनोंके ऊपर लगानेमें कठिनता नहीं एवम् वहां अच्छा भी लगता है । यदि स्त्री लगाये तो पुरुषकी बगलमें लगाये । इस बातका भी इसका मतलब होता है । इसे कंठोपग्रह यानी कंठ पकडकर सिद्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥

वराहचर्वितक ।

संहताः प्रदीर्घा बह्वयो दशनपदराजयस्ताम्रान्तराला वराहचर्वितकम् । स्तनपृष्ठ एव ॥ १७ ॥

सघन बड़े २ बहुतसी दांतोंके निशानोंकी लैनें, जिनको कि निशानोंके बीच खून झलक आनेके कारण तामेकीसी ललाई चमके, उसे 'वराहचर्वितक' कहते हैं । इसका प्रयोग स्तनोंके ऊपर ही होता है ॥ १७ ॥

संहता इति । स्तनपृष्ठस्यैकतो भागात्स्वल्पदेशां त्वचं दशनसंदंशेन चर्वयेत, यावदपरभागम् । इत्यनेन क्रमेणोपर्युपरिचर्वणान्निरन्तराः प्रदीर्घा बह्वयश्चतस्रः षड् वा दशनपदपंक्तयो निष्पाद्याः । तासां चान्तरालानि संमूर्च्छितरक्तत्वात्ताम्राणि भवन्ति । अतो वराहस्येव चर्वणाद्वराहचर्वितकम् । स्तनपृष्ठ एव बहुलमांसत्वात् ॥ १७ ॥

स्तनके एक भागसे लेकर, दूसरे भाग तककी थोड़ीसी जगहकी त्वचाको दोनों ओरके दांतोंसे चबा जाय इसी तरह ऊपर २ चबानेसे बीचरहित, बड़े २ चार वा छे दांतोंके निशानोंकी लैन करनी चाहियें। इनके बीचकी जगहोंमें खूनके उभर आनेके कारण वे तावेंके रंगकी जैसी जच जाती हैं। ऐसा ही वराह चबाता है, इसी कारण इसे 'वराहचर्वितक' कहते हैं। स्तनपृष्ठपर मांस अधिक होता है, इस कारण वहीं इसका प्रयोग होता है ॥१७॥

ये दोनों चण्डोंके हैं।

तदुभयमपि च चण्डवेगयोः। इति दशनच्छेद्यानि ॥१८॥

खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक, चण्डवेगवाले नायक नायिकाओंमें ही चलते हैं। यह दाँत लगानेकी विधि पूरी हुई ॥ १८ ॥

तदुभयमपि खण्डाभ्रकं वराहचर्वितकं च छेद्यं चण्डवेगयोः। तत्सात्म्यात्। एषां नायिकापि प्रयोक्त्री द्रष्टव्या। उभयोरपि शास्त्राधिकारात्। देशकालकार्यवशात्किंचिदेव कस्यचिदसाधारणम्। एतावन्ति दशनच्छेद्यानि सांप्रयोगिकान्युक्तानि। प्रयोज्याशरीरे प्रयोज्यमानत्वात्। अभियोगे त्वसम्भवात् ॥ १८ ॥

ये दोनों खण्डाभ्रक और वराहचर्वितक, चण्डवेगवालोंके ही अनुकूल पड़ते हैं, इस कारण वे ही इन्हें करते हैं। इनका प्रयोग नायिका भी कर सकती है, क्योंकि इस शास्त्रका अधिकार दोनों ही व्यक्तियोंको है। देश, काल और कार्य्य वश किसीको कुछ ही असाधारण पडते हैं; सब नहीं। ये रतिकालके समयके दांतोंके निशान हैं, क्योंकि ये सामनेवालेके शरीरमें लगाये जाते हैं। जिस समय पानेका उपाय चल रहा हो, उस समय तो ये नहीं हो सकते, क्योंकि इनका उस अवस्थामें होना कठिन है। यानी इन्हें सहानेके लिये राग भी तो पैदा करा लेना चाहिये ॥ १८ ॥

संक्रान्तिक आभियोगिक।

आकारप्रदर्शनार्थं सांक्रान्तिकमाभियोगिकमाह—

अपने अभिप्रायको दिखानेके लिये भेजनेकी वस्तु आदिपर किये जानेवाला उपायोंका अंगभूत, दंतच्छेद बताते हैं कि—

विशेषके कर्णपूरे पुष्पापीडे ताम्बूलपलाशे तमालपत्रे चेति प्रयोज्यागामिषु नखदशनच्छेद्यादीन्याभियोगिकानि ॥ १९ ॥

जिसकी चाह हो उसके पास जानेवाले भोजपत्र आदिके बने तिलकपर, कर्णपूरपर, फूलोंके आपीडपर, पानके पत्ते पर तथा तमाल पत्रपर नाखून और दांतोंके निशान करना, अपने अभिप्रायको व्यक्त करना है ॥ १९ ॥

विशेषक इति भूर्जपत्रादिकल्पिते तिलके । कर्णपूरे नीलोत्पलादौ । पुष्पापीड इत्युपलक्षणम् । शेखरे संसज्जितताम्बूलीपत्रे । तमालपत्रे सुरभिण्यनङ्गलेखीकृते । एषां छेद्यविषयत्वात् । इतिशब्दः प्रकारे । प्रयोज्यागामिष्विति गमिष्यन्तीति गामिनः । 'भविष्यति गम्यादयः' इति निपातनात् । प्रयोज्यागामिनो विशेषकादयः । 'गमि गम्यादीनाम्' इति समासः । तेषु हि च्छेद्यानि संक्रान्तकान्याभियोगिकानि भवन्ति । नखदशनच्छेद्यादीनीति । नखच्छेद्यमाभियोगिकं प्राङ् नोक्तम् । इहैकविषयत्वादेकीकृत्योक्तम् । दशनच्छेद्यविधय एकादशं प्रकरणम् ॥ १९ ॥

भोजपत्र आदिसे बनाये हुए तिलकपर, कानपर लगनेवाले कमलपर, फूलोंके चोटीपर, पहिननेके आपीडपर, यह आपीड अपना अर्थ करता हुआ और फूलपत्रोंके शिरोभूषणोंका भी अर्थ करता है कि शेखर आदिपर, जो कि ताम्बूलीके पत्तोंका बनाया जाता है, सुगन्धित तमालपत्रकी बनाई हुई अनंगलेखापर, तथा और भी ऐसी ही चीजोंपर नख, दंत क्षतोंकी उस चीजपर आकृति कर दे जो कि वस्तु चाहकी चीजके पास जानेवाली हों । पहले प्रयत्न करती वारका नखच्छेद नहीं कहा; यहां विषयके एक होनेके कारण एक करके कह दिया है । यह दाँत लगानेकी विधिवाला ग्यारहवां प्रकरण पूरा हुआ ॥१९॥

देशोपचार प्रकरण ।

देशप्रवृत्तयो देश्या उपचारास्तानाह—

देशोंके प्रचलित उपचार देश्य कहाते हैं, इस प्रकरणमें उन्हीं उपचारोंको बताते हैं कि—

देशसात्म्याच्च योषित उपचरेत् ॥ २० ॥

देशसात्म्यसे यानी जो बात जिस देशके रहनेवालोंको अनुकूल बैठे इसे पहिले शोचकर उस देशके व्यक्तिके साथ, उसीसे बर्ताव करना चाहिये ॥२०॥

---

१ यहां सूत्रमें ल्यब्लोपमें पंचमी है । इसीकी वजहसे यह तात्पर्य्य निकलता है कि अनुकूल को पहिले विचार कर लेना चाहिये ।

देशसात्म्यादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । सात्म्यं द्विविधम्—देशतः, प्रकृतितश्च । तत्र चुम्बनादीनां येन यस्मिन्देशे सात्म्यमवस्थितं तदपेक्ष्यते । न तत्र योषित उपचरेत । स्वयं तच्छीलवद्भवेत् । उपलक्षणमेतत् । पुरुषानपि योषित् ॥२०॥

अनुकूलता दो तरहसे होती है, एक तो देशसे तथा दूसरे स्वभावसे । चुम्बन आदिकोंमेंसे जिस देशके लिये जो अनुकूल पड़े वहां उसीसे स्त्रीका उपचार करना चाहिये दूसरेसे न करना चाहिये । स्त्रियाँ भी पुरुषोंको उनके देश तथा उनकी प्रकृतिके अनुसार उनपर उपचारोंका प्रयोग करें । प्रयोगसे पहिले इन बातोंकी समीक्षा करके, पीछे प्रयोग होना चाहिये ॥ २० ॥

इसका प्रयोजन ।

यद्यपि अध्यायके आरंभमें इस प्रकरण पर भी संस्कृत टीकाकारने प्रकाश डाला है, किन्तु इन उपचारोंके कहनेका महर्षिका असली मतलव रतिरहस्यने बताया है कि--" जबतक स्त्रियाँ तृप्त नहीं हो पातीं यानी इनके स्खलित होनेसे पाहिले ही पुरुष रतिसुख लेकर स्खलित हो लेते हैं इस कारण पुरुषोंको चाहिये कि हम जो उपचार बताते हैं उन्हें जानकर स्त्रियोंका इस तरह उपचार करें जो वे अपने तृप्त होनेसे पहिले ही तृप्त हो लें" इन उपचारोंके करनेसे पुरुषोंको जो फायदा पहुँचता है उसे बताते हैं कि--

" अभ्यर्थिता बाह्यरतेन भूयो, या देशकालप्रकृतीः समीक्ष्य ।
श्लथास्तरुण्यः प्रबलानुरागा, भवन्ति तृप्यन्ति च शीघ्रमेव ॥ "

बाह्यरतकी बताई हुई आलिंगनादि क्रियाओंका देश, काल और प्रकृतिके अनुसार प्रयोग करनेसे युवतियाँ ढीली हो जाती हैं एवम् अनुरागके उत्कट हो जानेपर शीघ्र ही स्खलित भी हो जाती हैं और तृप्त भी हो लेती हैं । इस कारण इसकी प्रकृतिके अनुसार उनपर बाह्यरतके उपचारोंका प्रयोग करके ढीली करता हुआ, उनके रागको इतना प्रचण्ड बनाये कि वेगके कारण जलदी ही तृप्त और स्खलित हो लें ।

मध्यमदेशकी स्त्रियां ।

तत्र मध्यदेशस्य प्रधानत्वात्तत्सात्म्यमाह--

सबमें मध्यदेश प्रधान है, इस कारण मध्यदेशके व्यक्तियोंको अनुकूल पड़नेवाले उपचारोंको कहते हैं—

---

१ सूत्रमें जो स्त्रीका बोधक योषित् शब्द दिया है वह स्त्रीका बोध करता हुआ पुरुषका उपलक्षक है यानी पुरुषका भी बोध करता है, इसीके आधारपर यह अर्थ किया है कि—

मध्यदेश्या आर्यप्रायाः शुच्युपचाराश्चुम्बननखदन्तपदद्वेषिण्यः ॥ २१ ॥

मध्यदेशके रहनेवाले प्रायः आर्य्य हैं । उनके आचार अच्छे हैं । वे चुम्बन करने नाखून लगाने और काटनेसे द्वेष करते हैं, इनमें पवित्र उपचार करने चाहिये ॥ २१ ॥

मध्यदेश्या इति । 'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥' इति भृगुः । 'गङ्गायमुनयोरित्येके' इति वसिष्ठः । अयमेव शास्त्रकृतां प्राधान्येनाभिप्रेतः । तत्रभवा मध्यदेश्याः । शुच्युपचाराः सुरते शुचिसमुदाचाराः । आर्यप्रायत्वात् । चुम्बनादित्रयं द्वेष्टुं शीलमासाम् । आलिङ्गनमिच्छन्ति ॥ २१ ॥

मध्यदेश—'जिसके उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पश्चिममें कुरुक्षेत्र तथा पूर्वमें प्रयाग है उसे मध्यदेश कहते हैं' यह भृगुका मत है। वासिष्ठजी महाराज–'गंगा और यमुनाके बीचके देशको मध्यदेश कहते हैं ' इसीको शास्त्रकार भी प्रधानरूपसे मानते हैं । मध्यदेशके होनेवाले मध्यदेश्य (मध्यदेशीय) कहाते हैं । ये सहवासके समय गन्दी चूँमाचांटीको पसन्द नहीं करते । इसका कारण यह है कि, इसके निवासी प्रायः आर्य्य हैं । ये चुम्बन, नाखून और दांतोंके लगानेको स्वभावसे ही पसन्द नहीं करते । ये आलिंगनको चाहते हैं ॥ २१ ॥

इनके वर्ज्यउपचारोंका विवेचन।

रतिरहस्यने—"शुचिप्रचारा नखदन्तचुम्बद्विषः स्त्रियो मध्यमदेशजाताः । "
यह लिखा है, इसका भाव वही है जो कि सूत्रका है ॥

अनंगरंगने–"विचित्रभेषाशुचिकर्मदक्षा सुशीलिनी दन्तनखाद् विरक्ता ।
मनोजसंग्रामविनोदरम्या स्यान्मध्यदेशप्रभवा पुरन्ध्री ॥ "

विचित्र भेष रखनेवाली, दाँत और नाखूनोंके प्रहारसे विरक्त, पवित्र सुरतमें रत रहनेवालीं, सुशीला एवं कामके संग्रामके विलासमें सुन्दर लगनेवाली, मध्यदेशकी सुन्दरियाँ होती हैं ।

कामसूत्र, अनंगरंग और रीतरहस्येक इन वाक्योंमें विचारणीय यही बात है कि कामसूत्र और और रतिरहस्य तो मध्य देशीयोंको चुम्बन, नखक्षत और

—स्त्रियोंके देश तथा प्रकृतिके अनुसार पुरुष एवम् पुरुषकी प्रकृति और देशाचारके अनुसार स्त्रियाँ चुम्बनादिकोंका प्रयोग करें ।

दन्तक्षतसे विरक्त बताते हैं किन्तु अनंगरंग नखक्षत और दन्तक्षतसे ही विरक्त मानते हैं । नागरसर्वस्वने कहा है कि—

" नखपददशनपदेषु मन्दभावाः प्रहरणकर्षणचुम्बने विरागाः ।
अकुटिलमतयश्चरित्रवत्यो मृदुरतयोऽपि च मध्यदेशनार्य्यः ॥ "

नखोंके और दाँतोंके वारोंमें अधिक रुचि नहीं रखतीं, मन्दभाव ही रहता है । प्रहरण और आकृष्ट चुम्बनमें कतई रुचि नहीं रखतीं । बुद्धि कुटिल नहीं होती यानी चरित्रवाली होती हैं तथा रत भी मृदु ही चाहती हैं । इन सब वचनोंसे यही सिद्धान्त निकलता है, कि मध्यदेशकी स्त्रियाँ नाखून और दांतोंके वारोंसे द्वेष यानी मन्द भाव रखती हैं, अधिक रुचि नहीं रखतीं । उन्हीं चुम्बनोंमें विराग है जो कि कष्टप्रद हैं । इसी कारण प्रहरण भी पसंद नहीं हैं । यह स्वभावसिद्ध बात है कि मृदुरत चाहनेवाला कोई भी व्यक्ति, कष्टप्रद कार्य्योंको रतमें भी पसन्द नहीं करता, अतः पीडा देनेवाले चुम्बन भी इन्हें रुचिकर नहीं होंगे । इन सबका यही मतलब होता है । यह बात नहीं कि किन्नरादिकोंके अभिलषित चुम्बनमात्रसे ही इनका द्वेष हो ॥

उत्तरापथ और उज्जयनी ।

बाह्लीकदेश्या आवन्तिकाश्च ॥ २२ ॥

वाह्लीक देश और उज्जयनी प्रान्तकी स्त्रियां भी ऐसी ही होती हैं ॥ २२ ॥

बाह्लीकदेश्या उत्तरापथिकाः । आवन्तिका उज्जयिनीदेशभवाः । ता एवापरमालव्यः । चुम्बनादिद्वेषिण्यः ॥ २२ ॥

उत्तरापथ देशको बाह्लीक कहते हैं । अवन्ती उज्जयनीका नाम है । इसीको पश्चिमका मालवा भी कहते हैं, इन देशोंकी स्त्रियां चुम्बनादिको पसन्द नहीं करतीं । पहाड़ी प्रान्तका नाम बाह्लीक है । यह भारतकी सीमासे मिला हुआ है ॥ २२ ॥

मध्यदेशसे बाह्लीक और मालवेकी विशेषता ।

पूर्वाभ्यो विशेषमाह—

मध्यदेशकी स्त्रियोंसे इन दोनोंकी स्त्रियोंकी विशेपता बताते हैं कि—

---

१ इसको रतिरहस्यने पद्यमें कहा है कि—

" तथाविधाश्चित्ररतानुरक्ता अवन्तिबाह्लीकभुवो भवन्ति ॥ "

मध्यदेशवालियोंके ही समान मालवे तथा बाह्लीक देशकी स्त्रियां होती हैं, किन्तु इनमें मध्यदेशसे इतनी विचित्रता है कि ये चित्ररतमें आसक्त रहती हैं; बाकीकी सब बातें एक सी हैं ।

चित्ररतेषु त्वासामभिनिवेशः ॥ २३ ॥

चित्र रतोंमें तो इनका मन रहता है ॥ २३ ॥

चित्ररतेष्विति । चित्ररतानि वक्ष्यन्ते । तेष्वभिनिवेशोऽतिप्रीतिकरत्वात् ॥ २३ ॥

बाह्लीक (उत्तराखण्ड) और मालवेकी स्त्री पुरुषोंका मन चित्ररतोंमें तो रहता है, क्योंकि इससे उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता होती है । इसी अधिकरणके छठे अध्यायमें ' चित्ररत ' कहेंगे ॥ २३ ॥

पूर्व मालव और आभीर ।

परिष्वङ्गचुम्बननखदन्तचूषणप्रधानाः क्षतवर्जिताः प्रहणनसाध्या मालव्य आभीर्यश्च ॥ २४ ॥

पूर्व मालव और आभीर देशकी सुन्दरियाँ आलिंगन, चुम्बन, नखोंके खोंसे और दांतोंसे काटना प्रधान रूपसे चाहती हैं, पर जख्म नहीं चाहतीं, इन्हें प्रहणनसे रति होती है ॥ २४ ॥

मालव्य इति पूर्वमालवभवाः । परिष्वङ्गचुम्बनानि प्राधान्येनेच्छन्ति । क्षतविवर्जिताः स्तोकदन्तनखदन्ताभ्यामिच्छन्ति (?) । प्रहणनसाध्याः प्रहणनेन जातरतयः । आभीर्य इति । आभीरदेशः श्रीकण्ठकुरुक्षेत्रादिभूमिः । तत्र भवाः ॥ २४ ॥

दक्षिणके मालवेकी तो पहिले कह चुके, अब पूर्वके मालवेकी सुन्दरियोंकी रुचि बताते हैं कि ये ऊपर बताये हुए कामोंको मुख्यरूपसे चाहती हैं । पर दाँत और नाखूनोंके बड़े घावोंको नहीं चाहतीं थोड़े चाहती हैं । इन्हें हाथ आदि मारनेसे रति होती है, यही आभीर देशकी अंगनाओंकी भी प्रकृति है । श्रीकण्ठ और कुरुक्षेत्र आदि, आभीरदेश कहाते हैं ॥ २४ ॥

समन्वय ।

इस सूत्रका ही अनुवाद, रतिरहस्यने किया है कि—

" आश्लेषलोला नखदन्तकृत्यैर्विरज्यते हृष्यति चातिघातैः ।
आभीरजा चुम्बनहार्य्यचित्ता, स्यान्मालवी चापि तथाविधैव ॥ "

आलिंगनमें चंचल, नाखून और दाँतोंके घावोंसे विरक्त, अभिघातोंसे प्रसन्न एवम् चुम्बनसे बेकाबू होनेवाली, आभीर देशकी युवतियाँ और मालवी होती हैं । अवन्ती नगरी भी मालवेमें ही है, जब उसकी निवासिनियोंकी प्रकृति कुछ और ही बता दी हा तो इस सूत्रका मालव, अवन्तीवाले मालवसे जुदा ही होना चाहिये, इसी कारण जयमंगलामें इसे पूर्वमालव कहा है । अनंगरंगने जो यह कहा है कि—

"उपभोगकलानुरागिणीश्चिरसंभोगरतिप्रतोषिणी ।
करघातनतुष्टमानसा वनिता मालवदेशसंभवा ॥"

रतिकलाओंमें अनुरागवाली, देरसे स्खलित होने वाले पुरुषसे राजी होनेवाली, अव्रण वारोंसे आनन्दित मालवी हुआ करती हैं । यह पूर्व मालवकी वनिताके विषयमें मालूम होता है, उज्जयिनी प्रान्तके लिये नहीं क्योंकि, उसीके साथ अधिक सात्म्य है । आभीरदेशवासिनीके विषयमें अनंगरंगके लेखकने भी कोकाकी तरह इसी सूत्रका अनुवाद किया है ।

सिन्ध पंजाब ।

सिन्धुषष्ठानां च नदीनामन्तरालीया औपरिष्टकसात्म्याः ॥ २५ ॥

जिनमें कि सिन्धुनद छठा ह उन नदियोंके बीचमें रहनेवाले व्यक्तियोंको 'औपरिष्टक' अनुकूल पड़ता है ॥ २५ ॥

सिन्धुषष्ठानां चेति । सिन्धुनदः षष्ठो यासां नदीनाम् । तद्यथा––विपाट् शतद्रुरिरावती चन्द्रभागा वितस्ता चेति पञ्चनद्यः । तासामन्तरालेषु भवाः । औपरिष्टकसात्म्या इति । सत्यपि परिष्वङ्गचुम्बनादौ मुखे जघनकर्माणः । खरवेगाः प्रीयन्त इत्यर्थः ॥ २५ ॥

जिन विपाशा, शतद्रु, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता इन पांच नदियोंके साथ सिन्धुनद छठा है, इनके बीचमें होनेवालोंको 'औपरिष्टक' अच्छा लगता है, यानी आलिंगन चुम्बनादि होनेपर भी इन्हें मुखमें जघनकर्म प्यारा है, इससे ये खरवेग मालूम होती हैं ॥ २५ ॥

सिन्धके विषयमें विशेष ।

कामसूत्रके, सिंधका और पंजाब अप्राकृतिक व्यभिचार प्रिय कहनेका तात्पर्य्य यही है कि इन्हें भोगमें भी अप्राकृतता प्यारी है । इसी भावको लेकर ही नागरसर्वस्वने लिखा है कि–

---

१ सूत्रमें केवल यही लिखा है कि–'जिनमें सिन्धुनद छठा है' इससे यही विचार होता है कि सिन्धुके साथ और पाँचनद कौनसे हैं ? इसका उत्तर रतिरहस्यने दिया है ।

"इरावतीसिन्धुशतद्रुतीरे विपाड् वितस्ताधरिदन्तराले ।
याश्चन्द्रभागातटजाश्च नार्य्यस्ता औपरिष्टेन विना न साध्याः ॥"

इसमें टीकाकारकी बताई हुई सब नदियाँ आगई हैं ।

" पशुकरणरते कृतानुरागाः, सुपरिश्लेषकचग्रहप्रसाध्याः ।
नखदशनपदे सतृष्णभावा लघुसुरता अपि सिन्धुदेशनार्य्यः ॥ "

रतिके आसन पशुओंके होने चाहियें, गाढालिंगन और बालोंकी भी पकड़ा-पकड़ी होनी चाहिये। नाखून और दाँतोंके वारोंकी भी अभिलाषा है; पर सुरतक्रीडा सिन्धवासिनियोंको थोड़ी ही चाहिये। अनंगरंग तो इन्हें-प्रचण्डरागवाली, अतिकष्टके मैथुनसे प्रसन्न होनेवालीं, अटिकाऊ दृष्टिकी जलदी ही नाराज हो जानेवालीं दुष्टा मानता है । उसका यही विचार उत्तरापथ और अवन्तिकाके लिये भी है, पर इसमें उन्होंने गहरी खोजपर कम ध्यान दिया है।

पंजाबान्तर्गत काश्मीर और जालन्धर ।

काश्मीर और जालन्धर ये दो प्रान्त भी आज पंजाबमें ही सँभाले जा रहे हैं, इस कारण छः नदियोंके प्रान्तके साथ, इसका भी प्रकरणवश विचार करते हैं कि-

" वैदग्धवासाः शुचयो गुणाढ्या, भवन्ति काश्मीरनितम्बवत्यः ।
आचारहीनाः कृतघातसाध्याः, भवन्ति जालन्धरदेशरामाः ॥ "

काश्मीरकी स्त्रियोंमें नायिकाओंके सभी गुण होते हैं। विचार करके देखा जाय तो काश्मीर ही भूमण्डलका स्वर्ग है फिर यहांकी नारियाँ परियोंको क्यों न मात करेंगी ? नागरसर्वस्वपर भी इसका यह असर हुआ है कि इन्हें सर्वगुणसंपन्न कह रहा है। आचार तो जैसा सारे पंजाबका है वही इनका भी होगा; पर इसे ये शुचि लगती हैं। पहाड़ीदेशमें बदबूका योग ही क्या है फिर सुगन्धि आनी ही चाहिये। किन्तु जालन्धरप्रान्तकी युवतियोंको आचारहीन एवम् कृतकघातोंसे राजी होनेवाली बता रहा है; पर कामसूत्रकी बताई हुई 'जघन्यकर्म' आदिकी वातें यहां भी व्यापक समझनी चाहियें।

पश्चिमीसमुद्रतट (गुजरात) और लाट ।

चण्डवेगा मन्दसीत्कृता आपरान्तिका लाटचश्च ॥ २६ ॥

आपरान्तिक (गुजरात) और लाट देशकी स्त्रियाँ चण्डवेगवालीं एवम् हलके प्रहारोंको सह सकती हैं, इस कारण उनका सीकारा भी मन्द ही होता है ॥ २६ ॥

आपरान्तिका इति, पश्चिमसमुद्रसमीपेऽपरान्तदेशः । तत्र भवाः । अत्रत्यैः किलार्जुनसकाशाद्विष्णोरन्तःपुरमाच्छिन्नमिति । लाटयश्चेति । अपरमालवात्

पश्चिमेन लाटविषयः । तत्र भवाश्चण्डवेगाः । मन्दसीत्कृता इति सीत्कृतानि मन्दं च प्रहारं सहन्त इत्यर्थः । तदुद्भवत्वात्सीत्कृतस्य ॥ २६ ॥

पश्चिमी समुद्रके पास अपरान्त (गुजरात) देश है, वहां जनमीं हुई वहींके नामसे बोली जायँगी । यहांके निवासियोंने अर्जुनके पाससे कृष्णका अन्तःपुर लूट लिया था । उज्जयनीवाले मालवेसे पश्चिमकी ओर लाट देश है, वहांकी स्त्रियां चण्डवेगवाली हैं । इस अधिकरणके सातवें अध्यायके बताये हुए काम प्रहारोंको यदि हलके हों तो सह सकती हैं, इस कारण सीकारे भी धीरे ही लेती हैं । क्योंकि सीकारे तो प्रहारसे होते हैं ॥ २६ ॥

अपरान्तका विवेचन ।

अपरान्त देशका जो यशोधर यह विवरण कर रहा है कि—" पश्चिमी समुद्रके पास...जहां कृष्णका अन्तःपुर भीलोंने अर्जुनसे लूट लिया था " इससे गुजरात काठियावाड़की ओर संकेत हो रहा है । यही कारण है कि रतिरहस्य कामसूत्रके क्रमके अनुसार श्लोकवद्ध देशाचार कहते हुए लाटसे पहिले गुजरात कहता है कि—

" फुल्लातिधम्मिल्लभरा कृशाङ्गी पीनस्तनी चारुविलोचना च ।
प्रियोक्तिराभ्यन्तरवाह्यभोगसक्ता विरक्ताऽपि च गुर्जरी स्यात् ॥ "

बड़े २ बालोंको फुला २ कर, मांगे सँभारनेवालीं, शरीरसे दुबलीं, किन्तु बड़े २ स्तनोंवालीं, सुन्दर आखोंवालीं, बोलचालकी बड़ी सफाई, पर बाह्य और आभ्यन्तर दोनों रतोंको चाहनेवालीं गुजरातिनि होती हैं । इनमें बाजी बाजी ही विरक्त होती हैं । अनंगरंगका यह जो कहना है कि—

" उपभोगरता सुलोचना लघुसंभोगविधिप्रतोषिणी ।
शुभवेषधरा विचक्षणा कथिता सा खलु गुर्जरी बुधैः ॥ "

उपभोगमें रत रहनेवाली मृगनयनी एवम् मामूलीसी संभोग विधिसे तुष्ट होनेवाली, अच्छे वेष धारण करनेवाली, चतुर गुजरातिन होती है । यह गुजरातके उस भागकी स्त्रियोंका विधान दीखता है, जहां कि अधिकांशमें कोम-लाङ्गी ही होती हैं । यह गुजरात, रतिरहस्यके बताये हुए गुजरातसे जुदा मालूम होता है ।

लाट और पश्चिम देश ।

सूत्रकारने अपरान्त देशकी स्त्रियोंकी तरह लाट देशकी नारियोंको भी मन्दसीकारेवाली और चण्डरागवाली बताया है । इसमें सूत्रकारने जो मन्द

सीत्कार कहा है इससे यही साबित होता है कि ये प्रहार थोड़ा ही सह सकती हैं, क्योंकि सीकारे, प्रहारपर निर्भर हैं। कोमल शरीर होनेके कारण ही प्रहार नहीं सहा जाता नहीं तो प्रहारोंके सहनेमें बाधा ही क्या है। इसी भावको लेकर ही कोकजी "सुकुमारगात्री" रतिकेलिमें नाचनेसा करनेवाली तथा अनंगरंग "सुकुमारतनुः" कह रहा है। बाकीकी सब बातें भी सूत्रके आधारपर ही कही हैं। नागरसर्वस्वका कहना है कि—"नखदशनपदे विरक्तचित्ताः प्रहरणचुम्बरताश्च लाटनार्य्यः।" लाटदेशकी स्त्रियाँ नखाघात और दन्ताघातसे विरक्त रहती हैं; पर प्रहणन (हाथोंके वार) और चुम्बनमें रत रहती हैं। यहां भी इन्हें कामसूत्रका इतना वाक्य और समझ लेना चाहिये कि ये वार भी मन्द ही हों। इस तरह सभी आचार्य्योंने कामसूत्रका ही भाव, ग्रहण किया है। लाटदेशवालीकीसी चेष्टाएँ पश्चिम देशवासिनियोंकी भी होती हैं। यही कहा भी है कि—"तदुदितवनिताजनस्य चेष्टा प्रभवति पश्चिमदेशसुन्दरीषु" जो बातें लाटोंकी हैं वे ही सब बातें इनकी भी हैं।

स्त्रीराज्य और कौशल।

दृढप्रहणनयोगिन्यः खरवेगा एव, अपद्रव्यप्रधानाः स्त्रीराज्ये कोशलायां च ॥ २७ ॥

स्त्रीराज्य और कौशल देशकी स्त्रियाँ अधिक खाजवाली ही होती हैं, ये जोरके प्रहार चाहती हैं। इनके लिये बनावटी दण्डेकी जरूरत पड़ती है२७॥

स्त्रीराज्य इति। वज्रवन्तदेशात्पश्चिमेन स्त्रीराज्यं तत्र, कोशलायां च योषितः सत्यप्यालिङ्गनादौ दृढप्रहारैः प्रीयमाणाः संप्रयुज्यन्ते। खरवेगा एवेत्यवधारणात्सर्वदैवेत्यर्थः। कण्डूतेराधिक्याद्रागः खर इत्युच्यते। तद्भावे तु चण्ड इति विशेषः। एवं च सति अपद्रव्यप्रधानाः। कण्डूतिप्रतीकारार्थं प्राधान्येन कृत्रिमसाधनमिच्छन्तीत्यर्थः॥ २७॥

वज्रवन्तके देशसे पश्चिम स्त्रीराज्य है, वहांकी कामिनियाँ तथा कोशल देशकी नारियाँ आलिंगनादिकोंके होनेपर भी दृढ प्रहारोंसे प्रसन्न करनेपर

---

१ अवध और स्त्रीराज्यकी स्त्रियोंको, श्रीपद्मश्रीजी चित्ररतों और चुम्बनोंकी प्रेमिनी मानते हैं। अनंगरंग प्रचण्ड खाजकी तरह रतिचतुर और अधिक ठहरनेवाली भी मानता है। विचारकर देखा जाय तो यह भी कामसूत्रका ही भाव है। नया कुछ नहीं कह रहे हैं।

अनुरक्त होतीं हैं। 'खाजवाली ही' कहनेका यह मतलब है कि उनके सदा खाज उठा करती है। खाजके अधिक होनेके कारण, राग खर कहाता है। यदि खाज उतनी न होकर रागकी अधिकता हो तो चण्डवेग कही जायँगी, यह खरवेगसे चण्डवेगमें विशेषता है। खाज अधिक है, इसी कारण बनावटी दण्डेकी जरूरत पड़ती है, क्योंकि पुरुष खाज मिटा नहीं सकता। इसी कारण बनावटी साधन चाहती हैं॥ २७॥

आन्ध्र।

प्रकृत्या मृद्व्यो रतिप्रिया अशुचिरुचयो निराचाराश्चान्ध्र्यः॥ २८॥

आन्ध्र देशकी युवतियाँ, आचार रहित, बुरे आचरणोंवाली, 'पुरुषोपसृप्त' को चाहनेवाली एवम् प्रकृतिसे ही कोमलाङ्गी होती हैं॥ २८॥

आन्ध्र्य इति। नर्मदाया दक्षिणेन देशो दक्षिणापथः। तत्र कर्णाटविषयात् पूर्वेणान्ध्रविषयः। तत्र भवाः। प्रकृत्या स्वभावेन मृद्व्यङ्ग्यो न प्रहणनादि सहन्ते। किं तु रतिप्रियाः। पुरुषोपसृप्तमिच्छन्तीत्यर्थः। अशुचिरुचयोऽविविक्तसमुदाचाराः निराचाराश्च। भिन्नमर्यादा इत्यर्थः॥ २८॥

नर्मदा नदीके दक्षिणमें दक्षिणापथ देश है, उसमें कर्णाटक देशके पूर्व आन्ध्र देश है। इस आन्ध्र देशकी स्त्रियाँ, स्वभावसे ही कोमलाङ्गी होती हैं, इस कारण प्रहणन आदि नहीं सह सकतीं, किन्तु पुरुषोपसृप्त चाहती हैं। उनका आचार विचार अच्छा नहीं है एवम् चरित्र भी अच्छे नहीं हैं। ये लोकमर्यादाका उल्लघंन किये रहती हैं॥ २८॥

महाराष्ट्र।

सकलचतुःषष्टिप्रयोगरागिण्योऽश्लीलपरुषवाक्यप्रियाः शयने च सरभसोपक्रमा महाराष्ट्रिकाः॥ २९॥

---

१ इसका तात्पर्य्य है कि ये सदा नये २ पुरुषोंके साथ रँगरेलियाँ चाहनेवाली होती हैं। छठे अध्यायमें संवेशन प्रकारमें यह भी कहेंगे कि ये वाडवकी सहजाभ्यासिनी होती हैं। पुरुषोपसृप्त और छठे अध्यायके सूत्रका भावलेकर ही रतिरहस्यने कह दिया है कि—"चारित्रमुद्राको दूर फेंककर सदा ही अनाचारमें रत रहती हैं फिर भी तो काम बाधा नहीं मिटती। है सुकुमार, पर वाडवकरणसे पुरुषको अश्व जैसा तैयार रखना ही चाहती हैं।" अनङ्गरङ्ग तो यह कहता है कि—"जोरसे मर्दन होनेपर भी इनकी कामबाधा नहीं शान्त होती। कोमलाङ्गी और अत्यन्त सुन्दरी हैं, लाज कम करती हैं।

महाराष्ट्र देशकी सुन्दरियाँ, गीतादिक चौंसठ कलाओं तथा पांचालिकी चौंसठ कलाओंके साथ अनुराग रखती हैं, उन्हें ग्राम्य एवं निष्ठुर वचन प्यारे लगते हैं । ये धृष्टतर एवं झटकापटकीके साथ पुरुषसे अभियुक्त होती हैं२९॥

महाराष्ट्रिका इति । नर्मदाकर्णाटविषययोर्मध्ये महाराष्ट्रविषयः । तत्र भवाः । सकलायाश्चतुःषष्टेः पाञ्चालिक्या गीताद्यायाश्च प्रयोगेण रागस्तासां भवतीति तत्प्रयोगरागिण्यः । अश्लीलं ग्राम्यं परुषं च निष्ठुरं वाक्यं वदन्ति सहन्ते चेति तत्प्रियाः । शयने चेति संप्रयोगे । रभसोपक्रमा इति धृष्टत्वोद्धटत्वरभसेन पुरुष-मभियुञ्जत इत्यर्थः ॥ २९ ॥

नर्मदा नदी और कर्णाटक देशके बीचका भूभाग महाराष्ट्र देश कहाता है, इस देशकी रहनेवाली गीत आदि चौंसठ कलाओं तथा पांचालिकी चौंसठ कलाओंके प्रयोगसे अनुराग करने लगती हैं । वे अश्लील और निष्ठुर[1] वचन कहती तथा सहती हैं, क्योंकि वे ही उन्हें अच्छे लगते हैं । ये धृष्टता एवम् साहसके साथ प्रयत्न करनेपर पुरुषसे मिलती हैं ॥ २९ ॥

इनका स्वभाव ।

कलाकोविदापनेका गुण तथा दूसरेपर आक्षेप करने और लाजहीन होनेके दुर्गुण बताकर इनके अभियोक्ताके गुण बता दिये हैं । जो कुछ जिसने समझा, कामसूत्रके इतने विधानसे ही समझा । ‘ अभियोक्ता धृष्ट एवम् सबल साहसी दबानेवाला हो तो ’ इस कथनसे यह साबित हो गया कि ये प्रचण्ड हैं एवम् रमणसे पहिले द्रवित करनेपर हाथ आयेंगी । इसी बातको समझकर पद्मश्रीने कहा है कि—

“ सदा चतुःषष्टिकलाप्रसक्ता रतास्तथालिङ्गनचुम्बनेषु ।
करांगुलिक्षेपविधिप्रसाध्याश्चण्डा महाराष्ट्रकुरङ्गनेत्राः ॥ ”

महाराष्ट्रकी मृगनयनी सदा ही गाने, बजाने आदिमें रत रहा करती हैं । इसी तरह रमणकालमें आलिंगन, चुम्बन आदिकी चौंसठ कलाओंके दिखानेमें भी रत हो जाती हैं । इनको यंत्रयोगसे पहिले हाथके योगसे द्रवित करके फिर यंत्रयोग करनेपर स्खलित किया जा सकता है ।

---

१ इसका तातपर्य्य, आक्षेप युक्त वचनसे है । जो खुली गन्दी जुबान बोलेगी उसे लाज ही कैसे हो सकती है । अनंगरंग इन्हें चपल और दृढानुरागिणी और भी बताता है ।

पटनाप्रान्त ।

तथाविधा एव रहसि प्रकाशन्ते नागरिकाः ॥ ३० ॥

ऐसी ही पटनाप्रान्तकी स्त्रियां हैं, पर ग्राम्य और कठोर वचन एकान्तमें कहती हैं ॥ ३० ॥

नागरिका इति पाटलिपुत्रिकाः । तथाविधा एवेति—तेनैव प्रकारेण सकलचतुःषष्टिप्रयोगतयाऽश्लीलपरुषवाक्यप्रियतया च रहसि विजने प्रकाशन्ते । सत्रपत्वात् । महाराष्ट्रिकास्तु प्रसह्य रहसि चेति विशेषः । शयने च रभसोपक्रमत्वं तुल्यम् ॥ ३० ॥

पटनाकी भी ऐसी ही हैं, महाराष्ट्रवासिनियोंकी तरह इन्हें भी गीतादि चौंसठ तथा पांचालिकी चौंसठ कलाओंके प्रयोगसे अनुराग उत्पन्न होता है, किन्तु ये लज्जावती होनेके कारण, एकान्तमें अश्लील और कठोर वचन कहती सुनती हैं, पर मरैठिन जबरदस्ती और एकान्त, दोनोंमें कहती हैं यह विशेषता है । ये भी धृष्टत्व और साहससे हाथ आती हैं ॥ ३० ॥

द्रविड ।

मृद्यमानाश्चाभियोगान्मन्दं मन्दं प्रसिञ्चन्ते द्रविड्यः॥३१॥

द्रविडदेशकी स्त्रियाँ, आलिंगनादिक करनेकी शुरूआत होनेमात्रसे ही अंगोंका मर्दन होते ही मन्द मन्द झरने लग जाती हैं ॥ ३१ ॥

द्रविडय इति । कर्णाटविषयाद्दक्षिणेन द्रविडविषयः । तत्र भवाः । अभियोगादिति । यन्त्रयोगात्प्रागालिङ्गनाद्यभियोगात्प्रभृति पुरुषेण मृद्यमाना बहिरन्तश्च शिथिलीक्रियमाणावयवा मन्दं मन्दं प्रसिञ्चन्त इति स्तोकं स्तोकं मूर्छनासुखवर्जितं क्षरणं कार्यत इति । अमदत्वात् । ततोऽन्तेसमाक्षिप्तवेगा विसृष्टिः । तेनैकस्मिन्नेव रते निवृत्तरागा भवन्तीति दर्शयति ॥ ३१ ॥

कर्णाटक देशसे भी दक्षिणकी ओर द्रविडदेश है, इस देशकी पैदा हुई युवतियोंकी यह रीति है कि, यंत्रोंके मिलानेसे भी पाहिलेसे जब कि पुरुष आलिङ्गन आदिकोंसे उसका बाहिर भीतरका उपमर्दन प्रारंभ करता है, उसी समयसे लेकर पातके सुखसे विहीन थोडा थोडा झरना शुरू होता है ।

---

१ दूसरी बातोंमें भी इस प्रान्तकी वराङ्गनाओंको महाराष्ट्रियों जैसा ही समझना । अन्तर इतना ही है, कि इनमें थोड़ी लाज जरूर होती है ।

पतनके सुखका पता इस लिये नहीं चलता कि इनमें मद तो है नहीं । इसी कारण अन्तमें वेगरहित स्खलितता होती है । इससे यह सिद्ध हो गया कि ये एक ही रतमें ठण्डी हो जाती हैं । इससे ऊपरके निरूपणका यही एक आशय है, सूत्रकारने इसी बातको दिखाया है ॥ ३१ ॥

कामसूत्रके इस निरूपणका सार–रतिरहस्यने बहुत ही थोड़ेसे शब्दोंमें कह दिया है कि—" अन्तर और बाह्य रमणसे बारबार रिगड़ी जानेपर, प्रभूत मदनजलवालीं द्रविडस्त्रियाँ उसी समयसे क्रमशः झरती हुई पुरुषके पहिले ही नम्बरमें तृप्त हो जाती हैं ॥

इन्हें अनुरक्त करनेकी रीति ।

पूर्व जो बात कही गई थी उसीके अन्दाजपर श्रीपद्मश्रीने द्रविड देशकी देवियोंके विषयमें कह डाला है कि—

" केशग्रहालिङ्गनचुम्बनेषु जिह्वाप्रवेशे च विमर्दने च ।
संभूषणे मर्दनताडने च सदानुरक्ता द्रविडे रमण्यः ॥"

केशोंका पकड़ना, आलिंगन करना, मुखमें जिह्वा प्रवेश, विमर्दन, संभूषण, मर्दन और ताडनमें द्रविडकी रमणी सदा अनुरक्त रहती हैं । इस कथनसे यह सिद्ध हो गया कि इन कामोंके करनेपर इन्हें प्रसन्नता होती है । अनङ्गरंगने तो इनका शरीर मृदु, वाणी सुन्दर, प्रचण्ड साहस एवं निर्भय और निर्लज्ज बताया है । अतः इनसे व्यवहार करतीवार इन बातोंकी ओर भी देख लेना चाहिये ।

कोंकणसे पूर्वकी वनवासिनी ।

मध्यमवेगाः सर्वसहाः स्वाङ्गप्रच्छादिन्यः पराङ्गहासिन्यः कुत्सिताश्लीलपरुषपरिहारिण्यो वानवासिकाः ३२

वनवास–देशकी रहनेवाली, सब कुछ सहलेनेवाली, अपने देहदोषको ढकनेवाली, दूसरेके देह दोषकी हँसी करनेवाली, मध्यम वेगवाली एवम् कुत्सित, अश्लील और परुषको छोड़ देनेवाली होती हैं ॥ ३२ ॥

वानवासिका इति । कोङ्कणविषयात्पूर्वेण वनवासविषयः । तत्र भवाः । मध्यवेगा भावतः कालतश्च समालिङ्गनादिकं सहन्ते । व्यक्तमात्मनः शरीरे दोषं प्रच्छादयन्ति । परस्योपहसन्ति । कुत्सितं रूपेण व्यवहारेण च अश्लीलं ग्राम्यं परुषं परिहरन्ति । न तेन संप्रयुज्यन्ते ॥ ३२ ॥

कोङ्कण देशके पूर्वमें वनवास देश है । वहांकी रहनेवाली भाव और कालसे मध्यम वेग एवम् आलिंगन आदि सब कुछ सहलेनेवाली होती हैं । अपने प्रकट अंगदोषको भी छिपाती हैं एवम् दूसरेके दोषकी हँसी करती हैं । जो रूपसे वा व्यवहारसे बुरे हों, उन्हें छोड़ देती हैं एवम् अश्लील और कठोर वचनोंवालोंका भी परित्याग कर देती हैं यानी ऐसे पुरुषोंके साथ मिलती नहीं ॥ ३२॥

गौड़ ।

मृदुभाषिण्योऽनुरागवत्यो मृद्वङ्ग्यश्च गौडयः ॥ ३३ ॥

गौड़देशकी स्त्रियाँ कोमलाङ्गी, अनुरागिणी और मृदुभाषिणी होती हैं ३३॥

गौडय इति । गौडदेशोद्भवाः । प्रदर्शनं चैतत् । अन्यदपि लक्षयेत् ॥ ३३॥

गौडदेशोंके उपचार दिखाये हैं, यह दिग्दर्शनमात्र है, इसी तरह औरोंकी भी अनुकूलता देख ले ॥ ३३ ॥

विशेष विधान ।

अनंगरंग तो साधारण कोमल नहीं, किन्तु फूलके समान मृदु मानता है। अनुरागिणी एककी ही नहीं, किन्तु बहुतसे मनुष्योंमें भाव रखनेवाली, वह भी कोई हार्दिक नहीं किन्तु रंगरेलीमात्रके ही लिये । पहिलेसे विरक्त, क्रूर चेष्टावाली एवम् मृदुवेगवाली होती हैं । श्रीपद्मश्री तो इन्हें अत्यन्त लावण्यमयी, अधरके मधुकी लोभिन एवम् तीर्थयात्राकी लोभिन मानते हैं । इन्हें चुम्बनकी लोभिन सभी मानते हैं । श्रीपद्मश्रीने इन्हें तीर्थोंकी लोभिन और बता दिया है । गौडदेशकी तरह ही वंगका भी हाल बताया है । ढाका, पावना, राजशाही और फरीदपुरके जिले गौड़देशमें तथा स्मालदह, मुर्सिदाबाद, नडिया, कलकत्ता आदि वंगदेशमें हैं ।

कुछ एक देशोंके उपचार ।

उत्कली—नख लगानेसे राजी होनेवाली, लज्जारहित, विपरीत रतिको चाहनेवाली, कामसे व्याकुल और प्रेमिनी होती है । **कामरूप**—की सुन्दरी, मिठबोलिनि, कोमल देहवाली, कामदेवकी चौसरमें अधिक एकदम द्रवनेवाली, अनुरागिनि और विलासमें चतुर होती है । **तिरोहित**—प्रान्तकी स्त्रियाँ अनेकों रतिरंगोंमें चतुर, उपभोगकी रसिक, कमलनयनी, प्यारेपर दृढभक्ति

---

१ सहना मजबूतका कार्य्य है, इस कारण महाकवि कल्याणमल्लजीने इन्हें ' दृढदेहा ' (मजबूत अंगवाली) कहा है । कोकजी इन्हें मध्यमवेगवाली बताते हैं ।

रखनेवाली, कामके गर्वको प्रदीप्त करनेवाली और मृदुरति होती हैं। पुष्पपुर, अङ्ग, तैलङ्ग और मद्रास—की स्त्रियां संभोग शिक्षामें कुशल, लाजवाली, प्रियोपभोग, अतिचण्डवेगिनी और मनोरमा होती हैं। द्रविड मलयालकी देवियाँ द्रविड़ जैसी ही होती हैं। काम्बोज और गौड—यहांकी स्त्रियाँ नखदानकी क्रियासे हीन, संभोगके संमर्दनसे नाराज होने-वाली, स्वभावसे दुष्ट और प्रचण्ड होती हैं। कल्याणमल्लजी तो म्लेच्छनारी और पहाडिनिको दुर्गंधियुत देहवाली, थोड़ी ही चीजमें राजी, चुम्ब-नादिकोंके भावोंसे रहित और आलिंगनके भावसे भी रहित मानते हैं। कर्नाटकी—प्रचण्डवेगवाली, आघातोंको चाहनेवाली, सदा ही उन्मत्त रहने-वाली, इन्द्रियपानमें लुब्ध, करांगुलि और बनावटी साधनसे प्रसन्न रहनेवाली होती हैं। नैपाल और चीन—यहां की स्त्रियाँ, आघात, मर्दन, नखक्षत, दन्तक्षत, क्षोभण और संचालनमें निःस्पृह, क्रीडाओंको चाहनेवालीं और मन्द-वेगमें अनुरक्त रहती हैं। ये नवयुवकको दूरसे ही देखकर कामातुर हो जाती हैं। इसी तरह दूसरे २ देशोंकी भी प्रकृति समझ लेना।

देशसे स्वभाव बलवान् है।

देशसात्म्यात्प्रकृतिसात्म्यं बलीय इति सुवर्णनाभः। न तत्र देश्या उपचाराः ॥ ३४ ॥

सुवर्णनाभ आचार्य्य कहते हैं, कि देशाचारसे स्वभावके उपचार अधिक बलवान् हैं, अतः प्रकृतिके विरुद्ध, देशके आचार भी न करने चाहियें ॥३४॥

प्रकृतिसात्म्यमिति। प्रकृतिः स्वभावः तत्सात्म्यमेव मन्यते। देशप्रकृतिसा-त्म्येनैवोपचाराः कर्तव्याः। उभयसंनिपाते विरोधे सति देशसात्म्यात्प्रकृतिसात्म्यं बलीय इति। अन्तरङ्गत्वात्। न तत्र देश्या उपचाराः सुवर्णनाभस्य। आचा-र्याणां तु प्रकृतिसात्म्यपरिहारेणैव देशसात्म्येनोपचरेदिति मतम्। शास्त्रकृतोऽपि सुवर्णनाभमतमेवाभिमतम्। अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ३४ ॥

---

१ कोई बात किसी देशकेदेश तथा सारी जातिको कह देना उचित नहीं जचता, क्योंकि सर्वत्र सबमें सब ही तरहके मनुष्य होते हैं। कामशास्त्रके आचार्य्योंने जो देश सात्म्य दिखाया है वह अपने २ समयके देशाचारों एवम् वहांकी परिस्थितिको देखकर, अधिकांशको लेकर लिख दिया प्रतीत होता है। जातिअवच्छेद व देशावच्छेदेन किसी बातको कह देना हमारे मनमें तो ठीक नहीं जचता। फिर जो व्यवहार होते हैं वे अधिकताको लेकर होते हैं।

ये आचार्य्य, देशकी अनुकूलतासे स्वभावकी अनुकूलताको अधिक बड़ी मानते हैं कि देश और प्रकृतिके जो अनुकूल पड़े उन उपचारोंको ही करे। यदि दोनोंके बीच विरोध हो तो देशके अनुकूलसे, प्रकृतिका अनुकूल बलवान् होता है, क्योंकि वह अन्तरंग है, इस कारण वहां देशके उपचारोंको न करे। यह केवल सुवर्णनाभका मत है। दूसरे आचार्य्योंका तो यह मत है कि देशके उपचारोंमेंसे जो उसकी प्रकृतिके अनुकूल जचे उसीको काममें लाये। वात्स्यायनको तो सुवर्णनाभका मत रुचिकर है, क्योंकि इसका खण्डन नहीं हो सकता ॥ ३४ ॥

एक देशकी बातें दूसरेमें ।

कालयोगाच्च देशाद्देशान्तरमुपचारवेषलीलाश्चानुगच्छन्ति । तच्च विद्यात् ॥ ३५ ॥

समयके फेरसे एकदेशके उपचार, वेप और खेल, दूसरे देशमें चले जाते हैं, इस बातको भी पहिचान ले ॥ ३५ ॥

कालयोगाच्चेति । कालान्तरेण देशात्तथा तत्रत्यानुपचारान्वेषं नेपथ्यं लीलां चेष्टाविशेषमनुगच्छन्ति । तच्चेति—देशान्तराद्यनुगमनं तत्त्वतो विद्यात् । अन्यथा उपचारादिदर्शनेन तद्देशजेयमित्युपचर्यमाणा विगुणा स्यात् । तस्मात्संचारिगुणत्यागेन स्थायिदेशप्रचारैरेवावधार्य प्रकृतिसात्म्येनोपचरेत ॥ ३५ ॥

समयके हेरफेरसे एकदेशके उपचार, पहिनाव, खेलकूद और लीला यानी चेष्टाविशेष दूसरे देशोंमें चले जाते हैं। उसको यथार्थरूपसे जान ले कि यह इस देशका है या इसीतरह आगन्तुक है। विना जाने उसे उसी देशका समझकर करनेसे वह उलटा पड़ता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि आये हुए उपचारोंको छोड़, वहांके स्थायी प्रचारोंसे प्रकृतिकी अनुकूलताकी परीक्षा करके, उनमेंसे जिसे अनुकूल समझे उसी उपचारका प्रयोग करे ॥ ३५ ॥

रागवर्धक और विचित्र ।

उपगूहनादिषु च रागवर्धनं पूर्वं पूर्वं विचित्रमुत्तरमुत्तरं च ॥ ३६ ॥

छओं आलिंगन आदिकोंमें पूर्व पूर्व रागका बढ़ानेवाला एवं उत्तर उत्तर विचित्र है ॥ ३६ ॥

उपगूहनादिष्विति । आलिङ्गनचुम्बननखदशनच्छेद्यप्रहणनसीत्कृतेषु षट्सु बहिःकर्मसु पूर्वं पूर्वं रागवर्धनम् । तत्र सीत्कृताच्छ्रुतिरमणीयात्प्रहणनं स्पर्शकरं रागवर्धनम् । ततो दशनच्छेद्यमतिस्पर्शकरम् । ततोऽपि परिहारेण नखच्छेद्यम् । तस्मादपि चुम्बनं मृदुस्पर्शकरम् । ततोऽपि सर्वाङ्गिकमालिङ्गनमतिस्पर्शकारीति । विचित्रमुत्तरोत्तरमिति । तत्रोपगूहनात्स्थूलकर्मणश्चुम्बनं कुटिलकर्म विचित्रम् । ततो नखविलेखनम् । तस्मादपि दशनच्छेद्यमतिकुटिलम् । ततोऽपि प्रहणनम् । यतस्तद्धस्तलाघवान्मन्दकर्मपरिहारेण रागं दीपयति । ततोऽपि सीत्कृतम् । यदुपदेशेऽपि दुर्ग्रहमिति ॥ ३६ ॥

आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेद्य, दशनच्छेद्य, प्रहणन और सीत्कार इन छओंमें बाहिरकी क्रियाओंमें पर परसे पूर्व पूर्व रागका बढ़ानेवाला है, यानी कानोंके प्यारे लगनेवाले सीकारेसे स्पर्श करनेवाला ! प्रहणन अधिक रागका बढानेवाला है । इससे भी अधिक स्पर्श करनेवाला दाँतोंका लगाना है, इस कारण प्रहणनसे अधिक दाँतोंका लगाना राग बढ़ाता है । दन्तच्छेदसे अधिक रागवर्धक नखच्छेद है, क्योंकि यह खोंसोंकें रूपमें अधिक स्पर्श करता है । इससे अधिक राग बढानेवाला मृदुस्पर्शकारी चुम्बन है । उससे भी अधिक राग वढ़ानेवाला अत्यन्त स्पर्श करानेवाला सारे अंगका आलिंगन है । इन छओंमें एकसे एक विचित्र हैं । स्थूलकर्म, आलिंगनसे कुटिल कर्म, चुम्बन विचित्र है, इससे भी विचित्र नाखून लगाना है । उससे भी विचित्र अत्यन्त कुटिलकर्म दशनच्छेद है । उससे भी अधिक विचित्र प्रहणन है, क्योंकि यह हाथकी सफाईसे मन्दकर्मके हटानेके द्वारा रागको प्रदीप्त करता है । उससे भी विचित्र सीत्कृत है, जो कि उपदेशमें भी बड़ी कठिनतासे समझमें आता है ॥ ३६ ॥

प्रणयकलहमें प्रेम बढ़ानेका ढंग ।

एवं देशसात्म्यात्परस्परमुपचितौ छेद्यकलहोऽपि स्यात् । तत्र प्रीतिस्थिरीकरणार्थं चेष्टितमुच्यते । तद्द्विविधम्—रहसि प्रकाशे च सेवने ।

उपचारोंके विषयमें यह कहा गया है, कि इनका प्रयोग, देश और प्रकृतिकी अनुकूलतापर किया जाना चाहिये, यदि देश और प्रकृतिकी सात्म्यतापर परस्परके उपचारोंके प्रयोग होनेपर नाखून लगाने और दाँतसे काटनेका भी कलह हो तो इसमें आपसकी प्रीतिको स्थिर करनेके लिये जो कारगु-

जारी करनी चाहिये उसे बताते हैं। इस कारगुजरीके दो भेद होते हैं--एक तो एकान्तके सेवनमें होती है तथा दूसरी जाहिराके सेवनमें हुआ करती है।

एकान्तके काम।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

दोनोंमेंसे एकान्तकी कारवाई मुख्य है, इस कारण अकेलेके करनेके काम बताते हैं कि—

वार्यमाणश्च पुरुषो यत्कुर्यात्तदनु क्षतम् ।
अमृष्यमाणा द्विगुणं तदेव प्रतियोजयेत् ॥ ३७ ॥

रोके जानेपर भी पुरुष, जितना निशान लगाये तो स्त्रीको चाहिये कि उसको न सहती हुई, उसके पीछे, आप उससे दूने निशान लगा दे ॥ ३७॥

वार्यमाण इति । आङ्गिकेन वाचिकेन वाभिनयेन निषेध्यमानः प्रकृतिसात्म्यात् । यदा त्वनिषेध्यमानस्तदा 'कृते प्रतिकृतं कुर्यात्' इत्ययमेव पक्षः । न द्विगुणयोजनम् । कलहाभावात् । द्यूतकलहेऽपि द्यूतमधिकृत्योक्तम् । इह सात्म्यं विशेषः । अमृष्यमाणेत्यक्षममाणा द्विगुणं प्रयुक्तादधिकच्छेद्यं यत्तदेव । न विजातीयम् । प्रयोजयेत्प्रतीपं योजयेत् ॥ ३७ ॥

शरीर वा वाणीके अभिनयसे रोके जानेपर भी अपनी ओर नायिकाकी प्रकृतिकी अनुकूलताके कारण, नाखून और दाँत चला दे तो इसके जवाबमें दूना करे। यदि न रोकनेपर किये हों तो कियेका उत्तरमात्र दे दे। यह भी पक्ष इस सूत्रसे निकलता है ऐसे स्थलमें दूनेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि करनेका कलह नहीं है। द्यूत (जुआ, जिदाजिदी) के कलहमें तो उसके अधिकारको लेकर कहा था, यहां केवल देश तथा प्रकृतिकी अनुकूलताको लेकर कहा जा रहा है, यह इसमें उससे विशेषता है। पुरुषके वारोंको न सहती हुई जो दूना वार करे, वह उसके किये हुए छेदका ही दूना करे, ऐसा न हो कि पुरुषने जिस छेदका प्रयोग किया है आप उससे दूसरी तरहका दूना करे। प्रातियोजनका तात्पर्य्य बदलेकी योजना यानी बदलेमें लगानेसे है ॥ ३७ ॥

किसका कौन दूना।

कस्य किं द्विगुणमित्याह—

किस सुरतका कौन दूना होता है, इस बातको बताते हैं कि—

बिन्दोः प्रतिक्रिया माला मालायाश्चाभ्रखण्डकम् ।
इति क्रोधादिवाविष्टा कलहान्प्रतियोजयेत् ॥ ३८ ॥

बिन्दुके उत्तरमें माला और मालाके उत्तरमें खण्डाभ्रकका प्रयोग करे, इसी तरह क्रोधसे आविष्ट होकर कलहके कार्य्योंकी प्रतियोजना करे ॥३८॥

बिन्दोरिति । मालेति बिन्दुमाला, तस्या अप्यभ्रखण्डकं प्रतीकारः । इत्येवं द्विगुणं प्रतीकारं बुद्ध्वा योजयेत्कलहं प्रति । तथाभ्रखण्डस्य वराहचर्वितकम् । गूढस्योच्छूनकम् । तस्य प्रवालमणिः । तस्यापि मणिमाला । तस्यापि बिन्दुरिति । तत्र पूर्वाणि चत्वारि त्वचि स्थितानि । शेषाणि त्वचमतिक्रम्य । क्रोधादिवाविष्टेति । कृतककोपेन दर्शितावस्थान्तरा । कलहान्तरं कृतककलह-दर्शनार्थम् ॥ ३८ ॥

बिन्दुके करनेपर बिन्दुमाला करे, यदि बिन्दुमाला की जाय तो उसके प्रतीकारमें गत प्रकरणमें बताये खण्डाभ्रकसे प्रतीकार करे। कलहमें इसी प्रकार कियेके दूने प्रतीकारकी योजना करे। इसी तरह अभ्रखण्डकके उत्तरमें वराहचर्वित, गूढके उत्तरमें उच्छूनक, उच्छूनकके जवाबमें प्रवालमणि, इसके भी उत्तरमें मणिमाला तथा मणिमालाके भी उत्तरमें बिन्दुका प्रयोग होता है। इनमें पहिले चार चर्मपर ही रहते हैं किन्तु उनसे बाकीके त्वचाके भीतरतक पहुँचते हैं। क्रोध वास्तविक नहीं होता किन्तु बनावटी क्रोधसे कुपितकी अवस्था दिखा दी जाती है। दूसरा कलह, बनावटी कलह दिखानेके लिये है ३८

सकचग्रहमुन्नम्य मुखं तस्य ततः पिबेत् ।
निलीयेत दशेच्चैव तत्र तत्र मदेरिता ॥ ३९ ॥

इसके बाद बाल पकड़कर उसके मुखको पी ले, उसके लग जाय, उसे काट खाय, ये सब काम अधरपानकी मस्तीसे प्रेरित हुई ही करे ॥ ३९ ॥

मुखं पिबेदधरपानाख्येन चुम्बनेन । तत्र चायं विदग्धक्रमः । सकचग्रहमुन्न-म्येति । पाणिनैकेन कचेषु द्वितीयेन चिबुके परिगृह्योत्तानीकृत्येत्यर्थः । निली-येत दृढं संश्लिष्येत दशेच्च । तत्र तत्र च्छेद्यस्थाने । यत्र यत्र वा तेन दष्टा । मदेरिता पानमदप्रेरिता । तदेव सुचेष्टं सुखयति ॥ ३९ ॥

अधरपान नामक चुम्बनकी बताई हुई रीतिसे उसका अधरपान कर ले, इस क्रियामें यह अधरपान चतुराईका कार्य्य है। इस कार्य्यके करनेमें एक

हाथसे केश पकड़े एवम् दूसरे हाथसे ठोढी पकड़कर, मुखको ऊपर करके अधर पिये, यही इसमें चतुराईका कार्य है । आलिङ्गन, गाढ होना चाहिये । नायकके उन्हीं अंगोंमें दाँत लगाये जो कि विहित हों, अथवा जिनमें नायकने लगाये हों । पानके मदकी प्रेरणामें जो कार्य्य किया जाता है वही अपनेको सुखी भी करता है यानी अधर पीतीवार इसकी मस्ती भी रहनी चाहिये॥३९

दूसरी विधि ।

विधानान्तरमाह—

कलहमें छेद्यकी जो विधि बताई है, उससे भिन्न दूसरी भी विधि होती है, उसे बताते हैं कि–

उन्नम्य कण्ठे कान्तस्य संश्रिता वक्षसः स्थलीम् ।
मणिमालां प्रयुञ्जीत यच्चान्यदपि लक्षितम् ॥ ४० ॥

प्यारेके वक्षःस्थलपर संश्रित होकर, मुख उचका, उसके कण्ठमें मणिमाला अथवा दूसरा जो सुन्दर लगे, उसे लगा दे ॥ ४० ॥

उन्नम्येति । संश्रिता वक्षसः स्थलीमेकेन बाहुपाशेनाश्लिष्य कचमुन्नम्य द्वितीयेन हस्तेन चिबुकं गृहीत्वा मणिमालां प्रयुञ्जीत । गले स्वस्थाने कण्ठिकामिवाह । यच्चान्यदपि लक्षितं दशनच्छेद्यं मनोहारि । अत्रापि वैचित्र्यापेक्षेति सूचयति ॥ ४० ॥

अपने एक बाहुपाशको प्यारेके वक्षस्थलपर डालकर, उसमें उसके बालोंको लिभेड़ ले और दूसरे हाथसे चिबुक पकड़कर, ऊपरको करके, प्यारेके गलेमें मणिमाला लगा दे, जो कि उसमें कंठेकी तरह अच्छा लगे । इसके सिवा और भी जो सुन्दर लगे उस दशनच्छेद्यको भी कर दे । इस कथनसे वात्स्यायन यह बता रहे हैं, कि गलेमें दशन लगानेमें भी विचित्रताकी आवश्यकता है ॥४०॥

प्रकाशकी चेष्टाएँ ।

प्रकाशे चेष्टितमाह—

एकान्तकी चेष्टा बताकर, अब उजगरके करनेकी चेष्टाएँ बताते हैं, जिनके कि करनेसे प्रेम बढ़ता है ।

दिवापि जनसंबाधे नायकेन प्रदर्शितम् ।
उद्दिश्य स्वकृतं चिह्नं हसेदन्यैरलक्षिता ॥ ४१ ॥

दिनमें या रातमें भी मनुष्योंके भीतर, नायकके वदनमें जो अपने किये निशान हों, उनकी ओर इशारा करके इस प्रकार हँसे कि पूरा कोई भी न जान पाये ॥ ४१ ॥

दिवापीति रात्रौ नायिकया यत्कृतं चिह्नं तद्दिवापि नायकेन कथमस्मिञ्जन-समूहे प्रच्छाद्यमिति भावमाकारं ग्राहयेत्प्रदर्शयेत् । उद्दिश्य स्वयं कृतं चिह्न-मिति दुष्टस्यायमेव निग्रहो युक्त इति भावं ग्राहयन्ती हसेत् । अन्यैरलक्षितेति । नायकेनाप्यलक्षितेति योज्यम् । अन्यथा द्वावप्यनागरकौ । जनसंबाधे स्यातामिति ॥ ४१ ॥

दिन या रातमें जब मौका हो उस समय जनसमूहमें भी अपने लगाये दाँत वा नाखूनोंके बारेमें उसकी ओर इशारेसे कहे कि इन्हें कोई देख लेगा छिपा लो, क्योंकि नायकको उन्हें छिपाकर ही रखना चाहिये। इस प्रकारके दिखानेमें यह भी व्यङ्ग्य रहना चाहिये कि दुष्टका यही दण्ड ठीक है, यह भाव हँसीमें सना रहना चाहिये । हँसतीवार कोई न देखे और तो क्या नायककी दृष्टि भी न पड़नी चाहिये। क्योंकि इस प्रकार करते कराते कोई देख लेगा तो दोनोंको गँवार कहेगा ॥ ४१ ॥

सापि तत्कृतानि चिह्नानि प्रदर्शयेदित्याह—

यही बात न हो कि उसे ही इशारा करे, किन्तु उसके किये अपने शरीरके निशानोंको भी दिखा दे। इसी बातको कहते हैं कि—

विकूणयन्तीव मुखं कुत्सयन्तीव नायकम् ।
स्वगात्रस्थानि चिह्नानि सासूयेव प्रदर्शयेत् ॥ ४२ ॥

अपने मुखको चुम्बनोद्यतके मुखकी तरह संकुचित करके, नायककी कुत्सा करती हुई, अपने शरीरके निशानोंको, सहन न करती हुईकी तरह दिखा दे॥४२

विकूणयन्तीव व्यर्थचुम्बनार्थं संकोचयन्तीव । संकोचस्येष्टत्वात् । कुत्सय न्तीव भ्रूनयनविकारैश्चिह्नं विदग्धमिति । 'तर्जयन्तीव' इति पाठान्तरम्। फल-मस्य प्राप्स्यसीति तर्जनम्। सासूयेवाक्षममाणेव ॥ ४२ ॥

संकोच तो चाहिये इस कारण, चुम्बन लेनेके लिये जिस तरह मुँह किया जाता है उस तरह करके, चतुरताके साथ भौंहें मटकाकर, उसको डराती

हुईकी तरह ये काम करे । (यहां निन्दा करती हुईकी तरहसे उक्त पाठान्तर ही अच्छा लगता है) यह तर्जन इसतरह होता है कि–" देखो, इसका फल पा जाओगे । " ये काम भी असहन करनेवालीकी तरह ही हों ॥ ४२ ॥

परस्परानुकूल्येन तदेवं लज्जमानयोः ।
संवत्सरशतेनापि प्रीतिर्न परिहीयते ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
दशनच्छेद्यविधयो देश्याश्चोपचाराः पञ्चमोऽध्यायः ।
आदितो दशमः ।

आपसकी अनुकूलतासे इसप्रकार लज्जापूर्वक करनेवालोंकी प्रीति, सौवर्षमें भी नहीं मिटती ॥ ४३ ॥

तदिति तस्मात् । संवत्सरशतेन पुरुषायुःप्रमाणेनेत्यर्थः । प्रीतिर्न परिहीयते स्थिरीभवतीत्यर्थः । भोजनमपि ह्येकरसमुपसेव्यमानं विरागं जनयति । देश्या उपचारा द्वादशं प्रकरणम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण
गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-
करणे दशनच्छेद्यविधयो देश्या उपचाराश्च पञ्चमोऽध्यायः ।

पुरुषकी आयु सौवर्षकी कूती गई है, सौवर्षतक न मिटनेके कथनसे यह सिद्ध होता है कि जिन्दगीभर भी नहीं मिटती; स्थिर हो जाती है । एक ढंगका या एक रसके रोज भोजनसे भी विराग होजाता है । इसी कारण प्रणय-कलह कहा है । ये देशोंके उपचार पूरे हुए ॥ ४३ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके पञ्चम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

संवेशनप्रकार प्रकरण ।

एवं देशप्रकृतिसात्म्यापेक्षया आलिङ्गनाद्युपचाराज्जातरागयोः संवेशनयोग्यत्वात्संवेशनप्रकाराः, तथा संवेशनविशेषत्वाच्चित्ररतानीति प्रकरणद्वयमत्राध्याये ।

पीछेके अध्यायोंमें बताये गये आलिंगनादिक उपचारोंको देशकी प्रकृति और जिसपर प्रयोग किया जाय उसकी प्रकृतिके अनुसार प्रयोग करनेपर, रागके प्रादुर्भाव हो जानेपर स्त्री पुरुष, सहवास करनेके योग्य होते हैं, इस कारण आलिंगनादिकोंको कहकर सहवास करनेके आसन बताते हैं । चित्ररत भी एक तरहके निराले आसन ही हैं, इस कारण संवेशनके बाद चित्ररत कहेंगे । इस तरह इस अध्यायमें दो प्रकरण कहे हैं, उन्हें क्रमशः कहते हैं—

उच्च और उच्चतर रतमें मृगी ।

यदाह—

आसनोंको वात्स्यायन तो मृगीके आसनोंसे प्रारंभ किया है, उन्हें यहीं दिखाते हैं कि—

रागकाले विशालयन्त्येव जघनं मृगी संविशेदुच्चरते ॥ १ ॥

सहवास करनेके ऐन मौकेपर मृगी, पाहिले अपने पैरोंको एकदम चौड़ाकर ही यंत्रसंयोग करे; यदि बड़े साधनवालेके साथ समागम करना हो तो ॥ १ ॥

रागकाल इति रागकालो यत्र स्तब्धलिङ्गता । साधनसंबाधयोः संयोगार्थं संवेशनम् । तच्च तदानीमेव युज्यते । तेन प्रमाणतो रतमधिकृत्य संवेशनप्रकाराः ।

संवेशनके भेद व नाम ।

१ संवेशन, करण और वन्ध, ये पर्य्यायवाचक शब्द हैं, ये रतिकालके आसनोंको कहते हैं । साधारणरूपसे पांच प्रकारसे स्त्री, रति कर सकती है । १ चित्त लेटकर, २ करवटसे, ३ बैठकर, ४ खड़े होकर और ५ वाँ पशुओंकी तरह । इस पशुओंकी तरह सहवास करनेको कामसूत्रने चित्ररतोंमें गिना है । रतिरहस्यने इसे व्यानत कहकर याद किया है, तथा अनंगरंग और नागरसर्वस्वने भी पशुलीलाको इसी नामसे याद किया है, पंचसायकने इसे अधोमुखबन्ध कहा है । तिरछे लेटकर (करवटसे) रति करनेको रतिरहस्य, नागरसर्वस्व और अनंगरंगने तिर्य्यक् तथा पंचसायकने पार्श्वबन्ध कहा है । बैठे २ रति करनेको रतिरहस्यने आसित एवम् नागरसर्वस्वने आसीन तथा अनंगरंग और पंचसायकने उपविष्ट कहा है । इसी तरह चित्त लेटकर करनेको सबोंने उत्तान तथा खड़े २ करनेको रतिरहस्य, नागरसर्वस्वने स्थित एवम् अनंगरंगने उत्थित तथा पंचसायकने ऊर्ध्व कहा है ।

उपलक्षणं चैतत् । उच्चतररते चाश्वेन संप्रयोक्ष्यमाणेति [जघनं] विशालयन्तीव संविशेत् । अत्रातिदेशं वक्ष्यति ॥ १ ॥

जब आलिंगनादिकोंसे पुरुष तयार हो गया हो एवम् स्त्रीकी तबीयत चलकर गुप्तअंग भीग गया हो, जब वे दोनों अपने यंत्रोंका संयोग करना चाहते हों, यह बात उसी समयकी है कि अपने शरीरसे बड़े गुप्त अंगवाला पुरुष हो तो उसे अपने पैर खूब चोड़ा देने चाहिये; यह बात प्रमाणसे रतव्यवस्था करते समयकी है, वहां उच्च और उच्चतर रत बताये हैं। यदि छोटेसे शरीरकी स्त्री बहुत बड़े गुप्त अंगवाले पुरुषके साथ (जिसे कि कामशास्त्रमें अश्व कहते हैं) सहवास करे तो पैरोंको खूब चोड़ाकर मिले एवम् मध्यम शरीरवालेसे मिले तो पहिले उससे कम शरीरको चोड़ा ले। छोटे शरीरवालीका अत्यन्त बड़े शरीरकेसे (जिसे कि कामशास्त्रवाले अश्व कहते हैं) मिलना उच्चतररत एवम् मध्यम साधनवाले (जिसे कि वृष कहते हैं) के साथ मिलना उच्चरत है। इनके साथ शरीर फैलाकर ही सहवास किया जा सकता है। इस विषयमें जो अतिदेश है उसे अगाड़ी कहेंगे॥ १ ॥

नीच और नीचतररतमें हस्तिनी।

अवह्रासयन्तीव हस्तिनी नीचरते ॥ २ ॥

हस्तिनी (बड़े शरीरकी नायिका) नीचरत यानी छोटे शरीरके पुरुषके साथ सहवास करे वह भी पहिले अपने शरीरको भींचकर, छोटा करके यंत्रसंयोग करती है ॥ २ ॥

अवह्रासयन्तीवेति ऊर्वोः संश्लेषणात्संकोचयन्तीव । यथा संवृतमुखं भवति। हस्तिनी नीचरते वृषेण संप्रयोक्ष्यमाणा संविशेदित्येव । तस्या बहलरन्ध्रत्वात् । शशेन नीचतररतेऽवह्रासयन्तीति । अत्राप्यतिदेशं वक्ष्यति ॥ २ ॥

वह अपनी जांघोंको सकोड़ती है, इससे उसका गुप्तअंग भी सिकुड़ जाता है। हस्तिनी अपनी बराबरकी जोटको छोड़कर, वृषके साथ समागम करना चाहती है तो, उस समय सिकोड़कर ही यंत्रसंयोग करे, क्योंकि विना ऐसा किये उसका बड़ा छिद्र छोटा न होगा। यदि शशके साथ सहवास हो तो उसे अपने शरीरको और भी छोटा कर लेना चाहिये, इस विषयमें भी अतिदेश कहेंगे ॥ २ ॥

---

१ मृगीको मदनमंदिरके बड़े करनेके आसन बताये हैं और ऐसा ही वडवाकी भी जो उचित व्यवस्था की है वही उनका अतिदेश एवम् हस्तिनीको जो मदनमंदिरके छोटे करनेकी आसनव्यवस्था की है वह उसका अतिदेश है, जिससे कि वह मदनमंदिर छोटा कर सकती है।

बराबरकी जोटकी व्यवस्था ।

न्याय्यो यत्र योगस्तत्र समपृष्ठम् ॥ ३ ॥

जहां बराबरकी जोट हों, वहां बराबर ही रखकर सहवास कर ॥ ३ ॥

यत्र–यस्मिन् रते, न्यायादनपेतो योगः, स्वभावसिद्धत्वात्, समरत इत्यर्थः । तत्र समपृष्ठं संविशेदित्येव क्रियाविशेषणमेतत् । संकोचनप्रसारणाभावात्समं जघनपृष्ठं यस्यां क्रियायामिति ॥ ३ ॥

जिस रमणमें पुरुष और स्त्री दोनोंके शरीर बराबरके हों उसमें स्त्रीका अपने शरीरको स्वाभाविकरूपसे फैलाना चाहिये, इस रतको समरत कहते हैं । जिसमें कि जघनका फैलाना और सिकोड़ना बराबरका हो उस संवेशनको समपृष्ठ कहते हैं । बराबरके समागममें न तो फैलानेकी आवश्यकता है एवं न सिकोड़नेकी ही; जैसा हो वसा ही रहने दे ॥ ३ ॥

मृगी और हस्तिनीकीसी वडवाकी व्यवस्था ।

आभ्यां वडवा व्याख्याता ॥ ४ ॥

मृगी और हस्तिनीकी व्यवस्थासे वडवाकी भी व्यवस्था कह दी गई ॥४॥

साप्युच्चरतेनाश्वेन प्रयोक्ष्यमाणा विशालयन्तीव शशेनावह्रासयन्तीव । न्याय्यो यत्र वृषेण तत्र समपृष्ठं संविशेदिति । मृगीहस्तिनीभ्यां व्याख्याता । यथा चोक्तम्—'विवृतोरुकमुच्चैस्तु नीचैः स्यात्संवृतोरुकम् । यथास्थितोरुकं चापि समपृष्ठं समे रते'' ॥ ४ ॥

वडवा यानी मध्यमकोटिके शरीरवाली, उच्चरत यानी अपनेस बड़ शरीरवालेके साथ सहवास करते अपने पैरोंको चोड़ाकर अपने गुप्त अंगको फैलाकर ही सहवास करे । एवं नीचरत यानी अपनेसे छोटे शरीरवाले (जिसे कि कामशास्त्रमें शश कहते हैं) के साथ समागम करती बार देहको सिकोड़ ले । मध्यमकोटीका पुरुष (जिसे कि कामशास्त्रमें वृष कहते हैं) के साथ इसकी जोड़ी है इसके साथ स्वाभाविक रीतिसे ही मिले । यही कहा भी है कि–" उच्चरत तथा उच्चतररतमें जांघें फैलाकर एवम् नीचरतमें जाघें सकोड़कर एवं समरतमें बराबर रखकर सहवास करे " ॥ ४ ॥

मदनाकुंशको मदनमंदिरमें लेनेकी विधि ।

संवेशनस्य प्रतिग्रहफलत्वात्प्रतिग्रहमाह—

स्त्रीके आसन करनेका यही फल है कि वह उनको किये २ ही सहवास

करतीबार पुरुषका अंग अपने शरीरके भीतर लेती है, इस कारण लेनेकी रीति भी कहते हैं कि—

तत्र जघनेन नायकं प्रतिगृह्णीयात् ॥ ५ ॥

ऊपर बताये हुए तीनों सहवासोंमें स्त्री, जब उसके शरीरको भीतर ले तो वह अपने मदनमंदिरको न भींचे ढीला छोड़ दे ॥ ५ ॥

तत्रेति संकोचनप्रसारणभेदात्समपृष्ठाच त्रिविधे संवेशने जघनेन स्वेन प्रतिगृह्णीयात् । श्लथलिङ्गं प्रतीच्छेदित्यर्थः ॥ ५ ॥

यदि बड़े शरीरवाली, छोटे शरीरकेसे मिले तो सिकोड़े एवम् बड़ेसे मिले तो जाघोंको चोड़ाये एवम् बराबरवालेसे मिले तो बराबर रखे । पर जिस समय पुरुषके साधनको ले तो उसी समय उसके शरीरको अपने भीतर ले जब कि अपना मदनमंदिर रागके क्षरणसे चिकना हो ले ॥ ५ ॥

अपद्रव्यका प्रयोग ।

अपद्रव्याणि च सविशेषं नीचरते ॥ ६ ॥

नीचरतमें अपद्रव्योंको लेतीबार मदनमंदिरको कुछ विशेष चोड़ाकर ग्रहण करे ॥ ६ ॥

अपद्रव्याणि चेति । वृषेण शशेन वा प्रयुज्यमानानि कृत्रिमसाधनानि वडवा हस्तिनी वा प्रतिगृह्णीयादित्येव । तत्रापि विशेषः—यदि समरतं साधनसदृशं कृत्रिमं तदा नावह्लासयन्ती विशालयन्तीव । ततोऽप्यधिकं चेद्विशालयन्तीव प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः । नीचरते इति । उच्चरतेऽपद्रव्यप्रयोगासंभवात् ॥ ६ ॥

यदि छोटे शरीरसे तृप्ति न हो तो शशके साथ सहवास करनेवाली वडवा और हस्तिनी एवम् वृषके साथ सहवास करनेवाली हस्तिनी, शरीर लेनेकी जगह बनावटी दण्डे लेकर ही कार्य्य चलायें । यदि बराबरकी जोट हो या छोटा पुरुष, बनावटी दण्डेसे काम चलाये तो शरीरको छोटा करनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु उसे अपनी जावें और भी अधिक फैला देनी चाहियें । इस प्रकार उसे फैलाकर ही लेना चाहिये । यदि बड़े शरीरका छोटीसे मिलता है तो उसे दण्डेकी आवश्यकता ही नहीं वह तो खुद ही बड़ा है ॥ ६ ॥

मदनमंदिरको युक्तिसे घटाना बढाना ।

यथा युक्त्या विवृतं संवृतं वा जघनं स्यात्तद्यथाक्रममाह—

इसी अध्यायके गत सूत्रोंमें यह तो कहा गया है, कि बड़े साधनके पुरुषसे

मिलतीबार छोटे मदनमंदिरवाली स्त्री, अपने मदनमंदिरको चोड़ा करके मिले तथा बड़े मदनमंदिरकी स्त्री छोटे साधनके पुरुषसे मिले तो वराङ्गको आसनोंसे सिकोड़कर ही मिले। पर छोटेका बड़ा व बडेका छोटा, कैसे किया जाता है यह साथ नहीं वताया, इस कारण छोटेको चोड़ाने व बड़ेको छोटे करनेके आसन वताते हैं। जिनकी कि युक्तियोंसे यह सब संपादन किया जा सकता है।

उत्तान रति।

सभी तरहके नायक नायिकाओंको तिर्य्यक् आदि रतियोंसे नायिकाके चित्त लेटे रहनेमें कुछ सुगमता पड़ती है, इस कारण वात्स्यायनजीने सबसे पाहिले उत्तानरतिको ही वताया है।

मृगीके आसन।

जब नायिकाविवेचनामें मृगी सबसे पाहिले रही है तो आसनोंकी विवेचनामें भी वह कहां जायगी, इसमें भी इसे ही सबसे पाहिले ले रहे हैं। दूसरे इसे आवश्यकता भी उच्चरतमें सबसे अधिक है, अतः प्रथम इसके ही आसन वताये जाते हैं कि—

उत्फुल्लकं विजृम्भितकमिन्द्राणिकं चेति त्रितयं मृग्याः प्रायेण ॥ ७ ॥

" उत्फुल्लक, विजृम्भितक और इन्द्राणिक ये तीन आसन प्रायः मृगीके होते हैं ॥ ७ ॥

उत्फुल्लकमिति। समरते लौकिकी युक्तिरुक्ता न शास्त्रीया। लोके हि ग्राम्यनागरभेदादुत्तानायाः संवेशनद्वयं प्रतीतं पार्श्वे च संपुटकम्। तत्त्रितयमपि समपृष्ठं घटयतीति। यथा चोक्तम्—ग्राम्यमासीनकान्तोरुविन्यस्तप्रमदोरुकम्। नागरं च नरोरुस्थं स्त्रीपादाम्भोरुहद्वयम् ॥' त्रितयमिति त्र्यवयवं संवेशनम्। प्रायेणेत्येकान्तेन ॥ ७ ॥

रतिरहस्यादि ग्रन्थोंमें चित्त लेटकर, होनेवाले रमणके आसनोंमें, समानजोटमें, ग्राम्य और नागरिक इन दो आसनोंका प्रयोग हो ऐसा कहा है एवम् उच्चरतमें उत्फुल्लकादिक तीन आसनोंका प्रयोग होता है। सूत्रकारने समरतके आसन न वता, पाहिले विषम रतके आसन कह डाले। समरतके क्यों नहीं कहे, इसका उत्तर टीकाकार देते हैं कि समरत यानी वरावरकी जोटमें जो ग्राम्य

और नागरक आसन हैं यह शास्त्रीय युक्ति नहीं, किन्तु लोककी युक्ति कही है। लोकमें ग्राम्य और नागर भेदसे दो भेद उत्तान संवेशनके हैं। और पार्श्व शयनमें संपुटक है। इन तीनोंमें सम[1]पृष्ठ जघनको करके सहवास होता है। कहा भी है कि—"बैठे हुए प्यारेकी जाघोंपर जो चित्त लेटी हुई प्रमदा ऊरु रखे, उसे 'ग्राम्य' एवम् पुरुपकी जंघाओंपर प्यारीके दोनों चरण हों तो यह 'नागर' है।" त्रितयका तात्पर्य उत्फुल्लकादिक तीन एवम् प्रायका मतलब खास है। यानी मृगीके लिये खास तौरसे इन्हीं आसनोंका विधान है॥७॥

ग्राम्य और नागरक।

टीकाकार श्रीयशोधरजीने इन दोनों आसनोंका विचार किया है, इस कारण इनका विशद विचार करना उचित समझते हैं, क्योंकि यहींसे सब आसनोंका प्रारंभ होता है—

अनंगरंग—"उत्तानितायाः स्मरमन्दिरे यः स्थितस्तदूरुद्वयमुदगृहीत्वा।
संस्थाप्य बाह्यं कटितो रमेत कान्तस्तदा स्यात् किल नागराख्यः॥"

चित्त लेटी हुई स्त्रीके जघनके पास अपना जघन करके, बैठा हुआ पुरुष उसके दोनों ऊरुओंको ऊपरसे पकड़कर अपनी कमरके बाहिर करके रमण करे तो 'नागर' है। इसमें पुरुपको अपनी जाघोंपर स्त्रीकी जाघोंके रखनेका खुला विधान नहीं है। रतिरहस्यने—इतनी बात अवश्य परिस्फुट कह दी है, कि "चित्त लेटी हुई स्त्रीके दोनों जाघोंको बैठा हुआ पुरुष अपनी जाघोंपर रखकर रमण करे तो ग्राम्य एवम् सारीबातें ये ही हों परन्तु स्त्रीके पैर पुरुषकी कमरके बाहिर हों तो नागर है।" नागरसर्वस्व तो—

"आरोपितं पादयुगेन चोर्वोः, नार्य्या यदा नागरकं प्रशस्तम्।
निपीडयेदूरुयुगेन मध्ये कान्तस्तदा ग्राम्यमुदीरितं हि॥"

स्त्रीके दोनों जाघोंके बीच, अपने दोनों पैरोंद्वारा ऊरु आरोपित किया जाय तो अच्छा नागरिक होता है। एवम् दोनों ऊरुओंसे मध्यमें पीडित करे तो ग्राम्य होता है। पंचसायकने इसे और ही ढंगसे कहा है कि—

"एवंविधायाः स्त्रिय एव जंघाम् कान्तः स्वजङ्घोपरि सन्निविश्य।
उद्भ्रम्य भूयः कटिमारमत्याः, स्यादेष बन्धः किल नागराख्यः॥"

चित्त लेटी हुई ही स्त्रीकी जाँघोंको पुरुष अपनी जाघोंपर रखकर रमण करे एवम् स्त्री अपनी कटिको ऊपर हिलाकर रमण करे तो यह 'नागर' बन्ध

---

१ मदन मंदिरको न घटाना और न बढाना जैसेका तैसा रखना 'समपृष्ठ' कहाता है।

होता है । सिद्धान्त—पुरुष स्त्रीके दोनों पैरोंके बीचमें बैठकर, उसकी जंघाओंको अपनी जंघाओंपर रख, अपने दोनों हाथोंको नायिकाकी पीठके पीछे या खवोंपर करके सहवास करे एवम् नायिका अपनी कटिको ऊपर उठा २ कर हिलाये या घुमाये तो ग्राम्य एवम् नायिकाकी दोनों जाघें पुरुषकी कटिके बाहिर निकल जायँ अर्थात् नायिका अपनी दोनों पैरोंसे नायककी जंघाओंको लिभेड़ ले तो 'नागरिक' हो जायगा ।

साहित्यमें प्राथमिक आसन ।

आज आसनविधान केवल दूसरे व्यवहारोंके लिये समझ रहे हैं यह उनकी भूल है, उन्हें समझना चाहिये कि इसका प्रत्येक पदार्थ साहित्यका प्राण है । उदाहृत श्लोकके देखनेसे पता चल जायगा कि कालिदासजी कामशास्त्रके प्रारम्भिक करणोंका किस रीतिसे प्रयोग कर रहे हैं कि—

"किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्,
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः ।
अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते
संवाहयामि चरणौ उत रागताम्रौ ॥" ३—२३

महाराज दुष्यन्त शकुन्तलासे कहते हैं कि आपकी सखियोंने परिताप शान्त करनेके लिये आपके हृदयपर जो शीतल कमलदल रखे थे वे तो आपके हृदयकी ऊष्मासे कुम्हिला चुके हैं, इस कारण यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं आपके परितापको शान्त करनेवाले शीतल, कमलिनीके पत्तोंके पंखे बनाकर वह हवा करूं, जो कमलिनियोंके पत्तोंसे हवाके साथ शीतल अम्बुकण टपकते जायँ । हे करभोरु! यदि मुझे आज्ञा दें तो पद्मताम्र दोनों चरणोंको अपनी गोदमें रखकर इस तरहसे दावूँ (मसलूं) कि जिसमें अणुमात्र भी कष्ट न हो । ये कालीदासके अक्षर हैं । कविनिबद्ध नायक महाराजा दुष्यन्त, शकुन्तलाके पैरोंको गोदमें रखकर सुखपूर्वक दाव देना चाहते हैं । यह ग्राम्य आसनकी बताई हुई विधि है । ये सुखपूर्वक दबानेसे यह बता रहे हैं कि मैं आपको कोई कष्ट न दूंगा ।

उत्फुल्लक ।

शिरो विनिपात्योर्ध्वं जघनमुत्फुल्लकम् ॥ ८ ॥

जघनके ऊपरके भागको नीचा करके, नीचेके भागको ऊंचे करनेका नाम 'उत्फुल्लक' है ॥ ८ ॥

शिर इति । जघनशिरोभागमधस्ताच्छय्यायां विनिपात्योत्तानमूर्ध्वं जघनं कुर्यादिति भेदमेवं रूपं पश्चाद्भागेनेत्यर्थः । यद्यपि तत्त्वतो भवति तथाप्यतिविस्तारणार्थमुपर्युपरि स्थितहस्तपृष्ठे त्रिकभागं विनिवेशयेत् । पादपार्श्वं च स्फिजौ बाह्यतः । एवं जघनस्योर्ध्वं विवृतत्वादुत्फल्लमिवोत्फुल्लकम् ॥ ८ ॥

शय्यापर जघनके शिरोभागको यानी वस्तीकी तरफमें नीचा करके बाकीको ऊंचा कर दे, इसी बातको श्रीयशोधरजी कहते हैं कि जो इस प्रकारका भेद होता है वह पीछेके भागसे होता है, यानी इस शिरोभागको नीचा करके फिर जघनको ऊपर करनेसे वह खिल जाता है । यद्यपि वह अपने आप ही विकसित हो जाता है तो भी गुप्त अंगको और भी अधिक चोड़ानेके लिये कमरके नीचे रखे हुए हाथोंपर ऊपर २ कमरको रख दे । कूले और पैरोंकी बगलें बाहिर रहनी चाहियें, यानी इनसे दुरे २ में ही कमरके नीचे हाथ रहने चाहियें, इनके नीचे नहीं । इस प्रकार जघनके ऊपरके भागके विस्तृत होनेसे मदनमंदिर उत्फुल्ल (खिले हुए) की तरह होनेसे वह ‘ उत्फुल्लक ’ है ॥ ८ ॥

इसीका दूसरोंका किया खुलासा ।

“ करयुग्मधृतत्रिकमूर्ध्वलसज्जघनं पतिहस्तनिविष्टकुचम् ।
स्फिग्बिम्बबहिर्धृतपार्ष्णियुगं ह्युत्फुल्लकमुक्तमिदं करणम् ॥ ”

स्त्रीने अपनी दोनों हथेलियाँ कमरपर बीचमें लगा रखी हों, जिससे जघन कुछ ऊपर हो गया हो, दोनों एडियां कमरसे बाहिर धर रखी हों एवं पतिके हाथ स्त्रीके सीनेपर हों तो ‘उत्फुल्लक’ आसन होता है। यह कोकजी कहते हैं । शास्त्रीजीने हथेलीकी जगह छोटे गोल तकिया रखनेके लिये कहते हैं । सिद्धान्त—स्त्री कमरकी रीड़के नीचे हथेली या छोटी तकिया रखे, चित्त लेटी रहती है तथा पुरुष उसके साथ नागरिककी रीतिसे बैठकर अपने दोनों हाथोंको उसके दोनों उरोजोंपर रखता है। स्त्रीके दोनों पैरोंकी एड़ियां पुरुषके कूलेंके बाहिर निकली रहती हैं उनमें कटिको उरझाती नहीं, क्योंकि इसके करनेसे यंत्रकें संकुचित होनेका भय है। इसमें नायिका अपनी जाघोंको नागरिक आसनकी तरह पुरुषकी जाघोंपर रखती है, एड़ी भूमिमें रहती हैं ।

यन्त्रयोगमें सरकना ।

तत्रापसारं दद्यात् ॥ ९ ॥

इस उत्फुल्लक आसनमें सरकना चाहिये ॥ ९ ॥

तत्रेत्युत्फुल्लके । अपसारं दद्यादिति । नायकेन यन्त्रेण संयोज्यमाना कटिभागेनापसरेत् । नायको वा शनैः शनैः संयोज्यापसरेत् । यावत्सार्धं संबाधता न भवति । सहसोपसृतताया हि पीडा । नायकस्य च लिङ्गचर्मोद्वर्तनम् । यदवपाटिकेति वैद्यैरुच्यते ॥ ९ ॥

जब नायकसे यंत्रसंयोग करती हुई नायिका कमरसे पीछे सरके तो नायक भी यंत्रसे यंत्र लगा धीरे २ पीछे सरकता जाय, जबतक कि स्त्रीके यंत्रमें उसका आधा साधन न हो जाय, एकदम होनेमें नायिकाको कष्ट होता है एवम् पुरुषकी इन्द्रियकी चर्म भी उलट जाती है जिसे कि वैद्य 'अवपाटिका' कहते हैं ॥ ९ ॥

अवपाटिका और योनिरोगोंका कारण ।

" अल्पीयःखां यदा हर्षात् बलाद् गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥
मर्दनात् पीडनाद् वापि शुक्रवेगविघाततः ।
यस्यावपाटयते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ "

जिसके यंत्रका छिद्र छोटा हो, ऐसी स्त्रीसे बलपूर्वक या प्रसन्नताके साथ ही मैथुन (सहवास) करनेसे अथवा हाथकी चोट लग जानेसे अथवा मीड़नेसे अथवा दाबनेसे या शुक्रपातके वेगके रोकनेसे उसकी इन्द्रियकी चाम फट जाती है तो उसे अवपाटिका कहते हैं । यदि सूत्रके विधानके अनुसार किया जाय तो ऐसा न हो; यह तो एकदम धक्का मारनेसे होता है । पुरुषके ही रोग होकर रह जाय, यह बात नहीं है, किन्तु बालिका स्त्रीकी भी योनि भी लटक आती है । यह भावप्रकाशमें बताया है कि–' महामेढ्रगृहीताया बालायास्त्वण्डिनी भवेत् ' योनिका छिद्र तो छोटा हो एवम् उससे बड़े और मोटे साधनवाला पुरुष सहवास करे तो उसकी योनि अण्डकोशकी तरह नीचे लटक आती है। चरकने शरीरस्थानके आठवें अध्यायमें अतिबालाके साथ सहवास करनेका निषेध किया है । इस बातको २०३ पृष्ठमें दिखा चुके हैं । इसको भयंकर योनिरोगोंका कारण माना है । यह स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये हानिकारक है। न जाने भगवान् इस पशुताको कब मिटायेगा । सभी शास्त्रकार इस पशुताके विरुद्ध हैं । मेरा भी इसकी टीका करनेका यही उद्देश है कि सभ्य कहलानेवाला संसार जो छिपे छिपे पशुताकी ओर झुक रहा है वह मनुष्योंके पथपर आ जाय । अतिबालाएँ भी देखादेखी या किसीके बह-

कानेमें आकर कुछ कर तो बैठती हैं पर इसका उन्हें क्या नतीजा मिलता है इसपर उनकी दृष्टि नहीं जाती । सुश्रुत, उत्तरतंत्र अध्याय ३८ में कहा है कि—" प्रवृद्धलिङ्गं पुरुषं यात्यर्थमुपसेवते ।

रूक्षदुर्बलबालायास्तस्या वायुः प्रकुप्यति ॥ "

जो स्त्री बालक हो अथवा बालक न हो तो रूखी व दुर्बल हो, वह स्थूल और बड़े बड़े पुरुषके साथ अत्यन्त सहवास करे तो उसका वायु कुपित होकर योनिमें प्राप्त होता है, जिससे २० तरहके योनिरोग हो जाते हैं । आजकी अधिकांश स्त्रियाँ योनिरोगसे पीडित देखी जाती हैं, यदि विचार करके देखा जाय तो अन्य कारणोंके साथ एक यह भी कारण है । प्रथम सहवासके तो अवपाटिकाके कितने ही रोगियोंकी कहानी सुननेमें आती है । इस कारण दोनोंको इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिये ।

विजृम्भित ।

अनीचे सक्थिनी तिर्यगवसज्य प्रतीच्छेदिति विजृम्भितकम् ॥ १० ॥

स्त्री ऊपर उठी हुई जाघोंको टेढ़ा करके दे तो यह ' विजृम्भितक ' कहा जाता है. ॥ १० ॥

अनीचे इति । सक्थिनी ऊरू तिर्यगवसज्येति तिरश्चीने कृत्वा । तत्रापि शय्यायां पादयोरुत्तानविन्यासादपि तिरश्चीने भवतः । किं तु नीचैरित्याह—अनीचेति । प्रतीच्छेन्नायकः । जृम्भितमिव सममनुकार्यम् ॥ १० ॥

ऊपर हुए ऊरुओंको टेढ़ा करके । इसमें भी शय्यापर पैरोंको ऊपर फैलानेसे भी टेढ़े हो जाते हैं तो क्या नीचे टेढ़े करे ? इसका उत्तर दिया है कि नीचे टेढ़े न करे । इस प्रकार यंत्रमें यंत्र दे दे । यह झमांई लेती हुई की तरह होता है, इस कारण इसे ' जृम्भित ' कहते हैं ॥ १० ॥

इसका स्पष्टीकरण ।

" यदि तिर्य्यगुदञ्चितमूरुयुगं ददधी रमते रमणी रमणम् ।
विहितापसृतिर्विधृतोरुभगा भुवि जृम्भितमुक्तमिदं करणम् ॥"

कमरकी रीढके नीचे हथेली या तकीया रखकर, जघनको ऊपर करके, जाघोंको टेढा करके, उत्फुल्लककी तरह पुरुषकी कटिके बाहिर रखकर, रमण करे एवम् पुरुषके दोनों हाथ स्त्रीके उरोजोंपर हों, तो ' जृम्भित ' आसन

कहलाता है । सूत्रने और रतिरहस्यने जो ऊपर उठे उरुओंका टेढ़ापना कहा है यही विधान पूर्वके आसनसे अधिक है। स्त्रीको कष्टसे बचनेके लिये पीछे सरकना तथा सहसा न करना इस बातको भी रतिरहस्यने कह दिया है।

इन्द्राणिक ।

पार्श्वयोः सममूरू विन्यस्य पार्श्वयोर्जानुनी निदध्यादित्यभ्यासयोगादिन्द्राणी ॥ ११ ॥

बराबर मिली हुई अपनी दोनों जाघोंको अपनी बगलोंमें लाकर, नायककी बगलोंमें घोंटुओंको स्थापित कर दे तो, इसे 'इन्द्राणी' कहते हैं, यह अभ्याससे हो सकता है ॥ ११ ॥

विन्यस्य पार्श्वयोरिति। जंघासंश्लिष्टावूरू पार्श्वयोर्जानुनी निदध्यात् । कक्षाबहिर्भागयोरित्यर्थः । एवं च बाहुमूलाभ्यामवष्टभ्य गृहीतत्वात्पूर्वस्माद्विततरं भवति । अभ्यासयोगादिति—सहसा निष्पादयितुमशक्यत्वादस्याः । इन्द्राणीति—शचीप्रोक्तत्वादन्वर्थसंज्ञया व्यपदेशः । तत्राप्यपसारं दद्यादिति ॥ ११ ॥

चिपटी हुई जाघोंवाले ऊरुओंको अपनी बगलोंमें करके पुरुषकी कांखोंके बाहिरके भागोंमें घोंटू स्थापित कर दे । इस प्रकार करनेसे बाहोंके मूलसे थामकर, ग्रहण करनेके कारण जघन पहिलेसे भी अधिक फैल जाता है, इसे 'इन्द्राणी' कहते हैं । यह अभ्याससे किया जा सकता है। इसे इन्द्राणीने कहा था, इस कारण इसका नाम 'इन्द्राणी' रखा गया है । इसमें कमरके बल पीछे सरकना चाहिये ॥ ११ ॥

सप्रमाण विवेचन ।

अन्य करणोंमेंसे इसका निरूपण पाण्डित्यपूर्ण किया है, इस कारण इसका विशद निरूपण करते हैं, नागरसर्वस्वके अट्ठाईसवें परिच्छेदमें लिखा है कि—

"स्त्रियः स्वपार्श्वद्वितयार्पितोरोरिन्द्राण्यपि स्यात् प्रियजानुयोगात् ॥"

इसकी जगज्जोतिर्मल्लने जो संस्कृतटीका लिखी है उसको भी लिखते हैं—स्वपार्श्वद्वितयार्पितोरोः—स्वस्य पार्श्वं स्वपार्श्वम्, स्वपार्श्वद्वितये अर्पितः ऊरू (रुः) यया । प्रियजानुयोगात्—स्वामिजानुयोगात्, इन्द्राणी नाम स्यात्।

इसीपर टिप्पणी करते हुए तनुसुखरामजीने जो लिखा है उसे भी यहीं उद्धृत करते हैं कि—

"स्वस्य प्रियस्य, पार्श्वयोः—कक्षाबहिर्भागयोः, ऊरू जङ्घासंश्लिष्टौ ।
इन्द्राणीति—शचीप्रोक्तत्वादन्वर्थसंज्ञया व्यपदेशः ॥"

इस टीका और टिप्पणी दोनोंको मिलाकर, पं०श्रीधरझा काव्यतीर्थने हिन्दी की है कि–"पुरुषके बगलमें यदि स्त्री, अपनी दोनों जंघांओंको अर्पित कर दे और पुरुष भी उसकी बगलमें अपनी जंघाओंको अर्पित कर दे तो 'इन्द्राणी' नामक करण होता है "। इनकी हिन्दी व टीका टिप्पणियोंपर ध्यान देते हैं तो यही प्रतीत होता है कि इस अर्थमें 'द्वितय' और 'प्रियजानु' शब्दपर कम विचार किया गया है। रतिरहस्यमें श्रीकोक महाराजने इस करणको लिखा है एवम् कामशास्त्रके ग्रन्थोंके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीभागरिथस्वामी आयुर्वेदाचार्य्यने हिन्दी की है उनको यहां दिखाते हैं कि–

" निजमूरुयुगं समम्मादधती प्रियजानुनि योजयाति प्रमदा।
यदि पार्श्वत एव चिराभ्यसनादिन्द्राणिकमुक्तमिदं करणम् ॥ "

यदि स्त्री अपनी दोनों जांघोंको जोड़कर, प्यारे स्वामीकी एक जांघपर रख दिया जाय और वह देरतक एक ओरसे ही रतियोग किया जावे तो उसको 'इन्द्राणिक' आसन कहते हैं। रतिरहस्यपर दृष्टि डालनेसे पता चलता है कि यह कामसूत्रका श्लोकोंमें अनुवाद है, तब इसका अर्थ और कामसूत्रके इन्द्राणी आसनके बतानेवाले सूत्रका एक ही आशय होना चाहिये। सूत्रार्थको दिखानेके लिये ही रतिरहस्यके संस्कृतटीकाकार कांचीनाथने एक श्लोक लिखा है कि—" संश्लिष्टजंघे नार्यूरू यथाकालं स्वपार्श्वयोः।
कृत्वाऽभ्यासेन चेन्द्राणी कक्षावस्थितजानुनी ॥ "

यथासमय स्त्री मिली हुई जांघोंवाले ऊरुओंको अपनी बगलमें करके, जानुओंको पतिकी कांखोंके बाहिर कर दे तो 'इन्द्राणी' होता है, यह अभ्याससे हो सकता है ॥

इस श्लोकमें कामसूत्रका अनुवाद है। रतिरहस्यमें जो 'प्रियजानुनि' यह पाठ दिखाया है, यदि इसके स्थानमें 'प्रियजानुनी' होता तो अत्यन्त ठीक होता ॥ सिद्धान्त–चित्त लेटी हुई स्त्री अपने दोनों पैरोंको बराबर करके अपनी दोनों बगलोंमें अपने हाथके कोहुनीके ऊपरी भागके सहारे कर दे, बैठा हुआ पति, स्त्रीकी तरफ झुककर इस तरह सहवास करे, ताकि स्त्रीके दोनों घोंटू पुरुषकी दोनों बगलोंसे लग जाय। यह आसन परिश्रमका कार्य्य है, एकदम नहीं किया जा सकता। यही सूत्रकारका निरूपण है। इसमें जंघा चिपटे नहीं रखे जा सकते। य तीनों आसन छोटे मदनमंदिरवालियोंके लिये हैं। पंचसायकमें कहा है कि–

" प्रसारितोरुद्वयमध्ययोगाद्, गाढाऽपि नारी श्लथतामुपैति "

जांघोंके फैलानेसे छोटे मदनमंदिरवाली स्त्रीका भी ' मदनमंदिर ' चौड़ जाता है । एवम्–

" संलग्नजानुद्वयबन्धयुक्ता, श्लथाऽपि सङ्कोचमलं प्रयाति "

जाघोंको भींचने या आपसमें चिपटानेसे बड़ा मदनमंदिर भी संकुचित हो जाता है । इस कारण जहां सूत्रमें ' सममूरू ' ये शब्द पड़े हैं उनका ' बराबर करके ' यही अर्थ ठीक है । इसी कारण आजकलके कोकशास्त्रियोंने वड़े चक्करसे प्रथम समागममें पैर चोड़ाने व ढीले होनेका स्त्रियोंको उपदेश दिया है।

अश्व सँभालना ।

तयोच्चतररतस्यापि परिग्रहः ॥ १२ ॥

इस आसनसे मृगी, अश्वको भी आनन्दके साथ संभाल सकती है ॥१२॥

तयेतीन्द्राण्या । उच्चतररतस्यापीति । न केवलमिन्द्राण्यामुं वृषं प्रतिगृह्णीयात्, अश्वमपि । तस्या धृतरागत्वाद्विवृतरागहेतुत्वात् । तत उच्चतररतेऽति विशालयन्तीवेति सिद्धं भवति । तदुत्फुल्लकविजृम्भितकाभ्यां तु वृषमेव वडवापि ताभ्यामेवाश्वमित्यर्थोक्तम् । पूर्वमतिदिष्टत्वात् ॥ १२ ॥

यह बात नहीं है, कि इन्द्राणिक करणसे मृगी वृषको ही संभाल सके, किन्तु उच्चतररतमें अश्वको भी सभाल सकती है, क्योंकि यह करण रागके वढनेपर होता है एवम् यह मदनमंदिरको विशाल बना देता है । इससे यह वात सिद्ध होती है, कि उच्चतररतमें वह अपने जघनको, अत्यन्त फैला देती है इससे यह सिद्ध हो गया यह मृगीका अश्वके सहवासका आसन है, किन्तु उसे वृषके लिये इसकी आवश्यकता नहीं । उसे तो उत्फुल्लक और विजृम्भितसे ही सँभाल सकती है । बडवा–भी इन्हीं दोनों आसनोंसे अश्वको ले, यह भी इसका हीं तात्पर्य्य है । चौथे सूत्रमें जैसे पूर्वके अनुसार वडवाकी व्यवस्थाकी है, उसी तरह यहां भी यह वडवाकी व्यवस्था कर दी है ॥ १२ ॥

नीच और नीचतररतकी व्यवस्था ।

संपुटेन प्रतिग्रहो नीचरते ॥ १३ ॥

नीचरतमें संपुटसे लेना चाहिये ॥ १३ ॥

संपुटेनेति–हस्तिनी संपुटेन वक्ष्यमाणलक्षणेन वृषं प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः॥ १३

सोलहवें सूत्रसे संपुटसे बतायँगे, हस्तिनी उससे वृषको ले सकती है ॥१३॥

एतेन नीचतररतेऽपि हस्तिन्याः ॥ १४ ॥

नीचतर रतमें भी हस्तिनी इससे ले एवं इस रतमें वडवा भी इसी आसनसे शशको ले सकती है ॥ १४ ॥

नीचतररतेऽपीति—शशमपि गृह्णीयादित्यर्थः । तस्य संवृतहेतुत्वाभावेन च प्रतिगृहीते पीडितकादि प्रयोक्तव्यम् । तेनाप्यपहासयन्तीवेति सिद्धम् । वडवापि संपुटकेन शशं प्रतिगृह्णीयादित्यर्थोक्तम् । पूर्वमतिदिष्टत्वात् ॥ १४ ॥

हस्तिनी शशको भी सँभाले, इस शशको सँभालतीवार तो संपुटकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु लेनेके बाद ही पीडितक आदिकोंका प्रयोग कर देना चाहिये । इसके करनेसे दूसरे सूत्रमें जो यह कह चुके हैं, कि–'हस्तिनी जघनको छोटा करके ही सहवास करती है, यह बात सिद्ध होती है । इस कथनसे यह बात तो स्वतः ही सिद्ध है कि वडवा भी संपुटकसे ही शशको सँभाले, क्योंकि नीचरतमें हस्तिनीकी एवम् उच्चरतमें मृगीकी कृत्याविधि पीछे बता चुके हैं ॥ १४ ॥

नीच एवं नीचतरके आसन ।

संपुटकं पीडितकं वेष्टितकं वाडवकमिति ॥ १५ ॥

नीचे और नीचतररतमें संपुटक, पीडितक, वेष्टितक और वाडवक, ये चार उपवेशन होते हैं ॥

बीचमें देकर भींचना संपुटक, पीडनसे पीडितक, लपेटनेसे वेष्टितक एवम् वडवाकी तरह करनेसे वाडवक होता है ॥ १५ ॥

उत्तान और पार्श्वरति ।

अबतकके जो आसन बताये गये थे वे सब उत्तान आसन थे किन्तु अब उन आसनोंको बताते हैं जो कि उत्तान और पार्श्व दोनोंमें वर्ते जाते हैं ।

संपुटक ।

संपुटकयुक्तिमाह—

पीछेके १३ वें सूत्रमें हस्तिनी और वडवाके लिये संपुटक आसन बताया है, इस समय संपुटक-आसन लगानेकी विधि बताते हैं कि—

ऋजुप्रसारितावुभावप्युभयोश्चरणाविति संपुटः ॥ १६ ॥

---

१ हथिनीके विषयमें जो अतिदेश कहा है वह यहांसे प्रारंभ होता है ।

स्त्री पुरुष दोनोंके दोनों पैर सीधे फैले हुए हों तो यह 'संपुटक' आसन होता है ॥ १६ ॥

ऋज्विति प्रगुणं प्रसारितौ यथा यन्त्रयोगः स्यात् । उभयोरिति स्त्रीपुंसयोः। संपुट इति । संपुट इवोभयोरेकत्र संश्लेषात् ।

दोनोंके पैर इसप्रकार सीधे फैले हों जिससे यंत्रयोगमें कोई बाधा उपस्थित न हो तो, इसे 'संपुटक' कहते हैं । इसके इस नामके रखनेका कारण यह है, कि संपुटकी तरह दोनोंका एक ही जगह श्लेष होता है ॥ १६ ॥

संपुटके भेद।

स द्विविधः—पार्श्वसंपुट उत्तानसंपुटश्च । तथा कर्मयोगात् ॥ १७ ॥

संपुट दो तरहका है-उत्तानसंपुट और पार्श्वसंपुट, क्योंकि दोनों ही तरह कार्य्य किया जा सकता है ॥ १७ ॥

तथा कर्मयोगादिति—तेन प्रकारेण रतानुष्ठानयोगादित्यर्थः । तत्र पार्श्वसंविष्टयोः पार्श्वसंपुटः । उत्तानसंपुटयोरुपरिर्युपसंविष्टस्यैकोऽपि विपर्ययेण द्वितीय (इति द्वितीयः) उत्तानसंपुटकोऽन्यतरेण व्यपदिश्यते । कथमत्र यन्त्रयोग इति नाशङ्कनीयम् । सुकरत्वात् ।

सीधी चित्त लेटी हुई स्त्रीसे सीधा लगकर तथा एक दूसरेकी बगलमें लेटकर सहवास किया जा सकता है, इस कारण इसके दो भेद हैं । उत्तान[1] संपुटमें केवल स्त्री ही चित्त सीधी लेटती है और पुरुष उसपर यंत्रयोग करके

---

१ स्मरदीपिकामें उत्तानसंपुटका लक्षण लिखा है कि-

" स्त्रीपादौ सरलीकृत्य, भूमौ निक्षिप्तजानुकः ।
स्तनलग्नो रमेत्कामी बन्धः सम्पुटको मतः ॥ "

पुरुष स्त्रीके दोनों पैरोंको सीधा करके, जानुओंको भूमिसे लगा, सीनेसे सीना भिड़ाकर रमण करे तो उत्तान संपुट होता है ॥ संपुटमें दोनोंके दोनों पैर सीधे फैले रहने चाहियें यह कामसूत्रका मत है । **सिद्धांत**-स्त्री दोनों पैरोंको आपसमें मिलाकर चित्त लेट जाय । पुरुष उसकी जाघों पर बैठ, जघनसे जघन भिड़ा यंत्रयोग करके स्त्रीके सीनेको अपने सीनेसे जोरसे दबाये एवम् एकप्रकार लगकर रंगरेली करे जिस प्रकार कि सखेसे सखा चिपट जाता है । अपने दोनों हाथोंको उसके गलेमें डाल दे एवम् अपने हाथोंसे पुरुषकी कमरको पकड़े तो यह आसन उत्तानसंपुट होता है ॥

सीधा ओंधा चिपटता है, किन्तु पार्श्वसंपुटमें दोनों ही एक दूसरेकी बगलमें सम्मुख होकर संयुक्त होते हैं । उत्तानसंपुट किये हुए स्त्री पुरुष, दोनोंमेंसे यंत्रयोगमें ऊपर अपूर्ण रहे एवम् ऊपर आसन किये हुएके फिर जानेसे यह दूसरा उत्तानसंपुट हो जाता है, तब उसे दूसरे नामसे बोलते हुए "उत्तान-संपुटक' कहते हैं । इसमें यंत्र योग कैसे होगा, इस बातकी तो शंका ही न करनी चाहिये, क्योंकि वह तो बहुत सरल बात है ॥

पार्श्वसंपुट ।

पार्श्वसंपुटके तु नायकस्य कटिरुपधानिकायां तिष्ठेत्, नायिकायाश्च शयनीये । अन्यथा शयनीयस्थयोर्द्वयोः कटिभागयोर्विश्लेषाद्यन्त्रं कदाचिद्विघटेत ।

पार्श्वसंपुटमें पुरुषकी कटि बगलके तकियाके सहारे एवम् स्त्रीकी कटि शय्यापर ही रहेगी । क्योंकि दोनोंकी ही कटियाँ यदि शय्यापर ही रहेंगी;

---

१ उत्तानसंपुटकी रीतिस सहवास करते हुए स्त्री पुरुषोंमेंसे ऊपरका पुरुष स्त्रीके शिरकी तरफ पैर एवम् पैरोंकी तरफ शिर कर ले तो पूरा संपुट न होनेके कारण, इसे ' संपुटक ' कहते हैं। विपरीत रतिमें भी इसका प्रयोग हो सकता है ॥

अन्य आचार्य्य ।

२ नागरसर्वस्वने जो यह कहा हैं कि—

'द्वयोस्तिरश्चोः सरलीकृताङ्गयोः, विघट्टनं संपुटकं तदुक्तम् । '

इसकी जगज्ज्योतिर्मल्लने टीका की हैं कि—'शरीरको सीधा किये हुए टेढे हुए जो स्त्री पुरुषोंका विघट्टन है, उसका नाम 'संपुट' है । इसको पं. तनसुखरामजी शास्त्रीने पार्श्वसंपुटका लक्षण बताया है, उनका इसे पार्श्वसंपुट कहना सर्वथा ही उचित है, क्योंकि इसमें शरीरका तिर्य्यक्करण है, अतएव अनंगरंगने इसे तिर्य्यग् होकर रति करनेके आसनोंमें रखा है, कि—

"पार्श्वप्रसुप्तः प्रमदोपरिस्थः, कान्तां समालिङ्ग्य रतिं करोति ।
यत्र प्रदिष्टो मुनिभिः पुराणैः, बन्धस्तदा संपुटनामधेयः ।"

स्त्रीकी बगलमें सोताहुआ उससे चिपटकर, आलिंगन करके रति करता है तो संपुट है । पंचसायक तो तिर्य्यग् रतिको ही पार्श्वबन्धके नामसे कहकर पार्श्वसंपुटका लक्षण करता है कि—

"ऊर्वोः पतिर्मध्यगतो युवत्याः, पार्श्वस्थितायाः परिरभ्य देहम् ।
यूनोस्त्रिकालोलनतो रसज्ञ—रत्यादतः सम्पुटनामधेयः ॥"

पार्श्वस्थित युवतीके ऊरुओंके बीचमें हुआ पति उसकी देहका आलिंगन करे एवम् दोनों कमर हलाकर सहवास करें तो 'संपुट' है ॥ सिद्धान्त—स्त्री पुरुष दोनों पलिंगपर लेटे हों एवम् स्त्री, पुरुषके दाहिने बाजू लेटी हो । पुरुष स्त्रीकी तरफ तथा स्त्री पुरुषकी तरफ करवट—

सहारा न रहेगा तो कंडूतिके प्रतीकारके समय काटि भागोंके अलग २ होने-पर यंत्र अलग २ भी हो सकते हैं।

कात्यायनका संपुट।

कात्यायनस्तु संपुटकमन्यथा प्राह—'आकुञ्चितस्तनौ नार्यः (१) संक्रान्त-नृकटिः पुनः । त्र्यस्रस्थनरयोगाच्चु संमुखः संपुटः स्मृतः ॥' अत्राह—संहतो-रुत्वाज्जघनावह्रासो न संभवति । अतो न नीचरते हस्तिन्याः । समरते तु स्यात् । यथास्थितोरुकतयास्य लौकिकत्वात् ॥ १७ ॥

कात्यायनजी तो संपुटको कुछ दूसरी ही रीतिसे कहते हैं, कि–"स्त्रीके स्तन खिंचे या भिंचे या दबे हुए हों । इस संपुटसे मनुष्यकी काटि आक्रान्त हो, मनुष्य उसके जघनके पास ऊरुओंपर बैठकर, यंत्रयोग करता हो, सम्मुख होकर, तो संपुट कहाता है।" इसपर टीकाकार कहते हैं, कि–'ऊरुओंके प्रकृ-तिस्थ इकट्ठा रहनेके कारण जघन छोटा नहीं किया जा सकता इस कारण छोटे साधनके पुरुषोंके साथ बड़े २ मदनमंदिरवालीं हास्तिनी आदि नायिकाओंको इसका प्रयोग न करना चाहिये । समरतमें तो इसका प्रयोग किया जा सकता है, क्योंकि इसमें मदनमंदिर जैसेका जैसा और जाँघें भी उसी तरह रहती हैं, इस कारण यह एक प्रकारका लौकिक यानी ग्राम्य आसन होता है ॥ १७ ॥

नींद लेनेकी विधि ।

पार्श्वेण तु शयानो दक्षिणेन नारीमधिशयीतेति सार्व-त्रिकमेतत ॥ १८ ॥

नींद लेतीवार, आप स्त्रीकी दाहिनी तरफ हो एवम् अपनी बायीं लँग स्त्री हो, क्योंकि सब जगह यही सोनेका ढंग है ॥ १८ ॥

पार्श्वेण तु शयान इति–निद्रां गन्तुम् । दक्षिणेन नारीमिति एनपायोगे द्वितीया । नार्या दक्षिणे भागे आत्मनो वामेन पार्श्वेणासनपरिणता शयनीयम-धिशयीतेत्यर्थः । सार्वत्रिकमिति । सर्वास्वेव मृग्यादिनायिकास्वयं निद्राकाले भवति । अविरोधात् । रतकाले तु तद्विपरीतो हस्तिन्याः येन संकोचहेतुत्वात् । वामहस्तेन तत्र गुह्यस्पर्शनादौ शिष्टानुज्ञातत्वात ॥ १८ ॥

–ले, पर पुरुष अपनी कटिको तकियाके सहारे रखे तथा स्त्रीकी कटि तकियापर ही रहे इस तरहका संयोग पार्श्वसंपुट कहाता है ।

यदि नींद लेनेकी इच्छा हो तो आप स्त्रीकी दाहिनी बगलमें सोये, इस तरह स्त्री अपनी बाईं तरफ हो जायगी तभी नींद लेना चाहिये । मृगी आदिक सभी नायिकाओंके साथ सोनेकी यही रीति है, क्योंकि सभी ऐसे ही सोते हैं कहीं भी इसका विरोध नहीं है, किन्तु रतिकालमें तो हस्तिनीका विपरीत शयन होता है, क्योंकि इससे उसका जघन कुछ सिकुड जाता है, एवम् शिष्ट पुरुषोंने हस्तिनीके मदनमंदिरको बायें हाथसे छूनेकी आज्ञा दी है १८

इसीपर साहित्य ।

कामसूत्रने शयनकी विधि बताई है उसे महाकवि श्रीहर्षजीने कितने सुन्दर तरीकेसे रखा है, इस बातको यहीं दिखाये देते हैं कि—

" मिश्रितोरु मिलिताधरं मिथः स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम् ।
तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटे पीडनां विदधतौ निदद्रतुः ॥ "

दमयन्ती नलकी बाँयी एवम् नल दमयन्तीकी दाँयी तरफ आमनेसामने होकर लेट रहे । उनका लेटना इसी तरह नहीं था, किन्तु पार्श्वसंपुटकी जो प्रक्रिया है, उसी रीतिसे शरीरोंको लगाकर नींदँ ले रहे थे । अधरपल्लवसे अधर और जांघोंसे जाँघें मिली हुई थीं । उनके सोनेका परस्पर मिलन, इस प्रकारका था कि सोते २ जिस समय होश आये दूसरा व्यापार किया जा सके, इस तरह एक दूसरेको दबाये दबाये ही सो गये। इसके सिवा रतिश्रमसे हारी हुई चंदवदनियोंके नींद लेनेके विषयमें दूसरे २ कवियोंने भी कल्पनाएँ की हैं, उनमेंसे एकको यहाँ दिखाते हैं कि—

" उत्तानामुपधाय बाहुलतिकामेकामपाङ्गश्रिता-
मन्यामप्यलसां निधाय विपुलाभोगे नितम्बस्थले ।
नीवीं किञ्चिदवश्लथां विदधती निश्वासलोलालका
तल्पोत्पीडनतिर्यगुन्नतकुचं निद्राति शातोदरी ॥ "

पतिकी तरह करवटसे लेटतीवार, एक बाहुलताको सीधा करके एक कनुपुटीके नीचे लगा लिया तथा एक अलसौंहे हाथको बड़े मोटे नितम्बपर रख लिया । नीवी कुछ ढीली हो गई थी । मुखसे जो थकावटके श्वास निकलते थे उनकी बजहसे बाल चलते थे । तल्पके उत्पीडनके कारण उठे हुए कुच कुछ टेढ़े हो गये थे । वह कृशोदरी इस प्रकार नींद ले रही थी ।

पीडितक ।

संपुटकप्रयुक्तयन्त्रेणैव दृढमूरू पीडयेदिति पीडितकम् ॥ १९ ॥

संपुटकमें ही प्रयुक्त किय यंत्रसे यदि ऊरुओंको खूब पीडित किया जाय तो ' पीडितक ' कहा जाता है ॥ १९ ॥

संपुटकप्रयुक्तयन्त्रेणेति । उत्तानसंपुटे पार्श्वसंपुटे वा । तत्प्रयुक्तयन्त्रं तदेव विश्लिष्येत । नायिकाया दृढस्वरूपत्वात् । पीडयेदिति पीडनात्संपुटकमेव पीडितमिति संवृताकारं भवतीति ॥ १९ ॥

च हे उत्तानसंपुट हो, चाहे पार्श्वसंपुट हो, इस संपुटमें प्रयोगमें लाया गया यंत्र ही नायिकाके कड़ी होनेसे अलग हो जाय, इस कारण वह लगे हुए यंत्रसे ही उसे खूब भींचे तो इस भींचनेसे संपुट ही पीडित यानी जघन और भी छोटा हो जाता ह ॥ १९ ॥

अन्य आचार्य्य ।

संपुट दो प्रकारका है इस कारण इसका पीडित भी दो तरहका होगा, क्योंकि उत्तान और पार्श्व दोनोंमें ही पीडन किया जा सकता है । यही कारण है, कि ना० स० के संस्कृतटिप्पणीकारने इसके भी दो भेद दिखाये हैं । नागर सर्वस्वने लक्षण किया है कि-" यदोरुयुग्मेन निपीडयेत् पतिं प्रिया तदा पीडितकं वदाहुः । " संपुटमें दोनों ऊरुओंसे प्यारी, पतिको पीडित करे तो ' पीडितक' है । रतिरहस्यने कहा है कि-' स च पीडितमूरुनिपीडनतः । ' वही संपुट ऊरुओंसे पीडित करनेसे ' पीडित ' होता ह । इसपर हिन्दी टीकाकारने लिखा है, कि-' संयोगके समय स्त्रीकी जाँघोंको दबाया जावे तो ' पीडितासन ' होता है । सं० टिप्पणीकार पं० तनसुखरामजी इस पीडनको पुरुषकर्तृक मानते हैं पर यह नागरसर्वस्वके भावके विपरीत है, क्योंकि वे प्रिया, पतिको दबाये यह कह रहे हैं । सिद्धान्त-उत्तान संपुटका पीडन चित्तरतिके आसन तथा पार्श्वसंपुटका पीडन तिरछे आसनोंमें सँभाला जाता है, स्त्रीके ऊरुओंके वीच, पतिका जो शरीर आ जाता है उसे वह दबाती है ।

वेष्टितक ।

ऊरू व्यत्यस्येदिति वेष्टितकम् ॥ २० ॥

जो संपुटमें वाँयेसे दायां एवम् दाँयेसे वाँया ऊरु लपेट ले तो इसे 'वेष्टितक' कहते हैं ॥ २० ॥

संपुटकयन्त्रेणेत्यर्थः । य उत्तानसंपुटके वामदक्षिणतो वा यद्दक्षिणवाम इति तदेव परस्परोरुवेष्टनाज्जघनं पूर्वस्मात्संवृततरं भवति । तत्र भावेन सिद्धत्वात् ॥ २० ॥

इससूत्रमें पूर्वसूत्रसे 'संपुटकयत्रंसे' यह अनुवृत्ति आती है, इसका यह अर्थ होता है कि, उत्तानसंपुटमें यंत्रसंयोग रखते हुए बाँयेसे दायाँ एवम् दाँयेसे बाँया ऊरु आपसमें एकदूसरेका लपेटें तो वही जघन आपसके ऊरुओंके लभेड़नेसे पहिलेसे भी अधिक सुकड़ जाता है, यह भावसे सिद्ध होता है ॥ २०॥

फलितार्थ।

रतिरहस्य-"परिवर्तितमूरुयुगे तु भवेत्, इदमेव हि वेष्टितनामधरम्।" पीडितासन ही दोनों ऊरुओंके परिवर्तित करनेपर हो तो उसीको वेष्टित कहते हैं। अनंगरंग-"कान्तोरुयुग्मं परिवर्तितं वै, निपीडय कामाकुलचित्त-वृत्तिः। रमेत भर्ता यदि वेष्टिताख्यम्..." कामसे आकुल हुई तबीयतवाला पति, प्यारीके बदले हुए दोनों ऊरुओंको पीडित करके रमण करे तो यह 'वेष्टित' कहाता है। नागरसर्वस्व-"जङ्घाद्वयेनैव नरस्य जङ्घे, स्त्री वेष्टयेद् वेष्टितकं प्रसिद्धम्।" स्त्री अपने दोनों ऊरुओंसे पुरुषकी जाँधको लभेड़कर दबाये तो 'वेष्टितक' होता है। सिद्धान्त-नागरसर्वस्वने पहिले संपुट कह-कर पीछे वेष्टित कहा है, इस कारण यह दोनों संपुटोंमें होता प्रतीत होता है। उत्तान संपुटके बाद होनेसे उत्तानरतिमें एवम् पार्श्वसंपुटके बाद होनेसे पार्श्वसे रति करनेके आसनोंमें यह आ जायगा।

वाडव।

वडवेव निष्ठुरमवगृह्णीयादिति वाडवकमाभ्यासिकम् २१॥

जैसे घोड़ी घोड़ाके साधनको दृढताके साथ भींच लेती है; जो स्त्री इस प्रकार भींचे तो इसे 'वाडव' कहते हैं। यह अभ्याससे सिद्ध होता है॥२१॥

निष्ठुरं निश्चलम्। अवगृह्णीयात् संबाधोष्ठपुटेन साधनमित्यर्थः। वाडवकं वडवाया इव। एतेन नीचतररतस्यापि परिग्रहः। इदं कर्माभ्यासिकम्। सहसा प्रयोगे प्रयोक्तुमशक्यत्वात् ॥ २१ ॥

जैसे घोड़ी घोड़ाके साधनको अपने मदनमंदिरके दोनों होठोंसे पकड़कर फिर नहीं छोड़ती, इस प्रकार जो पकड़कर नहीं छोड़े, इसे 'वाडव' कहते हैं। इससे हथिनी शशको भी प्रसन्न कर सकती है, पर यह काम है अभ्या-सका, क्योंकि इसे एकदम प्रयोगमें नहीं लाया जा सकता ॥ २१ ॥

इसकी पूरी विधि।

रतिरहस्यने इसे उत्तान आसनोंमें रखा है कि—'गृह्णाति भगोष्ठपुटेन यदि, ध्वजमस्फुरमित्यपि वाडवकम्।' पुरुषके साधनको अपने संबाधके दोनों

होठोंसे भींच ले कि शिथिल होनेपर भी न निकल सके तो ' वाडव ' आसन कहलाता है । यही अनंगरंगने किया है, पर नागरसर्वस्वने इसका तिरछे रतोंमें निरूपण किया है, कि–'मदनाकुंशको मदनमंदिरसे भींचना ' वाडव ' है ' पर कैसे भींचा जाय, इस बातको नहीं बताया है । मदनमंदिरके होठोंसे भींचा जाय, यह प्रतीत होता है । भींचनेकी रीति बताते हैं कि–गुदासे लेकर मदनमंदिरके द्वारके बीच रहनेवाली एक संकोचिनी नाडी है, जिसे अंग्रेजीमें ' कोन्स्ट्रीक्टर बेजिनी ' कहते हैं तथा हकीम उसे 'कवझ' कहकर बोलते हैं। सिद्धान्त–थकावट आजानेसे ध्वजके शिथिल होनेपर स्त्री इसतरह दबाकर अश्वके जैसा ' उत्तुंग ' बना देती है, इस कारण इसका नाम ' वाडव ' है । यह पुरुषको एकदम चैतन्य कर देनेका स्त्रीका अचूक उपाय है ॥

वाडवकी सहजाभ्यासिनी ।

तदान्ध्रीषु प्रायेण । इति संवेशनप्रकारा बाभ्रवीयाः॥२२॥

यह वाडव प्रायः आन्ध्रदेशकी युवतियोंमें देखा जाता है, ये वाभ्रव्यके कहे सुहवतके आसन पूरे हुए ॥ २२ ॥

आन्ध्रीषु प्रायेण दृश्यते । तासां यत्नपरत्वात् । तस्याभ्यासोपायश्च संप्रदायनिरूप्यः । ततोऽभ्यासाच्चन्निरपेक्षग्रहणमिति । बाभ्रवीया बाभ्रव्येण प्रोक्ताः सप्तैव संवेशनप्रकाराः ॥ २२ ॥

आंध्रदेशकी युवतियाँ इस आसनके लिये प्रयत्न करती हैं, इस कारण वे इसे सानन्द कर सकती हैं। इस आसनके अभ्यासका उपाय भी आप ही उनमें नहीं किया जाता किन्तु इसे बड़े अच्छे ढंगसे वे आपसमें बताती हैं, इस कारण अभ्याससे निरपेक्ष, आन्ध्रदेशकी युवतियोंका ग्रहण किया है । ये वाभ्रव्यमहर्षिके कहे सात ही सुहवतके आसन हैं ॥ २२ ॥

सौवर्णनाभके आसन ।

अनेन विकल्पवर्गस्य न्यूनतामाह—

बाभ्रवीयोंने जो आसन दिखाये हैं वे कम हैं, यह बात नीचेके आसन बतानेसे परिस्फुट हो जायगी, कि—

सौवर्णनाभास्तु ॥ २३ ॥

पांचालिकी चतुःषष्टिके उपदेशक महर्षि वाभ्रव्यने सुहवतके जो 'आसन' कहे हैं, उनसे आसन पूरे नहीं होते, इस कारण सुवर्णनाभके बताते हुए आसनोंको कहते हैं ॥ २३ ॥

सौवर्णनाभास्तु हस्तिन्या इति वर्तते । सुवर्णनाभेन प्रोक्ताः । अनेन द्वैविध्यमाह ॥ २३ ॥

ये आसन हस्तिनीके हैं, दूसरी नायिकापर प्रयुक्त नहीं होते हैं, इस प्रकार हस्तिनीके दो तरहके आसन हैं—कुछ तो बाभ्रव्यने बताये हैं तथा कुछ सुवर्णनाभके हैं ॥ २३ ॥

भुग्नक ।

उभावप्यूरू ऊर्ध्वाविति तद्भुग्नकम् ॥ २४ ॥

दोनों ही ऊरु ऊपर रहें तो उसे 'भुग्नक' कहते हैं ॥ २४ ॥

उत्ताना नायिका द्वावप्यूरू संश्लिष्टावूर्ध्वाविवावस्थापयेत् । नायकोऽपि जानूत्तरेण द्वाभ्यामाश्लिष्योपसर्पेत् । तद्भुग्नकमिति । ऊर्वोरूर्ध्वमनिःसृतत्वात् ॥ २४ ॥

चित्त लेटी हुई स्त्री दोनों जाँघोंको चिपटाकर ऊपर कर दे एवम् पुरुष भी घोंटूके ऊपरके भागसे उनका आलिंगन करके सहवास करे तो उसे 'भुग्नक' कहते हैं । क्योंकि इसमें स्त्रीकी जाँघें ऊपर निकली रहती हैं ॥ २४ ॥

जृम्भितक ।

चरणावूर्ध्वं नायकोऽस्या धारयेदिति जृम्भितकम् ॥ २५ ॥

यदि नायक, नायिकाके दोनों पैरोंको ऊपर रखकर धारण करे तो 'जृम्भितक' होता है ॥ २५ ॥

चरणावूर्ध्वमिति । नायिकाजानुसंधी स्कन्धयोर्विन्यस्य चरणावूर्ध्वं नायकेन धारितौ भवतः । इति जृम्भितकम् ॥ २९ ॥

नायक नायिकाके दोनों घोंटुओंकी सन्धिको अपने दोनों कन्धोंपर रख ले, जिससे कि उसके पैर ऊपर भी रहें तो इसे 'जृम्भितक' कहते हैं ॥ २५ ॥

दूसरोंके साथ एकवाक्यता ।

अनंगरंगमें इस आसनको समपादके नामसे कहा है, कि—

---

१ यह चित्तके आसनोंमें है, नागरसर्वस्वने—

"दधाति रामोरुयुगं कराभ्याम्, कान्तस्तदोद्भुग्नकमुच्यते तत ।"

स्त्रीकी दोनों जाघोंको पुरुष अपने हाथों द्वारा धारण करे तो उद्भुग्नक होता है ।

अनंगरंग–"विलासिनीसंहतमूरुयुग्मम्, कृत्वोर्ध्वमालिङ्गय भजेत भर्ता ।"

स्त्रीकी मिली हुई दोनों जाघोंको ऊपर करके आलिंगन करता हुआ पति रमण करे तो 'उद्भुग्नक' होता है ।

" निधाय पादौ रमणांसयोश्चेद्, उत्तानसुप्ता रमते पुरन्ध्री ।
प्रतिप्रबन्धं समपादसंज्ञम्, प्रोचुस्तदा भोगविधानदक्षाः ॥ "

चित्त लेटी हुई स्त्री अपने दोनों पैरोंको पतिके कन्धोंपर रखकर, सहवास करे तो इस बन्धका नाम ' समपाद ' है । पंचसायकने भी इसका यही नाम रखा है पर इतनी बात और कही है, कि इसका प्रयोग हस्तिनी नायिकाके साथ हो । कामसूत्रके टीकाकारने इसके पैर रखनेकी इतनी विधि अधिक बता दी है, कि स्त्रीकी जानु पुरुषके कन्धोंपर हों । यदि जानुएँ छोटे हों; पतिके कन्धोंतक न पहुँच सकते हों तो अगाड़ी जाकर इस तरह लग जायँ ताकि कन्धोंपर बोझ आजाय । नागरसर्वस्वने इसे इसी नामसे लिखा है कि—

" संस्थापयेदूरुयुगं मृगाक्षी, पुंस्कन्धयोर्जृम्भितमुच्यते तत् "

स्त्री दोनों ऊरुओंको पुरुषके कन्धोंपर रखकर रमण करे तो ' जृम्भित ' होता है । सिद्धान्त—स्त्री चित्त लेटकर सहवासके लिये सज्जित हुए पुरुषके दोनों कन्धोंपर दोनों पैर रख, घोंटू मोड़ ले जो पीडुड़ियां पीठसे लग जायँ, यदि पुरुषके खवोंतक स्त्रीके घोंटुएँ न पहुँच सकें तो इसी तरह कन्धेपर रहने दे, पुरुष उसके खवे पकड़, झुककर उससे सहवास करता है तो यह 'जृम्भित' या ' समपाद' है । इससे मदनमंदिर अधिक सिकुड़ जाता है ।

उत्पीडितक ।

तत्कुञ्चितावुत्पीडितकम् ॥ २६ ॥

यदि दोनों पैरोंको सकोड़कर धारण करे तो 'उत्पीडितक' कहाता है॥२६॥

तत्कुञ्चितौ धारयेदित्येव । नायकोरसि चरणौ विदध्यात् । नायकोऽपि बाहुपाशेन नायिकाया ग्रीवामावेष्टयोपसर्पेत् । एवं चरणावूर्ध्वं संकुचितौ नाधस्तादुरसा धारितौ स्याताम् । द्वयोश्चोरसि पीडनात्पीडितकम् ॥ २६ ॥

यदि स्त्री सहवास करते समय अपने दोनों पैरोंको सिकोड़कर पुरुषके सीनेसे अड़ा दे एवम् पुरुष स्त्रीके गलेमें हाथ डालकर सहवास करे, पर प्यारीके दोनों पैर ऊपर ही छातीपर रखे रहें नीचे न होने पायें, कि सीनेसे न रुकनेके कारण नीचे गिर जायँ । इस आसनमें दोनोंके हृदयका पीडन होता है इस कारण इसे ' उत्पीडितक ' कहते हैं ॥ २६ ॥

इसके भामान्तर तथा सिद्धान्त ।

नागरसर्वस्वने इस आसनको 'पिण्डित' कहा है, कि—" यदाङ्गना पादयुगं निदध्यात्, प्रियोरसि स्यादिह पिण्डिताख्यम् ।" यदि स्त्री दोनों पैरोंको

पतिके सीनेपर रखे तो 'पिण्डित' आसन होता है । अनङ्गरंगमें इसे 'स्फुटन' के नामसे कहा है कि—"प्रमदांघ्रियुग्मे, कान्तोरसिस्थे स्फुटनं प्रतीतम्" इसका भी वही अर्थ है। जयमंगलाकारने इसे परिस्फुट कर दिया है। सिद्धान्त—स्त्री चित्त लेटती है, पुरुष उसके पास सहवासको आता है। उस समय वह अपने पैरोंको मिलाकर ऊपर कर लेती है, पुरुष घोंटू टेक उसकी तरफ झुककर अपने हाथोंको उसके लगेमें डाल देता है एवम् स्त्री अपने घोंटू तकके भागको पुरुषके सीनेके सहारे कर देती है, इससे स्त्रीका यंत्र संकुचित होजाता है।

अर्धपीडितक ।

तदेकस्मिन्प्रसारितेऽर्धपीडितकम् ॥ २७ ॥

यदि पूर्वके आसनमें एक पैरके विपरीत रूपसे फैला दे तो 'अर्धपीडितक'[1] आसन होता है ॥ २७ ॥

तदिति—पीडितकम् । एकस्मिंश्चरणे प्रसारिते व्यत्यासेनेति द्वितीयमप्यर्धपीडितकम्, अर्धपीडनात् ॥ २७ ॥

यदि नायिका पूर्व आसन किये हुएही अपने एक पैरको विपरीत रूपसे टेढ़ा फैलाती रहे तो यह दूसरा आसन भी 'अर्धपीडितक' होगा, क्योंकि इससे एक पैरके बीचसे हट जानेसे सीनेका पूरा पीडन नहीं हो पाता । पैर छातीपरसे तो हटा लिया जाता है, किन्तु बाहिर निकालकर जिधरका पैर है उससे दूसरे पैरकी ओर फैलाया जाता है ॥ २७ ॥

वेणुदारितक ।

नायकस्यांस एको द्वितीयकः प्रसारित इति पुनः पुनर्व्यत्यासेन वेणुदारितकम् ॥ २८ ॥

बारंबार उलट पलट कर, एक पैर नायकके कन्धे पर रखा जाय और दूसरा फैला दिया जाय तो इसे 'वेणुदारितक' कहते हैं ॥ २८ ॥

नायकस्यांसे स्कन्धे वामश्चरणः स्थितः । क्षणादनु तदधस्तात्प्रसारित इत्येकम् । पुनर्व्यत्यासेन दक्षिणस्कन्धे वामः प्रसारित इति द्वितीयम् । वेणुदारितकमिति वंशस्येव दारणं पाटनम् ॥ २८ ॥

---

१ नागरसर्वस्वने इसे 'अर्धपिण्डित' के नामसे कहा है, कि—'**आरोप्यते तत्र यदैकपादम्, तदा भवेत् पिण्डितमर्धपूर्वम् ।**' यदि हृदयपर एक ही पैर रखा जाय तो 'अर्धपिण्डित' हो जाता है ।

पुरुषके कन्धे पर बायां पायँ रखा हो एवम् बहुत थोड़े समयमें ही उसे वहांसे उठाकर उसके नीचे फैला दिया जाय, यह एक रीति हुई । फिर दाँये कन्धेपर बायां पैर फैला दिया तो यह द्वितीय हुआ । जैसे बांस चीरा जाता है उसी तरह इसमें होता है इस कारण इसका नाम 'वेणुदारितक' है ॥ २८ ॥

दूसरोंके साथ एकवाक्यता ।

नागरसर्वस्वने इसे 'जृम्भितक' के बादमें रखा है, कि–'मृगनयनी यदि पुरुषके कन्धोंपर दोनों पैरोंको रखे तो 'जृम्भितक' तथा एक ही रखे और एक फैला दे तो 'वेणुविदारण' है । पर रतिरहस्यकार इसके दो भेद करते हैं, यदि पैर बदलकर न रखा जाय जो कन्धे पर है वह कन्धे तथा जो फैला रखा है वह फैला ही रहे तो 'सारित' है । "एकमधः प्रसृतं यदि सारित-मुक्तामिदम्" जृम्भितककी सब बातें हों पर एक पैर नीचे और एक कन्धे-पर हो तो सारित है । इसका और नागरसर्वस्वके वेणुदारितका एक लक्षण मिलता है, पर रतिरहस्यकार कामसूत्रके व्यत्यासपदका भाव लेकर इतनी बात और अधिक कहते हैं, कि–"परिवर्तनतो बहुशः प्रथितं, कथितं भुवि वेणुविदारितकम् ।" बदलनेसे यह अनेक तरहसे प्रसिद्ध है, इसे 'वेणुविदारित' कहते हैं ।

शूलाचितक ।

एकः शिरस उपरि गच्छेद्द्वितीयः प्रसारित इति शूला-चितकमाभ्यासिकम् ॥ २९ ॥

एक पैर शिरके ऊपर रहे और दूसरा पैर फैला रहे तो इसे 'शूलाचितक' कहते हैं ॥ २९ ॥

एक इति वामो दक्षिणो वा चरणः । शिरस इति नायिकायाः । द्वितीय इति दक्षिणो वामो वाधः एवं द्विविधं शूलाचितकम् । शूल इवारोपणाच्छूल-भिन्नवच्छरीरस्य लक्ष्यमाणत्वात् । आभ्यासिकम् । अन्यथा कथमुपरितनजङ्घा-काण्डः स्थगितकः स्यात् ॥ २९ ॥

नायिकाका बाँया वा दाहिना पैर उसके शिरके ऊपर चला जाय और दूसरा कौनसा ही पैर नीचे फैला रहे तो यह 'शूलाचितक' होगा । इसमें दोनों ही पैरोंसे दोनों काम होते हैं, इस कारण यह दो तरहका है । जैसे कि शूलीपर रखकर उससे शरीरके दो कर दिये हों, उसी तरह शरीर

दीखता है । यह एक दिनका काम नहीं है, अभ्याससे होता है; नहीं तो जंघा-कांड किस प्रकार ऊपर रखा जा सकेगा ॥ २९ ॥

दूसरे आचार्य्योंका समन्वय।

रतिरहस्यने इसे-" जङ्घाग्रमधो यदथोर्ध्वगतम् ।
शिरसोर्युवते यदि शूलचितम् ॥ "

स्त्रीके पैरका प्रपद ऊपरकी ओरसे स्त्रीके शिरके नीचे आ जाय तो 'शूलचित' होगा । अनंगरंगने इसे ' त्रैविक्रम ' के नामसे दिया है कि—

' स्त्रियोंऽघ्रिमेकं विनिधाय भूमौ, अन्यं स्वमौलौ निजपादयुग्मम् ।
पृथ्व्यां समाधाय रमेत भर्ता, त्रैविक्रमाख्यं करणं तथा स्यात् ॥"

स्त्रीके एक पैरको भूमिमें रहने दे, दूसरे पैरको अपने माथेपर रख, अपने दोनों हाथोंको भूमिपर टेककर रमण करे तो ' त्रैविक्रम ' होता है । इसमें स्त्रीके पदाग्रको ऊपरसे उसके शिरके नीचेके बदले अपने शिरपर रखना लिखा है । ' नागरसर्वस्वने ' इसे आयतके नामसे दिया है कि-" नीतं शिरश्चैकपदं तरुण्याः, प्रसारितं चापरमायताख्यम् । " स्त्रीका एक पैर शिरपर तथा दूसरा पसरा हो तो ' आयत ' होता है । कामसूत्र और रतिरहस्यका तो एक मत है, कि स्त्रीका एकपैर पसरा तथा दूसरेका अग्र ऊपरकी तरफसे शिरके नीचे हो। अनंगरंग और नागरसर्वस्व इसमें स्त्रीके शिरके नीचेके बदले पुरुषके शिरपर चाहते हैं । इस तरह दो ढंग हो गये । शिरके नीचे या शिरपर बायां वा दायां दोनों ही क्रमशः रखे जा सकते हैं, इस कारण इसके चार भेद होते हैं ॥ अनंगरंगमें त्रैविक्रमके पीछे व्योमपद कहा है कि—

" तल्पप्रसुप्ता निजपादयुग्मम्, मूर्ध्नि विधत्ते रमणी कराभ्याम् ।
स्तनौ गृहीत्वाऽथ भजेत कान्तो बन्धस्तदा व्योमपदाख्य उक्तः ॥ "

एककी जगह अपने दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर अपने शिरके नीचे कर ले एवम् पति स्तन पकड़कर सहवास करे तो 'व्योमपद' आसन होता ह । व्योमपदमें शूलाचितककी ही शिरके नीचे पैर पहुँचानेकी प्रक्रिया है, इस कारण कामसूत्रने इसे नहीं कहा है ।

उत्तान, पार्श्व और उपविष्ट ।

कुछ ऐसे आसन हैं जिनपर महर्षिने विशेष नहीं कहा किन्तु अन्यआचार्योंमेंसे किसीने कहीं एवं किसीने कहीं ले लिया है । हम यहीं कामसूत्रके साथ एक वाक्यता करते हुए दिखाते है ।

कार्कटक ।

संकुचितौ स्वस्तिदेशे निदध्यादिति कार्कटकम् ॥ ३० ॥

पुरुष स्त्रीके सुकड़े हुए पैरोंको अपनी वस्तिसे लगा ले तो इसे ' कार्कटक ' कहते हैं ॥ ३० ॥

संकुचितौ नायिकाचरणौ जानुसंकोचात्स्ववस्तिदेशे स्वनाभिमूले निदध्यान्नायकः । कार्कटकमिति कर्कटस्येव कर्म । यदग्रचरणौ तथा तिष्ठतः ॥ ३० ॥

यदि रतिकालमें स्त्रीके घुटनोंको मोड़कर उसके पैर अपनी नाभिके नीचे लगाले तो इसे ' कार्कटक[1] ' कहते हैं । इसके इस नामके रखनेका कारण तो यह है, कि जैसे कर्कटके अगाड़ीके पैर रहते हैं, उसी तरह इसमें स्त्रीके पैर भी होते हैं । यह आसन कर्कट जैसा है ॥ ३० ॥

पीडितक ।

ऊर्ध्वावूरू व्यत्यस्येदिति पीडितकम् ॥ ३१ ॥

यदि दोनों ऊरुओंको उलटापलटा करके ऊपर रखे तो इसे ' पीडितक[2] ' कहते हैं ॥ ३१ ॥

ऊर्ध्वावूरू व्यत्यस्येदिति उत्तानं वामं दक्षिणतो नयेत्, दक्षिणं वामतः । पीडितकं जघनपीडनात् ॥ ३१ ॥

---

१ रतिरहस्यने—" यदि कुंचितपादयुगं युवतेः, नरनाभिमुदञ्चाति मार्कटकम् । " इसे मार्कटक कहा है, कि—उसमें युवतीके सुकुड़े हुए दोनों पैरोंको नाभिके नीचे लगाकर सहवास करे । हमें तो रतिरहस्यके मार्कटक पाठके स्थानमें ' कार्कटक ' पाठ रहना सर्वोत्तम मालूम होता है । अनंगरंगने—इसे लेटे २ तिरछे होकर रति करनेके प्रकरणमें लिखा है कि— " यद्यंगनाकुञ्चितपादयुग्मम्, स्वनाभिदेशे परिकल्प्य भर्ता । रतिं प्रकुर्य्यात्—" अंगनाके सिकोड़े हुए पदोंको अपनी नाभिके पास लगाकर रमण करे तो ' कर्कट ' आसन होता है । इस कर्कट आसनमें दोनों ही दशाओंमें कोई अन्तर नहीं है । ककड़ा एक जलजीवका नाम है यह उसकी तरह होता है । इसी तरह वन्दरकी तरह बैठबिठाकर जो रति कर्म हो वह मार्कट एवम् कछुएकी तरह सिकुड़ बैठकर रति करनेसे कौर्मिक होता है । इसी तरह दूसरे जीवोंकी तरह बैठ या लेटकर या चित्त होकर जो रतिकर्म हो, उसे उसी नामसे समझना चाहिये ।

२ नागरसर्वस्वने—" वामोरुसंस्थापितदक्षिणोरु-नारी यदा स्वस्तिकमाह धीरः । " नारी अपने बाँये ऊरुको दाँये ऊरुकी तरफ कर दे एवम् दाँयेको बाँयेकी तरफ झुका दे तो ' स्वस्तिक ' होता है । योगका स्वस्तिक इससे भिन्न होता है ।

ऊपरके हुए बाँये ऊरुको दाहिनी ओर एवम् दाहिने ऊरुको बायीं ओर ले जाये तो इसे पीडितक कहते हैं, क्योंकि एक तरफकी जांघको दूसरी तरफ करनेसे मदनमन्दिरका भाग अत्यन्त भिंच जाता है ॥ ३१ ॥

पद्मासन

जङ्घाव्यत्यासेन पद्मासनवत् ॥ ३२ ॥

चित्त लेटी नायिका दायें पैरको बायीं ओर और बायें पैरको दायीं ओर ऊरुकी जड़में रखे तो 'पद्मासन' कहाता है ॥ ३२ ॥

जङ्घाव्यत्यासेनेति । उत्ताना नायिका दक्षिणपादं वामे स्त्रोरुमूले निदध्यात् । वामं च दक्षिणे । पद्मासनमिति प्रतीतम् ॥ ३२ ॥

सीधी बैठी या लेटी स्त्री अपने दाहिने पैरको बाँयां जांघकी जड़में एवम् बायेंको दाहिनी जड़में रखे तो पद्मासन होता है ॥ ३२ ॥

पद्मासनका विवेचन ।

र०-" जंघायुगलस्य विपर्य्ययतः, पद्मासनमुक्तमिदं युवतेः । "

चित्त लेटी हुई नायिका यदि बायीं जांघको दायें और दायींको बायीं तरफ करे तो 'पद्मासन' होता है । नागरसर्वस्वने-

आवद्धपर्य्यङ्कपदप्रियायाः, कण्ठं पतिर्बन्धुरयेद् भुजाभ्याम् ।

तज्जानुजङ्घान्तरानिःसृताभ्याम्, पद्मासनं तत्करणं प्रदिष्टम् ॥ "

बायां पैर दायीं जांघकी जड़में तथा दायेको बायीं जांघकी जड़में रखकर स्त्री चित्त लेटे एवम् पुरुष सहवास करती बार स्त्रीकी जानु और जाँघके बीचमें हाथ डालकर उसके गलेमें गफा दे, इसको पद्मासन कहते हैं । यदि एक ही पैरकी यह व्यवस्था हो तो 'अर्धपद्मासन' होता है । पंचसायक और अनंगरंगने इसे बैठेके सहवासोंमें रखा है ।

पञ्चसा०-' पद्मासनं संपरिकल्प्य भर्ता, क्रोडोपविष्टां युवतिं रमेच्च ।
अन्योन्यकण्ठार्पितबाहुयोगात्, पद्मासनाख्यं मुनयो वदन्ति ॥ '

पति पद्मासन लगा स्त्रीको गोदमें बिठा ले, एक दूसरेके गलेमें हाथ डालकर रमण करें तो 'पद्मासन' होता है । इसी तरह अर्धपद्मासनको उपपदके नामसे कहा है ।

परावृत्तक ।

पृष्ठं परिष्वजमानायाः पराङ्मुखेण परावृत्तकमाभ्यासिकम् ॥ ३३ ॥

मिलती हुईकी पीठसे चिपटे हुए नायककी पराङ्मुखीका ' परावृत्तक ' अभ्याससे सिद्ध होता है ॥ ३३ ॥

पृष्ठमिति । यन्त्रमविश्लिष्य पूर्वकायेण परावृत्तस्य नायकस्य पृष्ठमेव गूहमानायाः परावृत्तकम् । पराङ्मुखेण नायकेन संप्रयोगात् । उपलक्षणं चैतत् । पृष्ठमुपगूहमानस्य पराङ्मुख्या परावृत्तकम् । आभ्यासिकम् । सहसा कर्तुमशक्यत्वात् । उभयकायं परिवृत्य संविष्टायाः पृष्ठमुपगूहमानस्य पराङ्मुख्या परावृत्तकमाभ्यासिकमर्थोक्तम् ॥ ३३ ॥

सहवास करतीवार यंत्रोंको विना ही जुदा किये, शरीरके पूर्व भागसे फिरे हुए नायककी पीठसे चिपटती हुईका ' परावृत्तक ' होता है । इसके परावृत्तक कहनेका कारण यही है कि पराङ्मुख हुए नायकके साथ संप्रयोग होता है । यह उपलक्षक है, इससे यह सिद्ध हुआ कि पराङ्मुखीकी पीठसे लगे हुए नायकका भी परावृत्तक होता है। दोनों तरहके परावृत्तकोंमेंसे दूसरा उपलक्षणसे निकलता है । जो काम अभ्याससे किया जाय एकदम न किया जा सके, उसे आभ्यासिक कहते हैं । दूसरेके करनेमें तो कोई कठिनताविशेष ये समझते नहीं; किन्तु शरीरके दोनों भागोंको बदलकर संविष्ट हुईकी पीठसे चिपटे हुए नायककी पराङ्मुखीका ' परावृत्तक ' अभ्याससे होता है, यह इसका तात्पर्य्य है ॥ ३३ ॥

स्पष्टीकरण ।

टीकाकारने जो यह कहा है, कि यंत्रको विना जुदा किये ही पूर्वकायसे पीछेकी ओर आजाय इसपर यह आशंका होती है, कि इस आसनसे पहिले यंत्रयोग किस आसनसे हो रहा था । इसका उत्तर श्रीकोकाने रतिरहस्यमें दिया है कि-" अविभज्य समुद्गकयन्त्रमिदं युवतिं यादि वा पुरुषो भजते ।

परिवृत्तमिति स्फुटमभ्यसनात् लघुपूर्वतनोः परिवर्तितकम् ॥ "

स्त्री वा पुरुष समुद्ग आसनकी रीतिसे किये गये यंत्रयोगको जैसेका तैसा ही रखते हुए शरीरके पूर्वभागसे पीछेकी ओर आजायँ तो ' परिवर्तित ' है । (यह परिस्फुट तो अभ्याससे ही होता है ।) इसमें यह जिज्ञासा होती है, कि ' समुद्ग ' क्या है, इस कारण समुद्गको कहतेहैं कि—

" मध्ये वनितोरुनरोरुगतौ, कथितो मुनिभिस्तु समुद्ग इति । "

तिरछे लेटकर रति करते हुए दोनोंमें यदि पुरुष स्त्रीकी जांघोंके बीच अपनी

जाँघोंको करके रमण करता है, तो ' समुद्र ' होता है । समुद्र आसनसे यंत्रयोग किये हुए ही पीछे पीठसे चिपकर यंत्रयोग करे यह उपलक्षक है । पीछेसे भी यंत्रयोग होता है तभी तो पंचसायकने कहा है कि–

" पार्श्वस्थिताया मृगशावकाक्ष्याः, पृष्ठावलम्बी रमणः प्रसुप्तः ।
लिङ्गस्मरागारनिवेशयोगात्, इहोपदिष्टः खलु नागवन्धः ।"

बगलमें लेटी हुई मृगनयनीकी पीठसे चिपटकर सोया हुआ पुरुष, उधरसे ही मदनमंदिरमें मदनाकुंशका प्रवेश कर दे तो नागबन्ध है । 'बगलमें लेटी हुई' यह तभी घटित होता है जब कि उसे उपलक्षक मानकर पीछेसे यंत्रयोग माने विना भी समुद्रके पीछेसे यंत्रयोग होता है, इसी कारण टीकाकारने उसे उपलक्षक माना है । अनंगरंगने ' फणिपाश ' नामक करण बैठेकी रतियोंमें माना है कि–

" उक्तप्रकारौ यदि दंपती स्वभुजौ तु कृत्वा निजकूर्परस्थौ ।
स्वैरं रमेते करणं प्रदिष्टम, तदा कवीन्द्रैः फणिपाशसंज्ञम् ॥"

बन्धुरितकी विधिसे अपनी कुहनियोंपर करके स्वच्छन्द रमण करें तो फणिपाश कहाता है । नागबन्ध और फणिपाश ये समानार्थकसे शब्द हैं, इसी कारण इसका यहां भेद दिखाया है। इसमें बन्धुरितका प्रकरण आया है, इस कारण बन्धुरितको कहते हैं, कि–

" स्वजानुयुग्मान्तरनिर्गतौ भुजौ, भर्तुश्च कण्ठे विनयेन्मृगाक्षी ।
कान्तोऽपि कृत्वेतिविधिं प्रगच्छेत्, तदा बुधैर्बन्धुरिताख्यमुक्तम् ॥"

स्त्री अपनी जानुओंके बीचसे निकालकर पतिके गलेमें डाल दे । एवम् पति भी इसी विधिको करके सहवास करे, तो ' बन्धुरित ' होता है । इस लेटकर रतिकरनेके प्रकरणके वश होकर चार आसन और दिखाते हैं:– उपवीतिक–तो युवतीके हृदय या वगल सीनाके बीचमें एक पैरको रखे तथा दूसरे पैरको शय्यापर रखे २ सुहवत करनेसे होता है, इसे पंचसायकने कहा है। कोणक–स्त्रीके एक पैरको अपने हृदयपर रखकर दूसरेको शय्यापर ही रहने देकर रति करनेसे होता है। युग्मपाद–तिरछी लेटी हुई स्त्रीके दोनों पैर, बैठकर तिरछा हो रति करनेवाले पतिकी कमरपर हों तो उक्त आसन होता है । अनंगरंग इस आसनको बैठकर रति करनेके आसनोंमें भी गिनता है । बैठकर रति करनेके प्रकरणके वश हो संयम आसन दिखाते हैं कि—

" निधाय जङ्घायुगलं युवत्याः, स्वकीययोः कर्पूरयोस्थास्याः ।
कण्ठे स्वबाहू परिणीय गच्छेत्, पतिस्तदा संयमनामधेयम् ॥"

स्त्रीकी दोनों जंघाओंको अपनी कुहनीतकके हाथोंपर थाम, आसनेसामने हो कंठमें हाथ डालकर रमण करे तो ' संयम ' होता है ।

बैठकर रतिपर कवि ।

नवलगुपाल नबेली राधा, नये प्रेमरस पागे ।
नवतरु वनविहार दोउ क्रीडत, आपु आपु अनुरागे ॥
शोभित शिथिल वसनमन मोहन सुखवत सुखके आगे ।
मानहुँ झुजी मदनकी ज्वाला बहुरि प्रजारण लागे ॥
कबहुँक बैठि अंशभुज धरिकै पीक कपोलनि दागे ।
आतिरसराशि लुटावत लूटत लालच लगे सभागे ॥
मानहुँ सूर कलपद्रुमकी निधि लै उतरी फल आगे ।
नहिं छूटति रति रुचिर भामिनी तासुखमें दोउ पागे ॥

नई राधा नए कृष्ण और नये नये ही प्रेमरसमें पगे हैं । इसके साथ यह भी बात है कि जिसमें नये फूल फूले हैं ऐसे वनमें वनविहार करते हुए खेल रहे हैं । इनका प्रेम किसीका कराया हुआ नहीं है किन्तु अपने आप ही आपसमें अनुरक्त हो हो गये हैं । रतिकेलिके सुखवालीके आगे रतिलीलामें मोहनके वस्त्र शिथिल ढीले या गिर गये हैं । यह कामका इतना सुहावना दृश्य है कि शिवके जलाये हुए कामकी भुजी आगको अपनी रतिलीलाओंसे फिर प्रचण्ड कर रहे हैं । कभी २ तो ऐसा करते हैं कि आप बैठ जाते हैं और अपनी गोदमें प्यारीको बिठाकर उसके दोनों हाथोंको अपने कन्धेपर धरकर आप उसपर रखकर संभोगशृंगारके रसको लूटते और लुटाते हैं । रतिसुखके लालचमें आकर आपसमें एक एकसे लगे हुए हैं, दोनोंको सुख मिल रहा है इस कारण दोनों ही भाग्यवान् हैं । पान खानेके बाद जो आपसमें कपोलोंका चुम्बन हुआ है इससे दोनोंके कपोलोंपर पानकी पीक लग गई है । राधा उनके सामने इस प्रकार ह मानों कल्प वृक्षके उस खजानेको सामने लेकर उतरी है; जिससे कि लेकर कल्पवृक्ष सबकी मनोकामनाएँ पूरी किया करता है । इन दोनोंकी सुन्दर रति छूट नहीं पाती इस कारण उस रतिमें दोनों पगे हुए हैं । यह सूरदासजीने बैठेकी रतिक्रीडाका वर्णन किया है । ये शृंगारके उपासक हैं । इस कारण इनकी भावमयी बातें शृङ्गारकी हैं । हम इस बातमें

सहमत न होकर भी उनके निरूपणको उदाहरणके रूपमें ले रहे हैं कि काम-शास्त्रके अन्य भागोंकी तरह आसनाध्यायको भी कवियोंने नहीं छोड़ा है ।

उत्तान सम्पुटपर ।

यह बैठकर रतिक्रीडाका उदाहरण दिया है । अब हम उत्तानसंपुटका उदाहरण देते हैं कि उक्त कविने इसको भी किस रूपमें लिया है, कि—

आजु नँदनन्दन रङ्ग भरे ।
विवि लोचन सुविशाल दोउनके, चितवत चित्त हरे ।
भामिनि मिले परम सुख पायो, मङ्गल प्रथम करे ।
करसों करज गह्यो कंचन ज्यों अंबुज उरज धरे ।
आलिङ्गन दै अधर पान करि खंजन खंज लरे ।
हठ करि मान कियो तब भामिनि तब गहि पाइँ परे ।
लै गए पुलिनमध्य कालिन्दी रसवश अनँगअरे ।

आज नन्दलाल रंगमें चूर हैं । क्या कहें दोनोंके दो दो बड़े २ नयन हैं, जिनके देखते ही दृष्टि पथगतके मनको हर ले । रँगके रँगेरँगीली भामिनि मिल गई तो फिर उसके आनन्दका क्या ठिकाना था । इसके लिये तो अनेकों मङ्गल किये गये थे । हाथसे सोनेकी तरह उस हाथको पकड़ा जो विश्वाससे पकड़ा जाता है । अपने हस्तकमलको प्यारीके उरोजोंपर रखा । आलिंगन होकर अधरपान होनेलगा, पीछे खंजनपक्षीके और खंजनि पक्षीकेसे नयना आपसमें लड़ने लगे । यह सब होकर प्यारीने जिद करके जब मान किया तो आप उसके चरणोंमें गिर गये । फिर आप यमुनाकी पुलिनके बीच ले गये, फिर क्या था कामके रसके वश होकर आपसमें अड़ गये ।

रतिपर पण्डितराज जगन्नाथ ।

" दरानमत्कन्धरबन्धमीषन्निमीलितस्निग्धविलोचनाब्जम् ।
अनल्पनिःश्वासभरालसाङ्गं स्मरामि सङ्गं चिरमङ्गनायाः ॥ "

यह रतिप्रसंगके वर्णनमें श्रीमत्पण्डितराज जगन्नाथजीने लिखा है । इसपर आचार्य्य श्रीमहावीर प्रसादजी द्विवेदीने लिखा है कि—" किंचित् नम्रकन्धरवाला, कुछ मुँदे हुएसुन्दर लोचनरूपी कमलवाला, अधिकश्वासभरसे सालस अंगवाला अंगनाका संग (संयोग) मैं सदैव स्मरण करता हूं । श्रमसे श्वास आया करते हैं बिना श्रमके श्वास नहीं आते, इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि श्रम है तो भी रतिक्रीडामें लगी हुई है । प्रेमभरी दृष्टि उसी समय

होगी जब कि रस मिल रहा होगा । थोड़ी आंखोंका खुला रहना श्रम, स्तिमित-दृष्टि तथा लाज एवं आनन्दकी अनुभूति है । कन्धे बैठेकी रतियों तथा उत्तान रतिके समय संश्लेषावस्थामें सामनेकी ओर झुके बताये गये हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि यह उत्तान या उपविष्टरतिका पं० राजजीने वर्णन किया है ।

उत्तम रतिपर विहारीदास ।

हिन्दीके कवि भी रतिवर्णनमें किसीसे पीछे नहीं रहे हैं, इनमें विहारीदासने तो जो कुछ कहा कह बत्तीस अक्षरोंमें ही कह डाला है । उसे यहीं दिखाते हैं कि—

" चमक तमक हांसी सिसक, मसक झपट लिपटानि ।
ए जहँ रति सो रति मुकति, और मुकति वड़ि हानि ॥ "

अच्छा शृंगार एवं प्रेमभरी बातों और मन्दहासके साथ अपनी आभा दिखाना तथा हाव भावोंके साथ अपनी निराली चमक चमकाना । जरासी बातपर प्रणयकलह करने लग जाना, मनना मनाना । आनन्दके प्रवाहमें बहते हुए हँसना । सीत्कारोंके स्थानमें सीकारे लेना । रँगरेलीके समय आपसमें मसकना, लिपट जाना । ये बातें जिस रतिमें है वही रति मुक्ति है । दूसरी मुक्तियाँ तो नाममात्रकी मुक्तियाँ है । संस्कृतमें तो रतिवर्णनमें प्रायः भर्तृहरि जैसे महात्माओंके भी शब्द निकल गये हैं । सच बात तो यह है कि कामशास्त्र संसारी जीवनको उत्तम बनानेके लिये तथा सारे व्यवहारोंको सिखानेके लिये है जो इसके किसी भी वर्णनमें बुराई देखते हैं वे उनके हृदयदोष ही इसमें उन्हें दीख पड़ते हैं । यदि तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो त्रिवर्गका यह साधक है ।

चित्ररतोंका सामान्य विधान ।

एते संवेशनप्रकारा न चित्राः । लोके हि स्थले पृष्ठतः पार्श्वतो वा शयनं प्रतीतम् । ततोऽन्यच्चित्रम् । तदेतैरुपलक्षयेदिति दर्शयन्नाह—

ये जो आसन बताये जा चुके हैं, ये चित्र नहीं हैं, क्योंकि संसारमें ऊपरसे, बगलसे या पीछेसे सहवास तो सभी करते रहते हैं, इनसे दूसरे प्रकारके आसनोंसे करना चित्ररत है । उन्हें भी इन जैसा ही जान ले, यह बात नीचेके सूत्रोंसे बताते हैं—

जलक्रीडामें सहवास ।

जले च संविष्टोपविष्टस्थितात्मकांश्चित्रान्योगानुपलक्षयेत् । तथा सुकरत्वादिति सुवर्णनाभः ॥ ३४ ॥

जल और स्थलपर संविष्ट, उपविष्ट और स्थितके आसनोंमेंसे जिस तरह आसानीसे सुहवत करे, उसी तरह करता रहे ॥ ३४ ॥

जले चेति । चकारात्स्थले च । तत्राप्सु क्रीडायां कूले शिरो निधाय संविष्टयोः संवेशनात्मकोऽपि यः स्थलाभावाच्चित्रयोगस्तं संपुटेन चोपलक्षयेत् । उपविष्टस्य नायकस्योपवेशनात्मकस्तं सर्वैरेव प्रकारैः । ऊर्ध्वस्थितायाः स्थितात्मकः । स्थलशयनाभावात् । चित्रो योगस्तं शूलाचितके । तथा सुकरत्वादिति तैः प्रकारैः संयोगस्याप्सु सौकर्यात् ॥ ३४ ॥

सूत्रमें जो जलमें इसके साथ च लगा हुआ है इसको 'जलमें और स्थलमें' यह अर्थ किया है । यदि पानीमें क्रीडा करनी हो तो शिरको किनारेपर रखकर लेटे हुए स्त्री पुरुषोंका पानीहीमें जो सुहवत करनेका आसन होता है वह स्थलमें न होनेके कारण चित्र योग है, ऐसी जगह संपुट आसनका प्रयोग करना चाहिये । यदि बैठकर करना चाहें तो जिन आसनोंसे बैठकर किया जा सकता है उन सब आसनोंको काममें ला सकता है । यदि पानीमें खड़ा रहकर करना चाहें तो इस चित्रयोगको शूलाचितक आसनसे कर सकता है. क्योंकि इसमें बैठनेका स्थल और शयन तो है ही नहीं । ऊपर जो आसन बताये हैं, उन आसनोंसे पानीमें सानन्द सहवास हो सकता है ॥ ३४ ॥

पानीके सहवासका निषेध ।

वार्तं तु तत् । शिष्टैरपस्मृतत्वादिति वात्स्यायनः॥३५॥

जलका सहवास असार है, क्योंकि स्मृतियोंमें इसकी निन्दा की गई है, यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ ३५ ॥

वार्तं त्विति । तथा सुकरत्वादिति सत्यम् । वार्तं तु तत् । असारमित्यर्थः । शिष्टैरपस्मृतत्वादिति । स्मृतिकारैर्निषिद्धत्वादित्यर्थः । तथा च गौतमीयं वचनम्—'अप्सु मिथुनसंयोगे नरकः' इति । प्रायश्चित्तविधाने भार्गववचनम्—'रतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्' इति । तस्मात्स्थलप्रयोज्यमेव चरेत् ॥ संवेशनप्रकारास्त्रयोदशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

यह जो सुवर्ण नाभने कहा है, कि-" पानीमें जिस तरह आसानीसे कर सके करे " यह असार है, इसमें कोई सार नहीं है, क्योंकि स्मृतिशास्त्रोंके बनानेवालोंने इसका निषेध कर दिया है । इसी विषयपर गौतमका प्रमाण देते हैं कि—" पानीमें सुहवत करनेसे नरक होता है " प्रायश्चित्त विधानमें

भार्गव महर्षिका भी वचन है कि—" पानीके भीतर सहवास करके कृच्छ्र और चान्द्रयण व्रत करना चाहिये " इस कारण जो चित्ररत स्थलपर किये जायँ उन्हें ही करे। यह आसनोंके विधानोंको बतानेवाला तेरहवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

चित्ररत प्रकरण ।

प्रकरणसंवन्धमाह—

सूत्रकार स्वयं ही सबसे पहिले संवेशनके प्रकरणके साथ इसका संबन्ध बतानेके लिये सूत्र करते हैं, कि—

अथ चित्ररतानि ॥ ३६ ॥

इसके बाद चित्ररत कहते हैं ॥ ३६ ॥

अथेति । संवेशनप्रस्तावे तद्विशेषत्वात्स्थलप्रयोज्यानीत्युच्यन्ते ॥ ३६ ॥

हर तरहके सहवासके आसनोंका प्रकरण चल रहा है, चित्ररतमें भी आसनोंका ही प्रयोग होता है, वे भी आसनविशेष ही हैं, इस कारण स्थलपर प्रयुक्त होनेवाले आसनोंको कहते हैं ॥ ३६ ॥

खड़े खड़े सहवास ।

तत्रोर्ध्वमधिकृत्याह—

सबसे पहिले चित्ररत प्रकरणमें खड़ों २ की रतिको लेकर कहते है कि—

ऊर्ध्वस्थितयोर्यूनोः परस्परापाश्रययोः कुडचस्तम्भापाश्रितयोर्वा स्थितरतम् ॥ ३७ ॥

ऊपर खड़े हुए स्त्री पुरुषोंका स्थितरत होता है, वे या तो एक दूसरेके सहारे खड़े हों या दीवार अथवा किसी खंभ आदिके सहारे खड़े हों ॥ ३७ ॥

परस्परापाश्रययोरिति—आश्रयान्तराभावाद्बाहुपाशेनान्योन्योपलग्नयोः । कुडयस्तम्भापाश्रितयोरिति—नायिकायां कुडये स्तम्भे वापाश्रितायां द्वितीयोऽपि तदाश्रयादाश्रित इत्युक्तम् । स्थितरतं तयोरूर्ध्वस्थित्या करणत्रयमवोचन्त । यथोक्तम्—'उत्क्षिप्तप्रमदापादमेकेन नरपाणिना । प्रसारणविशेषेण व्यायतं संमुखं स्मृतम् ॥ नारीपादतलन्यासान्नरहस्ततले तु यत् । कुञ्चितप्रमदाजानुद्वयं द्वितलसंज्ञितम् ॥ नरकूर्परविन्यस्तस्त्रीनिकुञ्चितजानुकम् । जानुकूर्परमुद्दिष्टमिति शुद्धो विधिः स्मृतः' ॥ ३७ ॥

जब वे विना किसीका सहारा लिये खड़े २ ही सहवास करना चाहें तो उन्हें एक दूसरेके गलेमें हाथ डाल चिपट कर खड़ा हो जाना चाहिये । यदि स्त्री दीवार या खंभेके सहारे खड़ी हो जाय तो पुरुष भी उस स्त्रीपर अपना वजन रखकर ही संगत होगा, इस तरह वह भी भींतके सहारे ही हो गया, इस कारण एकको न कहकर दोनोंको ही सहारे खड़ा बताया है । इस सहवासको स्थितरत कहते हैं, क्योंकि दोनों खड़े २ ही रमण करते हैं । आचार्योंने इस प्रकारके रमण करनेके भी तीन आसन बताये हैं, इस कारण इस रतके भी आसन कहते हैं:—व्यायत—" पुरुष दीवारके सहारे खड़ी हुई स्त्रीके एक पैरको अपने एक हाथसे सामनेकी ओर विशेष फैला दे तो इसे 'व्यायत'[2] कहते हैं । " द्वितल—" स्त्री मनुष्यके कंठसे लगकर अपने दोनों पैरोंको पुरुषके हाथके ऊपर रख दे एवम् उस समय स्त्री अपने दोनों घोंटुओंको सिकोड़ ले तो, उसे ' द्वितल[3] ' आसन कहते हैं । " जानुकूर्पर—

---

१ पंचसायकने कहा है कि—

" अन्योऽन्यदोःपञ्जरमध्यजातस्तम्भो यदा बाहुयुगेन लग्नः ।
निष्पीड्य नारी पतिमूर्ध्वसंस्थं रमेत् तदा व्यात्तकरं वदन्ति ॥ "

परस्परके भुजपंजरके बीचमें खड़ा हुआ स्तम्भ जब दोनों बाहोंमें लगा हो और स्त्री अपने भारसे पतिको पीडित करती हुई रत करती हो तो इसका नाम व्यात्तकर है । और नीचेके आसन खंभ या दीवारके सहारे पीठ लगाकर किये जाते हैं, किन्तु यह ऐसा प्रतीत होता है कि बाहें और बगल या कोठे लगाकर निष्पन्न किया जाता है ।

२ नागरसर्वस्वके ३२ वें परिच्छेदमें हाथसे टांग उठाकर ऊपरकी ओर कर देना हरिविक्रम एवम् उस पैरको पुरुषकी कमरपर रख देनेका नाम व्यायत रखा है । अनंगरंगने हरिविक्रमकी ही त्रिपाद संज्ञा की है ।

३ इस आसनमें पुरुष भींतिकी तरफ होगा, क्योंकि रतिरहस्यने—

"भित्तिगप्रियकरस्य सुन्दरी पादयोर्द्वितलसंज्ञकं मतम् । "

भींति आदिके सहारे खड़े हुए प्यारेके हाथोंके ऊपर पैर रख रमण करे तो इसे ' द्वितल ' कहते हैं । इसमें पुरुषको भींत आदिके सहारे बताया है । स्त्री दीवारके सहारे हो, यह जयमंगलाने पहिले ही लिखा है । नागरसर्वस्व इसीको ' अर्पित ' कहता है, किन्तु वह ' विषक्तकण्ठया' इतनी बात अधिक कहता है कि कंठमें हाथोंको डालकर चिपटी हुई हो । इस तरह सबके सारको मिलाकर द्वितलकी परिभाषा होती है कि—"भींतिआदिके सहारे खड़े हुए पुरुषके कंठसे लग या गलेमें हाथ डालकर उसकी दोनों हथेलियोंपर अपने दोनों पैर रख,—

" पुरुषके कंठसे चिपटकर, अपने दोनों पैर उसकी दोनों हथोलियोंपर रखकर एवं उसकी कोनियोंपर मुड़े घोंटू रखकर रति करे तो इसे 'जानुकूर्पर' कहते हैं " ॥ ३७ ॥

अवलम्बितक।

कुड्यापाश्रितस्य कण्ठावसक्तबाहुपाशायास्तद्धस्तपञ्जरोपविष्टाया ऊरुपाशेन जघनमभिवेष्टयन्त्या कुड्ये चरणक्रमेण वलन्त्या अवलम्बितकं रतम् ॥ ३८ ॥

पुरुष भींतिके सहारे खड़ा हो स्त्री उसके गलेमें दोनों हाथोंको डालकर पुरुषके दोनों हाथोंपर थमी हुई हो एवम् अपनी जांघसे पुरुषके जघनको लपेटकर, भींतिपर पैर लगाकर कमर हिला रही हो तो यह 'अवलम्वितक' आसन होता है ॥ ३८ ॥

—घोटुओंको सिकोड़कर सहवास करे तो 'द्वितल' आसन होता है। यदि पति स्त्रीके सिकुड़े हुए दोनों पैरोंको अपने सीनेपर ले ले तो यही दोला हो जायगा कि—

धृतं निजे वक्षसि वल्लभेन स्त्रीपादयुग्मं प्रवदन्ति दोलाम् ॥"

स्मरदीपिकामें तो इसका यह लक्षण लिखा है कि—

" नारीजानुद्वयं धृत्वा आत्मबाहुद्वयोपरि।
कुड्याश्रितं रमेत्कान्तो बन्धो दोलादिनामकः ॥"

भींतके सहारे खड़ा होकर, स्त्रीकी दोनों जानुओंको अपनी बाहोंपर रखकर रमण करे तो इसे 'दोला' कहते हैं।

१ रतिरहस्य, अनङ्गरङ्गने इसे इसी नामसे रखा है, किन्तु नागरसर्वस्वने इसे कूर्परजानु कहा है।

२ अनंगरंगने इसीको कीर्तिबन्धके नामसे कहा है कि—

कण्ठे भुजाभ्यामवलम्ब्य भर्तुः श्रोणिं निजोर्वोर्युगलेन गाढम्।
संवेष्ट्य कुर्य्याद्रतमङ्गना चेदुक्तः कविन्द्रैरिति कीर्तिबन्धः ॥"

इसमें भींतसे पैर लगा २ कर, कमर हिलानेकी बात छोड़ बाकी सभी सूत्रार्थ आ जाता है। नागरसर्वस्वने इसे इसी नामसे कहा है। पंचसायकने कीर्तिबन्ध नामक एक आसन वैठकर रति करनेके आसनोंमें रखा है, कि—

"कान्तो नितम्बस्थित एव नार्य्याः, श्रोणीं कराभ्यां यदि याति धृत्वा।
आस्फालयेद्वाऽपि कटिं प्रबन्धात् प्रोक्तो मुनीन्द्रैरिति कीर्तिबन्धः ॥"

पुरुष अपने नितम्बोंके बल बैठकर, अपनी भुजाओंपर उसकी कमरको रखकर रमण करे एवम् इसी प्रबन्धसे स्त्रीकी कटिका ऊपरकी तरफ संचालन करता रहे तो 'कीर्तिबन्ध' होता है।

कुड्यापाश्रितस्येत्युपलक्षणार्थत्वात्स्तम्भापाश्रितस्य वा नायकस्य कण्ठेऽवसक्तोऽवलग्नो बाहुपाशो यस्या इति विग्रहः । तद्धस्तपञ्जर इति—नायकस्य हस्ताभ्यां वेणीबन्धेन घटितपञ्जरे समुपविष्टाया ऊरुपाशेन जघनं नायकस्य वेष्टयन्त्याः । चरणक्रमेण वलन्त्या इति—कुड्ये स्तम्भे वा पुनःपुनश्चरणविक्षेपेण कटिं प्रेङ्खयन्त्याः । अवलम्बितकम् । नायककण्ठान्नायिकाया अवलम्बनात् । एतदुभयं वैहासिकत्वाच्चित्रम् ॥ ३८ ॥

सूत्रमें ' भीतिके सहारे खड़ा हो' यह कहना सहारेका उपलक्षक है, इससे यह अर्थ होता है, कि चाहे भीतिके सहारे हो या खम्भ आदिके सहारे हो उसके कंठमें दोनों हाथ, इस तरहसे डाले गये हों, कि स्त्रीका पूरा सहारा हो जाय एवम् पुरुषके जेठ भरने जैसे झुके हुए हाथोंपर नितम्ब लगा बैठ जाय तथा अपनी जांघोंसे पुरुषके जघनको लिभेड़ ले। भींत या खंभ जिसके सहारे पुरुष बैठा हो, उससे पैर लगा २ कर हलती या कमर हिलाती हो तो इसको ' अवलम्बितक ' कहते हैं । इस नामके रखनेका तो कारण यह है कि इस आसनमें स्त्री सबसे पाहिले पुरुषके कंठका अवलम्ब लेती है । पाहिले ३७ के सूत्रके तथा इस सूत्रके कहे आसनोंको चित्र कहनेका कारण तो यह है, कि यह विधान इस प्रकार हँसी २ में हो जाता है ॥ ३८ ॥

ऊर्ध्वरतिपर कवि ।

महात्मा सूरदासजीने अपनी उपासनाके अनुसार खड़े २ रति करनेका बड़े विचित्रढंगसे निरूपण किया है—

" नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा श्याम भुज ऊपर, श्याम भुजा अपने उर धरिया ॥
क्रीडा करत तमाल तरुनपर, श्यामा श्याम उमँगि रस भरिया ।
यों लपटाय रहे उर उर ज्यों मकरतमणि कंचनमें जरिया ॥
उपमा काहि देउँ को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया ।
सूरदास बलिबलि जोरीपर, नन्दकुमर वृषभानु-कुमरिया ॥"

किशोर नया है तो नागरी भी नई है । युवा नायक और युवति नायिकाके प्रेम चरित्र बताते हैं कि--रसके भरे श्यामा श्याम तमालके वृक्षोंपर क्रीडा करते हुए उमंगमें आकर यह करते हैं कि श्यामा अपनी भुजा श्यामकी भुजपर तथा श्यामकी भुजा अपनी भुजपर रख लेती है । ये दोनों

सोनेसे सीना लिपेटकर ऐसे लिभिड़ रहे हैं जैसे मकरतमणि सोनेमें जड़ दी जाती है। मैं किसकी उपमादूं मेरी तो दृष्टिमें कोई भी इस योग्य नहीं आता कि उपमा दी जा सके। शृङ्गारकी उपासनाके प्रेमी ऊर्ध्वरेता श्रीसूरदासजी कहते हैं कि मैं तो नन्दकुमर और वृषभानुकुमारीकी अनुपम जोड़ीपर बार-बार बलिहार जाता हूं।

पशु आदिकोंकी नकल।

स्त्रीके चित्तलेट, करवटसे तिरछा लेट, बैठकर और खड़े २ होनेवाली रतियोंको बता चुके; अब पशुओंकी तरह होनेवाली रतिलीलाओंको बताते हैं—

धेनुक।

भूमौ वा चतुष्पदवदास्थिताया वृषलीलयावस्कन्दनं धेनुकम् ॥ ३९ ॥

स्त्री चौपायों तरह चारों हाथ पैरोंसे खड़ी हो जाय एवम् पुरुष उसपर साँडकी तरह, सुहवत करे तो 'धेनुक' आसन होता है॥ ३९॥

चतुष्पदवदिति सामान्यनिर्देशो वक्ष्यमाणापेक्षः। तत्र धेनुकावच्चतुर्भिर्गात्रैरधोमुखमवस्थितायाः। वृषलीलयेति—वृषचेष्टया। नायकस्यावस्कन्दनम्—कटिभागेऽभिपतनम्। धेनुकमिति—धेनुकाया इदम्। एतच्चामनुष्यधर्माचरणाच्चित्रम्॥ ३९॥

सूत्रमें स्त्रीके लिये गायकी तरह न कहकर, चौपायोंकी तरह जो खड़ा होनेके लिये कहा गया है, इस बातका अगिले सूत्रोंमें भी उपयोग है, क्योंकि कुत्ता, हिरण, बकरा आदिकी तरह सुहवत करना ४१ वें सूत्रमें बतायेंगे। धेनुक आसन उस समय होता है जब कि स्त्री गायकी तरह चारों हाथ पैरोंसे नीचा मुख करके खड़ी हो एवम् पुरुष सांड़की तरह उसकी कमरमर गिरकर सांड़की भांति ही सहवास करे तो उसे 'धेनुक' आसन कहते हैं। इस नामके रखनेका कारण यह है, कि यह साँड़की तरह होता है। चित्र कहनेका कारण यह है कि इसमें पशुके कामकी नकल की जाती है॥ ३९॥

इसीपर दूसरे।

महाकवि श्रीकल्याणमल्लजीने इसी सूत्रका श्लोकमें अनुवाद करके रख दिया है। श्रीकोकजीने सूत्रके भावके आधारपर इतना और अधिक कह दिया है कि, जैसे वृषभके सामने गाय आती है, उसीतरह सामने आये एवम् वह भी साँड़का ही पूरा अनुकरण करे। वह भी यहां तक हो कि जैसे अपनी

पींठपर चढ़ाये हुए वृषको गाय लेकर अगाड़ी चलती है उस तरह चले भी। इसी तरह सभी आचार्य्योंने कामसूत्रके पदार्थोंको लेकर ही अपने २ पृथक् ग्रन्थ बनाये हैं, जिनकी भिन्न २ भाषाओंमें अनेकों टीकाएँ हुई हैं।

पशुलीलामें विचित्रता।

तत्र पृष्ठमुरःकर्माणि लभते ॥ ४० ॥

धेनुक सहवासमें छातीके काम पीठको होते हैं ॥ ४० ॥

तत्रेति—धेनुके। पृष्ठमुरःकर्माणि लभत इति—यानि नायिकोरसि प्रहणनच्छेद्योपगूहनादीनि तानि पृष्ठे प्रयुञ्जीतेत्यर्थः ॥ ४० ॥

इस धेनुक सहवासमें वे सब काम पीठपर होने चाहियें, जिन कार्य्योंको पुरुष, स्त्रीके स्तन आदिकोंपर करता है। वे प्रहणन, दांत और नाखूनोंके प्रहार, आलिंगन आदि हैं ॥ ४० ॥

दूसरी पशुलीलाएँ।

एतेनैव योगेन शौनमैणेयं छागलं गर्दभाक्रान्तं मार्जारललितकं व्याघ्रावस्कन्दनं गजोपमर्दितं वराहघृष्टकं तुरगाधिरूढकमिति यत्र यत्र विशेषो योगोऽपूर्वस्तत्तदुपलक्षयेत् ॥ ४१ ॥

गाय साँड़की सुहवत जैसी ही कुत्ते, हिरण, बकरा, गदहा, बिलाव, व्याघ्र, हाथी, सूकर और घोड़ाकी सुहवत समझ ले एवम् इनके सहवासके समय जो इनमें विशेषता देखे उनका अनुकरण कर ले ॥ ४१ ॥

एतेनेति धेनुकयोगेन शौनादिकमुपलक्षयेदित्यर्थः। श्वादीनां चतुष्पदत्वात्तद्व्रतमनेन व्याख्यातमित्यवगच्छेदित्यर्थः। विशेषप्रतिपत्तौ तु कारणमाह—यत्र यत्रेति। यस्मिन्यस्मिन्येन येन विशेषेण स्वरगतेन कायगतेन च योगोऽपूर्वो दृश्यते तत्तदुपलक्षयेत्।

धेनुकके योगसे कुत्ते आदिके योग भी समझ ले, क्योंकि कुत्ते आदि भी चौपाये हैं। एक चोपाये गाय साँड़ जैसी ही दूसरे चौपायोंकी सुहवत समझ लेनी चाहिये। यदि एक जैसी ही है तो यहां दूसरोंका क्या प्रसंग है, उसका उत्तर देते हैं कि इनके विशेष विधानका यह कारण है, कि इनमें गाय और सांडसे कूदती बार जो विशेषता हों एवम् उस समय जैसा ये मुखसे शब्द

करें या शरीरको टेढ़ा सीधा करें, उसी तरह करने लग जाना वह उसीके नामका आसन हो जायगा, इस बातको दिखानेके लिये ये धेनुकसे पृथक् दिखाये हैं; नहीं तो ये भी सब धेनुक आसन जैसे ही हैं ॥

तत्र शुनीवदवस्थिता श्वलीलया नायकस्यावस्कन्दनम् ।

शौन—जिसमें स्त्री कुत्तीकी तरह खड़ी हो एवम् पुरुष कुत्तेकी तरह संगम करे तो यह ' शौन ' आसन कहाता है ।

एणीवदेणलीलया ऐणेयम् । ' एण्या ढञ् ' व्यापारस्यापि विकारत्वात् ।

ऐणेय—स्त्री हिरणीकी तरह होजाय एवम् पुरुष हिरणकी तरह कूदकर सहवास करे तो 'ऐणेय' होता है । (ऐणीके व्यापारोंको विकार मान 'ठञ्' करके ऐणेय शब्द बना है ।)

दूसरे आचार्य्य ।

श्रीज्योतिरीश्वरने—"अधोमुखस्थां रमयेच्च नारीं तत्पृष्ठवर्ती पशुतुल्यरूपः ।
भर्ता परिक्रीडति भावहीनो निर्दिश्यते हारिणबन्ध एषः ॥ "

स्त्रीको चारों हाथ पैरोंके सहारे नीचेको मुख करके, खड़ी करके उसके पीठके पीछे आप भी उसी तरह होकर भावहीन रमण करे तो उसे ' हारिणबन्ध' कहते हैं, जो यह कहा है सो कामसूत्रके ही भावके अधीन कहा है ।

एवं छगलीवच्छगललीलया छागलम् ।

छागल—स्त्री बकरीकी तरह खड़ी हो जाय एवम् पुरुष बकरेकी तरह सहवास करे तो ' छागल ' होगा ।

गर्दभीवद्गर्दभलीलया क्रमणं गर्दभाक्रान्तकम् ।

गर्दभाक्रान्त—जैसे गदहा गधीपर कूदता है, उसी तरह स्त्रीको खड़ी करके उसपर कूदे तो ' गर्दभाक्रान्त ' होता है ।

मार्जारीवन्मार्जारलीलया च ललितकं मार्जारललितकम् ।

मार्जारललितक—जस मार्जारीके साथ, मार्जार अपनी चंचलताका परिचय देता है, उसी तरह स्त्रीको खड़ी करके करना ' मार्जार ललितक है ।

व्याघ्रीवद्व्याघ्रलीलयावस्कन्दितं व्याघ्रावस्कन्दनम् ।

व्याघ्रावस्कन्दन—जैसे व्याघ्री सहवासके समय, खड़ी होती है उसी तरह स्त्रीको खड़ी करके उसपर व्याघ्रकी तरह कूदना 'व्याघ्रावस्कन्दन' है ।

व्याघ्र कैसे करता है ।

व्याघ्र किस प्रकार रमण करता है, इस बातको पद्मश्रीजीने अपने निराले ग्रन्थ नागरसर्वस्वमें बताया है, उसे हम यहीं दिखाते हैं, कि—

" तनौ तल्पालीने निजकरधृतं पार्ष्णियुगलम्,
नितम्बिन्याः पृष्ठं नतमतिशयोत्क्षिप्तजघनम् ।
समुन्नीतं पश्चात् परमदयितेनोरुयुगलम्,
स्मृतं व्याघ्रस्कन्दं करणमशतं दुष्करमतम् ॥ "

नायिकाका शरीर खाटपर लगा हो एवम् अपने दोनों हाथोंसे प्यारेकी ऐंड़ी थाम ली हों, नितम्बिनीकी पीठ झुकी हो एवं जघन ऊपरको उठा हो, परम प्यारेने दोनों जांघें पीछे कर दी हों तो इसे 'व्याघ्रस्कन्द' कहते हैं । यह अभ्याससे सिद्ध हो सकता है । पं० तनसुखरामजी इसे कष्टप्रद बताते हैं, कि इसमें उन्हें बड़ा ही कष्ट होता है । यूरोपके देशोंमें इस आसनको ' व्हीलबेरो ' कहते हैं ।

गजवद्गजलीलयोपमर्दनं गजोपमर्दितम् ।

गजोपमर्दित—जैसे हाथी सहवास करती वार हथिनीका मर्दन करता है, उसी तरह जो स्त्रीको करके स्त्रीका मर्दन करे तो 'गजोपमर्दित' कहाता है ।

इसकी रीति ।

कामसूत्रने केवल हाथीकी लीलाकी तरफ इशारामात्र कर दिया है, किन्तु कोकाजी महाराजने यह भी साथ बता दिया है कि करिलीलाएँ कैसे हुआ करती हैं—

" भूगतस्तनभुजास्यमस्तकामुन्नतस्फिचमधोमुखीं स्त्रियम् ।
क्रामति स्वकरकृष्टमेहनो वल्लभः करिवदैभमुच्यते ॥ "

स्त्री नीचेकी तरफ मुख करके औंधी हो, स्तन, भुज, मुख और मस्तकको भूमि (शय्यापर) लगाकर, कमरको ऊँची कर दे एवम् पुरुष अपने साधनको हाथसे पकड़कर उसके मदनमंदिरके भीतर हाथीकी तरह हिलाये तो ' ऐभ ' आसन होता है । इसीका अनुवाद श्रीकल्याणमल्लजीने अपने ग्रन्थ अनङ्गरङ्गमें किया है ।

तुरगवत्तुरगलीलयाधिरोहणं तुरगाधिरूढकम् ।

तुरगाधिरूढक—घोड़ेकी तरह घोड़ेके ढंगसे चढ़ना ' तुरगाधिरूढक ' है ।

अत्र श्वादीनां स्वरकायगतं चेष्टितं प्रत्यक्षतोऽवगन्तव्यम् । अप्रत्यक्षीकृतस्य प्रयोक्तुमशक्यत्वात् ॥ ४१ ॥

इन रतोंमें कुत्तों आदिकी तरह कंठका स्वर और कुत्तों आदिकीसी शारीरिक चेष्टाएँ करके सुहबत की जाती है, इस कारण इसे प्रत्यक्ष देखकर पीछे प्रयोगमें लाना चाहिये, क्योंकि विना देखे केवल सुननेमात्रसे इसका प्रयोगमें आना कठिन है ॥ ४१ ॥

पुरुषोंके संघाटक रत ।

मिश्रीकृतसद्भावाभ्यां द्वाभ्यां सह संघाटकं रतम् ॥ ४२ ॥

मिलाये हुए सद्भाववाली दो स्त्रियोंके साथ, एक पुरुषका सहवास करना 'संघाटक' रत है ॥ ४२ ॥

मिश्रीकृतसद्भावाभ्यामिति । दंपत्योर्हि रतम् । द्वाभ्यां तु परस्परोपजनितविश्वासाभ्यां नायिकाभ्यां सहैकनायकस्य रतं चित्रसंघाटकाख्यम् । एकशयने स्त्रीयुग्मस्य युगपत्संप्रयुज्यमानत्वात् । यदैव हि पुरुषोपसृप्ते यदेकस्या रागापनयनं तदैवापरस्याश्चुम्बनादिना रागजननम् । ततोऽस्या रागापनयनं प्रशान्तरागायाश्च रागजननमिति ॥ ४२ ॥

एक स्त्रीके साथ एक पुरुषका सहवास करना रत है । आपसमें उत्पन्न हुए विश्वासवाली दो स्त्रियोंके साथ सहवास करना 'संघाटक' नामक चित्ररत कहाता है । क्योंकि एक ही खाटपर एक समयमें दो स्त्रियोंके साथ सहवास किया जाता है । इसके करनेकी तो विधि यह है, कि एकसे तो सहवास करते हुए उसका राग जुदा किया जाता है तो उसीमें दूसरीके चुम्बन आदिक करके उसका राग प्रदीप्त किया जाता है, पीछे दूसरीके साथ सहवास करके उसका राग शान्त किया जाता है तो जिसका राग शान्त किया गया है उसका चुम्बन आदिसे राग पैदा किया जाता है ॥ ४२ ॥

---

१ एक पुरुष दो स्त्रियोंसे कैसे सहवास करता है ? इसे कोक महाराजने बताया है कि–

"यन्मिथस्तु विपरीतसक्थिकं स्त्रीयुगं युगपदेति कामुकः ।"

यदि आपसमें उलटी कमरें फेरे हुई दो स्त्रियोंके साथ एक पुरुष सहवास करता है तो 'संघाटक' होता है । यानी एकके साथ संयोग करता है लेटे २ भीतर चलाता रहता है तथा दूसरीके मदनमंदिरमें हाथसे क्रिया करता रहता है ।

गोयूथिक ।

बह्वीभिश्च सह गोयूथिकम् ॥ ४३ ॥

अनेक स्त्रियोंके साथ एक पुरुषका एक समयमें सुहबत करना 'गोयूथिक' है ॥ ४३ ॥

बह्वीभिश्च मिश्रीकृतसद्भावाभिः सहैकस्य चित्ररतं गोयूथिकम् । वृषस्येव गोयूथे स्त्रीसमूहे वर्तनात् ॥ ४३ ॥

मिले हुए सद्भावोंवाली अनेक स्त्रियोंके साथ एक पुरुषका सहवास करना गोयूथिक है। यह भी चित्ररत है, क्योंकि इसमें अकेले पुरुषका अनेकों स्त्रियोंमें इस प्रकार रहना होता है जैसा कि अकेला साँड गउओंके झुंडमें रहता है॥४३

वारिक्रीडितक, छागल और ऐणेय ।

वारिक्रीडितकं छागलमैणेयमिति तत्कर्मानुकृति-योगात् ॥ ४४ ॥

हाथी, बकरा और हिरणके कामोंका अनुकरण करनेसे 'वारिक्रीडितक' 'छागल' और 'ऐणेय' होता है ॥ ४४ ॥

वारिक्रीडितकमिति—वार्यां गजस्येव करिणीभिः स्त्रीभिः सह रमणात् । तथा छगलवदेणवच्च स्त्रीभिः सहच्छागलमैणेयमिति । तत्कर्मानुकृतियोगादिति—वृषादीनां गवादिषु यत्स्वरगतं कायगतं च कर्म तदनुकृतियोगात्तथा व्यपदिश्यत इत्यर्थः ।

वारिक्रीडितक[1]—जैसे एक हाथी अनेक हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है उसी तरह अनेक स्त्रियोंके साथ क्रीडा करनेका नाम 'वारिक्रीडितक' है । छागल—जैसे एक बकरा अनेकों बकरियोंके साथ रमण करता है, उसी तरह रमण करनेका नाम 'छागल' है । ऐणेय—जैसे एक हिरण अनेकों हिरणियोंमें क्रीडा करता है, उसी तरह क्रीडा करनेका नाम 'ऐणेय' है । गोयूथिकसे लेकर ऐणेय तकके सहवासोंमें जैसे ये अपना कंठस्वर करते हैं, उसी तरह कंठस्वर करके, इनकी तरह ही शरीरको करके, इन जैसे ही सहवास करनेके कारण ये ही नाम रख दिये गये हैं ।

---

१ पुराणोंमें इसका वर्णन बड़े ही रंगसे मिलता है तथा जलक्रीडामें इसका विशेष प्रयोग देखा जाता है।

स्त्रियोंके संघाटक आदि ।

यथैकस्य द्वाभ्यां बह्वीभिश्च तथा द्वाभ्यां नायकाभ्यां बहुभिश्च एकस्या रतं संभवति । तत्र नायकसंघाटकेनैकस्या वक्ष्यमाणयोगेन काम्यमानत्वात्संघाटकं रतम्। द्वयोर्वा संविष्टयोः पुरुषायितेन काम्यमानत्वात् । यथोक्तम्—'ऊरूव्यत्यासंसंविष्टपरिवर्तितदेहयोः । वृषयोल्लतं चिह्नं हस्तिन्यां पुरुषायिते ॥' बहुभिश्च गोयूथिकम् । वृषगोयूथस्येवैकस्यां गवि नायकयूथस्य वर्तनात् । तथा वारिक्रीडितकमित्यादि तत्कर्मानुकृतियोगात्तदेव गोयूथिकादिवत् ॥ ४४ ॥

जैसे एक पुरुषकी दो और अनेक स्त्रियोंसे रति होती है, उसी तरह एक स्त्रीका भी दो और अनेक पुरुषोंसे रमण होता है । इसमें यदि दो पुरुषोंके साथ एक स्त्रीका अगाड़ी बताई हुई रीतिसे सहवास हो तो संघाटक रत है, क्योंकि वह लेटे हुए दोनोंके साथ पुरुषकी तरह सहवास करती है । इसी प्रकार कहा भी है कि—"यदि हस्तिनी पुरुषकी तरह दो वृष पुरुषोंके साथ सहवास करे तब ही हस्तिनीमें वे मदनांकुश कर सकते हैं, जब कि ऊरुओंको उलटी करके लेटे शरीरको फेंटे हुए हों"। बहुतसे पुरुषोंके साथ एकका करना 'गोयूथिक' है, जैसे कि एक गऊके पीछे साँड़ोंका झुंड लगा हो इसी तरह एकके पीछे पुरुषोंका भी झुंड रहता है । इसी तरह एक स्त्रीका भी वारिक्रीडितक होता है । जिस प्रकार एक हथिनीके पीछे हाथियोंका झुंड लगकर क्रीडा करता है, उसी तरह एक स्त्रीके पीछे झुंडका झुंड लगकर रंगरेली करता है जैसा कि गोयूथिकमें होता है ॥ ४४ ॥

अनेक पुरुषोंको रखनेवाली स्त्रियोंके देश ।

देशप्रवृत्तिं दर्शयन्नाह—

एक पुरुषके घरमें अनेक स्त्रियाँ तो प्रायः देखी जाती हैं, किन्तु एक स्त्रीके यहां अनेकों पुरुषोंके रखनेका देशाचार नहीं सुना जाता, इस कारण उन देशोंको बताते हैं जहांकी स्त्रियाँ अनेकों पुरुषोंको रखती हैं—

ग्रामनारीविषये स्त्रीराज्ये च बाह्लीके बहवो युवानोऽन्तःपुरसधर्माण एकैकस्याः परिग्रहभूताः ॥ ४५ ॥

---

१ "कामुकावपि मदाकुलाबला सम्पदोपपदघाटकं विदुः ।"
जिस तरह एक पुरुष दो स्त्रियोंसे संघाटक रति कर सकता है, उसी तरह एक स्त्री भी दो पुरुषोंके साथ रतिकर सकती है । यह सूत्रका ही अनुवाद है ।

ग्रामकी स्त्रियोंके देशमें, स्त्रियोंके राज्यमें और बाह्लीक देशमें एक एक स्त्रीके बहुतसे परतंत्र युवक घरमें हैं ॥ ४५ ॥

ग्रामनारीविषय इति—स्त्रीराज्यसमीप एव परतो ग्रामनारीविषयः । युवानो व्यवायक्षमाः । अन्तःपुरसधर्माणो—रक्षणयोगादस्वतन्त्राः । एकस्या योषितः परिग्रहं गताः । खरवेगत्वान्नैकेन तुष्टिरिति ॥ ४५ ॥

जहां स्त्री राज्य है, उसीके पास परली तरह ग्राम नारी देश है । युवकका तात्पर्य्य सहवास करनेमें पूरे समर्थ पुरुषोंसे हैं । जैसे स्त्रियां रक्षित रखी जाती हैं, उसी तरह ये पुरुष भी रहते हैं, इस कारण ये स्वतंत्र नहीं हैं । एक २ स्त्रीने ऐसे अनेकों पुरुष अपने घरोंमें रख छोड़े हैं, क्योंकि इस प्रकार करनेवाली स्त्रियां खरवेगवाली होती हैं, उनकी एकसे तृप्ति नहीं होती ॥४५॥

अनेक पुरुषोंका एकसे सहवासका ढंग ।

ते तां कथं रञ्जयेयुरित्याह—

अनेक पुरुष एकस्त्रीको किसप्रकार सहवास करके प्रसन्न कर सकते हैं, इस विषयमें सूत्र करते हैं, कि—

तेषामेकैकशो युगपच्च यथासात्म्यं यथायोगं च रञ्जयेयुः ॥ ४६ ॥

एक स्त्रीके अनेक पुरुष सहवास करनेवाले हों तो नंबरवार या एक साथ जो स्त्रीको अनुकूल पड़े एवम् जिसका जैसा मोंका हो वह उसी तरह उसे प्रसन्न करे ॥ ४६ ॥

एकैकशो युगपच्चेति—एकैकेन कर्मणा यौगपद्येन चेत्यर्थः । यथासात्म्यं यथायोगं चेति—येन यस्या उपचारेण सात्म्यं यत्र यस्य च युज्यते प्रयोगस्तेन तामनुरञ्जयेयुः । तस्यास्तृप्तिं जनयेयुरित्यर्थः ॥ ४६ ॥

नंबरवार एक एक ही करता जाय, इसमें तो कोई विशेष ही नहीं कहना है, किन्तु वे सब एक साथ करना चाहें तो एक एक काम ही करें । कैसे कैसे एक एक काम करें, यह ४७ वें सूत्रमें बतायेंगे । जो उपचार स्त्रीको अनुकूल पड़े एवम् जैसा जिसका मोंका हो, उसी प्रयोगको करके स्त्रीकी तृप्ति करें ॥ ४६ ॥

अनेकोंका एकसाथ रत ।

तदेवैकैकं कर्म यौगपद्यं च दर्शयन्नाह—

छियालीसवें सूत्रमें 'एक समयमें सब एक २ काम करते हुए स्त्रीका मनोरंजन करें' यह तो कह दिया, किन्तु किस प्रकार करें इस बातको नहीं बताया, इस कारण निचले सूत्रसे इस क्रमको कहते हैं, कि—

एको धारयेदेनामन्यो निषेवेत । अन्यो जघनं मुखमन्यो मध्यमन्य इति वारं वारेण व्यतिकरेण चानुतिष्ठेयुः ॥ ४७ ॥

एक उसे गोदमें लेकर बैठे तो दूसरा उसका सेवन करे, एक यंत्रसंयोग करे तो दूसरा स्तनोंका आनन्द ले. तीसरा मुखचुम्बन करे, इस प्रकार वारी २ से क्रमशः जघन सेवन करके हटते चले जायँ ॥ ४७ ॥

एको धारयेदिति—यस्याङ्कमपाश्रित्य संविष्टा । मुखमन्यो निषेवेत चुम्बनदशननखक्षतैः । जघनमन्य उपसृप्तकैः । मध्यं मुखजघनयोश्चुम्बननखच्छेद्यप्रहणनैरन्य इत्येकैकेन कर्मणा । युगपच्चेति । तत्रापि पुनर्विधानान्तरमाह—वारं वारेणानुतिष्ठेयुरिति—वारं नियोगं, वारेण–परिपाट्या । तत्र यो जघनं निषेवितवान् स निवृत्तरागत्वाद्वारेण वारमनुतिष्ठेत् । वारेण वारिको मुखवारं तद्वारिको मध्यवारं तद्वारिकश्च जघनवारमिति । व्यतिकरेण चेति—द्वितीयकर्मसंयोजनेन च, तद्यथा—जघनसेवको जघनं मध्यं च निषेवेत । मध्यसेवको मध्यं मुखं च । तत्सेवकश्च मुखं मध्यं च । वारको धारयेन्मुखं च निषेवेतेति । अनेन विधिना तावदनुतिष्ठेयुर्यावत्सर्वे एव जघनवारमनुप्राप्ताः ॥ ४७ ॥

जिसकी गोदमें शिर रखकर वह सहवासमें प्रवृत्त हो वह तो उतने ही आलिङ्गनका आनन्द लेता रहे एवम् एक पुरुष उसके मुखका चुम्बन, दाँतोंका लगाना एवम् नाखूनोंका वार करता रहे । जघनके यंत्रयोगको एक करता रहे, जघन और मुखके बीचकी जगह सीने आदिका सेवन एक व्यक्ति करता रहे । इसके सेवन करनेवाले स्तन आदिका चुम्बन एवम् उनपर नाखूनोंके वार आदि करता रहता है, इस तरह ये एक एक कामको एक साथ करते हुए सहवास करते रहते हैं । इसमें भी कुछ विधानान्तर कहते हैं, कि यंत्रसंयोग अपने अपने नंबरसे करना चाहिये यानी जिसने जघनका सेवन कर लिया है उसका

राग निवृत्त हो चुका है, इस कारण जब उसका नम्बर आये तभी उसे करना चाहिये । यह नम्बर भी हर एक कामका क्रमशः होना चाहिये । यानी जब सहवास करनेवाला निवृत्त होकर हट जाय तो गोदमें सिर राख कर बैठा हुआ पुरुष मुखपर आ जाय मुखवाला सीनेपर चला जाय एवम् सीनेवाला जघनपर चला जाय । अथवा एक एक जना दो दो काम भी कर ले, जैसे कि जघन सेवन करनेवाला उसे और स्तन आदिका सेवन करता रहे एवम् मध्यका सेवन करनेवाला स्तन आदि और मुखका सेवन कर ले तथा मुखका सेवन करनेवाला मुख और मध्यका भी सेवन कर सकता है । जो लिये बैठा है वह लिये बैठा रहे एवम् मुख चुम्बन आदि भी करता रहे, इस विधिसे तबतक करते रहें जबतक कि उनका सहवासका पुत्ता न आये ॥

वेश्या आदिके अनेक ।

अन्यत्रापि देशे संभवत्येतदतिदेशेन दर्शयति—

पैंतालीसवें सूत्रके बताये हुए देशोंके सिवा दूसरी जगह भी एक स्त्री अनेक पुरुषोंके साथ सहवास करती देखी जाती है, उस स्थल एवम् उसकी विधि भी सैंतालीसवें सूत्रके अतिदेशसे कहते हैं कि—

एतया गोष्ठीपरिग्रहा वेश्या राजयोषापरिग्राहश्च व्याख्यातः ॥ ४८ ॥

इससे गोष्ठीसे परिग्रही हुई वेश्याएँ तथा राजस्त्रियोंके परिग्रह बता दिये ४८

एतयेति—यथोक्तया स्त्रिया । गोष्ठीपरिग्रहा इति—विटैः संभूय परिगृह्यते या वेश्या, गोष्ठी येषां परिग्रह इति । योषिच्छब्दसमानार्थो योषाशब्दः । संहत्यान्तःपुरिकाभिर्योषिद्भिर्ये परिगृह्यन्ते परपुरुषाः । वक्ष्यति च—'संहत्या नव दशेत्येकैकं युवानं प्रच्छादयन्ति प्राच्यानाम्' इति । वेश्यां विटा युवानं च स्त्रियः पूर्ववदनुरञ्जयेयुरित्यर्थः । बह्वीभिश्च गोयूथिकमित्येतत्स्वदारेषु नायकव्यापारमधिकृत्योक्तम् ॥ ४८ ॥

---

१ रतिरहस्यने चार पुरुष लिये हैं एवम् उनका मुख, हाथ, पैर और इन्द्रियसे संग बताया है । जयमंगलाकी ओर ध्यान देनेपर तो यही मालूम होता है कि मुख आदि चारोंका चारों पुरुषोंके साथ क्रमसे अन्वय नहीं है । क्योंकि श्रीयशोधरजीने चुम्बन, दशन और नखक्षतों रूपी मुख और हाथ दोनोंके कामोंका विधान, एकके लिये कर गये हैं ।

सैतालीसवें सूत्रमें जो एक स्त्रीकी अनेक पुरुषोंके साथ, एक साथ सहवास करनेकी विधियाँ बताई हैं, उसी तरह बहुतसे वेश्यागामियोंके साथ एक वेश्या भी सहवास कर सकती है। बहुतसोंकी मंडलीका नाम गोष्ठी है, ऐसी मंडली किसी एक वेश्याके साथ सहवास करे तो वह गोष्ठीसे परिग्रहीता वेश्या कहाती है। (इसी तरह कोई २ खुद मुखत्यार रानियाँ बहुतसे पर-पुरुषोंके साथ सहवास करें तो उसका भी यही ढंग है) सूत्रमें ' राजयोषा ' इस टुकड़ेमें जो ' योषा ' शब्द आया है उसका राजयोषित् यानी रानी अर्थ है। राजाके अन्तःपुरकी बहुतसी स्त्रियाँ मिलकर, जिन परपुरुषोंका संग्रह कर लेती हैं वह राजस्त्रियोंका परिग्रह कहलाता है। पारदारिक अधिकरणके अन्तःपुरिका वृत्तमें लिखा है कि—" प्राच्यदेशमें राजाओंके अन्तःपुरकी नौ २ दश २ स्त्रियां मिलकर, एक रंगीले युवकको घेर लेती हैं" । विटोंको वेश्याका रंजन एवम् अन्तःपुरकी स्त्रियोंको उस युवकका पूर्वकी तरह अनुरंजन करना चाहिये। बहुतसी स्त्रियोंके साथ जो एकका गोयूथिक इसी अध्यायके ४३ वें सूत्रमें कहा है वह अपनी बहुतसी स्त्रियोंके ही विषयमें कहा है; पराई स्त्रियोंके विषयमें नहीं कहा है ॥ ४८ ॥

अधोरत।

अधोरतं पायावपि दाक्षिणात्यानाम् । इति चित्र-रतानि ॥ ४९ ॥

दाक्षिणात्योंमें गुदमैथुन भी करते हैं, इसीका नाम ' अधोरत ' है। ये चित्ररत पूरे हुए ॥ ४९ ॥

अधोरतमिति । अपानस्य जघनाधः स्थितत्वात् । तच्च स्त्रीपुंसविषयभेदेन द्विविधम् । तदपि विमार्गमेहनाच्चित्रम् । औपरिष्टकं तु तृतीयाप्रकृतिविषयत्वान्न चित्रम् । स्त्रीपुंसयोश्च चित्रमेव । विमार्गमेहनात् । दाक्षिणात्यानामिति देशप्रवृत्तिं दर्शयति ॥ ४९ ॥

इसे अधोरत कहनेका कारण यह है, कि गुदमैथुन जघनसे नीचे होता है, क्योंकि गुदा जघनके नीचे ही है। यह दो तरहसे होता है एक तो स्त्रीकीमें

---

१ यह अप्राकृतिक व्यभिचार है । जो ऐसे कामोंको करते हैं, वे पुरुष स्त्रीके कामके नहीं रहते न उनमें तेज ही बाकी रह जाता है। वर्तमान गवर्नमेंटने भी इसकी हानियोंको मद्देनजर रखकर, इसके करनेवालोंके लिये कड़ीसे कड़ी सजाओंका विधान रखा है । ऐसे कार्य्य दुर्व्यसनियोंके हो सकते हैं, योग्य पुरुषोंके नहीं हो सकते । भव्य पुरुषोंको सदा इनसे दूर ही रहना चाहिये।

किया जाता है तथा पुरुषके साथ भी गुदमैथुन होता है। इसमें जघनको छोड़ बुरे मार्गसे शुक्रपात किया जाता है। औपरिष्टक तो तृतीया प्रकृतिके विषयमें होता है, इस कारण वह चित्र नहीं है किन्तु स्त्री पुरुषोंका तो यह होना चित्र है, क्योंकि जो शुक्रपातका मार्ग नहीं है उस मार्गसे पात किया जाता है। दक्षिणात्य कहनेसे दक्षिण देशकी प्रवृत्ति दिखाई है, कि इस देशके लोग इस 'अधोरत' को करते हैं ॥ ४९ ॥

पुरुषोपसृप्तकानि पुरुषायिते वक्ष्यामः ॥ ५० ॥

पुरुषके उपसर्पण तो पुरुषायित प्रकरणमें कहेंगे ॥ ५० ॥

पुरुषोपसृप्तानि तु संवेशनानन्तरत्वादवसरप्राप्तान्यपि पुरुषायिते वक्ष्यामः ५०

यद्यपि आसन बतानेके बाद पुरुषके सहवास करनेके ढंग भी बताने चाहिये थे, किन्तु उन्हें यहां न कहकर 'पुरुषायित' प्रकरणमें कहेंगे ॥ ५० ॥

चित्रवर्धन ।

तत्राप्युपयोगित्वाच्चित्रस्य वर्धनमाह—

उसमें भी उपयोगी होनेसे चित्रका वर्धन कहते हैं—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

पशूनां मृगजातीनां पतङ्गानां च विभ्रमैः ।
तैस्तैरुपायैश्चित्तज्ञो रतियोगान्विवर्धयेत ॥ ५१ ॥

इस विषयमें दो श्लोक हैं उन्हें यहीं कहते हैं कि—चित्तको जाननेवाला पुरुष, पशुओंके, मृगोंके जो २ उपाय देखनेमें आयें, उनसे एवं स्वरों और चेष्टाओंसे रतिके योगोंको बढ़ाये ॥ ५१ ॥

पशूनामिति । तत्राधोदशनाः पशवः । ऊर्ध्वाधोदशना मृगाः । पतङ्गाः पक्षिणः । तैस्तैरिति—ये ये प्रत्यक्षत उपलब्धाः । विभ्रमैरिति विचेष्टितैः स्वरकायगतैः । चित्तज्ञ इति—स्त्र्यभिप्रायं बुध्वेत्यर्थः । रतियोगानिति—रत्यर्थान्योगान् । विवर्धयेत्—अपरानपरान्प्रयोजयेदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

इनमें नीचेके दाँतवाले पशु एवम् ऊपर और नीचे दोनों तरफ दाँतोंवाले 'मृग' होते हैं। पतंगका अर्थ दीपकमें जलनेवाले जन्तु न होकर पक्षीमात्र अर्थ है। जो २ उपाय प्रत्यक्ष दीखें उन २ उपायोंसे एवम् पशु, मृग और पक्षियोंके कंठस्वर और शरीरकी चेष्टाओंसे जैसी स्त्रीकी इच्छा हो, उसी तरह रतिके लिये होनेवाले योगोंको बढ़ाये यानी दूसरे दूसरोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५१ ॥

चित्रोंके बढ़ानेका फल।

तद्विवर्धने किं फलमित्याह—

चित्ररत बताकर अब इनके प्रयोगोंके फल बताते हैं कि—

तत्सात्म्याद्देशसात्म्याच्च तैस्तैर्भावैः प्रयोजितैः ।
स्त्रीणां स्नेहश्च रागश्च बहुमानश्च जायते ॥ ५२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे संवेशनप्रकाराश्चित्ररतानि च षष्ठोऽध्यायः ।
आदित एकादशः ।

स्त्रीकी जैसी रुचि हो, उस देशका जैसा ढंग हो, उसीके अनुसार पशु, मृग और पक्षियोंके कंठस्वर और शरीरके ढंगसे सहवास करनेसे स्त्रियोंका स्नेह, राग और बहुमान पैदा हो जाता है ॥ ५२ ॥

तत्सात्म्यादिति—नायिकायाः प्रकृतिसात्म्यात् । देशसात्म्यं प्रागुक्तम् । तैस्तैरिति—पश्वादिविभ्रमैः । भावैरिति—भावहेतुत्वात्प्रयोजितैः, नायिकया प्रयोजिकया तदभिप्रायेण हि नायकेन प्रयुज्यमानत्वात् । भावैर्वा प्रयोजकैरिति योज्यम् । स्नेहः सक्तिः । रागस्तृप्तिः । बहुमानो गौरवमिति ॥ चित्ररतानि चतुर्दशं प्रकरणम् ॥ ५२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे संवेशनप्रकाराश्चित्ररतानि च षष्ठोऽध्यायः ।

जो स्त्रीकी प्रकृतिके अनुकूल पड़े एवम् जो जिस देशमें प्रचलित हो । पशु आदिके उन २ विभ्रमोंसे जो कि भावके कारण प्रयुक्त किये हों यानी प्रयुक्त करनेवाली स्त्रीके अभिप्रायसे पुरुषने प्रयुक्त किये हों । अथवा प्रयोजक भावोंसे प्रयुक्त किये हों यह योजना करनी चाहिये । स्नेह आसक्तिका नाम है । राग तृप्तिका नाम है, बहुमान गौरवका नाम है। यह चित्ररत नामका १४ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके षष्ठ अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

प्रहणनसीत्कार प्रकरण ।

एवं संविष्टायां यन्त्रयोगे प्राधान्येन प्रहणनमिति प्रहणनप्रयोगात्प्रहणनोद्भवत्वाच्च सीत्कृतस्य तद्युक्ता एव सीत्कृतक्रमा इति प्रकरणद्वयमत्राध्याये । यथा प्रहणनस्य प्रयोग इति सूचनार्थं क्रमग्रहणम् ।

इस प्रकारके आसनोंसे सहवासके लिये तयार हुई स्त्रीमें यंत्रयोग होनेपर प्रधानरूपसे प्रहणन होता है, इस कारण संवेशनके बाद प्रहणनके योग कहते हैं । प्रहणनसे सीत्कार होता है अतएव प्रहणनके साथ मिले हुए सीत्कारके क्रम भी कहेंगे । ये दो प्रकरण इस अध्यायमें हैं । जैसे प्रहणनका प्रयोग होता है एवं जिस तरह इसके बाद सीत्कारोंकी धाराएँ चलती हैं इस बातको सूचित करनेके लिये क्रम ग्रहण किया है ।

कामकी वामता ।

प्रहणनं द्वेषजननं कथं सुरतोपयोगीत्याह—

प्रहारसे तो द्वेष पैदा होता है, वह रतके उपयोगी कैसे हो सकता है ? इस शंकाका उत्तर देते हैं, कि—

कलहरूपं सुरतमाचक्षते । विवादात्मकत्वाद्वामशीलत्वाच्च कामस्य ॥ १ ॥

कलहरूप रतको कहते हैं, क्योंकि काम विवादात्मक है और वामशील है१॥

कलहरूपमिति—कलहसदृशमित्यर्थः । कथमित्याह—विवादात्मकत्वादिति । स्त्रीपुंसयोः स्वार्थसिद्धये परस्पराभिभवेन संप्रयुज्यमानत्वाद्विवादात्मकम् । वामशीलत्वाच्चेति—प्रतिकूलस्वभावत्वात्कामस्य । यत्सुकुमारक्रमलब्धजन्मनोऽपि मनोभवस्य सुरते निर्दयोपक्रमेणातिवाह्यमानत्वात् । तथा चोक्तम् [किरातार्जुनीये ९ । ४९]—'आहता नखपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्तनिपातैः । सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥ ' अत्रापिशब्दो भिन्नक्रमः । सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्तिरपि सुरतेषु वाम एवेति । तेन हेतुफलभेदेनावस्थानात्कामस्य स्वभावद्वयम् । एकः संप्रयोगेच्छालक्षणः । अन्यो विमृष्टिलक्षण इति ॥ १ ॥

लड़ाई जैसे सुरतको कहते हैं, क्योंकि स्त्रीपुरुष दोनों अपनी २ स्वार्थ-सिद्धिके लिये एक दूसरेका अभिभव करनेके लिये इसे प्रयुक्त करते हैं, इस कारण यह विवादात्मक है। इसके ऐसे होनेका कारण यह है, कि काम प्रति-कूल स्वभाववाला है। यह सुकुमारके क्रमसे पैदा होता हुआ भी सुरतमें निर्दय व्यापारसे इसका अतिवाहन किया जाता है। यही बात किरातार्जुनीय काव्यके ९-४९ के श्लोकमें भी दिखाई है कि—"सुरतके सुखके उद्दीपक होनेके कारण नाखूनोंके निशानोंके साथ आलिङ्गनमें आदर एवम् दांतोंके सघन निशानोंके साथ चुम्बनका आदर किया। यद्यपि काम सुकुमार करके प्रसिद्ध है पर वियो-गमें ही वाम हो यह बात नहीं, किन्तु सुरतमें भी वाम ही देखनेमें आता है।" श्लोकमें 'अपि' शब्द भिन्नक्रमका बोधक है कि वियोग और सुरतमें भी वह काम वाम ही है, जो कि अपने सुकुमारगुणसे यथेष्ट प्रसिद्ध है। इस कारण कामके दो स्वभाव हैं एक तो हेतु अवस्थाका स्वभाव है एवम् दूसरा फलकी अवस्थाका है। पहिला सहवासकी इच्छारूप है एवम् दूसरा भावप्राप्तिके समयका है ॥ १ ॥

हाथ मारनेकी जगहें।

तस्मात्प्रहणनस्थानमङ्गम्। स्कन्धौ शिरः स्तनान्तरं पृष्ठं जघनं पार्श्व इति स्थानानि ॥ २ ॥

इसकारण सुरतके प्रहार करनेके स्थान अंग हैं। वे स्कन्ध, शिर, स्तनान्तर, पीठ, जघन और पार्श्व हैं ॥ २ ॥

तस्य सुरतस्य। प्रहणनस्थानमङ्गमुपकरणम्। स्थानानीति प्रहणनस्य ॥ २ ॥

काम स्वभावसे वाम है, इस कारण जिन अंगोंपर प्रहार किये जाते हैं वे इस विपरीत कामके अंग हैं एवम् स्कन्ध आदि प्रहारके स्थान हैं ॥ २ ॥

चार तरहके प्रहणन।

तच्चतुर्विधम्—अपहस्तकं प्रसृतकं मुष्टिः समतलकमिति ॥ ३

प्रहणन चार तरहके हैं[२]—अपहस्तक, प्रसृतक, मुष्टि और समतलक ॥ ३ ॥

---

१ कोकने कहा है, कि मदनयुद्ध मोहन है, यद्यपि ताडन तकलीफका देनेवाला है तो भी इसका अंग ही है एवम् उसके कष्टसे होनेवाले सीत्कारें भी इसीके अंग हैं। तथा कामशास्त्रके दूसरे आचार्य्योंका भी यही मत है।

२ हाथको समतल करके यानी हथेलीसे वार करना समतल तथा उलटे हाथका वार करना अपहस्तक एवम् मुक्का मारना मुष्टि और हाथको सारी उँगलियोंसे मारना प्रसृतक कहाता है।

तदिति–प्रहणनं घात: चतुर्विधम्—अपहस्तकादि प्रहणनस्य चतुर्विधत्वात् । प्रहण्यते वा स्थानमनेनेति प्रहणनमपहस्तकादीति करणे ल्युट् । तत्रापहस्तको हस्तपृष्ठं प्रसृतांगुलि । प्रसृतकं वक्ष्यति । मुष्टिः प्रसिद्धः । समतलकं सुस्थिर-हस्ततलम् । यस्य मुस्तकेति प्रसिद्धिः ॥ ३ ॥

घात चार तरहके हैं, क्योंकि–अपहस्तक आदि प्रहणन चार ही तरहके हैं। जिससे स्थानपर प्रहार किया जाय वह प्रहणन कहाता है। ये अपहस्तक आदि हैं। हाथकी पीठको 'अपहस्तक' कहते हैं इसमें अंगुलियाँ फैली हुई रहती हैं। प्रसृतकको आगाड़ी कहेंगे। मुष्टि (मुका या मुट्ठी) प्रसिद्ध ही है। अच्छे प्रकारसे स्थापित किये हुए हाथके तलको 'समतलक' कहते हैं, इसको लोकमें 'मुस्तक' कहा करते हैं ॥ ३ ॥

प्रहणनमें सीत्कार कहनेका कारण ।

द्वितीयं प्रकरणं प्रहणनान्तर्गतमिति दर्शयन्नाह—

इस अध्यायका दूसरा प्रकरण जो सीत्कार है वह प्रहणन प्रकरणके ही अन्तर्गत है, इस बातको दिखानेके लिये सूत्र करते हैं, कि—

तदुद्भवं च सीत्कृतम् । तस्यार्तिरूपत्वात् । तदनेक-विधम् ॥ ४ ॥

प्रहणनसे सीत्कार पैदा होता है, क्योंकि सीत्कार दुःखस्वरूप है । वह अनेक तरहका होता है ॥ ४ ॥

तदुद्भवं चेति—तदुद्भवं प्रहणनाद्भवतीति । कुत एतदित्याह—तस्यार्ति-रूपत्वादिति, सीत्कृतं हि पीडया जन्यमानत्वात्तद्रूपमित्युक्तम् । यथा फलहेतु-प्रहणनात्पीडया सीत्कृतं क्रियते तथेहापि पीडाद्योतनार्थं यच्छब्दितं तत्सीत्कृत-मिव सीत्कृतं पूर्वाचार्यैः संज्ञितम् । नतु सीत्करणमेव सीत्कृतम् । यदाह—तदिति । सीत्कृतमनेकविधम् । हिंकारादिभेदात् ॥ ४ ॥

सीत्कार प्रहणनसे पैदा होता है, क्यों प्रहारसे पैदा होता है ? इसका उत्तर देते हैं, कि प्रहणनके प्रहारसे जब तकलीफ होती है तो उसके मारे मुँहसे सीत्कार निकलता है, इस कारण इसे दुःखरूप कहते हैं। हाथ मार-

---

१ 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'हन्' धातुसे 'करणाधिकरणयोश्च' इस सूत्रसे करणमें 'ल्युट्' होकर 'प्रहणन' शब्द बनता है ।

नेके स्थानपर हाथ मारनेंसे जलदी ही भावप्राप्ति होती है, इस कारण हाथ मारा जाता है । इससे पीड़ा होती है, जिससे सीकारे लेने लग जाते हैं । सीकारेका ही तात्पर्य्य सीत्कृत शब्दसे नहीं, किन्तु हाथ आदि मारनेकी तकलीफसे जो आवाजें निकलती हैं उन सबका सीत्कार शब्दसे ग्रहण किया है। उसी बातको दिखानेके लिये कहते हैं, कि भावप्राप्तिके समयके सीकारकी तरह यहाँ भी प्रहणनके वारकी पीड़ा दरसानेके मुखसे जो शब्द निकलता है वह भी सीकारे जैसा ही होनेके कारण उसकी भी पूर्वाचार्य्योंने सीत्कृत ही संज्ञा कर दी है। यही बात नहीं है कि मुखसे निकली हुई सीकारेकी आवाज ही 'सीत्कृत' कहाये। यही कारण है कि 'हिंकार' आदिके भेदसे उस सीकारेको अनेक तरहका कह रहे हैं, विना सीकारेका पूर्वोक्त अर्थ माने भेद नहीं हो सकते ॥ ४ ॥

आठ तरहके विरुत।

विरुतानि चाष्टौ ॥ ५ ॥

विरुत आठ हैं ॥ ५ ॥

विरुतानि तानि मूलवर्गेण संगृहीतानि सीत्कृतप्रकरण एव ध्वनिस्वभावत्वादुक्तानि । तेषां च रतिजन्यत्वात्प्रहणने चाप्रहणने च मनोज्ञत्वात्प्रयोगः सीत्कृतस्य तु प्रहणन एवेति विशेषः ॥ ५ ॥

ये विरुत मूलवर्गसे संगृहीत किये हैं, इनको भी एकप्रकारका ध्वनिरूप होनेके कारण इस सीत्कारप्रकरणमें ही संग्रह करके रख दिया है। ये सब

---

१ "पाणिपल्लवविधूननमन्तः सीत्कृतानि नयनार्धनिमेषाः ।
योषितां रहसि गद्गदवाचामस्त्रतामुपययुर्मदनस्य ॥"

रतिकेलिमें गद्गदवाणीवाली हुई स्त्रियोंका अधर पीडनके समय हाथोंका कँपाना, आखोंका थोड़ा मींचना तथा भीतरके सीकारें कामदेवकी तलवारें वन गये।

२ "खिद्यति कूणति वेल्लति विवलति निमिषति विलोकयति तिर्यक् ।
अन्तर्नन्दति चुम्बितुमिच्छति नवपरिणया वधूः शयने ॥"

नवसंगममें नवोढा जलदी ही थक गई। वह अनेक तरहके विरुतोंको कहने लग गई। उसके उछलने कूदने एवम् करवट फेरनेमें कमी न रही। आँखें मींचने लगी और टेढ़ा देखने लगी। इन सब कामोंको करतीवार दिलमें राजी थी पर चूंमना चाहती थी। इसमें रुदने विरुतोंका भी ग्रहण कर लिया है।

रतिसे पैदा होते हैं, इस कारण इनका प्रयोग होता है, चाहे प्रहणन किया जाय चाहे न किया जाय । उस समय वह सुन्दर लगता है, किन्तु सीकारें आदि तो हाथ मारनेपर ही होते हैं यह रुतोंमें सीकारोंसे विशेषता है ॥ ५॥

हिंकारस्तनितकूजितरुदितसूत्कृतदूत्कृतफूत्कृतानि ॥ ६॥

हिंकार, स्तनित, कूजित, रुदित, सूत्कृत, दूत्कृत और फूत्कृत, ये अव्यक्त अक्षर होते हैं ॥ ६ ॥

तत्र हिंकारो यः सानुनासिकेन हिशब्देन क्रियते । कण्ठनासिकाभ्यामूर्ध्वं गच्छन्मधुरो ध्वनिर्निष्पाद्यते । स्तनितम्—मेघस्येव यद्गम्भीरं ध्वनितम् तच्च कण्ठाद्धंशब्देन निष्पाद्यते । रुदितं प्रतीतम्, तच्च मनोहारि स्यात् । सूत्कृतं सूत्करणं च श्वसितापरनाम । कूजितदूत्कृतफूत्कृतानां लक्षणं वक्ष्यति । सप्तै-तान्यव्यक्ताक्षराणि ॥ ६ ॥

इनमें सानुनासिक हि शब्दसे हिंकार किया जाता है । सानुनासिकका तात्पर्य्य दिखाते हैं कि—' कण्ठ और नासिकासे हि शब्दको ऊंचा चढ़ता हुआ मधुर ध्वनिको निष्पन्न करता है ' यानी जो जोरसे ' हिं ' करनेसे हिंकार होता है । मेघकी तरह जो गंभीर ध्वनि की जाती है उसे ' स्तनित ' कहते हैं, यह कंठसे ' हं ' शब्दसे निष्पन्न होता है । रोनेको सब जानते ही हैं, यह भी किसी समयका सुन्दर हो सकता है । ' सूं सूं ' करनेका नाम सूत्कृत है, इसका दूसरा नाम ' श्वसित ' भी है । कूजित, दूत्कृत और फूत्कृ-तके लक्षण अगाड़ी कहेंगे । ये सात ही अव्यक्त अक्षर हैं ॥ ६ ॥

' अरी माँ ' आदिका प्रयोग ।

अम्बार्थाः शब्दा वारणार्था मोक्षणार्थाश्चालमर्थास्ते ते चार्थयोगात ॥ ७ ॥

अरी माँ इत्यादि शब्द, ऐसा न करो ऐसे शब्द, बस रहने दो, काफी हो चुका ऐसे शब्द और छोड़ दो २ ऐसे शब्द तथा मर गई २ आदि भी दर्दके शब्द होते हैं ॥ ७ ॥

तत्र अम्बार्था इति—अम्ब मातारित्यादयः । वारणार्था—मा तिष्ठेत्यादयः । अलमर्था—भवतु पर्याप्तमित्येवमादयः । मोक्षणार्था स्त्वेत्यज मुञ्चेत्यादयः । ते ते चार्थयोगादिति—अन्येऽपि पीडार्थयुक्ता मृतास्मि परित्रायस्वेत्येवमादयः ॥ ७ ॥

अम्मा, मा, माता आदि बिल्लाना, ऐसा न करो कहकर रोकना, बस काफी हो लिया रहने दो कहना, छोड़ दो २ कहकर हल्ला मचाना एवम् और २ भी ऐसी ही बातें कहना जिससे कष्ट जाहिर हो, जैसे कि मर गई २ बचाओं बचाओं, आओ २ आदि ॥ ७ ॥

पक्षियोंकी ध्वनि ।

पारावतपरभृतहारीतशुकमधुकरदात्यूहहंसकारण्डवलावकविरुतानि सीत्कृतभूयिष्ठानि विकल्पशः प्रयुञ्जीत ॥ ८ ॥

पारावत, परभृत, हारीत, शुक, मधुकर, दात्यूह, हंस, कारण्डव और लावकके शब्दरूप बहुतसे सीत्कारोंका विकल्पसे प्रयोग करे ॥ ८ ॥

पारावतादीनामिव विरुतानि पारावतविरुतानि । दात्यूहो यस्य 'डाउक' इति प्रसिद्धिः । सीत्कृतभूयिष्ठानीति–सीत्कृतबहुलानि । प्रहणनकालेऽपि सीत्कृतस्य प्राधान्यादन्तरा प्रयुञ्जीतेत्यर्थः । सीत्कृतं हि स्वरान्तरसंश्लिष्टं मनोहारि

---

१ हाथ मारनेसे जो पीडित होता है वह इस प्रकार हल्ला मचाता है, इन हाय हू हल्लोंका प्रायः स्त्रियां ही ज्यादा प्रयोग करती हैं । इन बातोंका कोई ही समय होता है, जिस समय ये प्रयोगमें आती हैं । यद्यपि ये दर्द भरी आवाजे हैं, किन्तु किसीके मनोरंजनका सामान भी बन जाती हैं । यही कारण है, कि कहीं २ इनका प्रयोग बिना कष्टके भी हो जाता है । मुख्यरूपसे ये बातें प्रथम सहवासके समयमें देखी जाती हैं । इसीपर किसी कविने अर्ध हिन्दी मिश्रित कविता की है कि–" करोति शब्दं अरी माँ मरी री अरी माँ मरी री " । ' बस २ रहने दो ' का तो काव्योंमें भी प्रयोग देखते हैं, इसके कुछ उदाहरण यहीं दिखाते हैं कि–

" संदष्टाधरपल्लवा सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती,
मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्तितभ्रूलता ।
सीत्काराञ्चितलोचना सरभसं यैश्चुम्बिता मानिनी,
प्राप्तं तैरमृतं मुधैव कथितो मूढैः सुरैः सागरः । "

रतिकेलिमें जब प्यारेने अधरपल्लव काट लिया तो प्रेयसी चकित होकर हाथोंको कँपाती हुई कहने लगी हो कि ए निर्दयी ! तू मुझे छोड़ दे २ इस बातके कहनेमें भौंहें भी नाँचती जाती हों, मुखसे नाराजीके शब्द भी निकलते जाते हों, आँखें सीकारोंके साथ नीचेकी ओर झुकती जाती हों । ऐसी मानिनीका जिसने बलपूर्वक एकदम चुम्बन किया, उन्हें अमृत मिल गया । ऐसे ही पुरुषोंका समुद्रमथन है । तत्त्वके न जाननेवाले मूर्ख देवताओंने तो व्यर्थ ही समुद्र मथन किया ।

स्यात् । विभागश्लिष्टगीतवत् । तत्रापि विकल्पशो विकल्पं विकल्पम् । एकैकमित्यर्थः ॥ ८ ॥

पारावत–कबूतर, परभृत–कोयल, हारीत–सुन्दर चलने वाला पक्षी, जिसे हरियाल भी कहते हैं, दात्यूह–इसको 'डाउक' कहा करते हैं, हंस प्रसिद्ध ही है, कारंडव एक जलपक्षी है। लावक–लवा, ये जिस तरह बोलते हैं उसी तरह बोलना या इनकी बोलीकी नकल करना है। इन बहुतसे सीत्कारोंका प्रयोग करे। प्रहणनके समयमें तो सीत्कार मुख्य है ही, इस कारण उस समय तो यह होना ही चाहिये किन्तु विना प्रहणनके भी यानी विना कष्ट या हाथहूथके मारे भी 'सीत्कार' का प्रयोग करना चाहिये। सीत्कार दूसरे स्वरसे मिला हुआ अच्छा लगता है, जिस प्रकार कि विभागोंसे संयुक्त हुआ यानी तरह २ की रंगतोंको लिये हुआ गाना अच्छा लगता है। इसमें भी एक बातका ध्यान रखना चाहिये कि ये बदल २ कर बोलने चाहियें ॥८॥

मुष्टीके मारनेकी विधि।

प्रहणनसीत्कृतयोर्यत्र देशेऽवस्थायां च प्रयोगस्तदुभयमाह—

जिस जगह एवम् जिस अवस्थामें प्रहणन और सीत्कारोंका प्रयोग होता है, उस जगह और उस दशाको बताते हैं, कि—

उत्सङ्गोपविष्टायाः पृष्ठे मुष्टिना प्रहारः ॥ ९ ॥

गोदीमें बैठी हुईकी पीठमें मूंका मारना चाहिये ॥ ९ ॥

उत्सङ्गोपविष्टाया इति नायकस्योत्सङ्गे । पृष्ठे मुष्टिना प्रहारः । नान्यैः । अननुरूपत्वात् ॥ ९ ॥

जब स्त्री पुरुषकी गोदीमें बैठी हो तो उस समय उसकी पीठपर मुका मारा जा सकता है, क्योंकि इस दशामें यहीं उचित है, दूसरा उचित नहीं है ॥९

मारखानेवालीके कार्य्य।

तत्र सासूयाया इव स्तनितरुदितकूजितानि प्रतीघातश्च स्यात् ॥ १० ॥

मूंकाके लगनेपर सासूयकी तरह स्तनित, कूजित और रुदित करती हुई उसी तरह बदलेका मुका मारना चाहिये ॥ १० ॥

---

१ "वल्गत्कुचा फल्गुकपोतनादा, मनस्तदीयं मदयां चकार।"
विपरीत रतिके समय देवदेवीके स्तन खूब उछल रहे थे। रतिश्रमसे थके हुए कबूतरके समान शब्द करने लगी। इस तरह उसके मनको मत्त बना दिया।

तत्रेति–मुष्टिना प्रहारे । सासूयाया इव–प्रहारमक्षममाणाया इव । प्रयोक्त्या-स्तदार्तिद्योतकानि स्तनितकूजितरुदितानि स्युः, तत्प्रहारानुरूपत्वात् । प्रतीघातश्चेति–मुष्टिनैव तत्पृष्टे प्रतीघातः स्यात् ॥ १० ॥

मुक्का खानेके बाद मानों यह नहीं सह सकी, इस तरह स्त्रीके मुक्काकी चोटकी तकलीफको बतानेवाले उसके ही मुँहसे उसीके लिये हुए स्तनित, कूजित और रुदित होते हैं । ये जैसा मुक्का लगा हो वैसे ही होने चाहिये एवम् उसीके अनुसार उसे बदलकर पुरुषकी पीठपर भी मूंका ठोक देना चाहिये ॥ १० ॥

अपहस्तकके प्रहारकी विधि ।

युक्तयन्त्रायाः स्तनान्तरेऽपहस्तकेन प्रहरेत् ॥ ११ ॥

चित्त लेटकर यंत्रसंयोग किये हुईके स्तनोंके बीच, अपहस्तसे प्रहार करे ॥

युक्तयन्त्राया उत्तानायाः स्तनान्तरे स्तनयोर्मध्ये अपहस्तकेन प्रहरेत् । नान्यैः । अननुरूपत्वात् ॥ ११ ॥

जो स्त्री सोहबत करती हुई, चित्त लेट रही हो उसके स्तनोंके बीचमें अपहस्तसे प्रहार करना चाहिये दूसरेसे नहीं, क्योंकि उस समय इसीका मारना उचित है (अपहस्तक तीसरे सूत्रमें बता चुके हैं) ॥ ११ ॥

वारोंका उतार चढ़ाव ।

मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमा परिसमाप्तेः ॥ १२ ॥

मन्द प्रहारसे प्रारंभ करके जबतक राग पूरा न हो उसीके अनुसार प्रहार बढ़ाना चाहिये ॥ १२ ॥

मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमिति क्रियाविशेषणम् । आरम्भे मन्दयावृत्त्या प्रहारः । ततो यथा रागो वर्धते तथाधिक एवेत्यर्थः । आ परिसमाप्तेस्तृप्तिं यावत् । स्तनान्तरे हि रागास्पदस्य हृदयस्यावस्थानात् । योषितो हि त्रीणि रागस्थानानि—शिरो जघनं हृदयं चेति । तेषु हन्यमानेषु चिरचण्डवेगापि रागं मुञ्चति ॥ १२ ॥

---

१ सूत्रमें जो पूर्वसूत्रसे ' प्रहरेत् ' की अनुवृत्ति आती है, उसी क्रियाके मन्दोपक्रम और वर्धमान राग विशेषण हैं, इसी कारण यह अर्थ निकल आता है । आरंभमें मन्दा एवम् रागकी वृद्धिके अनुसार बड़ा प्रहार करना चाहिये ।

आरंभमें हलके हाथसे वार करना चाहिये, फिर ज्यों २ राग बढ़ता जाय त्यों २ प्रहार भी जोरसे करते जाना चाहिये, जबतक कि राग समाप्त न हो जाय एवम् तृप्ति न हो, रागकी समाप्ति एवम् तृप्ति हुए पीछे विरत हो जाना चाहिये । रागके घर हृदयकी स्थिति स्तनोंके बीचमें रहती है, क्योंकि शिर, जघन और हृदय ये तीन स्त्रियोंके रागके स्थान हैं । इनके ऊपर हाथोंके विधि-पूर्वक लगानेसे देरसे स्खलित होनेवाली स्त्री भी जलदी ही स्खलित हो जाती है ॥ १२ ॥

सीत्कारोंके प्रयोगका समय ।

तत्र हिंकारादीनामनियमेनाभ्यासेन विकल्पेन च तत्कालमेव प्रयोगः ॥ १३ ॥

इसमें हिंकारादिकोंका अनियमसे, अभ्याससे और विकल्पसे उसी समय प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

तत्रेति—अपहस्तप्रहणने । हिंकारादीनां सप्तानाम् । अनियमेनेति—मृदुना हृदयस्य हन्यमानत्वात्सर्वेषामेवार्तिसूचकानां संभवः । विकल्पेन—मृदुमध्यातिमात्रभेदेन । अभ्यासेन च—पौनःपुन्येन । तत्कालमेवेति—अपहस्तप्रहणनकालमेव । तस्य समाप्त्यवधिकः कालः ॥ १३ ॥

अपहस्तादिका वार करते ही, हिं हिं आदिमेंसे किन्हींको मृदु, मध्य और किन्हींको अत्यन्त जोरसे वारंवार अपहस्तके मारनेके समय ही कहना चाहिये, जबतक कि इनकी समाप्ति न हो । ये शब्द कष्टके सूचक हैं, इस कारण कोई भी कहा जा सकता है, यह नियम नहीं कि यही कहा जाय एवम् जिसे कहे उसे अन्ततक ही कहती रहे ॥ १३ ॥

प्रसृतकके वारकी विधि ।

शिरसि किंचिदाकुञ्चिताङ्गुलिना करेण विवदन्त्याः फूत्कृत्य प्रहणनं तत्प्रसृतकम् ॥ १४ ॥

विवाद करती हुईके शिरमें कुछ हाथकी अंगुलियोंको सिकोड़कर फूत्कार करके मारना ' प्रसृतक ' है ॥ १४ ॥

किंचिदाकुञ्चितांगुलिना—फणाकारेणेत्यर्थः । विवदन्त्या इति । अपहस्तेनाऽसुखायमाना यदि प्रहारान्तराकांक्षया प्रत्यवतिष्ठेत्तदास्याः प्रथमे रागास्पदे

शिरसि तदनुरूपेण प्रसृतकेन प्रहणनमपरं मन्दोपक्रमं वर्धमानरागमा परिसमाप्तेर्विधेयम् । फूत्कृत्येति रागदीपनार्थम् ॥ १४ ॥

यदि अपहस्तके वारसे सुख न मिले एवम् दूसरे वारोंके लिये बराबरकी कर रही हो तो हाथको फणकी तरह फैलाकर उसके योग्य रागके पहिले स्थान शिरमें मारे । मारतीवार हलका, धीरा और जोरका तो रागके अनुसार होना चाहिये । जब राग समाप्त हो ले तो इसे भी खतम कर देना चाहिये । रागको प्रदीप्त करनेके लिये फूत्कार किया जाता है ॥ १४ ॥

वार सहनेवालीके कार्य ।

तत्रान्तर्मुखेन कूजितं फूत्कृतं च ॥ १५ ॥

इसमें अन्तर्मुखसे कूजित और फूत्कार होता है ॥ १५ ॥

तत्रेति—प्रसृतकाघाते । कूजितं फूत्कृतं च नायिकायाः स्यात् । कथमित्याह—अन्तर्मुखेनेति । मुखस्यान्तः स्थानमन्तर्मुखम्, तत्र कूजितम्, तत्संवृतेन कण्ठेन । कूजत्यनेनाव्यक्तं शब्दितम् । यदि विवृतेन जिह्वामूलेन च तत्फूत्कृतम् । तस्यानुकार्यं वक्ष्यति—बदरस्येवेति ॥ १५ ॥

प्रसृतकके वार होनेपर स्त्रीको उसी समय 'कूजित और फूत्कृत' करना चाहिये । यह कैसे करना चाहिये, इसका उत्तर देते हैं कि अन्तर्मुखसे । मुखके भीतरके स्थानको अन्तर्मुख करते हैं, उसमें जो 'कूजित' होता है वह संवृतकंठसे होता है, क्योंकि इससे अव्यक्त शब्द कर सकता है । इसी तरह यह एक अव्यक्त शब्द है, जिसे 'कूं कूं कूं' कहते हैं । यदि विवृतकंठके साथ जिह्वामूल मिलाकर बोला जाय तो फूत्कार होता है, इसे 'फू फू' की सूरतमें लोग बोलते हैं। इसका अठारहवें सूत्रमें अनुकरण बतायेंगे॥ १५ ॥

श्वास और रोदनका समय ।

रतान्ते च श्वसितरुदिते ॥ १६ ॥

रतके अन्तमें श्वासके बढ़ जानेसे 'सूँ सूँ' और रुदन होता है ॥ १६ ॥

रतान्ते च श्वसितरुदिते । तदानीं धातुक्षयाच्छ्रमोत्पत्तेः । श्वसितं रुदितं च मधुरकोक्त्या प्रयोक्तव्यम् ॥ १६ ॥

धातुके क्षय होनेसे सहवास करनेवाले थक जाते हैं, इस कारण उनके श्वास जोरसे चलने लग जाते हैं । जिससे 'सूँ सूँ' की आवाज निकलने

लग जाती है । उस समयका रोना भी बड़े मीठे कंठका होता है तथा होना भी वही चाहिये ॥ १६ ॥

दूत्कृत ।

वेणोरिव स्फुटतः शब्दानुकरणं दूत्कृतम् ॥ १७ ॥

फूटते हुए वांसके शब्दके अनुकरणका नाम 'दूत्कृत' है ॥ १७ ॥

वेणोरिव पुरुषव्यापारेण ग्रन्थिस्थाने स्फुटतस्तच्च दूत्कृतम् ॥ १७ ॥

पुरुषके व्यापारसे गांठकी जगहसे फूटते हुए जो शब्द होता है, उसे 'दूत्कार' कहते हैं। रतके समय फूत्कारकी भी वही ध्वनि होनी चाहिये१७

फूत्कृत ।

अप्सु बदरस्येव निपततः (शब्दानुकरणं) फूत्कृतम् १८

पानीमें बेरके गिरतीवार जो ध्वनि होती है, उसी तरहकी आवाज करनेको 'फूत्कार' कहते हैं ॥ १८ ॥

ताल्वग्रादुपरिभागे जिह्वाग्रे संश्लेषादुत्पद्यते । बदरस्येवेति वृत्तगुटिकोपलक्षणार्थम् । निपततः । शब्दानुकरणमिति वर्तते । यस्येदं लक्षणं सलिले शर्करापातकालनिःस्वनितध्वनीति ॥ १८ ॥

तालूके अगाड़ीके ऊपरके भागसे जीभकी नोंक लगा देनेसे जो शब्द होता है वह पलु २ ह । यह शब्द तभी होता है जब कि बेर ऊपरसे पानीमें अपने आप गिरता है। बदर गोल गोली जैसा होता है, जो उससे शब्द हो सकता है, वह वैसे ही दूसरोंके गिरने पर भी हो सकता है; अतएव बेर उनका भी उपलक्षक है। इसका ही अनुकरण यहां भी किया गया है। टीकाकार इसका अपना लक्षण बताते हैं, कि पानीमें सक्कर डालती बार जो ध्वनि होती है वैसी ही ध्वनि 'फूत्कार' कहाती है ॥ १८ ॥

इन सबका जबाव ।

सर्वत्र चुम्बनादिष्वपक्रान्तायाः ससीत्कृतं तेनैव प्रत्युत्तरम् ॥ १९ ॥

चुम्बनादिकोंमें सर्व जगह जो किया हो उसीसे सीत्कारके साथ उत्तर है१९

चुम्बनादिष्वपक्रान्ताया इति—चुम्बननखदशनच्छेद्येषु पुरुषेणाभियुक्तायाः ।

---

१ मेरी समझमें तो यह ध्वनि पानीमें चीनीके ओले डालनेसे परिस्फुट सुनाई पड़ती है।

सत्सीत्कृतं तेनैव प्रत्युत्तरं येनैव चुम्बनादीनामन्यतमेनोपक्रान्ता । तेनैवहिंकारादिसहायेन प्रत्युत्तरेदित्यर्थः । अनेन 'कृते प्रतिकृतं कुर्यात्' इति स्मारयति १९

पुरुषने चुम्बन, नखच्छेद और दन्तच्छेदमेंसे जो किया हो स्त्रीको भी उसके वही करना चाहिये, जो कि पुरुषने किया है। जैसे उसके वारपर स्त्रीने सीत्कार आदि किये हों तो उसी तरह स्त्रीके वारपर पुरुषको भी करने चाहियें। अथवा जैसे 'हिँ' आदि स्त्री करे, उसी तरह पुरुषको भी करने चाहियें। इस कथनसे ३३८ वें पृष्ठके ३२ वें सूत्रकी इस बातका स्मरण दिलाते हैं, कि 'सामनेवालेके करनेपर उसी तरह आप भी करे'॥१९॥

समतलका वार एवम् बादके कार्य्य ।

रागवशात्प्रहणनाभ्यासे वारणमोक्षणालमर्थानां शब्दानामम्बार्थानां च सतान्तश्वसितरुदितस्तनितमिश्रीकृतप्रयोगा विरुतानां च । रागावसानकाले जघनपार्श्वयोस्ताडनमित्यतित्वरया चापरिसमाप्तेः ॥ २० ॥

रागके कारण वारंवार वार हों तो बचाना, छुड़ाना और रहने देना, इन अर्थोंवाले शब्दोंका तथा अरी माँ आदि अर्थवाले शब्दोंका प्रयोग खिन्नता, श्वास, रोदन और विरुतोंको साथ मिलाकर होना चाहिये । रागकी समाप्तिके समय अत्यन्त फुरतीके साथ जघन और पार्श्वमें हाथोंके वार होने चाहिये, रागकी समाप्ति होनेसे पहिले पहिले ॥ २० ॥

रागवशात्प्रहणनाभ्यास इति । यदा रागस्योद्रेकान्नायकः पौनःपुन्येन प्रहरेत्तदा वारणार्थानां प्रयोगो युक्तः। किंरूप इत्याह—सतान्तेति । सह खिन्नाभ्यां श्वसितरुदिताभ्यां वर्तते यत्र स्तनितं तेन योजित इत्यर्थः । पारावतादिविरुतानां च प्रयोग एवंविध एव । रागावसानकाल इति—लिङ्गादासन्नवर्तिनी रतिरिति ज्ञात्वा जघने तृतीये रागास्पदे पार्श्वयोः कक्षाधस्ताडनम् । समतलेनेति पारिशेष्यात् । अन्ये 'समतलकेन' इति पठन्त्येव । अतित्वरयेति—विश्रब्धिकया हि ताडने मार्गापन्ना हि रतिर्निवर्तते ॥ २० ॥

जब पुरुष रागके बढ जानेके कारण वारंवार प्रहार करे उस समय अरी माँ, ऐसा न करो, बस २ हो लिया, छोड़ दो २ इन अर्थोंवाले शब्दोंका प्रयोग करना उचित है । उसका रूप क्या है ? इसके उत्तरमें कहते हैं, कि उसमें

खिन्न हुए श्वास और रोदनके साथ स्तनित होना चाहिये । ऐसी ही दशामें कबूतर आदिकोंकी बोलीकी ही नकल होनी चाहिये । जलदी ही स्खलित होनेके चिह्नोंसे स्खलित होनेके समयको जानकर, रागके दूसरे स्थान जघन और तीसरे स्थान काखोंके नीचे बगलोंमें समतल हाथसे वार करने चाहिये, क्योंकि इसीका वार बाकी रह गया है और सबोंका बता चुके हैं । दूसरे 'समतल हाथसे वार करे' ऐसा कह रहे ही हैं । जलदी न करके देरसे हाथ मारनेमें क्षरणके मार्गमें आई हुई भी रति रुक जाती है; स्खलित नहीं हो पाती ॥ २० ॥

इसके सीत्कार ।

तत्र लावकहंसविकूजितं त्वरयैव । इति स्तननप्रह-णनयोगाः ॥ २१ ॥

इसमें लवा और हंसकी बोलीकी नकल भी जलदी ही करनी चाहिये । यह स्तनन, प्रहणनका प्रकरण पूरा हुआ ॥ २१ ॥

तत्रेति—समतलकरताडने । लावकहंसयोरिव शब्दितं कूजितं स्यात् मृदु-मधुरत्वात् । तच्च त्वरयैव । प्रहणनस्य त्वरितत्वात् । स्तननप्रहणनयोगा इति—सीत्कृतविरुतात्मनः शब्दितस्य प्रहणनस्य च प्रयोगा उक्ताः ॥ २१ ॥

समकरके प्रहारमें लावक और हंसकी आवाज करनेके लिये तो इसलिये कहा गया है, कि वह मृदु और मधुर होता ह । वह भी जलदी ही होना चाहिये, क्योंकि वार भी तो जलदी ही होता है । ये सीत्कार, 'हिं' आदि और पक्षियोंकी बोली एवम् हाथ मारनेके प्रयोग पूरे हुए ॥ २१ ॥

प्रहणन और सीत्कारकी स्वभावसे व्यवस्था ।

स्त्रीपुंसयोः प्रहणनसीत्कृतेषु कस्य किं सहजं तेज इत्याह—

स्त्री पुरुषोंके प्रहणन और सीत्कारोंमें किसका कौन स्वाभाविक है? इसका उत्तर देते हैं—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

पारुष्यं रभसत्वं च पौरुषं तेज उच्यते ।
अशक्तिरार्तिर्व्यावृत्तिरबलत्वं च योषितः ॥ २२ ॥

इस विषयमें दो श्लोक हैं कि—कठोरता और साहस पुरुषका सहज स्वभाव है एवम् अशक्तता, पीडा, रोकना और निर्बलपना स्त्रीका स्वभाव है॥

पारुष्यमिति चेतसः शरीरस्य च कठोरता । रभसत्वमित्यविमृश्यकारिता धाष्टर्यं च । एतदुभयं पुरुषस्येदं तेजो धर्म इत्यर्थः । तद्योगात्पुरुषः प्रहरति । अशक्तिर्हन्तुमसामर्थ्यम् । हस्तसौकुमार्यादार्तिः पीडा । घ्नत्या व्यावृत्तिः । पुरुषेण हन्तुं नियुक्तायाः स्त्रिया अबलत्वं निष्प्राणता । स्वयमीषदाहरणात् । एते स्त्रैणा धर्माः । तद्युक्तत्वात् । न प्रहणनम् । सीत्कृतमेव तदुद्भवम् । अतः सीत्कृतप्रहणने विषयप्रतिनियते ॥ २२ ॥

पुरुषोंका शरीर और चित्त कठोर होता है, विना विचारे कुछ भी कर डालना और धृष्टता रहती है । कठोरता आर साहस ये दोनों उनके तेज यानी सहज धर्म हैं, इन्हीं दोनोंके आवेशमें पुरुष हाथ मार देता है । पर स्त्रियोंमें मारनेकी शक्ति नहीं है । उनके हाथ नाजुक होते हैं, इस कारण मारनेमें उन्हें कष्ट होता है । वह मारती हुई रुक जाती है । यदि पुरुष उसे मारनेमें नियुक्त भी कर दे तो भी वह स्वयं कमजोर है, इस कारण थोड़ा ही मार सकती है । ये स्त्रियोंके स्वभाव हैं, इस कारण इन स्वभावोंसे वे मार नहीं सकतीं । अतएव उसके तो प्रहारसे सीकारे आदि होने स्वाभाविक हैं, इस कारण सीत्कृत स्त्रियोंमें एवम् प्रहणन पुरुषोंमें नियत है ॥ २२ ॥

रागसे विपरीतता ।

रागात्प्रयोगसात्म्याच्च व्यत्ययोऽपि क्वचिद्भवेत् ।
न चिरं तस्य चैवान्ते प्रकृतेरेव योजनम् ॥ २३ ॥

कहीं रागसे प्रयोगकी अनुकूलतासे विपरीतता भी देखी जाती है; पर वह बहुत समय तक नहीं रहती, अन्तमें फिर प्रकृतिस्थ हो जाते हैं ॥ २३ ॥

क्वचिदिति न सर्वत्र रते व्यत्ययोऽपि स्यात् । कारणमाह—रागप्रयोगसात्म्यादिति । रागस्य प्रकर्षेण योगादेशसात्म्याच्च स्त्री स्वधर्मांस्त्यक्त्वा पौरुषं तेजो बिभ्रती प्रहन्ति तदा पुरुषः स्त्रीप्रहणनार्थं स्वधर्मं त्यक्त्वा तद्धर्मानालम्ब्य सीत्कृतविरुतानि कुर्यात् । तानपि न चिरम् । कियतीमपि कालकलां व्यत्ययः स्यात् । ततः किं स्यादित्याह—तस्य चैवेति । तस्यैव व्यत्ययस्यान्ते प्रकृतेरेव योजनं स्यात्, यथा स्वतेजसा स्त्रीपुंसयोर्वर्तनमित्यर्थः । तदेवं व्यत्ययप्रकृतियोजनाभ्यां प्रवृत्तेयाता (?) मा समाप्तिः । रागप्रयोगसात्म्याभावे तु प्राक्तन एव विधिः । तत्र व्यत्ययाभावात् ॥ २३ ॥

पहिले श्लोककी कही बात सार्वत्रिक नहीं है, कहीं उसमें विपरीतता भी देखी जाती है, इसका कारण सूत्रकार यही बता रहे हैं कि या तो रागके बेहद बढ़ जानेसे ऐसा होता है या देश और अपनी अनुकूलतासे ऐसा होता है कि अपनी आदतोंको छोड़ पुरुषकीसी कठोरता धारण करती हुई पुरुषपर अपहस्त आदिके वार करती है । उस समय पुरुषको चाहिये कि वह अपनी कठोरता आदिको छोड़कर स्त्रियोंकी तरह सीत्कार और विरुत करे । वह भी देरतक नहीं; किन्तु थोड़े ही कालतक विपरीत भाव रहता है । प्रकृतिस्थ होनेके बाद क्या होना चाहिये, इसका उत्तर देते हैं कि उस विपरीत भावके बाद स्त्रीपुरुषोंको वही व्यवहार करना चाहिये—जो कि उनका स्वाभाविक व्यवहार है । इसी तरह स्वाभाविक भाव और विपरीत भावोंसे व्यवहार करते रहें, जबतक कि दोनों स्खलित न हो लें । राग और प्रयोगकी अनुकूलताके अभावमें तो पुरानी ही विधि हैं ॥ २३ ॥

दाक्षिणात्योंके चार प्रहणन ।

प्रहणनं चतुर्विधमुक्तं यथा तदष्टधा दर्शयन्नाह—

अपहस्तक आदि चार प्रहणन कह दिये हैं तथा चार प्रहणन और कहे देते हैं जिससे आठ हो जाते हैं—

कीलामुरसि कर्तरीं शिरसि विद्धां कपोलयोः संदंशिकां स्तनयोः पार्श्वयोश्चेति पूर्वैः सह प्रहणनमष्टविधमिति दाक्षिणात्यानाम् । तद्युवतीनामुरसि कीलानि च तत्कृतानि दृश्यन्ते । देशसात्म्यमेतत ॥ २४ ॥

छातीपर कीला, शिरपर कर्तरी, कपोलोंपर विद्धा एवम् स्तन और बगलोंमें संदंशिका चलती है, इस प्रकार चार ये और चार पहिले सब मिलकर आठ तरहका प्रहणन दाक्षिणात्योंका दीखता है । उनकी युवतियोंके उरपर कीला एवम् उसके कार्य्य देखे जाते हैं । यह सब देशाचार है, इसकारण जहांका है वहीं अनुकूल है ॥ २४ ॥

कीलमुरसीति । तत्र मुष्टिरेव तर्जनीमध्यमयोर्बहिः पृष्ठभागेन निष्क्रान्तयोरग्यंगुष्ठयोजनात्कीला । तयाधोमुख्या ताडनम् । कर्तरी द्विविधा, प्रसृतकुञ्चितांगुलिभेदात् । तत्र प्रसृतांगुलिर्द्विविधा । हस्तेनैकेन भद्रकर्तरी । द्वाभ्यां संश्लिष्टाभ्यां यमलकर्तरी । या कुञ्चितांगुल्यंगुष्ठाग्रोपरिन्यस्तकुञ्चिततर्जनीका सा

शब्दकर्तरी प्रयुज्यमाना श्लथांगुलित्वादमितशब्दवती भवति । केश्चिदुत्पलपत्रि-केत्युच्यते । उभाभ्यामपि कनिष्ठिकाग्रभागेण शिरसि ताडनम् । तर्जनीमध्यम-योर्मध्यमानामिकयोर्वा मध्येनांगुष्ठं निष्काश्य बद्धा मुष्टिर्विद्धा । तयांगुष्ठकवदनया कपोलयोर्व्यधनमेव ताडनम् ।

कीला—अष्टभागसे बाहिर निकली हुई अंगूठाके पासकी अँगुली और बिचली अंगुलीके ऊपर अँगूठा लगा देनेसे कीला बन जाती है । इसका मुख नीचेकी ओर करके फिर इससे वार किया जाता है । कर्तरी—फैली हुई अँगुली और सिकोड़ी हुई अंगुलीके भेदसे कर्तरी दो तरहकी है । फैली हुई अंगुलीवाली कर्तरी भी दो तरहकी है—एकहाथसे भद्रकर्तरी तथा दोनों हाथोंको मिला-कर यमलकर्तरी होती है । कुंचितांगुली—यानी अँगुलियोंको सिकोड़कर बनाई गई कर्तरी अंगूठाकी नोकपर रखी गई सिकुड़ी तर्जनी रहती है । इसे शब्दकर्तरी भी कहते हैं । इसमें अंगुली ढीली रहती हैं, इसका प्रयोग करनेपर बड़ा भारी शब्द होता है । कोई इसे उत्पलपत्रिका भी कहते हैं । दोनोंके द्वारा भी कानिष्ठिकाके अग्रभागसे शिरमें ताडना दी जाती ह । विद्धा—तर्जनी और मध्यमाके अथवा मध्यमा और अनामिकाके बीचमें अँगूठेको निकालकर मुट्ठी मारनेसे विद्धा बन जाती है । इससे अँगूठेकी तरह कपोलोंपर विधसना, दबाना, चुभोना या रिघसा देना ही इससे ताडन करना है ।

मुष्टिरेव तर्जन्यंगुष्ठकाभ्यां तर्जनीमध्यमाभ्यां वा संदंशनात्संदंशिका । तया स्तनयोः पार्श्वयोश्च मलनपूर्वकं मांसस्याकर्षणमेव ताडनम् । पूर्वैरित्य-पहस्तादिभिः । अष्टविधमिति दाक्षिणात्यानाम् । आचार्याणां तु चतु-र्विधमस्ति । एतत्प्रत्यक्षेण दर्शयन्नाह—कीलानि चेति । तद्युवतीनां दाक्षिणा-त्यतरुर्णानाम् । उरसीत्युपलक्षणम् । उरसि कीलाकृतम् । शिरसि सीमन्तमुखे कर्तरीकृतम् । कपोलयोर्विद्धाकृतम् । देशसात्म्यमेतत् । यद्रागवशात्तत्कृतं चिह्नं वैरूप्यकारणमपि श्लाघ्यते ॥ २४ ॥

संदंशिका—मुट्ठी ही तर्जनी अंगूठा अथवा तर्जनी और मध्यमासे दबानेसे "संदंशिका" बन जाती है । इससे स्तनोंका और बगलोंका मलनेके साथ मांसका आकर्षण कर लेना ही ताडन है । तथा चार पहिले अपहस्त

आदि हैं उनसे भी वार होता है, इस प्रकार दाक्षिण देशके रहनेवालोंके यहां आठ तरहके वार होते हैं। कामशास्त्रके आचार्य्य तो 'चार तरहके ही वार होते हैं' ऐसा कहते हैं। कीला आदिको प्रत्यक्ष दिखानेके लिये कहते हैं कि ये कीला आदिक दक्षिणकी तरुणियोंके उर, शिर आदिपर प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। सूत्रका उर प्रहार स्थानोंका उपलक्षक है, इसकारण इसका यह मतलब होता है कि हृदयपर कीलाके चिह्न, शिर, केशपास या जुलफोंकी जगहके पास कर्तरीके निशान एवं कपोलोंपर विद्धाके प्रहारके चिह्न तथा स्तन और पार्श्वपर संदंशिकाके चिह्न रहते हैं। यह दाक्षिणदेशको रुचिकर है, रागके परवश होकर किये जाते हैं, कुरूपताके कारण हैं पर तो भी इनकी उस देशमें प्रशंसा होती है ॥ २४ ॥

इनपर वात्स्यायन।

तन्नान्यत्र प्रयोक्तव्यमित्याह—

दाक्षिणात्योंके जो प्रहणन हैं उनका दाक्षिणको छोड़ दूसरी जगह प्रयोग न करना चाहिये यह कहते हैं कि—

कष्टमनार्यवृत्तमनादृतमिति वात्स्यायनः ॥ २५ ॥

कष्टदायक, दुष्टोंके कृत्य न करने चाहियें यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है ॥ २५ ॥

कष्टमिति—दुःखावहम्, निर्दयकर्मत्वात् । अनार्यवृत्तम्—असाधुचरितम् । अनादृतमिति—अनादरणीयम्, दोषावहत्वात् ॥ २९ ॥

जो दयारहित प्राणियोंका कृत्य होगा वह अवश्य दुःख पहुँचायेगा। जिन कामोंको दुष्ट पुरुष करते हैं, वे कभी सज्जनोंके करनेके नहीं हो सकते, इस कारण इन कामोंका आदर न करना चाहिये, क्योंकि ये अपनेको दूषित करनेवाले हैं ॥ २५ ॥

जो जहांका वह वहां ही।

तथान्यदपि देशसात्म्यात्प्रयुक्तमन्यत्र न प्रयुञ्जीत ॥२६॥

और भी जो देशकी अनुकूलतासे प्रयोग किया गया हो वह वहींका है; दूसरे देशमें प्रयुक्त न करना चाहिये ॥ २६ ॥

तथान्यदपि प्रस्तराद्याहननं देशसात्म्यात्प्रयुक्तं दाक्षिणात्यैरन्यत्र नेति ॥२६॥

इसी तरह दाक्षिणात्योंने प्रस्तर आदिका मारना प्रयुक्त किया है वह जिस देशमें प्रयुक्त हो गया है, वहां ही अनुकूल पड़ता है एवम् वहीं रहना चाहिये, दूसरे देशमें न करना चाहिये ॥ २६ ॥

नाशकारकका सर्वत्र त्याग ।

आत्ययिकं तु तत्रापि परिहरेत् ॥ २७ ॥

जिस देशमें एवम् जिस अंगमें जिस प्रहारका प्रहणन बताया है उस जगह भी ऐसा प्रयोग नहीं करना चाहिये जो कि घातक हो ॥ २७ ॥

आत्ययिकम्—विनाशाङ्गवैकल्यकरणं तत्रापि परिहरेत् यत्रापि प्रयुक्तम् ॥ २७ ॥

जिसके लगते ही दूसरेके प्राण निकल जायँ या उसके अंग खराब होजायँ ऐसा प्रहार और तो क्या; उस देशके वासियोंको भी उन अंगोंपर न करना चाहिये जहाँ कि उनका प्रचार है । दूसरोंके तो सुतरां प्रयोगके नहीं हैं ॥ २७

घातक वारोंसे हानियां ।

(चोलराजसे चित्रसेनाकी हत्या ।)

तमेवात्ययं दर्शयन्नाह—

इसी विनाशको दिखानेके लिये कहते हैं कि घातक वारोंसे क्या क्या हानियाँ हुई हैं—

रतियोगे हि कीलया गणिकां चित्रसेनां चोलराजो जघान ॥ २८ ॥

सहवास करते २ चोल महाराजने चित्रसेना वेश्याको मार डाला था ॥ २८ ॥

रतियोगे इति—रत्यर्थे योगे यन्त्रसंप्रयोगे । चोलराजश्चोलविषये राजा । तेन हि चित्रसेना गणिका रतारम्भे दृढमालिङ्गिता सौकुमार्याच्छरीरपीडामभजत् । तथाप्रदर्शितावस्थामपि तां सुकुमारोपक्रमां रागान्ध्यादगणिततद्बलः कीलयोरसि प्रयुक्तया व्यापादितवान् ॥ २८ ॥

चोलदेशके राजा रतिके लिये वेश्या चित्रसेनासे सहवास कर रहे थे, उन्होंने चित्रसेनाका गाढ आलिंगन किया; जिससे उसके शरीरमें तकलीफ होने लगी, क्योंकि वह अत्यन्त सुकुमार (नाजुक) थी । उसने अपनी तकलीफ राजाको आइ ऊइ करके वताई भी पर राजाने इस पर ध्यान ही न दिया । वह धीरे २ सरलताके साथ सहवास करने लायक थी, पर रागसे अन्धे हुए राजाने उसकी ताकतपर विचार ही न किया एवम् मुक्केका कीला बनाकर उसकी छातीपर जमा दिया, जिससे वह उसी समय समाप्त हो गई २८

शातवाहनसे मलयवतीकी हत्या ।

कर्तर्या कुन्तलः शातकर्णिः शातवाहनो महादेवीं मलयवतीम् ॥ २९ ॥

कुन्तल देशके शतकर्णके पुत्र शातवाहनने महादेवी मलयवतीको चौबी-सवें सूत्रकी बताई हुई कर्तरीसे मार डाला ॥ २९ ॥

कुन्तल इति । कुन्तलविषये जातत्वात्तत्समाख्यः । शातकर्णिः शतकर्ण-स्यापत्यम् । शातवाहन इति संज्ञा । स हि महादेवीं मलयवतीमचिरप्रतिविहित-मान्द्यामजातबलामपि मदनोत्सवे गृहीतवेषां दृष्ट्वा जातरागस्तामभिगच्छन् रागा-क्षिप्तचेताः शिरसि कर्तर्यातिबलया जघान ॥ २९ ॥

कुन्तल देशमें पैदा हुआ था इस कारण इसे कुन्तल कहते हैं । शतकर्णका पुत्र होनेके कारण इसे शातकर्णि कहते हैं, शातवाहन इसका नाम था । इसे मदनोत्सवमें शृंगार किये हुए महादेवी मलयवती मिल गई, उसने बारंबार उसे रोका एवम् अपनी असमर्थता दिखाई, क्योंकि वह इसके योग्य नहीं थी पर शातवाहन रागमें दीवाना हो गया था, इस कारण उसने देवीके शिरमें बड़े जोरसे कर्तरी जमा दी; जिससे वह वहीं ठंडी हो गई ॥ २९ ॥

नरदेवका नटिनीको कानी करना ।

नरदेवः कुपाणिर्विद्धया दुष्प्रयुक्तया नटीं काणां चकार ॥ ३० ॥

कुपाणि नरदेवने विद्धाका बुरी तरहसे प्रयोग करके नटीको कानी कर दिया ॥ ३० ॥

नरदेवः पाण्ड्यराजस्य सेनापतिः । कुपाणिः शस्त्रप्रहारात्कुणिहस्तः । स हि राजकुले नटीं चित्रलेखां नृत्यन्तीं दृष्ट्वा जातरागः संप्रयोगे रागान्धो विद्धया कुपाणित्वाद्दुष्प्रयुक्तया कपोलतलमप्राप्याक्षिप्राप्तया काणां चकार । संदंशिका नोदाहृता । स्वभावतो नात्ययिकत्वात् ॥ ३० ॥

नरदेव—पांड्यराजका सेनापति; जिसका कि शस्त्रप्रहारके अभ्यास करनेसे हाथ बड़ा ही कड़ा हो गया था । उसने राजकुलमें चित्रलेखा नामकी नटी नांचती देखी, जिससे उसके ऊपर दीवाना हो गया । सेनाधिप था ही, उसके सहवासका अवसर प्राप्त किया एवम् वह रागके आवेशमें विद्धाका मजबूत हाथसे बुरी तरह प्रयोग कर बैठा, वह उसके कपोलपर न जाके आँखपर चली गई जिसस नटी कानी हो गई। संदंशिकाका उदाहरण इसलिये नहीं दिया कि उसका वेदह दुरुपयोग न किया जाय तो वह अपने अर्थ इन जैसी घातक नहीं है ॥ ३० ॥

अयुक्त बर्तावका कारण ।

यद्वशादयुक्तं परिहरति [तत्] दर्शयन्नाह—

जिस कारणवश अनुचित हाथ मार बैठते हैं, उसको दिखाते हुए कहते हैं कि–

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

नास्त्यत्र गणना काचिन्न च शास्त्रपरिग्रहः ।
प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र कारणम् ॥ ३१ ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक होते हैं कि, यहां न तो कोई गिनती है एवम् न कोई शास्त्रका विधान ही है। रतिके लिये होनेवाले संयोग होनेपर, इनका करानेवाला राग ही कारण है ॥ ३१ ॥

नास्तीति । द्विविधो हि कामी शास्त्रतत्त्वज्ञस्तद्विपरीतश्च । तत्र शास्त्रतत्त्वज्ञस्यात्र प्रहणन विधौन स्वभावतो गणनास्ति । काचित्—इदमात्ययिकमिदम् । इदमित्यपेक्षयेत्यर्थः । न च शास्त्रपरिग्रहः । शास्त्रविहिताननुष्ठानात् । तस्मादस्य प्रवृत्ते रतिसंयोगे राग एवात्र प्रहणनविधौ प्रयोक्तव्ये कारणम् । नापरज्ञानम् । शास्त्रतत्त्वज्ञस्य तु सत्यपि रागे प्रवृत्तिकारणे ज्ञानमपरं कारणम् । ततश्च विमृश्यकारिणो गणना शास्त्रपरिग्रहश्चोभयमेव भवति । तस्मादुभयोरपि प्रवृत्तौ रागः कारणम् । तत्रैकस्य ज्ञानपरिष्कृतोऽन्यस्य तद्विकल इति विशेषः ॥ ३१ ॥

कामी दो तरहके होते हैं–एक तो कामशास्त्रका तत्त्व समझे रहते हैं एवम् कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें विधि विधानोंका कुछ भी पता नहीं पर रंगरँगीले अवश्य हैं। इनमें जो कामशास्त्रके मर्मके ज्ञाता हैं उनकी इस प्रहणनविधिमें स्वभावसे कोई ऐसी गणना नहीं है, कि ये जरूरी तथा ये विना जरूरके हैं। अथवा ये नुकसान पहुँचानेवाले हैं, ये नुकसान नहीं पहुँचाते। टीकाकारने ' काचित् ' के विवरणमें जो एक 'इदम्' आत्ययिकके पहिले तथा दूसरा पीछे लगाया है, यह पीछेवाला अनात्ययिककी अपेक्षासे लगाया है, जिसका अर्थ–' ये नुकसान नहीं पहुँचाते ' इन अक्षरोंसे दिखा चुके हैं। इसमें कोई शास्त्रका विधान भी नहीं है क्योंकि शास्त्रके कहेका इसमें अनुष्ठान नहीं हो सकता, इस कारण रतिको निष्पन्न करनेके लिये प्रवृत्त हुए सहवासमें राग ही प्रहणनविधिके प्रयोग करनेमें कारण है। दूसरोंका ज्ञान कारण नहीं है किन्तु शास्त्रके तत्त्वके जाननेवालेके लिये तो प्रवृत्तिके कारण

रागके होनेपर भी दूसरा कारण ज्ञान है, इस कारण विचारके साथ करनेवा-लोंके लिये गणना और शास्त्रका परिग्रह ये दोनों कारण होते हैं । इससे यह निश्चय होता है कि विज्ञ और मूढ दोनोंकी प्रहणनकी प्रवृत्तिका राग कारण है । फर्क केवल इतना ही होता है, कि एकका राग, ज्ञानसे परिष्कृत रहता है तथा दूसरेका राग ज्ञानसे हीन यानी अन्धा रहता है ॥ ३१ ॥

रँगरेलीकी निराली सूझ ।

यदा चानयोरतिप्रवृद्धो रागस्तदा तद्वशाददृष्टश्रुता अपि प्रयोगा भवन्तीति दर्शयन्नाह—

जब दोनोंका राग अत्यन्त बढ़ जाता है तो उसके वश होकर विना देखे और विना सुने प्रयोग भी होते हैं । इसी बातको नीचेके श्लोकसे दिखाते हैं कि—

स्वप्नेष्वपि न दृश्यन्ते ते भावास्ते च विभ्रमाः ।
सुरतव्यवहारेषु ये स्युस्तत्क्षणकल्पिताः ॥ ३२ ॥

सुरतके व्यापारोंमें जो २ भाव और विभ्रम उसी क्षण कर लिये जाते हैं वे प्रत्यक्षमें तो क्या; स्वप्नमें भी कभी नहीं सोचे जाते ॥ ३२ ॥

स्वप्नेष्वपीति—असंभाव्यवस्तुप्रकाशनयोग्येष्वपि । भावा अपि प्रियाविभ्रम-चेष्टितानि । सुरतव्यवहारेषु—परस्परचुम्बनाभिगमनादिव्यापारेषु । तत्क्षणनि-र्मिताः तत्कालकल्पिताः । न शास्त्रिता इत्यर्थः ॥ ३२ ॥

स्वप्न ऐसी वस्तुओंका प्रकाश करता है जिनका कि किसी प्रकार संभव न हो; पर जो २ भाव और प्यारीके विभ्रमोंकी चेष्टाएँ परस्परके चुम्बन और अभिगमन आदिके सुरत व्यापारोंमें उसी समय की हुई देखते हैं वे कभी स्वप्नमें भी देखे सुनी नहीं गई थीं । वे ऐसी भी नहीं होतीं, जिन्हें कि शास्त्रने बताया हो ॥ ३२ ॥

रागांधपर दृष्टान्त ।

तत्रैकस्य ज्ञानपरिष्कृतत्वाद्रतिजनन एवोत्पद्यन्ते, अन्यस्य ज्ञानवैकल्यादत्य-यावहा अपीति । तस्मादयं ज्ञानविकलोऽतिप्रवृद्धाद्रागात्प्रवर्तमानोऽत्ययं न पश्य-तीति दृष्टान्तेन दर्शयन्नाह—

इसमें यह सिद्धान्त समझना चाहिये, कि—जो कामकलाकोविद हैं उनका राग, ज्ञानसे संस्कृत रहता है एवम् वह स्वयं ज्ञानसे संस्कृत हैं, इस कारण

उनकी भावभंगियाँ रतिकालमें ही होती हैं, पर जो केवल कामखर हैं उनकी भावभंगियाँ कभी किसीके प्राणोंकी गाहक भी बन जाती हैं । पर कामखर तो ज्ञानहीन है, रागसे अन्धा होकर कुछ भी नहीं देखता । यानी चाहे वह मिट जाय, चाहे सामनेवाला मिट ले । इसी बातको अश्वके दृष्टान्तको देकर दिखाते हैं, कि-

यथा हि पञ्चमीं धारामास्थाय तुरगः पथि ।
स्थाणुं श्वभ्रं दरीं वापि वेगान्धो न समीक्षते ॥
एवं सुरतसंमर्दे रागान्धौ कामिनावपि ।
चण्डवेगौ प्रवर्तेते समीक्षेते न चात्ययम् ॥ ३३ ॥

जैसे घोड़ा रास्तेमें पांचवीं धारासे चलता हुआ वेगसे अन्धा होकर रास्तेके ठूंठ, खड्डे वा खारको नहीं देखता इसी तरह रागसे अन्धे हुए चण्ड-वेगवाले कामिनी कामी सहवासकी झटकापटकीमें सब कुछ करने लग जाते हैं । कष्ट, हानि एवम् जीवनकी कोई चिन्ता नहीं करते ॥ ३३ ॥

यथा हीति । अश्वस्य विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्चेति पञ्च धारा-गतयस्तुरगशिक्षायामुक्ताः । तत्र पञ्चमीं जवाख्यां प्रकृष्टामास्थाय । स्थित्वे-त्यर्थः । तत्रस्थो हि वायुगतिर्भवत्यश्वः । श्वभ्रं पौरुषं गर्तम् । दरीं देवनिर्मि-ताम् । एवमिति दार्ष्टान्तिकयोजनम् । सुरतसंमर्दे सुसंकुले । कामिनौ स्त्रीपुंसौ । ' पुमान्स्त्रिया ' इत्येकशेषः ॥ ३३ ॥

विक्रम, वल्गित, उपकंठ, उपजव और जव ये पाँच घोड़ेकी धारागतियाँ अश्वशिक्षामें बताई हैं । इन पांचोंमेंसे सबसे तेज पांचवीं जवनामकी धारा-गतिसे चलता हुआ घोड़ा हवाकी तरह दौड़ता है । जब घोड़ा इतनी तेजचालसे चलता है तो उसे सामनेका ध्यान नहीं रहता, चाहे तो मनुष्य जितना गहरा गड्डा हो, चाहे कोई खार आ जाय, चाहे ठूड़ा पेड़ ही सामने क्यों न खड़ा हो; इनकी कोई चिन्ता नहीं करता एवम् न देख ही पाता है । इसी दृष्टान्तको उस बातपर घटाते हैं जिसके कि लिये दृष्टान्त दिया है कि-" इसी तरह चण्डवेग-वाले कामिनी कामी रागसे अन्धे होकर सहवासके सुसंकुल मर्दनोंमें प्रवृत्त होते हुए मरना जीना नहीं देखते " ॥ ३३ ॥

---

१ सूत्रमें कामवाचक कामीशब्दको प्रथमा विभक्तिके ' औ ' में ' कामिनौ ' बनाकर रख दिया है, किन्तु यह व्याकरणशास्त्रके एकशेषके नियमके अनुसार स्त्री और पुरुष यानी कामी और कामिनी दोनोंका बोध करता है । एकशेष करनेवाला सूत्र 'पुमान् स्त्रिया' यह-

कामकलाकोविदका कर्तव्य ।

यस्माज्ज्ञानवैकल्यादयुक्तं दृश्यते तस्माज्ज्ञानप्रधानेन भवितव्यमिति दर्शयन्नाह—

ज्ञानके विना राग ज्ञानहीन होता है, जिससे अनेकों अनर्थ होनेकी संभावना रहती है, इस कारण कामकलाकोविद बनना चाहिये, इस बातको निचल श्लोकस दिखाते हैं, कि—

तस्मान्मृदुत्वं चण्डत्वं युवत्या बलमेव च ।
आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा तथा युञ्जीत शास्त्रवित् ॥३४॥

कामशास्त्रके जाननेवालेको चाहिये, कि अपने और कामिनीके मृदु, मध्य और चण्डवेगका विचार करके अपनी और स्त्रीकी ताकत देख ले, पीछे योगोंका प्रयोग करे ॥ ३४ ॥

तस्मादिति । मृदुत्वं चण्डत्वमिति—मन्दवेगतां चण्डवेगतां चेत्यर्थः । बलं प्राणः । आत्मनश्च मृदुत्वचण्डत्वे इति योज्यम् । तथेति मृद्वादिप्रकारेण । प्रयुञ्जीत प्रयोगान् । शास्त्रवित् । अन्यथा शास्त्रज्ञेतरयोः को भेदः स्यात् । वक्ष्यति च—' अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो न स रागात्प्रवर्तते ' इति ॥ ३४ ॥

वेग नाम रागका है, जिससे सहवास करना हो, उसे देख ले कि यह मृदु, मध्य और चण्डोंमेंसे किस रागकी है तथा अपनी भी प्रकृति देख ले कि अपना सहज राग क्या है एवम् इनपर विचार करनेके बाद अपने और दूसरेके बलाबलपर भी विचार कर ले । बादमें अपने और सामनेवालेके रागके अनुसार प्रयोग कर । यदि शास्त्रका ज्ञाता इस प्रकार न करेगा तो उसमें और कामखरोंमें क्या अन्तर होगा । यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये तथा यह अगाड़ी कहेंगे भी कि—" जो कामकलाकोविद होता है, जोकि वात्स्यायनके सारको जानता है, वह कामान्ध होकर किसीमें प्रवृत्त नहीं होता " इससे यह सिद्ध हुआ कि शास्त्रवेत्ताओंकी प्रवृत्ति रागान्ध होकर नहीं होती ॥ ३४ ॥

योगोंका नियम ।

मृद्वादिभेदेन प्रयोगयोजने सर्वे सर्वदा सर्वासु स्त्रीषु स्युरिति चेदाह—

मृदु आदि रागके भेदसे प्रयोगोंकी योजना क्या सभी स्त्रियोंमें सभीको करनी चाहिये ? इसका उत्तर देते हैं, कि—

—है, इसका अर्थ है, कि स्त्रीपुरुष दोनोंको दिखाना हो तो पुरुषको द्विवचनान्त कर दो, दोनोंका बोध कर देगा । यहां भी द्विवचनान्त ' कामिनौ ' शब्दने दोनोंका बोध करा दिया है, इसी कारण हमने ' कामिनी और कामी ' यह अर्थ किया है ॥

न सर्वदा न सर्वासु प्रयोगाः सांप्रयोगिकाः ।
स्थाने देशे च काले च योग एषां विधीयते ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
प्रहणनप्रयोगास्तद्युक्ताश्च सीत्कृतक्रमाः सप्तमोऽध्यायः ।

आदितो द्वादशः ।

सभी समय सभी देशोंमें एवं सभी स्थानोंमें सभी स्त्रियोंमें सभी सांप्रयोगोंका प्रयोग नहीं होता, किन्तु नियतस्थान, नियत देश और नियत कालमें इनका प्रयोग होता है ॥ ३५ ॥

न सर्वदेति । तत्र स्थाने प्रयोगो यथा—अपहस्तस्य स्तनान्तरे प्रसृतस्य शिरसीत्यादि । देश इति । प्रयोगविषय इत्यर्थः । यथा मालव्यां प्रहणनस्य आभीर्यामौपरिष्टकस्येत्यादि । युक्तयन्त्रायामपहस्तस्य उत्सङ्गोपविष्टायां मुष्टिरित्यादि कालप्रयोगः । प्रहणनप्रयोगाः पञ्चदशं प्रकरणम् । तद्युक्ताश्च तदन्तर्गताः सीत्कृतक्रमाः षोडशं प्रकरणम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे प्रहणनयोगाः सीत्कृतक्रमाश्च सप्तमोऽध्यायः ।

जिस स्थानपर जिसका प्रयोग बताया है वह उसी स्थानपर होता है, जैसे अपहस्तका स्तनोंके बीच एवम् प्रसृतका वार शिरपर ही होता है । कोई २ प्रयोग ऐसे हैं जो उन्हीं देशोंमें होते हैं, जोकि उनके प्रयोगका है । जैसे कि मालवदेशकी युवतीमें प्रहणन एवम् आभीरदेशमें औपरिष्टक है । जिस समय यंत्रसे यंत्र मिल रहे हों उसी समय अपहस्तका प्रयोग होता है । गोदमें बैठी हुईमें ही मुक्का मारा जाता है । ये प्रयोग इन्हीं समयोंमें होते हैं । यह प्रहणनके प्रयोगोंका प्रतिपादन करनेवाला पंद्रहवाँ प्रकरण पूरा हुआ तथा इसके साथ योग रखनेवाले सीत्कार भी इसीके भीतर कह दिये हैं, इस तरह इसी प्रकरणमें सोलहवाँ प्रकरण भी इसीके साथ पूरा हो जाता है ॥ ३५ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके सातवें
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

पुरुषायित प्रकरण ।

एवं प्रहणनादिव्यापारेण परिश्रान्ते नायके नायिका पुरुषवदाचरेदिति पुरुषायितम्, तदुपयोगित्वाच्च तदन्तर्गतानि पुरुषोपसृप्तानीति प्रकरणद्वयमत्राध्याये ।

इस प्रकार प्रहरण आदिक व्यापारोंसे थके हुए पुरुषको जानकर, स्त्रीको चाहिये कि पुरुषकी तरह आचरण करे, इस कारण स्त्रीकी पुरुषकी तरहकी रतचेष्टाओंको बताते हैं । स्त्रियोंकी इस चेष्टामें पुरुषोंकी रतचेष्टाएँ सहायक होती हैं, इस कारण वे भी इसके भीतर ही हैं अतएव इस अध्यायमें पुरुषोपसृप्त भी कह दिया है, इस तरह इस अध्यायमें ये दो प्रकरण हैं ।

विपरीत रतिके कारण ।

तत्र कारणान्याह—

इस प्रकरणमें सबसे पहिले इसके कारणोंपर विचार करते हैं । परिश्रान्तको उत्साहित करनारूप एककारण इस अध्यायकी भूमिकामें दिखा चुके हैं । वह पहिला कारण है जो कि पहिले सूत्रने बताया है । इसके सिवा दो और कारण हैं जो दूसरे और तीसरे सूत्रमें बताये गये हैं । उन्हें क्रमशः बताते हैं—

थकेकी सहायता ।

नायकस्य संतताभ्यासात्परिश्रममुपलभ्य रागस्य चानुपशमम्, अनुमता तेन तमधोऽवपात्य पुरुषायितेन साहाय्यं दद्यात् ॥ १ ॥

पुरुषके बारबारके रत करनेसे उसके सारे शरीरको थका देखे, एवम् रागको निवृत्त हुआ न देखे तो उसकी सलाहसे उसे अपने नीचे करके पुरुषकी तरह उससे सहवास करके इसे उत्साहित करे ॥ १ ॥

नायकस्येति संतताभ्यासादिति—रतस्य पौनःपुन्येनानुष्ठानात् । परिश्रमं सर्वाङ्गिकं समम् । रागस्य चानुपशममशान्तिमुपलभ्य । तत्राप्यनुमता । तेनेति—नायकेन । अननुज्ञाता हि योषिद्विसदृशमाचरन्ती निस्त्रपैव स्यात् । तमधोऽवपात्य—नायकमधस्तात्कृत्वा । एवं हि पुरुषवदाचरितम् । तेन साहाय्यम्—सहायकर्म प्रतिपद्यते । कार्यस्यानिष्पन्नत्वात् ॥ १ ॥

जब स्त्री यह जान ले कि मेरे साथ सहवास करनेवाला बारंबार रमण करके इतना थक गया है कि इसके सब अंग थक गये हैं; पर अभी इसका राग ठंडा नहीं हुआ है तो पुरुषकी सलाहसे पुरुषको नीचे करके आप उसके ऊपर पुरुषकी तरह रतकेलि करे, जिससे कि उसे सहायता प्राप्त हो एवम् थकान दूरकर उत्साहित हो फिर पुरुषकी चेष्टाएँ करने लग जाय। इसके करतीवार इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि पतिकी सलाहसे ही हो, यदि उसकी विना मनसाके विरुद्धाचरण करेगी तो निर्लज्ज ही समझी जायगी। इसको सहायता कहनेका कारण तो यह है कि पुरुष थक गया है पर उसके रागकी शान्ति नहीं हुई, इस कारण उसका काम पूरा नहीं हुआ है। यदि स्त्री इस-प्रकार सहायता दे देगी तो वह अपना काम पूरा करके आप ही निवृत्त हो जायगा ॥ १ ॥

इसीपर साहित्य ।

" प्रशान्ते नूपुरारावे श्रूयते मेखलाध्वनिः ।
कान्ते नूनं रतिश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ॥"

पैरोंके नुपुर बजने बन्द हो गये अब तो केवल मेखला (कमरकी कोंधनी)-की ही आवाज आ रही है। इससे इस बातका पता चल रहा है, कि पतिके रति करते २ थक जानेपर कामिनी पुरुष बन रही है। श्लोकके पूर्वार्धका विहारीदासजीने बड़ा ही सुन्दर भाव बाँधा है, उसे यहीं दिखाते हैं कि—

" परयो जोर विपरीत रति, रुप्यो सुरत रण धीर ।
करति कुलाहल किंकिणी, गह्यो मौन मंजीर ॥"

विपरीत रतिमें जब दोनोंकी रंगरेलीकी लड़ाई शुरू हुई तो जब ऊपर-वालीको जोर पड़ा तो कटि-किंकिणी कुलाहल करने लगी एवम् पैरोंके मंजीरोंका बजना बन्द हो गया।

अपनी इच्छा ।

स्वाभिप्रायाद्वा विकल्पयोजनार्थिनी ॥ २ ॥

जिस स्त्रीकी विपरीत रति करनेकी इच्छा हो वह अपनी इच्छासे भी कर सकती है ॥ २ ॥

स्वाभिप्रायाद्वेति—अननुमतापि तेन जातविस्रम्भा । विकल्पम्—पुरुषायित-भेदम् योजयितुमार्थिनी, तच्छीलत्वात् ॥ २ ॥

पतिकी विना अनुमतिके भी जिनका पतियोंपर विश्वास हो एवम् पतिका जिसपर विश्वास हो ऐसी स्त्रियाँ जो विपरीतरतिके भेद अपनी इच्छासे दिखाना चाहें एवम् ऐसा ही जिनका स्वभाव हो वे स्त्रियां भी विपरीतरत कर सकती हैं; जैसा कि पहिले सूत्रमें पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर बता चुके हैं। इसमें परिश्रान्तका योग नहीं है, पहिले सूत्रमें वह कहा जा चुका है ॥ २ ॥

इसपर साहित्य ।

"प्रागल्भ्यं पुरुषायिते मम पुरः पश्येति सन्नद्धया
तन्व्या ताम्यदुरोजयाऽपि सुचिरं विक्रम्य रम्यं तया।
श्रान्ता वक्षसि मे निपत्य च पुनः सापत्रपं सस्मितं
साकूतं च समीक्षितं मृगदृशा यत्तत् कथं कथ्यते ॥"

कोई पुरुष अपनी स्त्रीके विपरीतरमणकी बातें किसीको सुना रहा है, कि मेरी तयार हुई स्त्रीने मुझसे कहा कि विपरीत रमणमें आप मेरा पुरुषार्थ देखें जो कि मैं आपके सामने दिखाती हूं। पीछे उस तमकते हुए उरोजोंवाली तन्वीने बड़ा ही सुन्दर पुरुषार्थ किया, जब वह थक गई तो मेरे सीनेपर गिर गई। इसके पीछे जो कुछ लजाते हुए मन्दहास किया एवम् साभिप्राय देखा; जिसे मैं बयान नहीं कर सकता। इसी तरह गीतगोविन्दमें भी श्रीजयदेव कविने कहा है कि—

"माराङ्के रतिकेलिसंकुलरणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षोमीलितमाक्षिपौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिद्ध्यति ॥" १२-६३ ॥

रतिकेलिके तुमुल युद्धके प्रारंभमें माराङ्कमें राधाने जो प्यारेके जीतनेके लिये; जो कि प्रायः साहससे होता है ऐसा विपरीतरत संभ्रमसे प्रारंभ कर दिया, इसके मारे परिश्रमसे अन्तमें जघनका हिलनाडुलना वन्द हो गया। भुजलताएँ ढीली हो गईं। वक्षःस्थल कांपने लगा। आखें मिच गईं। क्योंकि स्त्रियोंको पुरुषोंका रस कैसे सिद्ध हो सकता है।

पुरुषकी इच्छासे ।

नायककुतूहलाद्वा ॥ ३ ॥

प्यारेको यदि विपरीतरतका शौक हो तो भी इसे अपनेआप प्रयुक्त कर सकती है ॥ ३ ॥

नायकत्कुतूहलाद्वेति——नायकस्यात्र कौतुकमस्तीति ज्ञात्वा वा तेनाननुमताऽपरिश्रान्तस्यापि दद्यादित्येव ॥ ३ ॥

जो स्त्री यह जान जाय कि मेरे पुरुष[1]को विपरीतरतिका शौक है तो भले ही उसने अनुमति न दी हो, चाहे वह थका हुआ भी न हो तो भी उससे विपरीतरति करके उल्लसित करे ॥ ३ ॥

विपरीतरतिकी पहिली रीति।

तत्र युक्तयन्त्रेणैवेतरेणोत्थाप्यमाना तमधः पातयेत् । एवं च रतमविच्छिन्नरसं तथा प्रवृत्तमेव स्यात् । इत्येकोऽयं मार्गः ॥ ४ ॥

यंत्रयोग किये हुएकी ही दशामें पुरुषसे उठाई हुई स्त्री पुरुषको नीचे करके आप ऊपर हो जाय । इस प्रकार करनेसे जिस प्रकार निरन्तर सहवासका आनन्द चल रहा था वैसेका वैसा ही विपरीत रतिमें रहा आता है, यह इसकी एक रीति है ॥ ४ ॥

तत्रेति——पुरुषायिते । द्विविधः क्रमः । तत्रायं प्रथमो युक्तयन्त्रेणैवापरित्यक्तशल्यसंयोगेनैव इतरेण नायकेन त्र्यस्रस्थितेनासीनेन चोत्थाप्यमाना बाहुपाशसंदानिता सत्युपरि क्रियमाणा तं नायकमवपातयेदिति । एवं सति रतमविच्छिन्नरसं तथा प्रवृत्तमेव स्यात् । यन्त्रं हि विश्लेष्य पुनः संधाने रतमपूर्वमेव स्यात् । न पूर्वप्रकारप्रवृत्तम् । यथाप्रवृत्तश्चात्र रागो विच्छिद्यते । तस्य चाकस्माद्विच्छेदे न सौमनस्यमित्यत्र कामिनः प्रमाणम् । अयं मार्गः श्रमवृद्धो रागस्यानुपशमे द्रष्टव्यः ॥ ४ ॥

विपरीतरतिमें दो तरहका क्रम है, उन दोनोंमेंसे पहिले विपरीतरतको बताते हैं, कि–स्त्री पुरुषके ऊपर आना चाहे तो इस तरहसे ऊपर आये कि

---

१ विहारीदासजीने अपनी सतसईमें इस विषयपर भी कुछ प्रकाश डाला है कि—

" विनती रति विपरीतकी, करी परशि पिय पाय ।
हँसि अनबोले ही दियो, उत्तर दियो बताय ॥"

पतिने प्यारीके चरण छूकर विपरीतरतिकी प्रार्थना की, स्त्रीने कुछ कहा तो नहीं, किन्तु किसी विचित्र भावके साथ हँस दिया । इस प्रकार चतुर नागरीने विना बोले ही स्वीकृतिका उत्तर दे दिया ।

उसके मदनमंदिरसे पुरुषका साधन बाहिर न निकल जाय, मिलते २ ही ऊपर आये। इसके इस प्रकार ऊपर आनेकी रीति यह है कि (संवाध) पर जमे हुए पुरुषके बाहुपाशसे उठाकर ऊपर लानेपर उसे नीचे करके आप उसपर उसकी तरह ही हो जाय, जैसा कि वह बैठा था। इस प्रकार विपरीत करने पर सहवास एक रस प्रवृत्त ही रहा आयेगा। यंत्रोंको अलग २ कर फिर विपरीत होकर विपरीतरत प्रारंभ करनेसे जिस तरह पहिले चल रहा था उस तरहसे न रह करके फिरसे शुरू करनेमें अपूर्व ही हो जायगा। पूर्व जो राग प्रवृत्त हो रहा था, उसका विच्छेद ही हो जायगा, इस प्रकार रागके अचानक विच्छेद होनेपर, वह प्रसन्नता नहीं रहती, इस बातमें कामी ही प्रमाण हैं। इस रीतिको श्रमकी वृद्धिमें रागके रह जानेपर समझना चाहिये; जैसा कि इसी अध्यायके पहिले सूत्रमें लिख आये हैं ॥ ४ ॥

दूसरी रीति।

पुनरारम्भेणादित एवोपक्रमेत्। इति द्वितीयः ॥ ५ ॥

यदि रतको फिर प्रारंभ किया जाय तो पहिलेसे ही पुरुषकी तरह करे। यह विपरीतरतिकी दूसरी रीति है ॥ ५ ॥

स्वाभिप्रायादिषु पुनरारम्भेणेति। यदा रतस्य पुनरारम्भस्तदा तेनारम्भेण पुरुषवदादावेवोपक्रमेत्। प्रवृत्ते द्वितीयो मार्गः। नापरस्तृतीयः। यदन्तरा यन्त्रं विश्लेष्य प्रयोक्तव्यम् ॥ ५ ॥

यदि अपनी ही इच्छासे स्त्री करना चाहे या पुरुषकी इच्छा देखकर प्रयुक्त करे तो जब रत फिरसे शुरू किया जावे उस समय प्रथमसे ही पुरुषकी तरह प्रारंभ करना चाहिये, यह दूसरा मार्ग है। इसके सिवा कोई तीसरा मार्ग नहीं जो यंत्रोंको अलग करके प्रयोग किया जा सके ॥ ५ ॥

बाह्य पुरुषायित।

पुरुषायितं द्विविधम्, बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र प्रथममधिकृत्याह—

आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे पुरुषायित दो तरहका है। इन दोनोंमेंसे पहिले बाह्यके अधिकारको लेकर कहते हैं कि—

सा प्रकीर्यमाणकेशकुसुमा श्वासविच्छिन्नहासिनी वक्त्रसंसर्गार्थं स्तनाभ्यामुरः पीडयन्ती पुनः पुनः शिरो नामयन्ती याश्चेष्टाः पूर्वमसौ दर्शितवांस्ता एव

प्रतिकुर्वीत । पातिता प्रतिपातयामीति हसन्ती तर्जयन्ती प्रतिघ्नती च ब्रूयात् । पुनश्च व्रीडां दर्शयेत् । श्रमं विरामाभीप्सां च । पुरुषोपसृप्तैरेवोपसर्पेत् ॥ ६ ॥

केशोंके कुसुम केशपाशके खुल जानेके कारण बिखर रहे हों, हँसी, श्वासोंके मारे एकदम पूरी न होती हो किन्तु उसके बीच २ में श्वास चलते हों, पुरुपके मुँहसे मुँह लगानेके लिये अपने स्तनोंके भारसे पुरुपके सीनेको दबाते हुए वारवार शिरको नवाकर जो २ चेष्टायें पुरुपने दिखाई थीं उन सबको करे कि—जैसे गिराई थी वैसे ही गिराऊँगी; यह हँसती हुई डराती हुई और अपहस्त आदिसे मारती हुई बोले । फिर लज्जा, श्रम और समाप्तिकी इच्छा दिखाये, फिर पुरुप जो स्त्रियोंके ऊपर होकर करते हैं सो करने लग जाय ॥ ६ ॥

सेति । स्वशिरसः प्रकीर्यमाणानि केशकुसुमानि चेष्टमानया ययेति विग्रहः । श्वासेन विच्छिन्नो यो हासः सोऽस्ति यस्याः । असदृशव्यापारेण । जातश्रमत्वात् । वक्त्रसंसर्गार्थं लज्जया, न तु चुम्बनदशनच्छेद्यार्थम् । स्तनाभ्यामुरो नायकस्य पीडयन्तीति । स्तनोपगूहनमेतत् । पुनः पुनः शिरो नामयन्ती लज्जया । सर्वमेतत्स्त्रैणेन तेजसा चेष्टितमुक्तम् ।

पुरुषायितकी चेष्टा करते हुए शिरके बालोंके फूल बिखर रहे हों, तेज श्वासके मारे हँसीमें व्यवधान पड़ जाता हो, क्योंकि अपने स्त्रीपनेके कार्य्यको छोड़, पुरुषपनेके कार्य्य करनेसे श्रम होना आवश्यक ही है । लज्जाके मारे मुखसे मुख मिलाना चाहती हो चुम्बन या दांतोंके मारनेके लिये नहीं । जैसा कि स्तनोपगूहन आलिंगन वताया है; उसीकी रीतिसे अपने दोनों पीनस्तनोंसे पुरुषके सीनेको दबाती हुई लाजसे वारवार शिर नीचा करती है । ये सब स्त्री स्वभावको चेष्टाएँ कही हैं ।

पौंस्नेनाह—या इति । चेष्टा यांश्चुम्बनादिव्यापारान्पूर्वमसौ दर्शितवान् पारुष्यरभसाभ्यां ता एव प्रतीपं कुर्वीत । तदेव स्फुटयन्नाह—पातितेति । यथाहं त्वया निर्दयरतेन क्लेशिता तथाहं त्वामपि प्रतीपं पातयामीति ब्रूयादिति संबन्धः । तत्रापि हसन्ती, राभसिकतया तर्जयन्ती तर्जन्या, प्रतिघ्नती चात्यर्थमपहस्तादिना । तदुभयं पारुष्यं दर्शयति । ततश्चासौ स्त्रैणतेजःप्रख्यापनार्थमव्रीडितापि व्रीडाम्, अश्रान्तापि श्रमम्, रन्तुमिच्छन्त्यपि विरामाभीप्सामुपेत्य दर्शयेत् ।

पुरुषके स्वभावकी चेष्टाएँ—जिन चुम्बन आदि व्यापारोंको पहिले पुरुषने दिखाया था; स्त्रीको चाहिये कि उन कामोंको भी कठोरता और साहसके साथ उसके विरुद्ध करे। इसी बातको दिखाते हैं, कि–जैसे निर्दयतासे रमण करनेवाले आपने वेदर्दीके साथ मुझसे सहवास करके कष्ट दिया था, उसी तरह मैं भी अब आपको रिगडूंगी, गिराऊंगी यह कहना चाहिये, यह भी ऐसी रीतिसे नहीं जो विरसता उत्पन्न हो, किन्तु हँसते २ एवम् साहसियोंकी तरह तर्जनीसे डराते हुए एवम् अपहस्त आदिके अत्यन्त वार करते हुए ही कहे। इन दोनों बातोंसे स्त्री अपनी कठोरता दिखाती है। साहस और कठोरता पुरुषका स्वभाव है वह तो दिखा दिया, फिर स्त्री स्वभाव दिखानेके लिये लज्जाके विना भी लज्जा दिखा दे। विना थके भी इस प्रकार दिखाये कि मानो अत्यन्त थक गई हो। भले ही दिलमें रमण करनेकी इच्छा हो पर दिखाये इस प्रकार कि अब रतकी समाप्ति ही चाहती है।

पुरुषवदाचरितं हि योषितः पुरुषायितम्। ततश्च पुरुषस्य योषिति यदुपसर्पणमुपसृप्तं तदप्याचरन्त्याः पुरुषायितम्। प्रायशश्च पुरुषोपसृप्तान्नान्यत्पुरुषायितमिति नियमयन्नाह—पुरुषोपसृप्तैरेवोपसर्पेदिति ॥ ६ ॥

पुरुषायित—स्त्रीका पुरुषकी तरह आचरण करना पुरुषायित कहाता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरुष जिस प्रकार स्त्रीमें अपने रमणके लिये प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार स्त्रीका पुरुषमें प्रवृत्त होना भी पुरुषायितके भीतर है। प्रायः पुरुषके स्त्री सहवासके कार्यसे भिन्न पुरुषायित नहीं है; इस बातको नियमित करते हुए कहते हैं कि–स्त्री भी पुरुषके पुरुषोपसृप्तसे ही उपसर्पण करे ॥६

साहित्यकी छटा।

"स्थगयति तमः शशाङ्कं चलति गिरिः स्रवति तारकापटलम्।
कथयति मन्ये काञ्ची पुरसीम्नि किमपि सक्षोभम् ॥"

तम चाँदको स्थगित कर रहा है, पर्वत चल रहा है, तारोंकी लैन नीचे गिरी जा रही है। ऐसा मालूम होता है कि कांची पुरकी सीमामें आकर कुछ क्षोभके साथ कह रही है। यह तो इसका शब्दार्थ है; पर इसका भावार्थ यह है, कि शिरके बालोंने मुँहको ढंक लिया, पर्वत जैसे स्तन चलने हलने लग रहे हैं, तारे जैसे चमेलीके फूल गिर २ कर नीचे आ रहे हैं। बारबार जो वेगके साथ कटिकिंकिणी बज रही है, वह ऐसी शोभाय-

मान होती है, कि मानों मदनमंदिररूपी पुरकी सीमापर जोर २ से चिल्लाकर इन सब समाचारोंको कह रही है।

"वलगत्कुचं व्याकुलकेशपाशं स्विद्यन्मुखं स्वीकृतमन्दहासम् ।
पुण्यातिरेकात् पुरुषा लभन्ते पुंभावमम्भोरुहलोचनानाम् ॥"

जिस विपरीतरतिमें स्तन उछलते हों, केशपाश खुलकर बाल इधर उधर फैल गये हों। मुखपर स्मित व पसीना आ गया हो, ऐसा कमलनयनियोंका पुंभाव भाग्यसे प्राप्त होता है। जब पुरुषकी नकल है तो सब ही बातोंकी नकल होगी, फिर हाथ मारना व पतिका मुख चूँमना आदि कहाँसे बाकी रह सकता है। यही कारण है कि हिन्दीके कवियोंने तो यहाँतक कह दिया है, कि–" सखि जानी विपरीत रति, लखि बिंदुली पिय भाल " सखियोंने पतिके माथेपर बेंदी देखकर विपरीत रतिका अनुमान कर लिया। संस्कृतके कवि भी यह कह गये हैं, कि मैं दयिता बनता हूं, तू दयित बनजा। पुरुषका दयिता बनना शृङ्गारका भी द्योतक हो सकता है। इस तरह साहित्यके मर्मज्ञोंने शृङ्गारकी कविताओंमें पदपदपर कामसूत्रका हा अनुसरण किया है।

पुरुषोपसृप्त प्रकरण।

गत प्रकरणमें यह बात आई है कि स्त्री पुरुषके उपसर्पणोंसे सहवास करे। इसमें यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पुरुष किस प्रकार रंगरेलियाँ करता है? इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं। यही बात सूत्रकारने भी कही है कि–

तानि च वक्ष्यामः ॥ ७ ॥

पुरुषोंके उन उपसर्पणोंको बताते हैं जिन्हें कि स्त्रियां पुरुषायितमें प्रयोगमें लाती हैं ॥ ७ ॥

इतः प्रभृति पुरुषोपसृप्ताख्यं प्रकरणमिति दर्शयति ॥ ७ ॥

यहांसे पुरुषोपसृप्त नामक प्रकरणका प्रारंभ करते हैं, इसी बातको इस सूत्रसे दिखा रहे हैं ॥ ७ ॥

पुरुषोपसृप्तके भेद।

तानि द्विविधानि, बाह्यान्याभ्यन्तराणि च ।

स्त्रीके प्रति होनेवाली पुरुषकी कारवाई दो तरहकी हैं—एक तो ऊपरकी कारवाइयाँ हैं तथा दूसरी भीतरकी कारवाइयाँ हैं। यानी यंत्रयोगके लिये जो कारवाई है वह बाहिरहीकी कारवाई है तथा जो यंत्रयोगके होनेके बाद की जाती है वह भीतरकी कारवाई है।

बाहिरकी कारवाई ।

तत्र बाह्यान्याह—

इन दोनोंमें सबसे पहिले बाहिरकी कारवाई होती है इसके बाद भीतरकी कारवाई शुरू की जाती है, इस कारण बाहिरकी कारवाई बताते हैं ।

नीवी खोलनेकी विधि ।

जबतक नीवी नहीं खोली जा सकती तबतक दूसरी कारवाइयाँ तथा यंत्रयोग होना कठिन है, इस कारण सबसे पहिले नीवी खोलनेकी विधि बताते हैं, कि—

पुरुषः शयनस्थाया योषितस्तद्वचनव्याक्षिप्तचित्ताया इव नीवीं विश्लेषयेत् । तत्र विवदमानां कपोलचुम्बनेन पर्याकुलयेत् ॥ ८ ॥

पुरुषको चाहिये कि, सहवास करनेकी खाटपर बैठी हुई स्त्री जब बातोंमें लगी हुईसी हो जाय तभी उसके नाडेको खोले । यदि खोलनेमें झगड़ा करे तो कपोलोंके चुम्बनसे उसे अच्छीतरह अकुला दे ॥ ८ ॥

यदा पुरुषः प्रयोक्ता तदा पुरुषोपसृप्तकम्, स्त्री चेत्पुरुषायितमिति दर्शनार्थं पुरुषग्रहणम् । एवं च पुरुषायितेन सहास्यं वचनम् । शयनस्थाया इति । शयनात्प्राग्रतारम्भं प्रकरणं वक्ष्यति । तद्वचनव्याक्षिप्तचित्ताया इवेति–नायकोक्तिभिरन्यचित्ताया नायिकायाः । लज्जाख्यापनार्थं दर्शनायेतीवार्थः । नीवी–निवसनबन्धः । तत्रेति–विश्लेषणे, विवदमानाम् कर्तुमददतीं कपोलचुम्बनेन समन्तादाकुलयेत् । यथा नीवी सुखेन स्रंस्यते ॥ ८ ॥

जब पुरुष पहिलेसे प्रयोग करता है तो पुरुषोपसृप्तक कहाता है, यदि स्त्री पहिलेसे रतिचेष्टा करती है तो पुरुषायित कहाता है । इस बातको दिखानेके लिये पुरुष शब्द सूत्रमें दिया है, इसी कारण पुरुषायित प्रकरणके साथ ही पुरुषोपसृप्त कहा गया है । शयनपर पहुँचनेसे पहिलेकी बातें तो इसी अधिकरणके रतारंभ प्रकरणमें कहेंगे; यहां खट्वापर दोनोंके पहुँचनेके बादकी बातोंको इस प्रकरणमें कहते हैं कि–जब स्त्री पलिंगपर आ जाय तो सबसे पहिले उससे रसीली बातें करनी चाहियें । जब वह अपनेको ऐसा बना ले कि, यह बातोंमें बिलकुल लग गई तो उसकी नीवीपर हाथ डाले । स्त्रीकी इस प्रकारकी शकल

बनाना केवल शर्म दिखानेके लिये ही है कि मानो यह बातोंमें इतनी लग गई, कि उसे वहां हाथ पहुंचनेकी खबर ही नहीं है । जो नीवी (नाडे) को खोलने न दे तो उसे बारंवारके कपोल (गालों) के चुम्बनसे सब तरफसे व्याकुल कर दे, जिससे कि सुखके साथ नीचेका वस्त्र अलग किया जा सके या गिर जाय ॥ ८ ॥

इसका साहित्यमें उपयोग ।

मेघ०-" नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां,
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
आर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्,
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ "

प्यारोंके बिम्बफलके समान होठोंवाली सुन्दरियोंकी नीवी खोलनेके प्रयत्न करतीबार खुलनेके स्थानमें टूट गयी, जिससे उनका लहँगा ढीला होगया, इतनेपर भी वे उसे नंगी करनेके लिये छीनाझपटी करने लगे । जब स्त्रियोंने यह देखा कि अब हम नंगी हो चलीं तो कोई देख न सके, इस कारण लाजमें पागल होकर बढ़ी हुई रोशनियोंवाले रत्नोंके दीपकोंपर चूर्णकी मुट्ठी फेंकने लगीं; पर वह भी उन्हें बुझानेके लिये समर्थ न हुई, यानी इस प्रकार नंगी कर ली गई और लजाती रह गईं । यह उदाहरण केवल नीवी खोलनेका है । अब चुम्बनसे अकुलाकर नीवी खोलनेका और उदाहरण देते हैं—

" लोलदृष्टिवदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन ।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादंशुकं शिथिलतामुपपेदे ॥"

अविश्वस्त प्यारीने जब नीवी न खोलने दी तो प्यारेने बारंबार चुम्बन करके उसे अकुला दिया, जिससे नीवी खोली जा सकी । तब नितम्बोंपरका वस्त्र ढीला होगया । इस श्लोकके चुम्बनविशेषको लेकर ३१३ वें पृष्ठमें कह चुके हैं । वहां जो यह कहा है, कि-" खुली गाठोंवाला नितस्बमंडल भी ढीला पड़ गया " इस विषयमें यहां केवल यह बताया है, कि नीवी खोली किस तरह गई । इसी लिये यहां फिर दिखाया है कि चुम्बन खाली चुम्बन ही नहीं था वह अकुलाकर नीवी खोलनेके लिये था ।

हाथ फेरना ।

स्थिरलिङ्गश्च तत्र तत्रैनां परिस्पृशेत् ॥ ९ ॥

यदि पुरुष सहवासके लिये ससाधन तयार हो गया हो तो स्त्रीको तयार करनेके लिये उसकी हाथसे छूनेकी जगहोंको हाथसे छूये ॥ ९ ॥

स्थिरलिङ्गश्चेति—जातरागत्वात्सिद्धलिङ्गः। तस्यां च जातरागायां सिद्धं कार्यम्, न चेदत्राह—तत्र तत्रेति। कक्षोरुस्तनादिष्वेनां नायिकां रागजननार्थं हस्तेन परिस्पृशेदिति। एतदसकृन्नायकेन संगतायामतिविस्रब्धायामुक्तम् ॥ ९॥

रागके बढ़ जानेसे मदनांकुशके खड़े हो जानेपर स्त्रीके राग उत्पन्न करनेके लिये कांखे, ऊरु और स्तन आदिकोंपर हाथ फेरना चाहिये, क्योंकि यंत्रसंयोग उसी दशामें होता है। जब कि स्त्रीके राग उत्पन्न होता है एवम् रागी पुरुषका साधन तयार हो लेता है। दशवें सूत्रमें जो 'प्रथमसंगता चेत्' इससे प्रथम संगताके लिये भिन्न विधान बतलाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि आठवें और इस नौवें सूत्रमें जो विधान बतलाये हैं ये सब बहुतवारकी मिली हुई विश्वासवाली स्त्रीके विषयके हैं ॥ ९ ॥

अपना प्रथम सहवास।

प्रथमसंगता चेत्संहतोर्वोरन्तरे घट्टनम् ॥ १० ॥

यदि प्रथम समागम हो एवम् स्त्रीने दोनों जांघें भींच रखी हों तो पहिले पुरुषको उसकी जांघोंके बीच हाथ चलाना चाहिये ॥ १० ॥

यदि प्रथमसंगता तदास्या नीवीस्रंसनस्पर्शनं नास्त्येव। लज्जया संहतयोश्चोर्वोरन्तरे च संधौ हस्तेन संघट्टनं चलनम्। यथा विवृतौ स्याताम् ॥ १० ॥

यदि प्रथम समागम हो तो उसमें नीवी खोलना एवम् हाथ फेरना बिलकुल नहीं है, किन्तु लाजके मारे सिकोड़े हुए ऊरुओंके बीच एवम् उनके जोड़ पर इस प्रकार हाथ चलाना चाहिये कि जिससे वे चौड़ जायँ। इस कामके करनेके बाद दूसरी विधियाँ करनी चाहियें ॥ १० ॥

अभुक्तपूर्वा बालाका प्रथम समागम।

कन्यायाश्च ॥ ११ ॥

यदि किसीकी भी न भोगी हुई बालाके साथ समागम हो तो उसमें पूर्वसूत्रकी कही प्रथम समागमकी विधियाँ करे ॥ ११ ॥

कन्यायाश्चेति। कन्याविस्रम्भणे विस्रब्धाया अप्यस्या लज्जया संहतयोरन्तरे घट्टनं नीवीस्रंसनं स्पर्शनं च ॥ ११ ॥

यदि ऐसी बालाके साथ समागम करना हो कि जिसने कभी पुरुष नहीं देखा तो उसका कन्यासंप्रयुक्तक अधिकरणके कन्याओंके विश्वासपात्र बननेके ढंगसे विश्वासपात्र बन गया हो एवम् उसपर भी उसका विश्वास हो तो भी

वह लाजसे दोनों जाघोंको भींचकर रखती हो तो पहिले वहां बीचमें हाथ चलाकर जाघें चौड़ाना चाहिये, पीछे नीवीका गिराना और हाथ फेरना होना चाहिये ॥ ११ ॥

इसमें विशेषता।

तथा स्तनयोः संहतयोर्हस्तयोः कक्षयोरंसयोर्ग्रीवायामिति च ॥ १२ ॥

इसी प्रकार संहतस्तन, हाथ, कांख, कोठे और ग्रीवापर भी उचित रीतिसे हाथ चलाना चाहिये ॥ १२ ॥

स्तनयोः संहतयोर्भुजमध्या सूच्या । हस्तयोः परस्पराश्लिष्टयोः प्रत्येकं वा बद्धमुष्टयोः । कक्षयोः प्रत्येकं कृतसंकोचयोः । अंसयोर्हस्तयोजनात् ग्रीवाबाहुशिखरयोजनाद्वा संहतयोः । ग्रीवायां हस्तपाशसंश्लेषात्संहतायाम् । संघट्टनमित्येव ॥ १२ ॥

इस प्रकार हाथ डालकर जांघ चौड़ा, नीवी खोलना और हाथ डालना प्रथम समागममें और जिसने पुरुष संसर्ग नहीं पाया उस स्त्रीमें एकसा बताया है, किन्तु दूसरीमें जो बातें अधिक करनी हैं उन्हें बताते हैं, कि–उसने हाथोंकी सूचीसे स्तनोंको संहतकर रखा हो हाथ आपसमें लभेड़ रखे हों वा अलग २ मूठि बँधी हो, काखें भींच रखीं हों, हाथोंसे कंधे भींच रखे हों अथवा ग्रीवा और बाहुशिखर लगाकर भींचे हो या गलेमें दोनों हाथ डालकर उसे संकुचित कर रखा हो तो जैसे सुईसे सिले कपड़ेके बंद खोल लिये जाते हैं, उसी तरह अपने हाथोंको जहां तहां डालकर सीधो कर लेनी चाहिये ॥ १२ ॥

---

१ "यद् विधूय दयिताऽर्पितं करं दोर्द्वयेन पिदधे कुचौ दृढम् ।
पार्श्वगप्रियमपास्य सा ह्रिया तं हृदि स्थितमिवालिलिङ्ग तम् ॥"
महाराजा नलने जब दमयन्तीके स्तनोंपर हाथ फेरना चाहा तो दमयन्तीने नलके हाथोंको हटाकर दोनों हाथोंसे अपने दोनों कुचोंको मजबूत ढक लिया, इसपर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं, कि मानों उसने पास खड़े प्यारेको छोड़कर हृदयमें विराजी हुई उसकी तसवीरका ही गाढ आलिंगन किया।

२ इससे यह सिद्ध हो गया कि प्रथमवार मिलनेवाली तो नये पुरुषके सामने जाघें भींचती है किन्तु जिसने कभी कोई पुरुष ही नहीं देखा वह स्तन आदि सभीको भींचती है—जब जैसा मौका देखती है एवम् जिसे भींचनेका अवकाश पा जाती है ॥

स्वैरिण्यां यथासात्म्यं यथायोगं च । अलके चुम्बनार्थमेनां निर्दयमवलम्बेत् हनुदेशे चाङ्गुलिसंपुटेन ॥ १३ ॥

स्वैरिणीमें तो जैसा उसे अनुकूल पड़े एवम् जैसा योग हो वैसा करे, मुख चूमनेके लिये इसके बालोंको निर्दयताके साथ पकड़े एवम् इसकी ठोड़ीको अंगुलियोंके बीचमें दे ले ॥ १३ ॥

स्वैरिण्यामिति । या नायिका रूढविस्रम्भत्वात्सुरते निस्त्रपं यथेष्टचारिणी सा स्वैरिणी । अभियोक्त्रीत्यर्थः । तस्या यथासात्म्यं यथायोगं चेति । यद्येन सात्म्यं यच्च यत्र युज्यते तत्तस्य स्पर्शनमित्यर्थः । चुम्बनार्थमेनामिति । कृतक्षान्तिं पूर्वोक्तां स्वैरिणीं चालके निर्दयमवलम्बेत् ॥ १३ ॥

जो स्त्री सहवासमें बढ़े हुए विश्वासके कारण, निर्लज्जताके साथ जहां तबीयत आई वहीं चल देती है, उसे स्वैरिणी कहते हैं । यानी जिसने स्वयं अभियोग उपाय किया है वह अपने आप आई स्वैरिणी कहाती है । उसको जो अनुकूल पड़े एवम् जहां २ जो २ स्पर्श हो सके वहां २ वैसा ही स्पर्श करना चाहिये । रतारंभमें जो स्वैरिणीकी शान्तिके उपाय बताये हैं उन्हें आदर सत्कारपूर्वक करके मुखचुम्बनके लिये उसके बाल निर्दयताके साथ पकड़े एवम् ठोड़ीको हाथकी अंगुलियोंसे दाबकर पकड़ ले, फिर मुख चूमे ॥ १३॥

तत्रेतरस्या व्रीडा निमीलनं च । प्रथमसमागमे कन्यायाश्च ॥ १४ ॥

इतर स्त्रीको भी प्रथम समागममें लज्जा होती है और आखें मींचती है तथा अनुपभुक्ताकी भी यही दशा होती है ॥ १४ ॥

इतरस्या इति नायिकायाः । विधिमाह—या प्रथमसङ्गता कन्या च तस्या व्रीडा लज्जा निमीलनं चाक्ष्णोः स्यात् । न त्वतिविस्रब्धायाः स्वैरिण्याश्चेति । एवं नीवीविस्रंसनस्पर्शनघट्टनावलम्बनैश्चतुर्भिर्बाह्यैरुपसृप्तैः शयनस्थां विश्वास्य सांप्रयोगिकांश्चुम्बनादीन् प्रयुञ्जीत ॥ १४ ॥

जो किसी पुरुषसे पाहिले मिलती है वह स्त्री लजाती एवम् लाजसे आखें मींचती है । जिसने कभी किसी पुरुषको नहीं देखा ऐसी बाला; जिसे कि सहवासयोग्या एवं कन्या जैसी अछूती होनेके कारण कन्या कहते हैं । उसे लज्जा होती है तथा आखें भी मींचती है । पर अत्यन्त विश्वास किये हुए

यानी पूरी गीधी हुई स्त्रीकी तथा स्वैरिणी स्त्रीकी ये बातें नहीं होतीं। इस प्रकार बाह्य उपसर्पण—नीवी गिराना, हाथ फेरना, केश, ठोड़ी पकड़ना, एवम् हाथ चलाना ये चार हैं। पलिंगपर बैठी हुई स्त्रीको इन चारोंसे कुछ अपना विश्वास दिलाकर, पीछे संप्रयोगके चुम्बन आदिका प्रयोग करे ॥ १४ ॥

भीतरकी कारवाई।

आभ्यन्तराण्यभिधातुमाह—

(१) अनेक वारकी मिली हुई (२) अपनेसे पहिली ही बारके मौकेवाली, (३) जिसने कभी पुरुषका मुख नहीं देखा ऐसी बाला एवम् (४) स्वैरिणीके साथ होनेवाली पलिंगकी झटकापटकी तो बता दी। अब उसके बादके कार्य्य जिन्हें कि कामशास्त्रवाले आभ्यन्तर यानी भीतरकी कारवाई कहते हैं, उसका निरूपण कहते हैं कि—

रतिसंयोगे चैनां कथमनुरज्यत इति प्रवृत्त्या परीक्षेत १५

इसमें मनुष्य स्त्रीकी चेष्टासे इस बातका अन्दाज लगा ले कि रतिसंयोगमें इसे इस तरह अनुरक्त किया जा सकता है, उसी रीतिसे उसके साथ भीतरकी कारवाई (शुरू) कर दे ॥ १५ ॥

रतिसंयोगे चेति—रत्यर्थे यन्त्रसंयोगे सति । एनामिति—बाह्यैरुपसृतां प्रवृत्त्या चेष्टया परीक्ष्य यथाकथंचिदाभ्यन्तरैरुपसर्पेदित्यर्थः ॥ १५ ॥

ऊपर बताई हुई अनेक वार मिली आदि चारों तरहकी बाहिरकी कारवाई की हुई स्त्रियोंकी चेष्टासे इस बातका अन्दाज लगा ले कि इससे इस तरह भीतरकी कारवाई करके रतिके लिये यंत्रसंयोग होनेपर अनुरक्त किया जा सकेगा, उसी तरह विना किसी विशेष उत्पीडनके भीतरकी कारवाई करनी चाहिये, यह इस सूत्रका तात्पर्य्य है। अथवा जिसकी बाहिरकी कारवाई हो चुकी है ऐसी स्त्रीके साथ रतिके लिये यंत्रसंकोच होनेपर जिस तरह वह जिस चेष्टासे अनुरक्त होती दीखे उसी तरह उसे अनुरक्त करे, वैसी ही भीतरकी कारवाई होनी चाहिये ॥ १५ ॥

चेष्टासे स्पर्शसुखकी पहिचान।

तत्र प्रवृत्तिमाह—

जिस प्रवृत्ति (चेष्टा) से इस बातका पता चलता है, कि इस प्रकारकी भीतरी कारवाईसे इसे जलदी रति प्राप्ति होगी उसको बताते हैं, कि—

युक्तयन्त्रेणोपसृप्यमाणा यतो दृष्टिमावर्तयेत्तत एवैनां पीडयेत् । एतद्रहस्यं युवतीनामिति सुवर्णनाभः ॥ १६ ॥

स्त्रीके साथ यंत्रसंयोग करके भीतरके जिधरके स्पर्श या रिगड़ होनेसे स्त्रीकी सुखमयी दृष्टि फिरे उधरसे ही उसे पीडित करे, उसे किधरकी रिगड़ापट्टीसे सुख होता है, इस बातको वे नहीं बतातीं यह सुवर्णनाभका मत है॥१६॥

युक्तयन्त्रेणेति । यत इति यत्र संबाधस्यान्तरं भागं लक्षीकृत्य साधनेनोपसृप्यमाणा तत्स्पर्शसुखाद्दृष्टिमावर्तयेद्दृष्टिमण्डलं भ्रमयेत् तत एवेति तमाश्रित्य पीडयेत् । साधनेनात्यर्थमुपसर्पेत् । तत्र हि पीडनाद्द्रुतं रतिमधिगच्छति । एतद्रहस्यम् । स्त्रीभिरप्रकाश्यत्वात् । तथा हि रतिप्राप्त्यर्थमन्यैः प्रकारान्तरमुक्तम् । शास्त्रकृतः सुवर्णनाभमतमभिमतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ।

मदनमंदिरके जिस तरफके भीतरीभागको लक्ष करके पुरुषके मदनांकुशसे भीतरी कारवाई होते २ उसके स्पर्शके सुखसे आंखें फिराये उधरका ही लक्ष्य लेकर यानी उस तरफ ही साधनसे अत्य त काम करे, क्योंकि उधरके दबानेसे स्त्री जलदी ही रतिके सुखको प्राप्त कर लेती है । पर किधरके लगने या रिगड़नेसे उन्हें सुख मिलता है, इस बातको स्त्रियाँ बताया नहीं करतीं । जैसे सुवर्णनाभने रतिकी प्राप्तिके लिये यह प्रक्रिया बताई है, उसी तरह दूसरोंने भी और २ प्रक्रियाएँ बताई हैं, पर सुवर्णनाभके मतका उनसे भी खण्डन नहीं होता, इस कारण महर्षि वात्स्यायनके अभिमत सुवर्णनाभ आचार्य्यका ही मत है ।

अत्र च रतिबन्धनमेको बहव इति केषांचित्प्रदेशविवादः । तत्रोपसृप्यमाणा यस्मिन्नेकस्मिन्नियतेऽनियते वा देशे स्पृष्टा दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिन्नेव पीडयेदित्येकः प्रकारः । बहुषु वा यस्मिन्नुपसृप्यमाणा दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिंस्तस्मिन्नेव पीडयेदिति द्वितीयः । तत्रापि यस्मिन्नत्यर्थं दृष्टिमावर्तयेत्तस्मिन्नत्यर्थमेव पीडयेदिति बोद्धव्यम् । एतेन नाडीप्रदेशा अप्यन्यतन्त्रोक्ता व्याख्याताः । तेषामनेनैव प्रकारेण ज्ञायमानत्वात् ॥ १६ ॥

---

१ " येन सा भ्रमितदृष्टिमण्डला स्यात्ततस्तु परिपीडयेद् भृशम् । "

जिस प्रकारसे साधनसे काम करनेमें, स्त्री स्पर्शके सुखका अनुभव होनेके कारण आँखें फिराये तो उधर ही उधर यंत्रसंयोग होनेपर टक्कर दे । रतिरहस्यकार इस विषयमें इतना ही लिखते हैं यह नहीं बताते कि किधरकी टक्करसे सब काम पूरे हो जाते हैं ।

कोई रतिका बन्धन एक एवम् कोई अनेक मानते हैं, इस प्रकार कामशास्त्रके आचार्य्योंमें मदनमंदिरकी भीतरकी जगहोंके विषयमें विवाद है। इसमें एक तो रीति यह है कि चाहे वह जगह नियत हो चाहें न नियत हो, कामके समय साधनके जिधर लगनेसे स्त्री आखें फिराये उधर ही ज्यादा २ करे। बहुतसे प्रदेशोंमें यह बात है कि जिधर २ के साधनके स्पर्शके सुखसे दृष्टि फिराये उस २ तरफ साधनको अधिक लगाये, यह दूसरा विधान है। इसमें भी इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि जिधरके स्पर्शसे अधिक सुख माने उधरकी तरफ अधिक २ करना चाहिये, इस तरह महर्षि वात्स्यायनने दूसरे २ शास्त्रग्रन्थोंके कहे नाडियोंके[1] प्रदेश (जगहें) भी कह दीं, क्योंकि उनका भी पता इसी रीतिसे लगता है ॥ १६ ॥

प्राप्त, प्रत्यासन्न और संधुक्ष्यमाण रागके लक्षण ।

उपसृप्यमाणाया भावस्य तिस्रोऽवस्थाः—प्राप्तः, प्रत्यासन्नः, संधुक्ष्यमाणश्चेति । त्रयाणां लक्षणमाह—

जिसके साथ भीतरकी कारवाई चल रही हैं उसके भावकी प्राप्त, प्रत्यासन्न और संधुक्ष्यमाण भेदसे तीन अवस्थाएँ होती हैं । तीनोंके लक्षणोंको बताते हैं। इन तीनोंमें भी पहिले प्राप्त और प्रत्यासन्नका लक्षण करते हैं—

गात्राणां स्रंसनं नेत्रनिमीलनं व्रीडानाशः समधिका च रतियोजनेति स्त्रीणां भावलक्षणम् ॥ १७ ॥

शरीरका ढीला होना और आखोंका मिच जाना प्राप्त भावका लक्षण है एवम् लज्जाका नाश और रतिकी अधिक योजना प्रत्यासन्न भावका लक्षण है॥

तत्र गात्रावसादो नेत्रनिमीलनं च प्राप्तस्य लिङ्गम् । व्रीडानाशो लज्जानिवृत्तिः । रतियोजनेति रत्यर्थं योजना । यन्त्रयोजनेत्यर्थः । सा स्वजघनस्य नायकजघनेनात्यन्तलग्नात्समधिकेति प्रत्यासन्नस्य । भावलक्षणमिति प्राप्तप्रत्यासन्नस्येत्यर्थः ॥ १७ ॥

---

१ कामशास्त्रके पंचसायक ग्रन्थके पंचम सायकमें नाडीसमुद्देश नामक प्रकरणमें प्रथम श्लोकमें—" स्त्रियोंके मदनमंदिरके भीतर गौरी, समीरणा और चान्द्रमसी ये तीन नाडियाँ मानी हैं। समीरणामें गिरा वीर्य्य निष्फल, चान्द्रमसीमें गिरनेसे कन्या एवमू गौरी नाडीमें वीर्य्यके गिरनेसे पुत्र होता है " यह लिखा है।

स्खलित होनेका नाम भाव है, जिस समय स्त्रीका शरीर ढीला पड़ जाय और आखें मिचने लगें तो समझ लो कि स्खलित हो रही है एवम् सहवासमें लाज (संकोच) एकदम चला जाय इस कारण रतिके लिये निःसंकोच अत्यन्त यंत्रयोजन करे तो समझना चाहिये कि अब स्खलित होने वाली ही है। इसमें स्त्री अपने जघनको बार २ नायकके जघनसे अत्यन्त संलग्न करती (अधिक चिपटाती) जाती है। इस प्रकार ये दो लक्षण प्राप्त और प्रत्यासन्न भावके हैं ॥ १७ ॥

प्रदीप्त हुए रागका रूप ।

संधुक्ष्यमाणस्येत्याह—

अब दगदगाते हुए रागके लक्षण कहते हैं, कि—

हस्तौ विधुनोति स्विद्यति दशत्युत्थातुं न ददाति
पादेनाहन्ति रतावमाने च पुरुषातिवर्तिनी ॥ १८ ॥

हाथोंको कँपाये, प्रेममें आये, काटे, रतसे विरत न होने दे, लातें लगाये और पुरुषकी रति प्राप्ति होने पर वह उसका भी अतिक्रमण कर जाय तो समझ लो कि राग दगदगा रहा है ॥ १८ ॥

हस्ताविति । विधुनोति कम्पयति । उत्थातुं न ददाति यन्त्रयोगात् । पुरुषातिवर्तिनीति । पुरुषस्य रतिप्राप्तौ तमतिक्रम्य स्वजघनव्यापारेण वर्तत इत्यर्थः ॥ १८ ॥

जिसका भाव प्रदीप्त हो जाता है वह स्त्री सहवासमें हाथें कँपाने लगती है, अत्यन्त प्रेम दिखाती है, यंत्रयोगसे उठने यानी हटने नहीं देती। यदि पुरुष स्खलित हो चुका हो तो भी आप अपने जघनके व्यापार यानी हिलाने आदिसे पुरुषको भी मांत कर देती है तो समझ लेना चाहिये कि भाव मिनमिना रहा है ॥ १८ ॥

---

१ शरीरके ढीले होनेके साथ साधनका भी ढीला हो जाना सहज बात है, अत एव यह शैथिल्य उसका भी द्योतक है।

२ इसके सिवा रतिरहस्यकारने सीत्कार करना एवं मदगर्वसे अकुलाना इतना और अधिक कहा है, पर इनको सार्वत्रिक न समझकर कामसूत्रकारने छोड़ दिया है।

३ जब स्त्री स्खलित नहीं हो जाती एवं राग दगदगा है तो फिर वह इन बातोंको करती हैं। कोकजी तो यह भी कहते हैं कि स्त्रीकी विपरीत रतिका यह भी एक मौका होता है।

करिकरका प्रयोग।

तस्याः प्राग्यन्त्रयोगात्करेण संबाधं गज इव क्षोभयेत्। आ मृदुभावात्। ततो यन्त्रयोजनम् ॥ १९ ॥

उस स्त्रीके मदनमंदिरको यंत्रयोगसे पहिले हाथीकी तरह, हाथसे क्षोभित करे; जब तक कि वह मृदु न हो जाय, इसके बाद यंत्रयोग करे ॥ १९ ॥

तस्याश्चेष्टितमीदृशं बुद्ध्वा यन्त्रयोगात्प्राग्वत्स्वयं रतमधिगम्य पश्चात्तदानीमस्या रतं विच्छिन्नरसं स्यात्। तच्चतुर्विधम्। यथोक्तम्—'अन्तःपद्मदलस्पर्शं गुटिकावच्च योषितः। वलिभं च वराङ्गं स्याद्गोजिह्वाकर्कशं तथा ॥' इति। तत्राद्यं त्यक्त्वा शेषं कण्डूतिबहलत्वात्करेण क्षोभयेत्। आ मृदुभावादिति। यावन्मृदुतां गतम्। ततो यन्त्रयोजनम्। मृदुभूते हि तस्मिन्नुपसृप्यमाणा द्रुतं रतिमधिगच्छति। गज इवेति करौपम्यार्थम्। गजाकारेणेत्यर्थः।

जब पुरुषको यह पता चल जाय कि इसका भाव (रतिलालसा) दगदगा रही है तो ऐसी स्त्रीसे स्वयम् पहिलेसे रमण प्रारंभ न कर दे, क्योंकि पुरुषके पहिले स्खलित हो जानेसे स्त्रीका रतिरस बीचमें ही टूट जाता है, इस कारण सहवाससे पहिले मदनमंदिरको ढीला करके पीछे सहवास करे। **योनियोंके स्वरूप**—स्त्रियोंकी योनियाँ चार तरहसे होती हैं, उसमें सबसे पहिला भाग कमलके पत्ते जैसा स्पर्शमें रहता है। दूसरा उसके आगेका भाग गुटिकाकी तरह है; जिसे समदेशिका भी कहते हैं। तीसरा भाग वलियोंके समुदायसे व्याप्त है। वलि गोलमांसकी ग्रन्थियोंको कहते हैं यानी चक्राकार है। तथा चौथा भाग गऊकी जीभकी तरह खुरदरा है। इन चारोंमें पहिलेको छोड़कर बाकी तीनोंमें खाज अधिक रहती है, इस कारण हाथसे उसे उतने समयतक क्षुब्ध करना चाहिये, जबतक कि वह मृदु न हो जाय, पीछे यंत्रसंयोग करना चाहिये, क्योंकि मदनमान्दिरके कोमल हो जानेपर वह जलदी ही रतिको प्राप्त हो जाती है। 'गजकी तरह' यह हाथकी उपमाके लिये है यानी अंगुलियोंका करिकर बनाकर उससे ढीला करना चाहिये।

---

१ यदि पुरुष सहवासमें पहिले स्खलित हो चुका हो एवम् स्त्रीका राग प्रदीप्त हुआ हो तो जहां तक संभव हो सके उसे आलिंगन आदिकसे अधिक प्रवृत्त हो रति प्राप्त कराकर ही छोड़े। शिथिल होने या प्रारंभमें फिर इस प्रकार ढीला करके ही प्रवृत्त हो यह कोकका तात्पर्य्य है।

तथा चोक्तम्—'अनामिकाप्रदेशिन्यौ श्लिष्टाग्रे ज्येष्ठया सह । गजहस्ताग्र-सादृश्यात्तत्संज्ञं कृत्रिमं स्मृतम् ॥' एवं च करग्रहणं कृत्रिमसाधनोपलक्षणार्थम् । तेन कृत्रिमेणाभ्यन्तराण्युपसृप्तानि द्रष्टव्यानि ॥ १९ ॥

गजहस्त—का लक्षण किया है कि, पहिली और चौथी अंगुली आपसमें चिपटी हों एवम् बिचली अंगुली इन दोनोंके पीछे चिपकी हो, यह हाथीकी सूँड जैसा होनेके कारण करिकर कहाता है, इससे स्त्रीके मदनमंदिरमें उसे ढीला करनेके लिये साधनकी तरह व्यापार किया जाता है । सूत्रका करग्रहण कृत्रिम साधनका भी उपलक्षक है, क्योंकि गजकर कृत्रिमसाधनका भी नाम है । इससे यह बात सिद्ध हो गई कि कृत्रिम साधनसे भी भीतरके उपसर्पण होते हैं ॥ १९ ॥

साहित्यमें करिकर ।

" करिहस्तेन सम्बाधे प्रविश्यान्तर्विलोडिते ।
उपसर्पन् ध्वजः पुंसः साधनान्तर्विराजते ॥ "

जब करिकरने मदनमंदिरके भीतर घुसकर उसको मथ डाला, इसके बाद पुरुषका साधन अपना काम करने लगा । साहित्यदर्पण, काव्यप्रदीप, काव्य-प्रकाश आदि साहित्यके ग्रन्थोंमें इसे इसके उदाहरणमें रखा है, कि सुरत एवम् पानगोष्ठीमें अश्लीलता दोष नहीं प्रत्युत गुण है । सारांश यह, कि साहित्यवालोंने और तो क्या करिकरको भी नहीं छोड़ा है । जो किसी तरह भी तृप्त न हो उसपर कृत्रिम साधनका प्रयोग करना चाहिये । ऐसा कोक महाराजका मत है ।

उपसृप्तोंके भेद ।

तान्याह—

उपसर्पणोंको जानना चाहिये, अतएव उपसर्पणोंको बताते हैं, कि—

उपसृप्तकं मन्थनं हुलोऽवमर्दनं पीडितकं निर्घातो

---

१ स्त्रीके मदनमंदिरमें जिस समय पुरुष अपने साधनको भीतर चला देता है, उस समय ये होते हैं । यानी जो २ बातें बताई हैं, उस २ रीतिसे भीतर करने हलने आदिके ये सब नाम हैं । जब तक स्त्री पुरुष स्खलित नहीं होते इसी तरह करते रहते हैं । इस तरह करनेमें स्त्रीके बलाबलका अवश्य ध्यान रखना चाहिये । रतिकरनेके लिये लगे जानेपर पुरुष जो प्रयत्न करता है उसे उपसृप्त या उपसर्पण कहते हैं ।

वराहघातो वृषाघातश्चटकविलसितं संपुट इति पुरुषोपसृप्तानि ॥ २० ॥

उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीडितक, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटकविलसित और संपुट ये पुरुषोपसृप्त हैं ॥ २० ॥

लिङ्गेन संबाधस्य मिश्रणात्सर्वमेवोपसृप्तकम् ॥ २० ॥

पुरुषके मदनांकुशके साथ स्त्रीके मदनमन्दिरका संमिश्रण (मिलन) होनेसे पुरुषोंके सभी उपसृप्त सहवासके उपसर्पण यानी सहवासके संपर्क कहे हैं वे उपसृप्तकसे लेकर संपुटतक यहां गिनाये हैं ॥ २० ॥

उपसृप्तक ।

न्याय्यमृजुसंमिश्रणमुपसृप्तकम् ॥ २१ ॥

इनमें उचित रीतिसे सीधे मिलानेका नाम उपसृप्तक है ॥ २१ ॥

तत्र यदृजु—प्रगुणं न्याय्यमागोपालाङ्गनाप्रसिद्धं मिश्रणं तदुपसृप्तकमिति कन्प्रत्ययेन विशेषसंज्ञां दर्शयति ॥ २१ ॥

यद्यपि सभी यंत्रयोग उपसृप्त हैं पर उनमें प्रगुण यानी सीधा उचित रीतिसे मिलाना जिसे गोपोंकी स्त्रियाँ भी जानती हैं उसे उपसृप्तक[1] कहते हैं २१

मन्थन ।

हस्तेन लिङ्गं सर्वतो भ्रामयेदिति मन्थनम् ॥ २२ ॥

हाथसे मदनांकुशको सब ओर घुमानेका नाम मन्थन है ॥ २२ ॥

हस्तेन लिङ्गं गृहीत्वा संबाधाभ्यन्तरे सर्वतो मथ्नन्निव भ्रामयेत् ॥ २२ ॥

हाथसे साधनको पकड़कर मदनमंदिरके भीतर चारों ओर मथन करते हुएकी तरह घुमावे तो 'मन्थन' कहाता है ॥ २२ ॥

हुल ।

नीचीकृत्य जघनमुपरिष्टाद्घट्टयेदिति हुलः ॥ २३ ॥

जघनको नीचा करके ऊपर हुड्ड मारनेका नाम 'हुल' है ॥ २३ ॥

नीचीकृत्य जघनमिति—स्त्रीकटिमधः कृत्वा । उपरिष्टादिति—अभ्यन्तरस्योर्ध्वभागे भगं हुलेनेव लिङ्गेनावघट्टयेत् ॥ २३ ॥

स्त्रीकी कमरको नीचा करके मदनमन्दिरके भीतर ऊपरकी ओर साधनका हुड्ड लगाये, तो इसे 'हुल' कहते हैं ॥ २३ ॥

---

१ उपसृप्तके साथ कन् प्रत्यय लगानेसे यह विशेष संज्ञा दिखाते हैं ।

अवमर्दन ।

तदेव विपरीतं सरभसमवमर्दनम् ॥ २४ ॥

वही यदि विपरीत और एकदम, हो तो 'अवमर्दन' कहाता है ॥२४॥

तदेवेति घट्टनम् । विपरीतमुच्चीकृत्य जघनमधस्तादिति विशेषश्चापरो यः । सरभसमिति । रभसेन गृह्णीयादित्यर्थः । अधोभागस्य कण्डूतिबहुलत्वात् ॥२४॥

कमरको ऊंचा करके स्त्रीके मदनमंदिरके भीतर नीचेकी ओर एकदम वारंवार हुड्ड लगाये, उसे वेगके साथ ग्रहण करे, क्योंकि नीचेके भागमें खाज अधिक रहती है ॥ २४ ॥

पीडितक ।

लिङ्गेन समाहत्य पीडयंश्चिरमवतिष्ठेतेति पीडितकम् ॥२५

साधनसे अच्छीतरह वार करके पीडित करता हुआ देरतक दावे रहे, उसे 'पीडितक' कहते हैं ॥ २५ ॥

लिङ्गेनेति । वेगादा मूलं प्रवेशमानेन समाहत्य पीडयेन्भगमवतिष्ठेत । तिष्ठेत चिरमिति यावन्तं कालं लिङ्गोन्नमनावनमनानि कर्तुं समर्थः ॥ २५ ॥

एकदम साधनको प्रविष्ट करनेका वार करके मदनमंदिरको पीडित करता हुआ उस समयतक सहवास करता रहे जबतक कि साधनको ऊँचा नीचा या उठा नवा सके अर्थात् जवतक वह पूरा तना रहे, उसी तरह करता रहे ॥२५॥

निर्घात ।

सुदूरमुत्कृष्य वेगेन स्वजघनमवपातयेदिति निर्घातः २६

दूरतक खींचकर वेगसे जघनको स्त्रीके संवाधपर गिराये तो इसे 'निर्घात' कहते हैं ॥ २६ ॥

सुदूरमिति । प्रवेशितं लिङ्गमा निबन्धमाकृष्य वेगेन जघन एव निर्घातवत्क्षिपेत् ॥ २६ ॥

प्रविष्ट किये हुए साधनको एकदम पूगके जोड़तक खींचकर उसके साथ जघनको ही स्त्रीके जघनपर पत्थरकी तरह पटक दे तो इसे 'निर्घात' कहते हैं २६

वराहघात ।

एकत एव भूयिष्ठमवलिखेदिति वराहघातः ॥ २७ ॥

एक ही ओर बहुत हूड दे, उसे 'वराहघात' कहते हैं ॥ २७ ॥

एकत एवेति–एकस्मिन्नेव पार्श्वे । भूयिष्ठम्–बहून्वारान्वराहवद्दंष्ट्र्यावलिखेत् । स एवेति वराहस्य घातः ॥ २७ ॥

एक ही बगल बहुतबार इस तरहकी हूड चलाये कि जिस तरह सूकर डाढ़से जमीन खोदतीबार करता है तो, उसे 'वराहघात' कहते हैं ॥ २७ ॥

वृषाघात ।

स एवोभयतः पर्यायेण वृषाघातः ॥ २८ ॥

वराहघात ही दोनों बगल पर्य्यायसे हो तो उसे 'वृषाघात' कहते हैं ॥२८॥

उभय इति । उभयपार्श्वयोः परिपाट्या वृषभवच्छृङ्गाभ्यामवलिखेत् ॥ २८ ॥

दोनों तरह बैलके सींगोंसे खोदनेकी तरह पर्य्यायसे दोनों ओर हुड्डं लगाये तो उसे ' वृषाघात ' कहते हैं ॥ २८ ॥

चटकविलसित ।

सकृन्मिश्रितमनिष्क्रमय्य द्विस्त्रिश्चतुरिति घट्टयेदिति चटकविलसितम् ॥ २९ ॥

एकबार किये हुए को निकाल २ दो २, तीन २, चार २ बार घट्टित करे तो उसे ' चटकविलसित ' कहते हैं ॥ २९ ॥

सकृन्मिश्रितमिति । एकवारं प्रवेशितं लिङ्गमनिष्क्रमय्यानिष्कास्य बहिरभ्यन्तरमेव किंचिदाकृष्य चटकवत्तत्रैव लिङ्गं संघट्टयेत् । द्विस्त्रिर्वा । प्रकर्षेण चतुरिति ॥ २९ ॥

एक बार प्रविष्ट किये हुएको भीतर ही भीतर बाहिर निकाल करके चिरोंटांकी तरह फिर भी भीतर दो, तीन या प्रकर्षसे करे तो चार बार रिघसकर करे तो यह चिरोंटाकी लीला है ॥ २९ ॥

संपुट ।

रागावसानिकं व्याख्यातं करणं संपुटमिति ॥ ३० ॥

स्खलित होनेके समय संपुट होता है, इसे कह चुके हैं ॥ ३० ॥

रागावसानिकमेतत् । विसृष्टयवस्थायामेव स्वभावत्वात् । व्याख्यातमिति करणं संपुटम् । तच्च व्याख्यातम्—' ऋजुप्रसारितावुभयोश्चरणौ ' इति । तत्र लिङ्गमनिष्क्रमय्य जघनेन जघनमवगूह्य यत्संमिश्रणं तदपि संपुटमित्युक्तम् ॥ ३० ॥

यह रागके अवसानमें होता है जब कि स्खलित होनेपर आता है, क्योंकि उसका यही स्वभाव है । संपुट करणको संवेशन प्रकरणमें सोलहवें सूत्रमें बता चुके हैं । इसमें साधनको विना निकाल जघनसे जघनको गूंथकर जो दोनों यंत्रोंका मिलना है, उसे भी संपुट कहते हैं ॥ ३० ॥

प्रयोगकी रीति ।

तेषां स्त्रीसात्म्याद्विकल्पेन प्रयोगः ॥ ३१ ॥

इनका स्त्रीकी अनुकूलताके कारण विकल्पसे प्रयोग होता है ॥ ३१ ॥

तेषामिति उपसृप्तकादीनाम् । स्त्रीसात्म्यादिति येन यस्याः सात्म्यं तेन तस्यां प्रयोगः । विकल्पेन मृदुमध्यातिमात्रभेदेन । तत्र पुरुषोपसृप्तेषु यद्बाह्यं नीवीविश्लेषणादिकं तद्द्वितीये मार्गे नायककक्षाबन्धविश्लेषणादि बाह्यं पुरुषायितम्, यच्चाभ्यन्तरमुपसृप्तं तन्मार्गद्वयेऽप्याभ्यन्तरं पुरुषायितं द्रष्टव्यम् ॥ ३१ ॥

इन उपसृप्तक आदिकोंमेंसे जिस स्त्रीको जो अनुकूल पड़े, उसके विषयमें उसीका प्रयोग करे । यदि मृदु अच्छा लगे तो वह एवम् मध्य और अधिमात्र अच्छे लगें तो उसी रूपमें प्रयोग करे । इसमें विचारनेकी बात यह है, कि पुरुषोंके उपसृप्तोंमेंसे जैसे नीवी जुदी करना आदि बाहिरके उपसृप्त हैं उसी तरह पुरुषायितमें नायककी कक्षा बन्ध आदिका अलग करना बाहिरका पुरुषायित है । जो आभ्यन्तर उपसृप्त हैं वे पुरुषोपसृप्त और पुरुषायित दोनोंमें ही आभ्यन्तर ही हैं, यानी वही आभ्यन्तर पुरुषायित कहायेगा यह समझना चाहिये ॥ ३१ ॥

पुरुषोपसृप्तसे पुरुषायितमें अधिकता ।

पुरुषोपसृप्तं प्रकरणमुक्त्वा विशेषाभिधित्सया पुनः पुरुषायितमाह—

पुरुषोपसृप्त प्रकरणको कहकर विशेष कहनेके लिये फिर पुरुषायित प्रकरणको कहते हैं, कि—

पुरुषायिते तु संदंशो भ्रमरकः प्रेङ्खोलितमित्यधिकानि ॥

पुरुषायितमें तो संदंश, भ्रमरक और प्रेङ्खोलित ये अधिक हैं ॥ ३२॥

पुरुषायिते त्विति । अभ्यन्तरे पुरुषायिते प्रवर्तमानायास्त्रीण्यधिकानि ॥ ३२॥

भीतरके पुरुषायितमें प्रवृत्त हुई स्त्रीके ये तीन उपसृप्त अधिक होते हैं ॥ ३२

संदंश ।

वाडवेन लिङ्गमवगृह्य निष्कर्षन्त्याः पीडयन्त्या वा चिरावस्थानं संदंशः ॥ ३३ ॥

घोड़ीकी तरह पुरुषकी गुप्त इन्द्रियको पकड़कर भीतर खींचती वा पीडित (दबाती) हुई देर तक रहे, उसे 'संदंश' कहते हैं ॥ ३३ ॥

---

१ यह रतिरहस्य, अनंगरंग आदिमें इस रीतिसे नहीं है ।

वाडवेनेति वराङ्गौष्ठसंदंशेन लिङ्गमवगृह्य निष्कर्षन्त्या अन्तः समाकर्षन्त्याः स्थानमवस्थितिः ॥ ३३ ॥

मदनमंदिरके दोनों होठोंसे पुरुषके गुप्त अंगको पकड़कर भीतर खींचती या देर तक दबाती रहे तो इसे ' संदंश ' कहते हैं ॥ ३३ ॥

भ्रमरक ।

युक्तयन्त्रा चक्रवद्भ्रमेदिति भ्रमरक आभ्यासिकः ॥ ३४ ॥

यंत्रयोग किये हुए चाककी तरह घूमे, यह अभ्यासत्ताध्य है ॥ ३४ ॥

युक्तयन्त्रेति। भगप्रवेशितलिङ्गा कुलालचक्रवत्कुञ्चितचरणा नायकाङ्गे हस्ताभ्यां शरीरावष्टम्भं कृत्वा भ्रमयेत् । अयमभ्यासाद्भवति ॥ ३४ ॥

अपने मदनमंदिरमें पुरुषका साधन प्रविष्ट करके पैरोंको सिकोड़कर एवम् नायकके शरीरपर दोनों हाथोंसे शरीरको रोककर कुम्हारके चाककी तरह घूमे । यह अभ्याससे होता है ॥ ३४ ॥

इसमें नायकका कृत्य ।

तत्रेतरः स्वजघनमुत्क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

इसमें नायक अपने जघनको ऊंचा कर दे ॥ ३५ ॥

तत्रेति भ्रमरके । इतरो नायको यन्त्राविश्लेषार्थं भ्रमरकसौकर्यार्थं च स्वजघनमूर्ध्वं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥

इस भ्रमरकमें नायक, कहीं यंत्र न जुदे हो जायँ, इस कारण एवम् भ्रमरक अच्छी तरह हो जाय इसके लिये अपने जघनका ऊंचा कर दे ॥ ३५ ॥

प्रेङ्खोलित ।

जघनमेव दोलायमानं सर्वतो भ्रामयेदिति प्रेङ्खोलितकम् ॥

दोलाकी तरह हिलते हुए जघनको सब ओर घुमानेका नाम 'प्रेङ्खोलित' है ॥ ३६ ॥

दोलायमानमिति पृष्ठतो नीत्वाग्रतो नयेत् । एकं पार्श्वं नीत्वा द्वितीयमित्येवम् । तत्प्रेङ्खणात्प्रेङ्खोलितकम् । मण्डलेन तु भ्रमितं मन्थनान्तर्भूतम् । तेषां पुरुषसात्म्याद्विकल्पेन च प्रयोग इत्यत्रापि योज्यम् ॥ ३६ ॥

पीछेसे लाकर अगाड़ीसे लावे, एक बगल ले जाकर दूसरी बगल लाये । यह डोलनेके कारण प्रेङ्खोलित कहाता है, मण्डलसे घुमाना तो मन्थनके भीतर

---

१ अनंगरंगने इसका नाम ' उत्कलित ' रखा है ।

है, इनका प्रयोग पुरुषकी अनुकूलतासे मृदु, मध्य और अधिमात्र प्रयोग होना चाहिये ॥ ३६ ॥

इसमें विश्राम लेनेकी रीति।

युक्तयन्त्रैव ललाटे ललाटं निधाय विश्राम्येत ॥ ३७ ॥

यंत्रयोग किये हुए ही माथेपर माथा रखकर विश्राम ले ले ॥ ३७ ॥

युक्तयन्त्रैव विश्राम्येत न विश्लिष्टयन्त्रा । रागस्यानुपशान्तत्वात् । ललाटे ललाटं निधायेति श्रमापनयनकारणम् ॥ ३७ ॥

यंत्र मिले हुए ही विश्राम कर ले, जुदा करके न करे। क्योंकि विना राग शान्त हुए जुदा होना ठीक नहीं है। माथेपर माथा रखकर श्रम दूर किया जाता है ॥ ३७ ॥

पुरुषके ऊपर आनेका समय।

विश्रान्तायां च पुरुषस्य पुनरावर्तनम्। इति पुरुषायितानि ॥ ३८ ॥

स्त्री थक ले तो पुरुष फिर ऊपर आ जाय यह पुरुषायित पूरा हुआ ॥ ३८ ॥

पुनरागमनं पुनरुपरि गमनमित्यर्थः । रत्यधिगमात्तु परिश्रान्तायां पुनरावर्तनमित्यर्थोक्तम् । यथा रतपरिश्रान्तेन सहायकार्थं पुरुषायितेऽनुमन्यते तथा तत्स्वभावप्रतिपत्त्यर्थमिति ॥ ३८ ॥

यदि वह रतिको प्राप्त करके थकी हो तो भी फिर ऊपर आकर प्रवृत्त हो; यह तो ऊपर आनेके कथनसे स्वतःसिद्ध हो गया। जिस तरह रतसे थके हुए द्वारा पुरुषायितमें सहाय कार्य्य माने उसी तरह उसके स्वभावकी प्रतिपत्तिके लिये ऊपर आ जाय ॥ ३८ ॥

प्रकरणका उपसंहार।

तत्र नियोज्यादि दर्शयन्नाह—

इसमें नियोज्यादिकोंको दिखाते हुए कहते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रच्छादितस्वभावापि गूढाकारापि कामिनी।
विवृणोत्येव भावं स्वं रागादुपरिवर्तिनी ॥ ३९ ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं—कि कामिनीने चाहे अपना स्वभाव ढक रखा हो और आकार छिपा भी रखा हो, किन्तु ऊपर आई हुई रागके वश हो अपने स्वभावको प्रकट कर देती है ॥ ३९ ॥

प्रच्छादितस्वभावापीति लज्जया प्रच्छादितोऽभिप्रायो यया । कथमित्याह— गूढाकारेति । अभिप्रायसूचकस्याकारस्य गोपितत्वात् । साप्युपरिवर्तिनी कामयमाना स्वभावमात्मीयमभिप्रायं रागात्प्रकाशयति न गूहितुं शक्नोति । अतो नियोज्यम् ॥ ३९ ॥

लाजके मारे चाहे अपना असली स्वभाव ढक ही रखा हो, क्योंकि अभिप्राय सूचक आकारको छिपा लेनेसे स्वभाव प्रकट नहीं हो पाता, पर जब वह ऊपर आकर कामचेष्टाएँ करती है तो रागसे अपने निजी स्वभावको प्रकट ही कर देती है । छिपा नहीं सकती, इस कारण उसे पुरुषायितमें भी लगाना चाहिये ॥ ३९ ॥

तदेव स्फुटयन्नाह—

इसी बातको स्फुट करते हुए कहते हैं, कि—

यथाशीला भवेन्नारी यथा च रतिलालसा ।
तस्या एव विचेष्टाभिस्तत्सर्वमुपलक्षयेत् ॥ ४० ॥

स्त्रीका जैसा स्वभाव हो, जैसी उसकी रति लालसा हो उसकी ही विशेष चेष्टाओंसे उन सबको जाच ले ॥ ४० ॥

यथाशीलेति । यादृशः स्वभावो यस्याः । यथा च रतिलालसा येन प्रकारेण रतौ जाततृष्णा । तस्या उपरिवर्तिन्या विचेष्टाभिस्तत्प्रकाराभिः । तत्सर्वमिति शीलं रतिप्रकारं च सर्वमुपक्षलयेत् । येनोत्तरकाले तथैव सुरते समुपक्रमेत ॥ ४० ॥

जिस स्त्रीका जैसा स्वभाव हो, जिस तरह उसकी रतिमें तृष्णा उत्पन्न हो, पुरुषायितमें लगी हुई जिस रीतिसे वह रतिचेष्टा करे उसे अच्छी तरह लक्ष्यमें दे ले; जिससे उत्तर कालमें उसके साथ वैसा ही बर्ताव कर सके ॥ ४० ॥

तत्रापवादमाह—

बताये हुए पुरुषायितका अपवाद कहते हैं कि—

न त्वेवर्तौ न प्रसूतां न मृगीं न च गर्भिणीम् ।
न चातिव्यायतां नारीं योजयेत्पुरुषायिते ॥ ४१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे
पुरुषोपसृप्तानि पुरुषायितं चाष्टमोऽध्यायः ।
आदितस्त्रयोदशः ।

ऋतुकालवाली, प्रसूता, मृगी, गर्भिणी और अत्यन्त मोटी स्त्रीको पुरुषा-यित करनेमें न लगाये ॥ ४१ ॥

न त्वेवेति । ऋतौ न योजयेत् । गर्भग्रहणभयात् । पुनरावर्तने च गर्भग्रह-णाद्दारकदारिके व्यस्तशीले स्याताम् । न प्रसूतामचिरप्रसूताम् । प्रदरकटिनि-र्गमभयात् । न मृगीम् । वृषाश्वयोरवपाटिकाभयात् । न गर्भिणीम् । गर्भ-स्रावभयात् । नातिव्यायतामतिस्थूलाम् । व्यापारयितुमशक्यत्वात् । पुरुषायितं सप्तदशं प्रकरणम् । तदन्तर्गतानि पुरुषोपसृप्तान्यष्टादशं प्रकरणम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-करणे पुरुषायितं पुरुषोपसृप्तानि चाष्टमोऽध्यायः ।

ऋतुकालवालीको पुरुषायितमें न लगाये, क्योंकि गर्भ न होनेका भय है, रह भी जायगा तो लड़की लड़के भी इसी स्वभावके होंगे । जिसके हालहीमें बच्ची बच्चा हुए हों उसे भी इस कार्य्यमें न लगाये, क्योंकि प्रदर होने और कटिके निकल आनेका भय रहता है । यदि मृगीको वृष और अश्व इस कार्य्यमें लगा देंगे तो उन्हें अवपाटिका रोग हो जानेका खतरा है । गर्भिणीके गर्भ गिर-जानेका भय है । अत्यन्त मोटी ऊपरके व्यापार नहीं कर सकेती[1] । यह पुरुषा-यितनामका सहत्रवाँ प्रकरण पूरा हुआ । उसके अन्तर्गत पुरुषोपसृप्त नामका अठारहवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके अष्टम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

---

१ इस विषयमें कामशास्त्रके सभी आचार्य्योंका एक मत है, तथा वैद्यकके आचार्य्य भी इसके साथ सहमत हैं ।

नवमोऽध्यायः ।

औपरिष्टक प्रकरण ।

आलिङ्गनादिपुरुषायितान्तं चतसृषु नायकासूक्तम्, 'तृतीयाप्रकृतिः पञ्चमीत्येके' इत्युक्तम्, तद्विषयमौपरिष्टकमुच्यते द्विविधेत्यादिना ।

आलिंगनसे लेकर पुरुषायिततक तो चारों प्रकारकी नायिकाओंके विषयमें कह दिया है, किन्तु तृतीया प्रकृतिको जो कामसूत्रकारने वहीं पांचवें प्रकारकी नायिका बताया है उसके लिये निम्न लिखित सूत्रोंसे 'औपरिष्टक' प्रकरणको कहते हैं ।

तृतीया प्रकृतिके भेद।

विना तृतीया प्रकृतिका भेद बताये, विशेष विधान नहीं बताये जा सकते इस कारण सबसे पहिले उसके भेद बताते हैं, कि—

द्विविधा तृतीयाप्रकृतिः स्त्रीरूपिणी पुरुषरूपिणी च ॥१॥

तृतीया प्रकृति दो तरहकी होती है–एक तो स्त्रीके रूपमें तथा दूसरी पुरुषके रूपमें रहती है ॥ १ ॥

तृतीयाप्रकृतिर्नपुंसकम् । स्त्रीरूपिणी स्त्रीसंस्थाना । स्तनादियोगात् । पुरुषरूपिणी पुरुषसंस्थाना । श्मश्रुलोमादियोगात् । यद्वृत्तिमाश्रित्यौपरिष्टकमनयोस्तदुच्यते ॥ १ ॥

तृतीया प्रकृति नपुंसकको कहते हैं । एकका तो शरीर स्त्री जैसा होता है यानी स्तन आदिक उसके शरीरमें होते हैं । दूसरीके मूँछ डाढ़ी आदिक होते हैं । इन दोनोंकी जीविकाके लिये औपरिष्टकका विधान कहते हैं, इनके साथ इसी कर्मसे संपर्क किया जाता है ॥ १ ॥

स्त्रीरूपिणीका रंगढंग ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

दो तरहके जो नपुंसक कहे गये हैं उनमें क्लीब स्त्रीका रंगढंग बताते हैं कि—

तत्र स्त्रीरूपिणी स्त्रिया वेषमालापं लीलां भावं मृदुत्वं भीरुत्वं मुग्धतामसहिष्णुतां व्रीडां चानुकुर्वीत ॥ २ ॥

---

१ 'यह क्या है' इस बातको बीसवें पृष्ठमें कह चुके हैं ।

इनमें जो स्तन केशवाली हो उसे स्त्रियोंके वेष, भूषा, आलाप, लीला, मृदुता, भीरुता, मुग्धता, असहिष्णुता और लज्जाका अनुकरण करना चाहिये २

तत्रेति। तयोः सम्यक्स्त्रीत्वख्यापनार्थं तावत्स्त्रीधर्मानुकरणम्। तत्र वेषं केशपरिधानादिविन्यासेन, आलापं काकल्यनुगतम्, लीलां मन्थरादिगमनम्, भावं हावादिकम्, मृदुत्वमकार्कश्यम्, भीरुत्वं भयशीलताम्, मुग्धतामृजुताम्, असहिष्णुतां प्रहणनवातातपाद्यक्षमताम्, व्रीडां लज्जामनुकुर्वीत॥ २॥

जो नपुंसिका[1] हो उसे अपने स्त्रीत्वके दिखानेके लिये स्त्रियोंके सभी धर्मोंका अनुकरण करना चाहिये। वेष–जैसे स्त्रियाँ बाल सँभालती और वस्त्र आदि पहिनती हैं उसी तरह बाल सँभालना और वस्त्र पहिनना, स्त्रियोंकी तरह झीनी आवाजसे बोलना, जैसे कि स्त्रियां धीरे २ चलना आदि लीलाएँ करती हैं उसी तरह स्त्रियोंकी सभी लीला करनी। स्त्रियोंकेसे ही हाव, भाव, सरलता, कोमलता, डरपोकपना एवम् प्रहार, लूह, घाम आदिका न सहना और लाज करनी चाहिये॥ २॥

औपरिष्टकका स्वरूप।

तस्या वदने जघनकर्म। तदौपरिष्टकमाचक्षते॥ ३॥

उसके मुखमें जो जघनकर्म किया जाता है उसे 'औपरिष्टक' कहते हैं३॥

तस्या इति स्त्रीधर्माननुकुर्वन्त्याः। मुखे जघनकर्मेति स्वरूपाख्यानम्। भगे लिङ्गेन यत्कर्म तन्मुखे क्रियमाणमौपरिष्टकम्। आचक्षत इति पूर्वाचार्यकृतेयं संज्ञा। उपरिष्टान्मुखे[2] भवतीत्यण्। 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः'। पश्चात् 'संज्ञायां कन्'। 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' इति परिगणनात्त्यन्न भवति॥ ३॥

स्त्रीके धर्मोंका अनुकरण करनेवाली क्लीबाके मुखमें वह काम करना जो कि पुरुष अपने मदनांकुशसे स्त्रीके मदनमंदिरमें करते हैं। स्त्री पुरुष जो करते हैं वह जघन कर्म नहीं, किन्तु इस प्रकारका यह औपरिष्टक जघनकर्म (बुरा काम) है। इस कर्मकी औपरिष्टक संज्ञा पूर्वाचार्य्योंने की है॥ ३॥

---

१ जो स्त्री नपुंसिका होती है उसके और तो सब अंग स्त्रियों जैसे होते हैं, केवल मदनमंदिर इस योग्य नहीं होता, कि सहवास कर सके। सीना भी बहुत बड़ा नहीं होता। जो पुरुष नपुंसक होता है वह साधन विहीन व अत्यन्त छोटे साधनका एवम् सुतराम् कर्मके अयोग्य होता है।

शब्दसिद्धि।

२ ऊर्ध्व शब्दसे अस्ताति प्रत्ययके अर्थोंमें 'उपर्य्युपरिष्टात् ५–३–३१' सूत्रसे ऊर्ध्व शब्दको उप होकर रिष्टातिल् (रिष्टात्) प्रत्यय होकर उपरिष्टात् शब्द बनता है। इसकी 'तद्धितश्चा–

औपरिष्टकका फल ।

फलमाह—

दोनों तरहकी तृतीया प्रकृतिको इस बुरे कामसे क्या फल मिलता है, इस बातको बताते हैं कि—

सा ततो रतिमाभिमानिकीं वृत्तिं च लिप्सेत् ॥ ४ ॥

उसे इस कर्मसे पहिले जो आभिमानिकी रति कही है, इसको और जीविकाको चाहना चाहिये ॥ ४ ॥

सा तत इति—औपरिष्टकाद्रतिं प्रीतिमाभिमानिकीं प्रागुक्तलक्षणाम् । वृत्तिं जीविकाम्, भाटीलाभात् ॥ ४ ॥

उस स्तन केशवाली नपुंसकाको स्तनग्रहण और चुम्बनादि करानेके माने हुए सुखकी प्राप्ति करनेके साथ, इसी कामसे अपनी जीविका कर लेनी चाहिये, जो भी कुछ उसे इस कामका भाड़ मिले ॥ ४ ॥

स्त्रीरूपिणीके चरित्र ।

वेश्यावच्चरितं प्रकाशयेत् । इति स्त्रीरूपिणी ॥ ५ ॥

जैसे चरित्र वेश्याके होते हैं, ठीक वैसे ही आचरण इसे भी करने चाहियें। यह स्त्रीरूपिणीका विषय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

चरितमिति—वेश्याया वृत्तं वैशिके वक्ष्यति । तद्वेश्येव प्रकाशयन्ती गम्यैरभिगम्यमाना रतिं धृतिं वा प्राप्नोति ॥ ५ ॥

वेश्याके चरित्र वैशिक अधिकरणमें कहेंगे । यह स्त्रीरूपिणी नपुंसका भी वेश्याओंकी चालचलनको प्रकट करती हुई, गम्योंके साथ औपरिष्टक कर्ममें प्रवृत्ति करती हुई रति और धृतिको प्राप्त होती है ॥ ५ ॥

—सर्वविभाक्तिः१—१—३८' इस सुत्रसे अव्यय संज्ञा हो जाती है। ऊर्ध्व होकर, जो कर्म मुखमें कराया जाय या हो वह औपरिष्ट है। यानी उपरिष्टात् शब्दसे शैषिक 'अण्' होकर औपरिष्ट शब्द बना है । यद्यपि यहां 'अव्ययात्त्यप् ४—२—१०४' इस सूत्रसे त्यप् प्राप्त है, किन्तु त्यप्का नियम है कि अमा, इह, क, तसि प्रत्ययान्त और त्र प्रत्ययान्तको छोड़, दूसरेसे नहीं होता, इसकारण यहां त्यप् न होकर अण् हुआ है । पीछे 'संज्ञायाम् कन्' इस सूत्रसे कन् करके औपरिष्टक शब्द बनता है ।

पुरुषरूपिणी तृतीयाप्रकृति ।

द्वितीयामधिकृत्याह—

अब पुरुषोंकेसे दाढ़ी मूछवाली नपुंसका नायिकाके इसी विषयकी सारी बातोंको बताये देते हैं, कि इस रीतिसे वह अपना कार्य्य करे ।

पुरुषरूपिणी तु प्रच्छन्नकामा पुरुषं लिप्समाना संवाहकभावमुपजीवेत् ॥ ६ ॥

जिसकी कि सूरत पुरुषकीसी है इसी कारण वह अपनी तबियतको छिपाये बैठी है, किन्तु चाहती किसी पुरुषको है, तो उसे चरण दाबने आदिका कार्य्य करना चाहिये ॥ ६ ॥

तुशब्दो विशेषणार्थः । रतिरौपरिष्टकं च तुल्यम् । वृत्तं तु पृथगिति यदाह—प्रच्छन्नकामेति । आभिमानिकी प्रीतिः कामः स प्रच्छन्नो यस्याः । सा पुरुषरूपिणीत्वात्पुरुषेण सहसा न संप्रयुज्यत इति लब्धुमिच्छन्ती । संवाहकभावमुपजीवेदिति । लोकेऽङ्गमर्दनकर्मणा जीवेदित्यर्थः ॥ ६ ॥

स्त्रीकी आकृतिकी नपुंसकासे पुरुषकी आकृतिकी नपुंसकाकी रति और औपरिष्टक तो एक हैं, इसमें तो कोई अन्तर ही नहीं है परन्तु दोनोंके चरित्र अलग हैं । यह चाहती है आलिंगनचुम्बन आदिके माने हुए सुखको, किन्तु यह पुरुष जैसी होनेके कारण अभिलाषाको छिपाये बैठी है, क्योंकि उससे ऐसे ही रूपके कारण कोई संप्रयोग (बुराकाम) कर नहीं सकता । अतः वह चरण दाबने और अंगमर्दन आदि कर्म करके अपनी जीविका करे ॥ ६ ॥

एवमपि विश्वासाभावात्कथं रतिरिति विश्वासनार्थमाह—

संवाहनकर्म करनेपर भी विश्वासके विना रति कैसे प्राप्त करेगी, इस कारण सबसे पहिले विश्वास करानेका ढंग कहते हैं, कि—

संवाहने परिष्वजमानेव गात्रैरूरू नायकस्य मृद्नीयात् ७॥

संवाहनमें अपने शरीरसे लगातीहुई ही नायकका ऊरु मसलना चाहिये॥७॥

संवाहन इति । तत्र संविष्टस्य नायकस्योरू स्वगात्रैरपवृत्तपरिचयत्वादुपगूहमानेव मृद्नीयात् ॥ ७ ॥

संवाहनमें लेटे हुए नायककी जाँघोंको अपने शरीरसे छुवाते हुए ही उसका शरीर मसलना चाहिये, क्योंकि अभी उससे परिचय नहीं हुआ; जो कि अधिक किया जाय ॥ ७ ॥

प्रसृतपरिचया चोरुमूलं सजघनमिति संस्पृशेत् ॥ ८ ॥

यदि परिचय बढ़ जाय तो उसके उरुमूल और जघनपर भी कुछ २ हाथ फेरते हुए धीरे २ मसल देना चाहिये ॥ ८ ॥

एवं मृद्वती प्रसृतपरिचया चेदूरुमूलमपि संस्पृशेत् । सजघनमिति । लिङ्गस्थानं त्यक्त्वा सह जवनस्य स्तोकेन भागेनोरुमूलमित्यर्थः ॥ ८ ॥

इस प्रकार परिचय वढ़ जाय तो मदनांकुशके स्थानको छोड़कर बाकी जघनपर भी हाथ फेरती हुई नायककी जांघोंकी जड़को भी अच्छी तरह धीरे २ मसल दे ॥ ८ ॥

तत्र स्थिरलिङ्गतामुपलभ्य चास्य पाणिमन्थेन परिघट्टयेत् । चापलमस्य कुत्सयन्तीव हसेत् ॥ ९ ॥

यदि इस प्रकारके छूनेसे उसका मदनांकुश खड़ा हो जाय तो उसकी चपलताकी बुराई करती हुई हँसे और अपने हाथोंसे उसके मदनांकुशको इधर उधर करे ॥ ९ ॥

स्थिरलिङ्गतामिति सजवनभागोरुमूलसंस्पर्शात्स्तब्धलिङ्गताम् । पाणिमन्थेनेत्यागोपालादिप्रतीतेन लिङ्गं घट्टयेत् । न यथाकथंचित् । चापलं कुत्सयन्तीवेति । ईदृशस्तु चपलो यदूरुस्पर्शमात्रेण स्तब्धलिङ्गोऽसीति निन्दयन्ती स्वाभिप्रायख्यापनार्थं हसेत् । न तु रुष्यात् ॥ ९ ॥

जब यह जान ले कि मेरे ऊरुमूलपर हाथ फेरते २ जघनपर हाथ डालते ही यह चैतन्य हो गया है तो उसके मदनांकुशको हाथसे मथती हुई इधर उधर करे। इस कर्मको ग्वारिये तक जानते हैं, कि पाणिमन्थ (हस्तक्रिया) कैसे की जाती है, इसकारण इसे विशेष वतानेकी आवश्यकता नहीं है। हस्तक्रिया भी उसे इसी तरह ही न करनी चाहिये, किन्तु कहना चाहिये कि आप तो इतने चंचल हैं—जो कि आपका इतनेसे ही चैतन्य हो गया। यह कहते हुए अपने अभिप्रायको वतानेके लिये हँसना चाहिये, किन्तु उसे उसपर रोष न प्रकट करना चाहिये ॥ ९ ॥

कृतलक्षणेनाप्युपलब्धवैकृतेनापि न चोद्यत इति चेत्स्वयमुपक्रमेत् ॥ १० ॥

जिसका इस प्रकार तयार किया गया है एवम् जो यह जान गया है, कि यह ऐसा करानेवाला है, यदि वह फिर भी उससे न कहे कि तू मुखमें ले तो इस पुरुषरूपिणी नपुंसकाको आप ही ले लेना चाहिये ॥ १० ॥

कृतलक्षणेनापीति। स्तब्धलिङ्गत्वं रागस्य लक्षणम्। तत्कृतं यस्य नायकस्य। उपलब्धवैकृतेनेति ज्ञातमुखचापलेन यदि न चोद्यते कुरु मुखचापलमिति तदा तस्मिन्स्वयमेव विना चोदनयोपक्रमेत् ॥ १० ॥

मदनांकुशका स्तब्ध होना रागका सूचक है। वह उसने नायकका कर ही दिया है एवं नायकको यह भी पता चल गया है, कि यह मुखमें बुराकर्म करानेवाला आदमी है, फिर भी वह यह न कहे कि अपने मुखमें ले ले तब भी उसे उसका अपने मुँहमें ले लेना चाहिये, क्योंकि उसे ऐसा करनेका यही सहारा है, कि नायक हाथ डालते ही तयार हो गया है ॥ १० ॥

पुरुषेण च चोद्यमाना विवदेत्। कृच्छ्रेण चाभ्युपगच्छेत् ११

यदि उससे पुरुष पहिलेसे ही कहे तो उससे विवाद करे, एवं बड़ी मुसकिलसे उससे कराये ॥ ११ ॥

पुरुषेण तूपलब्धवैकृतेनानुपलब्धवैकृतेन वा चोद्यमाना नाहमेवंविधं कर्मेति सहसाङ्गीकारप्रतिषेधार्थं विवदेत्। तदेव स्फुटयति—कृच्छ्रेण चेति। स्त्रीरूपिणी तु प्रकटकामत्वादचोदिताप्यादित एवोपक्रमेत् ॥ ११ ॥

चाहे तो पुरुषने उसे जान लिया हो कि यह मुखमें बुराकर्म करानेवाला है, चाहे न जाना हो किन्तु नायक इससे मुखमें करानेके लिये कहे तो कह दे कि मैं ऐसा कर्म नहीं कराती एवम् एकदम स्वीकारकी इनकारमें वादविवाद करने लग जाय। बड़े भारी रंगढंगोंसे बड़ी मुसकिलसे उसके हाथ आये। यदि स्तन केशोंवाली स्त्री जैसी नपुंसका हो तो उससे काम कराना तो कामका प्रकट चिह्न है एवम् उसकी सूरत और काम सभी स्त्रियोंकेसे हैं, इस कारण वह तो विना प्रेरितकी हुई भी पहिलेसे सभी उपक्रमण (प्रारंभ) आप कर सकती है ॥ ११ ॥

औपरिष्टकके भेद।

तस्य क्रियाभेदाद्भेदमाह—

औपरिष्टक करनेकी क्रियाके भेदसे होनेवाले इस बुरे कामके भेद बताते हैं कि—

तत्र कर्माष्टविधं समुच्चयप्रयोज्यम् ॥ १२ ॥

इस औपरिष्टकमें आठ तरहका नीचे लिखा हुआ कर्म, समुचयसे यानी एकके बाद एक प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

तत्रेत्यौपरिष्टके। समुच्चयप्रयोज्यमिति। क्रमेण सर्वं समुच्चयेन योज्यमित्यर्थः १२

इस जघन कर्ममें एकके बाद एक इस तरह आठ तरहके काम किये जाते हैं ॥ १२ ॥

निमितं पार्श्वतोदष्टं बहिःसंदंशोऽन्तःसंदंशश्चुम्बितकं परिमृष्टकमाम्रचूषितकं संगर इति ॥ १३ ॥

निमित, पार्श्वतोदष्ट, बहिःसंदंश, अन्तःसंदंश, चुम्बितक, परिमृष्टक, चूषितक और संगर ये आठ कर्म हैं ॥ १३ ॥

जिसमें अत्यन्त परिमित मात्रामें हो वह 'निमित' है, जिसमें बगलोंसे खाया जाय वह 'पार्श्वतोदष्ट' है, जिसमें ऊपरका छोर लिया जाय वह 'बहिः-संदंश' है। इससे भी ज्यादा खाना 'अन्तःसंदंश' और जिसमें सम चुम्बनकी प्रक्रिया हो वह 'चुम्बितक' है। चारों ओरसे छूना 'परिमृष्टक' एवम् आमकी तरह चूसना 'चूषितक' है। पूरेके खा जानेका नाम 'संगर' है। यह आठों प्रकारके कर्म्मोंका सामान्यरूपसे अर्थ है ॥ १३ ॥

करने करानेका ढंग।

तत्रापि नात्माभिप्रायेणेत्याह—

इस बुरेकर्मकी क्रियाओंको अपने मनसे ही समुच्चयसे प्रयुक्त न करती जाय, किन्तु नायकके अभिप्रायसे प्रयुक्त करे, इस बातको दिखाते हैं कि—

तेष्वेकैकमभ्युपगम्य विरामाभीप्सां दर्शयेत् ॥ १४ ॥

इनमेंसे एक २ क्रियाको कर २ कर निवृत्त होनेकी इच्छा दिखाये ॥ १४ ॥

तेष्विति निमितादिषु एकैकं प्रथमात्प्रभृत्युपगम्य कृत्वा परित्यागेच्छां दर्शयेत्, कौतुकजननार्थमभ्यर्थनयापरं प्रयोक्ष्यामीति ॥ १४ ॥

निमित आदिक आठ क्रियाओंसे प्रथमसे ही एक २ कामको करके छोड़नेकी इच्छा दिखाये। इस बातके करनेका इसका यही अभिप्राय होता है कि इसे चकित करूं; जब यह नायक मेरी आरजूमिन्नत करे तो दूसरी क्रियाएँ करूं ॥ १४ ॥

नायकोऽप्येकस्मिन्नभ्युपगते किं प्रतिपद्यत इत्याह—

इस नपुंसका पांचवीं नायिकाके नायकको भी एक क्रियाके पूरे होनेपर क्या करना चाहिये यह बताते हैं, कि—

इतरश्च पूर्वस्मिन्नभ्युपगते तदुत्तरमेवापरं निर्दिशेत्। तस्मिन्नपि सिद्धे तदुत्तरमिति ॥ १५ ॥

नायकको चाहिये कि, एक क्रियाके पूरी होनेपर, दूसरी करनेके लिये कहे एवम् दूसरीके पूरी हो जानेपर तीसरी करनेके लिये कह दे ॥ १५ ॥

इतरश्चेति नायकः । पूर्वस्मिन्निति निमिते । तदुत्तरमिति तस्मान्निमितादनन्तरं पार्श्वतो दष्टम् । निर्दिशेदिदं च कुर्वीति । तस्मिन्नपि पार्श्वतो दष्टे क्रियया सिद्धे तदुत्तरं बहिःसंदंशमिति । अनेन क्रमेण सर्वं समुच्चयेन निर्दिशेत् । स्वरागपरिसमाप्त्यर्थं तस्माच्चाभिमानिकसुखजननार्थं नायिकापि तथैव प्रयुञ्जीतेत्ययं चोदनायां विधिः । स्वयमुपक्रमे च स्वाभिप्रायेणैव समुच्चये प्रयोज्यम् ॥ १५ ॥

नायकको भी चाहिये कि, निमित हो गया तो उसके बाद पार्श्वतोदष्टके लिये कहे एवम् उसके भी सिद्ध हो जानेपर उससे अगाड़ीके बहिःसंदंशके करनेके लिये कह दे । इस प्रकार आठों क्रियाओंको करा ले जबतक कि स्खलित न हो ले । नायिकाको भी चाहिये कि अपने रागकी समाप्तिके लिये एवम् आभिमानिक सुख पैदा करनेकें लिये उसके कहे २ कामोंको करती चली जाय, यह प्रेरणासे करानेके समयकी विधि है । यदि अपनी ही तबीयतसे किया जारहा है तो उसके अनुसार ही समुच्चयसे सबका प्रयोग करना चाहिये ॥१५

बाह्य ।

तत्कर्म द्विविधम्—बाह्यम्, आभ्यन्तरं च । तत्र बाह्यमाह—

तेरहवें सूत्रमें जो भेद बताये हैं वे आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो तरहके हैं, इन दोनोंमें सबसे पहिले बाह्य भेदोंका निरूपण करते हैं कि—

निमित ।

करावलम्बितमोष्ठयोरुपरि विन्यस्तमपविध्य मुखं विधुनुयात् । तन्निमितम् ॥ १६ ॥

हाथमें लिये हुएको होठोंके ऊपर रख गोल होठोंको करके उसे थोड़ासा पकड़कर मुख हिलाना 'निमित' है ॥ १६ ॥

करावलम्बिमिति अदनमनवारणार्थं करेण गृहीतमोष्ठयोरुपरि विन्यस्तमग्रभागेनापविध्येत्योष्ठेन वर्तुलीकृतेनावष्टभ्य मुखं स्वं विधुनुयात्कम्पयेत् । ओष्ठयोरुपरि विन्यस्तत्वान्निमितम् ॥ १६ ॥

यह अनिच्छित ढंगसे नव न जाय, इस कारण हाथमें पकड़ा हुआ ही होठपर रख, उसकी नोंकको होठोंके भीतर लेकर होठोंको वैसा ही गोल बना

थामकर, अपने मुँहको हिलाना चाहिये । इसमें होठोंके ऊपर ही रखा जाता है, इस कारण इसे ' निभित ' कहते हैं ॥ १६ ॥

पार्श्वतोदष्ट ।

हस्तेनाग्रमवच्छाद्य पार्श्वतो निर्दशनमोष्ठाभ्यामवपीड्य भवत्वेतावदिति सान्त्वयेत् । तत्पार्श्वतोदष्टम् ॥ १७ ॥

हाथसे मदनांकुशके अगाड़ीके भागको ढककर, बगलोंमें उसे दात न लगा होठोंसे दबाकर ही कह दे कि बस, इतना ही करना है अब रहने दीजिये, इसे ' पार्श्वतोदष्ट ' कहते हैं ॥ १७ ॥

हस्तेनावच्छाद्य मुष्टिग्रहणेन ततः पार्श्वतो लिङ्गमोष्ठाभ्यामवपीडय । निर्दशनमिति क्रियाविशेषणम् । दन्तवर्जमित्यर्थः । दन्तैस्तु ग्रहणमस्ति यदाह—भवत्वेतावदिति । एतावदेवास्तु । तद्ग्रहणेन परं खण्डनमिति सान्त्वयेत् ॥ १७ ॥

नायकके मदनांकुशकमें तो अगाड़ीके हिस्सेको मुट्ठीमें दे ले और आसपाससे उसे होठोंसे इस प्रकार दबाये कि उसे दाँत एक भी न छू पाये तो इसे ' पार्श्वतोदष्ट ' कहते हैं । सूत्रमें जो निर्दशन यानी दांतरहित यह बात आई है यह ' अवपीडय,–होठोंसे दबाकर ' इस बातके साथ संबन्ध रखती है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भले ही दांतोंसे पकड़ ले, किन्तु उसे दबाना होठोंसे ही चाहिये । इसी बातको लेकर कहते हैं कि–इतना काम कर चुकनेके बाद उसे कह देना चाहिये, कि बस रहने दीजिये । मैंने आपकी काफी सेवा कर दी है, मेरे दांतोंकी नोंक कहीं लग न जाय अत एव दाँतोंसे न पकडूंगी ॥ १७ ॥

बहिःसंदंश ।

भूयश्चोदिता संमीलितौष्ठी तस्याग्रं निष्पीड्य कर्षयन्तीव चुम्बेत् । इति बहिःसंदंशः ॥ १८ ॥

यदि नायक फिर भी करनेके लिये आग्रह करे तो नायकके मदनांकुशके अग्रभागको मुँहके भीतर लेकर, दोनों होठोंको भींचकर, उन्हींसे उसे दबा खींचती हुई चूँबे । इसका नाम ' बहिःसंदंश ' है ॥ १८ ॥

भूयश्चोदितेति । पार्श्वतो दष्टे संचोदिता पुनरन्यत्र चोदिताम् । स्वयमुपक्रमे त्वचोदितैव संमीलितौष्ठी लिङ्गस्याग्रमन्तः प्रवेश्य मीलितावोष्ठौ यया सा । ताभ्यामेव निष्पीडय कर्षयन्तीव चुम्बेदिति । ओष्ठाभ्यामेवास्य कर्षणं कुर्वाणेव त्यजेदित्यर्थः । बहिःसंदंशश्चर्मणो बहिःसंदंशनात् ॥ १८ ॥

यदि पार्श्वतोदंश कर चुकनेके बाद भी नायक फिर करनेका आग्रह करे तो उसके अग्रभागको मुँहके भीतर करके दोनों होठोंको मिला उन्हींसे उसे दबा, खींचती हुई चूंबें या खींचती हुई की तरह ही छोड़ दे। जो कि स्तनकेशवाली आप ही लगी हो या दूसरी प्रकृतिका भी अपना ही किया काम हो तो उसे नायकके विना कहे ही ये काम कर डालने चाहियें। इसमें साधनपर जहां चर्म नहीं रहती उस जगहका भी कुछ लैना है, इस कारण इसे 'बहिः-संदंश' कहते हैं। इस प्रकार निमित, पार्श्वतोदष्ट और बहिःसंदंश ये तीन बाहिरके औपरिष्टक हैं॥ १८॥

आभ्यन्तर।

आभ्यन्तरमाह—

आभ्यन्तर—उस औपरिष्टकका नाम है जिसमें मणिसे आगेका भाग भी भीतर लिया जाता है। इसके पांच भेद हैं, उन्हें क्रमशः दिखाते हैं—

अन्तःसंदंश।

तस्मिन्नेवाभ्यर्थनया किंचिदधिकं प्रवेशयेत् । सापि चाग्रमोष्ठाभ्यां निष्पीड्य निष्ठीवेत् । इत्यन्तःसंदंशः १९॥

इसके करनेके बाद प्रार्थना करनेपर कुछ अधिक ले ले एवम् वह भी उसके अगाड़ीके भागको होठोंसे दबाकर फिर उगल दे। यह 'अन्तःसंदंश' है॥

तस्मिन्निति बहिःसंदंशे क्रियमाणे। अभ्यर्थनया याचनया। किंचिदधिकमिति निष्कास्य ग्रन्थिं यावन्नायकः प्रवेशयेदित्ययं चोदनापक्षः। स्वयमुपक्रमे तु किंचिदधिकं प्रवेश्याग्रं मणिबन्धमोष्ठाभ्यां निष्पीड्य निष्ठीवेन्निरस्येत्। अन्तः-संदंशो निष्कोशितस्य संदंशनात्॥ १९॥

यदि यह नपुंसका बाहिःसंदंशको कर चुके तो नायकको चाहिये, कि इसकी आरजू-मिन्नत करके साधनको निकाल पूरी गांठतकको उसके मुखमें प्रविष्ट कर दे। यह बात तो उस पक्षकी है, जब कि उसके विना चाहे नायक अपनी मरजीसे करता हो। यदि यह नायिका अपने आप करे तो कुछ अधिक लेकर मणिबन्ध (सुपारीकी जड़) होठोंसे दबाकर उगल दे। जहांतक चाम रहता है उस चामको हटा उसके अगाड़ीका भाग लिया जाता है, इस कारण इसे 'अंन्तःसंदंश' कहते हैं॥ १९॥

चुम्बतक।

करावलम्बितस्यौष्ठवद्ग्रहणं चुम्बितकम् ॥ २०॥

हाथमें पकड़े हुएको चुम्बन लेती बारका जैसा मुख बनाकर होंठोंके बराबर लेना ' चुम्बितक ' है ॥ २० ॥

ओष्ठवदिति यथाधरौष्ठस्यौष्ठाभ्यां ग्रहणं तथा निष्कोशितस्येति चुम्बितकं समग्रहणाख्यम् ॥ २० ॥

जैसे कि निचले होठका चुम्बन किया जाता है उसी तरह कोशरहित साधन दोनों होठोंसे ले लेनेको, समग्रहणके चुम्बन जैसा होनेके कारण इसे ' चुम्बितक ' कहते हैं ॥ २० ॥

परिमृष्टक ।

तत्कृत्वा जिह्वाग्रेण सर्वतो घट्टनमग्रे च व्यधनमिति परिमृष्टकम् ॥ २१ ॥

चुम्बितककी क्रिया करके उसीमें उसके ऊपर जीभ रिगड़ना एवम् उसके छेदको जीभसे वारंवार मारना दबाना ' परिमृष्टक ' कहाता है ॥ २१ ॥

तदिति चुम्बितकं कृत्वा । अन्यथा ह्ययोगात् । जिह्वाग्रेणान्तः परिभ्रमता सर्वतो घट्टयेत्स्पृशेत् । अग्रे च व्यधनं स्रोतःस्थाने ताडनं जिह्वाग्रेणैव । परिमृष्टकं समन्तात् [परिमर्षणात्] ॥ २१ ॥

चुबितककी क्रियाकी ही हालतमें यह हो सकता है, इस कारण उसी दशामें फिरती हुई जीभकी नोंकसे उसे चारों ओरसे बारबार छूये जहां कि उसका छिद्र है । वहां जीभकी नोकसे खूब रिगड़े दबाये तो इसे 'परिमृष्टक' कहते हैं । इस नामके रखनेका कारण तो यह है, कि इसमें साधन जीभसे चारों ओरसे छुआ जाता है ॥ २१ ॥

आम्रचूषितक ।

तथाभूतमेव रागवशादर्धप्रविष्टं निर्दयमवपीडचावपीडच मुञ्चेत् । इत्याम्रचूषितकम् ॥ २२ ॥

वैसेका वैसा ही रागके वश हो आधा दे दिया गया हो एवम् अच्छी तरहसे आमकी गुठलीकी तरह वारंवार दबाकर छोड़ा गया हो तो यह ' आम्रचूषितक ' कहाता है ॥ २२ ॥

तथाभूतमवेति निष्कोशितमेव । रागवशादिति । नायकस्य रागाधिक्यात् । तदर्धप्रविष्टकं निर्दयमत्यन्तम् । अवपीडयावपीडयेति जिह्वौष्ठपुटेन द्विस्त्रिरवपीडयावपीड्य मुञ्चेदभ्यन्तर एव । तदाम्रस्येव चूषितकम् ॥ २२ ॥

उसी तरह कोशसे रहित हो एवम् नायकने रागके बढ़ जानेके कारण, आधा भीतर कर दे तो उसे यह पांचवीं नायिका जीभ और दोनों होठोंके पुटसे दो २ तीन २ बार दबा २ कर भीतर ही भीतर छोड़ दे तो यह ऐसी ही क्रिया है जैसे कि आम चूसा जाता है, इस कारण इसे 'आम्रचूषितक' कहते हैं ॥ २२ ॥

संगर ।

पुरुषाभिप्रायादेव गिरेत्पीडयेच्चापरिसमाप्तेः । इति संगरः ॥ २३ ॥

जितना पुरुष चाहे उसका उतना ही भीतर करके जबतक स्खलित न हो तबतक दबाये तो इसे 'संगर' कहते हैं ॥ २३ ॥

पुरुषाभिप्रायादेवेति—पुरुषाभिप्रायमेव बुद्ध्वा प्रत्यासन्नास्य रतिरिति गिरेत् । पीडयेच्चेति । जिह्वाव्यापारेण पीडयित्वा गिरेत् । ओष्ठव्यापारेण पीडयेत् । आ समाप्तेरिति शुक्रविसृष्टिं यावत् । संगरः समन्ताद्गिरणात् ॥ २३ ॥

यदि यह जान जाय कि इसके स्खलित होनेका समय आ गया है एवम् यह सभी भीतर करना चाहता है तो सबको मुखके भीतर लेकर अत्यन्त दबाकर, जीभसे भीतर करे एवम् होठोंसे तबतक दबाये जबतक कि स्खलित न हो ले तो इसे 'संगर' कहते हैं, क्योंकि इसमें सब ले लिया जाता है ॥ २३ ॥

इसमें सीत्कार और प्रहणन ।

यथार्थं चात्र स्तननप्रहणनयोः प्रयोगः । इत्यौपरिष्टकम् ॥ २४ ॥

इसमें जिस मात्रामें राग हो, उसी मात्रामें सीत्कार और प्रहारका प्रयोग करना चाहिये । यह औपरिष्टकका विधान पूरा हुआ ॥ २४ ॥

यथार्थमिति। यथा रागो निमितादिषु मृदुमध्याधिमात्रेण स्थितस्तथा स्तनंनप्रहणनयोः प्रयोगः । आलिङ्गनादीनामत्रासंभवात् । इत्यौपरिष्टकमिति । एवं विषयस्वरूपफलप्रवृत्तिप्रकारैरौपरिष्टकमुक्तम् ॥ २४ ॥

औपरिष्टककी निमित आदि आठों क्रियाओंमें मृदु, मध्य और अधिमात्र, जितना भी राग हो उसीके अनुसार प्रहार और सीत्कार आदि भी होते हैं, क्योंकि इसमें आलिंगन आदिक तो हैं ही नहीं । इस प्रकार यहां औपरिष्ट-

कका विषय[1], उसका स्वरूप, उसका फल और प्रवृत्तिके स्वरूपसे औपरिष्टकका निरूपण कर दिया है ॥ २४ ॥

कुलटा आदिकोंमें भी औपरिष्टक।

देशसात्म्यवशादविषयेऽप्यस्य वृत्तिरिति दर्शयन्नाह—

देशाचारके कारण एवम् अपनी अनुकूलताके कारण तृतीया प्रकृति पंचमी नायिकाके सिवा, दूसरे भी इस औपरिष्टकके विषय बनते हैं, इस बातको नीचेके सूत्रसे दिखाते हैं, कि—

कुलटाः स्वैरिण्यः परिचारिकाः संवाहिकाश्चाप्येतत प्रयोजयन्ति ॥ २५ ॥

कुलटा, स्वैरिणी, परिचारिका और संवाहिका भी इसका प्रयोग करती हैं २५

कुलटा इति। याः स्वं कुलमन्यद्वा सदृशमटन्त्यो भ्रष्टशीलास्ताः कुलटाः। याः सदृशमसदृशं वा कुलमविचार्य स्वच्छन्दचारिण्यस्ताः स्वैरिण्यः। या अन्यपूर्वा वा मुक्तप्रग्रहा नायकमुपचरन्ति ताः परिचारिकाः। याः संवाहनकर्मणा जीवन्ति ताः संवाहिकाः। एतत्प्रयोजयन्तीति। औरपरिष्टकं कारयन्ति। न केवलं तृतीया प्रकृतिरित्यपिशब्दार्थः॥ २९ ॥

कुलटा—जो अपने ही कुलमें या दूसरे ही अपने बराबरके कुलमें व्यभिचारके लिये मारी २ फिरें ऐसी भ्रष्टाचारिणी 'कुलटा' कहाती हैं। **स्वैरिणी**—जो समान और असमान कुलका ध्यान छोड़कर स्वच्छन्द विचरती हैं वे 'स्वैरिणी' कहाती हैं। **परिचारिका**—जो पहिले किसीने रख ली हों और पीछे छोड़ दी हों अथवा बिलकुल खुली हों और प्यारेकी परिचर्य्या करें वे 'परिचारिका' कहाती हैं। **संवाहिका**—जो दूसरेके शरीरका मर्दन करके अपनी जीविका करती हैं, वे 'संवाहिका' कहाती हैं। ये चारों औपरिष्टक कराया करती हैं। यह बात नहीं कि य दोनों नपुंसका ही इस क्रियासे अपना मनोविनोद करती हों यह 'भी' का अर्थ है कि केवल क्लीव मंडली ही नहीं ये भी इसमें सामिल हैं ॥ २५ ॥

---

[1] तृतीया प्रकृति औपरिष्टकका विषय है, क्योंकि उसके विषयमें किया जाता है। जिस प्रकारका होता है वही उसका स्वरूप है। इससे जो कुछ प्राप्त होता है वही इसका फल है एवम् जिस तरह होता है वही उसकी प्रवृत्ति है। गतसूत्रोंमें इन्हीं चारों बातोंका विवरण है, वे आपसमें मिली झुलीचली हैं, इस कारण इस तरह विषयविभाग नहीं किया।

औपरिष्टकका आचार्य्योंका विरोध।

तदेतत्तु न कार्यम्। समयविरोधादसभ्यत्वाच्च। पुनरपि ह्यासां वदनसंसर्गे स्वयमेवार्तिं प्रपद्येत। इत्याचार्याः॥ २६॥

इस औपरिष्टकको तो न करना चाहिये, क्योंकि शास्त्रका विरोध है। यह है भी असभ्य, फिर भी इनके मुख छूनेमें अवश्य दुःख होगा। यह आचार्य्योंका मत है॥ २६॥

तदेतत्तु न कार्यमिति प्रयोज्यमानमपि समयविरोधादिति। धर्मशास्त्रे प्रतिषिद्धमेतत्। 'न मुखे मेहेत' इति। असभ्यत्वाच्चेति। सद्भिर्गर्हितत्वादसभ्यम्। तस्मादसभ्यत्वात्। प्रयोक्तुरप्यसभ्यत्वं दृष्ट एव दोषः। अयं चापर इत्याह—पुनरपि हीति। यदि हि कुलटादीनां मुखे जवनकर्म कुर्यात्तदा पुनरपि जवनकर्मकाले रागवशाद्वदनस्य संसर्गे संस्पर्शे सति अर्तिं प्रतिपद्येत दुःखमधिगच्छेत्। विटालितोऽस्मीति स्वयमेवेति। न तत्र नायिकापि॥ २६॥

यद्यपि औपरिष्टकका यह विधान कह दिया गया है तो भी धर्मशास्त्रमें इसका निषेध कर दिया है, कि–'मुखमें कभी शुक्रपात न करे' इस कारण इस नीचकर्मके चाहनेवाले प्रेरणा भी करें तो भी न करना चाहिये। यही एक बात नहीं कि शास्त्रविरुद्ध है, किन्तु है भी असभ्योंका कार्य्य। इसे कोई भी सज्जन अच्छा नहीं बताते। जब यह कर्म ही असभ्य है तो इसके प्रयोग करनेवाले भी असभ्य ही होंगे यह भी दोष परिस्फुट ही है। ये दो दोष हुए दूसरोंके दिये हुए, किन्तु इनके सिवा एक और यह भी बात होती है कि कुलटादिकोंके मुखमें एकबार जघनकर्म कर भी ले तो फिर भी बुरा कर्म करती बार रागके वश होकर उसके मुखका संसर्ग कर ले यानी चुम्बनादिक कर ले तो उसे उससे गहरा दुःख होगा कि मैं बड़ा बुरा कर रहा हूं, जो कि इसके मुखमें बुराकर्म करके फिर उसे चूमता हूं, केवल नायिका ही दुःखी हो यह बात नहीं है॥ २६॥

---

१ जगत्में प्रचलित हुआ औपरिष्टक किसतरहका है, केवल इतना बताया है जिसे जान, संसार ऐसी बलाओंसे बच सके। महर्षिगण न तो इसका विधान करते हैं एवं न इसे कोई भव्यकर्म ही मानते हैं।

धर्मपत्नीमें नहीं ।

वेश्याकामिनोऽयमदोषः । अन्यतोऽपि परिहार्यः स्यात् । इति वात्स्यायनः ॥ २७ ॥

शास्त्रीयदोष वेश्याकामियोंको नहीं है । इसके सिवा दूसरे जो दो दोष बताये हैं उनका भी परिहार हो सकता है । यह वात्स्यायन आचार्य्यका मत है२७

वेश्याकामिन इति । कुलटादयो वेश्याविशेषाः । तत्कामिनो नायकस्या-दोषोऽयमिति । समयविरोधादित्ययं दोषो न भवतीत्यर्थः । पत्न्याश्चौपरिष्टकादौ दोषः । 'न मुखे मेहेत' इति । यदाह वसिष्ठः—'यस्तु पाणिगृहीतायां मुखे मैथुनमाचरेत् । पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्च च ॥' इति । अन्यतोऽपि परिहार्य इति । असभ्यत्वाद्वदनसंसर्गाच्च । असभ्यत्वमर्तिश्चेत्ययं दोषः परिहार्यः । गुप्त्या वक्त्रभक्षणाच्च । कस्यचिद्देशप्रवृत्तेरदोषत्वादपरिहार्य इत्यपिशब्दात् ॥२७॥

कुलटा आदिक एक प्रकारकी वेश्या ही हैं । उनके कामी नायक यदि उनके मुखमें बुरा कर्म करें तो उनके लिये शास्त्रका दोष नहीं है, क्योंकि शास्त्र पत्नीके मुखमें नीचकर्म करनेका निषेध करते हैं, कि–'मुखमें वीर्य्यपात न करे ' वसिष्ठजीने भी कहा है कि—" जो मनुष्य विवाहिता स्त्रीके मुखमें कर ले तो १५ वर्षतक उसके पितर भोजन नहीं करते " यह जो गतसूत्रमें अन्तके दो दोष दिखाये, कि–'यह असभ्य है और फिर उनके मुखके संस-र्गके दुख पायगा ' इनको मिटाया जा सकता है । यह छिपकर मुखसे खाया जाता है, इसकारण असभ्यपनेका तो दोष नहीं लग पायगा । किसी २ देशमें इसतरहकी प्रवृत्ति ही है, इस कारण वहां इससे घृणा भी न आयगी क्योंकि वे इसे बुरा नहीं मानते, इस कारण इसका परिहार भी नहीं किया जा सकता, यह मतलब भी सूत्रके ' भी ' शब्दसे निकल रहा है ॥ २७ ॥

प्राच्योंकी प्रवृत्ति ।

उभयमपि देशप्रवृत्त्या दर्शयन्नाह—

वेश्याकामियोंको दोषाभाव और अन्यसे भी परिहार होता है, इन दोनों ही बातोंको देशकी रीतियोंसे दिखाते हैं–

तस्माद्यास्त्वौपरिष्टकमाचरन्ति न ताभिः सह संसृ-ज्यन्ते प्राच्याः ॥ २८ ॥

इसी कारण प्राच्य देशवासी उनके साथ, सहवास नहीं करते जो औपरि-ष्टक करती हैं ॥ २८ ॥

तस्मादिति । यतश्चैवं तस्मान्न संसृज्यन्त इति संबन्धः । यास्त्विति । याः वेश्यास्तु औपरिष्टकमाचरन्ति मुखे जघनकर्म कुर्वन्ति न ताभिः सह संसृज्यन्ते संप्रयुज्यन्ते । मा भूत्तद्वदनसंसर्ग इति । अन्याभिरदृष्टदोषत्वात्संसृज्यन्त एवेत्यर्थोक्तम् । प्राच्या अङ्गात्पूर्वेण ॥ २८ ॥

मुखमें जो बुराकर्म कराती हैं, उसके संसर्गसे मुखचुम्बन करतीबार दुःख होता है, इस कारण प्राच्यदेशीय इस प्रकारके कर्म करानेवाली वेश्या, कुलटा आदिकोंके साथ सहवास नहीं करते, क्योंकि उन्हें उनके मुखके संसर्गसे घृणा रहती है । किन्तु जिनका उन्हें पता नहीं एवम् जिनके विषयमें उनका बुरे कर्मका ध्यान नहीं है, उनके साथ तो अवश्य सहवास करते हैं; यह इस सूत्रका आशय होता है । अंगदेशसे पूर्वकी ओर प्राच्य देश है ॥ २८ ॥

अहिच्छत्रदेशकी प्रवृत्ति ।

वेश्याभिरेव न संसृज्यन्ते आहिच्छत्रिकाः संसृष्टा अपि मुखकर्म तासां परिहरन्ति ॥ २९ ॥

अहिच्छत्र देशके रहनेवाले वेश्यासंसर्ग ही नहीं करते, यदि कोई करता भी है तो उसके मुहँको नहीं चूँमता ॥ २९ ॥

आहिच्छत्रिका अहिच्छत्रभवा न संसृज्यन्ते । अदृष्टमश्रुतमप्यौपरिष्टकं तासु संभाव्यत इति । संसृष्टा अपि त एव कथंचिद्रागवशात् । मुखे कर्म चुम्बनम् ॥ २९ ॥

इस देशके वेश्यासंसर्ग न करनेका कारण तो यह है कि वे विना देखे एवम् विना सुनेहुए बुरे कामकी भी उन्हें वेश्याओंमें शंका रहती है । यदि किसी तरह रागके वश होकर वेश्यागामी भी हो जाते हैं तो उनके मुखको कभी नहीं चूमते ॥ २९ ॥

अवधवासियोंकी प्रवृत्ति ।

निरपेक्षाः साकेताः संसृज्यन्ते ॥ ३० ॥

साकेतदेशके रहनेवाले इस बातसे निरपेक्ष रहकर, वेश्यासंसर्ग करते हैं ३०

साकेता आयोध्यकाः । ते निरपेक्षाः । वेश्यानां संप्रयोगे मुखकर्मणि च शौचाशौचविकल्पाभावात् ॥ ३० ॥

अयोध्याप्रान्तका नाम साकेत है । वहांके रहनेवालेको अपवित्र पवित्रका विचार नहीं है, इस कारण सहवासमें वेश्याओंका खूब मुखचुम्बन करते हैं॥३०॥

पटनाप्रान्तकी प्रवृत्ति।

न तु स्वयमौपरिष्टकमाचरन्ति नागरकाः ॥ ३१ ॥

पटनाप्रान्तके रहनेवाले अपने आप बुरा काम नहीं करते ॥ ३१ ॥

नागरकाः पाटलिपुत्रकाः संप्रयुज्यन्ते वेश्याभिः, न तु स्वयं तासां मुखे जघनकर्म कुर्वन्ति। मा भूद्वदनसंसर्ग इति। प्रयोजितास्त्वाचरन्ति वदनसंसर्गवर्जम् ॥ ३१ ॥

पटनाप्रान्तके लोग वेश्याओंके सहवास तो कर लेते हैं परन्तु अपनी इच्छासे उनके मुखमें जघन कर्म नहीं करते, यदि वेश्या कहे तो करने लग जाते हैं। वेश्याके सहवासमें उसका चुम्बन नहीं करते, क्योंकि उन्हें इसमें वहम रहता है ॥ ३१ ॥

सूरसेनदेशकी प्रवृत्ति।

सर्वमविशङ्कया प्रयोजयन्ति सौरसेनाः ॥ ३२ ॥

सूरसेनदेशके रहनेवाले सब काम निःशंक होकर करते हैं ॥ ३२ ॥

सर्वमिति। संप्रयोगमौपरिष्टकं मुखकर्म च। अविशङ्कयेति। सर्वं शुचीत्यभिप्रायेणेत्यर्थः। सौरसेनाः कौशाम्ब्या दक्षिणतः कूले ये निवसन्ति ॥ ३२ ॥

इस देशके वासिन्दे सबको पवित्र मानकर चुम्बनादिक मुखकर्म और औपरिष्टक करते हैं। कौशाम्बी नदीके दक्षिणी किनारेका देश सूरसेन कहाता है ३२॥

स्त्रियोंकी पवित्रता।

शङ्कायां हि स्वभार्यास्वप्यनाश्वस्त [ता] मेव दर्शयन्नाह—

शंकामें अपनी धर्मपत्नीको भी विश्वासके अयोग्य दिखाते हुए कहते हैं कि—

एवं ह्याहुः—को हि योषितां शीलं शौचमाचारं चरित्रं प्रत्ययं वचनं वा श्रद्धातुमर्हति। निसर्गादेव हि मलिनदृष्टयो भवन्त्येता न परित्याज्याः। तस्मादासां स्मृतित एव शौचमन्वेष्टव्यम्। एवं ह्याहुः—

'वत्सः प्रस्रवणे मेध्यः श्वा मृगग्रहणे शुचिः।

शकुनिः फलपाते तु स्त्रीमुखं रतिसंगमे ॥' इति॥३३॥

इसी कारण कहा करते हैं, कि कौन ऐसा होगा जो स्त्रियोंके शील, शौच आचार, चरित्र, विश्वास और बातोंपर श्रद्धा करेगा। क्योंकि ये स्वभावसे

ही मलिन बुद्धिवाली होती हैं फिर भी छोड़ने योग्य नहीं हैं इस कारण इनकी पवित्रता ढूँडनी चाहिये। स्मृतिकारोंने कहा है कि-" दूध काढती वार बछड़ा पवित्र है, मृगोंके पकड़नेमें कुत्ता पवित्र है, फलोंके गिरानेमें पक्षी पवित्र हैं, रतिके संगममें स्त्रियोंका मुख पवित्र है " इस कथनसे रतिकालमें स्त्रियोंका मुख, पवित्र माना जाता है ॥ ३२ ॥

एवं हीति । शीलं स्वभावं शौचमशुचिद्रव्यविश्लेषणं आचारं त्रयीकर्मानुष्ठानं चरितं कुलक्रमागतां स्थितिं प्रत्ययं विश्वासं वचनं वल्गितकं कः श्रद्धातुमर्हति । परमार्थतः प्रत्येतुं नैवेत्यर्थः । कुत इत्याह—निसर्गादेवेति । आत्मलाभादेव नान्यस्मात् । मलिनदृष्टयो मलिनबुद्धयः । यल्लोकशास्त्रविरुद्धमप्याचरन्ति । न च परित्याज्याः । एवंभूता अपि पुरुषार्थहेतुत्वात् । तस्माद्रतविधौ स्मृतित एव शौचमन्वेष्टव्यम् । लोके स्मृतेः प्रामाण्यात् । तां स्मृतिमाह—एवं हीति । आह स्मृतिकारः । मुखवर्जं गौः सर्वतो मेध्येत्युक्तम् । प्रस्रवणकाले तु मुखं शुचि । उच्छिष्टं क्षीरमपि । श्वपक्ष्युच्छिष्टं त्यजेदित्युक्तम् । मृगग्रहणफलपानकाले तु मुखस्य शुचित्वान्मांसं फलं च शुचि । तथा रतिसंगमे रत्यर्थसंगमे स्त्रीमुखं कृतौपरिष्टकमन्यद्वा मेध्यम् । अन्यदा सर्वाशुचिनिधानत्वादिति । अस्मिन्स्मृत्यर्थे सर्वत्र चुम्बनप्रसङ्ग इति ॥ ३२ ॥

शील स्वभावको कहते हैं। अपवित्र वस्तुसे अलग रहनेको पवित्रता या शौच कहते हैं । तीनों वेदोंके कहे कर्मोंके विधिपूर्वक करनेको आचार कहते हैं । कुलपरंपरासे चली आई हुई स्थितिको चरित कहते हैं। प्रत्यय विश्वासका नाम है । बातोंका नाम वचन है । पारमार्थिकरूपसे ये सब स्त्रियोंके कब विश्वास योग्य होते हैं? इसका कारण यह है कि ये विना किसीके सिखाये अपने ही आप मलिन बुद्धिकी होती हैं, जिससे लोक और शास्त्रके विरुद्ध भी कर डालती हैं पर छोड़ी नहीं जा सकतीं, क्योंकि ऐसी भी ये कामरूपी तीसरे पुरुषार्थकी सिद्धिका कारण होती हैं । इस कारण इनसे रमण करती बार इनकी पवित्रता स्मृतियोंसे देखनी चाहिये । क्योंकि लोकमें स्मृतिका प्रमाण होता है, इस कारण उसी स्मृतिको कहते हैं जो कि स्मृतिकारोंने कही है, कि- " मुख छोडकर गऊका बाकी सब अंग पवित्र बताया है, किन्तु दूध काढतीवार तो उसका मुख भी पवित्र होता है तभी उसका झूठा दूध बरत लिया जाता है। कहा है कि कुत्ता और पक्षियोंके झूठेको न खाय किन्तु शिकारके

समय कुत्तेके मुखके पकड़े मृगको और पक्षीके गेरे फलको, इनके मुखको पवित्र मानकर खा लेते हैं। इसी तरह रतिके लिये किये गये सहवासमें स्त्रियोंका मुख पवित्र होता है चाहें बुराकर्म कराया हुआ ही मुख क्यों न हो। किन्तु इस समयको छोड़, दूसरे समयमें वह सभी अपवित्रताओंका खजाना रहता है। इस स्मृतिके अर्थसे इसके बताये हुए समयमें सभी जगह मुखचुम्बन किया जा सकता है ॥ ३३ ॥

वात्स्यायनका निष्कर्ष ।

स्वमतं दर्शयन्नाह—

सबका मत दिखानेके बाद अब महर्षि वात्स्यायन अपना सिद्धान्त बताते हैं कि—

शिष्टविप्रतिपत्तेः स्मृतिवाक्यस्य च सावकाशत्वाद्देशस्थितेरात्मनश्च वृत्तिप्रत्ययानुरूपं प्रवर्तेत । इति वात्स्यायनः ॥ ३४ ॥

शिष्टोंमें सर्वत्र मुखचुम्बनके विरुद्ध देखते हैं एवम् रतिकालमें मुखको पवित्र बतानेवाले स्मृतिवाक्यको सावकाश देखते हैं, इस कारण जैसा देशाचार हो एवम् जैसा अपनेको अच्छा लगे या विश्वास हो, उसी तरह बर्ताव करना चाहिये, यह वात्स्यायन महर्षिका मत है ॥ ३४ ॥

शिष्टविप्रतिपत्तेरिति । शिष्टानां प्राच्याहिच्छत्रिकनागरकाणां विप्रतिपत्तिर्दृश्यते । यथोक्तम्—'विरुद्धा च विगीता च दृष्टार्था दृष्टकारणा । स्मृतिर्न श्रुतिमूला स्याद्या चैषा संवनस्मृतिः ॥' इति । अत्रोत्तरमाह—सावकाशत्वादिति । पत्नीमेवाधिकृत्येत्युक्तम्—'स्त्रीमुखं रतिसंगमे' इति । यद्येवं वेश्यासु चुम्बनविकल्पानर्थक्यमित्यत्र पाक्षिकमभ्यनुज्ञानमाह—देशस्थितेरिति । यो यस्मिन्देशे आचारस्तदनुरूपं प्रवर्तेत । देशाचारस्य तत्रत्यानां प्रामाण्यात् । वृत्तिप्रत्ययानुरूपमिति । यथा सौमनस्यं यथा च विश्वासस्तथा प्रवर्तेत । न शास्त्रेणैव केवलेनेति ॥ ३४ ॥

प्राच्य, आहिच्छत्र और पटनाप्रान्तके लोगोंको रतिकालमें स्त्रीमुख पवित्र मानकर सबका मुँह चूमते नहीं देखते, इस कारण रतिकालमें मुखको पवित्र बतानेवाली स्मृति शिष्टोंके विरुद्ध है, तब इसका प्रामाण्य कैसा ? यही कहा

भी है कि-"जो स्मृति शिष्टोंके विरुद्ध हो निन्दित हो जिसका दृष्ट प्रयोजन ही हो एवम् कारण ही दृष्ट हो वह स्मृति श्रुतिमूलक नहीं है, जैसी कि यह रतिकालमें स्त्रीके मुखको पवित्र बतानेवाली स्मृति है।" इस शंकाका उत्तर देते हैं कि-रतिके समय पत्नीका मुख ही पवित्र बताया है, उसीको लेकर वह वचन भी कहा है। इससे यह न बात समझ लेनी चाहिये कि वेश्याओंमें जो चुम्बनके भेदोंका विधान किया है वह व्यर्थ है। क्योंकि वह जिस देशमें जैसा आचार है उसीके अनुसार किया जाता है। जिसमें किया जाता है उसमें सार्थक है। जहांका जैसा आचार है, उसीके अनुसार व्यवहार होता है, क्योंकि वहांके लोगोंका वही प्रमाण है। इस तरह मुखचुंबन पाक्षिक है। इसके सिवा जैसे अपना चित्त प्रसन्न हो, उस तरह करना चाहिये, केवल शास्त्रको ही लेकर न बैठ जाना चाहिये ॥ ३४ ॥

पुरुषोंका असाधारण औपरिष्टक।

इदं स्त्रीविषयमसाधारणमौपरिष्टकमुक्तम्। स्त्रिया एव कर्तृत्वात्। पुरुषविषयमाह—

यह स्त्रियोंके विषयका असाधारण औपरिष्टक कह दिया गया है, क्योंकि इनके करनेवाली तो नायिका है, अब पुरुषोंके विषयका औपरिष्टक कहते हैं कि-

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

प्रमृष्टकुण्डलाश्चापि युवानः परिचारकाः।
केषांचिदेव कुर्वन्ति नराणामौपरिष्टकम् ॥ ३५ ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं-कि कानोंमें वालियां और फूल आदि पहनकर सजे सजाये रहनेवाले, युवक और चेले, बाजे २ मनुष्योंका औपरिष्टक करते हैं ॥ ३५ ॥

प्रमृष्टकुण्डला इति। उज्ज्वले कुण्डले येषामिति नेपथ्योपलक्षणम्। गृहीतनेपथ्या इत्यर्थः। युवानः प्राप्तरागत्वात्कर्तुं कुशलाश्चेटस्वरूपाः परिचारकाः। नान्ये। दोषात्। यथोक्तम्—'अजातश्मश्रवश्चेटा विश्वास्या मुखकर्मणि। योज्या गृहीतनेपथ्या नेतरे श्मश्रुदोषतः' इति। केषांचिदिति। ये मन्दरागा गतवयसोऽतिव्यायता ये च स्त्रीष्वलब्धवृत्तयः ॥ ३५ ॥

जिनके वाले और लोंग आदि कर्ण भूषण अत्यन्त चमकते हैं, यह बात नैपथ्य (वेशरचना) की ओर लक्ष्य रखती है, इस कारण इसका तात्पर्य्य

यह होता है कि जो जुल्फें बाढ़कर लौंडोंकी सूरतमें रहते हैं । जो कि अभी जवानीमें प्रविष्ट होनेके कारण इन कामोंमें राग होनेसे करनेमें कुशल हैं । चेलोंकी सकलमें रहनेवाले परिचारक भी इस कामको करते हैं, किन्तु दूषित होनेके कारण दूसरे लोग इसे नहीं करते । कहा भी है कि–"जिनके मूछें नहीं आई वे चेले इस काममें विश्वास करने लायक हैं । जो स्वाँग भर कर नाचते हैं, वे भी इस काममें लगाये जा सकते हैं पर जब मूंछें आ जायँ तो इस कामके योग्य नहीं रहते" औपरिष्टक करनेवालोंको बताकर करानेवालोंको बताते हैं कि–"जो मन्दरागवाले हैं अथवा जिन्हें स्त्रियां नहीं मिलती वा जिनकी आयु ढल चुकी है या जो अत्यन्त मोटे हैं वे इस काममें प्रसन्न रहते हैं" ॥ ३५ ॥

पुरुष और स्त्रियोंका साधारण ।

इदमप्यसाधारणम् । एकस्यैव कर्तृत्वात् । द्वयोः कर्तृत्वे साधारणम् । यदाह––

यह भी असाधारण है, क्योंकि इसका कर्ता भी एक है । यदि दोनों आपसमें करें तो साधारण होगा अब साधारणको ही बताते हैं कि—

तथा नागरकाः केचिदन्योन्यस्य हितैषिणः ।
कुर्वन्ति रूढविश्वासाः परस्परपरिग्रहम् ॥ ३६ ॥

इसी तरह आपसके हितैषी कुछ नागर आपसके अत्यन्त विश्वासके कारण आपसमें करते हैं ॥ ३६ ॥

तथेति । नागरका ये नागरवृत्तावधिकृताः । केचिदिति योषाप्रायाः । हितैषिणः । विसृष्टिसुखकारित्वात् । रूढविश्वासा मैत्र्या । परस्परपरिग्रहमिति । मम तावत्कुरु पश्चात्तवापि करिष्यामीति । युगपद्वा देहव्यत्यासेन रागात्कालमनपेक्षमाणाविति द्विविधम् । साधारणमित्युपलक्षणम् । स्त्रियोऽपि कुर्वन्ति । यथोक्तम्— 'अन्तःपुरगताः काश्चिदप्रातभाण्डकाः (?) स्त्रियः । भगे ह्यन्योन्यविश्वासात्कुर्वन्ति मुखचापलम् ॥ इति ॥ ३६ ॥

---

१ ऐसे छोकड़े केवल मुखके ही व्यापारमें रत हों यह बात नहीं, किन्तु दूसरी तरहके भी अप्राकृतिक व्यभिचार कराते हैं। नाटक आदिके लोग तो प्रायः इस दुर्व्यसनके पुतले ही रहते हैं । पर ऊपरकी सफाई अधिक हैं। एक बार तो एक कौलेजके एम् ए बी ए के छात्रोंमें भी आपसमें इसपर खंजर तक चल गये थे ऐसा सुनते ह ।

जो कि छैलपनेपर कदम रखते हैं, किन्तु हैं रड़ोले वे आपसमें एक दूस-रेको स्खलित होनेका सुख करनेके लिये आपसके अतिविश्वासके कारण मैत्रीभावसे यह तै करके करते हैं कि अब तू मेरा कर, पीछे मैं तेरा कर दूंगा। दोनों ही करवट बदलकर एक दूसरेका करते रहते हैं, क्योंकि रागके कारण इन्हें देर करना बरदास्त नहीं होता। यह दोनों पुरुषोंका साधारण है, यह बात इस बातकी तरफ भी लक्ष्य करती है कि इसे दो स्त्रियाँ भी कर सकती हैं। ऐसा ही कहा भी है, कि—" जिन्हें करनेवाले नहीं मिलते ऐसी अन्तःपुरमें रहनेवालीं स्त्रियाँ भी परस्परके विश्वाससे एक दूसरेके मदनमन्दिरमें जीभसे औपारिष्टक करती हैं " इस तरह इसे स्त्रियां भी कर लेती हैं ॥ ३६ ॥

पुरुषका औपरिष्टक स्त्रीपर।

पुरुषाश्च तथा स्त्रीषु कर्मैतत्किल कुर्वते।
व्यासस्तस्य च विज्ञेयो मुखचुम्बनवद्विधिः ॥ ३७ ॥

कोई २ पुरुष भी स्त्रियोंमें औपरिष्टक करते हैं, इसकी रीति तो यही समझनी चाहिये, कि इसकी मुखचुम्बनकीसी विधि है ॥ ३७ ॥

तथा स्त्रीष्विति। तथा स्त्रियः पुरुषेषु तथा स्त्रीषु पुरुषाः परिचारका नायका वा केचिद्रागे मुखेन कर्म कुर्वन्ति। किलेति संभावनायाम्। तस्य चेति पुरुषकर्तृकस्य। व्यासः प्रकारः। मुखचुम्बनवदिति। कन्याचुम्बने निमितादिना अन्यत्र समादिग्रहणेन यो विधिः सोऽस्यापि यथासंभवं विज्ञेयः ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार स्त्रियां पुरुषोंमें बुरा कार्य्य करती हैं, उसी तरह पुरुष भी स्त्रियोंके मदनमन्दिरमें बुरा कर्म करते हैं। इसके करनेवाले परिचारक या नायक होते हैं। यह असंभव नहीं किन्तु हो सकता है। जब पुरुष इसे स्त्रीमें करें तो उसकी रीति मुखचुम्बन जैसी ही है। जैसे कि कन्याके मुखको चूमनेके लिये निमित एवम् अकन्याके मुख चूमनेमें सम आदि चुम्बन किये जाते हैं, उसी तरह इसमें भी जो किये जा सकते हैं उन्हें करे ॥ ३७ ॥

दोनोंका आपसमें।

तत्र परिचारके कर्तर्यसाधारणं नायकेऽपि तु साधारणमपि संभवति। तत्र युगपत्परिपाटया वा। तत्र युगपत्कथमित्याह—

यदि नौकर या चेलेसे बुराकर्म करा रही हो तो वही वह करता है, इस कारण असाधारण रहता है। यदि नायकसे कराये तो दोनों एक दूसरेका

करने लग जाते हैं, इस कारण साधारण भी हो सकता है। यह आपसमें एक साथ होता है या क्रमसे होता है। एक साथ कैसे होता है इस बातको दिखाते हैं, कि—

परिवर्तितदेहौ तु स्त्रीपुंसौ यत्परस्परम् ।
युगपत्संप्रयुज्येते स कामः काकिलः स्मृतः ॥ ३८ ॥

स्त्री पुरुष दोनों करवटें बदलकर आपसमें एक साथ करें तो इस कामको काकिल कहते हैं ॥ ३८ ॥

परिवर्तितदेहाविति । पार्श्वसंपुटे पुमान्स्त्रियामूर्वोः शिरो निधत्ते स्त्री च पुंस इति युगपत्संप्रयुज्येते । एकस्मिन् काले मुखेन परस्परोपस्थेन्द्रियग्रहणात् । काकिलः स्मृत इति । स्त्री पुमांश्च काक इव काकः । मुखेनामेध्यग्रहणात । तौ विद्येते यस्मिन्काम इति । पिच्छादिषु द्रष्टव्यम् । ककनं वा काको लौल्यम् । 'कक लौल्ये' इति धातुपाठात् । तद्विद्यते ययोः स्त्रीपुंसयोरितीनिप्रत्ययः । तौ लात्यादत्त इति ॥ ३८ ॥

पार्श्वसंपुटसे पुरुष स्त्रीकी जाघोंपर शिर रखता है एवं स्त्री पुरुषकी जाघों-पर शिर रखती है। क्योंकि इन दोनोंको एक ही समयमें आपसकीको अपने २ मुखमें लेना और उसमें जीभसे व्यापार करना है। इस कर्मको काकिल कहनेका कारण यह है, कि स्त्री पुरुष दोनों ही मुंहसे बुरीवस्तु लेते हैं, इस कारण वे कऊए जैसे ही बनते हैं। इस काममें यही व्यवस्था है अतः यह नाम उचित है ॥ ३८ ॥

काकिलका व्याकरण ।

१ 'कक लौल्ये' धातुसे भावमें 'घञ्' प्रत्यय होकर, काक शब्द बना है। जिसका ककन अर्थात् लौल्य यानी चपलता अर्थ है। यह जिनमें हो वे काकिनौ कहाते हैं। काक-शब्दसे 'अत इनिठनौ ५-२-११५' इस सूत्रसे इनि प्रत्यय करके काकिन् और प्रथमा और द्वितीयाके द्विवचनमें 'काकिनौ' शब्द बनता है। जो काम इनका लाये यानी आदान करे उसे काकिल कहते हैं। 'ला आदाने' धातुसे 'आतोऽनुपसर्गे कः' इस सूत्रसे क प्रत्यय होकर बना है ॥ अथवा काक शब्दसे, 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५-२-१००' इस सूत्रसे 'इलच्' प्रत्यय करके काकिल शब्द बना लो। काक शब्दको पिच्छादिगणमें मानकर क्योंकि इसका पाठ पिच्छादि गणमें नहीं है यही कारण है कि इस प्रक्रियाको छोड़ कर फिर दूसरी प्रक्रियासे सिद्ध किया है, जिसे कि मुख्य होनेके कारण मैंने पहिले दिखाया है।

वेश्याओंकी खलप्रीतिका कारण।

नरयोषितोश्च परिवर्तितदेहयोर्व्याख्यातः। तत्र साधारणासाधारणयोरसाधारणं श्रेयः। ततोऽपि परिचारकविषयं हि खलसंसर्गादि परिशुद्धमिति दर्शयन्नाह—

उलटे सीधे होकर जो स्त्री पुरुष आपसमें करते हैं उसका निरूपण कर दिया, इन साधारण और असाधारणमें साधारण उत्तम है। इससे अधिक शुद्ध परिचारकोंके विषय खलसंसर्ग है, इसी बातको दिखाते हुए कहते हैं कि—

तस्माद्गुणवतस्त्यक्त्वा चतुरांस्त्यागिनो नरान्।
वेश्याः खलेषु रज्यन्ते दासहस्तिपकादिषु॥ ३९॥

इसी कारण वेश्याएँ चतुर, त्यागी, गुणवान् मनुष्योंको छोडकर, दास, महावत आदि खलोंमें अनुरक्त होती हैं॥ ३९

तस्मादिति। गुणवतो नायकगुणयुक्तान्। चतुरान् लोकयात्राकुशलान्। त्यागिनो दानशूरान्। वरानभिजनाद्युपेतान्। खलेषु नीचेषु। तानेव दर्शयति—दासहस्तिपकादिष्विति। रज्यन्त इति स्वभावाख्यानम्। अशिष्टधर्माचरणाद्वा। तेषु च रक्ता अपरचरितमपि प्रकाशयन्ति॥ ३९॥

दास महावत आदिक खल अशिष्टोंके चरित्रोंको करते हैं, इस कारण जिन पुरुषोंमें नायकोंके गुण हैं एवम् जो लोकयात्रामें परम निपुण हैं, जो कि मुक्त हस्त दान देनेवाले हैं, जिसके कि वड़े २ आदमो प्यारे मिलापी और कुटुम्बी हैं, उनको छोड़कर दास, महावत आदि खलोंमें अनुरक्त रहती हैं, क्योंकि ये इनके साथ 'बुराकर्म' करते रहते हैं। इनमें अनुरक्त रहकर दूसरेकी वातें भी इनसे कह देती हैं॥ ३९॥

योग्योंका अकर्तव्य।

न त्वेतद्ब्राह्मणो विद्वान्मन्त्री वा राजधूर्धरः।
गृहीतप्रत्ययो वापि कारयेदौपरिष्टकम्॥ ४०॥

इसको विद्वान् ब्राह्मण, राज्यकार्य्यका पूरा निर्वाहक राजमंत्री एवम् जिसको दुनियाँ अच्छा समझे वह न कराये॥ ४०॥

न त्वेतदिति। नैवं वेश्याभिः कारयेत्। ब्राह्मणो विद्वान् श्रुतिस्मृत्यर्थतत्त्वज्ञः। मन्त्री राजधूर्धरः प्राधान्येन यो राज्यं संवाहयति। समासान्तो 'अ' अत्रानित्यत्वान्न भवति। अन्यो वा कश्चिद्गृहीतप्रत्ययो लोके विश्वास्यः। तासु

क्रियमाणं लोके लब्धसमाख्यानं गौरवं व्यावर्तयति । अतो मा भूद्वदनसंस्पर्शदोषः । असभ्यत्वदोषस्तु दुर्निवारो नेतरेषाम् । अविवक्षितत्वात् ॥ ४० ॥

जो स्मृति और श्रुतियोंके तत्त्वको जानता हो उस विद्वान् ब्राह्मणको, जो कि राजधूर्धर[1] यानी किसी राज्यका प्रधान मंत्री होकर राज्य चलाता हो एवम् जिसे दुनियां बड़ा भारी आप्त पुरुष माने, इन व्यक्तियोंको वेश्याओंके साथ 'बुराकर्म' न करना चाहिये। यदि ये कर लेंगे तो वेश्याएँ जिनपर अनुरक्त हैं, उनसे कह देंगी वे बाहिर बुराई कर देंगे तो इनके गौरवमें नुकसान होगा। इनके लिये यह न होना चाहिये कि यह मुखमैथुनी हैं, क्योंकि इससे ये असभ्य समझे जायंगे एवम् मुखसंसर्गका दोष न होना चाहिये। दूसरेके लिये यह बात नहीं है, क्योंकि उनके विषयमें कहनेकी इच्छा नहीं है यानी उनके बारेमें इतने जोरका निषेध नहीं किया जा रहा है ॥ ४० ॥

शास्त्रव्यापक और प्रयोग एकदेशी होते हैं।

ननु च व्यासस्तन्मुखचुम्बनवद्विधिरिति शास्त्रेऽभिहितत्वात्साधारणस्यापि प्रयोगप्रसङ्ग इत्याह—

यह जो ३७ के श्लोकमें आपने स्त्रीमें पुरुषके औपरिष्टकका विस्तार या भेद मुख चुम्बनकी तरह बताया था, इस कारण साधारण और असाधारण दोनोंका प्रयोग तो होना ही चाहिये, इस शंकाका उत्तर देते हैं कि—

न शास्त्रमस्तीत्येतावत्प्रयोगे कारणं भवेत् ।
शास्त्रार्थान्व्यापिनो विद्यात्प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान् ४१

इसका शास्त्र है इतना ही प्रयोगका कारण नहीं हुआ करता, क्योंकि शास्त्र व्यापक और प्रयोग एकदेशी होते हैं ॥ ४१ ॥

न शास्त्रमिति । अभिधायकं शास्त्रमस्तीति नैतावत्प्रयोगे कारणम् । शास्त्रार्थान्व्यापिन इति । आलिङ्गनादेरर्थस्य रत्यौपयिकत्वात् सर्वानेव कामिनोऽधिकृत्य प्रवृत्तत्वात् । प्रयोगानेकदेशिकान् । कस्यचिदेवार्थस्य शिष्टैः प्रवर्तनात् ॥ ४१ ॥

---

1 इस शब्दपर यह शंका होती है, कि–'ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे ५-४-७४ जिस समासके अन्तमें ऋच्, पुर् अप्, धुर् और पथ् आये उसके अन्तमें 'अ' होता है। इस सूत्रसे 'अ' होकर राजधुरंधर' ऐसा शब्द बनना चाहिये 'राजधूर्धर' कैसे ! इसका उत्तर टीकाकार देते हैं, कि इस सूत्रसे होनेवाला 'अ' अनित्य है, इस कारण नहीं होता ॥

इस बातको शास्त्र कहता है, यहीं उसके प्रयोगका कारण हो ऐसा नहीं है। क्योंकि शास्त्र सभीके लिये विषयका प्रतिपादन कर देता है। जैसे कि आलिंगन आदिक जो पदार्थ कहे हैं वे सभी कामियोंको लेकर कहे हैं। जिसकी जिसे आवश्यकता हो वह उनमेंसे अपनी जरूरतकी वस्तु ले ले। यही कारण है कि शिष्टजन निर्दोष आवश्यकीय पदार्थको ग्रहण कर लेते एवम् विना जरूरतकी वस्तुको छोड़ देते हैं ॥ ४१ ॥

यही बात अन्यशास्त्रोंमें भी है।

अयं च न्यायोऽन्यत्रापीत्याह—

यह बात कामशास्त्रमें ही हो ऐसा नहीं है, किन्तु दूसरे शास्त्रोंमें भी है। इसी बातको दिखानेके लिये नीचेका श्लोक लिखते हैं कि—

रसवीर्यविपाका हि श्वमांसस्यापि वैद्यके।
कीर्तिता इति तत्किं स्याद्भक्षणीयं विचक्षणैः॥ ४२॥

वैद्यकशास्त्रने और तो क्या कुत्तेके मांसके खानेके भी रस वीर्य्य आदि बताये हैं, तो क्या विचारशील व्यक्तियोंको कुत्तेका मांस खा लेना चाहिये॥

रसवीर्यविपाका इति। रसो मधुरादिः। वीर्यं सामर्थ्यम्। विपाक उपयुक्तस्य परिणतौ मधुरादिः। श्वमांसस्यापि कीर्तिता इति व्यापित्वं रसादीनाम्। भक्षणीयं विचक्षणैरित्येकदेशित्वम्॥ ४२॥

मीठेमें मीठापन एवम् खट्टेमें जो खट्टापन होता है इन जैसोंको रस कहते हैं। वस्तुके सामर्थ्यको वीर्य्य कहते हैं। उपयुक्त वस्तुके परिपाकमें जो मिठास आदि होता है उसे विपाक कहते हैं। ये कुत्तेके मांसके भी बता दिये हैं, क्योंकि जब मांस मात्रके गुण बताये हैं तो यह कहां बाकी रह गया। इस तरह इनके गुण निरूपणका शास्त्रीय विषय व्यापक है, किन्तु उनका प्रयोग एकदेशीय है। क्योंकि उनका खाना शिष्टपुरुषोंसे नहीं हो सकता॥ ४२॥

प्रयोग निरर्थक नहीं।

यद्येवं शिष्टपरिहृतत्वादिहोपदेशानर्थक्यमित्याह—

यदि यही बात है तो जिन कामोंका शिष्टोंने परित्याग कर दिया है, उनका कामशास्त्रमें उपदेश देना भी निरर्थक है, इस शंकाका उत्तर देते हैं, कि—

सन्त्येव पुरुषाः केचित्सन्ति देशास्तथाविधाः।
सन्ति कालाश्च येष्वेते योगा न स्युर्निरर्थकाः॥ ४३॥

कुछ ऐसे ही पुरुष हैं, कुछ ऐसे ही देश हैं, कोई समय भी ऐसा ही होता है, इस कारण इनका उपदेश निरर्थक नहीं है ॥ ४३ ॥

तादृशा इति सन्ति ये शुच्यशुचिषु निर्विकल्पाः । देशास्तथाविधा लाटसिन्धुविषयादयः । काला औपरिष्टकसात्म्याः स्त्र्यायत्ता यदाजीवितादयः (?) योगा इति । मुखचुम्बनवद्विधेयम् ॥ ४३ ॥

कुछ मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें अपवित्र पवित्रका अणुमात्र भी ध्यान नहीं है । कुछ लाट, सिन्धु आदि देश भी ऐसे ही हैं । कुछ समय भी ऐसे ही हैं जिनमें कि औपरिष्टक कर्म अनुकूल पड़ता है । जब कि स्त्रीके हाथमें अपनी मौत या अपकीर्ति आदि आ जाती है, उसकी प्रसन्नताके लिये करना पड़ता है । जो मुखचुम्बनकी तरह किये जाते हैं वे योग इन बातोंके देखते निरर्थक नहीं है, इनका उपयोग उन लोगोंके लिये हैं ॥ ४३ ॥

प्रयोक्ताके विचारनेयोग्य पदार्थ ।

तस्माद्देशं च कालं च प्रयोगं शास्त्रमेव च ।
आत्मानं चापि संप्रेक्ष्य योगान्युञ्जीत वा न वा॥ ४४॥

इस कारण देश, काल, प्रयोग, शास्त्र और अपनेको देखकर ही योगोंका प्रयोग करे, न करने हों तो इसी व्यवस्थासे न भी करे ॥ ४४ ॥

तस्मादिति । यतश्चैवं । तस्मात्साधारणस्यासाधारणस्य वा यथास्वं देशकालौ संवीक्ष्य, प्रयोगमुपायं च प्रयुज्यते नेति, शास्त्रमभिधायकमात्मानं च, कतरन्मे युक्तमिति न वा प्रयुञ्जीतोभयमपि विद्वान् । स्वमात्मानं संवीक्ष्य ॥ ४४ ॥

इन अपवित्र प्रयोगोंकी यह व्यवस्था है, इस कारण साधारण हों वा असाधारण हों, क्रमशः दोनोंके देश और कालको देख, प्रयोग और उपाय कर सकता है अथवा प्रतिकूलतामें न भी करे। कहनेवाले शास्त्र और अपनेको भी देखले, कि मुझे कौनसा ठीक एवम् कौनसा गलत है। पीछे करनेके हों करे यदि अपने न करनेके हो तो न करे ॥ ४४ ॥

सबसे सभी संभव है ।

अथवा नायं पुरुषादिनियम इत्याह—

अथवा यों समझिये, कि ४३ वें श्लोकमें जो बात कही है, वह कोई नियम नहीं है, इसी बातको निचले श्लोकसे दिखाते हैं, कि—

अर्थस्यास्य रहस्यत्वाच्चलत्वान्मनसस्तथा ।
कः कदा किं कुतः कुर्यादिति को ज्ञातुमर्हति ॥ ४९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरण
औपरिष्टकं नवमोऽध्यायः ।
आदितश्चतुर्दशः ।

यह औपरिष्टक कार्य्य नितान्त गोप्य है एवम् मन चंचल है, कौन किस कारण कब क्या कर डाले इसे कौन जान सकता है ॥ ४५ ॥

अर्थस्येति । औपरिष्टकस्य रहसि भवत्वात् चित्तस्यास्थिरत्वात् विशेषतो रागसंयुक्तस्य । कः कुर्यात् विद्वानितरो वेति । कदा किं मत्तावस्थायामितरस्यां वेति । किं कुर्यात् साधारणमसाधारणं लौकिकं वा संप्रयोगमिति । कुतो हेतोः किं रागाद्देशप्रवृत्तेर्वेति को ज्ञातुमर्हति । नैवेत्यर्थः ॥ औपरिष्टकमेकोनविंशं प्रकरणम् ॥ ४९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे औपरिष्टकं नवमोऽध्यायः ।

औपरिष्टक बिलकुल गुप्तरूपसे होता है एवम् गुप्त ही रखा जाता है । चित्त स्वभावसे ही चंचल है, जब इसमें राग पैदा हो जाता है तो इसकी चंचलताका ठिकाना ही क्या है ? चाहे विद्वान् हो वा मूर्ख हो बेहोशीकी हालतमें अथवा रागके आवेशमें साधारण असाधारण अथवा लौकिक संप्रयोग इनमेंसे क्या कर डाले ? क्योंकि सब प्रवृत्तियोंका राग व देशप्रवृत्ति कारण है । किस कारण क्या कब किया या कर डालेगा इसे कोई भी नहीं जान सकता ॥ यह औपरिष्टक नामका उन्नीसवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४५ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके नवम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

दशमोऽध्यायः ।

रतारम्भावसानिक प्रकरण ।

एवमौपरिष्टकान्तं रतमुक्तम् । तस्यारम्भेऽवासने च किं प्रतिपत्तव्यमिति तदुद्भवं रता [रम्भा] वसानिकमुच्यते । यद्यपि प्रीतिविशेषानन्तरं रतारम्भिकं युक्तम् । रतावसानिकं चेहैव । तथाभूतत्वादनुष्ठानक्रमस्येति । तथापि प्रीतिसंबन्धत्वादालिङ्गनादीनां तदभिधानम् । तदनन्तरं च प्रकीर्णकन्यायेन सर्वशेषतया रतारम्भः । तत्प्रतिबद्धत्वाच्चावसानिकम् ।

रतकी व्यवस्थासे लेकर औपरिष्टक प्रकरण तक रतलीलाएँ कह दीं । अब यह विचार होता है, कि-रतके आरंभ और अवसानके कृत्य, कौनसे होने चाहिये, उन्हीं कार्य्योंको बताते हैं । इसपर यह प्रश्न होता है, कि इस बातको प्रारंभमें ही बताना चाहिये था एवम् रतके अन्तके कृत्योंका यहां कहना ठीक था, क्योंकि रत करनेके पहिले उसके प्रारंभके काम तथा अन्तमें होनेवाले कार्य्य अन्तमें होते हैं ? इस शंकाका उत्तर देते हैं, कि—यद्यपि आपका कहना ठीक है पर हमारे इस प्रकार लिखनेका कारण यह है कि आलिंगन आदिक प्रेमसे संबन्धित हैं यानी प्रेम होनेके बाद होते हैं, इस कारण प्रीतिके कहनेके बाद आलिंगन आदि कह दिये । इसके बाद उसके साथ जो २ सने हुए प्रकरण थे वे भी प्रकीर्णक न्यायसे कह दिये, सबके बाद बाकी रहा रतका आरंभ एवम् उससे बँधा हुआ अवसान, इस कारण आरंभके कृत्य कहकर बादमें समाप्तिके कृत्य कहेंगे ।

रमणके प्रारंभके कृत्य ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

आरंभ और अवसान इन दोनोंके कृत्योंमें पहिले आरंभके कृत्योंको कहते हैं, कि—

नागरकः सहमित्रजनेन परिचारकैश्च कृतपुष्पोपहारे संचारितसुरभिधूपे रत्यावासे प्रसाधिते वासगृहे कृतस्नानप्रसाधनां युक्तयापीतां स्त्रियं सान्त्वनैः पुनः पानेन चोपक्रमेत ॥ १ ॥

नागरजन पीठमर्द आदि और पानदान आदि लाने, उठानेवाले सेवकोंके साथ, उस घरमें सहवासके लिये जाय जो कि सुगन्धित धूपसे मँहक रहा हो, जिसमें फूलोंके गजरे बने रखे हों, पलंग सजा हुआ हो। उस कमरेमें स्त्री स्नान और शृङ्गार करके आये। वह थोड़ा ही जाम पिये हो जिससे ज्यादा मस्ती न हो। उसके पास कुशल प्रश्न पूर्वक पहुँचे, फिर उसे जाम पीनेके लिये कहे ॥ १ ॥

नागरक इति—नागरकवृत्तावधिकृतो मित्रजनेन पीठमर्दादिना परिचारकैस्ताम्बूलदायकसरककर्मान्तिकादिभिः (?) सहोपक्रमेतेति संबन्धः। पुष्पोपहारः पुष्पप्रकारः। रत्यावास इति रत्यर्थो य आवासो बाह्यं वासगृहं तत्र हि शयनीयं प्रकल्पेतेति। अयं वासगृहसंस्कारः। क्रिया द्विविधः—स्नानं नेपथ्यग्रहणं चेति शरीरसंस्कारः। असंस्कृताया दर्शनमपि प्रतिषिद्धम्। युक्त्या पीतामिति मनःसंस्कारः। नातिपीताम्। विभ्रमकरत्वात्। पीतमस्या विद्यत इति। प्रथमं सान्त्वनैः प्रियवाक्यैः कुशलप्रश्नादिभिरुपक्रमेत्। पुनः पानेन सरकः पीयतामिति ॥ १ ॥

नागरोंके चरित्रोंको करनेका अधिकारी पीठमर्दादिक और पान लानेवाले, जामका काम करनेवाले एवम् आवश्यकीय कामके लिये पास खड़े रहनेवाले सेवकोंके साथ उपक्रम करे। यह सूत्रका सार अर्थ है। जिस रमणघरमें फूलोंके गजरे रखे हों, सुगन्धित धूप उड़ रही हो, शय्या तयार हो। रमणके लिये शय्या बाहिरके वासगृहमें रखनी चाहिये। ऊपर जो बातें कहीं हैं वे सब वासगृहकी सजावटकी कही हैं। जिसमें रमण करते हैं, उस घरको इसी तरह सजाते हैं। स्नान और शृंगार ये दो स्त्रीके शरीरके संस्कार होते हैं। विना संकार हुए स्त्रीका दर्शन भी न करना चाहिये। 'युक्तिसे पिये हुई' यह मनका संस्कार है, क्योंकि अत्यन्त पीनेपर असावधानी हो जायगी। जिसने पी रखी हो वह पीता कहाती है। पहिले प्रसन्नता पैदा करनेवाले शान्तिदायक प्यारे वाक्योंसे पास उपस्थित हो। आते ही राजी खुशीका पूछना प्रियवाक्य आदि शान्तिकर हैं। पीछे पूछना चाहिये कि लीजिये जाम पी लीजिये! कहना ही नहीं; पिला भी देना चाहिये ॥ १ ॥

रतिगृहके संस्कारपर पुराण।

केवल यही बात नहीं है, कि कामसूत्रकी अनुसरतापर कवि लोग ही चले

हैं किन्तु-पुराण भी चले ही गये हैं । वह भी कोई और नहीं श्रीमद्भागवतमें देखते हैं, उसे हम यहीं उद्धृत करते हैं ।

" अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
सैरन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ "

घटघटमें व्यापक जगदीश भगवान् जानते थे कि-कुब्जाने मुझे पतिके रूपमें पानेके लिये चौदह हजार वर्षतक घोर तप किया है, अब उसके फल मिलनेका समय आ गया है वह भी मेरे लिये कामसे तप्त हो रही है, चलूँ उसका प्रिय करूं । यह विचारकर उसके घर चल दिये, उसका घर उसी तरहका सजा हुआ था, जैसा कि एक नागरीका घर रहना चाहिये । इसी बातको नीचेके श्लोकसे कहते हैं कि—

" महार्होपस्करैराढयं कामोपायोपबृंहितम् ।
मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ॥ "

कामसूत्रके १ अधि. के चौथे अ. के चौथे सूत्रमें जो नागरके मकानकी सजावट होनी बताई है वही इस नागरीके रतिगृहकी सजावट वेश कीमती वस्तुओंसे हो रही है । कामके बढ़ानेवाली सारी वस्तुएँ तथा अनेक तरहकी रंगरेलीकी चीजें मौजूद थीं । मोतियोंकी मालाके वन्दनवार लहलहा रहे थे, पताकाएँ फैरा रहीं थीं । बैठनेके वितान पुष्पवाटिकामें बने हुए थे । सुन्दर सहवासका पँलिग सजा हुआ था, साधारण बैठकके आसन सजे हुए थे ।

इसीपर काव्य ।

नैषध—" धूपितं यदुदरान्तरं चिरम्, मेचकैरगरुसारदारुभिः ।
जालजालधृतचन्द्रचन्दन-क्षोदमेदुरसमीरशीतलम् ॥ "

महाराज नलके रतिकेलिके सुहावने घरमें काले अगरुकी परम सुगन्धि फैल रही है । घरके सभी झारी झरोखोंमें कपूर और चन्दनका चूर्ण रखा हुआ है । उससे लगी हुई शीतल मन्द सुगन्धित पवनके लग जानेसे वह अत्यन्त शीतल हो रहा है । इस श्लोकमें कविने कामशास्त्रके इसी विधानके अनुसार धूपसे शयनगृहका सुगन्धित होना लिखा है ।

स्त्रीके संस्कारपर पुराण ।

यह बात तो हुई रतिघरके संस्कारकी, अब इसी प्रकरणमें स्त्रीके संस्कार दिखाते हैं कि—

" सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ "

सबसे पहिले तो कुब्जाने अपना संस्कार किया । स्नान किया, चन्दन लगाया, वस्त्र पहिने, दिव्य आभूषण धारण किये । माला पहिनी, गजरे बाँधे, अतर लगाया एवम् अमृत जैसा मीठा आसव पिया । यह अपने इतने संस्कार करके ही कृष्णसे मिलने गई, क्योंकि रतिकेलि तो दूर रही; विना सिंगरी स्त्रीके देखनेका भी निषेध है । यह पास इसी तरह ही न गई, किन्तु कुछ २ लजोंहे दृष्टिपात एवम् लीलापूर्वक मन्दहास करती हुई विभ्रमके साथ पहुँची ।

दक्षिणतश्चास्या उपवेशनम् । केशहस्ते वस्त्रान्ते नीव्यामित्यवलम्बनम् । रत्यर्थं सव्येन बाहुनानुद्धतः परिष्वङ्गः ॥ २ ॥

आप नायिकाके सीधे हाथकी ओर बैठे, पहिले बालोंपर हाथ फेरे फिर हाथोंपर हाथ फेरता हुआ उन्हें पकड़े, फिर कपड़ोंके भीतर हाथ डाल दे, फिर नीवी (नाड़ेको) टटोलने लगे । रतिके लिये बाँये हाथसे सहता २ स्पर्श करना चाहिये ॥ २ ॥

तत्र दक्षिणे पार्श्वेऽस्या उपविशेत् । येन दक्षिणहस्तेन चषको वामेन च बाहुना परिष्वङ्गः । तत्र प्रथमं केशहस्तादिष्ववलम्बनं संस्पर्शनम् । ततः सव्येन वामेन परिष्वङ्गः । अनुद्धत इति यथा नोद्विजते ॥ २ ॥

नायिकाकी दाँयी ओर नायकको बैठ जाना चाहिये । यहां बैठनेमें उसे यह लाभ है, कि सीधे हाथमें उसे जाम मिलानेका प्याला एवम् बाँयां हाथ उसके गलेमें डाला जा सकेगा । पहिले जुल्फें तथा हाथोंपर हाथ फेरना या उन्हें पकडना चाहिये, फिर धीरे २ उसके गलेमें इस प्रकार बाँया हाथ डालना चाहिये कि इसे उद्वेग न मालूम हो ॥ २ ॥

हाथ, केश और प्याले ।

अब हाथ या केश पकड़कर बिठाने तथा प्याले पिलानेपर व्यास और साहित्यको दिखाते हैं कि—

" आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया, विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया, रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ "

जो सुन्दरी नये संगमकी लाजसे लजाती हुई पास खड़ी थी उसे अत्यन्त प्रेमके साथ बुलाया, फिर उसके दोनों हाथ पकड़कर अपने दक्षिण पार्श्व शय्यापर बिठा लिया । पीछे उसके साथ रतिक्रीडा करने लगे, क्योंकि चन्दन देनेके बाद उसका वह पुण्य जग गया था । इसमें हाथ पकड़कर शय्यापर

बिठाना मिलता है । दिव्य सूरिचरितमें भक्तांघ्रिरेणुके जीवनमें "तां सः" वालोंसे शुरूआत होती है । जब पुराणोंमें व्यासदेवजी भी इस शैलीका अतिक्रमण नहीं कर सके तो फिर अन्य साहित्यिकोंकी तो बात ही क्या है। उनके यहां भी यही ढंग चला है । हिन्दी साहित्य भी इस व्यवस्थासे बरी नहीं रहा है, इसके भी,गद्यपद्य ग्रन्थोंमें ऐसे अवसरोंपर ऐसा वर्णन अवश्य ही रहा है । उर्दू साहित्य तो इसमें सबसे ज्यादा लय है । किसी दीवानेने तो यहां तक कह डाला है कि—

"मासूक हो बगलमें जलसे हों मयकसीके ।
बस ये ही लुत्फ हैं अब हां मेरी जिन्दगीके ॥"

अब मेरी जिन्दगीका यही मजा है कि प्यारा बगलमें बैठा हो और मेरे प्यारे पिलानेका उत्सव मनाया जा रहा हो ।

पूर्वप्रकरणसंबद्धैः परिहासानुरागैर्वचोभिरनुवृत्तिः । गूढाश्लीलानां च वस्तूनां समस्यया परिभाषणम् ॥३॥

पुरानी प्रेम परिहासकी बातें बताकर फिर वैसी ही बातें प्रारंभ कर दे । जो गूढ और अश्लील वस्तु हों उन्हें संक्षेपसे कह दे ॥ ३ ॥

पूर्वप्रकरणसंबद्धैरिति—अतिक्रान्तेन प्रस्तावेन युक्तैः 'स्मरसि सुभगे यदावयोस्तत्र तत्र परिहासोऽनुरागश्चासीत्' इत्येवं वचोभिरनुवर्तनम् । गूढाश्लीलानां चेति । यद्गूढं दुर्बोधमश्लीलं ग्राम्यं लोकप्रतीतं वस्तु गाथास्कन्धकादिषु बद्धं तस्योभयस्यापि बुभुत्सायां समस्यया संक्षेपेण परिभाषणम् । परिकथनमित्यर्थः॥३

फिर पुरानी बातोंको शुरू कर दे, कि—आपको याद है कि हमारा आपका कहां कहां अनुराग और कहां २ हँसी दिल्लगी हुई थी । इस तरहकी बातें

---

१ दो०—केवल तोहि तपावही, मदन अहो सुकुमार ।
भस्म करत पै मो हियो, तू चित देखि विचार ॥
सो०—भानु मन्द कर देत, केवल गन्ध कुमोदिनिहि ।
पै शशिमण्डल श्वेत, होत प्रातके दरशतें ॥
श्लोक—इदमनन्यपरायणमन्यथा, हृदयसन्निहिते हृदयं मम ।
यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे, मदनबाणहतोऽस्मि हतः पुनः ॥

यह सिवा आपके और किसीका चाहनेवाला नहीं है । मेरे हृदयमें रहती हो तो आप ही रहती हो । यदि मेरी बातको सत्य नहीं मानती तो आप कामदेवके बाणोंके मारे हुए मुझे और भी मारना चाहती हो ।

करता २ फिर उन्हीं कामोंको करना प्रारंभ कर दे । बोलनेका भी यही ढंग हो कि जो बात गूढ हो, जो कि अश्लील वस्तु हो वह अपनी बातोंकी बातोंमें आ रहीं है तो यदि उनके जाननेकी इच्छा हो तो विशेष न बोलकर सामान्यरूपसे समझा दे ॥ ३ ॥

सनृत्तमनृत्तं वा गीतं वादित्रम् । कलासु संकथाः । पुनः पानेनोपच्छन्दनम् ॥ ४ ॥

नाँचके साथ वा विना नाचके गाना बजाना हो । आलेख आदिक कलाओंकी बातें होनी चाहियें । फिर जाम पिलाकर उत्साहित करना चाहिये ॥४॥

सनृत्तमनृत्तं वा गीतमिति । या नृत्ताभिज्ञा तत्समक्षं गीतार्थमाङ्गिकाद्यभिनयेन प्रकाशयीत । आसीननृत्तं स्यात् । इतरस्या गीतमेव केवलम् । वादित्रमिति नागदन्तावसक्तां वीणामादाय । तत्रान्यस्यासंभवात् । कलासु संकथा शेषास्वालेख्यादिषु कौशलख्यापनार्थम् । एवमावर्ज्य पुनः पानेनोपच्छन्दनं प्रोत्साहनम् ॥ ४ ॥

जो नाचना जानती हो उसके सामने गीतके अर्थको शरीरके अभिनय यानी हाथ आदिको चलाकर उन्हींके इशारेसे बताये । बैठे[1] ही नृत्य होना चाहिये । दूसरीका केवल गाना ही हो; उस समय खूँटीसे सितार उतारकर बजाना शुरू कर देना चाहिये । चित्रकारी आदिकी विशेषता दिखानेके लिये इनकी बातें प्रारंभ कर देनी चाहियें । फिर गप्पोंको बीचमें ही रोककर जाम पिलाकर उत्साहित करना चाहिये ॥ ४ ॥

जातानुरागायां कुसुमानुलेपनताम्बूलदानेन च शेषजनविसृष्टिः । विजने च यथोक्तैरालिङ्गनादिभिरेनामुद्धर्षयेत । ततो नीवीविश्लेषणादि यथोक्तमुपक्रमेत । इत्ययं रतारम्भः ॥ ५ ॥

इन कामोंसे प्यारीकी मिलनेकी पूरी इच्छा हो जानेपर फूलोंके गजरे पहिनाये, अतर, चन्दन आदिक लगाये, पान देकर सब आदमियोंको विदा-

---

१ कामको प्रदीप्त करनेवाले गाने गाये जाते हैं, सीखी हुई गानविद्याके उपयोगका यही समय है। खड़ा होकर तो इस लिये नहीं नाचा जाता कि इस समय वह शोभा नहीं देता। यदि स्त्रियोंका ही गान हो जाय तो सबसे अच्छा है । यही वैद्यकशास्त्र भी कहता है, कि– “ रम्ये श्राव्याङ्गनागाने सुगन्धे सुखमारुते ” स्थान रमणीय हो, सुन्दर स्त्रियोंके सुन्दर गानेकी ध्वनि आरही हो एवम् शीतल, मन्द, सुगन्ध, पवन वहा चला आ रहा हो ।

कर दे। सबके चले जानेपर कहे हुए आलिंगन आदिकोंसे उसका हर्ष बढ़ाये, इसके बाद क्रमशः नीवी आदि खोले। यह रमणके आरंभसे पहिलेकी विधि है ॥ ५॥

जातरागायां च यथोक्तानुष्ठानेन ताम्बूलदानसंप्रेषणोपायः। शेषजना मित्र-परिचारकादयः। यथोक्तैरिति रतात्प्रागुक्तानि यानि । उद्धर्षयेदुत्कृष्टेन हर्षेण योजयेत्। यथा शयनीयं प्रतिपद्यते। तत इति। उत्तरकाले शयनीयगतायाः नीवीविश्लेषणायोपक्रमेत्। इतःप्रभृति बाह्यं पुरुषोपसृप्तमिति ॥ ५ ॥

यदि आनेवालीकी मिलनेकी पूर्ण इच्छा हो जाय तो ऊपर बताये हुए कामोंको करके पान खिलाकर पासके आदमियोंको विदा करे। पान देनेका संकेत है; पान मिलते ही ये आप बिदा हो जाते हैं, जो कि उस समय उपस्थित होते हैं। फिर रमण करनेसे पहिले जो आलिंगन आदिक गत प्रकरणोंमें कहे हैं उनसे इसे प्रसन्न करे, जिससे कि वह सहवासके लिये पलिंग-पर लेट जाय। पीछे उसे नंगी करनेका प्रयत्न करे। जब तक वह पलिंगपर न पहुँच जाय बाह्य आलिंगन आदिक ही करने चाहियें, फिर आभ्यन्तर कार्य्य होने चाहियें ॥ ५॥

रतके अवसानके कार्य्य।

रतावसानिकं रागमतिवाह्यासंस्तुतयोरिव सव्रीडयोः परस्परमपश्यतोः पृथक्पृथगाचारभूमिगमनम्। प्रति-निवृत्य चाव्रीडायमानयोरुचितदेशोपविष्टयोस्ताम्बू-लग्रहणमच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं तस्या गात्रे स्वयमेव निवेशयेत् ॥ ६ ॥

रतिके सुखका अनुभव करके अलग २ हो अपरिचितोंकी तरह लजाते हुए आपसमें एक दूसरेको न देखते हुए शुद्धिकी भिन्न २ जगहोंको चले जायँ। वहांसे वापिस आकर खुली तबियतके साथ शय्याके सिवा बैठनेकी उचित जगहपर बैठकर पान खायें। नायक घिसे चन्दन तथा अन्य २ वस्तुओंको अपने हाथसे नायिकाके बदनमें लगाकर, पीछे अपने शरीरमें लगाये ॥ ६॥

रतावसानिकमिति। वक्ष्यत इति शेषः। रागमतिवाह्य रतिमनुभूय। असं-स्तुतयोरिवेति। अपरिचितयोर्यथा व्रीडा तद्वत्सव्रीडयोः। अविनयाचरणात्।

एवं परस्परमपश्यतोः। तदवस्थदर्शनाद्वैराग्यमपि स्यादतः पृथक्पृथगाचारभूमिगमनम्। नैकत्र शौचभूमौ शौचं कार्यमित्यर्थः। प्रतिनिवृत्त्याचारभूमेरव्रीडायमानयोः। एकान्तेनापरित्यक्तलज्जत्वात्। उचितदेशस्तदानीं शयनीयमपास्यान्यदेशः। ताम्बूलस्य ग्रहणं भक्षणम्। तदानीं मुखस्याश्रीकत्वाद्वैरस्याच्च। तत्र क्षीणप्रधानधातुत्वाच्छरीरस्य बृंहणं बाह्यमाभ्यन्तरं च। तत्र बाह्यं ग्रीष्मकाले अच्छीकृतं चन्दनमन्यद्वानुलेपनं कालौपयिकम्। स्वयमित्यनुरागख्यापनार्थम्। निवेशयेत्। पश्चादात्मन इत्यर्थः॥ ६ ॥

रतिके बादके कार्य्य बताते हैं कि–रतिसुखका अनुभव करके, शुद्धिकी जगह जाना चाहिये। कैसे? इसे बताते हैं कि अलग २ हो, जैसे अपरिचितोंमें आपसमें लजाते हैं, उसी तरह लजाते हुए। क्योंकि विना ऐसे किये अविनय मालूम होता है, इसी प्रकार आपसमें विना ही देखे, क्योंकि इस अवस्थामें देखनेसे आपसमें एक दूसरेसे अरुचि हो जाती है। इसीसे एक ही शुद्ध होनेकी जगह न जाना चाहिये अलग २ जाना चाहिये। एक जगह न शुद्धि करनी चाहिये। वहांसे शुद्ध हो वापिस आकर विना ही लजाये, क्योंकि एकान्तमें लज्जा नहीं होती। शय्याके इलादा दूसरी जगह बैठकर पान खायँ, क्योंकि उस समय मुख श्रीरहित होता है तथा विरसता रहती है वह पान खानेसे दूर हो जाती है एवं चन्दनादि लगानेसे चहरेपर शोभा आ जाती है। सहवासमें वीर्य्यका नाश होता है, इस कारण सहवासके बाद बाहिर और भीतरका वीर्य्यवर्धक उपचार होना चाहिये। इनमें गरमीके दिनोंमें घिसा चन्दन लगाना शान्ति दायक है। यदि दूसरे दिन हों तो उन्हीं दिनोंके अनुसार लेप आदि होने चाहियें। अपने आप लगानेसे प्रेम प्रतीत होता है, इस कारण अपने हाथसे पहिले लगाकर, पीछे अपने शरीरमें लगाये६॥

सव्येन बाहुना चैनां परिरभ्य चषकहस्तः सान्त्वयन् पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यकमन्यद्वा प्रकृतिसात्म्ययुक्तमुभावप्युपयुञ्जीयाताम्॥ ७॥

सीधे हाथमें भरा प्याला लेकर, बांये हाथको प्यारीके गलेमें डालता हुआ प्यारे वचनोंको बोल २ कर बलवर्धक चीजें पिलाये अथवा खाँडके बने जलपान एवम् तिलोंके कुटैमा लड्डू आदि जो अपनी प्रकृतिके अनुकूल बैठें उनका दोनों जने जल पान करें॥ ७॥

आभ्यन्तरं पानादि। तत्रापि परिरभ्यालिङ्ग्य। चषके मद्यभाजने। सान्त्व-यन्प्रियाणि ब्रुवन् पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यकं बृंहणीयत्वात्। अन्यद्वा तिलगर्भोत्करादिप्रकृतिसात्म्ययुक्तमुभावप्युपयुञ्जीयाताम्॥ ७॥

शरीरके भीतरके वीर्य्य बढानेवाले उपाय पान आदि हैं। जामका प्याला, भरकर प्रेमपूर्वक गलेमें हाथ डालकर पिलाना चाहिये। वह भी इसी तरह नहीं, मनोहर वचनोंके साथ, पिलाये। जिन लोगोंमें ये चीजें काम नहीं आतीं, उन्हें खांडके बने पाक आदि काममें लाने चाहियें। यदि तिलों कुटे लड्डू अनुकूल, हों तो वे, नहीं तो जो वस्तु अनुकूल पड़े उसी वस्तुको इस समयके व्यवहारमें लाये॥ ७॥

अच्छरसकयूषमम्लयवागूं भृष्टमांसोपदंशानि पानकानि चूतफलानि शुष्कमांसं मातुलुङ्गचुक्रकाणि सशर्कराणि च यथादेशसात्म्यं च। तत्र मधुरमिदं मृदु विशदमिति च विदश्य विदश्य तत्तदुपाहरेत्॥ ८॥

अच्छ और रसक मांसयूष, अम्ल यवागू, एवम् जिनके साथ भुना मांस चबाया जाता है वे पीनेकी चीजें आमके पके फल, सूखा मांस, विजोरे नींबूके चीनी बुरके हुए चूसनेके टुकड़े, हों। इनमेंसे जो अपने या उस देशमें अनुकूल बैठे एवम् जैसे अपनी और दूसरेकी प्रकृति हो इनमेंसे चाख २ कर यह कहता हुआ व्यवहारमें लाये कि यह मीठी है यह मीठी और बल वर्धक है, खाये और खिलाये॥ ८॥

अच्छरसकयूषमिति। यूषं द्विविधं मांसनिर्यूहं व्रीहिनिर्यूहं च। बृंहणीयत्वान्मांसनिर्यूहं रसकयूषमच्छमुपयुञ्जीयाताम्। अम्लयवागूं मांससिद्धाम्। बृंहणीयत्वात्। भृष्टं भर्जितं मांसं तदेवोपदंशो येषां पानकानाम्। चूतफलानि पक्वानि। शुष्कमांसं बलबृंहणत्वात्। मातुलुङ्गचुक्रकाणीति बीजपूरमीषदपनीतचुक्रं खण्डशः कृत्तं शर्करायुक्तम्। हृद्यत्वात्। यथादेशसात्म्यमिति। यस्मिन्देशे येन सात्म्यम्। तत्रेति भक्ष्याद्युपयोगेऽनुरागख्यापनार्थो विधिः। विदश्य विदश्येति। उपलक्षणं चैतत्। इदं वृष्यमिदं वृष्यमित्यास्वाद्यास्वाद्य पानमपि तत्तदुपाहरेत्॥ ८॥

वैद्यकके ग्रन्थोंमें यूष बनानेकी विधि लिखी है, यूष दो प्रकारका होता है मांसका और और अन्नका। इन दोनोंमें मांसका यूष बृंहण है, इस कारण मांसका

रस, घनरस, अच्छ और अच्छतरका उपयोग करें, जिनको कि कोई अड़चल न हो एवम् अनुकूल बैठें । अथवा मांससे सिद्ध की हुई अम्ल यवागूको काममें लाये, क्योंकि यह भी वीर्य्यवर्धक है। इनके साथ कडके दार भुना मांस होना चाहिये। वे वे पीनेकी चीजें होनी चाहियें जिनमें कि भुना मांस चबाया जाता हो। आमके पके फल होने चाहियें । अथवा सूखा मांस हो, क्योंकि यह भी बल वर्धक है। वह विजोरा नींबू जिसकी कि कुछ खटाई दूर हो गई हो उसमें चीनी डालकर चट कर जाय। ये ऊपर लिखी बातें देशाचार और अपनी अनुकूलताके अनुसार होनी चाहियें एवम् इसी तरह होती भी हैं । जिस जगह जो अनुकूल पड़े उस जगह वे ही उपचार करके प्रेम प्रकट करे, क्योंकि ये प्रेम प्रदर्शनकें काममें भी आती हैं। इन ऊपर बताई हुई वस्तुओंको आप चाख २ कर कहे कि यह मीठी है, यह वड़ी मीठी और स्वादिष्ट है, यह बड़ी बलवर्धक है, काममें लाइये। सूत्रके ' विदिश्य विदिश्य ' का चाख २ कर यह अर्थ होता है तथा इसका लक्ष्य, उन वस्तुओंकी तारीफ पर जाता है, इसी कारण ' यह बडी मीठी है ' इत्यादि अर्थ किया है। पीनेकी चीजोंका भी इसी तरह उपयोग करे ॥ ८ ॥

इसीपर वैद्यकशास्त्र ।

" स्नानं स शर्करं क्षीरं भक्ष्यमैक्षवसंस्कृतम् ।
वातो मांसरसः स्वप्नो सुरतान्ते हिता अमी ॥ " भा० मि०

मैथुनके अन्तमें स्नान, खाँड डलाहुआ दूध, खाँड डले बलबर्धक लड्डू आदि, स्वच्छ हवा, मांसरस और नींद ये बातें मैथुनके अन्तमें हितकारी हैं। ऐसा ही सुश्रुत चिकित्सास्थान अ० २४ के १३० वें श्लोकमें कहा है। वाग्भटने भी कहा है कि-

" स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डखाद्य-शीताम्वुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः ।
सेवेत चानुशयनं विरतौ रतस्य, तस्यैवमाशुवपुषः पुनरेति धाम ॥ "

स्नान करे इससे मैथुनके अन्तकी शुद्धि कह दी गई । अनुलेप लगाये ठंडी हवाका सेवन करे, इस कथनसे चन्द्रशाला आदिके जानेकी वात कह दी । खाँड डले हुए मोदक, दूध, मांसरस, यूष और प्रसन्नसुरा इनका शयनसे पहिले सेवन कर ले तो नष्ट हुआ वीर्य्य फिर मिल जाता है। इस सब निरूपणको देख, एवं इसे कामसूत्रमें पाकर विश्वास हो जाता है, कि महर्षि वात्स्यायनने वैद्यकशास्त्रपर दृष्टि डालकर ही इस प्रकरणको कामसूत्रमें लिखा है ।

हर्म्यतलस्थितयोर्वा चन्द्रिकासेवनार्थमासनम् । तत्रानुकूलाभिः कथाभिरनुवर्तेत । तदङ्कसंलीनायाश्चन्द्रमसं पश्यन्त्या नक्षत्रपङ्क्तिव्यक्तीकरणम् । अरुन्धतीध्रुवसप्तर्षिमालादर्शनं च । इति रतावसानिकम् ॥ ९ ॥

यदि नीचे ताप हो एवम् हवेलीके ऊपर चांदनी खिली हुई हो तो वहाँ जाकर बैठना चाहिये, वहां बृंहणविधिके बाद कामवर्धक बातें होनी चाहियें। गोदीमें शिर रख चित्त सो चन्द्रमा देखती हुई प्यारीको नक्षत्रोंका बताना एवम् ध्रुव सप्तर्षिमाला,वसिष्ठ और देवी अरुन्धती आदिके दर्शन कराने चाहिये; यह रमणके अन्तकी बातें पूरी हुईं ॥ ९ ॥

हर्म्यतलस्थितयोर्वेति । यदि वासगृहस्थितयोरासने तापश्चन्द्रिका चोदिता तदा तदुपरि सौधस्थितयोरूर्ध्वयोश्चन्द्रिकासेवनार्थमासनम् । तत्सेवनं च तापापनयनार्थम् । यदि च तापेन न तत्र ताम्बूलग्रहणाद्यनुष्ठितं तदानीमिहानुष्ठेयम्। तत्रेति—हर्म्यतले । भुक्तविरसत्वात्कामस्य बृंहणानन्तरं कामजननार्थं तदनुकूलाभिः कथाभिरनुवर्तेत । तदङ्कसंलीनायाश्चेति । आसीनस्य नायकस्याङ्के न्यस्तदेहाया नियतं गगनतले दृष्टिः । तत्र चन्द्रमसं नयनानन्दजननम् । यस्याङ्गसङ्गान्नक्षत्रपंक्तिव्यक्तीकरणम् । प्रायशः स्त्रीणां नक्षत्रपंक्तिष्वपरिचयात् । इयमरुन्धती भगवती सूक्ष्मा य एनां न पश्यति स षण्मासान्म्रियते । अयं ध्रुवादिविस्तारः यद्दर्शनाद्दिवसगतं पापमपैति । एते च सप्तर्षयः पङ्क्त्या स्थिताः । इति संदर्शयेत् ॥ ९ ॥

वे जिस आसनपर बैठे थे यदि वहां, उन्हें गरमी लगे और मकानके ऊपर चाँदनी आरही हो तो उन्हें चाहिये कि हवेलीके ऊपर जाकर ताप दूर करनेके लिये वहांके आसनपर बैठकर चांदनीका सेवन करे । यदि तापके कारण नीचे पान आदि न खा पी सके तो ऊपर आकर खा पी लें। भोग होनेके बाद काममें विरसता आजाती है, इस कारण बृंहण वस्तुओंके सेवनके बाद कामको प्रदीप्त करनेके लिये वैसीही गप्पें उड़ाना शुरू कर दे । रतिश्रमसे थकी प्रेयसी यदि गोदमें शिर रख कर चित्त लेट चन्द्रमाको देखने लगे तो आप दूसरे २ नक्षत्रोंको बताने लग जाय ऐसे समय चाँदको देखनेमें आनन्द आता है। नक्षत्रोंके बतानेका यह कारण है कि. स्त्रियां इनसे परिचित नहीं हुआ करती

बताती बार बताये कि यह पतिव्रता अरुन्धती है। जिसको यह नहीं दीखती वह छः मासके भीतर मर जाता है। ये ध्रुव महाराज हैं, इनके दर्शन करके दिन भरके पापसे मुक्त होजाता है। देखो ये सप्तर्षि पंक्ति बांधकर बैठे हैं॥९॥

रतके आरंभ और अवसानकी बातोंका संग्रह।

द्वयमप्यधिकृत्याह—

रमणके आरंभके समय एवम् अवसानके समयकी जो बातें कही हैं उनका संग्रह करते हैं कि—

तत्रैतद्भवति—

अवसानेऽपि च प्रीतिरुपचारैरुपस्कृता।
सविस्रम्भकथायोगै रतिं जनयते पराम्॥ १०॥

इस विषयमें ये श्लोक हैं कि—रतके आरंभमें आरंभके कृत्योंसे एवम् अन्तमें अन्तके कृत्योंसे संस्कृत हुई प्रीति, यह विश्वासी कथाओं एवं विश्वासी योगसे श्रेष्ठ रतिको प्रकट करती है॥ १०॥

तत्रेत्यारम्भेऽवसाने चोभयत्राप्येतद्वक्ष्यमाणकं भवति। अवसानेऽपीति। अपिशब्दादारम्भेऽपीति। प्रीतिः स्त्रियाः पुंसश्च स्नेहः। उपचारैः स्रग्गन्धादिभिः पानादिभिश्च। उपस्कृतेत्यभिवर्धिता। सविस्रम्भकथायोगैरिति। सविश्वासाभिः कथाभिः सविश्वासैश्च योगैः। रतिं विसृष्टिलक्षणां परामुत्कृष्टां जनयते। कारणस्य तथाविधत्वात्॥ १०॥

श्लोकमें अपि शब्द है अवसानके साथ, इससे अन्तके साथ आरंभ अर्थ भी आ जाता है, इसी कारण सूत्रार्थ करती बार 'आरंभमें' और 'अवसानमें' ऐसा अर्थ किया है। यद्यपि प्रीतिशब्द रतिके पर्य्यायोंमें आया है, पर यहां प्रीतिकी रति जनयित्री कहा है, इस कारण रतिसे इस प्रीतिका अर्थ भिन्न होना चाहिये। इसी बातको दिखाते हुए कहते हैं कि प्रीतिका अर्थ स्त्रीका और पुरुषका स्नेह है। माला चन्दन पान आदिक उपचार कहाते हैं। उपस्कृत, संस्कृत यानी इन उपचारोंसे बढाई हुई। जो कथा यानी बातें, विश्वास योग्य होती हैं वे विश्वासी कहाती हैं एवम् जो आलिंगनादिक योग विश्वाससे निष्पन्न या विश्वासके योग्य होते हैं वे विश्वासी कहाते हैं। स्खलित होनेके समय जो आनन्द प्राप्त होता है उसे रति कहते हैं। परका अर्थ उत्कृष्ट

होता है, जिसे कि श्रेष्ठ कहते हैं। जब रतिको प्रकट करनेवाले कारण अच्छे होंगे तो रति भी श्रेष्ठ ही होगी ॥ १० ॥

रतान्तके प्रेमालापोंपर जयदेव।

रतिके बाद प्रेमालापकी कहानी जयदेवजी लिखते हैं कि—

"त्वामप्राप्य मयि स्वयंवरपरां क्षीरोदतीरोदरे;
शङ्के सुन्दरि ! कालकूटमपिबन् मूढो मृडानीपतिः।
इत्थं पूर्वकथाभिरन्यमनसो विक्षिप्य वामाञ्चलं;
राधायाः स्तनकोरकोपरि लसन्नेत्रो हरिः पातु वः ॥"

जब तुम समुद्रमथन करनेके समय क्षीरसमुद्रके किनारे स्वयंवरण करती बार अपना पति बनानेके लिये मुझे चाहने लगीं थीं, उस समय शिवने इसी ग्लानिमें आकर तो विष नहीं पी लिया मुझे यदि आशंका होती है, इस प्रकार भगवान् पहिलेकी बातें सुनाने लगे एवम् राधाका मन उन कथाओंमें लग गया जिससे भगवान् चुपचाप उनके स्तनोंपर पड़े हुए बाँये अंचलको उठा, उनके उरोजरूपी कलियोंपर दृष्टिपात करने लगे, ऐसे श्रीभगवान् हमारी रक्षा करें ॥

विश्वासके योग।

परस्परप्रीतिकरैरात्मभावानुवर्तनैः।
क्षणात्क्रोधपरावृत्तैः क्षणात्प्रीतिविलोकितैः ॥ ११ ॥

आपसके सुख करनेवाले, अपनी हार्दिक इच्छासे किये गये जो क्षण-भरमें छोड़ दिये गये, क्षण भरमें फिर देखे गये योगोंसे युवकोंका (प्रेम बढता ही है) ॥ १० ॥

तत्र विस्रम्भयोगमधिकृत्याह—परस्परप्रीतिकरैरिति । स्त्रीपुंसयोस्तदन्ते सुखकरैः । कैरित्याह—आत्मभावानुवर्तनैरिति । आत्माभिप्रायेण यान्य-नुवर्तनान्यालिङ्गनादीनि । अनुवर्त्यन्ते एभिरिति कृत्वा । क्षणक्रोधपरावृत्तैः क्षणप्रीतिविलोकनैरिति । अन्तरा प्रणयकलहात्क्षणक्रोधेन यानि परावर्तनानि पुनः प्रसादात्क्षणं प्रीत्या यानि विलोकनानि तैः । स्नेहो विवर्धत इति प्रतिपदं योज्यम् ॥ ११ ॥

विश्वसके योगोंको बताते हैं, कि—जो स्त्री पुरुषोंको अन्तमें सुख करनेवाले हों, जो कि आलिंगनादिक अपनी २ हार्दिक इच्छासे किये गये हों। आलिंग-

नादिकोंका इस लिये अनुवर्तन कहा ह कि इनसे एक दूसरेके अपने अनुसार करते हैं बीचमें प्रणय कलहके क्षणिक क्रोधसे जो जहांके तहां छोड़ दिये गये हैं फिर मना लेनेपर प्रणय कलहके निवृत्त होते ही वेही नजारे शुरू हो गये हों उनसे (युवती युवकोंका प्रेम बढ़ता ही है) इस कोष्टकके पाठको प्रत्येक श्लोकके अन्तमें लगा देना चाहिये ॥ ११ ॥

हल्लीसकक्रीडनकैर्गायनैर्लाटरासकैः ।
रागलोलार्द्रनयनैश्चन्द्रमण्डलवीक्षणैः ॥ १२ ॥

हल्लीसक कीडावाले, लाटरासकवाले, रागसे चंचल और भीगे नयनोंको कर देनेवाले, गानो बजानोंसे एवम् चन्द्रमंडलके देखनोंसे (युवक युवतियोंका राग बढ जाता है) ॥ १२ ॥

हल्लीसकक्रीडनकैरिति । हल्लीसकक्रीडनं येषु गीतेषु । यथोक्तम्—'मण्डलेन च यत्स्त्रीणां नृत्तं हल्लीसकं तु तत् । नेता तत्र भवेदेको गोपस्त्रीणां यथा हरिः ॥ लाटरासकैरन्योन्यदेशीयैः । तेषां श्रव्यत्वाद्गीतविशेषणमेतत् । रागलोलार्द्रनयनैरिति । रागेण चञ्चलानि सबाष्पाणि च नयनानि येषु गीतकेषु । अनेन रक्तकण्ठत्वं दर्शयति । चन्द्रमण्डलवीक्षणैरिति मनोहारीति मनोहारिवस्तूपलक्षणम् । एतेऽनुवर्तनादयो विस्रम्भयोगाः । विश्वासेन प्रयुज्यमानत्वात् ॥ १२ ॥

स्त्रियोंके मण्डलके साथ नांचनेको हल्लीसक कहते हैं । इसमें आप अकेला हो जैसे कि गोपियोंके बीच भगवान् कृष्ण अकेले थे । अपने अपने देशके गानोंको जहां एक एक गाकर सुनाये उसे लाट रासक कहते हैं । लाटरासक सुना जाता है, इस कारण इसे गीतोंका विशेषण करते हैं । यही समझकर हमने लाट रासकका ऊपर लिखा अर्थ किया है । जिन गीतोंमें रागके कारण चंचल और अँसुआ भरे नयन होजायँ ऐसा तब ही होसकता है जब कि गवैयेका गला सुरीला हो । चन्द्रमण्डल सुन्दर होता है, इस कारण अपना और अन्य सुन्दर वस्तुओंका बोध करता है कि, चाँद तथा अन्य सुन्दर वस्तुओंके देखनेसे भी युवक युवतियोंका राग बढता है । ये सब विश्वास योग कहाते हैं, क्योंकि इनका प्रयोग विश्वाससे होता है ॥ १२ ॥

विश्वासकी कथाएँ ।

आद्ये संदर्शने जाते पूर्वं ये स्युर्मनोरथाः ।
पुनर्वियोगे दुःखं च तस्य सर्वस्य कीर्तनैः ॥

कीर्तनान्ते च रागेण परिष्वङ्गैः सचुम्बनैः ।
तैस्तैश्च भावैः संयुक्तो यूनो रागो विवर्धते ॥ १३ ॥

पहिली बार देखकर मनमें जो जो हिलोरें पैदा हुई थीं, भगवान्ने अपने कृपाकटाक्षसे पूरा कर दिया । कर्मोंकी हिलोरने फिर वियोग दे दिया । जगदीशने दयाकर फिर मिला दिया, उस समय वियोगको दुःख कहानी कहनेमें भी बड़ा आनन्द आता है, उसी समय फिर प्रेमके साथ चुम्बन आलिंगन करते समय अपूर्व प्रेम झलकता ह । ऊपर कही हुई बातें प्रेम बढानेवाली हैं ॥ १३ ॥

विस्रम्भकथामधिकृत्याह—आद्य इति । प्रथमे मनोरथाः कदानयानेन वा संगमोऽस्त्वित्यादयः । पुनर्वियोगे संतप्तयोर्दुःखमस्वास्थ्यम् । कीर्तनान्ते चेति पुनर्वियोगस्यावर्तनमिति दर्शयति । तैस्तैरिति अन्यैरपि विस्रम्भयोगैर्भावसंयुक्तः । यून इत्येकशेषनिर्देशात् यूनो युवत्याश्च ॥ रतारम्भावसानिकं विंशतिमं प्रकरणम् ॥ १३ ॥

प्रथम दर्शनमें इच्छा होती है, कि इसके साथ कब मिलूं । फिर वियोग होनेपर दुःखित होनेके कारण स्वस्थता नहीं रहती । वियोगके मिटजानेपर ही वियोगकी बातें हो सकती हैं, इस कारण कीर्तनके कथनसे प्रतीत होता है कि वियोगके मिट जानेपर उसकी बातें आनन्द दायक होती हैं । जुदाईके दुःखोंको प्रेमके साथ सुना, प्रेम पूर्वक आलिंगन चुम्बन करने तथा दूसरे भी प्रेमसे सने विश्वासी योगोंसे युवतिं और युवकोंका प्रेम बढता है । यह रतके आरंभ और अवसानके कृत्य पूरे हुए । यद्यपि सूत्रमें (यूनाम्) युवकोंका यही दीखता है पर व्याकरणके एक शेषके निर्देशसे यह युवतिका भी बोध करता है, इस कारण इसका अर्थ युवक और युवतियोंका, यह हो जाता है ॥ १३॥

रतविशेष प्रकरण ।

आरम्भावसानयो रतावयवत्वात्तद्ग्रहणे यथा रतं त्र्यवस्थं तथा स्वाभाविकादिरागभेदादपि विशिष्यत इत्यतो रतविशेषा उच्यन्ते—

आदि और अन्त ये दोनों रतके ही अवयव हैं, उनके कथन कर देनेपर रत विशेष भी कहते हैं । इसका कारण यह है कि, जैसे इस अधिकरणकी पहिली अध्यायमें यंत्रादिके भेदसे रतकी तीन अवस्थाएँ बताई हैं, उसी तरह स्वाभाविकादिक रागके भेदसे भी रमणके भेद होते हैं, इस बातके बतानेके लिये ' रतविशेष ' प्रकरण कहना भी आवश्यक है—

रागभेदसे रतका भेद ।

रागवदाहार्यरागं कृत्रिमरागं व्यवहितरागं पोटारतं खलरतमयन्त्रितरतमिति रतविशेषाः ॥ १४ ॥

रागवत्, आहार्य्यराग, कृत्रिमराग, व्यवहितराग, पोटारत, खलरत और अयंत्रितरत ये रतविशेष हैं ॥ १४ ॥

रागवदित्यादिना स्वाभाविक आहार्यः कृत्रिमो दर्पजो विस्रम्भजश्चेति राग-विशेषाः । तद्भेदाद्रागवदादयोऽपि रतविशेषाः ॥ १४ ॥

ऊपर जो रतविशेष बताये हैं, उन सबमें रागशब्द देखनेमें आता है, इससे पता चलता है, कि ये 'रागवद्' आदि भेद रागके कारण ही हो रहे हैं। इसके देखनेसे रागके भेदोंका पता चलता है, कि–स्वाभाविक[१], आहार्य्य[२], कृत्रिम[३], दर्पज[४] और विस्रम्भज[५] ये रागके भेद हैं। इनके भेदोंसे इन रागोंके रतोंके भी भेद होने आवश्यक हैं ॥ १४ ॥

स्वाभाविक रागवाला रत ।

एषां लक्षणमुपचारमाह—

इन रागोंवाले रमण एवम् इनमें रतको चमत्कारिक बनानेवाले उपचार बताते हैं, इनमें सबसे पहिले स्वाभाविक रागके विषयमें कहते हैं कि—

संदर्शनात्प्रभृत्युभयोरपि प्रवृद्धरागयोः प्रयत्नकृते समागमे प्रवासप्रत्यागमने वा कलहवियोगयोगे तद्रा-गवत् ॥ १५ ॥

देखनेसे लेकर मृतिसे पहिलेकी कामदशाएँ हैं । उनसे बढ़ हुए अनुराग-वाले दोनों प्रेमियोंके अनेकों प्रयत्नोंसे प्राप्त किये समागममें और विदे-शसे आनेपर एवम् प्रणयकलहके मिटे जानेके बाद फिर योग होनेपर 'रागवत्' रत होता है ॥ १५ ॥

---

१ सहज रागको स्वाभाविक राग कहते हैं, जो कि हृदयकी भावनाओंसे आप उत्पन्न हो जाय । २ उपायोंसे जो राग लाया जाय उसे आहार्य्य कहते हैं। ३ दिखावटके प्रेमको कृत्रिम राग कहते हैं । ४ युवावस्थाके मदसे जो राग हो वह दर्पज है । ५ आपसके विश्वासके कारण जो रत हो उसे विस्रम्भज कहते हैं । जिस रतमें जो राग हो उसे उसी रागका रत कहते हैं ।

संदर्शनादिति । प्रथमदर्शनात्प्रभृति चक्षुःप्रीत्याद्यवस्थावशात्प्रवृद्धरागयोर्दूतसंप्रेषणादिप्रयत्नात्कृते समागमे यद्रतम्, यच्च प्रवासात्प्रत्यागमने विरहिणोरुत्कण्ठितयोः, यच्च प्रणयकलहे प्रशान्ते प्रसन्नयो रतं तद्रागवत् । स्वाभाविकस्य रागस्यातिशयेन योगात् ॥ १९ ॥

जब कि पाहिलीवार दर्शन हुआ उसी दिनसे आपसमें एककी आखोंमें दूसरेके सजीले चित्र आ गये, उन्होंने हृदयमें पहुँचकर हृदयको पानेके लिये ललचाया । दिली इरादोंने मजबूतीके साथ स्थान पकड़ लिया, कि मिलकर ही हटेंगे । कैसे मिलें इसी चिन्तामें नींदने भी जवाब दे दिया, शरीर सूख सूखकर पिंजर हो गया, सिवा अपनी चाही हुई अलौकिक वस्तुके किसी चीजके न देखनेकी इच्छा रही, न सुननेकी । गुरुजनोंका संकोच जाता रहा, दुनियाँको भुला पागल कहला बैठे । यहांतक हुआ कि अन्तमें बेहोश हो वियोगके ज्वालामय जीवनसे मौत अच्छी समझने लगे । प्रेमकी इस दशामें किसी चतुर दूतीने टूटी हुई आशाकी बेली फिर हरी कर दी, भाग्यने जोर मार कर दोनोंको मिला दिया । अब इन दोनों सच्चे चाहनेवालोंका जो सहवास होगा वह सच्चे रागवाला होनेके कारण रागवत् रागवाला कहायेगा । जब विरही विदेशसे आकर अपनी विरहिणी प्रियासे मिलता है, उस समय उनका भी सहवास रागवत् (रागवाला) होता है । प्रणयकलहके शान्त होते ही खिली हुई तबीयतोंवाले जो दो जने मिलते हैं तो उनका रत 'रागवत्' होता है । ये रागवत्की तीन जगहें हैं, क्योंकि इनमें राग बढ़ाचढ़ हुआ रहता है ॥ १९ ॥

इसका समन्वित विचार ।

पारदारिक अधिकरणके पहिले अध्यायके पांचवें सूत्रमें कामकी दश अवस्थाओंका वर्णन किया है, उसीका अनुवाद पं० कोकने रतिरहस्यके पारदारिक प्रकरणके दूसरे और तीसरे श्लोकमें किया है । साहित्यदर्पणकारने भी २१८ वीं कारिकामें इन्हें गिनाया है, वहां कुछ भेद होनेपर २१९ वीं कारिकाकी व्याख्या करतीवार 'केचित्तु' कहकर कामशास्त्रकी कही हुई दशाओंको गिनाया गया है, इस कारण इसपर विचार करना आवश्यक समझते हैं । यद्यपि यह विचार पारदारिक अधिकरणके उक्त सूत्रमें भी किया जा सकता था पर ये दशाएँ रागके बढ़ानेमें कारण हैं । यहां रागका ही विचार चला है इसकारण इनका विचार लेना यहीं आवश्यक है । कामशास्त्रका यह क्रम है,

कि-जब किसी युवक या युवतीकी किसी युवती या युवकपर दृष्टि पड़ती है तो जब ऐसे मोकेपर जिसके हृदयमें दृश्यसे संयोगकी इच्छा होगी तो उसकी आखोंमें वह चाह प्रेमकी दृष्टि बनकर झलकने लगेगी । कामशास्त्रज्ञ तथा साहित्यिक इसीको काम कहते हैं । इस इच्छाको दर्शन ही उत्पन्न करे यह बात नहीं, किन्तु सुननेसे भी मिलनेकी इच्छा उत्पन्न होती है । साहित्यदर्पण-कारने लिखा भी है कि-

" श्रवणाद् दर्शनाद् वापि मिथः संरूढरागयोः ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स कथ्यते ॥ "

परस्परके गुणोंके सुनने अथवा आपसके देखनेसे जिनका प्रेम बढ़ गया है, उनके न मिलनेपर जो उनकी अवस्थाएँ होती हैं वे पूर्वरागका विप्रलंभ शृंगार कहलाता है । यहां हमें इसके इतने ही अंशसे प्रयोजन है कि जैसे देखकर तबीयत फड़कती है उसी तरह सुनकर भी फड़कती है, अतएव दर्शनकी तरह सुनना भी कामको पैदा करता है । रुक्मिणीजीने अपनी चिट्ठीमें स्पष्ट लिखा है, कि मैं आपके गुणोंको सुन २ कर अनुरक्त हुई । दूसरी भी बहुतसी जगहोंमें ऐसा ही देखते हैं । साहित्य द० ने दर्शनकी तरह दूती और सखियोंका सुनाना एवम् इन्द्रजाल जादूसे दीख जाना तथा चित्र और स्वप्नका दर्शन भी कामका पैदा करनेवाला माना है । ऊषाको अनिरुद्ध स्वप्नमें मिला था । फोटू देखकर दीवाने होनेवाले तो इस युगमें भी अनेक दीखते हैं । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसीकी अत्यन्त प्रशंसा सुनने एवम् प्रत्यक्ष या स्वप्नमें देखनेसे या उसके सजीले फोटूके देखनेसे या जादूसे उसके दर्शन होनेसे, उसके संयोगकी चाह पैदा होती है । इसी चाहको भाव कहते हैं । यही रसतरंगिणीमें कहा है, कि-" रसानुकूलो विकारो भावः । विकारोऽन्यथा भावः " विकार परिवर्तनका नाम है, रसके अनुकूल जो चित्तकी वृत्तिका परिवर्तित होना है उसे भाव कहते हैं । यही अगाड़ीके व्यापार प्रारंभ करता है । यही भाव जो दशाएँ बनाता है वे कामकी दशाएँ कहलाती हैं । सा० ने-अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, प्रशंसा, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण इन दश दशाओंको मानकर, कामसूत्रकी बताई हुई दशो दशाओंको-'नयनप्रीति, चित्तासङ्ग, सङ्कल्प, निद्रानाश, दुबलापन, दूसरी चीजोंसे मनकी निवृत्ति, शर्मका चला जाना, पागलपन, मूर्च्छा और मरण, इन दश दशाओंको कोई कामकी दशा बतलाते हैं' ऐसा कह डाला है । पर विचार करके देखा जाय तो इतना अन्तर नहीं कि साहित्यके विद्वान् अपने

विचारोंको इससे भिन्न समझकर दिखायें, इसी कारण यहां हम इनकी एकवाक्यता दिखाये देते हैं । विना दिलमें आये आखोंपर प्रीति आ नहीं सकती इस कारण इच्छा नयनप्रीतिमें गतार्थ हो जाती है । चित्तके आसक्त हो जानेपर ही प्यारेके पानेकी चिन्ता और उसकी याद रह २ कर आती रहती है । ये दोनों आसक्तिके कार्य्य हैं, इसकारण उसके अन्दर गतार्थ हो जाते हैं, इसी तरह गुण कथन भी आसक्तिका ही कार्य्य है । बकना आंशिक उन्माद है, जड़ता मूर्च्छाका ही दूसरा नाम है । व्याधिसे ही दुवलापन आदि आते हैं, इस कारण तनुताके ग्रहणसे व्याधिका ग्रहण हो जाता है ।

इसपर भवभूति ।

स्वाभाविकरागकी दशाओंके भोग लैनेके बाद दोनों प्रेमियोंके मिलनपर मिलानेवाली कामन्दकी किस प्रकार उनके रागका साफल्य चाह रही है, इस बातको दिखाते हैं कि—

" पुरश्चक्षूरागस्तदनु मनसोऽनन्यपरता,
तनुग्लानिर्यस्य त्वयि समभवद्यत्र च तव ।
युवा सोऽयं प्रेयानिह सुवदने मुञ्च जड़तां,
विधातुर्वैदग्ध्यं विलसतु सकामोऽस्तु मदनः ॥ "

कामन्दकी मालतीसे कहती है कि–' जिस माधवको देखकर तेरी आखोंमें प्रीति आई एवम् तुझे देख इसकी आँखें रँग गई थीं । इसके पीछे तेरा मन इसमें और इसका मन तुझमें रँग गया था । एकने एकके पानेका संकल्प कर लिया था, धीरे २ तुम नींद लेना खाना पीना सब भूल, दीवाने बन गये, एकके लिये एक मूर्च्छित भी हुआ । ए मालति ! वही तेरा प्रेमी युवा सामने खड़ा हुआ है, तू अब मूर्खता क्यों करती है । यदि तू विवाहके लिये आनाकानी न करे तो ए सुमुखि ! ब्रह्माने जो एकको दिखा एकके हृदयमें प्रेम पैदा कराया था उसका पैदा कराना सफल हो और तुम्हारा काम सकाम हो ।

इसका कार्य्य ।

तत्रात्माभिप्रायाद्यावदर्थं च प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

इस रागवत् रतमें अपने ही अभिप्रायसे रतितक प्रवृत्ति रहती है ॥ १६ ॥

यावदर्थमिति प्रवृद्धरागत्वान्न किंचिदपेक्षते । केवलं स्वाभिप्रायवशात्तयोर्यावद्रति प्रवृत्तिः ॥ १६ ॥

ऊपरके सूत्रमें बताये हुए प्रेमियोंका राग तो अपनेआप ही बढ़ा रहता है, इस कारण उन्हें दूसरी किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं रहती, वे अपनी इच्छासे अपनेआप जबतक स्खलित नहीं होते[1] सहवास करते रहते हैं ॥१६॥

आहार्य्य राग ।

मध्यस्थरागयोरारब्धं यदनुरज्यते तदाहार्यरागम् ॥१७॥

मध्यम रागवालोंने जो प्रारंभ किया एवं उपायोंसे राग उत्पन्न हो गया, जिससे वे मिल गये, इसे 'आहार्य्य राग' कहते हैं ॥ १७ ॥

मध्यस्थरागयोरिति । इच्छामात्रस्योत्पन्नत्वाच्चक्षुःप्रीतिरेव । न मनःसंप्रयोगादयोऽवस्थाः । इत्यतो मध्यस्थो रागः । तयोर्यदारब्धमारम्भकेण विधिना । अनुरज्यत इति पश्चाद्रागेण संश्लिष्यते । कारणेन कार्योपचारान्मिथुनमेव रतमित्युक्तम् । आहार्यरागम् । तत्र रागस्योत्पाद्यमानत्वात् ॥ १७ ॥

एकके लिये एकके दिलमें चाहमात्र उत्पन्न होकर आखोंमें ही मुहब्बत आई हो; कामकी आसक्ति आदिक दशाएँ नहीं हुई हो ऐसे पुरुषोंका राग मध्यस्थराग कहाता है । रतके आरंभकी विधिसे राग जगानेकी बातोंसे राग प्रदीप्त

---

१ ऐसे ही प्रेमियोंके परस्परके प्रेमानन्दको लेकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने अपने सत्यहरिश्चन्द्र नाटकमें लिखा है कि–

"टूट ठाट घर, टपकत खटिया टूट। पियकै बाँह उसिसवा सुखकै लूट ॥"

भले ही घरमें कुछ नहीं है, बरसातमें पानी भी घरमें टपकता है, लेटनेकी चारपाई भी टूटी पड़ी है, किन्तु प्यारेके साथ गलबैयाँ डालकर सो जाऊँगी तो सुखको ही लूटूँगी । यह रांग और इसका रत ही संसारके विषयमें सर्वश्रेष्ठ है, बाकी तो सब शवोंके ही संगम हैं । इसी रतके लिये किसीने कहा है कि–

**" यावद्द्वैतं बहिर्दृष्टिर्यावच्चेन्द्रियलोलता ।
यावन्नास्तमिता चित्तवृत्तिस्तावन्न सौरतम् ॥"**

जबतक इस प्रकारका सुरत नहीं मिलता तबतक ही बाहिरकी दृष्टिका द्वैत है यानी उतने ही समय तक बाहिरकी दृष्टि है । इन्द्रियोंकी लोलुपता है, तब ही तक चित्तकी वृत्तियाँ शान्त नहीं हैं । सौरत होनेपर ये बातें नहीं रहेंगी । उर्दूके कविने भी कहा है–

**"मिला गलेसे सनम वो आकर कलेजा तर इन्तजारका है ।
न अब तो खटका है नेक बद का नया समा गुल उजारका है ॥"**

२ यह मध्यमकोटिका रत है, क्योंकि इसमें प्रेम[2] आया तो सही पर स्वतः फूलने फलने नहीं पाया । जो भी कुछ अगाड़ी किया जाता है वह सब प्रयत्नसे किया जाता है, इसमें वह सुख नहीं है जो सहजमें है एवम् न वह तृप्ति ही है ।

करके फिर मिले इसे मध्यस्थ राग कहते हैं । यद्यपि राग मध्यस्थ है यह रत मध्यस्थ यानी लाये हुए रागसे प्रारंभ हुआ है । इसका कारण लाया गया मध्यस्थ राग है एवं रत कार्य्य है किन्तु कार्य्यमें कारणका आरोप करके रतको भी 'आहार्य्यराग' कहते हैं । इस रतमें जो राग उत्पन्न होता है, वही राग रतको पूरा करता है ॥ १७ ॥

इनमें रागके प्रवृत्त करनेका ढंग ।

तत्र चातुःषष्टिकैर्योगैः सात्म्यानुविद्धैः संधुक्ष्य संधुक्ष्य रागं प्रवर्तेत ॥ १८ ॥

ऐसे स्थलोंमें पांचालिकी चतुःषष्टिके आलिङ्गन आदिक उन योगोंसे, जो कि प्रकृति तथा देशके अनुकूल पड़ें, रागको चेता चेताकर रतको प्रवृत्त करे ॥१८

चातुःषष्टिकैरिति आलिङ्गनादिभिर्योगैः । सात्म्यानुविद्धैर्यस्य यैः सात्म्यं तदुक्तैः । रागमिच्छामात्रमात्मनः स्त्रियाश्च संदीप्य प्रवर्तेत ॥ १८ ॥

आलिंगनादिकोंके पहिले पांचालिकी चतुःषष्टिको बता चुके हैं, इनमेंसे जो अपने तथा सामनेवाले दोनोंके अनुकूल पड़ें उनके प्रयोगोंसे अपनी और नायिकाकी इच्छाको प्रदीप्त करके रमण करनेमें प्रवृत्त हो ॥ १८ ॥

कृत्रिमरागवाला रत ।

तत्कार्यहेतोरन्यत्र सक्तयोर्वा कृत्रिमरागम् ॥ १९ ॥

स्त्री कहीं आसक्त हो और पुरुष कहीं आसक्त हो एवं इन दोनोंका किसी कार्य्यके लिये रमण हो, तो इसे 'कृत्रिमराग' कहते हैं, क्योंकि दोनोंमेंसे किसीके दिलमें स्वाभाविक राग नहीं है ॥ १९ ॥

कार्यहेतोरिति । अर्थादनर्थप्रतीकाराद्वा । न रागात् । अन्यत्र सक्तयोर्वेति । अन्यस्मिन्पुंसि स्त्रीसक्ता पुमानप्यन्यस्यां स्त्रियाम् । तयोर्यदनुरोधाद्रतं कृत्रिमरागम् । उभयत्रापि स्वाभाविकरागस्यानुत्पत्तेः ॥ १९ ॥

ऐसे सहवासके कारण दो ही हो सकते हैं—या तो धन या अनिष्टका निवारण, राग नहीं हो सकता । स्त्री किसी दूसरे पुरुषको चाहती हो एवम् पुरुषकी चाह किसी दूसरी ही स्त्रीकी हो, इन दोनोंका जो कार्य्यके अनुरोधसे रमण करना है वह कृत्रिम राग कहलाता है, क्योंकि इसमें बनावटी प्रेम है वास्तविक नहीं है ॥ १९ ॥

इसमें राग पैदा करना।

तत्र समुच्चयेन योगाञ्शास्त्रतः पश्येत ॥ २० ॥

कृत्रिमादि रागवाले रमणमें शास्त्रको रीतिके अनुसार सभी योगोंका प्रयोग करे ॥ २० ॥

समुच्चयेनेति न विकल्पेन । द्वयोर्योगयोरन्यतरयोगे स्वाभाविकरागस्यानुत्पत्तेः । तस्मात्समुच्चयेन सर्वानेवालिङ्गनादिप्रयोगान्प्रयोगकाले पश्येत् । तत्रापि शास्त्रतः । तदुक्तस्थानकालस्वभावानपेक्षयेत्यर्थः ॥ २० ॥

एक ही बातके दो योगोंमें एकके योगसे स्वाभाविक राग तो उत्पन्न हो नहीं सकता, इस कारण अपने २ प्रयोगके समय आलिङ्गन आदिक सभी योगोंका प्रयोग करना चाहिये । यह बात न होनी चाहिये कि इनका विकल्पसे प्रयोग किया जाय, इसमें भी उनके कहे स्थान, काल और स्वभावकी अपेक्षा न करे (न जाने कौनसा हृदयग्राही बनकर राग पैदा करने लग जाय) ॥ २० ॥

कृत्रिममें व्यवहित ।

अन्यत्र सक्तयोरित्यस्य विशेषमाह—

दूसरी जगह अनुरक्त हुए स्त्री पुरुषोंके विषयमें राग चेतानेकी विशेष विधि कहते हैं कि—

पुरुषस्तु हृदयप्रियामन्यां मनसि निधाय व्यवहरेत् । संप्रयोगात्प्रभृति रतिं यावत् । अतस्तद्व्यवहितरागम् २१॥

पुरुष तो अपने मनकी प्यारी दूसरीको अपने मनमें रखकर आरंभसे लेकर स्खलित होनेतक सहवासके सभी व्यवहार करे एवम् स्त्री दूसरे प्राणप्यारेको मनमें रखकर व्यवहार करे तो यह रत 'व्यवहितराग' होगा ॥ २१ ॥

पुरुष इति । योऽन्यप्रसक्तोऽप्यभावितसंतानस्तस्यापरस्यामपि राग उत्पद्यत एव अस्वाभाविकत्वात्कृत्रिममुच्यते । यस्तु संभावितसंतानः सोऽन्यस्यां न रमते । रागाभावात् । यदा तु तामेव हृदयप्रियामिष्टां मनसाभिध्याय चेतसि रागमुत्पाद्य संप्रयोगात्प्रभृति रतिं यावद्व्यवहरेत्प्रवर्तेत तदा तद्व्यवहितरागमित्युच्यते । हृदयप्रियया रागस्य व्यवहितत्वात् । एवं योषिदपि हृदयप्रियं निधायेति योज्यम् । अत्र समुच्चयेन योगानित्ययमेवोपचारः ॥ २१ ॥

जो कि किसी पर आसक्त (आशिक) भी है पर उसमें उसकी लौ लगी हुई नहीं है तो उसका राग दूसरीमें भी हो सकता है, पर वह स्वाभाविक न होनेके कारण कृत्रिम कहायेगा। किन्तु जिसकी लौ अपनी प्रियामें लगी हुई है वह दूसरीमें रमण नहीं कर सकता, क्योंकि उसे किसीमें राग नहीं होगा। यदि ऐसा हो कि उसी चाही हुई दिलकी प्यारीको याद करके हृदयमें राग उत्पन्न करके, समागमसे लेकर स्खलित होनेतक व्यवहार करे तो इसे 'व्यवहित राग' कहते हैं, क्योंकि रागमें उसी हृदयकी प्यारीका व्यवधान है। इसी प्रकार स्त्री भी किसी हृदयके प्यारेको लेकर, उसकी यादमें उसीकी भावनासे ओतप्रोत होकर स्खलित होनेतक व्यवहार करे। इसमें व्यवहितराग है इस कारण इस रमणको भी 'व्यवहित-राग' कहते हैं। इसमें कुछ सुगमता रहती है इससे बीसवें सूत्रके बताये हुए मिश्रढ़ंगसे प्रयोग करे यही इसका उपचार है ॥ २१ ॥

ये तीनों बराबरवालोंके हैं।

स्वाभाविकाहार्यकृत्रिमरागभेदात्त्रयो नायका नायिकाश्च । तत्र सदृशसंयोगे त्रीणि शुद्धानि । विपर्यये षट् संकीर्णानि । तत्र संकीर्णानेवोपचारान्योजयेत् । एतत्सर्वं समानप्रतिपत्त्योः स्त्रीपुंसयोः ।

नायक और नायिकाओंमेंसे किन्हींके दिलमें एक दूसरेके लिये स्वाभाविक राग एवम् किन्हींके दिलोंमें एक दूसरेकी इच्छामात्र एवम् किन्हींके दिलोंमें नकली प्रेम है, इन प्रेमोंको लेकर वे तीन भागोंमें बाँटे जा सकते हैं। यदि दोनोंके ही दिलोंमें एकसा ही प्रेम हो तो इन तीनों प्रेमोंवालोंके बराबरके तीन शुद्धरत होते हैं। विना बराबरकी जोटमें छः संकीर्णरत होते हैं। जहां संकीर्णरत हों वहां उपचारोंका प्रयोग करना चाहिये; पर ये सब समान ढ़ंगके स्त्रीपुरुषोंके विषयकी बातें हैं ॥

दर्पजरागका पोटारत।

हीनाधिकयोर्दर्पजाद्विशेषमाह—

नीच कोटिके और उच्च कोटिके स्त्री पुरुषोंमें मदके कारण सहवास होता है इस कारण इसमें कुछ विशेष कहते हैं, कि—

न्यूनायां कुम्भदास्यां परिचारिकायां वा यावदर्थं संप्रयोगस्तत्पोटारतम् ॥ २२ ॥

छोटे दर्जेकी कुम्भदासी अथवा नीचे दर्जेकी सेविकाके साथ जो स्खलित होने तकका सहवास है उसे 'पोटारत' कहते हैं ॥ २२ ॥

न्यूनायां तु कुम्भदास्यामिति । अधमायां कुम्भदास्यां परिचारिकायां वा न्यूनायां न समायां चन्द्रापीडस्येव पत्रलेखायाम् । यावदर्थं यावद्रति । पोटारतमिति । उभयव्यञ्जना पोटा नपुंसकम् ॥ २२ ॥

हलके दर्जेकी कुम्भदासी (थोड़ेसे पैसे लेकर किसीके भी साथ मिल लैनेवाली) अथवा ऐसी दासीके साथ जो न तो बराबरकी हो एवं कम ही हो जैसे कि कादम्बरीके नायक चन्द्रापीडका पत्रलेखाके साथ सहवास था। जबतक अर्थ है तबतकका रत 'पोटारत' कहा जाता है । स्त्री और पुरुष दोनोंके चिह्नोंवालीको पोटा कहते हैं जिसका कि दूसरा नाम नपुंसक है । ऐसा रत एक प्रकारका क्लीव रत ही है ॥ २२ ॥

इसमें उपचार नहीं ।

तत्रोपचारान्नाद्रियेत ॥ २३ ॥

इस विषयमें उपचारोंका आदर न करे ॥ २३ ॥

तस्यामुपचारान्नालिङ्गनादीनाद्रियेत । अरञ्जनीयत्वात् । केवलं दर्पादुत्पन्नो रागोऽपनेयः ॥ २३ ॥

अधम कुम्भदासीमें अथवा अधम दासीमें आलिंगन आदिकोंकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहां तो मतलबसे मतलब है । किसीको राजी थोड़े ही करना है । केवल जवानीके मदसे उत्पन्न हुआ रागही दूर किया जा सकता है ॥ २३ ॥

कुंभदासियोंमें रत कहाँ ।

यह उनका नाम है जो दूकानोंपर बैठी रहती हैं, आते जाते राहगीरोंको देखती रहती हैं ऐसी वस्तुओंको खाये या लगाये रहती हैं जो कि पुरुष शीघ्रसे शीघ्र स्खलित हो जाय। इनका रातिका व मिलनेका शुल्क भी अधिक नहीं होता । इनमें बाजी २ तो इतनी बुरी रहती हैं, कि संपर्कमात्रसे ही पुरुष सड़ जाता ह । बड़े बड़े शहरोंमें इनकी संख्या बहुतायतसे होती है । कहीं कहीं तो हमने यहांतक सुना है, कि एकवारकी फीस वहुत ही कम है । कभी कभी दैवयोगसे ऐसी ऐसी पुतलियाँ भी इनमें देखनेको मिलेंगी कि अस्थिचर्ममात्रावशेष पौडरकी चमकको चमकाती हुई राहगीरोंकी राहें देख रही हैं । इनके गन्देबाजार अधिकतर अहले इसलामके वन्दोंसे ही आवाद रहते हैं । यह पोटारत ही है । वास्तविक रत कहां ? यही कारण

है, कि इस सृष्टिके लिये साहित्यवालोंने कह दिया है कि–" रतमस्यां सुदुर्लभम् " इनमें रत कठिन ही नहीं, किन्तु सुतराम् दुर्लभ है । क्योंकि यहां रमणका भाव नहीं, रुजिगारका भाव ह। प्रेमी नहीं किन्तु वेवकूफ गाहक है । इतनेपर भी दीवानोंको वुद्धि नहीं। भगवान् न जाने देशको कब सुवुद्धि देगा–कि इनके वाजारोंका अस्तित्व ही मिटा दे ॥

खलरत।

तथा वेश्याया ग्रामीणेन सह यावदर्थं खलरतम् ॥ २४ ॥

उसी तरह वेश्याका ग्रामीणके साथ जवतक मतलव है तवतक रमण करना ' खलरत ' ह ॥ २४ ॥

तथेति यथा नायकस्यासादृश्यसंप्रयोगः । वेश्याया इति गणिकाया रूपाजीवायाः । न कुम्भदास्याः । अभिप्रेतमलभमानाया दर्पाद्ग्रामीणेन कर्षकादिना संप्रयोगः खलरतम् । खलत्वेन विगोपनकरत्वात् ॥ २४ ॥

जैसे कि नायकका असमान नायिकाके साथ सहवास कहा है, उसी तरह कलानिपुरण वेश्या, गणिका और रूपाजीवाका नागरके न मिलनेपर कामके मदमें आकर गमंहीं किसान आदिके साथ जवतक स्खलित न हो तवतक रमण करना ' खलरत ' है, क्योंकि ऐसीका ऐसे नीचसे मिलना खराव काम है, इस कारण इस वे छिपाया करती हैं; यह छिपानेके ही योग्य है ॥२४॥

ग्रामीण, ग्वालिनि और भिलनी।

ग्रामव्रजप्रत्यन्तयोषिद्भिश्च नागरकस्य ॥ २५ ॥

ग्रामीण, ग्वालिन और भिलनी आदिके साथ कामविद्याके निष्णात पुरुषका सहवास करना भी ' खलरत ' है ॥ २५ ॥

---

१ यह कामसूत्रका कथन अधिकांशको लेकर है गामोंमें सब ऐसे ही होते हैं, इस बातको कभी स्वीकार नहीं किया जा सकता, न साहित्यसंसार ही ऐसा मानता है। एक स्थलमें साहित्यके ग्रन्थोंमें लिखा है कि–

" ग्रामतरुणं तरुण्या नववञ्जुलमञ्जरीसनाथकरम् ।
पश्यन्त्या भवति मुहुर्नितरां मलिना मुखच्छाया ॥"

जिसके सौन्दर्य्य तथा कामकलाकोविदपनेपर गामभरकी युवतियाँ दीवानी हो रही थीं वही युवक, किसी तरुणीकी संकेतितकुंजपर पहुँच गया पर तरुणी न पहुँच सकी, उसने पहुँचनेकी निशानी मंजरी दिखा दी जिसे देखकर हाय ! मैं न पहुँच सकी, इस अपशोचमें युवतीका मुख सूख गया। गामोंमें भी ऐसे तरुण निकल आते हैं।

तथा ग्रामादियोषिद्भिर्नागरकस्य पत्तनवासिनो दर्पाद्यावदर्थं संप्रयोगः खलरतम् । न पोटारतम् । विगोपनस्यापि तत्र संभवात् । तत्र ग्रामयोषितः कर्षकादिस्त्रियः । व्रजयोषितो गोप्यः । प्रत्यन्तयोषितः शबर्यादयः ॥ २९ ॥

गमहींगामकी स्त्रियाँ किसानोंकी स्त्रिया होनेके कारण रतविलासमें दक्ष नहीं होतीं, यही हाल ग्वालिनोंका होता है । भिलनी वनचरी आदिकोंमें भी यही बात है । इन स्त्रियोंके साथ कामकलाकोविदका कामके मदमें आकर विना किसी बराबरकी सुन्दरीके मिले पूण सहवास कर लेना 'खलरत' है। इसे पोटारत तो यों नहीं कहा जा सकता कि पोटारतको तो छिपाया नहीं जाता पर इसे छिपाया जाता है, इस कारण इसे ' खलरत ' कहते हैं ॥ २९ ॥

सभी एकसी नहीं ।

यह बात साहित्यमें भी स्थान पा रही है कि ग्रामीण स्त्रियाँ रतिविलासमें दक्ष नहीं हुआ करतीं, यही कारण है कि साहित्यके ग्रन्थोंमें ऐसा ही उदाहरण दिया है कि–

" पथिक ! नात्र स्रस्तरमस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले ग्रामे ।
उन्नतपयोधरं प्रेक्ष्य यदि वससि तद्वस ॥ "

कोई ग्रामीण स्त्री किसी राहगीरसे खुले तौरपर तो यह कह रही है, कि–ए राहगीर ! पथरीले इस गाममें बिछोना तो चटाईका मिलना भी कठिन है, पर मँढरातीं हुई घटाओंको देखकर यदि इस ग्राममें रहना हो तो रह भी सकते हो । इसका गूढ आशय तो यह होता है कि–यह गामड़ा मूर्खोंके रहनेका स्थान है इसमें कामशास्त्रका प्रचार तो अणुमात्र भी नहीं है, इस कारण यहां मेरे इस इशारेको कोई भी न समझ सकेगा, इस कारण मेरे उभरे और उठे हुए सीने तथा मँढरातीं हुई घटाओंको देखकर, यदि उपभोग करनेमें समर्थ हो तो रुक जा । यह औरत गामकी बुराई करती हुई अपनी चतुरता दिखा रही है । इससे यह प्रतीत होता है कि गामोंमें वाजी २ स्त्रियाँ तथा वाजे २

---

१ भले ही ये रतविलासमें चतुर न हों, किन्तु इनके चारित्र्य और स्वास्थ्य दोनों ही शहरकी स्त्रियोंसे हजार दर्जे अच्छे होते हैं । यद्यपि आज कलिराज अपनी जीतके डङ्केका घनघोर सब ओर कर रहे हैं, सर्वत्र वर्णसंकरताकी छटा छा रही है पर तो भी पुराने ढंगकी वस्तियोंमें अब भी भारतके प्राचीन आचारकी छटा थोड़ी वहुत देखनेको मिल ही जाती है । पाश्चात्य फैसन और चरित्रके रंगरँगीले युवकोंके परिवारोंसे भारतके पुराने ढंगके परिवार प्रायः उत्तम ही रहेंगे; अधम न होंगे ।

पुरुष बड़े ही चण्डूल रहते हैं । किसी ग्रामीण स्त्रीने किसी नागरीको उत्तर दिया कि-

" ग्रामीणाऽस्मि ग्रामे वसामि, नगरस्थितिं न जानामि ।

नागरिकाणां पतीन् हरामिं या भवामि सा भवामि ॥ "

वेशक मैं गँमहीगामकी रहनेवाली हूं और स्वयम् भी ऐसी हीं हूं, मुझे नगरकी स्थितिका पता भी नहीं है, कि वहाँकी स्त्रियाँ कैसे रहतीं हैं । पर मैं जो नागरी हैं, कामकलामें परमचतुर हैं, उनके पतियोंको अपनी चतुरतासे हर लूंगी और जो रहूँ सो रहूं । इससे यह सिद्ध होता है कि गामोंमें भी स्त्रियाँ वड़ी कामकलाकुशल रहती हैं पर बाजी २ ही ऐसी होती हैं सब नहीं होतीं । यही बात भीलिनियोंके विषयमें भी है ! किसी भील युवाने किसी भीलकुमारीसे प्रार्थना की थी, कि-" दीनस्त्वामनुनाथते कुचयुगं पत्रावृतं मा कृथाः " युवकपुलिंदके करस्पर्श योग इन स्तनोंको अब पत्तेसे न ढक, यह प्रार्थना यह दीन कर रहा है । विहारीदासजी तो किसी ग्रामीण रँगभरीको देखकर यह कहने लग गये हैं, कि-

" गहराने तन गोरटी, ऐपन आड लिलार ।

हूडयो दे अठलाय दृग, करै गँवारि सुमार ॥ "

युवावस्थाकी रँगरेलियोंमें सुख मानकर कुछ मुटाईपर आई हुई गोरे शरीरकी गामड़ेकी स्त्री माँथेमें ऐंपनकी आड़ लगाये मेरी ओर आँखें मटकाकर मेरे कुहनी मारकर मुझे मारे ही डालती है ।

विस्रम्भरागका रत ।

विस्रम्भरागाद्विशेषमाह—

जिनमें आपसमें विश्वास हो गया है, उनके रागसे जो रतमें विशेष चमत्कार होता है उसे बताते हैं, कि—

उत्पन्नविस्रम्भयोश्च परस्परानुकूल्यादयान्त्रितरतम् । इति रतानि ॥ २६ ॥

जिनमें कि विश्वास उत्पन्न हो गया है आपसकी अनुकूलतासे उसका ' अयंत्रितरत ' होता है । ये रतविशेष पूरे हुए ॥ २६ ॥

उत्पन्नविस्रम्भयोश्चेति । चिरकालसंप्रयोगाज्जातविश्वासयोः । परस्परानुकूल्यादिति । आनुकूल्येन पुमानारभेत तदानुकूल्येन च स्त्री । अयन्त्रितरतं

यन्त्रणाभावात् । तच्च चित्ररतं पुरुषायितादिभेदादनेकविधमिति बहुवचनेन दर्शयति—रतानीति ॥ इति रतविशेषा एकविंशं प्रकरणम् ॥ २६ ॥

जिन्हें कि बहुत समयसे मिलते मिलते आपसमें विश्वास पैदा हो गया है, उन रँगे रँगाये व्यक्तियोंका रमण इस प्रकार होता है, कि पुरुष जिस कामको करता है उसके अनुकूल स्त्री करती है एवम् जो स्त्री करना चाहे उसके अनुकूल पुरुष करे तो उनमें कोई नियम तो है ही नहीं, इस कारण 'अनियंत्रित' होता है। इसका दूसरा नाम चित्ररत है, यह 'पुरुषायित' आदिक भेदसे अनेक प्रकारका है। इसी बातको 'ये रत हैं' इस बहुवचनसे बता रहे हैं। यह रतविशेषका इक्कीसवां प्रकरण पूरा हुआ ॥ २६ ॥

प्रणयकलह प्रकरण ।

प्रणयकलहं वक्ष्यामः—यथा जातविस्रम्भयोरयन्त्रितरतं तथा प्रणयात्कलहोऽपीति प्रणयकलह उच्यते ।

अब हम रतविशेषोंको कहकर प्रणयकलहोंको कह देना चाहते हैं। इसे कहते क्यों हैं एवम् यह किनमें होता है इसका उत्तर देते हैं कि, जिनमें विश्वास पैदा हो गया है उन प्रेमी स्त्री पुरुषोंमें जिस प्रकार अनियंत्रित रत होता है, उसी तरह प्रणय कलह भी होता है, इस कारण अब इसे कहे देते हैं।

कलहके कारण ।

तत्र कलहकारणमाह—

इस प्रणयकलहमें सबसे पाहिले इस बातपर विचार करते हैं कि प्रेमकी लड़ाईके कारण कौन होते हैं, कि—

वर्धमानप्रणया तु नायिका सपत्नीनामग्रहणं तदाश्रयमालापं वा गोत्रस्खलितं वा न मर्षयेत् । नायकव्यलीकं च ॥ २७ ॥

जिसका प्रेम बढ़ा हुआ है ऐसी प्रेयसी हो तो सौतोंका नाम लेना, उनकी बातें करना एवम् उसके नामसे अपना बुलाना एवं दूसरे विरुद्धाचरणोंको न सहे ॥ २७ ॥

---

१ स्वाभाविक रतमें तो विश्वास रहता है। पीछे थोड़े ही समयमें उपमर्दोंके विषयमें भी विश्वास हो जाता है पर आहार्य्य और कृत्रिमरतोंमें भी व्यवहार होते २ परस्परमें विश्वास पैदा हो जाता है तो थोड़ा सहजका रंग आ जाता है।

वर्धमानप्रणया त्विति । यथा यथा विश्वासो वर्धते तथा तथा मृदुमध्याधिमात्रेण न मर्षयेदित्यर्थः । प्रायशश्च नायको विप्रियकारी । तन्मूलश्च कलह इति दर्शयन्नाह—नायिकेति । नायकस्य विप्रियकरणं वाचा क्रियया वा । तत्र वाचा सपत्नीनामग्रहणम् । तदाश्रयमिति । अगृहीत्वैव नाम सपत्नीसंबद्धं गुणसूचकमालापम् । गोत्रस्खलितं तन्नाम्ना नायिकाह्वानम् । नायकव्यलीकमिति । सपत्न्या गृहगमनं ताम्बूलादिप्रेषणं संयोगादिकं नायकस्यापराधं न मर्षयेत् । क्रियया विप्रियकरणमेतत् ॥ २७ ॥

यह बात न हो कि एकदम ही बिगड़ बैठें, जैसे जैसे विश्वास बढ़े उसीके अनुसार साधारण, मध्यम तथा बिलकुल न सहे । प्रायः नायक ही विप्रिय किया करता है, इसी कारण कलह हुआ करता है। इसी बातको दिखाते हुए कहते हैं, कि–नायिका नायककी इन बातोंको न सहे । प्यारा वाणी वा क्रिया दोओंसे विप्रिय करता है । वह अपने मुँहसे सौतका नाम ले अथवा यह करे कि विना उसका नाम कहे ही उसकी प्रशंसा करनेवाली वाक्यावली चले, अथवा प्राणप्रिय सौतके नामसे उसे बुलाये या सौतका[1] नाम ले ये वाणीके अपराध हैं । क्रियारूपसे ये अपराध हैं, कि सौतोंके घर[2] जाना,

---

१ अमरु–" एकस्मिन् शयने विपक्षरमणीनामग्रहे मुग्धया
सद्यः कोपपराङ्मुखं शयितया चाटूनि कुर्वन्नपि ।
आवेगादवधीरितः प्रियतमस्तूष्णीं स्थितस्तत्क्षणात्,
माभूत्सुप्त इवैष मन्दवलित-ग्रीवं पुनर्वीक्षितः ॥"

पति एक ही पलिंगपर साथ सो रहा था उसने वहां सौतका नाम ले दिया, इस कारण प्यारी कुपित होकर उसकी ओरसे मुख फेर कर सो गई । पतिदेवने बड़ी २ खुसामदें की पर उस मानव्रतीने एक भी न सुनीं । इससे प्यारा घवराहटके मारे चुप हो गया, प्यारीने सोचा कि कहीं सो न जाय, इस कारण कुछ गर्दन उठाकर फिर देखने लगी । इसमें सौतके नामपर नाराजी दिखाई है ।

२ प्रलय कलह उत्तम दम्पातियोंमें ही हुआ करता है, भक्तोंके भावुकता भरे हृदय तो इसे श्री भगवान् और लक्ष्मीजीके व्यवहारोंमें भी देख लेते हैं, दूसरे दम्पतियोंकी तो फिर गणना ही क्या है। लक्ष्मीजी श्रीभगवान्से कहती हैं कि–

" शय्यागृहे मां निशि वञ्चयित्वा, स्थितो भवान् कुत्रचिदाप्रभातम् ।
त्यक्त्वा सदा त्वत्पदसक्तचित्तां युक्तं तवैतद् वद देवदेव ॥ "

शयनघरमें रातको आपके चरणोंपर आसक्त रहनेवाली मुझे भुलावा देकर, प्रातःकालतक कहाँ रहे, हे देवदेव ! यह तो बताइये कि यह बात आपकी कहाँतक उचित है ।

वहां पान आदि भेजना, उससे मिलना तथा और भी ऐसे ही कामोंको करना है । इन्हें प्यारी नायिकाको कभी न सहना चाहिये ॥ २७ ॥

क्रोधके काम ।

अमर्षेण वानुष्ठानादित्याह—

प्रेमके क्रोधमें स्त्रीको जो काम करने चाहियें, उन्हें बतात हैं कि—

तत्र सुभृशः कलहो रुदितमायासः शिरोरुहाणामवक्षोदनं प्रहणनमासनाच्छयनाद्वा मह्यां पतनं माल्यभूषणावमोक्षो भूमौ शय्या च ॥ २८ ॥

बड़े जोरकी बातोंकी लड़ाई, रोना, दर्द, कंप, बालोंका बखेरना, बदन ठोकना, आसनसे वा शयनसे जमीनपर पड़ जाना, माला उतार फेंकना, जेवर फेंक देना और जमीनपर सोना ये कलहके कार्य्य हैं ॥ २८ ॥

तत्रेति सपत्नीनामग्रहणादिषु । अनुष्ठानं वाचा क्रियया च । तत्र वाचा कलहः सुभृशोऽतीव महान् पुनर्मैवं कार्षीरिति । क्रियया रुदितादि । आयासः शरीरवेदनाकम्पादिकः । अवक्षोदनं विधूननम् । प्रहणनमात्मनः । अन्ये नायकस्य शिरोरुहावलम्बनं प्रहणनं चेत्याहुः । मह्यामिति । यतः पतिताया न दुःखोत्पत्तिः । माल्यभूषणयोरपिनद्धयोर्मोक्षणं त्यागः । भूमौ शय्या । न तेन सह शयनम् ॥ २८ ॥

प्यारेके सौतोंके नाम लन आदिके अपराधोंपर असहनस दो तरहकी लड़ाई की जाती है। एक तो वाणीसे, दूसरी कामोंसे। अब ऐसा मत करना नहा ता हां, ऐसी बातें करना वाणीका कलह कहा जाता है। रोना आदि क्रिया कलह है । शरीरका दर्द और कंप आदिको आयास कहते हैं। अवक्षोदन कँपाने या बखेरनेको कहते हैं । कोई अपने शरीरमें मारनेकी जगह नायकके बालोंको पकड़कर मारना कहते हैं । खाट या चौकी आदिसे जमीनपर पड़नेम दुःख नहीं होता । जो माला पहिन रखी हो एव जो आभूषण धारण कर रखे हा उनका त्याग करे, यह न होना चाहिये कि पेटीसे निकालकर बाहिर फेंकने लग जाय । जमीनपर लेटने लग जाय, भूमिपर शयन करे, नायकके साथ न सोये ॥ २८ ॥

इनपर साहित्य ।

परकीयाके रतिचिह्न दर्शन एवम् स्वकीयाके क्रोधके कार्य्योंपर जयदेवजीने भी कामसूत्रके पदार्थको एक अच्छे ढंगसे लेकर रखा है । यह गीतगोविन्दके

अष्टम सर्गमें मिलता है। इसमें—"हारि हारि याहि माधव याहि मा वद कैतववादम्" हे हरे! आप वहीं पधारें, ए माधव! तेरी वही जगह है, मुझसे बनावटी बातें न कर। यहांसे लेकर "श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चित-खण्डितयुवतिविलापम्" यहां तक दूसरीके साथकी रंगरेलियाँ बताई है तथा—"किमिति विषीदसि रोदिषि विकला" हे राधे! तुम व्याकुल होकर क्यों रोती हो? इत्यादि वाक्योंसे राधाकी मानदशा कहते हुए "माधवे मा कुरु मानिनि मानमये" ऐ मानिनि! माधवके प्रति तू मान न कर, यह कह डाला है। दशम सर्गमें भगवान् कृष्णने भी उसे फिर शृंगार करनेके लिये कहा है। इस तरह क्रोधके जितने कार्य्य बताये हैं उनकी प्रतिध्वनि काव्यों और नाटकोंमें पूर्णरूपसे देखी जाती है। मेरा तो यह ध्यान है कि वात्स्याय-नने मानवस्वभावका अनूठा चित्र खींचा है, जिससे विश्वके कवियोंने मनुष्योंके प्राकृतिक ढंगोंका परिचय पाकर साहित्यके क्षेत्रमें लाना शुरू कर दिया है। यह न होता तो कवियोंको रखा रखाया इतना खजाना मिलना असंभव था॥

अपराधी प्यारेके कार्य्य।

स नायकोऽपि सापराधत्वात्किं प्रतिपद्येतेत्याह—

जिस नायकने इस प्रकार प्यारीका अपराध किया है उसे क्या करना चाहिये इसके लिये सूत्र करते हैं, कि—

तत्र युक्तरूपेण साम्ना पादपतनेन वा प्रसन्नमनास्ताम-नुनयन्नुपक्रम्य शयनमारोहयेत् ॥ २९ ॥

प्यारीके ऐसा करनेपर उस समय जैसे प्रिय वाक्योंकी आवश्यकता हो उन्हींसे, अथवा चरणोंपर गिरकर, प्रसन्नताके साथ उसे मना उठाकर पलिंग-पर सुला दे ॥ २९ ॥

तत्रेति तस्मिन्ननुष्ठाने। साम्नेति प्रियवचनेन। तस्य युक्तरूपता अपराधवि-शेषात्। पादपतनं नायकविशेषात्। प्रसन्नमना इति अप्रदर्शितविकारः। मा भूत्क्षते क्षार इति। तामिति भूमौ सुप्ताम्। अनुनयन् प्रसादयन्। उपक्रम्यो-त्थापयितुम्। शयनमारोहयेत् प्रसीदोत्तिष्ठ शयनमध्यास्यतामिति ॥ २९ ॥

प्यारीके इस प्रकार मचल जानेपर अपना जितना कुसूर हो उसीके अनु-सार अनुनयके वचनोंसे उसे शान्त करके, यदि चरणोंमें पड़नेका अपराध हो तो चरणोंमें गिरकर उसे मनाय। इस समय नायकका चित्त प्रसन्न रहना

चाहिये, उसे क्रोध आदि न आने देना चाहिये, जिससे कि कटेपर और नमक न छिड़क जाय। भूमिमें पड़ी हुई प्यारीको मनाकर पलिंगपर सुलानेका प्रयत्न करे कि 'राजी हो उठ पलिंगपर सो जा' ॥ २९ ॥

तस्य च वचनमुत्तरेण योजयन्ती विवृद्धक्रोधा सकचग्रहमस्यास्यमुन्नमय्य पादेन बाहौ शिरसि वक्षसि पृष्ठे वा सकृद्द्विस्त्रिरवहन्यात् । द्वारदेशं गच्छेत् । तत्रोपविश्याश्रुकरणमिति ॥ ३० ॥

प्यारेके वचनोंको उत्तरके साथ जोड़ती हुई बढ़े हुए क्रोधवाली बालोंको पकड़कर, उसका मुख ऊपरको उठा, पैरसे-हाथोंमें, शिरसें, छातीमें या पीठपर एक दो या तीनबार मार दे। पीछे द्वारपर चली आये वहां बैठकर आखोंसे आंसुओंको छोड़े ॥ ३० ॥

तस्य चेत्यनुनयतः । वचनमुत्तरेण योजयन्ती तत्कालोचितेन । विवृद्धक्रोधा पुनः पुनरपराधस्मरणात् । सकचग्रहमस्यास्यं मुखमुन्नमय्य । किमुद्धाव्यं नेति ज्ञातुं सकृदवहत्य । द्विस्त्रिरिति क्रोधवशात् । तदानीं शिरसि पादताडनमपि न दोषाय । सौभाग्यचिह्नं तदिति नागरकवृद्धाः । तत्र चेति द्वारदेशे । अश्रुकरणमश्रुविमोचनम् ॥ ३० ॥

उस समयका प्यारेके वचनोंका जो उत्तर हो उसको साथ जोड़ती हुई वारंवार उसके अपराधका स्मरण करके अत्यन्त क्रुद्ध हुई बाल पकड़कर इस लिये मारे कि फिर ऐसा करेगा कि नहीं दो तीन वार मारना क्रोधके कारण है। उस समय शिरमें लातें लगाना भी दोषके लिये नहीं, किन्तु सौभाग्यका चिह्न है; ऐसा पुराने नागर कहा करते हैं। द्वारपर बैठ जाय वहां ही रोना शुरू कर दे ॥ ३० ॥

अतिक्रुद्धापि तु न द्वारदेशाद्भूयो गच्छेत्। दोषवत्त्वात्। इति दत्तकः । तत्र युक्तितोऽनुनीयमाना प्रसादमाकांक्षेत् । प्रसन्नापि तु सकषायैरेव वाक्यैरेनं तुदतीव प्रसन्नरतिकांक्षिणी नायकेन परिरभ्येत ॥ ३१ ॥

दत्तकाचार्य्य ऐसा कहते हैं कि-अत्यन्त नाराज हुई भी फिर दरवाजेसे न तो बाहिर ही जाय एवं न भीतर ही आये, क्योंकि फिर जाना दूषित है।

वहां युक्तिसे मनानेपर प्रसन्न हो जाय । राजी हुई भी तो उसी रंगढंगकी बातोंसे इसे छेदती हुई प्रसन्न रतिकी चाहमें नायकके साथ परिरम्भण शुरू कर दे ॥ ३१ ॥

न भूयो न बहिः । दोषवत्त्वाद्भूयोगमनस्य । कोपव्याजेनान्यत्र गमनाशङ्कोत्पत्तेः । दत्तकग्रहणं पूजार्थम् । तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात् । तत्रेत्यश्रुकरणे । पादताडनं क्रोधस्यावधिरिति मन्यमानो नायकः पुनस्तां युक्त्यानुनयेत् । सा तेन युक्तितोऽनुनीयमाना पादपतनं प्रसादनोपायस्यावधिरिति मन्यमाना प्रसादमाकांक्षेत् । ततः प्रसन्ना नायकेनालिङ्ग्यते । तथापि सकलुषः सासूयैर्वाक्यैरेनं नायकं तुदती व्यथयन्ती । प्रसन्नरतिकांक्षिणी प्रसन्नाद्रतिमाकांक्षमाणा । अन्यथा न यदि परिरम्येत तदातिभूमिं गतात्कोपान्नायकोऽप्यप्रसन्न इति । मतोऽयं कुलयुवत्याः पुनर्भुवश्च विधिः ॥ ३१ ॥

फिर वापिस आना या द्वारके बाहिर जाना बुरा है, इस कारण द्वारपर ही बैठ जाना चाहिये, क्योंकि प्यारेको यह आशंका हो सकती है, कि नाराजीके बहाने मेरे पाससे जाना चाहती है । दत्तकग्रहण पूजाके लिये है, क्योंकि उनका मत बुरा नहीं है । दरवाजेपर आंसू टपकातीहुईका चरणप्रहार कर देना नाराजीकी हद है । ऐसा मानकर प्यारोंको चाहिये कि प्यारीको युक्तिसे मनाने लग जाय । प्रेयसीको भी चाहिये कि चरणोंमें शिर टेक देना मनानेकी अवधि है यह जान राजी होना शुरू कर दे । उस प्रसन्नचेताका नायक आलिंगन कराने लग जाय । राजी होनेपर भी रंगढंगकी बातोंसे उसके दिलको बींधती हुई प्रसन्नरतिकी चाहसे आप भी प्यारेका आलिंगन करने लग जाय । इस समय यदि वह क्रोध छोड़ उससे न मिलेगी तो बेहद क्रोध देखकर, नायक भी नाराज हो जायगा, यह कुलयुवति और पुनर्भूओंके मानकी विधि है ॥ ३१ ॥

साहित्यज्ञोंका अनुकरण ।

कामशास्त्रने प्यारीके मनानेका जो ढंग बताया है, साहित्यज्ञोंने उसीका अनुकरण किया है, यह निम्नलिखित उदाहरणोंसे बिलकुल परिस्फुट होजायगा कि—

"मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः ।
उपकाराय दिष्ट्येदमुदीर्णं घनगर्जितम् ॥"

मैं प्यारीका मान दूर करनेके लिये उसके चरणोंमें पड़नेवाला ही था, कि जगदीशकी कृपासे मुझे सहायता देनेके लिये बादल मँढरा गये, मेघ गर्जने लग गया। इसमें नायक केवल चरणोंमें पड़नेके तयार होनेपर मेघको अपना सहायक मान रहा है। अब दूसरा उदाहरण देते हैं जिसमें नायक कहीं जाके आया है एवम् अपना अपराध छिपाता हुआ चरणोंमें पड़ता है और नायिका कहती है कि—

"तस्याः सान्द्रविलेपनस्तनतटप्रश्लेषमुद्राङ्कितं,
किं वक्षश्चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपाय्यते।"

उस मेरी सौतके स्तनोंपर लगा हुआ जो गाढ़ा चन्दन था वह रतिकेलिके आलिंगन करतीबार आपके सीनेपर लग गया है, जो कि यह चमक रहा है सो इस बातकी छाप है कि आप सौतके घर जा, उससे मिल झुलकर आये हो। अब आप मेरे चरणोंमें शिर टेकनेके बहाने उसकी छापको क्या छिपा रहे हो। अब निम्न उदाहरणमें मनानेकी प्रियवाक्यावली एवम् चरणग्रहण तथा मानका कार्य्य रोना बताते हैं कि—

"सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्त्याधिकं,
वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः।
प्रत्यासत्तिमुपागता नहि तथा देवी रुदत्या यथा,
प्रक्षाल्यैव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम्॥"

राजा कहता है कि मैंने बना बनाकर महारानी वासवदत्ताके आगे शपथें खायीं, बड़ी २ मीठी बातें बनाई, मनकी वृत्ति वैसी ही बनाकर दिखाई, सखियोंसे मीठी २ बातें कहलवाकर मनवाई, बारबार उसके चरणोंमें शिर टेका, पर इन सब बातोंसे वह वैसी प्रसन्न नहीं हुई जैसी कि राजी वह अपने आप रो रो कर हुई। आँसुओंने उसका क्रोध आप ही हर लिया। जब पुरूरवाकी पत्नीको यह पता चलता है कि महाराज तो उर्वशीके दीवाने हो गये हैं तो आप नाराज होती है एवम् वीर विक्रम यह कहकर चरण पड़ते हैं कि—

"अपराधी नामाहं प्रसीद रम्भोरु विरम संरम्भात्।
सेव्यो जनश्च कुपितः कथं नु दासो निरपराधः॥"

इसमें क्या संदेह है, मैं तो अवश्य ही आपका अपराधी हूं। ए रम्भोरु! क्रोधको शान्त कर। यदि आराध्य नाराज हो तो सेवक निरपराध कैसे हो सकता है। जब आप नाराज हैं तो मैं निरपराधी कैसे कहला सकता हूं।

जो कामसूत्रवाले चरणोंमें पड़नेसे मनजानेके लिये और लात लगा देनेके लिये कहते हैं, तो साहित्यवाले शिरमें लातें लगवाकर ही मानकी शान्ति करते हैं, यही बात हम दिखाते हैं कि—

" यावकरसार्द्रपादप्रहारशोणितकचेन दयितेन ।
मुग्धा साध्वसतरला विलोक्य परिचुम्बिता सहसा ॥"

जिस समय प्यारा चरणोंमें गिरा, उस समय मानिनी पैरोंमें महावर लगाये बैठी थी पर उसे यह ध्यान नहीं था, कि अभी महावर नहीं सूखा है । गिरते ही शिरमें लात जमा दी, जिससे पैरोंकी लाली उसके बालोंपर भी लग गई । उसने समझा कि कहीं लात जोरसे तो नहीं बैठ गई जिससे खून झलक आया हो, इससे डरी । प्यारेने अपना प्रयत्न सफल जानकर झट चुम्बन कर लिया । जयदेवजीकी तो इस विषयमें भी निराली ही सूझ है ये तो सन्तप्ता वियोगिनीका प्यारेके चरणोंमें पड़नेका समाचार भेज रहे हैं कि—

" प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताऽहम् ।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥"

हर एक बातमें उसके मुखसे यही निकलता है, कि ए माधव ! मैं तुम्हारे चरणोंमें पड़ती हूं, क्योंकि आपकी विमुखतामें अमृतका खजाना चाँद भी मेरे शरीरका दाह किये डालता है । उदाहृत काव्योंको छोड़ अन्यत्र भी कामसूत्रकी अनुकारिता ही देखते हैं, यह केवल दिग्दर्शनमात्रके लिये लिख दिया है । जो लोग कामशास्त्रको केवल तमासबीनीमात्रका ही साधन समझते हैं वे देख लें, कि यह किसतरह साहित्यका भी प्राण है ।

वेश्यायाः परपरिगृहीतायाश्च विशेषमाह—

कुलयुवती और पुनर्भूके मानकी विधि बताकर अब वेश्या और परस्त्रीके मानकी रीति बताते हैं, कि—

स्वभवनस्था तु निमित्तात्कलहिता तथाविधचेष्टैव नायकमभिगच्छेत् ॥ ३२ ॥

अपने निजी घरमें रहनेवाली तो कलहके कारणोंसे प्रणयकलह किये हुई वैसी ही चेष्टाओंसे प्यारेके पास पहुँच जाय ॥ ३२ ॥

स्वभवनस्था त्विति । निमित्तात्पूर्वोक्तात् । कलहितेति कलहः संजातो यस्याः । प्राकृतकलहेत्यर्थः । वाचिकममर्षणमेतत् । कायिकमाह—तथाविधचेष्टैवेति ।

असूयासूचकैर्दुर्निरीक्षणभ्रूभङ्गादिभिः । नायकमभिगच्छेदिति । तस्य समीपे ढौकितेत्यर्थः ॥ ३२ ॥

जिससे प्रणयकलह है, उसके घरमें न रहकर अपने घरोंमें रहनेवाली वेश्याएँ और पराई नार तो जिन कारणोंसे कुल ललनाएँ कलह करती हैं उन्हीं कारणोंपर कलह करें, यह कलह तो वाणीकी लड़ाई है । अब शरीरकी कलह सूचक चेष्टाएँ बताते हैं कि-नायकके पास आकर आँखे मटका तथा भौंहें चढ़ाकर चल दे, जिससे कि नायक यह जान जाय कि यह मेरी हाजिरी तो बजा चली; पर मेरे इसी कामसे यह मुझपर नाराजी दिखाती हुई जाती है ॥ ३२ ॥

तत्र पीठमर्दविटविदूषकैर्नायकप्रयुक्तैरुपशमितरोषा तैरेवानुनीता तैः सहैव तद्भवनमधिगच्छेत् । तत्र च वसेत् । इति प्रणयकलहः ॥ ३३ ॥

इस प्रणयकलहमें नायकके भेजे हुए पीठमर्द[1], विट और विदूषकोंके मनानेपर क्रोध छोड़ उनके ही साथ चली आय एवं उस रातिको प्यारेके ही यहां रह जाय ॥ यह प्रणयकलह पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

तत्र तस्मिन्कोपानुष्ठाने । नायकप्रयुक्तैस्तस्याः प्रत्यानयने । उपशमितरोषा साम्ना तैरेवानुनीता । अपादपतनेन नायकेन । बहिःस्त्रीषु पादपतनस्य प्रतिषिद्धत्वात् । सहैव गच्छेत् स्वगौरवोत्पादनार्थम् । तत्र च वसेत् नायकभवने तां रात्रिं रागसंधुक्षणार्थम् ॥ ३३ ॥

यदि वेश्या या परनारी पराये पुरुषपर क्रोध करे तो लानेके लिये भेजे गये उसके पासके आदमियोंके समझानेपर एवम् आर्जूमिन्नतें करनेपर क्रोध

---

१ इनके लक्षणोंमें यह बात कह दी गई है कि ये लड़ाने और मनानेका ही कार्य्य करते हैं एवम् दूतियोंका भी यही कार्य्य होता है । किसी दूतीने नाराज हुए प्यारेसे कह दिया था कि-

" टुण्टुणायमानो मरिष्यसि कण्टकीकलितानि केतकी वनानि ।
मालतीकुसुमसदृशं भ्रमर भ्रमन्न प्राप्स्यसि ॥ "

चारों ओर भिनभिना भिनभिना कर ही मर जायगा, क्योंकि केतकीके वनोंमें काँटे हैं ऐ भौंरे ! मालतीके फूलकी बराबरका चारों ओर घूमकर भी न पासकेगा । इससे यह सिद्ध हो गया कि नाराज हुए जारके मनानेका भी ये काम करते हैं ।

शान्त करके चली आयें । नायकको भी चाहिये कि इनके चरणोंमें पड़नेके सिवा और सब कुछ मनानेके लिये करे, क्योंकि बाहिरकी स्त्रियोंके चरणोंमें पड़ना निषिद्ध है । अपने प्रेमके गौरवको दिखानेके लिये प्यारेके बुलानेवालोंके साथ ही चल दे । उसके प्रेमको बढ़ानेके लिये उस रातिको उसके यहां ही रह जाय ॥ ३३ ॥

अधिकरणके पदार्थोंका उपसंहार ।

अधिकरणार्थमुपसंहरति—

जिस प्रकार प्रत्येक अध्याय या प्रकरणपर उसका सार अर्थ दिया है, उसी तरह यहां महर्षि सांप्रयोगिक अधिकरणका भी उपसंहार करते हैं कि—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

इस विषयमें श्लोक हैं कि—

एवमेतां चतुःषष्टिं बाभ्रव्येण प्रकीर्तिताम् ।
प्रयुञ्जानो वरस्त्रीषु सिद्धिं गच्छति नायकः ॥ ३४ ॥

नायक बाभ्रव्यकी कही हुई इस पांचालिकी चतुःषष्टिका योग्य स्त्रियोंमें प्रयोग करके सिद्धिको पाता है ॥ ३४ ॥

एवमिति । चतुःषष्टिमालिङ्गनादिकाम् । बाभ्रव्येण पाञ्चालेन । वरस्त्रीषु तद्विज्ञासु । सिद्धिं गच्छति सौभाग्यमाप्नोति । तस्माच्चतुःषष्टिरालिङ्गनादीनां ज्ञातव्या । अन्यथा ह्यपरिज्ञाने अन्यशास्त्रपरिज्ञानेऽपि न केवलं सिद्धिं नाधिगच्छति अन्यत्रापि नात्यर्थं पूज्यते ॥ ३४ ॥

पांचाल बाभ्रव्यकी कहीं हुई आलिङ्गन चुम्बन आदिकी पांचालिकी ६४ कलाओंका इनके जाननेवाली स्त्रियोंमें प्रयोग करके सिद्धि यानी सौभाग्यको पाता है, इस कारण आलिंगनादिक चौंसठ प्रयोगोंको जानलेना चाहिये । चाहें दूसरे शास्त्रोंका ज्ञाता ही है, किन्तु जो इनको नहीं जानता उसे 'केवल सौभाग्य ही नहीं मिलता' यही बात नहीं; किन्तु दूसरे शास्त्रोंमें भी उसका बड़ा मान नहीं होता ॥ ३४ ॥

सिद्ध और पूज्य ।

अस्यास्तु परिज्ञाने अन्यशास्त्रापरिज्ञानेऽपि केवलं सिद्धः पूज्यश्चाग्रणी स्यादिति दर्शयन्नाह—

भले ही दूसरे शास्त्र न आते हों पर यह आये तो वह सिद्ध, पूज्य और अग्रणी होगा इसी बातको बतानेके लिये कहते हैं कि—

ब्रुवन्नप्यन्यशास्त्राणि चतुःषष्टिविवर्जितः ।
विद्वत्संसादि नात्यर्थं कथासु परिपूज्यते ॥ ३५ ॥

आलिंगनादिकी चौंसठ कलाओंको नहीं जानता चाहे वह दूसरे शास्त्रोंको जानता भी है तो भी विद्वानोंकी गोष्ठीमें बातोंमें उसका अधिक आदर नहीं होता ॥ ३५ ॥

ब्रुवन्नपीति अर्थतः प्रयोगतश्च कथयन् । विद्वत्संसदीति । त्रिवर्गप्रतिपत्तौ येऽधिकृतास्ते विद्वांसः । तत्सभायाम् कथासु त्रिवर्गस्य ॥ ३५ ॥

चाहे दूसरे शास्त्रोंके तात्पर्य्य कहे वा प्रयोग कहे, तो भी जो धर्म, अर्थ और कामकी प्रतिपत्तिमें साधिकार विद्वान् हैं उनकी सभामें धर्म, अर्थ और कामकी बातोंमें इन चौंसठ कलाओंके न जाननेवालेका अधिक आदर नहीं होता ॥ ३५ ॥

वर्जितोऽप्यन्यविज्ञानैरेतया यस्त्वलंकृतः ।
स गोष्ठ्यां नरनारीणां कथास्वग्रं विगाहते ॥ ३६ ॥

जिसे चाहे और कुछ नहीं भी आता केवल ये ही अच्छी तरह आती हैं वह नरनारियोंकी गोष्ठीमें बातोंमें मुख्य समझा जाता है ॥ ३६ ॥

अन्यविज्ञानैर्व्याकरणादिशास्त्रपरिज्ञानैः । एतयेति चतुःषष्ट्या । अलंकृतः प्रयोगतोऽर्थतश्च ज्ञातत्वात् । गोष्ठयामासनबन्धे अन्यशास्त्रं नाधिक्रियते । कथासु कामसूत्रस्य । अग्रं विगाहते अग्रणीर्भवतीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

चाहे व्याकरण, न्याय आदि नहीं आते पर जो इनके प्रयोग और करनेके मतलबको जानता है, वह जहां बैठकर बातें करता है उस जगह अग्रणी समझा जाता है । यदि कामशास्त्रकी बातें चल रही हों तो दूसरे शास्त्रोंका तो यहां जिकर ही क्या है ॥ ३६ ॥

कलाओंकी पूज्यता ।

ननु चतुःषष्टेरपूज्यत्वात्कथं [तत्] ज्ञाता विद्वत्संसदि पूज्यत इति चेदाह—

यदि यह शंका हो कि ये ६४ कलाएँ तो पूज्य हैं ही नहीं फिर इनका ज्ञाता विद्वानोंके बीच क्यों पूजा जायगा, इसका उत्तर देते हैं कि—

विद्वद्भिः पूजितामेनां खलैरपि सुपूजिताम् ।
पूजितां गणिकासङ्घैर्नन्दिनीं को न पूजयेत् ॥ ३७ ॥

विद्वानोंसे पूजी तथा दुष्टोंसे अच्छो तरह पूजी गई एवम् गणिकाओंके

समुदायसे सुतरां पूजी गई इस नन्दिनीको कौन न पूजेगा, अर्थात् सभी इसका सत्कार करेंगे ॥ ३७ ॥

विद्वद्भिरिति त्रिवर्गवेदिभिः स्त्रीसंरक्षणोपायत्वात्पूजिताम् । खलैरपि सुपूजिताम् । वस्तुतस्तथाविधत्वात् । पूजितां गणिकासंघैः । जीविकोपायत्वात् । एवं च कृत्वा नन्दिनीत्युच्यत इत्याह—नन्दिनीमिति । नन्दनं नन्दः पूजा । सा विद्यते यस्या इति ॥ ३७ ॥

धर्म, अर्थ और कामके जाननेवाले इन चौंसठकलाओंको स्त्रीकी रक्षाका उपाय समझकर पूजते हैं । दुष्ट भी इसे वास्तवमें पूज्य समझकर पूजते हैं । गणिकाएँ इसे जीविकाका उपाय समझकर पूजती हैं । जब इसकी सभी पूजा कर रहे हैं तो फिर पूज्याका कौन न पूजेगा? नन्द पूजाका नाम है, जिसकी पूजा हो उसे नन्दिनी कहते हैं, यह चतुःषष्टिका नाम है । क्योंकि ऐसा इसीका माहात्म्य है, दूसरे शास्त्रोंका नहीं है जो कि सामुदायिकरूपसे पूजे जायँ ॥

यथेयमनुगतार्थसंज्ञा तथान्यापीत्याह—

केवल यही एक ऐसा नाम नहीं है जो अपने अनुसार गुणवाली हो किन्तु दूसरे नाम भी इसके ऐसे ही हैं उन्हें बताते हैं कि—

नन्दिनी सुभगा सिद्धा सुभगंकरणीति च ।
नारीप्रियेति चाचार्यैः शास्त्रेष्वेषा निरुच्यते ॥ ३८ ॥

यह नन्दिनी सुभगा है, सिद्धा है, सुभगंकरणी है, स्त्रियोंको प्यारी है, आचार्य्योंने शास्त्रोंमें ऐसी ही इसकी निरुक्ति की है ॥ ३८ ॥

नन्दिनीति । सुभगा सर्वैर्गृहिभिरनुष्ठीयमानत्वात् । सिद्धा विद्येव वशंकरणी । सुभगंकरणी स्त्रीपुंसयोः सौभाग्यकरणात् । नारीप्रिया विशेषतस्तत्सुखकरणात् । एवमनेकार्थसाधिका । कस्तां न पूजयेत् ॥ ३८ ॥

सभी गृहस्थी इस नन्दिनीका अनुष्ठान कर सकते हैं, इस कारण सुभगा है । विद्याकी तरह दूसरेको वशमें करनेवाली है, इस कारण सिद्धा है । स्त्री पुरुषोंका सौभाग्य करती है इस कारण सुभगंकरणी है । स्त्रियोंको इससे विशेष सुख होता है, इस कारण उन्हें प्यारी लगती है । इस प्रकार यह अनेकों प्रयोजनोंको सिद्ध करती है ऐसी इसे कौन न पूजेगा ॥ ३८ ॥

अतो ज्ञातापि तद्योगात्पूज्यः विशेषतो नायिकानामित्याह—

इनके योगसे इनका जाननेवाला भी माना जाता है, विशेषरूपसे उसका स्त्रियोंमें अधिक आदर होता है । इसी बातको दिखाते हैं कि—

कन्याभिः परयोषिद्भिर्गणिकाभिश्च भावतः ।
वीक्ष्यते बहुमानेन चतुःषष्टिविचक्षणः ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधिकरणे रतारम्भा-
वसांनिकं रतविशेषाः प्रणयकलहश्च दशमोऽध्यायः ।
आदितः पञ्चदशः ।

चौंसठ कलाओंक जाननेवालेको कन्याएँ, पराङ्गनाएँ, स्त्रियाँ और गणि-
काएँ भावसे बहुमानके साथ देखती हैं ॥ ३९ ॥

कन्याभिरिति । पुनर्भूः परयोषित्येवान्तर्भूता । सैव हि विधवा पुनर्भव-
तीति । वेश्येति वक्तव्ये गणिकाग्रहणं योषिदपि चतुःषष्टिविचक्षणेति दर्शना-
र्थम् । भावत इति भावेन हेतुना । बहुमानेन गौरवेण । प्रणयकलहो द्वाविंशं
प्रकरणम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण
गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां सांप्रयोगिके द्वितीयेऽधि-
करणे रतारम्भावसानिकं रतविशेषाः प्रणयकलहश्च दशमोऽध्यायः ।

परनारीके भीतर ही पुनर्भू भी आ गई, क्योंकि वह विधवा होकर फिर
दूसरेके घर बैठती है । यद्यपि श्लोकमें गणिकाके स्थानमें वेश्या कहना चाहिये,
किन्तु स्त्रियां भी चौंसठकला निधान होती हैं, इस बातके दिखानेके लिये
गणिका शब्दका ग्रहण किया है । इनका ज्ञातामें भाव हो जाता है, इस कारण
ये उसे गौरवकी दृष्टिसे देखती हैं ॥ ३९ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके दशम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदं सांप्रयोगिकं द्वितीयमधिकरणम् ।

कन्यासंप्रयुक्तकं तृतीयमधिकरणम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

वरणसंविधान प्रकरण ।

चतुःषष्टिविचक्षणः कन्याभिर्भावतो वीक्ष्यमाणोऽपि न समागमं विना संप्रयुज्यत इति तत्समागमोपाय आवाप उच्यते । समन्तादावाप्यन्ते स्त्रियोऽनेनेति । तत्र कन्यायाः प्रधानत्वात्कन्यासंप्रयुक्तकमुच्यते । तत्रोद्वापा अष्टौ विवाहाः—ब्राह्मः प्राजापत्य आर्षो दैवो गान्धर्व आसुरः पैशाचो राक्षस इति । तत्र पूर्वे चत्वारो धर्म्या इति तदर्थं वरणसंविधानं प्रकरणमुच्यते ।

सांप्रयोगिक अधिकरणकी पंद्रहवीं अध्यायके ३९ वें सूत्रमें लिखा है कि, सांप्रयोगकी आलिंगन आदि चौंसठ कलाओंके जाननेवाले व्यक्ति रागके योग्य होते हैं, इस कारण उसे सब तरहकी नायिकाएँ वहुमानके साथ देखती हैं देखो ? पर समागमके विना संप्रयोग तो वह न कर ही सकता, इस कारण समागमके उपाय, जिन्हें कि कामशास्त्रमें आवाप कहते हैं उनको बताते हैं। यानी जिस प्रयत्नसे सब ओरसे खींचकर, स्त्रियोंको प्राप्त कर लिया जाय उसका नाम आवाप है । इन स्त्रियोंमें कन्या प्रधान ह, इस कारण सबसे पहिले ' कन्यासंप्रयुक्तअधिकरण ' कहते हैं । इसमें आवाप आठ विवाह हैं ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, पैशाच और राक्षस। इनमें पहिले चार धर्मानुकूल हैं, इस कारण वरणके संविधान—को कहते हैं ।

वरणका कारण ।

किमर्थमेवमनुष्ठीयत इति चेदाह—

जिस तरह और नायिकाओंके साथ संप्रयोग कर लिया जाता हैं, उसी तरह कन्याओंसे भी क्यों न कर लिया जाय । वरणकी विधिके अनुसार ही कन्या प्राप्त करनेकी क्या आवश्यकता है, इसके उत्तरमें सूत्र करते हैं कि—

सवर्णायामनन्यपूर्वायां शास्त्रतोऽधिगतायां धर्मोऽर्थः पुत्राः संबन्धः पक्षवृद्धिरनुपस्कृता रतिश्च ॥ १ ॥

किसीकी न हुई सवर्णकन्या शास्त्रकी रीतिसे प्राप्त हो तो, उससे धर्म, अर्थ, पुत्र, सम्बन्ध, पक्षवृद्धि और निर्दोष स्वाभाविकरति होती है ॥ १ ॥

सवर्णायामिति—ब्राह्मणादीनां यथास्वं सवर्णायाम् । अनन्यपूर्वायामिति—मनसा कर्मणा वचसा वान्यस्मै या न दत्ता, तत्र हि यत्प्रथममपत्यं तदस्यैवेति स्मृत्यर्थः । शास्त्रत इति—शास्त्रोक्तेन वरणपूर्वेण परिणयविधिना । अधिगतायाम्—स्वीकृतायां सत्याम् । धर्मः—पत्नीप्रयोगाख्यो रत्यादिप्रवर्तनं च । अर्थो—यौतकलाभाद्गार्हस्थ्यानुष्ठानाच्च । पुत्राः—दृष्टादृष्टार्थाः । संबन्धः—सहैकभोजनादिहेतुः । पक्षवृद्धिरिति—स्वपक्षस्य वृद्धिः, पक्षान्तरलाभात् । अनुपस्कृता रतिः—अकृत्रिमा, विश्वासातिशययोगात् ॥ १ ॥

ब्राह्मणकी ब्राह्मणी, क्षत्रियकी क्षत्रिया, वैश्यकी वैश्या तथा शूद्रकी शूद्रा सवर्णा है । इन चारों वर्णोंकी अपनी २ ऐसी सवर्णामें जो कि मन, वाणी वा कर्मसे किसीको भी न दी गई हो । ऐसी कन्याकी पहिले अपने साथ सगाई हुई हो, फिर विधिपूर्वक विवाह आदि होकर, स्वीकार की गई हो तो ऐसी कन्यासे जो प्रथमसन्तान होगी वह (पिताकी) ही होगी, ऐसा स्मृति शास्त्रका विधान है (यदि लड़कीका बाप निपुत्री हों एवम् विवाहके समय वरके साथ मंत्रपूर्वक प्रतिज्ञा हो गई हो) अपनी विवाहिताके साथ रति करनेसे एकपत्नी व्रतका परमपुण्य प्राप्त होता है । पत्नीके पिताके घरसे दहेज मिलता है एवम् गृहस्थ धर्मके पालन करनेसे धन भी इकट्ठा हो जाता है । लोक और परलोक सुधारनेवाले पुत्र पैदा हो जाते हैं । सम्बन्ध हो जाता है, जिससे सहभोज आदि होते हैं । स्वसुरका पक्ष अपना बन जाता है, इस कारण पक्ष वृद्धि भी होती है । स्वाभाविकरति प्राप्त होती है । दूसरी जगह तो रत्याभास है, क्योंकि इसमें धर्मपूर्वक आ जन्मके लिये एक दूसरेसे बँध जाते हैं । इस कारण आपसमें अत्यन्त विश्वास हो जाता है अतएव धर्मपत्नीमें ही स्वाभाविक रति प्राप्त होती है ॥ १ ॥

अनन्यपूर्वाका तात्पर्य्य ।

मनु महाराजने कहा है कि—" उद्वहेत द्विजो भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् " द्विज—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, लक्षणान्वितान्—उत्तम लक्षणोंवाली, सवर्णाम्—अपने वर्णकी (यानी जातिकी), भार्य्याम्—योग्य कन्याको, उद्वहेत—व्याहे । यहांसे तो वात्स्यायनने सवर्णा और लक्षणान्विता ये दो बातें ली हैं । इन दोनोंमेंसे सवर्णा इस सूत्रमें तथा लक्षणान्विता अगिले सूत्रमें ले रखी है । तथा याज्ञवल्क्यस्मृतिसे, इस सूत्रमें "अनन्यपूर्विकाम्" लिया है ।

अनन्यपूर्वाका अर्थ करतीवार धर्मसिन्धुने लिखा है, कि अन्यपूर्वा सात होती हैं कि-"अन्यपूर्विका, पुरुषान्तरपूर्विका । मनोदत्ता, वाचा दत्ता, अग्निपरिगता, सप्तमं पदं नीता, भुक्ता, गृहीतगर्भा, प्रसूतेति सप्तविधाः पुनर्भवास्तद्भिन्नामनन्यपूर्विकाम्" जो मनसे दे दी, वाणीसे दे दी, विवाहकी अग्निके पास पहुँच गई, सप्तपदीके सातवें चरणपर पहुँच गई, जिसे किसीने भोग-लिया हो, जिसके गर्भ हो, जिसके प्रसव हो चुका हो ऐसीं अन्यपूर्वा कहाती हैं, जिसकी ये बातें न हुई हों, उन्हें 'अनन्यपूर्वा' कहते हैं। ऐसी कन्याओंके साथ शादी होनी चाहिये । वात्स्यायनने अनन्यपूर्वा कहकर इन सब बातोंको दरसा दिया है ।

विवाहयोग्य कन्या ।

यतश्चैवम्—

शास्त्रीय विधानके अनुसार सवर्ण कन्याके प्राप्त करनेसे ये लाभ हैं, इस कारण वह प्राप्त करनी चाहिये, किन्तु वह जैसी होनी चाहिये यह बताते हैं कि—

तस्मात्कन्यामभिजनोपेतां मातापितृमतीं त्रिवर्षात्प्रभृति न्यूनवयसं श्लाघ्याचारे धनवति पक्षवति कुले संबन्धिप्रिये संबन्धिभिराकुले प्रसूतां प्रभूतमातृपितृपक्षां रूपशीललक्षणसंपन्नामन्यूनाधिकाविनष्टदन्तनखकर्णकेशाक्षिस्तनीमरोगिप्रकृतिशरीरां तथाविध एव श्रुतवाञ्शीलयेत् ॥ २ ॥

इस कारण कुलीना, मा वाप वाली, अपनेसे तीनसे लेकर कम उमरकी तथा प्रशंसनीय आचारवाले एवं पक्षवाले धनी कुलमें हो, जिस कुलको सम्बन्धी प्यारे लगें, जिसके यथेष्ट सम्बन्धी हों, माताके यहांका और पिताके यहांका यथेष्ट पक्ष हो, रूप, शील और शुभलक्षणयुक्त हो । उसके दाँत नख,

---

१ इसपर धर्म शास्त्र ।

कन्याकी योग्यताका विचार ऋषिने धर्मशास्त्रोंके अनुसार ही किया है, इसी बातको दिखाते हैं कि—

"अव्ययाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥"

जिसके दाँत, नख, कान, केश, आखें, स्तन और अँगुलियां आदि अंग ठीक २ हों। नाम भी बुरा न हो, किन्तु सुन्दर हो, हंस या हाथीकी चालसे चलती हो, लोम, केश और—

कान, केश, आखें और स्तन न तो कम हों एवं न ज्यादा हों, न नष्ट ही हुए हों। कोई स्वभावसे रोग न हो । ऐसी कन्याको देख ले एवम् आप भी ऐसा ही हो ॥ २ ॥

तस्मात्कन्यां शीलयेदिति संबन्धः । अशीलितायां वरणासंभवात् । तत्र शीलमभिजनतः सनाथतो वयसः कुलाचारतोऽनुरागतो रूपतः शीलतो वा लक्षणत आरोग्यतश्चेति यथाक्रममाह---अभिजनं कुलं मातापितृगतम् । त्रिवर्षादिति--वर्षत्रयात्प्रभृति न्यूनवयसम् । नैकेन द्वाभ्यां वापि समवयसमधिकवयसं वा । श्लाघ्यः स्पृहणीय आचारो यस्मिन्कुले । धनवति--धनधान्याढ्ये । संबन्धिप्रियेऽनुरागिणि । पक्षवति---संबन्धिभिराकुले । प्रभूतमातापितृपक्षानित्यनेनातिसनाथतामिति दर्शयति । रूपम्--शरीरस्य शोभनो यो वर्णः संस्थानं च । शीलं सुस्वभावता । लक्षणमवैधव्यादिसूचकम् । अन्यूनेति । तत्प्रत्येकं योज्यम् । यथासंभवमन्यूनमनधिकमनष्टं च दन्तादि यस्याः । अवयवरूपेणापि युक्तामित्यर्थः । कन्याया दन्तादीनां प्रधानावयवत्वात् । अरोगिप्रकृतिशरीरामिति---स्वभावतो न रोगवच्छरीरं यस्या इत्यर्थः । तथाविध एवेति--अभिजनाद्युपेतः, अन्यथा ह्यगम्य एव स्यात् । विशेषमाह---श्रुतवानिति । गृहीतविद्य इत्यर्थः । शीलयेत्--मनसि समादध्यात् । 'शील समाधौ' इति धातुपाठात् ॥ २ ॥

कन्याके ये लाभ हैं, इस कारण कन्याको देखले, क्योंकि विना कन्या टटोले विवाह नहीं हो सकता। कन्या, कुटुम्ब, रक्षक, कुलाचार, अनुराग, रूप, शील, लक्षण और आरोग्य इन आठ वातोंसे देखी जाती है, इस कारण इन आठोंको क्रम पूर्वक कह रहे हैं, कि---मातृकुल और पितृकुलमें प्रभूत परिवार हो, तीन वर्षसे लेकर कितनी ही उचित छोटी हो पर एक या दो तो किसी तरह भी कम न हो, न बरावरकी हो एवम् न वड़ी हो, जिसके घरानेके आचारकी शिष्ट लोग प्रशंसा करते हों । जो खानदाना धनाढय हो, जिसे अपने सम्बन्धी प्यारे लगते हों, जिसके पक्षपाती यानी सम्बन्धी प्रभूत हों । उसके नाना

दांत बारीक हों, ऐसी कोमलाङ्गी स्त्रीके साथ विवाह करना चाहिये । इसीपर आश्वलायनमें लिखा है कि---"**बुद्धिरूपशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत्**" बुद्धिमती, सुन्दरी, सदाचारिणी एवम् शुभलक्षण सम्पन्ना रोगरहिता कन्या व्याहे । इस विषयमें विशेष नारदस्मृतिमें लिखा है । आयुके विषयमें आठ या बारहवाँ वर्ष लिखा है ।

मामा भी यथेष्ट दमदार हों एवम् माता, पिता भी खराने घरके कुटुम्बी तथा दमदार हों इस कथनसे कन्याके बारिस दिखा दिये कि इतने तो उसके बारिस हों ही । शरीरके सौन्दर्य्य और सुडौलपनेको रूप कहते हैं । अच्छे स्वभावका नाम शील है। जिसके तिल आदि शुभ हों वैधव्यके सूचक न हों। अन्यूनाधिक और अविनष्ट ये दन्तसे लेकर स्तनतक प्रत्येकके साथ सम्बन्ध रखता है तब इसका यह अर्थ होता है कि-यथासंभव दन्त नखादि कम ज्यादा या नष्ट हुए न हों यानी उसके सब अवयव सरूप हों, कोई भी बिगड़ा हुआ न हो, क्योंकि कन्याके दांत आदि प्रधान अवयव हैं ये भी सुगड हों एवम् कन्याका एक २ अंग और समष्टि शरीर सभी सुडोल हो । जैसे ऋतु और जल आदिके विपर्य्यासंसे सबके शरीरोंमें कभी २ ज्वर आदि देखनेमें आते हैं, इनकी तो कोई बात नहीं, किन्तु उसके शरीरमें कोई स्वाभाविक रोग न हो, जो कि महारोग एवम् संक्रामक हो । ऐसी कन्या हो । ऐसी कन्याके लिये ऐसा ही वर हो (यानी वर और कन्या दोनोंमें एकसी बात होनी चाहियें) नहीं तो न्यूनाधिकतामें वह कन्याका अगम्य ही हो जायगा । हां यह विशेषता वरमें अवश्य ही रहनी चाहिये, कि वह विद्वान् होना चाहिये । यदि ऐसी कन्या हो तो उसे विवाहके लिये देखना चाहिये तथा उसमें मन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

कन्याके घरानेपर धर्मशास्त्र ।

मनुमहाराज कहते हैं कि चाहें बड़े भारी समृद्धिशाली ही क्यों न हों पर इन दशकुलोंकी कन्याके साथ कभी विवाद न करे, उन दशोंको बताते हैं, कि-

" हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
शय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रि कुष्ठि कुलानि च ॥"

जिस कुलमें संस्कार न होते हों, जिसमें कन्या ही कन्या पैदा होती हों, जिस घरानेमें वेदकी शिक्षा व धार्मिक शिक्षा न हो, जिस घरकी लड़कियाँ बड़े २ बालोंवाली हों, जिसमें बवासीर आदिकी बीमारी हो, क्षयरोग होता हो, ग्रहणी आदिके रोगी हों, मृगीकी बीमारी हो, श्वित्र हो वा कुष्ठियोंकी पैदाश हो, ऐसे घरोंकी लडकी कभी न लेनी चाहिये । प्रत्युत ऐसे घरकी

---

१ 'शील' समाधौ भ्वादिगणीसे स्वार्थमें 'णिच्' होकर 'शीलयेत्' प्रयोग बना है जिसका विवरण टीकाकारने 'समादध्यात्' इस पदसे किया है, जिसका मतलब चुने विचारे आदि होता है ॥

लड़की लेनी चाहिये जो कि—"दशपूरुषविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्" जो दश पीढीसे उत्तमाचरणोंमें प्रसिद्ध हो, जिस घरमें धर्माचारवाले वेदवेत्ता हों, जो बड़ा घर हो, बेटा, नाती, दास, दासी आदि सब हों। कामसूत्रवालेने जो बात कही हैं वे सब इसी वचनके आधारपर कहीं हैं । यानी बुरे घरकी लडकी न ले जो अपन घरको भी पतित बना दे । आश्वलायन गृह्यसूत्रम ता लिखा है कि—" कुलमग्रे परीक्षेत ये मातृतः पितृतश्चेति यथोक्तं पुरस्तात् " जब कन्या ले तो मा और बाप दोनोंके कुलोंकी पवित्रता पहिले देख ले जैसा कि पहिले बता चुके हैं ।

इसीपर आचार्य घोटकमुख ।

या गृहीत्वा कृतिनमात्मानं मन्येत न च समानैर्निन्द्येत तस्यां प्रवृत्तिरिति घोटकमुखः ॥ ३ ॥

जिसके साथ शादी करके अपनेको कृतार्थ समझे एवम् बराबरवालोंमें निन्दा न हो, उसमें प्रवृत्ति होनी चाहिये, यह आचार्य्य घोटकमुखका मन्तव्य है ॥ ३ ॥

गृहीत्वा—परिणीय । कृतिनम्—कृतार्थम् । न च समानैर्निन्द्येत कुत्साजन्यं कृतमनेनेति । प्रवृत्तिः—वरणसंविधानम् । घोटकमुखग्रहणमधिकरणप्रावीण्यख्यापनार्थम् ॥ ३ ॥

जिस कन्याको ग्रहणकर यानी व्याहकर, आप कृतकृत्य हो जाय तथा बराबरवालोंम यह निन्दा न हो[1], कि इसने यह बुरा काम किया तो उसमें वरण संविधान (विवाहके सबकृत्य) हों। घोटकमुख आचार्य्यके मत दिखानेका कारण यह है, कि वे इस अधिकरणमें परमप्रवीण थ, अतः उनका मत कभी अश्रेष्ठ नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

सगाईव्याहका प्रयत्न करनेवाले सम्बन्धी ।

वरणं द्विविधम्—पौरुषेण दैवेन च विधिना । तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

वरण दो तरहसे होता है । एक तो पुरुषोंकी विधि यानी संबंधियोंके प्रयत्नसे तथा दूसरा दैव विधि यानी ज्योतिषी आदिकी गप्पोंसे इन दोनोंमें पुरुषों यानी संबन्धी आदिकी प्रेरणासे होनेवाले वाग्दानोंको पहिले बताते हैं कि—

---

१ अनुचित सम्बन्ध करनेपर बराबरवालोंमें निन्दा होती है, उचितमें नहीं । चाही हुई वस्तुके मिलनेमें गुणदोषोंकी चिन्ता नहीं रहती । इस सम्बन्धका तो रासता ही निराला है । ऐसा सम्बन्ध समझदारोंपर निर्भर रहता है ।

तस्या वरणे मातापितरौ संबन्धिनश्च प्रयतेरन् । मित्त्राणि च गृहीतवाक्यान्युभयसंबद्धानि ॥ ४ ॥

उस कन्याके वाग्दानमें वरके माता पिता इनके संबन्धी और अन्य संबन्धियों तथा कही माननेवाले मित्रोंको प्रयत्न करना चाहिये । प्रयत्न करनेवाले ऐसे हों जो दोनोंके मेलके हों ॥ ४ ॥

तस्या इति—शीलितायाः । वरणे—याचने । मातापितरौ नायकेन मित्रजनमभिधाय प्रेरितौ प्रयतेताम् । वरयितृपुरुषप्रेरणेन—संबन्धिनो ये नायककुले संबन्धं कृतवन्तः । मित्राणि च नायकस्य प्रयतेरन्नित्येव । गृहीतवाक्यानि—तद्वचनस्यानतिक्रमणीयत्वात् । उभयसंबद्धानि—मातृसंबन्धेन पितृसंबन्धेन च॥४॥

जिस कन्याके गुणोंपर विचार करके व्याहनेका निश्चय कर लिया हो उसके माँगनेके लिये वरको चाहिये कि वह अपने मित्रोंद्वारा अपने माता पितासे कहलवा दे जो कि वे इसका प्रयत्न करें । वरकी माता तथा पिताके कुलके एवम् दोनोंके धरानोंसे जो सम्बन्ध रखते हों उनको युक्तिसे समझा दिया जाय जो वे प्रयत्न करें। वरके जो ऐसे मित्र हों कि कभी बात न टालें उनका भी यह कार्य्य होना चाहिये, कि पूरा प्रयत्न करें । एवम् जिनका संबंध वरके घराने हो चुका हो उनको भी प्रयत्न करना चाहिये ॥ ४ ॥

व्याह सगाई करानेवालोंका प्रयत्न ।

तान्यन्येषां वरयितॄणां दोषान्प्रत्यक्षानागमिकांश्च श्रावयेयुः । कौलान्पौरुषेयानभिप्रायसंवर्धकांश्च नायकगुणान् । विशेषतश्च कन्यामातुरनुकूलांस्तदात्वायतियुक्तान्दर्शयेयुः ॥ ५ ॥

सगाई करानेवालोंका यह कार्य्य होना चाहिवे, कि कन्याके अभिभावुकोंने जो दूसरे २ वर चुन रखें हो, उनके प्रत्यक्ष दोप तथा हस्तरेखा आदिसे जो दोष सावित हों सकें उन्हें सुनायें एवम् जिसके साथ वे व्याह चाहते हों, उसके घरानेकी प्रशंसा एवम् वरके पुरुषार्थकी वे वे बातें बतानी चाहियें

---

१ रुक्मिणीके पिता अपनी लड़की रुक्मिणीको कृष्णके लिये देना चाहते थे, किन्तु शिशुपालके मित्र रुक्मिणीके भाईने कृष्णकी बुराई करके अपने मित्रको सगाई करा दी । मालती माधव नाटकमें कामन्दकीने किसप्रकार चित्रसेनको छकाकर मालती, माधवको दिलवा दी,—

जिससे देनेवालेकी मनसा बढ़े एवम् कन्याकी माताको उस समयकी और आगेकी बातें अच्छी लगें वे सभी अपने वरमें दिखा देनी चाहियें ॥ ५ ॥

तानीति मित्त्राणि । अन्येषामिति नायकादन्ये ये वरयितारः । 'वर ईप्सायाम्' अदन्तश्चौरादिकः । प्रत्यक्षान्दोषान्विरूपकान्धकुब्जादीन् । आगमिकान् सामुद्रोक्तान् । 'आगामिकान्' इति पाठान्तरम् । भाविन इत्यर्थः । श्रावयेयुः । तस्याः पितरावित्यर्थात् । कौलान् कुले भवान् शीलशौण्डीर्यादीन् नायकगुणान् । पौरुषेयान् पुरुषकारनिष्पन्नान् शास्त्रकलाग्रहणादीन् । अभिप्रायसंवर्धकांश्चेति—पित्रोः कन्यादानाभिप्रायं संवर्धयन्ति ये । विशेषतः कन्यामातुर्येऽनुकूला भवन्ति ते बाल्यवयस्त्वादयः । तदात्वायतियुक्तानिति वर्तमानेन अनागतेन च कालेन फलदानात्संयुतान् । 'तत्कालस्तु तदात्वं स्यादायतिः काल उत्तरः' इत्यमरः । दर्शयेयुः । मित्त्राणीत्येव ॥ ९ ॥

सगाईके प्रयत्नमें लगे हुए नायकके मित्रोंको चाहिये कि—अपने मित्रसे भिन्न जो दूसरे उस लड़कीके चाहनेवाले हैं, उनमें जो कुरूपता एवम् विकलाङ्गता तथा काना, अन्धा और बधिरपना हो उन्हें उग्ररूपमें सामने रखें । जो हस्तरेखा आदि एवम् लहसन आदिके कुलक्षण हों (अथवा उसमें जो दोष आजानेवाले हों उन्हें भी सामने रख दें, यह 'आगमिकान्' के स्थानमें 'आगामिकान्' के पाठमें अर्थ होता है यानी उसमें जो दोष हो जानेवाले हों ।) ये सब लड़कीके माता पिताको सुनाना चाहिये । यह बात तो उनकी है जिनकी कि बुराई करके अपने इष्टको कन्या दिलानी है । अब जिसको दिलानी है उसकी प्रशंसाका प्रयत्न बताते हैं, कि—नायकके कुलके जो शीलशौण्डीर्य्य आदि गुण हों उन्हें सुनाये तथा उसने जो विद्योपार्जन आदि अपने पुरुषार्थसे किये हों उन्हें बता दे । यह भी इस प्रकार कहे कि, जिससे लड़कीके मा बापोंका अपनी लड़कीको उसे देनेके लिये मन बढ़े । इस काममें भी इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि लड़कीकी माको जो अनु-

—इसी तरह सभी अपने २ मित्रकी कोशिश करते हैं । इसी तरह ज्योतिषियोंकी भी उपयोगिता इसमें होती है । आज भी विवाह इसी तरह होते हैं एवम् सगाईपताईका भी यही ढंग है । दमयन्तीके विवाहमें देवोंने क्या किया था, उसके पास नलकी बुराई करनेके लिये दूत भेजे थे तथा नलके पक्षपाती हंसने भी यही किया था, कि नलकी गुणावली भैमीको सुनाई थी ।

कूल पड़ें उन्हें विशेषरूपसे कहे कि-" अभी क्या है अभी तो व्याह योग्य बालक ही है, उसकी अमुक अमुक जगहसे विवाहकी तयारी हो रही है । " ये बातें इस प्रकार होनी चाहिये कि, वर्तमानकी उज्वलताके साथ भविष्य और भी अधिक उज्वल चमकता मालूम हो; ये काम मित्रोंके हैं ॥ ५ ॥

वरपर धर्मशास्त्र ।

कन्याके निश्चयकी तरह धर्मशास्त्रोंने वरका भी निश्चय किया है, किन्तु कामसूत्रकारने उसपर विशेष जोर इसलिये नहीं दिया कि ये पाहिल ही उसे वता चुके हैं । यहां हम स्मृतियोंका भी विचार दिखाये देते हैं कि—

" एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः ।
यत्नात्परीक्षितः पुँस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः ॥ "

कन्याके घरानेमें जो गुण वताये हैं वे वरके घरानेमें भी हों । जो गुण कन्यामें बताये हैं वे सब वरमें भी हों । वर सवर्ण और योग्य विद्वान् हो । जिसके पुंस्त्वका परीक्षण प्रयत्नके साथ कर लिया गया हो, वह युवा और बुद्धिमान् हो । जिसे देखकर सभी प्रसन्न हो जाते हों । नारदजीने वरकी परीक्षाके वहुतसे उपाय बताये हैं किन्तु ऋग्वेदियोंके महर्षि आश्वलायन तो यह कहते ह, कि—" बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत् " इसपर गार्ग्य नारायण लिखते हैं कि—" अर्थदर्शिनी बुद्धिः । कोऽर्थः यः शास्त्राविरुद्धः । तद्वते बुद्धिमते कन्यां प्रयच्छेत्॥" वास्ताविक पदार्थके देखनेवाली बुद्धि कहाती है, वह पदार्थ शास्त्रानुकूल ही होना चाहिये, ऐसी बुद्धिवाले व्यक्तिको कन्या देनी चाहिये । इससे सिद्ध हो गया कि उपभोगक्षम बुद्धिमान् युवकको कन्या देनी चाहिये ॥

दैवज्ञोंके काम ।

दैवमधिकृत्याह—

सम्वन्ध करानेवाले सम्बन्धियोंके कार्य्य तो वता दिये, अब सम्बन्धके लिये प्रयत्न करनेवाले ज्योतिषियोंके कार्य्य बताते हैं कि—

---

१ अमरकोश द्वितीय काण्ड क्षत्रियवर्गमें लिखा है कि-"तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुत्तरः काल आयतिः ।" तत्काल और तदात्व ये दो नाम वर्तमानकाल तथा उत्तरकालका नाम आयति है । सूत्रमें दोनों शब्द हैं, इस कारण इनका वर्तमान और भविष्य अर्थ किया है ॥

दैवचिन्तकरूपश्च शकुननिमित्तग्रहलग्नबललक्षणदर्शनेन नायकस्य भविष्यन्तमर्थसंयोगं कल्याणमनुवर्णयेत् ॥ ६ ॥

निमित्त, ग्रह, लग्नकाल और लक्षणोंके देखनेसे नायकके होनेवाले अर्थ-संयोगरूप कल्याणका वर्णन ज्योतिषी करे ॥ ६ ॥

दैवचिन्तकरूपश्चेति—सांवत्सरव्यञ्जनो नायकप्रहितः । शान्तायां दिशि रटतः काकादेः शकुनस्य । निमित्तस्य तज्जातादेः । शुभग्रहाणां लग्नादुपचयस्थानेषु स्थितानां यद्बलं दिक्कालस्थानस्वभावैस्तस्य दर्शनेन लक्षणस्य शंखचक्रादेर्दर्शनेन भविष्यन्तमनागतमर्थसंयोगं सेनापत्याध्यक्षपत्तनादिलाभम् । कल्याणमिति कल्याणहेतुत्वात् । अर्थानुबन्धमित्यर्थः ॥ ६ ॥

नायकका प्रेरित किया संवत्सरका फलादेश बतानेवाला ज्योतिषी, शान्त दिशामें बोलते हुए कौएके शुभशकुनसे, जातकके फलसे और लग्नसे लाभके स्थानमें स्थित हुए शुभग्रहोंका जो फल है उसको दिशा, काल, स्थान और स्वभावोंके द्वारा दर्शा देनेसे, शंख, चक्र आदिके देखनेसे होनेवाले सेनापत्य, अध्यक्ष एवम् पत्तन आदिके लाभरूप कल्याणका वर्णन करे, क्योंकि ये सब बातें अर्थवृद्धिमें कारण हैं एवम् विवाह आदि कार्य्योंमें अर्थ प्रधान है ही॥६॥

कन्याकी मातातक पहुँचनेवालोंका कार्य्य ।

अपरे पुनरस्यान्यतो विशिष्टेन कन्यालाभेन कन्यामातरमुन्मादयेयुः ॥ ७ ॥

कन्याकी माताके पास पहुँचनेवाले ज्योतिषियोंको चाहिये, कि कन्याकी माता जिसको कन्या देना चाहती हो, उसके अधिक दियेसे कन्या लाभ अपने नायकके देनेमें बताकर, उसे दीवानी बना दें ॥ ७ ॥

अपर इति दैवचिन्तकरूपाः । अस्य नायकस्य । अन्यत इति यतो व्रियते कन्या ततोऽन्यस्मात् । विशिष्टेनेति अमुष्य सेनापतेरते रर्थरूपवती सुमहिमा अस्मै कर्तुमिष्यते । येन वयं श्वस्तने नक्षत्रसंयोगं पृष्टा इत्यनेन कन्यामातरमुन्मादयेयुरनुरञ्जयेयुः । येनानुरक्ता दुहितरं दद्यात् ॥ ७ ॥

जो ज्योतिषी कन्याकी माताके पास तक पहुँच सकते हों उन्हें चाहिये

---

१ आज भी कन्याकी माताकी राजी ही कन्या देनेमें प्रधान रहती है । स्त्रियोंको कन्याओंपर मोह भी मुख्यरूपसे रहा करता है । पर यह बात व्यसनी मामें नहीं होती ।

कि कन्याकी माता जिसे देना चाहती हो उससे अपने नायककी विशेषताएँ प्रकट करें कि अमुकने हमें अपनी कुंडली दिखाई थी, उसके ग्रहादिक ऐसे हैं कि यह किसी बड़ी सेनाका सेनापति या किसी मुख्य विभागका अध्यक्ष अथवा इतने धनका स्वामी होगा । आपको अपनी लड़की उसीको देनी चाहिये कि उस समय यह उसकी अर्थरूपवाली महिमा हो । ये वातें इस प्रकार हों, कि इन्हें सुनकर कन्याकी मा उसमें अनुरक्त होकर अपनी लड़की दे दे एवम् उसे जमाई बनानेके लिये पगली हो उठे ॥ ७ ॥

दोनों पक्षोंका कार्य्य ।

दैवनिमित्तशकुनोपश्रुतीनामानुलोम्येन कन्यां वरये- द्द्याच्च ॥ ८ ॥

विवाहनेवालों और कन्या देनेवालोंको चाहिये कि दैव, निमित्त, शकुन और उपश्रुतियोंकी अनुकूलतासे लें और दें ॥ ८ ॥

दैवनिमित्तशकुनोपश्रुतीनामिति । पूर्वजन्मकृतं शुभमशुभं वा कर्म दैवम् । तस्याभिव्यञ्जकत्वान्नक्षत्रग्रहा अपि दैवमुच्यते । अस्यानुकूल्येन षट्काष्टकादियोगाभावात् । किमियमूढा कल्याणकरी नेति शास्त्रोक्तं निमित्तं शकुनपृच्छा च कार्या । निशीथे चोपश्रुतिर्ग्राह्या । तेषामानुकूल्येन वराय दीयमानामीप्सेत, दद्याच्च कन्यापक्षः ॥ ८ ॥

पहिले जन्मके किये हुए अच्छे बुरे कर्म्मोंका नाम दैव है उसके अभिव्यञ्जक होनेके कारण नक्षत्र और ग्रह भी दैव कहाते हैं । ग्रह और नक्षत्र वर, कन्या दोनोंके अनुकूल होने चाहिये । षट्क[1] अष्टक आदि योग न होने चाहियें । इसके साथ व्याहने पर कल्याणकारी होगी वा नहीं इसके, शास्त्रके बताये निमित्त और शकुन पूछने चाहियें । आधीरातके समयकी उपश्रुति लेनी चाहिये । इनकी अनुकूलता होनेपर वरणी हुई चाहे कि ऐसे समय मिले एवम् कन्यापक्ष भी इनकी अनुकूलतामें ही दे ॥ ८ ॥

---

१ " षष्ठे स्त्रीपुंसयोर्वैरं मृत्युः स्यादष्टमे ध्रुवम् ।
द्विर्द्वादशे च दारिद्र्यं नवमे पंचमे कलिः ॥"

यदि वर और कन्याकी राशियां परस्पर छठी आठवीं हों तो दोनोंकी अप्रीति अथवा मृत्यु होनी चाहिये, दूसरी बारहीं हों तो दरिद्रता एवम् नवमीं पांचमी हों तो आपसमें कलह होना चाहिये । ये बुरे योग हैं, अतः ये न होने चाहियें ॥

इसीपर घोटकमुख ।

न यदृच्छया केवलमानुषायेति घोटकमुखः ॥ ९ ॥

मनुष्योंमें केवल अपनी इच्छासे ही लेन देन न होना चाहिये, किन्तु कुटुम्ब आदिकी भी संमति लेनी चाहिये, यह घोटकमुख आचार्य्यका मत है ॥९

केवलमानुषायेति । केवलं मानुषं कर्म यस्याम् । यदृच्छायामभिजनसाना-थ्यादिकमस्तीति । नैवान्येच्छया वरयेद्वाचेत्यर्थः । घोटकमुख इति परमतमभि-मतम् । अप्रतिषिद्धत्वात् ॥ ९ ॥

जहां मनुष्योंका कन्या लेन देन है यह वर कन्या किंवा केवल वर और कन्याके बापोंकी ही सलाह पर नहीं, किन्तु उन्हें परिवारकी भी सम्मति लेनी चाहिये । यह घोटकमुख आचार्य्यका सर्वानुमत मत है, क्योंकि इसका कहीं भी निषेध नहीं है ॥ ९ ॥

न व्याहनेयोग्य कन्या ।

वरणकाले कन्यां दृष्ट्वा निमित्तं पश्येदिति दर्शयन्नाह—

वरणके समय कन्याको देखकर 'उसके शुभ, अशुभ लक्षणोंको देखे ' ऐसा लिखा हुआ है, इस कारण जिन लक्षणोंकी कन्या न व्याहनी चाहियें उन्हें बताते हैं कि—

सुप्तां रुदतीं निष्क्रान्तां वरणे परिवर्जयेत् ॥ १० ॥

जो वरणके समय सोये, रोये और घरके बाहिर जाय उसके साथ लग्न न करे ॥ १० ॥

सुप्तामिति । शयनमल्पायुषं सूचयति । रुदतीं दुःखभागिनीम् । निष्क्रान्तां गृहान्निष्क्रामन्तीम् । गृहत्यागिनीं दृष्ट्वा वरणकाले वरयिता वर्जयेत् ॥ १० ॥

जो कन्या सोती मिले तो यह लक्षण उसकी कम उमरका सूचक है । जो रोती मिले तो समझना चाहिये कि विधवा होकर दुःख भोगेगी । जो वरणके समय घरको छोड़कर बाहिर जाय तो समझ लेना चाहिये कि यह बाहिर जायगी । इस कारण उसके साथ भी विवाह न करना चाहिये । ये तीन अशुभ लक्षण सामायिक दशाओंसे जाने जाते हैं ॥ १० ॥

अप्रशस्तनामधेयां च गुप्तां दत्तां घोनां पृषतामृषभां विनतां विकटां विमुण्डां शुचिदूषितां सांकरिकीं राकां फलिनीं मित्रां स्वनुजां वर्षकरीं च वर्जयेत् ॥ ११ ॥

जिसका नाम अच्छा न हो, जो छिपाई जाय तथा घोना, पृषता, ऋषभा, विनता, विकटा, विमुण्डा, शुचिदूषिता, सांकरिकी, राका, फलिनी, मित्रा, स्वनुजा और वर्षकरी कन्याके साथ भी विवाह न करना चाहिये ॥ ११ ॥

अप्रशस्तनामधेयामिति भङ्गिका वित्राटिकेति । गुप्तामप्रदर्शिताम् । आशङ्क्यमानदोषत्वात् । दत्तामित्यनन्यपूर्वामित्यस्य, घोनादयश्च लक्षणसंपन्नामित्यस्य प्रपञ्चोऽवश्यत्यागार्थः । तत्र घोनां कपिलां पतिघ्नीम् । पृषतां शुक्लबिन्दुयुतामर्थहानिकरीं पतिघ्नीं च । ऋषभां पुरुषसंस्थानां दुःशीलाम् । विनतां स्कन्धदेशावनतां दुःशीलाम् । विकटामसंहतोरूं दुःखभागिनीम् । विमुण्डां बृहल्ललाटां पतिघ्नीम् । शुचिदूषितां पितुर्मृतस्य दत्तोल्कां क्रियया न प्रशस्ताम् । सांकरिकीं पुरुषदूषिताम् । तस्यां पत्नीयोगो न धर्मः । राकां जातरजसम् । रजसा क्षतयोनित्वात् । फलिनीं मूकां संव्यवहारबाह्याम् । मित्रां मित्रत्वेन गृहीतामगम्याम् । स्वनुजामिति—त्रिवर्षात्प्रभृति—न्यूनवयसमित्यस्य शेषः । सुष्ठु पश्चाज्जातामित्यर्थः । यथोक्तम्—‘चतुर्थादष्टमं यावत्कनिष्ठा वत्सरे वरात् । कन्यां परिणयेच्छस्तां नेतरातिवयाश्च याः ॥’ वर्षकरीं स्विद्यत्करचरणां पतिघ्नीम् ॥ ११ ॥

भंगिका और वित्राटिका ऐसे नाम अच्छे नहीं होते, जो छिपाई जायगी उसके विषयमें यह आशंका होना स्वाभाविक है कि किसी कारण छिपा रहे हैं। जो किसीको वाणीसे भी दे दी वह अनन्यपूर्वा तो नहीं रही । घोनासे लेकर वर्षकरीतक यह सब दूसरे सूत्रके कहे हुए ‘लक्षण संपन्न’ का ही प्रपंच है, कि इन लक्षणोंवाली कन्याका अवश्य त्याग करना चाहिये । घोना कपिला कहाती है, यह पतिकी घातक है । सफेद बूंदेंवाली पृषता कहाती है, यह अर्थकी हानि करनेवाली और पतिके मारनेवाली होती है । पुरुष जैसे शरीरवाली ऋषभा है, इसके चरित्र अच्छे नहीं होते । जिसके कन्धे नवे रहते हैं उसके भी चाल चलन दुरुस्त नहीं होते । जिसकी जांघें चौड़ी रहती हैं वह विकटा दुःख भोगती है । बड़े ललाटकी विमुण्डा पतिघातक है । जिसने अपने

---

१ “ नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥ अध्याय ५॥ ”
दुष्ट रोगसे पीडिता, कपिलकेशवाली, अत्यन्त बालोंवाली वा बालोंसे रहिता, पिङ्गलाक्षी, कृष्पिन व ऊंगली स्तन आदि अधिक न हों एवम् न अंगहीन ही हो उसे व्याहे ।

मृतक पिताको आग दी हो वह शुचिदूषिता यानी क्रियासे अच्छी नहीं है। जिसको किसी पुरुषने दूषित कर रखा है वह सांकारिकी है, इसको पत्नी बनानेमें कुछ धर्म नहीं है। जो रजस्वला हो गई वह रजसे क्षतयोनि हो गई, वह राका है इस कारण विवाहके योग्य नहीं है। फलिनी मूका (गूंगी) कहाती है, यह व्यवहारसे बाहिर है। जिसका मित्रके रूपमें ग्रहण हो चुका है वह भी अगम्या ही है। जो स्वनुजा यानी तीन वर्षसे कम छोटी हो या अपनेसे बेहद छोटी हो। कहा भी है कि—"जो कन्या वरसे चारवर्षसे लेकर आठ वर्षतक कितनी भी छोटी क्यों न हो तो सबसे अच्छा है। उस कन्याके साथ विवाह तो श्रेष्ठ है पर इससे भी जो कम एवम् अपनेसे बड़ी दोनों ही अच्छी नहीं।" वर्षकरी यानी जिसके हाथ पैरोंपर पसीना आता रहे वह पतिघ्नी होती है ॥ ११ ॥

नक्षत्राख्यां नदीनाम्नीं वृक्षनाम्नीं च गर्हिताम्।
लकाररेफोपान्तां च वरणे परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

नक्षत्र, नदी और वृक्षोंके नामोंवाली निन्दित एवम् जिसके नाममें आन्तिम अक्षरके पास ल और र हों उसे वरणमें परित्याग कर देना चाहिये ॥१२॥

नक्षत्राख्यां श्रवणां विशाखामित्येवमादि। नदीनाम गङ्गायमुनेत्यादि। वृक्षनाम जम्बूः प्रियंगुरित्यादि। लकाररेफोपान्तां चेति—लकाररेफावन्ताक्षरसमीपे नाम्नि यस्याः। कमला विमला चारू तारू चेति ॥ १२ ॥

नक्षत्रोंके जो नाम हैं वे उसके नाम न हों जैसे कि श्रवणा विशाखा ये नक्षत्रोंके नाम हैं। नदियोंके नामकी भी न हो यानी गंगा, जमुना आदि

---

१ अथर्ववेदमें ऐसे दोषोंका निवारण करना लिखा है, इनके लिये बाल्यकालमें माताको प्रयत्न करना चाहिये कि—

"यौ ते मातोन्ममार्ज जातायाः पतिवेदनौ।
दुर्णामा तत्र मा गृधदलिंश उत वत्सपः ॥"

ऐ पुत्रि! जब तू उत्पन्न हुई थी उस समय तेरी माताने तेरे पतिके दुःखादायी कुयोगोंकी शान्ति की थी। जब उनकी शान्ति हो चुकी तो यह बुरे नामके अलिंश और वत्सप जैसे रोग तुझे क्यों चाहेंगे अर्थात् दोषोंकी शान्ति होनेके बाद दोष रहा ही नहीं करते।

२ "नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥"

आर्द्रा विशाखा आदि नक्षत्रोंके नाम न हों, न वृक्ष और नदियोंके ही नाम उसके नाम हों, म्लेच्छ, पर्वत, सर्प, दासके नाम और बुरे नाम भी उसके न हों।

नाम न होने चाहियें । जम्बू , प्रियंगू आदिक वृक्ष नाम भी न रखने चाहिये उपान्त अन्तके पासका नाम है, इसी कारण जिसके नामके अन्तके अक्षरके पास र और ल न हों ऐसा अर्थ किया गया है यानी कमलू विमलू चालू तारू ये नाम ऐसे ही हैं ॥ १२ ॥

यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः । नेतरामाद्रियेत । इत्येके ॥ १३ ॥

जिसपर मन लट्टू और आखें मस्त हों उसके विवाहनेमें त्रिवर्गकी सिद्धि है, दूसरीका आदर न करे । ऐसा भी किसी आचार्य्यका मत है ॥ १३ ॥

मनश्चक्षुषोर्निबन्धनमिति केषांचिन्मतम् । यस्यामभिजनादिसद्भावेऽपि मनःसङ्गश्चक्षुःप्रीतिश्चोभयमपरमस्ति तस्यां पत्न्यां सत्यां सिद्धिस्त्रिवर्गप्राप्तिरित्ययमुत्तमः पक्षः । नेतरामिति । यस्यां नास्ति न तामाद्रियेतेत्यधमः पक्षः । केवलमभिजनाद्यपेक्षां वरयेत् । पूर्वामादरेणेति विशेषः । दोषेषु तु मनश्चक्षुर्निबन्धनेऽप्युपेक्षाम् । तत्रापि दोषाणां गुरुलाघवं परीक्ष्यमिति ॥ १३ ॥

कन्याके अनेक परिवारवाले आदि होने पर भी जिसको देखकर आखोंमें प्रेम आये और उसमें मन रंग जाय ये दोनों बातें हों, उसी पत्नीकी प्राप्तिसे त्रिवर्गकी सिद्धि होती है, दूसरीकीसे नहीं होती, चाहे उसमें हजार गुण हों यह उत्तम पक्ष है । विना आखें लड़े और मन लगे केवल अन्य बातें देखकर विवाह करना उत्तम न होकर अधम पक्षमें आता है, जिसे ऐसी ताकतकी आवश्यकता हो वह भले ही केवल अभिजन आदि देखकर कन्या वर ले पर पहिला पक्ष आदरका है । यदि दोष ज्यादा दीखें तो भले ही नयनप्रीति और मनःसंग हो फिर भी विवाह न करना चाहिये । इसमें भी दोषोंकी गुरुता और लघुता देख अवश्य ले ॥ १३ ॥

कन्यापक्षकी तयारी ।

कन्यापक्षे वरणनिमित्तं संविधानमाह—

कन्याके अभिभावकोंको विवाह सगाईके लिये कन्याके विषयमें जो तयारी करनी चाहिये, उसे बताते हैं कि—

तस्मात्प्रदानसमये कन्यामुदारवेषां स्थापयेयुः । अपराह्णिकं च । नित्यं प्रासाधितायाः सखीभिः सह

क्रीडा । यज्ञविवाहादिषु जनसंद्रावेषु प्रायत्निकं दर्श-नम् । तथोत्सवेषु च । पण्यसधर्मत्वात् ॥ १४ ॥

इस कारण प्रदानके समय कन्याका उदार भेष करके रखना चाहिये, इससे पहिलेके दिनोंमें भी यदि कन्या अपनी सखियोंमें खेले तो साफ सुथरी होकर ही खेले । जिनमें बहुतसे आदमी इकट्ठे हों ऐसे यज्ञ, विवाह आदिकोंमें उसे कोई प्रयत्नके साथ देख सके । यही बात उत्सवोंमें होनी चांहिये, क्योंकि यह तो विक्रीकी वस्तु जैसी ही तो ह ॥ १४ ॥

तस्मादिति—यतः सुप्ताद्यनिमित्तात्कन्या न व्रियते तस्मात् । प्रदानसमय इति—उपलक्षणार्थत्वाद्वरणकालेऽपि । प्रसाधितां स्थापयेयुः कन्याप-क्षीयाः । अपराह्णिकमिति—प्रदानात्प्रागपराह्णभवं विधिम् । स्थापयेयुरित्येव । तमाह—नित्यमिति । सखीभिः सह क्रीडा रथ्याचत्वरादिषु । यज्ञविवाहादिषु चान्यदीयेषु । जनसंद्रावेष्विति । जनाः संभूय द्रवन्ति येषु । 'समि युद्रुदुवः' इति अकर्तरि कारके घञ् । प्रायत्निकमिति प्रयत्नसाध्यम् । परिचाराधिष्ठितत्वात् कौतुकेन लोको यत्नेन पश्यति । तथोत्सवेषु च वसन्तकादिषु जनसंद्रावेषु प्राय-त्निकम् । पण्यसधर्मत्वादिति—विक्रेतव्यतुल्यकौतुकेन हि लोको यत्नेन पश्यति । न दृश्यमाना पण्यवद्व्रियेत ॥ १४ ॥

सोती रोती एवम् घरसे बाहिर भजती कन्याको अशुभ समझकर नहीं लेते, इस कारण प्रदानके समयमें कन्याको प्रसन्न साफ सुथरी करके रखना चाहिये । यहां 'प्रदानके समयमें' यह उपलक्षण होनेके कारण वरणके समयका भी बोधक है, इस कारण इसके साथ 'वरणका समय' और समझना चाहिये, कि प्रदानके समय एवम् सगाईके समय भी सजाकर रखे। यह कन्यापक्षवालोंका कार्य्य है, इसके सिवा उनका यह भी कार्य्य होना चाहिये कि विवाह सगाईसे पहिले भी नीचे लिखी हुई विधिसे कन्याको रखें कि हमेशा गली चबूतरे आदिपर सखियोंके साथ खेलते समय एवम् दूसरेके यज्ञ, विवाह आदिके समय अथवा जनसंद्राव[1] यानी जिन जग-होंमें मनुष्य इकट्ठे होकर चलते हैं उन जगहोंमें कन्याके साथ नौकरानियां

---

१ 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'द्रु' गतौ धातुसे "समि युद्रुदुवः ३-३-२३" इस सूत्रसे अधिकरणमें 'घञ्' प्रत्यय होकर संद्राव शब्द बनता है ॥

आदि हों; जिससे लोग उसे कौतुकके साथ देखें एवम् प्रयत्नके साथ देख सकें। जिन उत्सवोंमें बहुतसे आदमी आयें जायें उनमें भी यही व्यवस्था होनी चाहिये कि प्रयत्नसे देख सकें, क्योंकि वह तो बेचनेके योग्य वस्तु जैसी ही है, लोग उसे उसी तरह कौतुकसे देखते हैं। यदि वह अनायासही दीखेगी तो बिक्रीकी वस्तुकी तरह उसकी कीमत कम हो जायगी, अतएव ऐसा होना न चाहिये कि वह मारी मारी फिरे ॥ १४ ॥

स्वागत सत्कार ।

वरयितॄणां च लक्षणमुपचारं चाह—

वरोंके लक्षण एवम् उनका तथा उनके सम्बन्धियोंका कन्याके अभिभावकोंसे उपचार (स्वागत सत्कार) होना चाहिये, यह बताते हैं कि—

वरणार्थमुपगतांश्च भद्रदर्शनान् प्रदक्षिणवाचश्च तत्सं-बन्धिसङ्गतान् पुरुषान्मङ्गलैः प्रतिगृह्णीयुः ॥ १५ ॥

वरणके लिये मिले सुहावने मधुरभाषी वर एवम् उनके साथके उनके सम्बन्धियोंको मंगलकृत्यके साथ कन्याके अभिभावुक लें ॥ १५ ॥

वरणार्थमिति । अहीनाङ्गत्वान्मङ्गलाचारप्रयुक्तत्वात् । प्रदक्षिणवाच इति-अनुकूलवाचः । तत्संबन्धिसंगतानिति—यत्प्रागुक्तं मित्राणि संबन्धिनश्चेति तैः सहेत्यर्थः । मङ्गलैर्दध्यक्षतादिभिः, प्रतिगृह्णीयात् कन्यापक्षीयः ॥ १५ ॥

सगाईके लिये जो वर मिलें वे हीन अंगवाले न हों ऐसे स्वयम् ही मंगलीक होते हैं वे मधुर एवम् कन्या पक्षके अनुकूल बोलनेवाले भी हों। उन्हें, उनके साथी, उनके मित्र और सम्बन्धियोंके साथ, जो कि चौथे सूत्रमें कहे जा चुके हैं, कन्या पक्षवालोंको चाहिये कि मंगलीक दधि अक्षत आदिकोंसे स्वागत सत्कारके साथ लें ॥ १५ ॥

कन्या दिखानेकी रीति ।

कन्यां चैषामलङ्कृतामन्यापदेशेन दर्शयेयुः ॥ १६ ॥

इन्हें किसी बहानेसे सिंगरी हुई लड़की दिखानी चाहिये ॥ १६ ॥

अन्यापदेशेनेति—अन्यकार्यमपदिश्य न तूपेत्य दर्शयेत्, दानस्यानिश्चितत्वात् ॥ १६ ॥

जब ये लड़की देखना चाहें तो किसी कामके बहाने लड़कीको दिखाना चाहिये, क्योंकि अभी देना निश्चित तो हुआ ही नहीं है, इस कारण बहानेसे ही दिखाना उचित है ॥ १६ ॥

बदानेबाजीका ढंग ।

दैवं परीक्षणं चावधिं स्थापयेयुः । आ प्रदाननि-श्चयात् ॥ १७ ॥

जबतक लेने देनेका पूरा निश्चय न हो उतने समय तक जन्मपत्र आदिके देखने और परिवारके परामर्श पर रख दे ॥ १७ ॥

दैवं परीक्षणं चेति । यावत्प्रदानं न निश्चीयते तावदेवं प्राजापत्यधीनमिति । परीक्षणं च मित्रस्वजनैः सह निरूपयाम इत्यवधिं स्थापयेयुः ।

जबतक उसका कन्या देनेका निश्चय न हो जाय उतने समयतक कन्या-पक्षवालोंको चाहिये कि कह दें कि प्रजापतिके अधीन है । इनकी विधि मिल जानी चाहिये एवम् यह भी कह दे कि हम इस बातकी अपने मित्र और स्वजनोंके साथ सलाह कर लें; यह अवधि नियत कर दे ।

शकुनपरीक्षा ।

अन्यस्त्वाह—'गोष्ठसीताह्रदवेदिश्मशानेरिणदेवतः । चतुष्पथाच्च मृत्पिण्डैः कुर्याद्दैवपरीक्षणम् ॥' १७ ॥

कोई कोई तो इस विषयमें ऐसा कहते हैं कि—" गउओंके बँधनेकी जगह, हलसे जुता हुआ दुफसली खेत, कुण्ड, वेदी, मसान, ऊसर, जूआ और चौरायेकी मिट्टियोंके पिण्डोंसे दैवकी परीक्षा कर ले। " ॥ १७ ॥

परीक्षाका ढंग ।

यहां केवल इतना ही कह दिया गया है, कि इनसे दैवको परख ले पर कैसे इनसे परखे इस विषयमें विशेष लिखते हैं। महर्षि आश्वलायनने लक्षणोंका जानना कठिन मानकर, कुछ परीक्षाएँ बताई हैं कि—

" अष्टौ पिण्डान् कृत्वा ' ओं ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋते
सत्यं प्रतिष्ठितम् । यदियं कुमार्य्यभिजाता तदिय-
मिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद्दृश्यताम् ' इति
पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारीं ब्रूयादेषामेकं गृहाणेति । "

आठ जगहकी मिट्टी लाकर, एक २ जगहकी मिट्टीका एक २ पिण्ड बनावे और उनको " ऋतमग्रे " इस मंत्रसे अभिमंत्रित करके लड़कीसे कहे कि इन आठों पिण्डोंमेंसे किसी भी एकको ले ले । मंत्रका अर्थ तो यह है, कि—" सबसे पहिले ऋत हुआ था, ऋतमें ही सत्य प्रतिष्ठित हुआ । यदि यह

कुमारी अभिजात है तो अभिजातपनेके बोधक पिण्डको ही उठाये । जो सत्य हो वह दीख जाये " यह मंत्रार्थ पूरा हुआ । कहांकी मिट्टी ले एवम् उनके पिण्डोंके उठानेका क्या फल है, इस विषयमें महर्षि कहते हैं कि-" क्षेत्राद्वे-दुभयतः सस्याद् गृह्णीयादन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यति-इति विद्यात् । गोष्ठात् पशुमती, वेदिपुरीषाद् ब्रह्मवर्चस्विनी, अविदासिनो ह्रदात् सर्वसंपन्ना, देवनात् कितवी, चतुष्पथाद् द्विप्रव्राजिनी, ईरिणादधन्या, श्मशानात् पतिघ्नी ।" (१) यदि सालमें दोबार बोये जानेवाले खेतकी मिट्टीके बनाये हुए पिण्डको उठा ले तो उसकी सन्तान समृद्ध होगी । (२) गउओंके बँधनेकी जगहकी मिट्टीके पिण्डको उठाये तो पशुवाली होगी । (३) वेदीके पिण्डको उठाये तो ब्रह्मतेजवाली होगी । (४) कभी न सूखनेवाले तालावकी मिट्टीके पिण्डको उठाये तो सर्वसंपन्न हो । (५) यदि जूआकी जगहकी मिट्टी उठा ले तो फरेबिनि होती है । (६) चौरायेकी मिट्टीके पिण्डको उठा ले तो व्यभिचारिणी होती है । (७) यदि ऊषरकी मिट्टीके पिण्डको उठा ले तो बाँझ रहेगी तथा (८) मसानकी मिट्टीके पिण्डको उठा ले तो पतिके मारनेवाली होनी चाहिये । इसके सिवा दूसरे २ अनेकों शकुन हैं, जिनसे होनहारकी परीक्षा हो जाती हैं ।

ध्यान रखनेकी बात ।

स्नानादिषु नियुज्यमाना वरयितारः सर्वं भविष्यती-त्युक्त्वा न तदहरेवाभ्युपगच्छेयुः ॥ १८ ॥

यदि कन्यापक्षवाले उन्हें स्नानआदिके लिये कहें तो वर तथा उसके साथियोंको चाहिये, कि ' सब कुछ हो जायगा ' यह कहकर उस दिन उसे स्वीकार न करें ॥ १८ ॥

स्नानादिषु नियुज्यमानाः कन्यापक्षीयाः । वरयितार इति-वृण्वन्ति ये । सर्वमिति स्नानादिकम् । भविष्यति प्रजापतावनुकूले । तदहरेवेति । तं दिवसं स्नानादिभिर्नाङ्गीकुर्युः ॥ १८ ॥

यदि कन्यापक्षवाले स्नान आदिके लिये तय्यारी करें तो जो वरनेके लिये आये हों वे ' प्रजापतिके अनुकूल होने पर, स्नान आदिक सब कुछ हो जायगा आप इसकी चिन्ता न करें ' ऐसा कहकर केवल उसी दिनको वे स्नानादिक कार्य्य स्वीकार न करें ॥ १८ ॥

विवाहभेद ।

देशप्रवृत्तिसात्म्याद्वा ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवानामन्यतमेन विवाहेन शास्त्रतः परिणयेत् । इति वरणविधानम् ॥१९॥

देशाचार अथवा अपनी अनुकूलतासे ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैव इनमेंसे किसी भी विवाहसे शास्त्रानुसार विवाह कर ले ॥ १९ ॥

देशप्रवृत्तिसात्म्याद्वेति । यस्मिन्देशे या प्रवृत्तिस्तदानुकूल्यादित्यर्थः । ब्राह्मप्राजापत्यार्षदैवतानामिति । एषां धर्म्यत्वादन्यतमेन । तथा चोक्तम्—'सुहृदाहूय कन्यां तु ब्राह्मे दद्यात्स्वलंकृताम् । सह धर्मं चरेत्येवं प्राजापत्योऽभिधीयते ॥ वसुगोमिथुनं दत्त्वा विवाहस्त्वार्ष उच्यते । अन्तर्वेद्यां तु दैवः स्यादृत्विजे कर्म कुर्वते॥' शास्त्रत इति गृह्योक्तेन विधिना । वरणसंविधानं त्रयोविंशं प्रकरणम् १९॥

जिस देशमें जो रीति हो उसके अनुसार ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष और दैवत ये चारों विवाह धर्मानुकूल हैं, इस कारण इन्हीं विवाहोंमेंसे किसी भी विवाहसे अपने गृह्यसूत्रके विधानके अनुसार अपना विवाह कर ले । ऊपर कहे हुए चारों विवाहोंके लक्षण स्वयम् ही टीकाकार बताते हैं, कि–जिसमें शक्तिके अनुसार कन्याको भूषण वसन पहिनाकर सज्जन वरको विना मांगे ही स्वयम् बुलाकर दे दे तो इसे ब्राह्म विवाह कहते हैं । तुम अपने २ धर्मोंका पालन करो, यह कहकर जो मांगनेवाले योग्य वरको कन्या दी जाय, उसको प्राजापत्य कहते हैं । जिसमें वरसे वसु और एक गऊ एवम् एक विजार लेकर विधिके अनुसार कन्या व्याहे उसे आर्ष कहते हैं । (वरसे ये वस्तु कन्याको धर्माचरणके लिये देनेके कारण कन्याका पिता लेता है) । ज्योतिष्टोम आदि यज्ञका प्रारम्भ किया हुआ हो; उसमें विधिपूर्वक कर्म करते हुए ऋत्विज्को जो कन्या दी जाय उसे दैव विवाह कहते हैं । यह वरण विधान नामक तेईसवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ १९ ॥

सम्बन्धनिश्चय प्रकरण ।

अभिजनादिभिः शीलितायामप्यनिश्चिते संबन्धे वरणाभावात्संबन्धनिश्चय उच्यते—

कन्याके लेनेमें जो उसके सहायक शिरपरस्त एवम् जैसे गुणोंवाली चाहिये

---

१ लड़कीके अभिभावकोंको धन देकर लड़की लेना आसुर विवाह है । वरकन्या दोनोंके मनमिलेका सौदा गान्धर्व है । मारकट करके बलपूर्वक ले जाना राक्षस है । सोती मत्त अथवा प्रमत्त कन्याको एकान्तमें खराब कर देनेका नाम पैशाचविवाह है ।

वैसी ही कन्या विवाहके लिये चुन लेनेपर भी विना सम्बन्धके निश्चयके विवाह नहीं हो सकता, इस कारण इस प्रकरणको कहते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

समस्याद्याः सहक्रीडा विवाहाः सङ्गतानि च ।
समानैरेव कार्याणि नोत्तमैर्नापि वाधमैः ॥ २० ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं कि—समस्या आदिक साथके खेल, विवाह और मित्रतादि बराबरवालोंसे करनी चाहिये । यह अपनेसे उत्तम और अधमोंके साथ न करने चाहियें ॥ २० ॥

समस्याद्या इति संभूय क्रीडामादिं कृत्वा । संगतानि सख्यानि । तादृशैरिति समानैः । तुल्यजात्यभिजनद्रव्यायतित्वात् ॥ २० ॥

प्रथमाधिकरणकी तीसरी अध्यायकी उपायभूत चौंसठ कलाओंमें समस्यासे लेकर बहुतोंको मिलकर खेलनेके खेल बताये ह, वे तथा मैत्री और विवाह अपनी बराबरवालोंमें ही अच्छे रहते हैं। यह समानता जाति, अभिजन, द्रव्य और भविष्यकी जड़से देखी जाती हैं ॥ २० ॥

सम्बन्धके भेद ।

तेन समानधर्मोत्तमसंवन्धिभेदात्संबन्धस्त्रिविधः । तस्य कार्यद्वारेण लक्षणमाह—

सब बातोंमें बराबर, उत्तम और हीनके भेदसे सम्बन्ध तीन तरहका होता है, इनमें बराबरवालोंके सम्बन्धको सम्बन्ध कहते हैं । जिस उच्चकुलकी कन्याको लेकर नौकरोंकी तरह रहना पड़े उसका त्याग एवं जहां साले सद्दर पीछे लगे फिरें वह हीन संबन्ध तथा जहां एकको एक बड़ा मानकर राजी हो वह सम्बन्ध है । अब इन तीनों तरहके सम्बन्धोंको कार्य्यके द्वारा कहते हैं, कि—

उच्च सम्बन्ध ।

कन्यां गृहीत्वा वर्तेत प्रेष्यवद्यत्र नायकः ।
तं विद्यादुच्चसंबन्धं परित्यक्तं मनस्विभिः ॥ २१ ॥

जिस सम्बन्धमें कन्या लेकर वर नोंकरोंकी तरह रहे उसे उच्च सम्बन्ध समझना चाहिये । बुद्धिमानोंने इसका त्याग कर दिया है ॥ २१ ॥

कन्यामिति । गृहीत्वा परिणीय । प्रेष्यवद्भृत्यवत् । द्रव्यायत्यभावात् । उच्चसंबन्धमिति अधिकेन च संबन्धनात् । परित्यक्तं मनस्विभिः । ये तु नैवं ते कुर्वन्त्येव ॥ २१ ॥

निर्धन एवम् विना भविष्य उज्ज्वलका वर, कन्याके साथ व्याह करके नौक-रोंकी तरह रहता है, उसे उच्च सम्बन्ध समझना चाहिये । क्योंकि उसने बड़े घरकी लड़कीके साथ सम्बन्ध किया है। ऐसे संबन्धको स्वाभिमानी छोड़ देते हैं । जो मरेदिलके हैं कुछ भी गौरव नहीं रखते वे ऐसे सम्बन्धोंको करते हैं २१

हीन सम्बन्ध ।

स्वामिवद्विचरेद्यत्र बान्धवैः स्वैः पुरस्कृतः ।
अश्लाघ्यो हीनसंबन्धः सोऽपि सद्भिर्विनिन्द्यते ॥ २२॥

जिस सम्बन्धमें अपनी पत्नीके भाई भतोजोंके साथ अगाड़ी २ मालिक-की तरह विचरे ऐसा हीनसम्बन्ध भी श्लाघनीय नहीं है, क्योंकि सज्जन इसकी भी निन्दा करते हैं ॥ २२ ॥

स्वामिवदिति—कन्यां गृहीत्वा प्रभुवद्विचरेत् । द्रव्यायतिमत्वात् । बान्धवैः श्वशुरस्यालकादिभिः प्रेष्यभूतैः परिवृतः । अश्लाघ्य इत्यश्लाघनीयः । तदनुरूप-लोकाचाराभावात् । सद्भिरिति लोकव्यवहारज्ञैः ॥ २२ ॥

वर धनी और उज्वल भविष्यवाला हो एवम् कन्याके पिता भाई आदि उसे चारों ओरसे घेरे रहें, उनके साथ मालिककी तरह विचरे । वे नौंकरोंकी तरह पीछे लगे रहें तो लोकके व्यवहार जाननेवाले सज्जन इसकी निन्दा करते हैं, क्योंकि लोकाचार ऐसा नहीं है, अतः ऐसा सम्बन्ध भी उत्तम नहीं है २२

उचित सम्बन्ध ।

परस्परसुखास्वादा क्रीडा यत्र प्रयुज्यते ।
विशेषयन्ती चान्योन्यं संबन्धः स विधीयते ॥ २३ ॥

जिसमें आपसके सुखोंके आस्वादवाली क्रीडा एक दूसरेको विशेष करती हुई प्रयुक्त हो उस सम्बन्धको करना चाहिये ॥ २३ ॥

परस्परसुखास्वादेति—वरपक्षस्य कन्यापक्षस्य च सुखानुभवो यस्यां परस्पर-प्रयुक्तायां क्रीडायाम् । विशेषयन्ती चान्योन्यं प्रयुज्यते यस्मिन्संबन्धे स संबन्धो विधीयत इति । सद्भिः क्रियत इत्यर्थः । पूर्वौ तु न विधीयेते इत्यर्थोक्तम् ॥ २३ ॥

जिस आपसके खेलमें वरपक्ष और कन्यापक्ष दोनोंको सुख प्रतीत हो एवम् जिस खेलमें एक दूसरेकी विशेषता बढ़ाते हुए ही दोनों प्रवृत्त हों,

जिस सम्बन्धमें ये बातें हों, सज्जन उस सम्बन्धको किया करते हैं। पहिले दोनों सम्बन्धोंको सज्जन नहीं किया करते; इसे ही करते हैं यह इसका अर्थ है ॥ २३ ॥

उच्च हीनमें उच्च श्रेष्ठ है।

तयोरपि कः श्रेयानित्याह—

उच्च और हीन सम्बन्धोंमें कौनसा श्रेष्ठ है, इस बातका निश्चय नीचेके श्लोकसे करते हैं, कि—

कृत्वापि चोच्चसंबन्धं पश्चाज्ज्ञातिषु संनमेत्।
न त्वेव हीनसंबन्धं कुर्यात्साद्भिर्विनिन्दितम् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे सांप्रयोगिके तृतीयेऽधिकरणे
वरणविधानं संबन्धनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः।

उच्च सम्बन्ध करके भी पीछे अपने बन्धुओंमें उसे ले आये; परन्तु सज्जनोंसे निन्दित हीनसम्बन्धको तो कभी भी न करे ॥ २४ ॥

कृत्वापीति। ज्ञातिषु संनमेदिति—ज्ञातिगृहे स्वयं यायात्। न श्वाशुरगृह इत्यर्थः। न त्वेवेत्येकान्तेनैव प्रतिषेधः। संबन्धनिश्चयश्चतुर्विंशं प्रकरणम् ॥ २४ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे वरणविधानं संबन्धनिश्चयश्च प्रथमोऽध्यायः।

अपनेसे उच्च एवम् समृद्ध कुलकी कन्या लेकर किसी युक्तिसे वा विवाहके समय ही अपने घर ले आये, यह न हो कि उसे व्याहकर श्वसुरके यहां ही पड़ा रहे, इस तरह उच्चसम्बन्धमें तो अपना काम निकाला जा सकता है पर हीन सम्बन्धके दोष नहीं मिटाये जा सकते, इस कारण उसका तो एकदम ही निषेध है। यह सम्बन्धनिश्चय नामक २४ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ २४ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके प्रथम
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

कन्याविस्रम्भण प्रकरण ।

एवमधिगताप्यविश्वासिता न प्रयोगार्हेति कन्याविस्रम्भणमुच्यते । तत्र विवाहानन्तरं मङ्गलाचारमाह—

इस प्रकार विवाहसे कन्या पा लेनेपर भी विना उसे अपना पूरा विश्वास दिलाये संप्रयोगके योग्य नहीं होती, इस कारण विवाहके कहनेके बाद अब ' कन्याविस्रम्भण ' कहते हैं ।

ब्रह्मचर्य्यकी तीन दिन रातोंके कृत्य ।

संगतयोस्त्रिरात्रमधः शय्या ब्रह्मचर्यं क्षारलवणवर्जमाहारस्तथा सप्ताहं सतूर्यमङ्गलस्नानं प्रसाधनं सहभोजनं च प्रेक्षा संबन्धिनां च पूजनम् । इति सार्ववर्णिकम् ॥१॥

विवाहके बाद तीन रात नीचे सोयें, ब्रह्मचर्य्यका पालन करें, क्षार और लवणरहित आहार करें । पहिलेकी तरह सातदिन और मंगलसे रहें, बाजे और मंगलोंके साथ स्नान करें, आभूषण धारण करें, एक जगह भोजन करें, खेल देखें, सम्बन्धियोंका सत्कार करें ॥ १ ॥

संगतयोरिति—परिणयात्प्राप्तसमागमयोः । त्रिरात्रमिति—रात्रिग्रहणं रात्रिकर्मप्रदर्शनार्थम् । अधः शय्या–भूमौ शयनम्, न खट्वायाम् । ब्रह्मचर्यं यावच्चतुर्थिकाहोमो न क्रियते । दिवामैथुनस्य प्रतिषिद्धत्वात् । क्षारः–फाणितगुडादिः । लवणम्–सैन्धवादि, तद्वर्जं भोजनं मधुक्षीरघृतसंस्कृतप्रायम् । तच्च नक्तं स्यात्, रात्रिकर्मवर्गे पठितत्वात् । तथा सप्ताहमिति, यथा त्र्यहम्, तदूर्ध्वमपराणि सप्तानीत्यर्थः । अहर्ग्रहणं दिनकर्मप्रदर्शनार्थम् । सवाद्यं समङ्गलं सगीतं स्नानं च । प्रसाधनं मण्डनम् । सहभोजनं चेति—एकस्मिन्स्थाने । पूर्वत्रापि सहभोजनं किं तु व्रतस्थत्वात्क्षारलवणवर्जं नक्तं च तदिति । प्रेक्षा संबन्धिनां नटादीनां च दर्शनम् । पूजनं च गन्धमाल्यादिभिः । सार्ववर्णिकमिति–चतुर्ष्वपि ब्राह्मणादिवर्णेषु भवम्, अविरुद्धत्वात् । एतच्च लोके दशरात्रिकमित्युच्यते । तथा चोक्तम्—'कन्यावेश्मनि निर्वर्त्य राजवद्दशरात्रिकम् । सभार्यः स्वगृहं यायात् स्थितेर्वा कुलदेशयोः ॥' इति ॥ १ ॥

विवाह होनेके कारण जिन्हें परस्परकी प्राप्ति हो गई है; उन कन्यावरोंको चाहिये कि तीनरात भूमिपर शयन करें, खाटपर न सोयें, विवाहके दिनसे लेकर चौथे दिन चतुर्थिकाहोम होता है । उसदिन तक ब्रह्मचर्य्यका ही पालन करे। सूत्रमें रात्रिग्रहण रातिके कर्म्मोंका उपलक्षक है; इससे ये ब्रह्मचर्य्य आदि भी रातके लिये ही कहे गये हैं। दिनका निषेध तो इस लिये नहीं किया, कि दिनमें तो सुतराम् ही मैथुनका निषेध है। लवण(नमक) जैसे सैन्धव और साँभर आदि तथा फाणित गुड आदि क्षारोंको न खाय । इन दोनोंको छोड़-कर जो भोजन होगा वह प्रायः मधु, क्षीर और घृतसे ही संस्कृत होगा । वह भी रातको होना चाहिये, क्योंकि रातिके कर्म्मोंके वर्गमें पढ़ा हुआ है । जैसे तीन दिन रहा था उसी तरह उससे आगे सात दिन और बाजे मंगल और गीतोंके साथ स्नान होना चाहिये । दिन ग्रहण दिनके कामोंको दिखानेके लिये है, जैसे कि रातिग्रहण रातिके कामोंको दिखानेके लिये था । आभूषण धारण और एक जगह भोजन होना चाहिये, रातमें भी पहिले तीन दिन भोजन था, किन्तु उन दिनोंमें व्रती होनेके कारण रातमें सहभोज क्षार और लवण रहित होता है पर इसमें यह बात नहीं है । सम्बन्धी और नटादिकोंके खेलोंको देखना चाहिये एवम् गन्ध, माला आदिसे पूजन करना चाहिये । यह सब बात ब्राह्मणादि सभी वर्णोंमें होनी चाहिये, क्योंकि किसीके विरुद्ध नहीं है । इसे लोकमें दशरातिका व्रत कहते हैं । यही कहा भी है, कि—" राजाकी तरह कन्याके घरमें दशदिन बिताकर, पीछे स्त्रीको लेकर घर चला आये। अथवा जैसी कुल और देशकी प्रथा हो उसके अनुसार सुसराल रहकर अपने घर चला आये । " ॥ १ ॥

इसपर धर्मशास्त्र ।

" त्रिरात्रमक्षारालवणाशिनौ स्यातामधः शयीयाताᳬसंवत्सरं
न मिथुनमुपेयातां द्वादशरात्रᳬषड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः । "

यह पारस्करगृह्यसूत्रकी आठवीं कण्डिकामें लिखा है । इसका हरिहर भाष्यने यह अर्थ किया है, कि—

" विवाहदिनमारभ्य, त्रिरात्रम्—त्रीणि अहोरात्राणि, अक्षारालव-णाशिनौ—अक्षारं च अलवणं च अक्षारालवणम्, तत् अश्नीत इत्येवं शीलौ अक्षारालवणाशिनौ, स्याताम्—भवेताम्, अधः—आस्तृतभूमौ न खट्वायाम, शयीयाताम्। संवत्सरम्—वर्षं यावत्, मिथुनम्—अभिगमनम्, नोपेयाताम्—नोपगच्छेयाताम् । अथवा

द्वादशरात्रम्, अथवा षड्रात्रम्, यद्वा त्रिरात्रम्, अन्ततः संवत्सरादि पक्षाणामन्ते त्रिरात्रमित्यर्थः । संवत्सरादिविकल्पास्तु शक्त्यपेक्षया व्यवस्थिता ज्ञेयाः ।"

विवाहके दिनसे लेकर, तीन दिन रात अक्षार और अलवणवाली वस्तुका भोजन करें। हरिहर भाष्यने अक्षारका विवरण नहीं किया है, किन्तु जयमंगलाने क्षारसे फाणित गुड़ आदि ले लिये हैं, कि इन्हें भी न खाये तथा मधु दुग्ध और घृतयुक्त वस्तुके भोजनका निर्देश भी कर दिया है। हरिहर खाली जमीनपर नहीं, किन्तु बिछाकर सोनेके लिये कहते हैं एवम् खट्वाका निषेध करते हैं। इनके चार पक्ष हैं—साल, बारह दिन, छः दिन अथवा तीन दिन सहवास न करे। इन चारोंमें तीन दिनका पक्ष अन्तिम पक्ष है। ये चारों पक्ष अव्यवस्थित नहीं है, कि मनमाने सो करे, किन्तु कन्यावरकी सहवासशक्तिके अनुसार इनकी व्यवस्था है। जहां तीन रातकी ब्रह्मचर्य्यकी बात है उसमें भी इतनी विशेषता है, कि—

"त्रिरात्रपक्षाश्रयणेऽपि चतुर्थीकर्मानन्तरं पञ्चम्यादिरात्रावभिगमनं चतुर्थीकर्म्मणः प्राक् तस्या भार्य्यात्वमेव न संवृत्तं विवाहैकदेशत्वाच्चतुर्थीकर्म्मणः"

चतुर्थीकर्मके हो जानेके बाद पांचवीं रातिसे अभिगमन हो सकता है। क्योंकि विना चतुर्थीकर्मके तो वह स्त्री ही नहीं बनी। क्योंकि चतुर्थीकर्म भी तो विवाहविधिका ही एक अंग है, इस कारण ब्रह्मचर्य्यके विरुद्धके कार्य्य चतुर्थीकर्मके पीछे ही होने चाहियें। यह एककी व्यवस्था है औरोंको भी अपने २ गृह्यसूत्रके अनुसार यह व्यवस्था समझलेनी चाहिये॥

बाभ्रवीयोंके यहां पहिलीरातको भी विस्रम्भके उपाय।

विस्रम्भणोपायमाह—

कन्याको किसप्रकार धिजाया जाता है इस विधिको बताते हैं कि—

तस्मिन्नेतां निशि विजने मृदुभिरुपचारैरुपक्रमेत ॥ २ ॥

इन रातोंमें एकान्तमें कोमल उपचारोंसे उसका उपक्रमण करना चाहिये २॥

तस्मिन्निति—दशरात्रिके। कन्या द्विविधा—संसर्गयोग्या इतरा च। पूर्वस्या विस्रम्भणं रतापेक्षया, द्वितीयाया भयलज्जापगमापेक्षया। निशि मन्दसाध्वसत्वात्। विजने—कौतुकगृहे। लज्जापगमात्। मृदुभिरुपचारैरिति—अनुद्वेगकरैरालापस्पर्शनादिभिः॥ २॥

कन्या दो तरहकी होती है—एक तो संसर्गके योग्य रहती है एवम् एक संसर्गके योग्य नहीं भी होती । जो संसर्गके लायक है उसे रमणके काममें अपने प्रति विश्वस्त बना ले एवम् जो छोटी होनेके कारण सहवासके योग्य नहीं है, उससे अपना भय और लाज निकालनेका काम करना चाहिये। रातमें भय कम रहता है, एकान्तमें कौतुकागारमें लाज भी कम रहती है। इस कारण इन दशरातोंमें इस जगह जिनके करनेसे कन्या उद्विग्न न हो ऐसी बातें करनी चाहियें तथा छूनाछाना भी उसी तरह होना चाहिये जिससे कि उसे कोई उद्वेग न प्रतीत हो ॥ २ ॥

संभोगके योग्य कन्या ।

अब हम यशोधरके इस वाक्यको देखकर, कि—"एक संसर्गके योग्य रहती है" यह विचार होता है कि कन्या संसर्गके योग्य कौनसी रहती है; जिसके साथ विवाह होते ही सहवासकी कोशिश वरको करनी चाहिये। इसपर हमें तीन बातोंपर विचार करना पड़ेगा, एक तो उसके शरीरपर तथा दूसरा उसकी आयुपर और तीसरा उसके ऋतुकालपर । स्मृतिकारोंने कन्या और वरकी आयुके विषयमें कहा है कि—

" त्रिंशद्वर्षोद्वहेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥ "

तीस वर्षका वर और १२ वर्षकी कन्या तथा २४ वर्षका वर और ८ वर्षकी कन्या । यह साधारण जोट है, आपत्तिकालमें इसमें कुछ उलटफेर भी हो जाता है। पर महर्षि सुश्रुतने अपनी संहिताके शारीरस्थान अध्याय १० के ६६ में लिखा है कि—"अस्यै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत् पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति " २५ वर्षके वरको बारहवर्षकी लड़की विवाहे, इस संयोगसे वह पितृकार्य्यःएवं धर्म, अर्थ, काम और प्रजा पा जायगा । यदि इनके इस वाक्यपर विचार करके देखें तो यह सारांश निकलता है कि लड़का तीससे छोटा २४ व २५ वर्षका भी हो तो भी कन्या १२ वर्षकी ही चाहिये आठ वर्षकी नहीं । सुश्रुत तो १२ वर्षकी लड़की और २५ के लड़केकी जोड़ीपर आये थे किन्तु वाग्भट तो २० वर्षके युवकको गर्भधारण कराने योग्य भी बता रहे हैं कि—

" पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन संगता ।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनले हृदि । वीर्य्यवन्तं सुतं सूते ॥"

वा. शा. अ. ९ ।

सोलह वर्षकी स्त्री वीस वर्षके युवकके साथ सहवास करे तो यदि गर्भाशय शुद्ध हो, एवम् वीर्य्य, रज और मन शुद्ध हों तो बलवान् सुन्दर पुत्रको पैदा करते हैं । इससे यह तो सुतरां सिद्ध हो गया कि २० वर्षका युवक गर्भ धारण करानेमें समर्थ होता है । तब स्मृतियोंका तीसवर्षका विवाहका समय विद्याग्रहण करनेके कारण है । जो विद्याग्रहणसे प्रयोजन न रखें वे बीससे पहिले भी विवाह कर सकते हैं । सहवासका स्मार्तकाल—निर्णयसिन्धु, धर्मसिन्धु आदि धर्मग्रन्थ तथा कृष्णयजुर्वेदमें प्रथम रजोदर्शनके बाद स्त्रीको सहवासके योग्य बता दिया है, कि—"ऋतुकालाभिगामी स्यात्" ऋतुकालमें गमन करे । पराशरने ऋतुकालके गमन न करनेपर दोष लिखा है कि—

"ऋतुस्नातां तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपगच्छति ।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पतते नात्र संशयः ॥"

जो ऋतुस्नान की हुई स्त्रीसे सहवास नहीं करता वह घोर भ्रूणहत्यासे लिप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है । इससे यह सुतरां सिद्ध हो जाता है कि प्रथम रजोदर्शनसे लेकर ही सहवासका समय प्रारंभ हो जाता है । रजस्वलाकाल—प्रथम रजस्वला होनेके बाद ही स्त्रीसे सहवास करनेके स्मृतिकारोंके विधानमें इस बातको जाननेकी आवश्यकता पड़ती है, कि रजस्वला होनेका साधारण काल कौनसा है ? इसपर वाग्भट कहते हैं, कि—

"मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ।
वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥"

लड़कीके बारह वर्षकी होजानेके बाद प्रतिमास रसजनित रज तीन दिन तक झरता है । इस प्रकार स्त्रीकी पचासवर्षकी आयुके बाद समाप्त होजाता है । यही भावामिश्र अपने ग्रन्थमें कहते हैं । इससे यह सिद्ध हो गया कि सहवास—करनेकी भी कन्याकी आयु यही है । यदि शरीर हृष्टपुष्ट है, कोई रोग नहीं है तो १२ वर्षकी आयुमें इस योग्य हो जाती है तथा रजस्वला भी ठीक समयपर हो जाती है तथा कहीं जलवायुके परिवर्तनसे इस कालमें भी परिवर्तन हो जाता है, इसमें योग्य पुरुषोंके लिये केवल विचार इसी बातका है, कि रजोदर्शनके बाद ही उनकी प्रवृत्ति होती है । स्त्रीकी पुरुषोंकी चाहका यही समय है, रजस्वला होनेके समयसे पहिलेकी चाहें देखादेखीकी

नकलें हैं, हार्दिक नहीं कही जा सकतीं, किन्तु लगे पीछे तो यह व्यसन ही है। पड़े पीछे तो रस ही भान होता है विना बोधके छूटना मुश्किल है। इस विषयपर मुझे बालवेश्या प्रथाको बंगालसे उठा देनेवाले एक अंग्रेज अफसरके व्याख्यानकी याद आती है, उन्होंने कहा था कि–जब मैं यह स्मरण करता हूं, कि–"१० वर्षकी कन्याओंके साथ क्या २ होता है तो मेरे हृदयमें मार्मिक पीडा होजाती है।" उनका कथन इस विनापर था कि कलकत्ताकी वेश्याएँ दश २ वर्षकी लड़कियोंको अप्राकृतिक उपायोंसे इस योग्य बना डालती थीं कि वे अच्छे २ तकड़े बड़े साधनके पुरुषोंको भी सभाँल लें। इन सब बातोंको देखकर, मैं इतना अवश्य कहूंगा कि अभिभावुक और मा बापोंके चारित्र्यका बालिकापर बुरा असर पड़ता है। यदि मा बापोंकी असावधानीसे बालिकाको किसी गन्दी औरतसे बुरी शिक्षा मिल जाती है तो फिर उसका ध्यान अपनी आयुपर नहीं रहता, ऐसी लड़कियाँ भी हम उम्रोंसे बिगड़ती हुई बड़ों २ तक पहुँच जाती हैं फिर इनका भी यही हाल हो जाता है कि शरीरके जीर्ण शीर्ण एवम् अङ्गोंके विकृत हो जानेपर भी इन्हें दो चार युवक रोज चाहियें। आज कलिमहाराजकी कृपा सर्वत्र फैल रही है। कहीं २ कोई २ अपनी बालिकाओंके दुश्चरित्रोंको देखकर राजी होनेवाली सद्गृहस्थके ऊपरीरूपसे छिपी हुई अनेकों वेश्या माताएँ जब अपने शरीरको इस योग्य नहीं देखतीं कि पुरुष चाह करें तो अपनी नादान बच्चियोंको क्रमशः सब उपमर्दोंकी योग्य बनाकर उसके पीछे अच्छे २ युवकोंसे अपना मतलब सिद्ध करती रहती हैं। बड़ी होनेपर ये छोकड़ियां भी इतनी बड़ी आगकी बन जाती हैं एवम् रूप, यौवन और शरीर सब कुछ छोटी ही आयुमें गमाकर थोथी हो बैठ जाती हैं। आज इस लीलाका भी घासलेटी साहित्य काफी संख्यामें निकल चुका है। एकबार एक सिविल-सर्जनने एक घराने घरकी लड़कीके बारेमें लिखा था, कि एक लड़कीको बाल्यकालमें ऐसी ही गन्दी आदत लग गई थी, कि अनेक युवकोंके विना शान्ति ही नहीं होती थी। अन्तमें यह हुआ कि उसे घर छोड़कर वेश्या बनना पड़ा। वहां भी जब उसे कोई नहीं मिलता था तो हस्तक्रियासे ही अपना निर्वाह करती थी। आखिरको इस गन्दे व्यसनसे उसका मौतने ही पीछा छुड़ाया। इस सब लिखनेका मेरा तात्पर्य्य यही है, कि रजस्वला तक अछूती रहनेवाली बालियाओंकी जो रजस्वला होनेके बाद इच्छा होती है वह कामकलाके विकाशके कारण होती है, किन्तु जो रजस्वला होनेके पहिले इच्छा होती है वह सर्व प्रथम तो गन्दी सुहबत और गन्दी शिक्षा तथा गन्दि-

गीके देखनेसे ही होती है एवम् फिर बारंबारकी प्रवृत्ति एवं गन्दे व्यसनके कारण होती है । जो लड़कियां रजोदर्शनसे पहिले गन्दे व्यसनमें पड़ चुकी हैं उनकी आदतें रजकालके बाद और भी बढ़ जाती हैं । आपको यह न समझना चाहिये, कि गन्दगीके देखनेसे कुछ भी बुरा असर नहीं पड़ता । घोड़ीके पास जब घोड़ा बाँध दिया जाता है तो वह मनोविकारके बढ़ जानेसे चित्त चलते ही रजस्वला हो जाती है । इससे कल्याण चाहनेवाले कुटुम्बीको कभी भी गन्दी शुहबतमें बालकोंको न बैठने देना चाहिये ।

चन्द्रकलापर स्वसिद्धान्त ।

भगवान् चन्द्रदेव शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे बढ़ते हैं एवम् पूर्णिमा तक प्रतिदिन एककला रोज बढ़ते हुए पूर्णवृद्धिको प्राप्त हो लेते हैं । पूर्णिकाके बाद ही फिर उनका घटना प्रारम्भ होता है एवम् प्रतिदिन एककला घटते हुए कृष्णपक्षकी समाप्ति तक निःशेष हो लेते हैं । इसीतरह जब स्त्री रजस्वला होती है तो उस दिनसे शुक्लका प्रारंभ होता है । यही हरिहरजीने कहा भी है कि–

" रजोदर्शनमारभ्य आ पञ्चदश वासरम् ।
शुक्लपक्ष इति ख्यातः कृष्णपक्षस्तथोपरि ॥"

रजोदर्शनसे लेकर पन्द्रह दिन तक शुक्लपक्ष रहता है तथा इसके बाद कृष्णपक्ष भी पन्द्रह दिन तक चलता है । कई एक मेरे मित्रोंने तो स्त्रीके रजस्वला होनेके प्रथमदिन कृष्णपक्षकी प्रतिपदा माना है । जैसा कि हम २६० वें पृष्ठमें दिखा चुके हैं । यह उनकी धारणा गलत है । क्योंकि ऐसा चन्द्रकी कलाओंसे बिलकुल उलटा हो जाता है एवम् जिस सादृश्यको लेकर कामके प्राकटयका नाम चन्द्रकला रखा जा रहा है, उसका कोई भी स्वारस्य न रहेगा । सभी आचार्य्योंने ऊपर बताये हुए सादृश्यको लेकर ही कामकलाओंका नाम चन्द्रकला रखा है। अनङ्गरंगके लेखक कल्याणमल्लजी कहते हैं कि–

" सीमन्ताक्ष्यधरे कपोलगलके कक्षाकुचोरःस्थले,
नाभिश्रोणिवराङ्गजानुविषये गुल्फे पदे गुह्यके ।
कृष्णाकृष्णविभागतो मनसिजस्तिष्ठेत् क्रमाद् योषितां,
वामाङ्गेष्वध ऊर्ध्वतोऽभिगमनान्मासस्य पक्षद्वये ॥"

माँग, आँख, अधर, कपोल, गल, काँखे, कुच, उर, नाभि, कमर, मदनमंदिर, जानु, गुल्फ, पद, गुह्यक, इन अंगोंमें कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षके विभागसे वामाङ्गोंमें नीचे और दाहिने अंगोंमें ऊपर चढ़ना होता है । हमने जो २६१

पृष्ठमें नकसा रखा है, वह इसी सिद्धान्तके अनुसार रखा है । जब ये कृष्ण-पक्ष वामअंग और नीचेके गमनसे चलते हैं तो इनकी रजस्वला होनेके दिन कृष्णपक्षकी प्रतिपदा हो ही गी इसमें सन्देह ही क्या है, यही कारण है कि मुकलावाबहारके लेखकने यही क्रम ले लिया है । कामशास्त्रीय अनेक ग्रन्थोंके भाषाटीकाकार पं. भगीरथस्वामी आयुर्वेदाचार्य्य भी इसके प्रभावसे मुक्त नहीं हुए हैं । उन्होंने भी कोकमहाराज लिखित रतिरहस्यके चन्द्राधिकारमें टीका करते हुए लिखा है कि-" दक्षिण छाती पैरके अँगूठेसे लेकर शिरपर्य्यन्त १५ अंगुष्ठादि स्थानोंमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर पूर्णिमा-पर्य्यन्त कामदेवका उत्तरोत्तर वास रहता है और कृष्णपक्षमें प्रतिपदासे लेकर वामभागके मस्तकसे अंगूठे तक क्रमसे अवतरण होता है ।" जब कृष्णपक्षमें वामभागके मस्तकसे अंगूठे तक अवतरण होता है तो शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर जो पूर्णिमातक कामका उत्तरोत्तर वास होता है वह दाहिने अंगसे होगा । यह उन्होंने रतिरहस्यके पाठकी तरफ ध्यान न देकर अनंगरंगके ही प्रभावमें लिख दिया है ।हमने इनका मत पीछे दिखा दिया। इसके सर्वां-शमें ही सहमत हैं ऐसा नहीं है । क्योंकि श्रीपद्मश्रीने नागरसर्वस्वमें कहा है, कि-" वामाङ्गभागोपरि शुक्लपक्षे, कृष्णे च सव्यावयवे तथैव ।" इसपर जग-ज्ज्योतिर्मल्लने लिखा है, कि-" शुक्लपक्षे वामाङ्गभागं व्याप्य समुदेति, कृष्णपक्षे सव्यावयवे दक्षिण अवयवे समुदेति " इसकी टीका श्रीमान् काव्यतीर्थ श्रीधरझाने की है, कि-" शुक्लपक्षमें बाएँ पाँवके अंगुष्ठसे कामका आरोहण होता है और कृष्णपक्षमें शिरसे नीचेतक क्रमशः अवरोहण होता है । यद्यपि श्लोकमें वाम और सव्य शब्द पर्य्यायवाचकसे ही जचते हैं, किन्तु संस्कृत टीकाकारने 'सव्य' का वाम अर्थ न लेकर दक्षिण (दाँया) अर्थ लिया है । टीकाकारने सव्यका दाँया अर्थ, किस आधारपर लिया इसे बताते हैं, कि-" सव्यं वामे च दक्षिणे इति अजयः, सव्यं तु दक्षिणे । वामे च प्रतिकूले च इति विश्वः । " अजय और विश्व दोनों वाम और दक्षिण दोनों अर्थ सव्यके मानते हैं । जब वाम मुकाबिलेमें पड़ा हुआ है तो सव्यका दक्षिण ही अर्थ होगा, सिवा इसके दूसरा यहां अर्थ हो ही नहीं सकता । श्रीधरझाजी 'सव्यावयवे' इसका अर्थ छोड़ ही गये एवम् अगा-ड़ीके श्लोकका उलटा ही अर्थ कर गये, उसी श्लोक एवं उनके अर्थ तथा वास्तविक अर्थको दिखाते हैं, कि—

" अंगुष्ठमूलात्प्रभृति क्रमेण यावच्छिखामूलमुपैति कामः ।
कृष्णे तु पक्षे चरणाग्रदेशं प्रयाति नित्यं शिरसस्तथैव ॥ "

कृष्णपक्षमें अंगुष्ठमूलसे क्रमशः केशपर्य्यंत काम संप्राप्त होता है और उसी शुक्लपक्षमें शिरसे क्रमशः उतर आता है। यह काव्यतीर्थ श्रीश्रीधरझाजीका अर्थ है, मैं उनसे यह पूछता हूं कि जब आप शुक्लपक्षमें बाएँ पाँवके अँगूठेसे आरोहण होता है, यह कह रहे हो तो यहां क्या ऐसी बात हो गई जो उसी शुक्लपक्षमें कामको नीचे उतारने लगे। यह ध्यानके साथ नहीं लिखा। इसका वास्तविक अर्थ तो यह है कि—

"कृष्णे पक्षे तु नित्यं तथैव शिरसः चरणाग्रदेशं प्रयाति अत एव शुक्लपक्षे वामाङ्गभागोपरि अंगुष्ठमूलात्प्रभृति क्रमेण शिखामूलं यावत् कामः उपैति ॥ "

कृष्णपक्षमें तो काम सदा शिरसे क्रमशः पैरोंके अग्रभाग तक आता है एवम् शुक्लपक्षमें काम बाँये अङ्गसे क्रमशः ऊपर चढता है और चोटीतक पहुँचता है। संशोधन करतीवार इधर आयुर्वेदाचार्य्यजीका भी ध्यान नहीं गया है। अनङ्गरंगसे रतिरहस्यकार विपरीत नहीं हैं। उन्होंने लिखा है कि—

" शुक्लाशुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्वनङ्गस्थितिः,
ऊर्ध्वाधोगमनेन वामपदतः पक्षद्वयं लक्षयेत् ॥ "

मृगनयनियोंके शरीरमें कामकी स्थितिको शुक्ल और कृष्णपक्षके विभागसे ऊर्ध्व और अधोगमनसे समझे तथा दोनों पक्षोंमें प्रथम वामपदसे इस विषयपर लक्ष दे। इधर शुक्ल और कृष्णपक्ष ये दो होगये एवम् इनमें ऊर्ध्व और अधोगमन ये दो होगये, अर्थात् शुक्लपक्षमें ऊर्ध्व तथा कृष्णपक्षमें नीचे यह बराबरका अन्वय होगया एवम् किधरके अंगसे प्रारंभ किया जाय इसका उत्तर बायँ पैरसे देखे यह बता दिया। इससे यह सिद्ध अर्थ हो गया कि शुक्लपक्षमें बाँयें पैरसे लेकर क्रमशः ऊपरको कामकी स्थिति समझे तथा कृष्णपक्षसे लेकर दाये अंगोंमें नीचेकी ओर स्थिति समझे। इस सबके देखनेसे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचते हैं कि, अनंगरंग, कृष्णपक्ष और वाम अंगसे नीचे शुरू करता तथा शुक्लमें दाये अंगोंसे क्रमशः ऊपर चढाता है। इसमें हमारा कृष्णपक्षमें नीचे उतरने तथा शुक्लमें ऊपर चढनेके विषयमें तो कोई विवाद नहीं है, किन्तु अंगोंके बायें दायेंके विषयमें तथा प्रारंभके विषयमें विवाद अवश्य है, क्योंकि रजोदर्शन ही चाँददर्शन तथा उसे ही शुक्लपक्ष मानना अधिक युक्तियुक्त जचता है। क्योंकि चाँदके उदयके कारण ही तो पक्ष शुक्लपक्ष कहलाता है।

अंगोंपर विचार ।

अब हम चन्द्रकलाके उतार चढावके अंगोंपर विचार करते हैं, इनपर भी कामशास्त्रके आचार्य्योंके भिन्न २ मत हैं । इनमें अनंगरंगके मतके अंग तो वाक्यको उद्धृत करते हुए दिखा चुके हैं । अब दूसरे आचार्य्योंके अंगग्रहण दिखाते हैं । पद्मश्रीने–पादाग्र, जंघा, ऊरु, योनि, नाभि, कुक्षि, कुच, हस्ततल, गल, होठ, कपोल, नयन, कान, शीर्ष और सर्वाङ्ग इस तरह अंग संभाले हैं । कोकाने–अँगूठा, पद, गुल्फ, जानु, जघन, नाभि, वक्ष, स्तन, काँख, कंठ, कपोल, होठ, नेत्र, माथा, मूर्धा ये अंग गिने हैं । ज्योतिरीश्वरने–अंगूठा, चरण, नितम्ब, जानु, जँघा, नासि, वक्ष, काँख, योनि, कंठ, कपोल, अधर, नत्र, कान, माथा, मोलि, यह चढनेका क्रम तथा सीमन्त, नयन, अधर, गल, कक्षातट, चूचुक, नाभि, श्रोणितट, मदनमंदिर, जङ्घा, गुल्फ, पादतल, उसकी अंगुलियोंके नीचेकी जगह और अंगूठा इस क्रमसे उतरती माना है । इसपर हमें यह विचार होता है, कि चन्द्रकला एक है उसके चढ़ने और उतरनेका भी उसके स्वभावके अनुसार एक ही क्रम होगा, अनेक नहीं हो सकते । तब इनकी योजना अंगक्रमसे होनी चाहिये इनके लेखन क्रमसे नहीं, क्योंकि आचार्य्योंने तो छन्दरचनाके अनुरोधसे ऐसा कर दिया प्रतीत होता है । धर्मशास्त्रवाले शोणितदर्शनसे लेकर चारदिन तो सहवासके योग्य ही नहीं मानते तथा ग्यारहवीं और बारहवीं रातोंमें भी गमन निन्दित ही मानते हैं । बाकी १० रात बचती हैं, इनमें छठीं, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं राति तो पुत्रार्थियोंके लिये तथा पांचवीं, सातवीं, ९ वीं और पंद्रहवीं राति कन्या चाहनेवालोंके लिये हैं । यही वैद्यकशास्त्रका भी मत है, अणुमात्र भी अन्तर नहीं है । ये ही रातें गर्भधारण करनेके योग्य हैं, दूसरी रातोंमें गर्भ नहीं रहता, क्योंकि–

" दिने व्यतीते नियतं संकुचत्यम्बुजं यथा ।
ऋतौ व्यतीते नार्य्यास्तु योनिः संव्रियते तथा ॥ "

दिनके बीत जानेपर जैसे कमलिनी संकुचित हो जाती है, उसी तरह ऋतुकालके बीत जानेपर स्त्रीका गर्भद्वार भी स्वभावसे ही बन्द हो जाता ह। फिर गर्भ नहीं रहता। कृष्णयजुर्वेदमें रजस्वलाका सहवास तो भयङ्कर पापका कारण माना है । यहां तक कि उसके छूने तकका भी निषेध कर दिया है । पांचवीं रातिसे उसके संगका समय प्रारम्भ होता है । जिस दिन उसका स्नान हो चुका, उसदिन काम स्वतः ही प्रदीप्त रहता है । यही वेदमें भी

बताया है, कि–" उतो त्वस्यै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः "
जब स्त्री ऋतुस्नानकर चुकती है एवम् रज शेष हो लेता है तो कामसे अकु-
लाकर अपने शरीरको पतिके सामने खोलकर रख देती है । इससे
यह सीधा प्रतीतहो जाता है, कि पांचमें दिन कामका निवास
उसके मदनमंदिरमें रहता है । जिससे उसको पुरुषके अंगसंगकी इच्छा
होती है, अतः चन्द्रकलाके चढावका भी वही क्रम रहना चाहिये, अतएव
इसीके अनुसार अंग योजना भी करनी चाहिये । यदि अंगोंकी विशेष
क्रियाओंपर दृष्टि डालकर विचारा जाय तो यह बात स्वतः ही बुद्धिमें प्रविष्ट
हो सकती है, कि इस स्त्रीके किस अंगपर विशेष चमत्कार है एवम् सहवा-
समें तो सूक्ष्मदृष्टिसे देखाजाय तो इस बातका आप ही पता चल सकता है।
जिस क्रमसे भगवान्ने स्त्रीके मुख्य १५ अंग बना उनके दाँयें बाँये भाग
किये हैं, उसी क्रमसे उतार चढाव भी होने चाहियें, इस कारण हम इसी
प्रकार रखते हैं । जब काम नहीं तो कामिनि कैसी ? जब कामिनि ही नहीं
तो फिर उसके साथ सहवास कैसा ? इस विचारको बुद्धिमें रखकर इस
बातका प्रतिपादन किया है कि प्रथम रजोदर्शन तक कामिनी नहीं । इसी
दिनसे कामिनी बनती है तथा इसके बाद ही सहवासके योग्य होती है ।
इससे पहिले उसमें सहवासकी वास्तविक योग्यता नहीं, केवल देखा देखी,
चंचलता और असमयके गन्दे स्वादका चसका है । इसी कारण हमने यहाँ
चन्द्रकला विषयक कामशास्त्रका सिद्धान्त दिया है, कि–" नित्यं बाला
सेव्यमाना नित्यं वर्धयते बलम् ।" बाला कभी भी सेवन की जाय बलको ही
बढ़ाती है, इस वैद्यक शास्त्रके वाक्यको तथा महेश्वरके इस सिद्धान्तको न
लिये बैठे रहें कि–

" अलोमकाः सतिलका नित्यं सेव्यास्तु योनयः ।
अलोमकत्वं कक्षेण मुखेन ज्ञायते तिलः ॥ "

निर्लोमं मदनमंदिरका सदा ही सेवन करना चाहिये । एवम् जिस मदन-
मंदिरके सिराहनेकी ओर वा अन्तमें लाल कुंकुमके समान तिल हो वह भी

---

१ साहित्यवालोंने और तो क्या कामशास्त्रके इस एकदेशीय विचारको भी नहीं छोड़ा
है । एक स्थलपर लिखा है कि—
" यभस्व नित्यं यदि शक्तिरस्ति ते, दिने दिने क्षीयति नाथ ! यौवनम् ।
मृतस्य तृप्तोदकपिण्डसन्निधावलोमशं दास्यति को नु ते भगम् । "
पर यह भावना कामशास्त्रकी तात्त्विक दृष्टिकी नहीं, केवल चपलताके कारण है ।

सौभाग्यशालिनी है । निर्लोम मदनमंदिरकी पहिचान कांखोंसे की जा सकती है, कि कांखोंपर बाल न आये तो समझलेना चाहिये कि अलोम है । इस कारण अलोमको देखते देखते कामशास्त्रके पुनीतसिद्धान्तको भुला न बैठें । रजकालसे भी पहिले कहीं असमयमें ही कलियोंको खराब करने लग जायँ । इसी कारण यशोधरजीने कन्याके गम्या अगम्या ये दो भेदकर दिये हैं । इस विषयकी तालिका—जिस दिन स्त्री रजस्वला हो उस दिन शुक्लपक्षकी प्रतिपदा मान, स्त्रीके बाँये पैरके अँगूठासे लेकर प्रतिपदासे कामका चढाब आरंभ होता ह एवम् चन्द्रकला अँगूठा, पैर, घोटूं, जांघें, मदनमंदिर, कुक्ष, नाभि, हृदय, स्तन, काँख, गला, कपोल, अधर, नेत्र, एवम् पन्द्रहवें दिन बायें लँगके केश व मस्तकपर पहुँचकर शुक्लपक्षको विता देती है, १६ वें दिन कृष्णपक्ष लग जाता है, इस कारण दायीं तरफके केशों व इसी तरफके मस्तकपर कृष्णपक्षकी प्रतिपदाके दिन रहती है तथा द्विती-याके दिन इसी ओरके नेत्रपर आके प्रत्येक दिन उतरती हुई इसी क्रमसे पन्द्रहवें दिन दायें पैरके अँगूठापर चली आती है । तब इस सिद्धान्तके अनु-सार २६१ वें पृष्ठमें लिखा हुआ 'चन्द्रकलाका साधारण कोष्ठक' पढ़ना हो तो जहां शुक्लपक्ष दाहिने अंग लिखा हुआ है उसके स्थानमें शुक्लपक्ष बाँया अंग समझकर जो चन्द्रकलाके उत्तरोत्तर चढ़नेका ढंग रखा है उसी ढंगको हमारे सिद्धान्तका समझ ले । जहां उस कोष्ठकमें कृष्णपक्ष बाँया अंग लिखा हुआ है वहां कृष्णपक्ष दायाँ अंग पढ़कर, जो चन्द्रकलाके उतर-नेका ढंग लिखा हुआ है उसे हमारे मतका समझ ले, क्योंकि उक्त कोष्ठ-कमें इतना परिवर्तन होनेपर हमारे मतका हो जायगा, जो कि हमने अनेक ग्रन्थोंके समन्वयपर अपना विचार ठहराया है। २६१ पृष्ठमें जो नकसा दिखाया गया है वह केवल अनङ्गरंगके मतको लेकर दिखाया गया है यदि उस मतमें भी रजो दर्शनसे शुक्ल मान दायें अंगोंमें क्रमसे कामका चढ़ाव माने तो केवल बाँये दायेका ही फर्क रह जायगा । प्रयोक्ता प्रयोग करतीबार व्यवहारमें प्रायः दोनों ओरके ही अंगोंको काममें लाता ह इस कारण कोई तात्त्विक भेद भी न रह जायगा । मैंने पहिले एकदेशी सिद्धान्त ही रखना चाहा था पर इसकी विशेष उपयोगिता समझकर अपनी मतिके अनुसार पूरा रख दिया अब इस शास्त्रके प्रेमियोंकी इच्छा है जो उन्हें रुचिकर जँचे उसे आनन्दके साथ अपना लें । इस प्रकारकी चन्द्रकला जिसके

देहरूपी गगनमण्डलमें, अंगरूपी तारोंको सुशोभित करती हुई उदित होती है वही गम्य है । पहिले कामी लोग ऐसे मौकोंपर उत्सव करते थे यह शृंगार तिलकमें दिखाया गया है ।कामोदयकी आयु एवं कन्याकी शारीरिक स्थिति और आन्तरिक इच्छा देखकर भी लोग प्रवृत्ति कर लेते हैं पर यह पक्ष उत्तम नहीं है ।

ऐसा करनेका कारण ।

किमर्थमुपक्रम्यत इत्याह—

ब्रह्मचर्य्याके दिनोंमें भी वधूके साथ मीठी २ बातें चीतें एवम् मीठा हाथ क्यों फेरा जाता है इस बातको बताते हैं कि—

त्रिरात्रमवचनं हि स्तम्भमिव नायकं पश्यन्ती कन्या निर्विद्येत परिभवेच्च तृतीयामिव प्रकृतिम् । इति बाभ्रवीयाः ॥ ३ ॥

कि तीन रात विना बोलचालके वरको स्तम्भकी तरह देखती हुई दुःखी होगी एवम् उसे नपुंसक समझकर उसका तिरस्कार कर डालेगी ॥ ३ ॥

त्रिरात्रमिति । स्तम्भमिव मूकं निश्चेष्टं तत्र निर्वचनं पश्यन्ती निर्विद्येत । मूकेन ग्राम्येण चाहमूढेति खिद्येत । परिभवेच्चेति—निश्चेष्टत्वान्नपुंसकमिति तिरस्कारबुद्धिं तत्र कुर्यात् ॥ ३ ॥

वधू इन तीन रातोंमें थंभेकी तरह मूक और व्यापाररहित वरको देखकर, उसे यह खयाल होगा कि मेरी शादी किसी गूंगे गँवारके साथ हो गई है । इससे वह मनमें दुःख मानेगी । उसकी रंगरेलीकी चेष्टा देखे विना उसे यह भी खयाल होगा कि यह नपुंसक तो कहीं नहीं है। इससे वह वरके प्रति तिरस्कारकी बुद्धि करेगी ॥ ३ ॥

इसीपर वात्स्यायन ।

अस्मिन्पक्षे सर्वस्याविशङ्कया करणे प्राप्ते प्रतिषेधमाह—

यदि यह बात है तो फिर वरको सभी काम करने चाहियें पर आप उसे ब्रह्मचर्य्यका काल बता रहे हैं ये दो दो बात कैसे हो सकेंगी आपके बताये कारणोंसे उसे सब कुछ करना पड़ेगा अतः सब कुछ का प्रतिषेध करते हैं एवम् उस समयके व्यापारोंको भी नियमित किये देते हैं कि—

उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च, न तु ब्रह्मचर्यमातिवर्तेत । इति वात्स्यायनः ॥ ४ ॥

बताये हुए ही काम करे, उसे धिजाये, किन्तु ब्रह्मचर्य्यका त्याग न करे। यह महर्षिवात्स्यानका मत है ॥ ४ ॥

उपक्रमेत यथा न निर्विद्येत । विस्रम्भयेच्च यथा संप्रयोगेऽनुकूला भवति । न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत । अनुकूलायामप्यकाले व्रतखण्डनस्याधर्मत्वात् ॥ ४ ॥

इतना ही काम करे, जिससे वधू गँवार और नपुंसक समझकर दुःखी न हो, उसे धिजाये भी जिससे संप्रयोगमें अनुकूल रहे, पर ब्रह्मचर्य्य न छोड़े, क्योंकि विना समयके ब्रह्मचर्य्यके छोड़नेमें अधर्म होता है। यानी इससे व्रत खंडित होजाता है ॥ ४ ॥

कोमल उपचार।

उपक्रममाणश्च न प्रसह्य किंचिदाचरेत् ॥ ५ ॥

मृदु उपचार करे भी तो कोई काम जबरदस्ती न करे ॥ ५ ॥

उपक्रममाणश्चेत्यादिना मृदुभिरुपचारैरित्यस्य प्रपञ्चः । न प्रसह्य किंचिदिति। स्पर्शनमपि नाभिभूय कुर्यादित्यर्थः ॥ ५ ॥

बातें करे और हाथ भी फेरे तो विना उसकी राजीके न फेरे। उसकी प्रसन्नताके अनुसार ही ये काम करे। यह दूसरे सूत्रके कहे मृदु उपचारोंके विषयमें ही विशेष विधान है ॥ ५ ॥

इन पाचों सूत्रोंका संग्रह।

"अथ परिणयरात्रौ प्रक्रमेन्नैव किञ्चित्,
तिसृषु हि रजनीषु स्तब्धता तां दुनोति।
त्रिदिनमिह न भिन्द्याद् ब्रह्मचर्य्यं न चास्या,
हृदयमननुरुन्ध्य स्वेच्छया नर्म कुर्य्यात् ॥"

विवाह हो जानेके बाद तीन रात तो किसी भी प्रकारकी कामचेष्टा न करे, यह पहिले सूत्रका सार अर्थ कोक महाराजने रखा है। वात्स्यायनका यह कहना धर्मशास्त्रके अनुसार हुआ है अतएव इसके साथ धर्मशास्त्र भी दिखा दिया है। कोक महाराजने जो अपने श्लोकका दूसरा चरण रखा है वह दूसरे और तीसरे सूत्रके भावपर रखा है, कि समझदार कन्या तीनरात तक उसे निष्क्रिय देखकर दुःखी होगी, कि कहीं नपुंसक तो नहीं है, अतः इन रातोंमें भी कुछ अवश्य होना चाहिये, यह बाभ्रवीयोंके मतका संग्रह कर दिया है। क्या सब कुछ होना चाहिये ? इस शंकापर चौथे और पाँचवें

सूत्रके सारके आधारपर उत्तरार्ध लिख रहे हैं, कि—इन तीन रातोंमें यंत्रयोग करके ब्रह्मचर्य्य तो नष्ट करे नहीं, किन्तु कन्याकी हार्दिक इच्छाके अनुसार यदि वह दुःखी न हो तो उसकी और अपनी तबीयतके बहलावमात्र कर ले।

ब्याहुलीसे इस बर्ताबका कारण ।

किमर्थमित्याह—

मीठी मीठी बातें और मृदुस्पर्शके भी मरजीके अनुसार करनेका कारण यह है कि—

कुसुमसधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः। तास्त्वनधिगतविश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः संप्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति । तस्मात्साम्नैवोपचरेत् ॥ ९ ॥

स्त्रियाँ फूल जैसी होती है, इस कारण उनके फूलकी तरह ही मृदुस्पर्श आदि किये जाते ह । जिनसे वे धीजी नहीं हैं यदि वे पुरुष उनके साथ जबरदस्ती करें तो वे सहवाससे ही घृणा करने लग जाती हैं, इस कारण उनके साथ सब व्यवहार सामके साथ ही होन चाहियें ॥ ९ ॥

कुसुमसधर्माण इति—कुसुमतुल्याः । योषित इति—सर्वा एव, विशेषतः कन्याः । सुकुमारोपक्रमा इति—मृदुरुपक्रमः स्पर्शनादिलक्षणो यासु । अनधिगतविश्वासैरिति—लब्धविश्वासैस्तु प्रसह्योपक्रमो न दोषाय । संप्रयोगद्वेषिण्यो जातानिच्छकत्वात् । तस्मात्साम्नेति—मृदुना। सर्वोपचाराणामयं प्राथमिको विधिः ॥ ९॥

सभी स्त्रियां फूल जैसे स्वभावकी होती हैं एवम् यह बात कन्याओंमें तो विशेषरूपसे है । अतः इनके स्पर्श आदि भी फूलोंकी तरह ही होने चाहियें।

---

१ "कुसुममृदुशरीरा विद्विषन्ति प्रयोगान्,
अनधिगतरहस्यैर्योषितो युज्यमानाः ।
प्रथममिह सखीभिः प्रेम युञ्जीत तस्याः
तदधिकमिह कुर्य्यात् प्रश्रयं येन धत्ते ॥"

पूर्वार्धसे तो कोकने सूत्रका अनुवाद किया है तथा उत्तरार्धमें उसकी एक रीति बताई है, कि पहिले उसकी सखीके साथ प्रीति कर ले । जिससे सखी उसे समझाकर अपने अनुकूल कर दे एवम् उसे अपना विश्वास बँधा है । यहां सखीग्रहण उपलक्षक है. सखी या जिसकी बात कन्याएँ माना करती हैं वह औरत उस कन्यासे कुछ भी काम ले सकती है । जो इस काममें दक्ष होती हैं वे औरतें समझाकर किसीके भी साथ प्रवृत्त कर सकती हैं । यदि ऐसी त्रियाँ उसकी प्रियपात्र बना दें तो वे भी पतिका कुछ काम साध देती हैं। पतिकी शुभचिन्तक योग्य त्रियाँ प्रायः ब्याहुलियोंको उचित शिक्षाएँ दिया करती हैं।

कन्याओंमें तो यह वात विशेषरूपसे है । अतः जिनसे धीजी न हों उन्हें कभी भी जबरदस्ती न करनी चाहिये । पर जिनसे धींजी हुई हैं वे उचित मात्रामें भले ही जबरदस्ती कर सकते हैं । उनका यह काम दोषके लिये नहीं है। विना इच्छाके किये उन्हें सहवाससे ही घृणा हो जाती है, क्योंकि विना चाह पैदा किये करनेसे उन्हें यह पशुता प्रतीत होती है, इस कारण व फिर उसे नहीं चाहतीं, इस कारण कोमल ही सब काम होने चाहियें । यह केवल स्पर्श की ही नहीं सभी उपचारोंकी पहिली विधि है ॥ ६ ॥

विश्वास दिलानेका एक ढंग ।

" तत्करोमि परमभ्युपैपि यन्मा ह्रियं व्रज भियं परित्यज ।
अलिवर्ग इव तेऽहमित्यमूं शश्वदाश्वसनमूचिवान्नलः ॥ "

ऐ प्यारी ! तू शरमाती क्यों है ? आलिङ्गन चुम्बन आदिकोंमेंसे जिस कामके करनेके लिये तू कहेगी वही करूँगा एवं जितना चाहेगी उतना ही करूँगा । फिर डर तुझे किस बातका है । देख, मैं तो तेरी सहेलियोंके माफिक ही हूं । जैसे सहेलियोंसे खेलती है, उसी तरह मुझसे भी खेला कर । नलने इसी प्रकार रातदिन प्यारीको समझाया । विना तबीयत देखे कोइ काम करना रत नहीं किंतु महापाप है । महामना मालवीयजीके सुपुत्रने इलाहावादसे एक पुस्तक प्रकाशित की है उसमें उन्होंने राजकुमारीका दृष्टान्त दिया है, कि उसने पतिदेवको समझा दिया था कि मेरी इच्छासे मेरे साथ कुछ करना चाहते हो तो मेरे सामने कुछ एक प्रतिज्ञाएँ करो नहीं तो याद रखो ? बलात्कारसे आपको कोई सुख उपलब्ध न होगा । यदि तबीयतें खुली हुई हैं एवम् नानूकर भा बनावटी है तो छीनाछपटी चलती है अन्यथा नहीं ।

जैसे रस्ता मिले ।

तत्रालब्धप्रसरस्योपचारयोगासंभावात्तदुपायमाह—

यदि इन कामोंके लिये उसे मौका ही न मिले तो फिर उपचारोंका होना ही असंभव होगा, इस कारण सबसे पहिले मौका लगानेका उपाय बताते हैं-

युक्त्यापि तु यतः प्रसरमुपलभेत्तेनैवानु प्रविशेत् ॥ ७ ॥

युक्तिसे भी तो जिस रासते अवकाश मिले उसी रासते घुस जाय ॥७॥

युक्त्येति—कयाचिदर्थयुक्त्या तत्कालभाविन्या । यतः—प्रसरमिति—तत्सख्या सह संभाषणे क्रीडने वा आत्मनोऽवकाशमुपलभेतेनैव—संभाषणेन क्रीडनेन वा द्वारेण तामनुप्रविशेत् ॥ ७ ॥

यदि उसी समय होनेवाली कोई अर्थ युक्ति हो तो उस युक्तिसे काम करे एवम् उसकी सखियोंके साथ बातें करते वा खेलते जिस तरह अपना अवकाश लगे उसी तरह बातोंसे वा खेलनेसे उसके साथ ताल्लुक प्राप्त करे ॥ ७ ॥

प्रथमके आलिंगनके समय ।

ततो लब्धप्रसरस्य प्रथममुपगूहनेनोपक्रम इत्याह—

यदि इस तरह उसे मौका मिल जाय तो पहिले उसे आलिंगनोंसे काम प्रारंभ करना चाहिये, इसी बातको नीचेके सूत्रसे बताते हैं, कि—

तत्प्रियेणालिङ्गनेनाचरितेन नातिकालत्वात् ॥ ८ ॥

जो आलिंगन करे वह उसे अच्छा लगना चाहिये; ऐसा तभी हो सकता है जब कि थोड़े ही समय हो ॥ ८ ॥

तत्प्रियेणेति । कथं तत्प्रियमित्याह—नातिकालत्वादिति । यद्दत्त्वानन्तरमेवापनीयते, तस्यानुद्वेजनकरत्वात् ॥ ८ ॥

उसको आलिंगन कैसे प्यारा लगता है, इसका स्वयं उत्तर देते हैं कि—' जो करनेके साथ ही हटा लिया जाय ' क्योंकि ऐसे आलिंगनसे उसे उद्वेग नहीं होता ॥ ८ ॥

इसपर साहित्य ।

" सन्निधावपि निजे निवेशिता-मालिभिः कुसुमशस्त्रशास्त्रवित ।
आनयद् व्यवधिमानिव प्रिया-मङ्कपालिवलयेन सन्निधिम् ॥ "

नलके पास भैमीको उसकी सहेली अकेली छोड़कर पान आदि लेने चली गई तो वह अकेली रह गई, नल साधारण नहीं थे, किन्तु कामशास्त्रके पण्डित थे, इस कारण आप उठे और उसे इस प्रकार उसकी बगल और पीठपर हाथ डालकर ले आये जैसे दूर बैठा हुआ प्यारा प्यारीको पास उठा लाता है । यहां सर्व प्रथम नलने नाभिके ऊपरका वह भी बगल और पीठाका ही आलिंगन किया है ।

" मुहूर्तमपि सह्यतां बहुल एष धूमोद्गमः,
हहा धिगिदमंशुकं ज्वलति ते स्तनात् प्रच्युतम् ।
मुहुः स्खलति किं कथं निगडसंयताऽसि द्रुतं,
नयामि भवतीमितः प्रियतमेऽवलम्बस्व माम् ॥"

राजा रत्नावलीसे कहता है, कि-ए डरपोकिनि ! घबरा न, मैं आया । तू थोड़ी देर धूँआ सह ले । हहा धिक्कार है, तेरे स्तनोंसे लगा हुआ वस्त्र जल रहा है, तू इसे अपनी प्रकृतिसे क्यों गिरती जा रही है । क्या तेरे पैरोंमें बेडियाँ उल्टी हैं । मैं तुझे जलदी ही यहांसे लिये चलता हूँ तू स्नेहके साथ मेरा सहारा ले ले ।

" व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न धक्ष्यति हुताशनः ।
यतः सन्तापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ॥ "

हे प्यारी ! डरती क्यों है ? इस बातमें कोई हेर फेर नहीं कि तुझे आग नहीं जला सकती, क्योंकि तेरा स्पर्श ही सन्तापका हरनेवाला है ।

प्रथमोपक्रम ।

पूर्वकायेण चोपक्रमेत् । विषह्यत्वात् ॥ ९ ॥

सबसे पहिले ऊपरके भागका स्पर्श आदि होने चाहियें, क्योंकि वह सहा जा सकता है ॥ ९ ॥

पूर्वकायेण चेति । तस्या यो नाभेरूर्ध्वभागस्तेन प्रथममुपक्रमेत् । विषह्यत्वादिति । तेनोपक्रमः शक्यते सोढुम् । नाधरकायेन । उद्वेजनकरत्वात् ॥ ९ ॥

वधू आदिके जो नाभीके ऊपरके भाग हैं सबसे पहिले उसके स्पर्श आदि होने चाहियें । क्योंकि विना सूंघी कलियाँ यहांके स्पर्शको सुखके साथ सह लेती हैं पर नाभिसे नीचे शरीरके स्पर्श आदिसे उन्हें उद्वेग होता है, इस कारण नीचेके भागका स्पर्श न करना चाहिये ॥ ९ ॥

इसका साहित्यमें प्रयोग ।

" हारचारिमविलोकने मृषा कौतुकं किमपि नाटयन्नयम् ।
कण्ठमूलमदसीयमस्पृशत् पाणिनोपकुचधाविना धवः ॥ "

भैमीके कण्ठमें जो हार पड़ा हुआ था, उसका नलने बहाना किया, कि- यह जो आपके गलेमें परमसुन्दर हार पड़ा हुआ है, ' बहुत ही अच्छा लग रहा है । (जब उसने कहा कि कौनसा तो आपने हाथ लगाकर बता दिया) तथा इसी बहाने उसे गलेसे लेकर स्तनोंके पास तक अपना हाथ पहुँचा दिया या फेर दिया । यहा नलने नाभिसे ऊपरके भागका ही स्पर्श स्तनोंतक हाथ पहुँचानेके लिये किया है । सागरिकाका तो वत्सराजने सर्व प्रथम हाथ ही पकड़ा है ।

रोशनी और अँधेरेवाली ।

दीपालोके विगाढयौवनायाः पूर्वसंस्तुतायाः। बालाया अपूर्वायाश्चान्धकारे ॥ १० ॥

जो पहिले मिल चुकी हो अथवा जोवनमें चूर हो, उसके आलिंगन आदि दीपककी रोशनीमें किये जा सकते हैं । जो बाला हो अथवा अपूर्व हो तो अन्धकारमें उपचार करने चाहियें ॥ १० ॥

दीपालोके कौतुकगृहवर्तिनि । विगाढयौवनापूर्वसंस्तुतयोः । भयलज्जाभावात् । बालापूर्वयोरन्धकारे । लज्जाधिक्यात् । विगाढयौवनाप्यन्यशुभलक्षणयोगादूढा । लघुदोषत्वात् ॥ १० ॥

कौतुकघरके दीपककी रोशनीमें उस स्त्रीका उपचार करना चाहिये जो पूर्व परिचित हो वा जिसे जवानी खूब चढ़ रही हो, क्योंकि इनको भय और लज्जा नहीं मालूम होती । बाला और अपूर्वामें लज्जा अधिक होती है, इस कारण इनके स्पर्श आदि अँधेरेमें होने चाहियें । दूसरे किन्हीं शुभ लक्षणोंवाली होनेके कारण युवती भी व्याह ली जाती है, क्योंकि उसमें दोष थोड़ा ही है; नहीं तो वैध विवाह तो रजस्वला होनेसे पहिले ही होनेवाला अच्छा है ॥ १०

चुम्बनका ढंग ।

अङ्गीकृतपरिष्वङ्गायाश्च वदनेन ताम्बूलदानम् । तदप्रतिपद्यमानां च सान्त्वनैर्वाक्यैः शपथैः प्रतियाचितैः पादपतनैश्च ग्राहयेत् । व्रीडायुक्तापि योषिदत्यन्तक्रुद्धापि न पादपतनमतिवर्तते इति सार्वत्रिकम् ॥ ११ ॥

आलिंगनोंके स्वीकार कर लेनेपर, अपने मुँहमें पान लेकर फिर प्यारीके मुखमें देना चाहिये, यदि न ले तो उसके निहोरे करने चाहियें । सौगन्दे देनी चाहियें । उससे मांगना चाहिये । नहीं तो चरणोंमें गिरकर अपने मुखसे उसे पान देना चाहिये । लाज की हुई एवम् अत्यन्त नाराज हुई भी स्त्रियां चरणोंमें पड़नेका अतिक्रमण नहीं कर सकतीं, यह बात सभी स्त्रियोंकी है ॥ ११ ॥

वदनेन ताम्बूलदानमिति स्वेन मुखेन । चुम्बनक्षान्तेरभिप्रेतत्वात् । तदप्रतिपद्यमानामिति ताम्बूलमगृह्णतीम् । सान्त्वनवाक्यैः प्रियाभिधायिभिः । शपथैरिति मच्छरीरेण शप्तासीति । प्रतियाचितैस्त्वमेतन्मे देहीति । पादपतनेन वा अन्त्या-

वस्थायां ग्राहयेत्। यतः स्त्रिया व्रीडात्याजने क्रोधापनयने च न पादपतनादूर्ध्व-मुपायोऽस्ति। सार्वत्रिकमिति न कन्यायामेव, अन्यस्यामपि॥ ११॥

वरको आलिंगन करनेमें कृतकार्य्य होनेपर अपने मुखमें पान लेकर प्यारीके मुखमें देना चाहिये। इससे उसे यह पता चल जायगा कि यह चुम्बन सह सकती है वा नहीं। इसमें कृतकार्य्य होने पर उसे मुखचुम्बन सहाया जा सकता है यही पान देनेवालेको भी इष्ट है ही। जो इस तरह पान न ले तो उसकी मीठी २ बातोंसे खुशामद करनी चाहिये। यदि खुसामदसे भी काम-याबी न हो तो सोगन्दे दिलानी चाहियें, कि—'तुझे मेरी कसम है जो न ले तो' यदि इससे भी काम न चले तो कह दे, कि आप मेरे मुँहसे नहीं लेतीं हो आप ही मेरे मुँहमें दें, यदि देनेके लिये भी न तयार हो तो अन्तमें उसके चरण पकड़कर उसे अपने मुखसे पान दे, क्योंकि लाज छुटाने एवम् क्रोधको दूर करनेका उपाय चरणोंमें पड़नेके ऊपर कोई भी नहीं है। यह बात नहीं है, कि यह अन्तिम उपाय कन्याके विषयमें ही हो, किन्तु दूसरी भी स्त्रियोंका यही अन्तिम उपाय है॥ ११॥

पहिला चुम्बन।

तद्दानप्रसङ्गेण मृदु विशदमकाहलमस्याश्चुम्बनम्॥ १२॥

पान देनेके प्रसंगमें इसका कोमल फैला हुआ निःशब्द चुम्बन करना चाहिये १२

मृद्विति यत्र ग्रहणं नास्ति। तस्योद्वेजनत्वात्। विशदं स्पर्शकरम्। अका-हलमशब्दम्। सशब्देन लज्जिता स्यात्॥ १२॥

इस चुम्बनको मृदु कहनेका कारण यह है, कि इसमें उसके होठ वगैरहको नहीं पकड़ा जाता, क्योंकि पकड़नेसे उसे उद्वेग होगा। वह ऐसा होना चाहिये जो उसके मुखका ज्यादा स्थल अपने होठोंसे छू जाय। इसमें कोई शब्द न होना चाहिये; नहीं तो चूँमा देनेवाली शरमा जायगी॥ १२॥

बातचीतका ढंग।

तत्र सिद्धामालापयेत्॥ १३॥

चुम्बनमें जब सिद्ध हो जाय तो बातें करना प्रारंभ कर दे॥ १३॥

तत्र सिद्धां चुम्बनेनानुकूलामालापयेत् यथा ब्रवीति॥ १३॥

जब उसे चुम्बन करानेमें विशेष हिचकिचाहट न हो एवम् इसमें अनुकूल जचे तो फिर जिस तरह वह बोले उसी तरह बातें करनी चाहियें॥ १३॥

बुलानेका उपाय ।

अत्रोपायमाह—

अब वह उपाय बताते हैं जिससे उसे बुलाया जा सके—

तच्छ्रवणार्थं यत्किंचिदल्पाक्षराभिधेयमजानन्निव पृच्छेत् ॥ १४ ॥

उसकी बातें सुननेके लिये कुछ भी थोड़ेमें ही कही जानेवाली बात, इस तरह पूछ मानों यह कुछ जानता ही नहीं है ॥ १४ ॥

तच्छ्रवणार्थमिति—आलापश्रवणार्थम् । यत्किंचिदिति—दृष्टं श्रुतं वा तदानीम् । अल्पाक्षराभिधेयम्, सुकथनीयत्वात् । अजानन्निवेति—अन्यथा विहावयतीति जानीयात् ॥ १४ ॥

यह कुछ कहे और मैं इसकी कही बातें सुनूं, इस इच्छासे उसी समय देखी वा सुनी ऐसी बातें पूछे जो थोड़े अक्षरोंमें ही कही जा सके । पूछती बार ऐसा हो जाय मानों इसे कुछ भी पता नहीं है, यदि इस तरह न पूछेगा तो उसे शक होगा कि मुझे बहकाता है ॥ १४ ॥

तत्र निष्प्रतिपत्तिमनुद्वेजयन्सान्त्वनायुक्तं बहुश एव पृच्छेत् ॥ १५ ॥

यदि इसमें भी कोई उत्तर न मिले तो उसे विना ही उद्विग्न किये बहकानेकी मीठी २ गप्पोंके साथ बहुत पूछे ॥ १५ ॥

निष्प्रतिपत्तिम्—तूष्णीं स्थिताम् । सान्त्वनायुक्तम्—चाटुयुक्तम् ॥ १५ ॥

यदि इस तरह पूछनेपर भी वह चुपचाप रहे तो प्रेमकी रसीली गप्पोंके साथ और २ बातें भी शान्तिके साथ ही पूछे ॥ १५ ॥

तत्राप्यवदन्तीं निर्बध्नीयात् ॥ १६ ॥

यदि इसमें भी वह उत्तर न दे तो उसे इसी तरह बातोंमें फँसा ही ले १६ ॥

निर्बध्नीयात् अनेनैव क्रमेण ॥ १६ ॥

यदि इतने प्रयत्न करनेपर भी वह उत्तर न दे तो उसे इसी क्रमसे धीरे २ फँसा ले एवम् बोलनेके लिये मजबूर कर दे ॥ १६ ॥

बातचीतोंपर साहित्य ।

महाराजा दुष्यन्तने भी विना बातचीतोंकी दशामें भी शकुन्तलाकी सखियोंको बीचमें डालकर बातेंचीतें प्रारंभ की हैं कि—

"वैखानसं किमनया व्रतमादधाना व्यापाररोधि मदनस्य निषेवितव्यम् ।
पत्यन्तमेव मदिरेक्षणवल्लभाभिराहो निवत्स्यति समं हरिणेक्षणाभिः ॥"

इसका किसी हिन्दीके कविने अनुवाद किया है कि—"रतिराजके काज बिगारनको, रिपु है वनको व्रत लोग कहैं । यह सुन्दरि प्यारी तिहारी सखी, रहि है कहु कौंलग ताहि सहे । तजि देइगी व्याह भये पै किधौं, जब प्रीतम आइकै बाँह गहे । तरैरे किधौं दृगवारी मृगीनिमें, जन्म बितावति योंही रहे॥" इसका तात्पर्य्य यह है कि—आपकी सखी विवाहतक ही वनमें रहकर ब्रह्मचर्य्यका पालन करेगी या यावज्जीवन इसकी यही चर्य्या रहेगी ? ये बातें दोनोंकी अपरिचित दशाकी हैं तथा नीचे जो उदाहरण देते हैं वह परिचित दशाकी बातचीतोंका है ।

राजा मदनसन्तप्त शकुन्तलाके पास उपस्थित होता है । अनसूया उसे शिलापर बिठाती है और कहती है, कि आप इसके कष्टको दूर करें । इसके प्राण बचायें । यह सुनकर सखीसे शकुन्तला कहती है कि महाराजाको तंग करती हो, उन्हें महल जानेकी जलदी होगी ।

"परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥"

मेरे घर अधिक रानियाँ होनेपर भी मेरे कुलकी दो प्रतिष्ठा होंगी, एक तो सारी ससमुद्र भूमि तथा दूसरी आपकी सखी । यह सुनकर सखियोंने कह दिया कि अब हमें सन्तोष है लो चलती हैं, क्योंकि हिरनका बच्चा रो रहा है उसे उसकी माके पास कर दें ।

कन्याओंके स्वभावपर घोटक मुख ।

निर्बन्धे विरज्यत इति चेदाह—

आग्रहके साथ बुलानेसे कहीं विरक्त तो न हो जाय ? इस शंकाको लेकर उत्तर देनेके लिये सूत्र करते हैं, कि—

सर्वा एव हि कन्याः पुरुषेण प्रयुज्यमानं वचनं विषहन्ते । न तु लघुमिश्रामपि वाचं वदन्ति । इति घोटकमुखः ॥ १७ ॥

---

१ इस विदाईसे यह बात भी सिद्ध हो जाती है, कि विसर्जन विना पानके दिये भी हो सकता है । ५२५ वें पृष्ठमें जो पान देकर विसर्जनकी बात कही है वह अत्यन्त आवश्यक नहीं, किन्तु विसर्जन होना चाहिये ।

सभी कन्याएँ पुरुषके कहे वचनोंको अच्छी तरह सह लेती हैं, किन्तु आशयगर्भित थोड़ी भी बात नहीं बोलतीं, यह घोटकमुख आचार्य्यका मत है ॥

सर्वा एवेति। प्रयुज्यमानमिति पुनःपुनरुच्यमानं विषहन्ते। आविर्भवन्मन्मथत्वात्। लघुमिश्रामपीति—कतिपयाक्षरामन्यार्थश्लिष्टामपि न वदन्ति। लज्जापरतन्त्रत्वात्॥ १७॥

विना संसार देखी सभी बालाएँ पुरुषकी बार २ की कही बातें भी अच्छी तरह सह लेती है, क्योंकि पुरुषके साथ बातें करते उनके तनमें काम जग जाता है। किन्तु ढाली हुई भी कोई बात नहीं कहतीं, क्योंकि लाजके वश मौन रही आती हैं। यह इस विषयके विशेषज्ञ घोटकमुखका मत है ॥१७॥

नववधूके उत्तर देनेका ढंग।

अत्र कन्याया आलापयोजनोपायमाह—

वरके बार बार बातें करनेका प्रयत्न करनेपर कन्याको किस प्रकार बातें शुरू करनी चाहियें इस बातको बताते हैं कि—

निर्बध्यमाना तु शिरःकम्पेन प्रतिवचनानि योजयेत्।
कलहे तु न शिरः कम्पयेत्॥ १८॥

उत्तर देनेके लिये मजबूर करनेपर तो शिरको हिलाकर उत्तर देना प्रारम्भ करे। यदि कलह हो गया हो तो शिर न हिलाये ॥ १८ ॥

निर्बध्यमानेति। शिरःकम्पेनेति। किमिदं जानासीति पृष्टा जानामीत्यूर्ध्वाधःशिरश्चालनेन, न जानामीति तिर्यक् शिरश्चालनेन योजयेत्। धार्ष्ट्यपरिहारार्थम्। कलहे त्विति—अस्यामवदन्त्यां यदि कदाचिदर्थयुक्त्या प्रेरणप्रतिप्रेरणादिलक्षणो वाक्कलहो जातस्तस्मिन् किं कुपितासि नेति पृष्टा न शिरः कम्पयेत्। कोपख्यापनार्थम्॥ १८॥

---

१ "वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः,
कर्णं ददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदाननसंमुखीना,
भूयिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः॥"

यद्यपि मेरी बातोंमें अपनी थोड़ी भी बात नहीं मिलाती, तो भी जो मैं बात कहता हूं उसे पूरे ध्यानके साथ सुनती है। यद्यपि यह मेरे आगे मुख करके नहीं बैठती, किन्तु इसकी आन्तरदृष्टि मेरी तरफ है, इधर उधर नहीं है। यहां आचार्य घोटकमुखका उक्त सिद्धान्त चरितार्थ हो रहा है, देखनेका ढंग भी इसमें आ रहा है।

यदि यह पूछा जाय कि--आप फलानी बातको जानती हैं वा नहीं; तो हाँ करनी हो तो ऊपरको शिर कर दे । यदि यह कहना हो कि मैं नहीं जानती तो 'नहीं' के उत्तरमें टेढा शिर हिला दे, क्योंकि विना उत्तर दिये धृष्ट समझी जायगी । यदि न बोलनेपर कभी बुलानेकी युक्तियोंसे प्रेरण और प्रेरनेकी प्रेरणारूप बातोंकी लड़ाई हो जाय तो इसमें यदि पूछा जाय कि नाराज हैं क्या, तो नाराजी दिखानेके लिये शिर भी न हिलायें ॥ १८ ॥

शिर हिलाकर उत्तर ।

अब हम उन दम्पतियोंको भी दिखाते हैं जहां शिर हिलाकर ही उत्तर दिया गया था ।

" अप्यवस्तुनि कथाप्रवृत्तये प्रश्नतत्परमनङ्गशासनम् ।
वीक्षितेन परिगृह्य पार्वती मूर्धकम्पमयमुत्तरं ददौ ॥ "

कामसूत्रमें जो चौदह, पन्द्रह और सोलहवें सूत्रमें बातें करनेका ढंग बताया है, उसी तरह बातें शुरू करके नायकने बारबार छोटे छोटे वाक्य कहकर उत्तर माँगे, इसपर नायिकाने केवल उनकी तरफ देखकर बातोंका उत्तर शिर हिलानेमें ही दिया । ये नायक नायिका शिवपार्वती ही हैं; सिवा ऐसे ईश्वरोंके इस प्रकारकी उत्तमताका दूसरा उदाहरण कौन हो सकता है । भगवान् महर्षिवात्स्यायनका बताया दाम्पत्य जीवन भारतके प्रत्येक घरमें हो । यदि देशमें इतना चारित्रबल हो कि देवियाँ एकान्तमें पतियोंसे भी बातें करनेमें हिचकिचायें तो भारत उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच जाय । यहां तो आजकल यह हाल है, कि—

" आजकल बदले गये सारे असूलै शर्म भी ।
वर सरे बाजार शोफी और हया परदेमें हो ॥ "

कलियुगकी पुजारिन दुनियाँभरमें लीला विस्तार कर आयँगी, किन्तु लाज परदेमें ही दिखायेंगी । न जाने असलको छोड़कर नक़लपर क्या विश्वास हो गया है । पर भारतके सच्चे सनातनधर्मियोंका तो असलपर अधिक विश्वास रहा है, बनावट पर नहीं ।

प्रेमजिज्ञासाकी बातें ।

अकलहे तु स्नेहजिज्ञासायामालापयोजनमाह—

यदि बोलनेके विषयमें कोई विवाद न हो; आनन्दसे बातें होती हों तो उस हालतमें उसके प्रेमको जाननेके लिये प्यारेको प्यारीसे इस प्रकार बातें करनी चाहियें कि—

इच्छसि मां नेच्छसि वा किं तेऽहं रुचितो न रुचितो-वेति पृष्टा चिरं स्थित्वा निर्बध्यमाना तदानुकूल्येन शिरः कम्पयेत् । प्रपञ्च्यमाना तु विवदेत् ॥ १९ ॥

मुझे चाहती हो वा नहीं, मैं तुम्हें अच्छा लगा था वा नहीं, यह पूछने पर कुछ देर ठहरकर आग्रह करनेपर इसी तरह शिर हिलाये, जो कि दोनों बातोंके अनुकूल पड़े, यदि प्रतारणा हो तो विवाद करे ॥ १९ ॥

इच्छसि मां नेच्छसि वेति वार्तमानिकः प्रश्नः । किं तव रुचितोऽहमरुचितो वेति परिणयात्पूर्वकालिकः प्रश्नः । चिरं स्थित्वेति संकटः प्रश्नः । यदि पूर्वपक्षमाश्रयेयं तदा धार्ष्ट्यं लाघवं च, इतरं चेत्तदा नैष्ठुर्यमिति निर्बध्यमाना नायकेन संकटप्रश्ने किमनुष्ठास्यतीति । तस्या निर्बध्यमानाया उभयपक्षाश्रयणमेव युक्तमित्याह—तदानुकूल्येनेति । पूर्वपक्षोत्तरपक्षानुकूल्येनोभयथापि शिरः कम्पयेदित्यर्थः । प्रपञ्च्यमाना त्विति—अनिश्चितार्थप्रकाशनान्नायकेन प्रतार्यमाणा विवदेत् । कोपख्यापनार्थं विरुद्धं वदेत् न मे रुचितोऽसि नेच्छामि त्वामिति ॥ १९ ॥

मुझे चाहती हो वा नहीं ? यह वर्तमान कालका प्रश्न है । मैं तुम्हें अच्छा लगा वा नहीं ? यह विवाह होनेसे पहिले समयका प्रश्न हैं । यह संकट प्रश्न है, इस कारण कुछ देर ठहरे और सोच ले, कि यदि मैं पूर्वपक्षका आश्रय लेती हूं तो धृष्टता और लघुता प्रतीत होती है । यदि दूसरा 'नहींवाला' पक्ष लेती हूं तो निष्ठुरपना प्रतीत होती है, पर प्यारा कहनेके लिये मजबूर करता है, इस कठिन प्रश्नका क्या उत्तर दिया जाय एवं क्या किया जाय इसपर आचार्य्य बताते हैं कि इस प्रकार मजबूर की हुईका ना हां इन दोनों पक्षोंका आश्रय लेना युक्त है, इस कारण उसे इसप्रकार शिर हिलाना चाहिये, जो कि पूर्व और उत्तर दोनों ही पक्षोंके अनुकूल पड़े । यदि जिससे ना हां का कोई निश्चय न हो ऐसी बातके कहनेपर या प्रकाशित करनेपर पुरुष बार-बार प्रतारणा करे तो नाराज हो एवम् नाराजी दिखानेके लिये विरुद्ध कह दे कि न तो मैंने पहिले चाहा था न अब तुझे चाहती ही हूं ॥ १९ ॥

पूर्वपरिचिताके साथ बातचीतोंका ढंग ।

यदि पूर्वपरिचिता तदालापयोजने विधिमाह—

जिसके साथ विवाह होनेके पहिलेका परिचय हो उसके साथ किस तरह बातचीतें प्रारम्भ की जाती हैं, इस बातको बताते हैं कि—

संस्तुता चेत्सखीमनुकूलामुभयतोऽपि विस्रब्धां तामन्तरा कृत्वा कथां योजयेत् । तस्मिन्नधोमुखी विहसेत् । तां चातिवादिनीमधिक्षिपेद्विवदेच्च । सा तु परिहासार्थमिदमनयोक्तमिति चानुक्तमपि ब्रूयात् । तत्र तामपनुद्य प्रतिवचनार्थमभ्यर्थ्यमाना तूष्णीमासीत । निर्बध्यमाना तु नाहमेवं ब्रवीमीत्यव्यक्ताक्षरमनवसितार्थं वचनं ब्रूयात् । नायकं च विहसन्ती कदाचित्कटाक्षैः प्रेक्षेत । इत्यालापयोजनम् ॥ २० ॥

यदि पहिलेकी जानपहिचान हो तो जो दोनों तरफसे अनुकूल एवम् विश्वासपात्र सखी हो उसे बीचमें करके बातेंचीतें शुरू कर दें । उसमें नीचेको मुख करके हँसे, यदि सखी अगाड़ी बढ़ जाय तो उसपर अधिक्षेप करे और विवाद करने लग जाय । सखी भी हँसीके लिये विना भी कही बातें कह डाले । यदि सखीकी बातोंके बीच सखीको रोककर उससे उत्तरकी प्रार्थना की जाय तो चुप हो जाय । यदि उत्तर देनेके लिये बाध्य की जाय तो अपरिस्फुट एवम् अनिश्चित अर्थोंवाले अक्षरोंसे उत्तर दे । कभी हँसती हुई कटाक्षोंसे नायकको देखे । यह बातें करनेकी रीति पूरी हुई ॥ २० ॥

संस्तुता चेदिति । सखीमिति सखीनां मध्ये यानुकूला । विस्रब्धोभयत इति द्वयोरपि विस्रब्धा । विदितपूर्ववृत्तान्तत्वात् । तामन्तरा कृत्वा व्यवधाय कथायोजनम् । नायकस्य तु पूर्ववृत्तां कथां योजयेत् । किमहमस्या रुचितो न वेत्यर्थः। तस्मिन्निति । यदैव तस्यां क्रीडायां परिचयोऽभूत्तत एव प्रभृति रुचितोऽसीति सख्या कथने क्रियमाणेऽधोमुखी लज्जया विहसेत् । एवमिति तदितिख्यापनार्थम् । नायिका तां चेति सखीम् । अतिवादिनीमित्यनुरागातिशयं कथयन्तीमधिक्षिपेत् । विवदेच्च तया सह कलहयेत् । सा त्विति सखी । अनुक्तमपि नायिकया ब्रूयात् । अद्यैव यदि पाणिं गृह्णासि साधु भवतीति । तत्रेत्यनुरक्तकथने । अनवसितार्थमक्षराणामस्पष्टत्वाद् ब्रूयात् । मुग्धत्वख्यापनार्थम् । नायकं च विहसन्ती कदाचिदन्तरान्तरा परिचयवशात्कटाक्षेणोन्मुखीव प्रेक्षेत । अनुरागातिशयख्यापनार्थम् ॥ २० ॥

अपनी सहेलियोंमेंसे जो बिलकुल अपने अनुकूल हो एवम् दोनोंकी विश्वासपात्र हो । क्योंकि वह दोनोंकी पहिलेकी बातें जानती हो, उसे बीचमें करके बातें चीतें प्रारंभ कर दे । उसका यह काम होता है कि वह नायककी कही हुई बातोंका उससे उत्तर लिया करती है एवम् नायकको सुना देती है । नायक उस समय उससे पुछाये कि मैं इसे अच्छा लगा वा नहीं । सखीके इस प्रकार कहनेपर लज्जासे शिर नवाकर हँस दे । इस प्रकारके हँसनेका यही तातपर्य्य होता है कि नायकको अतिप्रेमका पता चल जाय । सखी उत्तरमें कहने लग जाय कि यह तो कहती है कि मैं तो जबसे आपसे उस दिन खेलते २ जान पहिचान हुई उसी दिनसे बेहद मुस्ताक थी, तो उस सखीसे कहने लग जाय, कि अपनी कहती हो क्या, एवम् उसके साथ विवाद करने लग जाय । विचोलिया सखीका भी यह कार्य्य होना चाहिये कि विना ही कहे कह दे कि अभी आप इसका पाणिग्रहण करें तो अच्छा हो । यदि सखी इसप्रकार उसके प्रेमकी बातें कहे तो कहती हुई उसे रोक, नायक प्यारीसे उत्तर देनेकी प्रार्थना करे तो आप चुप हो जाय । यदि न सरे तो अपने मुग्धपनेको दिखानेके लिये इतना रुककर बोले कि मतलब समझमें न आये । बीच बीचमें परिचयके वश हँसती हुई उन्मुखीकी तरह कटाक्षोंके साथ देखे, इस प्रकार देखनेसे अत्यन्त प्रेम प्रतीत होता है ॥ २० ॥

प्यारेके पास वस्तु रखनेकी रीति ।

एवं जातपरिचया चानिर्वदन्ती तत्समीपे याचितं ताम्बूलं विलेपनं स्रजं निदध्यात् । उत्तरीये वास्य निबध्नीयात् ॥ २१ ॥

इस प्रकार जिसका परिचय हो चुका है, वह गृहदेवी पुरुषके मांगनेपर पान, चन्दन और माला विना बोले ही उसके पास रख दे एवम् उसके ऊपरके वस्त्रोंको जहां की तहां कर दे ॥ २१ ॥

एवमालिङ्गनताम्बूलचुम्बनालापैर्जातपरिचया । अनिर्वदन्ती गृहाणेति । याचितं नायकेन । निदध्यात्स्थापयेत् ॥ २१ ॥

इस प्रकार आलिंगन, पान देना, उसके समय चुम्बन और बातचीतोंसे परिचित होनेपर यादि पुरुष माँगे कि मुझे पान दो, माला ला दो, चन्दन दे दो तो 'लीजिये' यह विना ही कहे उसके पास रख दे एवम् उसके उपरने आदिकोंको कन्धोंपर धर दे ॥ २१ ॥

स्तीनेपर पहिला हाथ ।

तथा युक्तामाच्छुरितकेन स्तनमुकुलयोरुपरि स्पृशेत् ॥२२

वह जब इस काममें हो उस समय आच्छुरितकसे दोनों स्तनरूपी कलियोंके ऊपर स्पर्श करे ॥ २२ ॥

तथा युक्तामिति निदधतीमुत्तरीये वा निबध्नतीम् । आच्छुरितेन पूर्वोक्तेन । स्तनमुकुलयोरिति मुकुलग्रहणमतिस्पर्शनिवृत्त्यर्थम् । बालत्वात् ॥ २२ ॥

यदि प्यारी पान आदि रख रही वा उत्तरीय बाँध रही हो, उस समय बताये हुए आच्छुरितकसे छोटी छोटी स्तनकलियोंका कर स्पर्श करे । स्तनोंको कलियां बतानेका कारण यह है कि जैसे कली छूई जाती ह उसी तरह थोड़े छूए जायँ; अत्यन्त स्पर्श न किया जाय, क्योंकि वह बालक है । स्तन छोटे होनेके कारण कलियाँ ही कहायेंगे ॥ २२ ॥

रोकनेके बादके प्रयत्न ।

वार्यमाणश्च त्वमपि मां परिष्वजस्व ततो नैवमाचरिष्यामीति स्थित्या परिष्वञ्जयेत् । स्वं च हस्तमानाभिदेशात्प्रसार्य निर्वर्तयेत् । क्रमेण चैनामुत्सङ्गमारोप्याधिकमधिकमुपक्रमेत् । अप्रतिपद्यमानां च भीषयेत् ॥२३॥

यदि स्तनोंपर हाथ न फेरने दे तो 'तू भी इसी तरह मुझे छू, फिर मैं न करूंगा' इस बातको पक्की करके हाथहूथ फेरे, अपने हाथको उसकी नाभितक फैलाकर हटा ले । क्रमशः इसे गोदीमें बिठाकर अधिक अधिक हाथ डाले, यदि न डालने दे तो कामोंसे डरा दे ॥ २३ ॥

वार्यमाणश्चेति । स्पर्शनस्थित्या व्यवस्थया परिष्वञ्जयेत् । स्थितिमाह—त्वमपीति । आ नाभिप्रदेशादिति नाभिप्रदेशं यावत् । प्रसार्य निर्वर्तयेदिति

---

१ "यत्त्वयाऽस्मि सदसि स्रजाऽञ्चितस्तन्मयाऽपि भवदर्हणाऽर्हति ।
इत्युदीर्य्य निजहारमर्पयन्नस्पृशत्स तदुरोजकोरकौ ॥"

जब नलने अपना हाथ स्तनोंतक पहुँचा दिया तो आप प्यारीसे कहने लगा कि आपने स्वयंवरके सभामण्डपमें मेरे गलेमें जयमाल डाली थी तो इसका मुझे तो कुछ बदला चुकाना चाहिये, इस कारण मैं भी अपने गलेका हार आपके गलेमें डाले देता हूं, यह कहकर अपना हार प्यारीके गलेमें डाल दिया तथा इसी बहानेसे उसके छोटी २ स्तनिकाओंपर भी हाथ फिरा लिया । इस तरह नल स्तनोंके स्पर्शपर भी कामयाब हो गया ।

वीप्सार्थं क्षान्त्यर्थम् । प्रसार्य प्रसार्येत्यर्थः । क्रमेणेति । न सहसोत्सङ्गमारोपयेत् । अधिकमधिकमिति नखदशनपदैरप्रतिपद्यमानामधिकोपक्रमं भीषयेत् २३॥

रोका जाय तो स्पर्शकी व्यवस्थासे स्पर्श करे, वह व्यवस्था यही है कि तू मेरे साथ इसी तरह कर, फिर न करूंगा । सूत्रमें 'नाभितक हाथ फेरकर हटा ले' यह वीप्सा (बारबार) और सहनके लिये है । यानी बारबार नाभितक हाथ फेर २ कर हटा लिया करे । इस कामसे उसमें हाथ सहनेकी क्षमता पैदा करना है । क्रमसे उसे गोदीमें बिठाये यह न हो, कि एकदम उसे गोदीमें बिठाने लग जाय । बिठाकर अधिक अधिक कामोंको करनेके भयसे भीत करे कि नाखून और दाँत लगा दूंगा ॥२३॥

डराना बहकाना ।

कथमित्याह—

जिस तरह डराये बहकाये उस रीतिको बताते हैं कि—

अहं खलु तव दन्तपदान्यधरे करिष्यामि स्तनपृष्ठे च नखपदम् । आत्मनश्च स्वयं कृत्वा त्वया कृतमिति ते सखीजनस्य पुरतः कथयिष्यामि । सा त्वं किमत्र वक्ष्यसीति बालबिभीषिकैर्बालप्रत्यायनैश्च शनैरेनां प्रतारयेत् ॥ २४ ॥

मैं तेरे अधरमें दांतोंके निशान कर दूंगा एवम् स्तनोंपर नाखूनोंके चिह्न कर दूंगा । मैं अपने आप अपने निशान करके तेरी सखियोंके सामने कह दूंगा कि तुम्हारी सखीने किये हैं । बता; फिर तूं क्या कहेगी ? ऐसे बालकोंके डराने बहकानोंसे धीरे २ उसे अपने काममें लगा ले ॥ २४ ॥

अहमिति । आत्मनश्च स्वयं कृत्वा दन्तपदं नखपदं च । किमसौ प्रतिपत्स्यते सखीजनो नवोढादुश्चेष्टितादन्यत्रेत्येतद्बालभीषितम् । अस्मिन्वचनानुष्ठाने तु नाहमेवं करिष्यामीति बालप्रत्यायनमर्थोक्तम् । शनैरेनां प्रतारयेत् कार्याभिमुखीं कुर्यादिति । एतत्प्रथमायां रात्रौ विस्रम्भणम् ॥ २४ ॥

मैं अपने आप अपने अधरमें दांत और छातीपर नाखून लगाकर तेरा नाम ले दूंगा । तेरी सखियाँ तुझसे क्या कहेंगी कि कल तो ब्याह हुआ आज ही यह इस तरहकी बातें कर रही है । वे दूसरोंसे कह देंगी, तेरी बड़ी हँसी

होगी, इस तरह बच्चोंके डरानोंसे डरा दे । जो आप मेरी कही मानेंगी तो फिर मैं हरगिज ऐसा न करूंगा, इस तरह उसे बच्चोंकी तरह विश्वास दिला दे । इस तरह धीरे २ उसे अपने काममें लगा ले । यह जो कुछ अबतक कन्याविस्रंभण कहा गया है वह पहिली रातका है ॥ २४ ॥

दूसरी और तीसरी रात।

द्वितीयस्यां तृतीयस्यां च रात्रौ किंचिदधिकं विस्र-म्भितां हस्तेन योजयेत् ॥ २५ ॥

विश्वासमें आई हुईको दूसरी और तीसरी रातको हाथसे अधिक व्यापृत करे ॥ २५ ॥

तस्मात्किंचिदधिकं द्वितीयस्यां रात्रौ तृतीयस्यां च । हस्तेन योजयेदिति कक्षोरुजघनेषु हस्तस्पर्शसंबन्धिनीं कुर्यात् ॥ २५ ॥

दूसरी रातिमें पहिली रातिसे अधिक तथा तीसरी रातको दूसरीसे अधिक हथफेरी होनी चाहिये । इन दिनोंमें यहांतक धिजा लेना चाहिये, कि काँख, जाँघें और जघनपर आनन्दसे हाथ फेर दिया जाय ॥ २५ ॥

सर्वत्र हाथ डालनेका उपाय चुम्बन ।

हस्तेन योजनोपायमाह—

अब उन उपायोंको बताते हैं जिनसे सर्वत्र हाथ डाला जा सकते हैं कि—

सर्वाङ्गिकं चुम्बनमुपक्रमेत ॥ २६ ॥

सभी अंगोंका चूँमना प्रारंभ कर दे ॥ २६ ॥

सर्वाङ्गिकमिति । ललाटनयनादिषु विचुम्ब्यमाना पर्याकुला सर्वमभ्युप-गच्छति ॥ २६ ॥

माथेको, आखोंको तथा और २ चूँमनेकी जगहोंको बारंवार चूँमकर उसे अकुला दे । जिससे सब कुछ कर लेने दे, क्योंकि चुम्बनोंसे अकुलाकर सब कुछ कर लेने देगी ॥ २६ ॥

---

१ "प्रागचुम्बदलिके ह्रियाऽऽनतां तां क्रमादथ नतां कपोलयोः ।
तेन विश्वसितमानसां झटित्याननेन स परिचुम्ब्य सिष्मिये ॥"
भयहारी आलिंगनोंसे जब उसका भय दूर हो गया तब उसके पास लाजसे उपस्थित हुईका सबसे पहिले ललाटका चुम्बन किया । फिर नेत्रोंका चुम्बन किया । इससे कुछ विश्वास हो जानेपर फिर कपोल चुम्बन कर लिये । जब उसे इनके चुम्बनमें कोई कष्ट नहीं हुआ तो विश्वास हो गया । इससे नलने उसके अधरका चुम्बन कर लिया जिससे आप अपनी चतुर० तापर कुछ मुसकराहट कर उठे ।

मदनमंदिरतक हाथ ।

हस्तयोजनविधिमाह—

अब ठेटतक हाथ लगानेकी विधि बताते हैं कि—

ऊर्वोश्चोपरि विन्यस्तहस्तः संवाहनक्रियायां सिद्धायां क्रमेणोरुमूलमपि संवाहयेत् । निवारिते संवाहने को दोष इत्याकुलयेदेनाम् । तच्च स्थिरीकुर्यात् । तत्र सिद्धाया गुह्यदेशाभिमर्शनम् ॥ २७ ॥

संवाहन क्रियाके सिद्ध हो जानेपर जाघोंपर हाथ पहुँचाकर क्रमशः संवाहनके बहाने उनकी जड़में भी हाथ पहुँचा दे । यदि वह संवाहनको रोकने लगे तो इसमें क्या दोप है ऐसा कहकर उसे अकुला दे एवम् इधर २ का संवाहन तो स्थिरताके साथ करता रहे, क्योंकि इससे उसे हाथ सहनेकी क्षमता प्राप्त होगी । यदि इस काममें कामयाव होजाय तो इसी तरह उसके मदनमंदिरतक भी हाथ पहुँचा दे ॥ २७ ॥

ऊर्वोरिति । तत्रायं क्रमः—प्रथमं पूर्वकायस्य संवाहनक्रिया । तस्यां सिद्धायामूर्वोरुपरि न्यस्तहस्त ऊरू संवाहयेत् । क्रमेणोरुमूलमिति । तत्रेत्यूरुमूले । आकुलयेत् चुम्बनाच्छुरितकैः । तच्चेति । यत्पूर्वाभ्युपगतं संवाहनं तच्च स्थिरीकुर्यात् क्षान्त्यर्थम् । तत्रेत्यूरुमूलसंवाहने सिद्धाया गुह्यदेशाभिमर्शनम् ॥ २७ ॥

संवाहनकी यह प्रक्रिया है कि पाहिले नाभीसे ऊपर भागकी करे, यदि इसमें कामयाव हो जाय तो जाघोंके ऊपर हाथ रखकर उनको मसल दे । इसी क्रमसे जाघोंकी जड़तक पहुँच जाय । यदि वहीं न हाथ पहुँचने दे तो चुम्बन और आच्छुरितकसे उसे अकुला दे, पर जैसे पाहिले कर रहा था वह कार्य्य स्थिरताके साथ करता रहे, जिससे कि उसे सहन बना रहे और वड़ता जाय । यदि जांघें और जांघोंकी जड़में हाथ फेरनेमें कामयाव हो जाय तो अपना हाथ उसके मंदनमांदिरतक पहुँचा देना चाहिये ॥ २७ ॥

---

१ "पीततावकमुखासवोऽधुना भृत्य एष निजकृत्यमर्हति ।
तत्करोमि भवदूरुमित्यसौ तत्र संन्यधित पाणिपल्लवम् ॥"

नौकरको नौकरी मिल गई जो आपने अधरामृतका पान करा दिया अब उसे अपनी ड्यूटी वजानी चाहिये, अतः यह आपका भृत्य तयार है । आपके चरणोंको सहरा दूं, क्योंकि फूल तोड़ते २ थक गई होंगी । ऐसा कहकर उक्त सूत्रकी बताई हुई रीतिके अनुसार, उसकी जांघोंपर हाथ फेरते २ ठेठतक पहुँचाने लगा ।

नीवी गिराने आदिका उद्देश ।

रशनावियोजनं नीवीविस्रंसनं वसनपरिवर्तनमूरुमूल-संवाहनं च । एते चास्यान्यापदेशाः ॥ २८ ॥

रशना खोलना, नीवी गिराना, कपड़े हटाना और ऊरुमूलका संवाहन होना चाहिये, ये काम केवल धिजानेके लिये ही करे ॥ २८ ॥

संवाहनव्यपदेशेन रसनावियोजनाद्यपि कुर्यात् । पुनरूरुमूले संवाहनग्रहणमपरित्यागार्थम् । गुह्यस्पर्शहेतुत्वात् । एत इति गुह्यस्पर्शनादयो व्यापाराः । अस्येति नायकस्य । अन्यापदेशा इति त्रिरात्रादर्वागन्यमपदिश्य कर्तव्याः । न तु व्रतखण्डनमधिकृत्येत्यर्थः ॥ २८ ॥

हाथ फेरनेके बहाने रसना खोल देना आदि भी कर डालने चाहियें, पर इन कामोंके करती बार संवाहनका त्याग न करना चाहिये किन्तु संवाहन करते हुए ही करने चाहिये । इसी बातको दिखानेके लिये इस सूत्रमें फिर संवाहन ग्रहण किया है । नहीं तो सत्ताईसवें सूत्रसे हाथ फेरना तो शुरू है ही । मौका देखकर हाथ पहुँचा दे, फिर वही कार्य्य करने लग जाय । यही हाथ फेरना, जाघें आदि मलना मदनमंदिरतक हाथ पहुँचा देनेका कारण है । ये मदनमन्दिरके स्पर्श आदि करनेके वरके व्यापार ब्रह्मचर्य्यकी तीन रातोंमें तो केवल अपने लिये क्रीडाक्षेत्र तयार करनेके लिये ही होते हैं, जिससे कि वह धीज जाय । ये काम उसी समय सहवास करनेकी इच्छासे न करने चाहियें, क्योंकि इन तीन रातोंमें करनेसे ब्रह्मचर्य्यका व्रत नष्ट होता है ॥२८

प्रथम समागम ।

युक्तयन्त्रां रञ्जयेत । न त्वकाले व्रतखण्डनम् ॥ २९ ॥

सहवासमें काम करतीवार प्रतिक्षण उसकी प्रसन्नताकी चिन्ता करे । पर असमयमें व्रत खण्डन न कर ॥ २९ ॥

युक्तयन्त्रां च चतुर्थिकाहोमादूर्ध्वं रञ्जयेदिति । रञ्जनमनुद्वेज्य सुखोत्पादनम्२९

---

१ "चुम्बनादिषु बभूव नाम किं तद्वृथा भयमिहापि मा कृथाः ।
इत्युदीर्य्य रसनावलिव्ययं निर्ममे मृगदृशोऽयमादिमम् ॥"

नलने दमयन्तीसे कहा कि यह बताओ कि मैंने चुम्बनादिक करतीवार आपको क्या कष्ट दिया था । फिर अब जो कुछ करना चाहता हूं उसमें भी कोई कष्ट न होगा, फिर डरती क्यों हो ? इस प्रकार कहकर उस नीवीको खोल डाला; जो इससे पहिले कभी नहीं खुली थी ।

विवाहके बाद तीन राति विधिपूर्वक भोजन और अन्य नियमोंके साथ, ब्रह्मचर्य्यका पालन करता हुआ हाथहूथ फेरकर स्त्रीको केवल अपनी ओरसे निर्भय बना ले, कि यह मुझे करती बार भी कोई कष्ट न देगा एवम् चौथे दिन चतुर्थिका होम होनेके बाद फिर उससे सहवास करना शुरू करे । इस प्रकार उसके साथ अपना काम बनाये, जो कि उसे कोई कष्ट न हो और न डरे ही एवम् उसे दुःखकी जगह भी सुख ही मालूम हो ॥ २९ ॥

नलने इसका भी प्रयोग किया ।

"अस्ति वाम्यभरमस्ति कौतुकं साऽस्ति घर्मजलमस्ति वेपथुः ।
अस्ति भीति रतमस्ति वाञ्छितं प्रापदस्ति सुखमस्ति पीडनम् ॥"

यंत्रयोग करनेके समय, पहिले २ यथेष्ट प्रतिकूलता रही । समझाने बुझानेपर यह कौतुक रहा, कि देखें कैसे होता है । कभी न मिले आनन्दके स्मरण और परिश्रमसे पसीना भी वह चला । कंप आदि सात्त्विकोंकी उत्पत्ति भी जिसमें थी । संभोगका प्रारम्भ कर देनेपर भी अन्तमें क्या होगा यह डर बना हुआ था । जब नलने सहता २ धीरे २ साधन उसके मदनमंदिरके भीतर युक्तिपूर्वक किया तो कुछ सुख प्रतीत हुआ । फिर यह अनुभव हुआ कि इसमें कुछ सुखकी वस्तु है । सुरतकी समाप्तिके अवसरपर उसमें दोनों ओरसे सर्वाङ्गीण आलिङ्गन था । यहां महाकवि श्रीहर्षने नल और दमयन्तीका प्रथम यंत्रयोग इसी विधानके अनुसार दिखाया है ।

बादके काम ।

अनुशिष्याच्च । आत्मानुरागं दर्शयेत् । मनोरथांश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत् । आयत्यां च तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात् । सपत्नीभ्यश्च साध्वसमवच्छिन्द्यात् । कालेन च क्रमेण विमुक्तकन्याभावामनुद्वेजयन्नुपक्रमेत । इति कन्याविस्रम्भणम् ॥ ३० ॥

उसे पांचालिकी ६४ कलाएँ सिखाये, अपने प्रेमको दिखाये, मिलनेसे पहिलेके मनोरथोंको उसके सामने सुनाये । भविष्यके लिये उसके सामने प्रतिज्ञा करे, कि जो कहेगी सो करूंगा । उसके दिलसे सौतोंके डरको निकाल दे । कालक्रमसे जब ज्यों २ उसका कन्याभाव दूर होता जाय त्यों २ विना उद्विग्न किये अधिक २ करता चला जाय । यह कन्याविस्रम्भण पूरा हुआ ३०

अनुशिष्यात् चातुःषष्टिकान्योगान् शिक्षयेत् । आत्मानुरागं च दर्शयेत् इङ्गिताकाराभ्याम् । मनोरथान् पूर्वकालीनाननुवर्णयेत् ये ये तस्यामधरपानादयश्चिन्तिताः । आयत्यामिति । अनागतकाले तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रतिजानीयात् 'यदाह भवती तन्मया विधातव्यम्' इति । सपत्नीभ्यः साध्वसमवच्छिन्द्यात्, यद्यधिविन्ना स्यात् । कालेन च गच्छता मुक्तकन्याभावां युवतीमनुद्वेजयन्नुपक्रमेत् । तदाप्ययमेव क्रमः । स स्फुटः कर्तव्यः ॥ ३० ॥

पुरुषको चाहिये कि–रतिरंगकी सब बातोंके साथ उसे अन्य २ शिक्षाएँ भी दे । अपनी चेष्टा और आकारसे स्त्रीको परम प्रेम दिखाये । मिलनेसे पहिले उसके अधरपान आदिके जो २ मनोरथ किये थे उन्हें उसके सामने सुनाये। आगे उसके अनुकूल चलनेकी प्रतिज्ञा करे कि जो हुकुम हजूर। यदि अधिविन्ना हो तो उसे सौतोंसे निडर कर दे । जाते हुए समयके साथ ज्यों ज्यों कन्याभाव बीतता जाय और युवती होती जाय त्यों त्यों उसे विना ही डराये अधिक २ कारवायियाँ बढ़ाता जाय । उस समय भी यही क्रम है, पर स्फुट करना चाहिये । यह कन्याविस्रम्भण नामक २५ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३० ॥

प्रकरणका उपसंहार ।

उक्तमुपसंहरन्नाह—

कन्याविस्रम्भणप्रकरणमें जो भी कुछ उपयोगी विषय कहा है उसको सामान्यरूपसे कहते हैं—

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

एवं चित्तानुगो बालामुपायेन प्रसाधयेत् ।
तथास्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते ॥ ३१ ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं कि–बालाके चित्तका पहिचाननेवाला इस प्रकार उपायसे उसे सिद्ध कर ले, जिससे अपनेमें पूरा विश्वास करने लग जायगी तो परम प्रेमवाली हो जायगी ॥ ३१ ॥

एवमिति । चित्तानुग इति चित्ताभिप्रायं बुद्ध्वा । उपायेनेति युक्त्या । प्रसाधयेद्विश्वासयेत् । किमेवं स्यादित्याह—तथेति । सुविस्रब्धा सती अनुरक्ता प्रजायत इति योज्यम् ॥ ३१ ॥

बालाके अभिप्रायको जानकर युक्तिसे बालाको धिजाले, यदि वह पूरा विश्वास करने लग जायगी तो अपनेपर अनुरक्त होजायगी, इस प्रकार ऊपरके श्लोकका अर्थ करना चाहिये ॥ ३१ ॥

ध्यान देनेकी बात ।

तत्रापि विशेषमाह—

कन्याओंके उपाय करनेके विषयमें जो भी कुछ विशेषता है उसे बताये देते हैं, कि—

नात्यन्तमानुलोम्येन न चातिप्रातिलोम्यतः ।
सिद्धिं गच्छति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत् ॥ ३२ ॥

कन्याओंमें अत्यन्त अनुकूलतासे और न अत्यन्त प्रतिकूलतासे सिद्धि होती है, इस कारण मध्यम उपायसे उन्हें सिद्ध करना चाहिये ॥ ३२ ॥

नात्यन्तमिति । सिद्धिं सुखम् । तत्र तदानुलोम्येन प्रवृत्तौ स एवोत्तरकालमपि मार्गः स्यात् । ततश्चास्य स्वेच्छाविघातात्तद्विषयासिद्धिः । प्रातिलोम्येनातिप्रवृत्तौ तु तदानीमेव विरक्तत्वात्कथं तद्विषया सिद्धिः । तस्मान्मध्येनोपायेन साधयेत् ॥ ३२ ॥

यदि उसके कहे मुताबिक ही सब करता जायगा तो अगाड़ीके लिये भी वही रस्ता पड़ जायगा । यदि कभी भी उसकी इच्छाके विरुद्ध हुआ तो उसके विषयकी सिद्धि न पा सकेगा । यदि उसके विरुद्ध प्रवृत्ति की जायगी तो वह उसी समय विरक्त हो जायगी । फिर तो उसकी सिद्धि (आनन्द) हो ही कैसे सकती है, इस कारण उसे मध्यम उपायसे सिद्ध करे ॥ ३२ ॥

कन्याओंको विश्वास दिलानेका फल ।

विस्रम्भणं किं फलमित्याह—

स्त्रियोंके विश्वस्त बन जानेका क्या फल होता है, इस बातको बताते हैं, कि—

आत्मनः प्रीतिजननं योषितां मानवर्धनम् ।
कन्याविस्रम्भणं वेत्ति यः स तासां प्रियो भवेत् ॥ ३३ ॥

अपना प्रेम पैदा करना, स्त्रियोंका मान बढ़ाना एवम् कन्याओंका धिजाना जो जानता है वही उनका प्यारा होता है ॥ ३३ ॥

---

१ ऐसेका ऐसा ही श्लोक रतिरहस्यमें कोकाने रखा है ।

१ यह भी पूरा कोकाने रतिरहस्यमें ऐसेका ऐसा ही रखा है ।

आत्मन इति । वर्धनमिति । उपचारस्य तथाविधत्वात् । कन्यानामिति वक्तव्ये योषिद्ग्रहणं प्रथमसमागमे सर्वविषयमिदमिति दर्शनार्थम् । तत्परिज्ञान-फलमाह—प्रियो भवेदिति ॥ ३३ ॥

उचित उपचार ऐसे ही होते हैं, जो कि अपना प्रेम पैदा करते एवम् स्त्रियोंका मान वढ़ाते हैं और कन्याओंको धिजाते हैं । यहां कन्याओंके धिजानेका प्रकरण चल रहा है पर 'स्त्रियोंका मान वढ़ाना' इसलिये कहा गया है कि प्रथम समागममें सबके साथ यही व्यवहार होना चाहिये; जो कि कन्याकी हथफिरीमें होता है । इन वातोंके जाननेका फल तो यह है कि वह स्त्रियों और कन्याओंका प्यारा हो जाता है ॥ ३३ ॥

पुरुषके अधिक लजानेका दोष ।

अतिलज्जान्वितेत्येयं यस्तु कन्यामुपेक्षते ।
सोऽनभिप्रायवेदीति पशुवत्परिभूयते ॥ ३४ ॥

यह तो वड़ी लजाती है यह समझकर जो तो कन्याकी उपेक्षा कर देता है वह वास्तवमें उसका भाव नहीं जानता, इस कारण वह उसका पशुकी तरह तिरस्कार कर देती है ॥ ३४ ॥

अतिलज्जान्वितेति । अस्मात्कारणात्कन्या नोपेक्षणीया । अनेन त्रिरात्रं निर्वचनं पश्यन्ती निर्विद्येत, परिभवेचेत्यस्य प्रपञ्चः ॥ ३४ ॥

यह अत्यन्त लजाती है, इसी कारण कन्याओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । इससे—"तीन राततक विना वोले उसे स्तम्भकी तरह गूंगा एवम् अनागरिक समझ दुःखी होगी" इसी कथनका विस्तार किया है ॥ ३४ ॥

एक दमके उपक्रमणके दोष ।

सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्याचित्तमविन्दता ।
भयं वित्रासमुद्वेगं सद्यो द्वेषं च गच्छति ॥ ३५ ॥

कन्याकी विना तवीयत जाने एकदम ही कारवाई कर डाली जाय तो इससे उसे भय, कंप, उद्वेग और जलदी ही द्वेष हो जायगा ॥ ३५ ॥

उपक्रान्तेति—उपसर्पिता । भयं यतो दर्शनपथेऽपि न तिष्ठति । वित्रासं तत्स्मरणाच्छरीरविधूननम् । उद्वेगं भोजनादिभ्यो व्यावर्तनम् ॥ ३५ ॥

---

१ यह और छत्तीसवां श्लोक ऐसेका ऐसा कोकाने रतिरहस्यमें रखा है ।

इस उपसर्पणका यह नतीजा होता है कि और तो क्या; कन्या उसकी आखोंके सामने भी कभी खड़ी नहीं होती । यदि उसे उसकी याद[1] भी आ जाती है तो भी उसका शरीर काँपने लग जाता है एवम् खाने पीनेसे भी उसकी रुचि हट जाती है तथा जलदी ही द्वेष करने लग जाती है ॥ ३५ ॥

सा प्रीतियोगमप्राप्ता तेनोद्वेगेन दूषिता ।
पुरुषद्वेषिणी वा स्याद्विद्विष्टा वा ततोऽन्यगा ॥ ३६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे कन्याविस्रम्भणं द्वितीयोऽध्यायः ।

वह कन्या प्रीतिके योगको प्राप्त न हुई, उद्वेगसे दूषित की गई तो सभी पुरुषोंके साथ द्वेष करने लग जाती है एवं उस पुरुषको छोड़कर दूसरेके यहां चली जाती है ॥ ३६ ॥

---

१ मृगीके साथकी सहवासकी जो विधि बताई है, उस विधिको ऐसी स्त्रीके काममें भी लाया जाय जिसने कि कभी पुरुषका मुख न देखा हो । वे विधियाँ बलात्कारमें नहीं बन सकतीं । इसका कारण यह है कि बलात्कारमें कन्या अपनेको बचानेका प्रयत्न करती है इससे उसका शरीर तनां हुआ एवं संकुचित रहता है शैथिल्य नहीं रहता । अतएव यंत्रका जितना विकास हो सकता है उतना नहीं हो पाता एवं पुरुष भी यंत्रयोग ही करना सोचता है, जिससे दोनों ही यंत्रोंमें खराबी आ जाती है व ऐसा बखेड़ा खतरेसे खाली नहीं है । यही मनुष्यकी पशुता है, इसके कारण बड़े २ अनर्थ हो जाते हैं । पुरुष योगके प्रयत्नमें लगता है तो वह यंत्रसंकोचके प्रयत्नमें लगती है । आजके मनुष्य चाहे बलात्कारको अच्छा भी अपनी बुरी लिप्साके कारण समझें पर पुराने समयमें तो इस कामको पिशाच भी नहीं करते थे । बलात्कार कभी भी किसी पर भी न करना चाहिये, क्योंकि इससे बुरा दूसरा कोई भी पाप नहीं है । जिन्हें इस विषयमें भ्रम हो वे कालिदासके शाकुन्तलपर एक गहरी दृष्टि डाल लें कि एक ओर शकुन्तलाने महाराजकी चाहमें अपनेको तपा रखा है दूसरी ओर महाराज भी उसके चरणोंपर अपने तख्तो ताजको निछावर किये बैठे हैं। पास पहुँच गये हैं, सखी सब छोड़कर चली गई हैं फिर भी शकुन्तला उनसे कहती है कि बेशक मैं आपकी चाहकी सताई हुई हूं पर स्वतंत्र नहीं हूं । राजा समझाते हैं कि इस स्वयंवरसे आपके पिता नाराज न होंगे । जब हाथ पकड़ते हैं तो वह कहती है कि जरा छोड़ तो दीजिये जिससे सखियोंसे फिर कुछ पूछ लूं । राजा कहते हैं कि जरा शान्त रहो छोड़ता हूं । शकुन्तला पूछती है कि कब छोडोगे तो आप उसे उत्तर देते हैं कि—"मैं दयाके साथ तेरे साथ जो कुछ करना है कर लूं' इससे यह सिद्ध होता है प्रसन्नताकी हालतमें भी यंत्रयोगमें सदा ऐसी नायिकाकी तबीयतका ध्यान रखना चाहिये । बलप्रयोग न करना चाहिये ।

प्रीतियोगमप्राप्ता । लज्जान्वितेत्युपेक्षिततत्वात् । उद्वेगेन दूषिता । सहसोपक्रान्तत्वात् । पुरुषद्वेषिणी सर्वान्पुरुषान्द्वेष्टि । सर्वोऽप्येवंविध इति द्विष्टा । प्रीतियोगमप्राप्तत्वात् । ततश्च तं मुक्त्वान्यं पुरुषं गच्छति । इति कन्याविस्रम्भणं पञ्चविंशं प्रकरणम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे कन्याविस्रम्भणं द्वितीयोऽध्यायः ।

जिसने कन्याको लजाती देखकर, उपेक्षा कर दी एवम् कन्या उससे प्रेमके योगको न पा सकी अथवा एकदम ही कारवाइयां कर डालीं; जिनसे भय वित्रास और उद्वेगको प्राप्त हो गई तो ऐसी कन्याएँ सब पुरुषोंको वैसा ही समझकर सभीके साथ द्वेष करने लग जाती हैं, क्योंकि उसे प्रीतियोग तो मिला ही नहीं । विना प्रेमकी रंगरेलियोंके वह उसको छोड़कर जो कन्याओंको धिजाना जानता है, उसके पास चली जाती है । यह कन्याविस्रम्भण नामक २५ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म–तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके द्वितीय
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

बालाके उपक्रमोंका प्रकरण ।

वरणसंविधानपूर्वकमधिगतायां विस्रम्भणमुक्तम् ।

जो कन्या विधिपूर्वक सगाई व्याह होकर प्राप्त होती है, उसे धिजाने या अपना विश्वास वँधानेकी विधि वता दी गई । गत अध्यायमें उसी कन्याका विषय गया है, उसके लिये ब्राह्म, आर्ष, दैव और प्राजापत्य ये चार विवाह कह दिये गये हैं ।

गान्धर्वादिसे व्याहनेयोग्य कन्या ।

या तु व्रियमाणा न लभ्यते तत्र गान्धर्वादयश्चत्वारो विवाहाः ।

जो पहिले वताये हुए चारों विवाहोंके द्वारा न प्राप्त हो सके, उसके विषयमें गान्धर्व आदि चार विवाहोंका विधान किया गया है, क्योंकि जिसके मा बाप स्वयम् अपनेको नहीं देते वह उन्हीं विवाहोंसे प्राप्त की जा सकती है ।

न मिलनेके कारण।

तत्रालाभकारणान्येव तावदाह—

यह जो कहा, कि न मिलनेपर गान्धर्वादि विवाहोंसे प्राप्त करे, इसपर यह विचार होता है, कि वे कारण कौनसे होते हैं जिनकी वजहसे अपनेको कोई कन्या नहीं देता, इस कारण उन कारणोंका विवेचन करते हैं कि—

धनहीनस्तु गुणयुक्तोऽपि, मध्यस्थगुणो हीनापदेशो वा, सधनो वा प्रातिवेश्यः मातृपितृभ्रातृषु च परतन्त्रः, बालवृत्तिरुचितप्रवेशो वा कन्यामलभ्यत्वान्न वरयेत् ॥ १ ॥

धनहीन तो घराने घरका भी नहीं व्याहा जाता, इसी तरह जिसका घराना नीचा हो चाहे वह धन और गुणसंपन्न भी क्यों न हो हलका हो समझा जाता है। धनी समीपीको भी कन्या नहीं मिलती, धनी भी हो पर मा बाप भाइयोंमें परतंत्र हो, उसे भी उनकी मरजी विना कन्या मिलना कठिन है। यही हाल लाड़िले रड़ोला बच्चाका भी है। वरणित नहीं किये जाते अतः इन्हें प्रयत्न करना चाहिये ॥ १ ॥

धनहीनस्त्वभिजनादिगुणयुक्तोऽपि दरिद्रः कन्यां न लभते। मध्यस्थगुणो हीनापदेशो वेति। मध्यस्था रूपशीलादयो गुणा अभिजनः प्रधानं तदभावाद्धीनव्यपदेशः। सधनो वा प्रातिवेश्य इति स्वगृहसमीपवासी सीमासंबन्धेन कलहादिजनकत्वात् धनगर्वान्न लभते। मातापित्रोर्भ्रातृषु च सत्सु परतन्त्रोऽन्यप्रधानः सधनोऽपि न लभते। बालवृत्तिरुचितप्रवेशो वेति। यो लाडीकवद्दृश्यते सोऽनिषिद्धगृहप्रवेशोऽपि परिभवान्न लभते ॥ १ ॥

भले ही घराने घरका एवम् रूपशीलवान् हो, किन्तु दरिद्रव्यक्ति कन्या नहीं पा सकता। जिसके रूपशील आदि बिचली कोटिके हों एवम् घराने घरका तो हो, किन्तु धन न होनेके कारण दीन समझा जाता हो। धनी हो, किन्तु घरके पासका रहनेवाला हो तो धनवान्को भी लड़की नहीं मिलती, क्योंकि सीमासम्बन्ध यानी पास २ होनेसे लड़ाईका डर रहता है। धनी भी है पर माता, पिता और बड़े भाई जीवित हैं तो वह भी विना उनकी मरजी अपनी इच्छासे कन्या नहीं व्याह सकता। जो लाडोकी तरह दीखे

उसका घर जाना निषिद्ध नहीं है तो भी तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा जाता है अतएव वह भी कन्या नहीं पा सकता ॥ १ ॥

इन्हें भी कन्या प्राप्त होनेके उपाय ।

यदि न वरयेत्कथमधिगच्छेदित्याह—

यदि ये व्यक्ति वरणित न किये जायँगे तो जिस कन्याको ये चाहते हैं, उसे कैसे पायेंग, यह समझ आचार्य्य इनको भी कन्या प्राप्त करनेके उपाय बताते हैं, कि—

बाल्यात्प्रभृति चैनां स्वयमेवानुरञ्जयेत् ॥ २ ॥

जिस कन्याको ऐसे पुरुष चाहें, उन्हें चाहिये कि उसे बचपनसे ही स्वयम् अपने रँगमें रँगने लगें ॥ २ ॥

बाल्यादिति । अनुरञ्जयेत् । अनुरक्ता हि स्वयमेव गान्धर्वेण विवाहेन पाणिं ग्राहयति । यतः 'स्वयं संयोगे गान्धर्वः ' इति । तस्मादनुरञ्जनार्थं बालायामुपक्रमादनेकप्रकारा उच्यन्ते ॥ २ ॥

बचपनसे ही उसे अनुरक्त करनेका कारण यह है कि यदि वह अपनेपर परिपूर्ण प्रेम करने लग जायगी तो गान्धर्वविवाहसे अपनेआप ही पाणिग्रहण करा लेगी, क्योंकि ' वर कन्या दोनोंके अपने आपके किये संयोगसें गान्धर्व विवाह होता है । ' इस कारण बालिकाको अपनेमें अनुरक्त करनेके लिये प्रयत्न होता है, उसके अनेकों प्रकार कहे हैं ॥ २ ॥

दक्षिणके कन्या रिझानेके ढङ्ग ।

यत्र च देशे प्रायेणैवंविधा वृत्तिस्तामधिकृत्याह—

जिस देशमें प्रायः इसी रीतिसे कन्याको अनुरक्त करके फिर उसके साथ विवाह संपादन करते हैं उसी देशके ऐसे पुरुषोंके बालिकाको अनुरक्त करके पानेके ढंगोंको लेकर बताते हैं, कि—

तथायुक्तश्च मातुलकुलानुवर्ती दाक्षिणापथे बाल एव मात्रा च पित्रा च वियुक्तः परिभूतकल्पो धनोत्कर्षादलभ्यां मातुलदुहितरमन्यस्मै वा पूर्वदत्तां साधयेत् ॥ ३ ॥

दक्षिणदेशमें जिन बातोंके कारण लोग अपनी कन्याएँ नहीं देते, उन्हीं हीनताओंवाला मा बापोंसे रहित निर्धन बालक ही मामाके घर रह कर, धनके उत्कर्षके कारण चाहे किसीको वाग्दान कर रखा हो वा न कर रखा हो, अलभ्य भी मामाकी लड़कीको सिद्ध कर ले ॥ ३ ॥

तथायुक्तश्चेति । धनहीनत्वादियुक्तः । दक्षिणापथ इति । तत्र हि मातुलदुहिता परिणीयते । वियुक्तः पित्रोर्मृतत्वात्परिभूतकल्पो मातुलकुलयुक्तः । अन्यस्मै वा पूर्वदत्तामदत्तां वा ॥ ३ ॥

मद्रास प्रान्तमें यह रीति है कि वहां प्रायः मामाकी लड़कीके साथ लग्न कर लेते हैं, उस देशमें यदि कोई ऐसा बालक होता है कि जिसके मा बाप भी मर गये हों एवम् धन भी न हो तो वह अपने मामाके यहां ही परवरिस पाता है । वहां उस बिचारेको तो धनहीन आदि समझकर मामा अपनी लड़की देनेका विचार नहीं करता । तब वह जिस तरह बालिकाको अपने प्रेममें रँगकर स्वयम् गांधर्वविवाहके लिये तयार किया करता है, उसी तरह तयार करके व्याह ले । चाहे उसका वाग्दान किसी धनीके लिये भले ही हो गया हो अथवा न भी हुआ हो ॥ ३ ॥

अन्यामपि बाह्यां स्पृहयेत् ॥ ४ ॥

दूसरी भी बाहिरकी कन्याको इसी तरह चाहे ॥ ४ ॥

अन्यामपि बाह्यामिति । या मातुलदुहिता न भवति पित्रोः संबन्धबाह्या तामपि स्पृहयेत् । तत्र कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमत्वेन विवक्षितत्वात्कर्मत्वम् । अनेनान्यस्मिन्नपि देशे विधिरयमिति दर्शयति ॥ ४ ॥

जो बालिका मामाके घरानेकी न हो एवम् मा और बापके गोत्रसे भी बाहिरकी हो, उसे भी इसी तरह अनुरक्त करके व्याह लेना चाहे यानी व्याह ले । इस सूत्रसे कामसूत्रकारने इस बातको दिखा दिया कि, दूसरे देशोंमें भी बालिकाको अनुरक्त करके उसके साथ गान्धर्वविवाह किया जा सकता है ॥

बालायामेवं सति धर्माधिगमे संवननं श्लाघ्यमिति घोटकमुखः ॥ ५ ॥

---

१ "अन्यामपि बाह्यां स्पृहयेत्" यह सूत्र है, इसमें 'स्पृह ईप्सायाम्' इस चुरादिगणी धातुकी विधिलिङ्की क्रिया 'स्पृहयेत्' है । इसके योगमें, 'स्पृहेरीप्सितः १-४-३६ ।' इस सूत्रसे ईप्सितमात्रमें अन्या और बाह्या शब्दसे पंचमी विभक्ति प्राप्त है, फिर द्वितीया कैसे ? इसी शंकाको लेकर जयमंगलाने कहा है, कि अन्याबाह्याको क्रियासे प्राप्त करनेके लिये कर्ताको अत्यन्त इष्टतम होनेके लिये विवक्षित होनेके कारण कर्मत्व है यानी ये दोनों ईप्सित नहीं, किन्तु ईप्सिततम हैं, इस कारण पंचमी न होकर कर्ममें द्वितीया विभक्ति हो गई ।

बालामें इस प्रकार धर्माधिगम होनेपर संवनन श्लाघनीय है, ऐसा घोटकमुख आचार्य्यका मत है ॥ ५ ॥

बाल्यात्प्रभृति सति धर्माधिगमे बालायां धर्मार्थमधिगमे संदर्शनालापलक्षणे सति संवननं वशीकरणमनुरञ्जनलक्षणं श्लाघ्यम्। अन्यथा दर्शनात्कथं संवननं स्यात्। धर्म्याश्च गान्धर्वा विवाहाः। यथोक्तम्—'तत्र पूर्वे धर्म्याश्चत्वारः। षडित्येके' ॥ ५ ॥

इस अधिकरणके विशेषज्ञ आचार्य्य घोटकमुखका तो यह मत है कि—बालकपनेसे ही लेकर, इस प्रकार बालामें दर्शन और बातचीतरूप धर्म, अर्थका अधिगम हो तो (यानी देखना बुरा न समझा जाता हो एवम् खुली बातें हो सकती हों तो) अनुरक्त कर लेना रूप वशीकरण प्रशंसनीय ही है, नहीं तो देखने मात्रसे वशीकरण नहीं हो सकता। गान्धर्वविवाह भी धर्मानुकूल ही है। पहिले चार विवाहोंको धर्मानुकूल बता चुके हैं। उनमें गान्धर्व नहीं आता फिर यह धर्मानुकूल कैसे है? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि—कोई २ आचार्य्य राक्षस और पैशाच विवाहको छोड़कर, बाकीके सभी विवाहोंको धर्मानुकूल मानते हैं, उनमें गान्धर्व और आसुर विवाह भी आ जाता है ॥ ५ ॥

बालकके प्रयत्न।

उपक्रमिवत्वाद्विविधो बालो युवा च। तत्र पूर्वमधिकृत्यानुरञ्जनमाह—

उपक्रम करनेवाला बालक भी हो सकता है और युवक भी हो सकता है, इन दोनोंमें बालकके कन्या अनुरक्त करनेके प्रयत्न बताते हैं, कि—

तया सह पुष्पावचयं ग्रथनं गृहकं दुहितृकाक्रीडायोजनं भक्तपानकरणमिति कुर्वीत। परिचयस्य वयसश्चानुरूप्यात् ॥ ६ ॥

उसके साथ फूल तोड़ना, गूंथना, घरूली बनाना, गुड़ियोंका खेल करना, भक्तपान करना, ये खेल जैसा परिचय हो एवम् जैसी आयु हो उसीके अनुसार करे ॥ ६ ॥

तयेति—बालया। अवचयमुच्चपादपात्। ग्रथनं पुष्पाणाम्। गृहकं काष्ठमयं मृण्मयं वा स्वल्पम्। दुहितृका सूत्रदार्वादिमयी। भक्तपानकरणमिति—सद्भक्तं तण्डुलैरितरत्पांसुभिः। परिचयस्य वयसश्चेति—आत्मनः स्वल्पमधिकं वा परिचयम्, बाल्य तारुण्यं वा वयो बुद्ध्वा तदनुरूपमाचरेत्, नोक्तमित्येव ॥ ६ ॥

अपना जितना उसके साथ परिचय हो एवम् जैसी उसकी और अपनी अवस्था हो उसके अनुसार चाही हुई बालिकाके साथ ऊंचे २ पेड़ोंसे फूल तोड़े, फूलोंकी मालाएँ बनाये तथा बालोंमें गूँथे, काठ या मिट्टीकी छोटी २ घरूली बनाये, कपड़ा डोरा और काठकी गुडियाएँ बनाये । अच्छा भक्त (भात) बनाना हो तो चावलोंसे एवं ऐसावैसा ही बनाना हो तो रेतसे बनाये । छोटी २ खेलकी कुइया भी बनाये । अनुसारका मतलब यह होता है कि कम परिचय हो तो कम एवम् ज्यादा हो तो ज्यादा करने चाहियें । यदि वह बचा हो तो बचों जैसे एवम् जवान हो तो जवानके साथ जैसे ये खेल किये जा सकते हैं उसी तरह करे ॥ ६ ॥

आकर्षक्रीडा पट्टिकाक्रीडा मुष्टिद्यूतक्षुल्लकादिद्यूतानि मध्यमाङ्गुलिग्रहणं षट्पाषाणकादीनि च देश्यानि तत्सात्म्यात्तदाप्तदासचेटिकाभिस्तया च सहानुक्रीडेत ७

रस्सा खैंची, पट्टे गूंथी, जुआ खेली, अँगुली पकडी और कंचाढेरी ये देशी खेल हैं । इनमें किसी भी सुहावनेको उसके व उसकी दास-दासियोंके साथ खेले ॥ ७ ॥

आकर्षक्रीडा पाशकक्रीडा । पट्टिकाग्रथनम् । मुष्टिद्यूतं प्रसिद्धम् । क्षुल्लकद्यूतम् पञ्चसमयादि । मध्यमांगुलिग्रहणमिति-अंगुलिविपर्यासेन गोपितुर्मध्यमांगुलेर्ग्रहणम् । षट्पाषाणकमिति-यत्र स्वल्पानि: षट्पाषाणानि हस्तस्य क्रोडेनोत्क्षिप्य पृष्ठेन गृह्यन्ते । आदिशब्दादन्यानि च देश्यानि पञ्चिकाप्रस्तुतकादीनि । तत्सात्म्यादिति यत्र नायिकाया अभिनिवेशः । तदाप्तदासचेटिकाभिरिति-तस्य-ये दासाश्चेटिकाश्च ताभिः क्रीडन्तीभिः सहानुक्रीडेत । ततो लब्धप्रसरस्तया च ७

रस्सेको दोनों तरफ पकड़कर खींचकर खेलनेको 'आकर्षक्रीडा' कहते हैं । पट्टे गूंथना 'पट्टिकाग्रथन' कहाता है । मुष्टिद्यूत प्रसिद्ध ही है पंचसमय आदि 'क्षुल्लकद्यूत' कहाते हैं । एक अपने हाथकी अँगुलियोंको बदल छिपाकर कहना कि लो इन अंगुलियोंमेंसे बीचकी अंगुलिको छू लो, यह बिचली अँगुलीके पकड़नेका खेल कहाता है, छः छोटी२ कंकरी लेकर हाथके आक्रोडसे उछाल कर पीठपर लेना 'षट्पाषाण' यानी छः कंकरोंका खेल कहाता है । आदिशब्दसे उन देशी खेलोंका भी संग्रह कर लिया ह, जो कि पांचिका और प्रस्तुतक आदि खेल देशमें प्रचलित हैं । इन खेलोंमेंसे अपनी माशूकाको जो अच्छे लगें, उन्हीं खेलोंको उनके साथ खेले । यदि उसके साथ खेलनेको न मिले

तो उसके दास चेले आदिकोंमेंसे जो मिल जाय उसीके साथ खेल ले । इसके बाद जब उसके साथ खेलनेका मौका पाये तभी उसके साथ खेले ॥ ७ ॥

क्ष्वेडितकानि सुनिमीलितकामारब्धिकां लवणवीथिकामनिलताडितकां गोधूमपुञ्जिकामङ्गुलिताडितकां सखीभिरन्यानि च देश्यानि ॥ ८ ॥

इन खेलोंमें कुछ ऐसे भी खेल हैं जिनमें अङ्ग व्यायाम होता है । उन्हें बताते हैं कि-' आँखें मिचोनी, आरब्धिका, लवणवीथिका, अनिलताडितका, गोधूमपुञ्जिका, अंगुलिताडितका तथा और भी देशोंके जुदे २ खेल हैं, इन खेलोंको उसके या उसकी सखियोंके साथ खेले ॥ ८ ॥

क्ष्वेडितकानि चेति येष्वङ्गव्यायामाः तान्याह—सुनिमीलितकामिति यत्रैकस्य कश्चिन्नेत्रे निमीलयति शेषाः प्रच्छन्नेष्वात्मानं गोपायित्वा तिष्ठन्ति ततोऽसावुन्मीलितचक्षुर्यद् गृह्णाति तस्य नेत्रनिमीलनमिति । आरब्धिकां कृष्णफलक्रीडाम् । लवणवीथिकां लवणहट इति प्रतीताम् । अनिलताडितकां यत्र पक्षवद्बाहू प्रसार्य चक्रवद्भ्रमणम् । गोधूमपुञ्जिकामिति । गोधूमग्रहणं व्रीह्युपलक्षणम् । यत्र बहूनामेकः प्रत्येकं रूपकानादाय व्रीहिषु क्षिप्त्वा संमिश्र्य च तावतो भागान्करोति । अतस्ते यथेच्छमेकैकं भागमादाय रूपकमन्विष्यन्ते । तत्र यो न लभते सोऽन्यद्ददाति । अंगुलिताडितकामिति । यत्रैकं निमीलितनेत्रमन्यैर्ललाटे आहत्य केनाभिहतोऽसीति प्रश्नः । अन्यानि च देश्यानि मण्डूकिकैकपादिकादीनि । एते प्रायशो बालस्योपक्रमाः ॥ ८ ॥

इन्हें क्ष्वेडितक कहनेका तात्पर्य यह है, कि इनमें अंगव्यायाम होता है, इन सबको बताते हैं-आँखिमिचौनीमें यह होता है कि एक तो एककी आखें, वन्द कर लेता और दूसरे साथी छिप जाते हैं, वह बादमें आंख खोलकर जिसको छू लेता है फिर उसीकी आँखें मींची जाती हैं । आरब्धिका कृष्णफलकी क्रीडाका नाम है, लवणवीथिका लवणहटको कहते हैं । इसमें ऊसरकी जमीनपर रेहके ढेड़को इकट्ठा कर लेते हैं; उनमेंसे एक रखाता और शेष ले लेकर भागते हैं, रखानेवाला जिसको छू देता है उसको रखानी पड़ती है। जिस खेलमें दोनों हाथोंको फैलाकर फिरकईयाँ लेते हैं, उसे अनिलताडितका कहते हैं । गोधूम ग्रहण व्रीहिका उपलक्षक है । गोधूमपुंजिका कंचा ढेरीकासा एक खेल है । कई जने इकट्ठे होकर व्रीहिका ढर करते हैं, उनमेंसे एक जना सबसे रूपक लेकर उस पुंजमें डालकर उतने ही हिस्से करता है,

फिर वे सब अपनी २ इच्छाके अनुसार एक २ भाग लेकर रूपकको ढूंढते हैं, जिसकी ढेरीमें न मिलेगा उसे दूसरा डारना पड़ेगा । अंगुलिताडितका-एक जना आँख मींचकर खड़ा हो जाता है, दूसरे छिपे तौरपर उसके शिरमें मारकर पूछते हैं, कि किसने मारा ? यदि वह मारनेवालेको बता दे तो फिर उसे आखें मींचकर खड़ा होना पड़ता है । और भी देशोंके खेल हैं जैसे एक आदमी अपनेको मेंडुकी कहकर पानीकी हद बांध देता है, उसमें दूसरे उसे छेड़ते हुए न्हानेकी नकल करते हैं। वह जिसे वहां छू लेता है वही मेंडुकी बनता है । इसी तरह एकपादिका-एक पैरसे चलना आदि है। तास आदिको भी इन्हीं खेलोंमें लेते हैं । ये प्राय: बालिकाको अपनी ओर करनेके प्रयत्न होते हैं, इन उपायोंको बालक करता है ॥ ८ ॥

युवकके प्रयत्न ।

यूनस्तु ये प्रायशस्तानाह—

पीछेके प्रयोग तो बालकोंके थे, किन्तु अब उन प्रयोगोंको बताते हैं जिन्हें कि युवक किया करते हैं ।

परिचय प्राप्त करना ।

सबसे पाहिले परिचय प्राप्त करना चाहिये एवम् उसके विश्वासीसे प्रेम होना चाहिये, इसी बातको सूत्रसे कहते हैं कि—

यां च विश्वास्यामस्यां मन्येत तया सह निरन्तरां प्रीतिं कुर्यात् । परिचयांश्च बुध्येत ॥ ९ ॥

जिस यह समझे कि नायिकाकी विश्वासपात्र है, उसीके साथ निरन्तर प्रेम करे एवं परिचयोंको जाने ॥ ९ ॥

अस्यामिति—नायिकायाम् । विश्वास्याम्—निरन्तराम्—अनवच्छिन्नाम् । प्रीतिं कुर्यात् । सापि हि धात्रेयिका मत्कार्यं करिष्यतीति परिचयांश्चाववुध्येत । प्रीतिं किमप्यस्यामपि करोतीति ॥ ९ ॥

नायिकाके विषयमें जिसे अत्यन्त विश्वासपात्र समझे उसके साथ अटल प्रेम करे । इसके साथ अत्यन्त व्यवहार करनेसे यह मेरे कार्य्यको कर सकेगी वा नहीं,इस बातकी पहिचानोंको भी अच्छी तरह चीन्ह ले । नायकको कुछ प्रीति इसके साथ भी करनी होगी ॥ ९ ॥

सहेलीको काबू करनेके लाभ ।

धात्रेयिकां चास्याः प्रियहिताभ्यामधिकमुपगृह्णीयात् । सा हि प्रीयमाणा विदिताकाराप्यप्रत्यादिशन्ती तं तां च योजयितुं शक्नुयात् । अनभिहितापि प्रत्याचार्यकम् ॥ १० ॥

और धात्रेयीको उसके प्रिय और हितोंकरके अधिक काबूमें करे, क्योंकि यह राजी हो जायगी तो जानती हुई भी विना किसीसे कहे दोनोंको मिला सकेगी ॥ १० ॥

धात्रेयिकाम्—धात्र्या दुहितरम् । प्रियम्—तदात्वे सुखकरम् । हितमायत्याम् । अधिकोपग्रहे फलमाह—सा हीति । प्रीयमाणा—स्निह्यमाना । विदिताकारापीति—नायको नायिकामिच्छतीति ज्ञाताभिप्रायापि । अप्रत्यादिशन्ती तमिति–नायकमप्रत्याचक्षाणा । तां चेति –नायिकां भयलज्जाव्यपनयनेन प्रतार्य योजयितुं शक्नुयात् । अनभिहिता प्रत्याचार्यकमिति—संयोजने त्वमाचार्या भवेत्येतत्प्राति नायकेनानुक्तापि सती योजयितुं शक्नुयादिति योज्यम् ॥ १० ॥

धायकी छोकड़ीको जो उस समय सुखकारी हो एवम् जो उसे भविष्यमें सुखकारी लगे उससे अधिक प्रसन्न करे । इसके अधिक राजी करनेका यह फल होता है कि यह पूरा प्रेम करने लग जाय तो यह उसे चाहता है, इस अभिप्रायको जानती हुई भी नायकसे विना कहे ही या उसकी बात न टालती हुई उसे नायिकासे मिला सकती है । नायिकाकी प्रतारणा करके उसके भय लाजको दूर करके, संयोजनमें तो यह आचार्य्या होती है । इसके प्राति नायकके विना भी कहे यह मिलानेमें समर्थ होती है । यह सूत्रके अर्थकी योजना करनी चाहिये ॥ १० ॥

अविदिताकारापि हि गुणानेवानुरागात्प्रकाशयेत् । यथा प्रयोज्यानुरज्येत ॥ ११ ॥

नायिकाके भावको विना जाने भी यह नायकके अनुरागसे उसके गुणोंको ही प्रकट करे; जिस तरह कि वह उसपर अनुरक्त हो जाय ॥ ११ ॥

अविदिताकारापीति—यद्यपि नायक एनामिच्छतीति न ज्ञातवती तथापि गुणानेव प्रकाशयेत् । अनुरागादिति नायकविषये धात्रेयिकानुरागात् ॥ ११ ॥

यद्यपि धायकी छोरी वा सहेली इस बातको. जानती भी है, कि नायक इसे चाहता है तो भी नायकके बारेमें जो अपना प्रेम है इससे उसके गुणोंको ही प्रकट करेगी ॥ ११ ॥

इच्छाएँ पूरी करे ।

यत्र यत्र च कौतुकं प्रयोज्यायास्तदनु प्रविश्य साधयेत् ॥ १२ ॥

प्रयोज्याको जिस जिस बातमें कौतुक हो उसे जानकर कर दे ॥ १२ ॥

यत्र यत्र चेति—प्रतारणप्रकारे । तत्तदनुप्रविश्य—विज्ञाय । साधयेदिति—संपादयेत् ॥ १२ ॥

प्रतारणके जिस जिस प्रकारमें कौतुक हो उसे उसे अच्छी तरह जानकर उसका संपादन कर दे ॥ १२ ॥

क्रीडनकद्रव्याणि यान्यपूर्वाणि यान्यन्यासां विरलशो विद्येरंस्तान्यस्या अयत्नेन संपादयेत् ॥ १३ ॥

जो दूसरी लड़कियोंके पास विरल देखनेमें आयें ऐसी खेलनेकी चीजें विना किसी तकल्लुफके ला दे ॥ १३ ॥

क्रीडनद्रव्याणि वक्ष्यति । अन्यासामिति—कन्यानाम् । विरलशः, न बाहुल्येन । अयत्नेनेति—संपादनसामर्थ्यं दर्शयति ॥ १३ ॥

खेलनेकी चीजोंको अगाड़ी कहेंगे । विरल कहीं कहींको कहते हैं, कि जो किसीके ही पासमें हों सबके पास न हो । जब शक्ति होगी तभी लानेमें कष्ट न होगा, इस कारण जिसके लानेमें कोई कष्ट न मालूम हो, उस अपनी शक्तिकी वस्तुको लाके अनायास दे दे ॥ १३ ॥

भावबोधक खिलोने ।

तत्र कन्दुकमनेकभक्तिचित्रमल्पकालान्तरितमन्यदन्यच्च संदर्शयेत् । तथा सूत्रदारुगवलगजदन्तमयीर्दुहितृका मधूच्छिष्टपिष्टमृन्मयीश्च ॥ १४ ॥

गेंद ऐसी होनी चाहिये जिसपर जुदे २ रंगोंकी फाँकें बना रखी हों और चित्र कढ़े हों, जो लुढकती हुई थोड़ी २ देर रंग बदलती जाय तथा और भी फूंकनीसे उड़ानेकी तथा दूसरी २ तरहकी गेंदे दिखाये तथा डोरा, काठ,सींग, हाथीके दाँत, मोंम अथवा मैदा या मिट्टी की बनी पूतरियाँ दिखाये ॥ १४ ॥

क्रीडनकद्रव्याण्याह—कन्दुकमिति । अल्पकालान्तरितमिति कौतुकप्रबन्धाभ्युपगमार्थम् । अन्यदन्यत् भक्तीनां वैसादृश्यात् । दारु काष्ठम् । गवलं शृङ्गम् । दुहितृकाः पुत्रिकाः । संदर्शयेदित्येव । मधूच्छिष्टं सिक्थकम् ॥ १४ ॥

जिसे देखकर उसे कौतुक हो एवम् अपनी गेंदको निराली समझे, इस कारण थोड़ी २ देरमें रँग बदलनेवाली लाई जाती है । जिसके विभाग भिन्न२ तरहके होंगे एवम् रंगविरंगी होंगी वे दूसरी २ तरहकी कहलायेंगी । दारुका अर्थ काठ, गवलका अर्थ सींग और दुहितृकाका अर्थ पुतरी है । मधूच्छिष्ट और सिक्थक ये दोनों मोंमके पर्य्याय हैं ॥ १४ ॥

भक्तपाकार्थमस्या महानसिकस्य च दर्शनम् ॥ १५ ॥

भात बनानेके लिये रसोंई सिखानी चाहिये । भक्तका मतलब भात है, यह अपना बोध करता हुआ भोजनमात्रका बोध करता है ॥ १५ ॥

महानसिकस्येति—महानसविषयं कर्म महानसिकमित्युक्तम् । भक्तग्रहणमुपलक्षणार्थम् । भक्तादिपाकार्थस्य कर्मणस्तत्तच्छास्त्रोक्तेन विधिना दर्शनम् । स्त्रीणां प्रधानविद्यात्वात् ॥ १५ ॥

महानस (रसोंई) विषयक कर्मको महानसिक कहते हैं । भात आदि पाक बनानेके लिये जो क्रिया होनी चाहिये उसे पाकशास्त्रके अनुसार बताना, क्योंकि स्त्रियोंकी यही प्रधान विद्या है ॥ १५ ॥

काष्ठमेढ्रकयोश्च संयुक्तयोश्च स्त्रीपुंसयोरजैडकानां देवकुलगृहकाणां मृद्विदलकाष्ठविनिर्मितानां शुकपरभृतमदनसारिकालावककुक्कुटतितिरिपञ्जरकाणां च विचित्राकृतिसंयुक्तानां जलभाजनानां च यन्त्रिकाणां वीणिकानां पटोलिकानामलक्तकमनःशिलाहरितालहिङ्गुलकश्यामवर्णकादीनां तथा चन्दनकुङ्कुमयोः पूगफलानां पत्राणां कालयुक्तानां च शक्तिविषये प्रच्छन्नं दानं प्रकाशद्रव्याणां च प्रकाशम् । यथा च सर्वाभिप्रायसंवर्धकमेनं मन्येत तथा प्रयतितव्यम् ॥ १६ ॥

एक काठपर बने हुए स्त्री पुरुषोंको, मेढोंको, भेड़ बकरियाएँ तथा गऊ, साँड आदि दिखाये । मिट्टी फंसठ वा काठके बने देवमंदिर, एवम् इन्हीं वस्तुओंके

बने तोता कोयल, मैना, लवा, तीतुर, मुरगा आदिके पिंजड़े जिनमें कि ये बना-कर बिठा रखे हों । पानीके बरतन रंग बिरंगी अनेकों आकृतियोंवाले यंत्र, छोटी २ वीणाएँ, जिनपर प्रसाधन किया जाता है वे वस्तु, महावर, मैनाशिल, हरताल, हिंगुल, काला रंग, चंदन, कुंकुम, सुपारी, पत्ते इन चीजोंमेंसे जिस समय जिस वस्तुकी आवश्यकता हो एवम् अपनी शक्तिका विषय हो तो प्रच्छन्न वस्तुओंका छिपे तौरपर एवम् उजग्गर देनेकी चीजोंको उजग्गर देना चाहिये । जिस तरह इसको सब अभिप्रायोंका बढानेवाला समझे उसी तरह प्रयत्न करना चाहिये ॥ १६ ॥

संयुक्तयोरिति एककाष्ठघटितयोः स्त्रीपुंसयोर्मेढ्रकयोरविप्रयोगार्थं दर्शनम् । अजैडकानां काष्ठमयानाम् । उपलक्षणार्थत्वाद्गवाश्वादीनां च । मृदा वंशविदलैः काष्ठैर्वा विनिर्मितानां देवकुलानां देवगृहाणां च । शुकादिपञ्जराणां मृदा-दिनिर्मितानाम् । तत्र मदनसारिका पठति । जलभाजनानां शङ्खशुक्ति-खण्डानां मृत्काष्ठशिलानिर्मितानाम् । विचित्राणां वर्णिकया आकृतियुक्तानां संस्था-नवताम् । यन्त्रिकाणामिति यन्त्रमातृकोक्तानाम् । वीणिका स्वल्पवीणा । पिण्डो-लिका यत्र दुहितृकाः स्थाप्यन्ते । पटोलिका यत्र प्रसाधनं विधीयते । श्याम-वर्णकं राजावर्तचूर्णं चित्रकर्मोपयोगि । पत्राणि ताम्बूलस्य । कालयुक्तानामिति । यस्मिन्काले येनार्थिनी तत्र तस्य दर्शनमित्यर्थः । शक्तिविषय इति यस्मिन्प्रच्छन्ने स्वयं प्रवेष्टुं सामर्थ्यं तत्र दानम् । कुंकुमादीनामप्रकाश्यत्वात् । प्रकाशद्रव्याणां कन्दुकादीनां प्रकाशदानम् । तैरेव कल्पनीयत्वात् । सर्वाभिप्रायसंवर्धकमिति—सर्वाभिलाषपूर्वकं यज्जन्मन ईप्सितं तत्तत्संपादयतीति । दीयमानं च यथा प्रच्छन्नमर्थयेत् ॥ १६ ॥

एक काठपर बनाये हुए जुदे नहीं हो सकते हैं, इस कारण संयुक्त हैं ऐसे स्त्रीपुरुष वा उनके मेढों व मेढाओंका दिखाना केवल इस बातकी सूचना देना है, कि जोड़ा बने पीछे फिर वियोग नहीं होता । काठके बकरा, बकरी, मेंढा, भेड, ये उपलक्षक हैं इससे गऊ, घोड़े आदिका भी ग्रहण होता है । मिट्टी, बांसोंकी फंसटें और काठोंके बने देवमंदिरोंको शुकसे लेकर तीतुरतकके सूत्रके बताये हुए पक्षियोंके मिट्टी बांसकी फंसठ वा काठके बन पिंजड़ोंको जिनमें कि मैना आदि बोलतीं हों । शंख और सीपोंके टुकड़ोंके अथवा मिट्टी काठ और पत्थरके बने पानीके बर्तन । वर्णिका द्वारा संस्थानोंवाले यंत्रमातृकाकी कही हुई, वीणिका छोटे वीणाको कहते हैं ।

पिंडोलिका पीढ़ुडीका नाम है, जिनपर पुतलियाँ बिठाई जाती हैं। पटोलिका उसे कहते हैं जिसपर प्रसाधन किया जाता है। राजावर्त (नामकवस्तु) का चूर्ण काले रंगका होता है, जो कि चित्र बनानेके कार्य्यमें आता है। पत्ते पानके कार्य्यमें आते हैं। कालयुक्तका यह तात्पर्य्य है, कि जिस समय जिस वस्तुकी आवश्यकता हो उस समय उसी चीजको दिखा देना। शक्तिविषयका तात्पर्य्य है कि जिस चीजके छिपेतौरपर देनेके निमित्त स्वयम् चुपचाप घुसनेकी सामर्थ्य हो तो देना चाहिये, क्योंकि कुंकुम आदि दिखानेकी चीज नहीं हैं। दिखानेकी चीज जो गेंद आदिक हैं उनको उजगर देना चाहिये, क्योंकि कन्दुकादिक गोपनीय वस्तु नहीं हैं। उनसे तो देनेलेनेकी कल्पना चलती है। इन वस्तुओंमेंसे नायिका जिस चीजको चाहे, जो उसके मनमें हो उसे ही उपस्थित कर दे। जो गुपचुपकी चीज दे उसे छिपाकर रखनेके लिये कहे ॥ १६ ॥

किं निमित्तमित्याह—

यह सब किसलिये करे, इसका उत्तर देते हैं कि—

वीक्षणे च प्रच्छन्नमर्थयेत तथा कथायोजनम् ॥ १७ ॥

प्रार्थना करे कि आप मुझे छिपतौरपर दीख जाया करें एवम् ऐसी ही दूसरी बातें भी करे ॥ १७ ॥

वीक्षणे चेति। दर्शननिमित्तम्। प्रच्छन्ने दृश्यमाना निःशङ्कमुपचर्यते। तथा कथायोजनमिति—अन्यमुखेन संवर्धनार्थं च कथां योजयेत् ॥ १७ ॥

यदि छिपेतौरपर अकेली मिल जायगी या दीख जायगी तो निःशंक उपचार किये जा सकेंगे, इस कारण इतनी सेवा करके छिपेतौरपर अकेलेमें दीखनेकी प्रार्थना करे। तथा दूसरोंकी बातके बहाने ऐसी ही कथाएँ सुनाये जिससे नायिकाकी इस काममें तबीयत बढ़े ॥ १७ ॥

प्रच्छन्नदानस्य तु कारणमात्मनो गुरुजनाद्भयं ख्यापयेत्। देयस्य चान्येन स्पृहणीयत्वमिति ॥ १८ ॥

---

१ यह तो प्रेमियोंकी प्रसिद्ध बात है, उन्हें दीखना सबसे ज्यादा प्यारा है, भगवद्रसिकने एक पद लिखा है कि—"चकोरी चख हमारे हैं, तुम्हारे चाँदसे मुखपर। जरा बिखरेसे बालोंको, सभालोगी तो क्या होगा।" भक्तोंको और प्यारा भी क्या है? दर्शन हो जाया करे इससे अधिक उन्हें चाह भी क्या है। संसारी प्रेमियोंकी भी यही बात है, प्रेम कहानियोंमें यह बात सर्वत्र सभी साहित्यवालोंके यहां व्यवहारमें आ रही है।

यदि वह छिपे तारपर देनेका कारण पूछे तो माता, पिता आदि गुरु जनोंका भय बताये तथा जो वस्तु दे उसके विषयमें कह दे कि इसे अमुक २ चाहते हैं ॥ १८ ॥

प्रच्छन्नस्य तु कारणमुभयम् । तत्रात्मनो गुरुजनाद्भयं ख्यापयेत् तव पितरौ रुष्यत इति । अन्येन स्पृहणीयत्वमिति—अन्योऽप्येनद्दृष्ट्वा स्पृहयति । ततश्च गृह्णीयादिति ॥ १८ ॥

छिपे तौरपर देनेके कारण तो दो हैं कि एक तो अपने गुरुजनोंका भय तथा दूसरे उसके अभिभावकोंसे भीति । बता दे कि मैं डरता हूं कहीं तुम्हारे माता पिता नाराज न हो जायें । जो चीज दे उसके बारेमें कह दे, कि मैंने फलानीको यह चीज दिखाई थी वह बोली कि मुझे दे दे । ऐसा कहनेसे नायिका उस वस्तुको ले लेगी ॥ १८ ॥

वर्धमानानुरागं चाख्यानके मनः कुर्वतीमन्वर्थाभिः कथाभिश्चित्तहारिणीभिश्च रञ्जयेत् ॥ १९ ॥

बढ़ते हुए अनुरागमें यदि बातें सुननेके लिये तबीयत करे तो उस मौकेपर घटनेवाली मनोहर कथाओंसे उसका मनोरंजन करे ॥ १९ ॥

अन्वर्थाभिः स्वयं प्रयुक्ताभिः शकुन्तलाराजदारिकाकथाभिः । चित्तहारिणीभिरन्याभिरनुरागयुक्ताभिः ॥ १९ ॥

यदि यह देखे कि यह प्रेममें आकर प्रेमकी बातें सुनना चाहती है तो उस समय उसे वे प्रेमकहानी सुनाये जो उस समय घटें; जैसी कि शकुन्तला आदि

---

१ प्रेममें छिपे तौरपर देनलेन तो हो ही जाता है, जो संपन्न हैं जिनमें अन्य वस्तुओंकी आवश्यकता नहीं तो चित्र ही चलते हैं । मालतीमाधव नाटकमें लिखा है, कि भूरिवसु दीवानकी लाडिली बेटीने अपना चित्र माधवके हाथका उतरा लिया तथा उसका चित्र अपने हाथसे उतारा बागमें माधवके हाथकी गुथीमाला पाकर ही अपनेको धन्य मान लिया, यद्यपि उसे फूलोंकी मालाओंकी कमी नहीं थी पर वह माधवके निजी करोंसे गुथी थी, इस कारण प्यारी थी । कहा भी है, कि–"वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु" यानी प्रेममें गुण हैं वस्तुमें नहीं ।

२ ये कहानियाँ ही सबसे ज्यादा मादक होती हैं । प्रत्येक स्थलमें अनुरागको चरम सीमा-पर पहुँचानेके लिये ये एक अपूर्व विद्युत्शक्तिका काम देती हैं । जब प्रेमियोंमें प्रेम बढ़ जाने-पर भी संकोच रहता है तो इन्हीं गप्पोंसे मिटाया जाता है । यही कारण है कि किसी हिन्दीके कविने कह दिया है कि–' न जाने ये बातें हैं या जादू ' ।

राजकन्याओंकी कहानियाँ हैं । तथा और भी मनोहर ऐसी प्रेमकथाएँ सुनाये कि जिनके सुननेसे चित्तमें प्रेमधारा बहने लगे ॥ १९ ॥

जादूके तमाशे दिखाना।

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिन्द्रजालैः प्रयोगैर्विस्मापयेत् । कलासु कौतुकिनीं तत्कौशलेन गीतप्रियां श्रुतिहरैर्गीतैः । आश्वयुज्यामष्टमीचन्द्रके कौमुद्यामुत्सवेषु यात्रायां ग्रहणे गृहाचारे वा विचित्रैरापीडैः कर्णपत्रभङ्गैः सिक्थकप्रधानैर्वस्त्राङ्गुलीयकभूषणदानैश्च । नो चेद्दोषकराणि मन्येत ॥ २० ॥

यदि आश्चर्य्यकारक कौतुक देखनेकी इच्छा हो तो इन्द्रजालके प्रयोग दिखाकर उसे चकित कर दे । यदि कलाओंका कौतुक देखना हो तो उसे दिखा दे । गाना अच्छा लगता हो तो अच्छे गीत सुना दे । कोजागर व्रतके दिन, बहुलाष्टमीके दिन एवम् ज्योत्स्नामंडलकी पूजाके दिन एवं उत्सवोंके दिन तथा देवयात्रा और ग्रहणके दिन घर आनेपर विचित्र तरहके आपीड, कर्णपत्रभंग, मौम, वस्त्र, छाप छल्ला और दूसरे २ आभूषण देकर प्रसन्न करे, यदि देनेमें कोई दोष न दीखे तो ॥ २० ॥

विस्मयेषु प्रसह्यमानामिति—आश्चर्येषु प्रसक्तिं यान्तीम् । कलासु—पत्रच्छेद्यादिषु । गीतप्रियामिति । कलान्तर्गतमपि पुनर्गीतग्रहणं प्राधान्यार्थम् । प्रायेण हि गीतप्रियो लोकः । आश्वयुज्यां कोजागरे । अष्टमीचन्द्रके मार्गशीर्षबहुलाष्टम्याम् । तत्र हि दिनमुपोष्योद्गते चन्द्रमसि भुज्यते । कौमुद्यामिति सामान्योपादानेऽपि यत्र कन्याभिर्ज्योत्स्नामण्डलकपूजा [क्रियते] सात्र द्रष्टव्या । सा कार्तिक्यां भवति । उत्सवेषु इन्द्रमहादिषु । यात्रायां देवतायाः । ग्रहणे सूर्याचन्द्रमसोः । गृहाचारे गृहमागतायाम् । आपीडादिभिर्विस्मापयेदिति संबन्धः । नो चेद्दोषकराणीति तद्दाने यद्यात्मनोऽपायं न पश्येत ॥ २० ॥

यदि नायिकाकी विस्मयकारी खेलोंके देखनेकी इच्छा हो तो उसे इन्द्रजाल आदिके अनूठे प्रयोगोंको दिखाकर चकित कर दे । यदि उसकी इच्छा पत्रच्छेद्य आदिकी कलाओंके चमत्कार देखनेकी हो तो उसे दिखा दे। यदि यह जान कि इसे सुन्दर गाने अच्छे लगते हैं तो उन्हें ही सुनाकर मुग्ध करे।

यद्यपि विधिके साथ मधुर गाना भी एक कला ही है वह भी कलाओंके ग्रहणमें आ ही जाता है; कलाके बाद भी गीतका ग्रहण करना उसकी प्रधानता दिखानेके लिये है, क्योंकि प्रायः दुनियाँको सुरीला मीठा गाना अच्छा लगता है । आश्विनकी पूर्णिमाको कोजागरव्रत होता है, इसमें रातको जागरण होता है । मार्गशीर्षकी बहुलाष्टमीको 'अष्टमीचन्द्रक' कहते हैं । इस दिन दिनभर उपवास करके चन्द्रमाके उदय होनेपर भोजन किया जाता है । कार्तिककी पौर्णमासीके दिन चांदकी चाँदनीमें कन्याएँ ज्योत्स्नामण्डलकी पूजा करती हैं । यद्यपि सूत्रमें केवल 'कौमुदीमें' यह सामान्यरूपसे कहा है तो भी यह कौमुदी कार्तिककी पूर्णिमाकी समझनी चाहिये । इन्द्रमह आदिक उत्सवोंमें एवम् सूर्य्यग्रहण वा चन्द्रग्रहणमें जो अपने घर आजायँ उसे विचित्र आपीड आदिकोंसे चकित कर दे, यदि कोई दोष न समझे कि मेरा नुकसान न होगा तो ॥ २० ॥

सहेलीद्वारा विश्वास दिलाकर रंगे ।

अन्यपुरुषविशेषाभिज्ञतया धात्रेयिकास्याः पुरुषप्रवृत्तौ चातुःषष्टिकान्योगान्ग्राहयेत् ॥ २१ ॥

धायकी लड़की वा सहेली नायिकासे कहे, कि यह इस काममें सबसे चतुर है एवम् उससे उसे भेंट जानेपर आलिंगनादिकोंको सिखाये ॥ २१ ॥

अन्यपुरुषविशेषाभिज्ञतयेति—अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो मम विशेषं धात्रेयिका जानातीति । पुरुषप्रवृत्ताविति—जातसंप्रयोगाम् । अन्यथा कथं विशेषमेत्रेति॥ २१ ॥

नायकसे मिली भेटी हुई धायकी लड़की वा नायिकाकी सहेलीको चाहिये, कि प्रयोज्याके सामने अपने दोस्तकी तारीफ करे, कि यह इन कामोंमें बड़ा अच्छा है । यह कहकर उसेका भय छुटाकर नायकसे मिला दे तथा नायकसे उसे सहवासकी चौंसठ कलाएं सिखवाये । विना मिलाकर दिखाये नायिकाकी यह श्रद्धा नहीं हो सकती, कि यह इस काममें बड़ा चतुर व्यक्ति है ॥ २१ ॥

---

१ अधम प्रकृतिकी या बेसमझदार या अत्यन्त वेदेशको उसकी सहेलियाँ बहका भुलाकर ऐसा करा देती हैं, किन्तु समझदार ऐसा स्वीकार नहीं करती । ये सखियाँ नायकके ही घर लेजायँ यह बात नहीं, किन्तु अवसर उपस्थित होनेपर, नायकको भी नायिकाके पास दाखिल कर देती हैं ।

वैध रतिकौशल प्रकट करना ।

तद्ग्रहणोपदेशेन च प्रयोज्यायां रतिकौशलमात्मनः प्रकाशयेत् ॥ २२ ॥

पुरुषको चाहिये, कि उनके उपदेशसे अपने रतिकौशलको प्रयोज्यापर प्रकट करे ॥ २२ ॥

तद्ग्रहणोपदेशेनेति—धात्रेयिकोपदेशद्वारेण । रतिकौशलमिति तज्ज्ञताम् २२॥

जब धात्रेयी वा अपनी मिलीझुली उसकी सहेलियाँ कहें कि इसे भी आप अपनी चतुरता दिखा दें तो उनके कहनेसे रतिकौशल दिखा दे कि मैं इतना इस विषयमें भी चतुर हूं ॥ २२ ॥

प्रयोज्याके सामने सजा हुआ जाना ।

उदारवेषश्च स्वयमनुपहतदर्शनश्च स्यात् । भावं च कुर्वतीमिङ्गिताकारैः सूचयेत् ॥ २३ ॥

आप अपना उत्तम वेष रखे तथा सदा उसकी नजरमें पड़ता रहे । भाव करती हुईको ईङ्गिताकारोंसे जान जाय ॥ २३ ॥

अनुपहतदर्शन इति । अस्योपाय उदारवेषत्वम् । तथाभूतं तं च दृष्ट्वा भावं कुर्वतीमनुरागं चेतसि जनयन्तीमिङ्गिताकारैर्लिङ्गैर्विद्यात् ॥ २३ ॥

जब जावे तव उत्तम भेषसे ही जाये, उसके सामने होनेका उदारभेष ही कारण है, क्योंकि मैले कुचैले रहकर जानेसे उसे अरुचि होगी, सदा सिंगरा रहे एवम् सदा ही इसी भेषसे जाय। यह अपने चित्तमें मेरे लिये भाव रखती है वा नहीं, इस बातको उसके इङ्गिताकारसे जान ले ॥ २३ ॥

---

१ "भूयो भूयः सविधनगरीरथ्यया पर्यटन्तं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा भवनवलभीतुङ्गवातायनस्था ।
साक्षात्कामं नवमिव रतिर्मालती माधवं यत्
गाढोत्कण्ठालुलितलुलितैरङ्गकैस्ताम्यतीति ॥ "

अब इधर थोड़े दिनोंसे मन्त्रिभवनके निकटवर्ती मार्गसे माधव वारंवार आया जाया करता है । जब जब वह उस मार्गसे जाता आता है तो मालती धुर ऊपरके मँजलेकी खिरकीपर खड़ी होकर अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर दृष्टि गड़ाकर उसे देखा करती है । उसके मदनमनोहर स्वरूपको देखकर मालती रति जैसे तड़फा करती है ।

किमित्यनुपहतदर्शनः स्यादित्याह—

अपनी चाही हुई स्त्रीके सामने क्यों सिंमरा हुआ सदा सामने आये इसका कारण बताते हैं, कि—

युवतयो हि संसृष्टमभीक्ष्णदर्शनं च पुरुषं प्रथमं कामयन्ते। कामयमाना अपि तु नाभियुञ्जत इति प्रायोवादः। इति बालायामुपक्रमाः ॥ २४ ॥

यह निश्चित बात है कि युवतियाँ सदा दीखनेवाले परिचित पुरुषको चाहती हैं और चाहती हुई भी नहीं संयुक्त होतीं, यह बात अधिकांशमें देखनेमें आते हैं। ये बालाके उपक्रम पूरे हुए ॥ २४ ॥

युवतय इति जातयौवनाः। संसृष्टं जातपरिचयम्। अभीक्ष्णदर्शनं सदा दृश्यमानम्। कामयन्त इच्छन्ति। नाभियुञ्जते कयाचिल्लज्जाद्यर्थयुक्त्या ॥ बालायामुपक्रमाः षड्विंशं प्रकरणम् ॥ २४ ॥

जोबनके मदसे चूर २ हुई अंगनाएँ जान पहिचानके सदा मिलनेवाले पुरुषको चाहती तो हैं, कि इससे मिल लें तो अच्छा हो, परन्तु लज्जासे संकोचसे तथा अपमान व बदनामी आदिके डरसे चाहती हुई भी नहीं मिलतीं। यह 'बालामें उपक्रम इस नामका २६ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ २४ ॥

इङ्गिताकारसूचन प्रकरण।

भावं च कुर्वतीमिङ्गिताकारैः सूचयेदित्युक्तं तेषां सूचनं प्रकाशनमुच्यते। यदाह—

युवकोंके कन्या प्राप्त करनेके प्रयत्नोंमें कहा जा चुका है, कि—'मेरे लिये अपने हृदयमें अनुराग करती है वा नहीं, इस बातको उसकी अन्यथावृत्ति तथा मुख और नेत्रोंके रागसे जान ले' इनकी पहिचान कैसे हो, इस बातको बताते हैं यानी इङ्गित और आकारोंको बताते हैं। सूत्रकार इस प्रतिज्ञाको बतानेवाला सूत्र भी करते हैं, कि—

तानिङ्गिताकारान् वक्ष्यामः ॥ २५ ॥

इङ्गित और आकारोंको कहेंगे ॥ २५ ॥

तानिति। तत्रेङ्गितमन्यथा वृत्तिः। आकारो मुखनयनरागः। तदुभयमुत्तरत्र यथायोगं योज्यम् ॥ २५ ॥

अन्यथावृत्तिको इङ्गित एवम् मुख और नेत्रोंकी रंगतको आकार कहते हैं, इनकी यथायोग योजना होनी चाहिये ॥ २५ ॥

देखने भालनेका ढंग ।

संमुखं तं तु न वीक्षते । वीक्षिता व्रीडां दर्शयति । रुच्यमात्मनोऽङ्गमपदेशेन प्रकाशयति । प्रमत्तं प्रच्छन्नं नायकमतिक्रान्तं च वीक्षते ॥ २६ ॥

सामने नहीं देखती, देखनेपर लाज दिखाती है, अपने सुन्दर अंगोंको बहानेसे दिखाती है। यदि नायक असावधान, अकेला या दूर हो तो देखती है ॥ २६ ॥

संमुखं न वीक्षत इति लज्जया । पराङ्मुखी तं तु नायकम् । वीक्षितेति नायकेन तु व्रीडां दर्शयति अधोमुखी भूत्वा । रुच्यमतिमनोहरम् । आत्मनोऽङ्गं स्तनबाहुमूलादि । अपदेशेनेति प्रावरणव्याजेन । प्रमत्तमनवहितम् । प्रच्छन्नमेकाकिनम् । अतिक्रान्तं दूरगतम् ॥ २६ ॥

लज्जाकी वजहसे सामने नहीं देखती पर मुख फेरकर तो युक्तिसे देखती है । यदि नायक देखने लगे तो लाजके मारे नीचा शिर कर लेती है । अपने स्तन और बाहुमूल आदि सुन्दर अंगोंको ढकनेके बहाने दिखाती है । यदि नायक असावधान हो तो अथवा अकेला हो वा दूर चला गया हो तो उसे देखा करती है ॥ २६ ॥

---

१ " यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं तद्,
आवृत्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या,
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥ "

जब वह जाने लगी उस समय उस कम्बुकण्ठीने मुडकर बारबार मेरी ओर देखा, अमृत और जहरमय कटाक्षबाणोंसे मेरे हृदयपर गहरी चोट की ॥

दोहा—" अमी हलाहल मद भरे, श्वेतश्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जिति चितहिव इक बार ॥ "

२ " त्रिबली नाभि दिखायके, शिर ढकि सकुचि सराहि ।
गली अलीकी ओट है, चली भली विधि चाहि ॥
देख्यो अनदेख्यो कर्यो, अँग अँग सबै दिखाय ।
पैठतिसी तनुमें सकुचि, बैठी चितहि लजाय ॥ "

बोलने आदिका ढंग।

पृष्टा च किंचित्सस्मितमव्यक्ताक्षरमनवासितार्थं च मन्दंमन्दमधोमुखी कथयति । तत्समीपे चिरं स्थानमभिनन्दति । दूरे स्थिता पश्यतु मामिति मन्यमाना परिजनं सवदनविकारमाभाषते । तं देशं न मुञ्चति ॥ २७ ॥

कुछ पूछनेपर मन्दहसनके साथ अस्पष्ट अक्षरोंमें जिसका कि जलदी ही अर्थ समझमें न आये ऐसे वचन धीरे धीरे नीचेको मुख करके कहती है । उसके पास चिरकालतक बैठना अच्छा समझती है । दूर खड़ी हुई 'यह मुझे देख' ऐसा मानकर अपने परिजनके साथ मुँह बनाकर बोलती है एवम् उस जगहको नहीं छोड़ती ॥ २७ ॥

पृष्टा यत्किंचिदिति नायकेन । सस्मितमित्यादिनानुरागोन्मुखता व्रीडा चाख्यायते । तत्समीप इति—नायकसमीपे । परिजनमित्यात्मीयम् । सवदनविकारमिति—सभ्रूभङ्गकटाक्षकम् । तं देशमिति—यत्र स्थिता तं पश्यति ॥ २७ ॥

जब नायक उससे कुछ पूछ दे तो ऊपरके बताये ढंगसे उत्तर देती है, इससे अनुरागका प्राकट्य तथा लज्जाका निरूपण हो जाता है । मुँहका बनाना, भौंहें चलाना तथा नेत्रोंसे कटाक्ष करते जाना है । जिस जगह खड़ी होकर उसको देखती है जबतक वह दीखे तबतक नहीं छोड़ती ॥ २७ ॥

नाज दिखाना।

यत्किंचिद्दृष्ट्वा विहसितं करोति । तत्र कथामवस्थानार्थमनुबध्नाति । बालस्याङ्कगतस्यालिङ्गनं चुम्बनं च करोति । परिचारिकायास्तिलकं च रचयति । परिजनानवष्टभ्य तास्ताश्च लीला दर्शयति ॥ २८ ॥

कुछ भी देखकर हँसती है । वहां खड़े होनेके लिये बातें प्रारंभ कर देती है । गोदके बालकका आलिङ्गन और चुम्बन करने लग जाती है । परिचारिकासे तिलक सँभलवाने लगती है । परिजनोंका आश्रय लेकर उन २ लीलाओंको दिखाने लग जाती है ॥ २८ ॥

तत्रैव यत्किंचिद्दृष्ट्वा विहसितं करोति । तिर्यक्पश्यन्ती । तत्र कथामनुबध्नाति सखीं प्रोत्साह्य । बालस्येति लाडीकस्य स्वाङ्कमारोपितस्य । चुम्बनावगूहनं च

संक्रान्तकम् । परिचारिकायाः स्वस्यास्तिलकं रचयति नायकं पश्यन्ती । परिजनानवष्टभ्येति परिजनक्रोडापाश्रया । तास्ताश्चेति केशविरचनाङ्गवलनविजृम्भिकादिकाः ॥ २८ ॥

वहीं खड़ी या बैठी किसी चीजको देखकर टेढ़ा देखती हुई हँसती है । वहां ही सखीको उत्साहित करके गप्पें लगाती है । गोदीमें बिठाये हुए लल्लाको चूमती और छातीसे लगाती है । यह चूँमना और लगाना संक्रान्त चुम्बन है । अपनी सेवकानीसे तिलकको बनाती है, नायकको देखती हुई । परिजनके क्रोडमें होकर बालोंका बनाना, अंगका तोड़ना और जँभाई लेना आदि कार्य्योंको भी करती है ॥ २८ ॥

प्रेमीके आदमियोंपर विश्वास ।

तन्मित्रेषु विश्वसिति । वचनं चैषां बहु मन्यते करोति च । तत्परिचारकैः सह प्रीतिं संकथां द्यूतमिति च करोति । स्वकर्मसु च प्रभविष्णुरिवैतान्नियुङ्क्ते । तेषु च नायकसंकथामन्यस्य कथयत्स्ववहिता तां शृणोति ॥२९

उसके मित्रोंमें विश्वास करती है । उनकी बातका आदर मानती है और करती है । उसके नौंकरोंके साथ बातचीत प्रेम और जूआ आदि करती है । मालिककी तरह उन्हें अपने कामके लिये कह देती है। यदि वे नायककी बातचीत करने लग जायँ तो एकाग्रवृत्तिसे सुनती है ॥ २९ ॥

तन्मित्रेषु नायकमित्रेषु । विश्वसिति स्वभावं प्रकटयति । वचनं चैषां बहुमानं कुरुते । तदनुरूपानुष्ठानात् । तत्परिचारकैरिति नायकपरिचारकैः । एतानिति नायकपरिचारकान् । तेष्विति परिचारकेषु कस्यचिदन्यस्य कथयत्सु । तां संकथाम् ॥ २९ ॥

नायकके मित्रोंका विश्वास करके अपना स्वभाव व्यक्त कर देती है। यदि वे उससे कुछ कहें तो उनका बड़ा आदर करती है एवम् उनके कथनको नहीं टालती यानी जो वे कहते हैं वह कर देती है । उसके टहलुओंके साथ प्रेम आदि करती है । उनकी मालकिनिकी तरह उनपर आज्ञा करती है। यदि वे या कोई उनसे प्यारेकी बातें बतियायें तो बड़ी ही सावधानीके साथ सुनती है २९

सहेलीके साथ घर जाना ।

धात्रेयिकया चोदिता नायकस्योदवसितं प्रविशति । तामन्तरा कृत्वा तेन सह द्यूतं क्रीडामालापं चायो-

जयितुमिच्छति। अनलंकृता दर्शनपथं परिहरति। कर्णपत्रमङ्गुलीयकं स्रजं वा तेन याचिता सधीरमेव गात्रादवतार्य सख्या हस्ते ददाति। तेन च दत्तं नित्यं धारयति। अन्यवरसंकथासु विषण्णा भवति। तत्पक्षकैश्च सह न संसृज्यत इति ॥ ३० ॥

धायकी लड़की वा सहेलीके कहनेपर प्यारेके घर चली जाती है। उसे बीचमें करके प्यारेके साथ जूआ, खेल व बातें करना चाहती है। नायकके सामने मैलीकुचैली नहीं आती। यदि वह कर्णपत्र छाप वा माला मांग ले तो धीरताके साथ शरीरसे उतार कर सखीके हाथपर रख देती है। उसकी दी हुई सदा पहिनती है। दूसरे वरोंकी बातोंमें उदास हो जाती है एवम् उनके पक्षवालोंके साथ संसर्ग नहीं करती ॥ ३० ॥

धात्रेयिकया चोदिता प्रविशति इति। उदवसितं गृहम्। तामन्तरा कृत्वेति धात्रेयिकां व्यवधानीकृत्य। नायकेन सह द्यूतादि नियोजयितुमिच्छति। दर्शनपथमिति नायकस्य। सधीरमवतार्य किं ग्रहीष्यतीति। सख्या हस्त इति लज्जया न तद्धस्ते ददाति। नित्यं धारयति श्लाघ्यमाना। तत्पक्षैरिति अन्यवरपक्षैः ॥ ३० ॥

यदि धायकी लड़की या सहेली उसे नायकके घर ले जाती हैं जो चली जाती है। सूत्रके उदवसित शब्दका घर अर्थ है। धायकी छोकरी वा सखीको बीचमें डालकर नायकके साथ जूआ आदि खेल प्रारंभ कर देना चाहती है। क्या लेगा इस तरह धीरेसे उतारती है, लाजके मारे उसके हाथ न देकर सखीके हाथ देती है। उससे जो मिलता है उसकी तारीफ करती हुई रोज पहिनती है। उसके पक्षवालोंका मतलब दूसरे वरके पक्षवालोंसे है ॥ ३०

उपसंहार।

प्रकरणद्वयमुपसंहरन्नाह—

इन दोनों प्रकरणोंका उपसंहार करते हुए श्लोक कहते हैं—

भवतश्चात्र श्लोकौ—

दृष्ट्वैतान्भावसंयुक्तानाकारानिङ्गितानि च।
कन्यायाः संप्रयोगार्थं तांस्तान्योगान्विचिन्तयेत् ३१॥

---

१ देनेमें भी संकोच नहीं होता तथा कुछ मिल जाय तो उसे देखते २ मन भी नहीं भरता। विहारीदासने इसपर एक दोहा लिखा है, कि—

"छला छबीले छैलको, नवल नेह लहि नारि।
चूमति चाहति लाय उर, पहनति धरति उतारि॥"

इस विषयमें दो श्लोक हैं कि—इन[1] आकार इङ्गितोंको भावसंयुक्त देखकर कन्याके संप्रयोगके लिये उन २ योगोंको विचारे ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वेति । एतानिति आकारान् इङ्गितानि चेति लिङ्गविपरिणामेन योज्यम् । भावसंयुक्तानिति अनुरागसंगतान् । संप्रयोगार्थमिति । संप्रयोगोऽत्र समागमलक्षणो गान्धर्वो ज्ञेयः । योगानिति अभियोगान् ॥ ३१ ॥

भावसंयुक्तका तात्पर्य्य अनुरागसहित है । संप्रयोगका तात्पर्य्य समागमरूप गान्धर्वविवाह है । योगोंका तात्पर्य्य अभियोगोंसे है ॥ ३१ ॥

त्रिविधा कन्या—बाला तरुणी प्रौढा चेति । यथाक्रममुपक्रममाह—

बाला, तरुणी और प्रौढा भेदसे तीन तरहकी कन्या होती हैं । यथाक्रम उनका उपक्रम कहते हैं कि—

बालक्रीडनकैर्बाला कलाभिर्यौवने स्थिता ।
वत्सला चापि संग्राह्या विश्वास्यजनसंग्रहात् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे
बालोपक्रमा इङ्गिताकारसूचनं च तृतीयोऽध्यायः ।

बालक्रीडासे बाला, कलाओंसे तरुणी एवम् उसके विश्वासी जनोंके संग्रहसे प्रौढा ग्रहण की जा सकती है ॥ ३२॥

बालक्रीडनकैरिति । कलाभिरनुरागिणी । वत्सला प्रौढा । यस्तया विश्वास्यस्तदुपग्रहात्स्वीकर्तव्या ॥ इङ्गिताकारसूचनं सप्तविंशं प्रकरणम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे बालोपक्रमा इङ्गिताकारसूचनं च तृतीयोऽध्यायः ।

बालकोंके खेल वा खिलोनोंसे बालिकाका संग्रह किया जा सकता है । युवती अनुरागिणी कलाओंसे काबूमें आती है। जो प्रौढा होती है वह उसके विश्वासी मनुष्योंको काबूमें करनेसे अपने हाथ आ जाती है । यह इङ्गिताकारसूचन नामक २७ वां प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

इति श्री पं०द्वीपचन्द्रशर्म—तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर
पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके तृतीय
अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ।

---

१ सूत्रमें आया हुआ 'एतान्' शब्द 'आकारान्' और 'इङ्गितानि' का विशेषण है, इनमें 'इङ्गितानि' के साथ 'एतान्' के स्थानमें 'एतानि' यह नपुंसककी जगह पुल्लिंग बनाकर योजना कर देनी चाहिये । अर्थ 'इन' पहिले कर ही चुके हैं ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

एकपुरुषाभियोग प्रकरण ।

शास्त्रकार एव प्रकरणसम्बन्धमाह—

गत अध्यायमें साथियोंके साथ कन्या पानेके प्रयत्न बता दिये, अब एक असहाय पुरुषके करनेके प्रयत्न बताते हैं। पूर्व प्रकरणके साथ इस प्रकरणका क्या सम्बन्ध है इस बातको स्वयं ही कामसूत्रकार अपने मुखसे बताते हैं, इस कारण विशेष नहीं लिखते ।

उपायोंसे कन्या प्राप्त करे ।

दर्शितेङ्गिताकारां कन्यामुपायतोऽभियुञ्जीत ॥ १ ॥

जिसके इशारे और आकार अपने अनुकूल देख ले उसे उपायोंसे प्राप्त करे १॥

दर्शितेङ्गिताकारामिति । उपायत इति उपाया एवाभियोगाः । अभियुज्यते तैरिति । ते चासहायस्येत्येकपुरुषाभियोगा उच्यन्ते । ससहायस्यापि केचित्सं-भवन्ति ॥ १ ॥

जो कन्या अपने इशारे, मुख और आँखोंमें अपने प्रति प्रेमकी परिपूर्ण झलक दिखा दे तो उसे उपयोंसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करे । जिनके कियेसे वह अपनेको मिल जाय, उनका नाम अभियोग है । ऐसे उपाय ही होते हैं जिनसे कि वह प्राप्त कर ली जाती है । पूर्व ससहायोंके कहे, अब असहा-यके कहते हैं, इस कारण एक पुरुषके करनेके उपाय बताते हैं, अतएव इनको 'एकपुरुषाभियोग' कहा है । यह तो शंका ही न करनी चाहिये, कि अकेला आदमी उपाय कैसे करेगा ? क्योंकि कुछ ऐसे भी उपाय हैं जिन्हें अकेला आदमी भी कर सकता है ॥ १ ॥

उपायोंके भेद ।

ते द्विविधाः—बाह्या आभ्यन्तराश्चेति ।

कन्या प्राप्त करनेके उपाय दो तरहके होते हैं-एक तो आन्तरिक उपाय हैं तथा दूसरे बाह्य उपाय हैं । इन दोनोंको इसी अध्यायमें दिखायेंगे ।

बाह्यअभियोग ।

तत्र पूर्वानधिकृत्याह—

आभ्यन्तर और बाह्य इन दोनोंमें बाह्य पहिले होते हैं और आभ्यन्तर पीछे होते हैं, इस कारण बाह्य अभियोगोंको बताये देते हैं—

साकारकरग्रहण ।

द्यूते क्रीडनकेषु च विवदमानः साकारमस्याः पाणिमवलम्बेत ॥ २ ॥

जूआ और खेलोंमें वादविवाद करता हुआ उसका हाथ इस प्रकार पकड़े कि जिससे कुछ गहरा भाव व्यक्त हो ॥ २ ॥

द्यूत इति । विवदमानो वाक्कलहं कुर्वन् । साकारं पाणिमवलम्बेत यथावगच्छेत् 'अहमनेनोढा' इति ॥ २ ॥

जूआ और खेलोंमें हारजीतपर वादविवाद हो जाया करता है, इसमें इस प्रकार हाथ पकड़े जिससे वह यह समझे कि, मैं इसने व्याह ली । यह हाथ वरकी तरह पकड़ा जाता है ॥ २ ॥

कन्यालिङ्गन ।

यथोक्तं च स्पृष्टकादिकमालिङ्गनविधिं विदध्यात् ॥ ३ ॥

वताये हुए स्पृष्टकादिक आलिङ्गनोंको विधिके साथ करे ॥ ३ ॥

स्पृष्टकादिकमिति स्पृष्टकं विद्धकमुद्धृष्टकं पीडितकमिति चतुष्टयमवसरप्राप्तत्वाद्यथायोग्यं विदध्यात् ॥ ३ ॥

स्पृष्टक, विद्धक, उद्धृष्टक और पीडितक इन चार आलिङ्गनोंमेंसे जिसके लिये उचित समय हो उसी आलिङ्गनका प्रयोग करे ॥ ३ ॥

पत्रच्छेदसे अभिप्राय जताना ।

पत्रच्छेद्यक्रियायां च स्वाभिप्रायसूचकं मिथुनमस्या दर्शयेत् ॥ ४ ॥

पत्रच्छेदकी क्रियामें अपने अभिप्रायको वतानेवाला मिथुन इसे दिखाये॥४॥

पत्रेति । स्वाभिप्रायसूचकं संप्रयोगसूचकं हंसादिमिथुनम् ॥ ४ ॥

प्रथमअधिकरणके तीसरे अध्यायमें वताये गये पत्रच्छेदमें अपने चाहे हुए संयोगको सूचित करनेवाले हंसादिके जोड़ दिखाये हैं उन्हें यहां प्रयोगमें लाये ४

कभी कभी मिथुनदर्शन ।

एवमन्यद्विरलशो दर्शयेत् ॥ ५ ॥

और भी मिथुन दिखाये; पर कभी २ ही दिखाये ॥ ५ ॥

एवमिति । अन्यदपि यन्मिथुनं भवति तिलकादिकं साकारम् । विरलश इति । सततदर्शने हि ग्राम्यता संभाव्यते कौतुकं चापीति ॥ ५ ॥

पत्रच्छेदके सिवा तिलकादिकोंमें भी अपने अभिप्रायको सूचित करनेवाले दूसरे मिथुन दिखाये पर कभी २ दिखाये, क्योंकि वारंवार दिखानेसे गँवार-पना दीखेगा एवम् देखनेका कौतुक न रहेगा ॥ ५ ॥

जलक्रीडामें उद्योग ।

जलक्रीडायां तद्दूरतोऽप्सु निमग्नः समीपमस्या गत्वा स्पृष्ट्वा चैनां तत्रैवोन्मज्जेत् ॥ ६ ॥

जलक्रीडामें दूरसे पानीमें डूबकर उसके पास पहुँचकर, उसे छू कर एवं पानीमें गोता खिला समीप ही जा निकले ॥ ६ ॥

जलेति । स्पृष्ट्वा चैनामिति निमग्न एव । तत्रैवोन्मज्जेत् नायिकासमीपे ॥६॥

जलमें उछलकूद करती बार आप दूरसे गोता मारकर डूबा २ ही उसे छू ले एवम् उसे गोता खिलाकर उसकें पास ही निकल आये ॥ ६ ॥

नवपत्रिकामें उद्योग ।

नवपत्रिकादिषु च सविशेषभावनिवेदनम् ॥ ७ ॥

नवपत्रिका आदि देशके खेलोंमें पत्रच्छेद आदिके साथ अपना भाव निवेदन करे ॥ ७ ॥

नवपत्रिकादिषु चेति—देश्यक्रीडासु । सविशेषभावनिवेदनमिति—पूर्वोक्तेनैव स्वाभिप्रायसूचकेन पत्रच्छेद्यादिना ॥ ७ ॥

नवपत्रिका आदि देशोंके खेल हैं, इनमें पत्रच्छेदकी शकलमें अपने अभि-प्रायको व्यक्त करनेवाले मिथुन दिखाने चाहियें ॥ ७ ॥

दुःखनिवेदन ।

आत्मदुःखस्यानिर्वेदेन कथनम् ॥ ८ ॥

अपने दुःखको विना तकलीफके साथ कहे ॥ ८ ॥

आत्मदुःखस्य च कथनम् ' न जाने किं कृता मम चेतसि पीडा ' इति । तत्राप्यनिर्वेदेन भूयो भूयः प्रधानकार्यत्वात्कथनम् ॥ ८ ॥

जिसे चाह रहा हो उसके सामने विना किसी कष्टको दिखाये कहे कि—' न जाने किसने किसलिये मेरे दिलमें दर्द पैदा कर रखा है या मेरे दिलमें इतना दर्द क्यों है ' यह भी एक ही बार नहीं वारंवार सरसताके साथ कहे, क्योंकि दिलदर्द बता देना तो एक मुख्य कार्य्य है ॥ ८ ॥

स्वप्नसमागम कथन ।

स्वप्नस्य च भावयुक्तस्यान्यापदेशेन ॥ ९ ॥

भावयुक्त स्वप्नकी बातें तो किसी दूसरे बहाने कहे ॥ ९ ॥

अन्यापदेशेनेति । त्वत्तुल्यरूपया सहोपगमः स्वप्ने ममाभूदिति कथनम् ॥९॥

उसे सुनाये कि तुझ जैसीके ही साथ आज स्वप्नमें मेरा समागम हुआ था ९

खेल तमाशों आदिमें पैरोंके प्रयान ।

प्रेक्षणके स्वजनसमाजे वा समीपोपवेशनम् । तत्रान्यापदिष्टं स्पर्शनम् ॥ १० ॥

खेल तमासोंके देखने या स्वजनोंकी गोष्ठीमें उसीके पास बैठे एवम् किसी बहानेसे उसे छूए ॥ १० ॥

स्वजनसमाजः स्वजनगोष्ठी । समीपोपवेशनमिति नायिकायाः । तत्रेति समीपे प्रेक्षणकादिषु । अन्यापदिष्टमन्यदपदिश्य स्पर्शनम् ॥ १० ॥

जहां अपने परिवार आदिके व्यक्ति बैठे हों वहां उसीके पास बैठे, पर खेल तमासोंमें उसके पास बैठकर किसी बहानेसे उसे छू भी दे ॥ १० ॥

छूना ।

अपाश्रयार्थं च चरणेन चरणस्य पीडनम् ॥ ११ ॥

अपाश्रयके लिये चरणसे उसके चरणको पीडित करे ॥ ११ ॥

अपाश्रयार्थमिति । अपाश्रयस्तदङ्गे स्वाङ्गस्थापनम् । चरणस्य पीडनं स्वचरणेन ॥ ११ ॥

उसके अंगापर अपने अंगोंको रखना अपाश्रय कहाता है, इसके लिये अपने पैरसे उसके पैरको दबाये यानी अपने पैरको उसके पैरोंके ऊपर रख दे ११

ततः शनकैरेकैकामङ्गुलिमभिस्पृशेत ॥ १२ ॥

इसके बाद धीरे २ एक २ अंगुलिको छूए ॥ १२ ॥

तत इति । तस्मात्सिद्धादुत्तरकाले । शनकैरिति कियतीं कालकलामतिक्रम्य तस्या अंगुलिमभिस्पृशेत् ॥ १२ ॥

यदि अपने अंगको उसक अंगोंपर रखनेमें कामयाब हो जाय तो इसके बाद कुछ ठहर २ कर उसकी एक २ अंगुलोका छूए ॥ १२ ॥

---

१ खेलके उद्योग तो प्रायः छोगोंके करनेके हैं पर स्वप्नके नामसे भाव निवेदन तो बड़ों २ में देखा जाता है । प्रकारान्तरसे इसका उपयोग नाटकोंमें भी देखते हैं ।

पादाङ्गुष्ठेन च नखाग्राणि घट्टयेत् ॥ १३ ॥

पैरके अँगूठेसे नाखूनोंकी नोंकको चलाये ॥ १३ ॥

पादांगुष्ठेनेति । नखाग्राणि घट्टयेच्चालयेत् ॥ १३ ॥

अपने पैरके अंगूठेको उसके पैरकी अंगुली अंगूठोंपर रख या फिराकर उसके नाखूनोंकी नोकोंको हिलाने लग जाय ॥ १३ ॥

तत्र सिद्धः पदात्पदमधिकमाकाङ्क्षेत् ॥ १४ ॥

यदि वहां बैठा बैठा इसमें कामयाब हो जाय तो पैरको उसके पैरके ऊपरी भागोंको छूनेमें लगाये ॥ १४ ॥

तत्रेति । सिद्धो नखाग्रघट्टने । पदात्पदमिति स्थानात्स्थानान्तरं जघनोरुनितम्बादिकं स्प्रष्टुं सोपानक्रमेण कांक्षेत् ॥ १४ ॥

यदि उसके पैरके नाखूनोंपर अँगूठा फेरनेमें सफल हो जाय तो अपने पैरको वहांसे बढ़ाकर क्रमशः सीढीकी तरह जघन, ऊरु, नितम्ब आदिकोंपर फेरना चाहे यानी क्रमशः फेरता जाय ॥ १४ ॥

क्षान्त्यर्थं च तदेवाभ्यसेत् ॥ १५ ॥

इसी बातको उसे रमा करानेके लिये बारंबार कर ॥ १५ ॥

क्षान्त्यर्थं चेति—सहनार्थम् । अभ्यसेत् तदेव यत्पूर्वाभ्युपगतम् ॥ १५ ॥

उसे पैर फिरानेमें कोई अड़चल न मालूम हो, इस कारण जिसप्रकार पहिले उसके सब नीचेके शरीरपर पैर फेरा था उसी तरह बारबार फेरे॥१५॥

अन्तरंग बाह्य ।

आन्तरानधिकृत्याह—

अबतक तो जो अभियोग बताये थे वे बाह्य थे, किन्तु अब अन्तरङ्ग बाह्य अभियोगोंको बताते हैं, कि—

पादशौचे पादाङ्गुलिसंदंशेन तदङ्गुलिपीडनम् ॥ १६ ॥

इस कामके बाद अपने पैरकी अँगुलियोंके बीचमें उसकी अँगुरी देकर दबाये ॥ १६ ॥

पादशौच इति पादधावनं ददत्याः । स्वपादांगुलिसंदंशेन पीडनम् ॥ १६ ॥

यदि वह सब जगह विना किसी हिचाकिचाटके पैर फेर लेने दे तो अपने पैरकी अँगुलियोंके बीचमें उसके पैरकी अँगुली करके उसे इस रीतिसे दबाये कि जिससे उसे विशेष कष्ट न हो ॥ १६ ॥

वस्तुपर भाव, पानी छिड़कना और क्षान्ति।

द्रव्यस्य समर्पणे प्रतिग्रहे वा तद्गतो विकारः ॥ १७ ॥

वस्तुके देने लेनेमें उसपर निशान कर दे ॥ १७ ॥

तद्गतो विकार इति । द्रव्यं पूगफलादिकं समर्पयता प्रतिगृह्णता वा द्रव्यगतो विकारः कार्यः । सनखस्पर्शमर्पयेत्प्रतिगृह्णीयाद्वेत्यर्थः ॥ १७ ॥

यदि उसे सुपारी इलायची आदि दे अथवा और कुछ दे ले तो उसमें नाखूनका निशान करके दे ले ॥ १७ ॥

आचमनान्ते चोदकेनासेकः ॥ १८ ॥

आचमनके पीछे बाकी जल उसपर छिड़क दे ॥ १८ ॥

आचमनान्त इति । उपस्प्रष्टुं ददतीं तदन्ते जलचुलकेनाहन्यात् ॥ १८ ॥

यदि वह आचमन करा रही हो तो आचमन करनेके बाद एक चुल्लूभर पानी उसपर भी डाल दे ॥ १८ ॥

विजने नमसि च द्वन्द्वमासीनः क्षान्तिं कुर्वीत । समानदेशशय्यायां च ॥ १९ ॥

यदि एकान्तमें और अन्धकारमें द्वन्द्वसे बैठे हों तो अथवा समान देशकी शय्या हो तो उसे नाखून सहाये ॥ १९ ॥

द्वन्द्वमिति साहचर्येणासीनः । क्षान्तिं कुर्वीतेति नखस्पर्शादिना । तत्काले लज्जाभावात्कन्यायाः । समानदेशशयाय्यां च क्षान्ति कुर्वीत ॥ १९ ॥

लगकरके बैठनेका नाम द्वन्द्वसे बैठना है । एकान्त या अन्धकारमें उसे लाज कम होती है, इस कारण वहां ऐसे नाखून लगाये जो वह सह ले एवम् उनकी सहनशक्ति प्रकट करे। यदि एक जगह शय्या हो तो भी अवकाशवश इस तरह की कारवाई करे ॥ १९ ॥

इशारोंसे भाव दर्शाना।

तत्र यथार्थमनुद्वेजयतो भावनिवेदनम् ॥ २० ॥

वहां विना ही उद्विग्न किये अपने भावका निवेदन करे ॥ २० ॥

तत्रेति आसने शयने च । यथार्थं भावनिवेदनमाकारेण । न वाचा । प्रत्याख्यानभयात् । अनुद्वेजयत इति—यथा नोद्विजते ॥ २० ॥

एक आसन या एक खाटपर अपनी आखोंकी बनावट और मुखकी दिखावटसे अपने यथार्थभावको कह दे पर मुखसे न कहे, क्योंकि मुखसे कह

पीछे कदाचित् वह शिर हिलाकर इनकार कर दे । यह भी इस तरह होना चाहिये जिससे वह डरे नहीं ॥ २० ॥

वाणीसे कहनेकी रीति ।

यदा वाचा तदा विधिमाह—

यदि वाणीसे ही कहे विना काम न चलता दीखे तो उसकी यह रीति है, कि—

विविक्ते च किंचिदस्ति कथयितव्यमित्युक्त्वा निर्वचनं भावं च तत्रोपलक्षयेत् । यथा पारदारिके वक्ष्यामः २१

एकान्तमें इतना ही कहे कि मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं । यदि वह कहे कि कहिये तो उससे युक्तिपूर्वक कहे एवम् उस समय उसका क्या भाव होता है, इस बातपर लक्ष करे । उसका लक्ष उसी प्रकार करे जैसा कि हम पारदारिकमें कहेंगे ॥ २१ ॥

विविक्ते चेति । 'किंचिदस्ति कथयितव्यम्' इत्येतावद्वक्तव्यम् । 'किं तत्' इति तयोच्यमाने निर्वचनं ब्रूयादित्यर्थः । तत्रेति वचनोपन्यासे । भावं संप्रयोगाभिलाषमस्या लक्षयेत् । कथमित्याह—यथेति । तत्र प्रवृत्त्या भावपरीक्षां वक्ष्यति । इङ्गिताकारैश्च यद्भाववेदनं तदनुरागमात्रवेदनमिति ॥ २१ ॥

बातके कहतीबार उसकी संप्रयोगकी अभिलाषा देखले । इसकी रीति पारदारिक अधिकरणके भावपरीक्षाप्रकरणमें कहेंगे, क्योंकि चेष्टा और मुखाकृतिसे जो भाव जाना जाता है वह तो अनुरागमात्र ही जाना जाता है ॥२१॥

आभ्यन्तर अभियोग ।

विदितभावस्याभ्यन्तरमभियोगमाह—

जिसने यह बात जान ली कि इसकी इच्छा है तो उसके लिये अब भीतरके उपाय बताते हैं—

घर बुलाना ।

फिर किसी बहाने घर बुलाना चाहिये, इसी बातको कहते हैं कि—

विदितभावस्तु व्याधिमपदिश्यैनां वार्ताग्रहणार्थं स्वमुदवसितमानयेत् ॥ २२ ॥

जिसे भावका पता चल जाय वह रोगके बहाने बात ग्रहण करनेके लिये अपने घर बुलाये ॥ २२ ॥

विदितेति । व्याधिमपदिश्येति कृतकं शिरःशूलादिकमपदिश्य । स्वमुदवसितं स्वगृहम् । आनयेत् विश्वास्यया प्रणिहितया ॥ २२ ॥

जब यह जान ले, कि मेरे साथ मिलनेकी इसकी पूरी इच्छा है तो बनावटी शिरःशूल आदिके बहाने उसे, किसी विश्वासनीय प्रच्छन्न दूतीको भेजकर अपने घर बुलवा ले ॥ २२ ॥

बहानेसे दवा और शिर दबवाना ।

आगतायाश्च शिरःपीडने नियोगः । पाणिमवलम्ब्य चास्याः साकारं नयनयोर्ललाटे च निदध्यात् ॥ २३ ॥

आई हुईको शिर दबानेमें लगा दे, उसके हाथको पकड़कर, मुख, आखोंकी रँगीली सूरत बनाकर उसके हाथको अपने हाथसे पकड़कर आखों और माथेपर फेरने लग जाय ॥ २३ ॥

शिरःपीडन इति शिरो मे दुःखयति पीडय हस्तेनेति नियोगः ॥ २३ ॥

जब वह आ जाय तो उससे कहे कि मेरे शिरमें बड़ा दर्द हो रहा है, आप मेरे शिरको दवा दें ॥ २३ ॥

औषधापदेशार्थं चास्याः कर्म विनिर्दिशेत् ॥ २४ ॥

ओषधिके बहानोंके लिये इसका कर्म बता दे ॥ २४॥

औषधेति । यथा जानात्यस्मत्कृतेयमस्यावस्थेति ॥ २४ ॥

जब वह शिर दाब चुके तो उसे दवा लगानेके लिये कहे, यदि दवा लगा दे तो फिर कहे, कि आपके हाथकी दवा लगनेसे मेरा इस समय शिर अच्छा हो गया; न जाने आपके हाथमें ही मेरे दर्दे शिरकी दवा है क्या ? यह कथन भी इस प्रकार होना चाहिये, जिससे वह जान जाय कि मेरे लिये ही इसकी यह दशा हुई है ॥ २४ ॥

इदं त्वया कर्तव्यम् । नह्येतदृते कन्याया अन्येन कार्यमिति गच्छन्तीं पुनरागमनानुबन्धमेनां विसृजेत् ॥ २५ ॥

यह तुम्हें करना चाहिये । इस कामको कन्याके सिवा दूसरेसे नहीं कराया जाता । यदि वह जाने लगे तो फिर आनेके आग्रहके साथ उसे छोड़े ॥ २५ ॥

---

१ उर्दू साहित्य इसपर अधिक गया है, यहां तक कि उसे गमका बीमार एवम् प्रेमिकाको मसीहा तक कह डाला है ।

त्वयेति त्वयैव साधितं सिद्धिदं भवतीति । अनुबन्धं पुनरागन्तव्यमित्येवंरूपम् ॥ २५ ॥

क्योंकि आपकी की हुई दवा सिद्धि देनेवाली होती है । इस प्रकार फिर आनेका आग्रह करकें उसे जानेके लिये कहे ॥ २५ ॥

अस्य च योगस्य त्रिरात्रं त्रिसंध्यं च प्रयुक्तिः ॥ २६ ॥

इस योगको तीन रात व तीन सामोंको करना चाहिये ॥ २६ ॥

अस्येति कन्यासाध्यस्य । त्रिरात्रं त्रिसंध्यं प्रयुक्तिः प्रयोगः ॥ २६ ॥

इस कन्यासाध्य योगको तीनरात व तीन सन्ध्याओंसें प्रयुक्त करे ॥ २६ ॥

बहानेसे करनेके कार्य ।

एतन्निर्देशे फलमाह—

इस तरहके बखेड़े करनेका जो फल है उसे बताते हैं, कि—

अभीक्ष्णदर्शनार्थमागतायाश्च गोष्ठीं वर्धयेत् ॥ २७ ॥

बारबार देखनेके लिये आई हुईके साथ बातें बढ़ाये ॥ २७ ॥

अभीक्ष्णेति । गोष्ठीमिति कलानामाख्यायिकानां वा । तेन तदासक्ता चिरं तिष्ठेदित्यर्थः ॥ २७ ॥

जब वह चाही हुई चीज अपने देखनेके लिये आये तो उसके साथ कलाओंकी और आख्यायिकाओंकी गप्पें करे; जिनके कि सुननेके चावसे वह वहां बहुत देरतक बैठी रहे ॥ २७ ॥

अन्याभिरपि सह विश्वासनार्थमधिकमधिकं चाभियुञ्जीत । न तु वाचा निर्वदेत् ॥ २८ ॥

उसके विश्वासके लिये दूसरी २ गप्पोंके साथ और भी अधिक २ उपाय करे; पर मुखसे न कहे ॥ २८ ॥

अन्याभिरिति । ताभिर्विश्वासनं कार्यमिति हेतोरिति भावः । न त्विति २८॥

गोष्ठियोंसे उसे अपने विश्वासमें लाना है, इस कारण उससे दूसरी २ तरहकी गप्पें भी लगानी चाहियें; पर मुख्य मतलबकी बातको मुखसे न कहना चाहिये ॥ २८ ॥

---

१ कोई इसका अर्थ ' दूसरियोंके साथ भी गप्प ' करना चाहे तो करले पर २९ वें सूत्रके अनुरोधसे यही अर्थ ठीक है ।

मुँहसे कहनेमें दोष

तत्र दोषमाह—

प्रयत्न करते हुए भी मुँहसे क्यों नहीं कहा जाता ? इस शंकाको लेकर कहनेके दोष बताते हैं, कि—

दूरगतभावोऽपि हि कन्यासु न निर्वेदेन सिद्धयतीति घोटकमुखः ॥ २९ ॥

कन्याओंका भाव चाहे ऊँचा पहुँच जाय पर कन्याओंमें निर्वेदसे सिद्धि नहीं होती, यह घोटकमुखका मत है ॥ २९ ॥

दूरेति । अत्यर्थजातविस्रम्भोऽपि न सिद्धयति । बहुशोऽभियोगापेक्षणीयत्वात्कन्यानाम् । घोटकमुखग्रहणं पूजार्थम् । तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात् ॥ २९ ॥

चाहे उसने कितना भी विश्वास क्यों न पा लिया हो, पर कन्याओंको सहसा कष्ट या वारवारकी नाकामयाबीसे वैराग्य या प्रयत्नसे ग्लानि करनेसे सिद्धहस्त नहीं होता, क्योंकि कन्याओंको सोलहो आना अनुकूल बनानेमें बड़े प्रयत्नकी आवश्यकता है। यह इस अधिकरणके विशेषज्ञ घोटकमुखका मत है। यह कहीं भी रुकनेवाला नहीं है, इस कारण आचार्य्यप्रवर वात्स्यायन भी मानते हैं ॥ २९ ॥

यदा तु बहुसिद्धां मन्येत तदैवोपक्रमेत् ॥ ३० ॥

जब उसे बहुतस प्रयोगोंसे सिद्ध मान ले उसी समय उससे मुख्य काम ले॥

यदा त्विति । बहुसिद्धां बहुभिरभियोगैः कार्योन्मुखीमुपक्रमेत ॥ ३० ॥

जब उसपर बहुतसे उपाय कर ले और सभीमें उसे तैयार देख ले :तभी उसके साथ रंगरेलीकी तैयारी करे ॥ ३० ॥

रंगरेलीका समय।

तत्र कालमाह—

प्रदोषे निशि तमसि च योषितो मन्दसाध्वसाः सुरतव्यवसायिन्यो रागवत्यश्च भवन्ति। न च पुरुषं प्रत्याचक्षते । तस्मात्तत्कालं प्रयोजयितव्या इति प्रायोवादः ॥ ३१ ॥

प्रदोषमें रातमें अँधेरेमें स्त्रियोंको भय कम रहता है, सहवास चाहती हैं एवम् अनुरागवाली होती हैं। उस समय इनकार नहीं करतीं, इस कारण उस समय प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

प्रदोष इति रात्रिप्रारम्भे । निशि रात्रौ त्रियामालक्षणायाम् । तत्राप्यन्धकारे प्रतार्यसर्वस्त्रीप्रतिपत्त्यर्थम् । मन्दसाध्वसाः केश्चिदहश्यमानत्वात् । रागवत्यः संप्रयोगाभिलाषिण्यः । न प्रत्याचक्षते न निषेधन्ति । तस्मात्तत्काळमिति । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । प्रयोजयितव्या योज्याः । वाञ्छितकार्येषु ॥ ३१ ॥

रातिकी शुरुआतमें, तीन पहरकी कहलानेवाली रातिमें इसमें भी अन्धकारमें जिस समय, कि उसे कोई वह स्त्री न देखे जिसे कि वह अपनेको दिखाना न चाहे। कन्या ही क्यों ? जो स्त्रियाँ प्रयत्नसे मिलनेवाली हैं उनके लिये ऐसा ही समय है। ऐसी व्यवस्थामें वे किसीको दीखती तो हैं नहीं फिर भय भी उन्हें क्यों होगा । ऐसे समयमें स्त्रियोंके दिलमें राग हिलोरें लेने लगता है, इस कारण संप्रयोग (सहवास) को चाहने लग जाती हैं । यदि कोई उनसे सहवास करने लग जाय तो वे उसे रोकतीं नहीं, इस कारण ऐसे ही समयमें उन्हें अपने चाहे हुए कामोंमें लगाये ॥ ३१ ॥

एकपुरुषाभियोगानां त्वसंभवे गृहीतार्थया धात्रेयिकया सख्या वा तस्यामन्तर्भूतया तमर्थमनिर्वदन्त्या सहैनामङ्कमानाययेत्। ततो यथोक्तमभियुञ्जीत ॥ ३२ ॥

यदि अकेलेके करनेके अभियोग न हो सकें तो उसकी धायकी लड़की वा सहेलीको, जो कि इस बातकी भेदी हो उसे बीचमें डाल ले एवम् वह विना ही बताये उसे अपने साथ नायकके यहां ले आये। फिर बताई हुई रीतिसे उपाय करे ॥ ३२ ॥

एकेति । विप्रकृष्टत्वात्स्वयमेकस्याभियोगो न संभवति । सहायमपेक्षते । गृहीतार्थयेति नायकोऽपि नायिकां समीपमानयितुमिच्छतीत्येतद्रूपार्थज्ञानवत्या । अस्यामन्तर्भूतया नायिकायां प्रभवन्त्या । तादृशी तु धात्रेयिका सखी वा ।

---

१ सूत्रके ' तत्कालम् ' इस पदमें जो द्वितीया विभक्ति है, वह 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २-३-५।' इस सूत्रसे कालके अत्यन्तसंयोगमें द्वितीया हुई है; पर इसका अर्थ सप्तमीका ही होगा, अतएव हमने ' ऐसे ही समयमें ' यह अर्थ किया है ॥

अर्थं नायकपार्श्वगमनरूपम् । अनिर्वदन्त्या अन्यव्यपदेशिन्येत्यर्थः । ततो यथोक्तमिति द्यूतक्रीडनकेषु विवदमाना इति यथासंभवं पूर्वोक्तं योज्यमित्यर्थः ॥३२॥

यदि प्रेयसीसे दूर हो तो वह अकेला उपाय नहीं कर सकता, इस कारण उसे सहायताकी आवश्यकता पड़ती है । जो धायकी लड़की वा सहेली यह जानती हो कि यह फलानीको अपने यहां बुलाना चाहता है एवम् जो लानेमें भी समर्थ हो, उसे बीचमें डालकर अपना कार्य्य करे । वे उसके सामने इस बातको बिलकुल न बतायें, कि हम तुझे कहां ले जायँगी एवम् किसी दूसरी जगहके बहाने उसीके यहां ले आयें । वहां नायक जूआ और खेलोंमें विवाद करती हुईके साथ विवाद करता हुआ सहेलीके साथ उसका हाथ पकड़ ले एवम् जो किये जा सकें उन्हें करे ॥ ३२ ॥

स्वां वा परिचारिकामादावेव सखीत्वेनास्याः प्रणिदध्यात् ॥ ३३ ॥

अपनी किसी परिचारिकाको पहिलेसे ही उसकी भायेली बननेके लिये छोड़ दे ॥ ३३ ॥

स्वामिति सहायार्थमिति भावः ॥ ३३ ॥

क्योंकि उसे भायेली बना देगा तो वह बनकर इसकी सहायता कर सकती है ॥ ३३ ॥

यज्ञे विवाहे यात्रायामुत्सवे व्यसने प्रेक्षणकव्यापृते जने तत्र तत्र च दृष्टेङ्गिताकारां परीक्षितभावामेकाकिनीमुपक्रमेत ॥ ३४ ॥

यज्ञ, विवाह, यात्रा, उत्सव और व्यसनके समय जब कि सब लोग तमासा देखनेमें व्यग्र हो जायँ, उस समय जिसने वहां वहां इशारे और चेष्टाएँ दिखा दी हों एवम् भावोंकी परीक्षा कर ली हो तो उसे गान्धर्व विधिसे पा ले॥३४॥

यज्ञ इति । यज्ञादयो लोकव्यग्रत्वहेतवः । तत्र तत्रेति—अन्यत्राप्यनुक्त इत्यर्थः । परीक्षितभावामिति—नेयं शुष्कप्रतिग्राहिणीव द्विधाभूतमानसा वा, किं त्वितरेति । उपक्रमेत गान्धर्वेण विधिनेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

यज्ञ विवाह आदिमें लोग प्रायः व्यग्र हो जाते हैं, इस कारण इन्हें मौका समझा जाता है । उनमें उसको गान्धर्व विधिसे प्राप्त करे, जिसने कि जब

जब जहां २ देखा तब २ वहां २ इङ्गित और आकारसे पूरा अनुराग प्रकट कर दिया हो और किसीसे न कहा हो। उसकी परीक्षा कर ली हो, कि यह मेरे भावका सूखा जवाब तो नहीं देती। अकेली हो चित्तमें दुविधा न हो.किन्तु निश्चय किये हुए हों। ऐसे समय गान्धर्व विवाह कर लेना ही उसका उपक्रम है ॥ ३४ ॥

नहि दृष्टभावा योषितो देशे काले च प्रत्युज्यमाना व्यावर्तन्त इति वात्स्यायनः। इत्येकपुरुषाभियोगाः ३५॥

महर्षिवात्स्यायनका सिद्धान्त है, कि जिनका पूर्णभाव देखा हो ऐसी स्त्रियाँ देश, कालके अनुसार अभियुक्त की जायँ तो वे हटती नहीं ॥ ३५ ॥

दृष्टभावा उपलब्धभावाः। दृष्टोऽभिप्रेते काले यज्ञादिकाले प्रदोषादौ चेति ॥ इत्येकपुरुषाभियोगा अष्टविंशं प्रकरणम् ॥ ३५ ॥

जिनकी अनेक वार भाव परीक्षा हो चुकी है, ऐसी कन्याएँ यदि ऐसे यज्ञादिके एवम् प्रदोषादिके समयमें भाव दिखा दें तो वह कभी व्यर्थ नहीं होता॥ यह एक पुरुषके करनेके उपायोंका अट्ठाईसवाँ प्रकरण पूरा हुआ॥३५

प्रयोज्यका उपस्थापन प्रकरण।

यथा धनहीनत्वादियुक्तः कन्यामलभ्यत्वात्स्वयमेवानुरञ्जयेत् तत्र कन्यापि तथाविधा कैश्चिददास्यमाना स्वयमुपावर्तेत। तत्प्रयोज्यस्योपावर्तनमाह। उपावर्तनमभिमुखीकरणम्।

इसी अधिकरणके तीसरे अध्यायमें जैसे कहा है कि–'जो धनहीन एवम् पासहीका रहनेवाला हो उसे कन्याकी सगाई नहीं की जाती वह स्वयम् ही उसे अनुरक्त कर ले।' यदि कन्या भी ऐसी हो कि इन्हीं कारणोंसे उसकी भी मँगनी कठिन हो और उसके घरके उसका व्याह न कर रहे हों तो वह भी स्वयम् ही अपना वर चुन ले। इस प्रकरणमें वह जिस वरको प्राप्त करना चाहे उसको अपनी ओर करनेकी विधि वताते हैं।

ऐसा करनेका कारण।

कथं न व्रियत इत्याह—

सबसे पहिले कन्याके भी उन कारणोंको वताते हैं जिनकी कि वजहसे वह नहीं माँगी जा सकती—

मन्दापदेशा गुणवत्यपि कन्या धनहीना कुलीनापि

समानैरयाच्यमाना मातापितृवियुक्ता वा ज्ञातिकुलवर्तिनी वा प्राप्तयौवना पाणिग्रहणं स्वयमभीप्सेत ॥३६॥

कारणवश जिसका खानदान गिर चुका हो, गुणवती हो पर उसका कोई घरवाला व्याह न कर रहा हो। कुलीन भी हो पर निर्धन होनेके कारण बराबरका न माँग रहा हो, माता पितासे वियुक्त हो, चाहे ज्ञाति और कुलवाली भी हो ऐसी युवती अपना पाणिग्रहण आप करलेना चाहे ॥ ३६ ॥

मन्देति । मन्दापदेशा हीनाभिजना । गुणवत्यपि सा तैरदास्यमाना वा । धनहीना वा कुलीनापि । समानैस्तुल्याभिजनैर्धनिभिः । मातृपितृवियुक्ता वा अनाथत्वादयाच्यमाना । प्राप्तयौवनेति प्रत्येकं योज्यम् । स्वयमीप्सेत । तदानी स्वयंवरस्याभ्यनुज्ञानात् । यथोक्तम्—'त्रीणि वर्षाण्युपासीत कुमार्यृतुमती सती । ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥' इति ॥ ३६ ॥

छोटे घरानेकी हो, रूप, शील आदि गुण भी हों पर घरवालोंसे दी न जा रही हो, कुलीन हो, पर धनहीन हो, इस कारण बराबरके घरानेके धनी न मांग रहे हों। मा बापसे विहीन हो या वियुक्त हो, इससे अनाथ होनेके कारण कोई न मांगता हो। इन सबको प्राप्त यौवनाके साथ लगाना चाहिये कि ऐसी युवती हो गई हो तो वह स्वयम् अपना वर ढूंढ ले, क्योंकि नारद स्मृतिमें स्वयंवर चुननेकी आज्ञा दी है कि—" कुमारी ऋतुमती होनेपर तीन वर्षतक तो घरके लोगोंपर निर्भर रहे, इसके बाद तो वह अपने बराबरके पतिको आप ही चुन ले " ॥ ३६ ॥

चुनने योग्य वरके पानेके उपाय ।

सदृशप्रतिपत्तावुपायमाह—

समान वरके पानेके लिये उसे जो उपाय करने चाहियें उन्हें बताये देते हैं कि—

---

१ जिन देशों व जातियोंमें स्वयंवर चुननेकी प्रथा है, उनकी युवती कुमारियाँ आप ही अपने लिये वर चुन लिया करती हैं। उनके भी ये ही तरीके होते हैं। लड़का अपने प्रयत्न करता है तथा लड़की अपने प्रयत्न करती है। आज भी उनके ये ही प्रयत्न चालू हैं पर भारतका स्वयंवर इससे कुछ दूसरी ही रीतिका है। उसे राजकुमारी आदि बड़े उत्साहके साथ करती थीं, उनमें लड़कीको लड़काके पानेके लिये प्रयत्न नहीं करना पड़ता, इसी कारण महर्षि इसे अगतिका कन्याके लिये कह रहे हैं। पर आज यह विधान पाश्चात्यदेशमें अच्छे २ घरानोंमें कार्य्यमें आ रहा है।

सा तु गुणवन्तं शक्तं सुदर्शनं बालप्रीत्याभियोजयेत् ३७

ऐसी कन्या तो गुणवान्, समर्थ और सुन्दरको बाल प्रीतिसे अभियुक्त करे ३७

सा त्विति । गुणवन्तं नायकगुणयुक्तम् । शक्तं युद्धादिषु । सुदर्शनं रूपवन्तम् । बालेति । बाल्ये क्रीडायां या प्रीतिस्तया प्रयोज्यकर्त्र्या स तथाभियुञ्जानः सिद्ध्यतीत्यर्थः ॥ ३७ ॥

जिसमें नायकके गुण हों, जो लड़ाई आदि करनेमें समर्थ हो एवम् देखनेमें खूबसूरत हो, ऐसे पुरुषको खेलमें जो जो प्रीति होती है, उस प्रीतिसे उसपर पानेका उपाय किया जानेपर वह सिद्ध होजाता है ॥ ३७ ॥

देखनेकी बात ।

गुणान्तरमाह—

वरमें देखनेकी दूसरी बात बताते हैं; जिसे देखकर उसे वरकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये कि—

यं वा मन्येत मातापित्रोरसमीक्षया स्वयमप्ययमिन्द्रियदौर्बल्यान्मयि प्रवर्तिष्यत इति प्रियहितोपचारैरभीक्ष्णसंदर्शनेन च तमावर्जयेत् ॥ ३८ ॥

जिसके लिये यह समझे कि—"यह विना मा बापोंकी समीक्षाके अपने आप ही अपने इन्द्रियदौर्बल्यके कारण मुझमें प्रवृत्त हो जायगा" उसे प्यारे और हितकारी उपचारोंसे अपनी ओर करे ॥ ३८ ॥

यं वेति । असमीक्षयेति मातापितृभ्यां मम मार्गं गत्वा । इन्द्रियाणि नियन्तुमसमर्थत्वात् यमेवं मन्येत तमपि योजयेदिति संबन्धः । प्रियहितेति प्रियोपचारा एतदर्थं सुखं कुर्वन्ति । आवर्जनमभिमुखीकरणम् ॥ ३८ ॥

वह कन्या जिसके लिये यह जान जाय कि यह मेरे मार्गपर चलकर माता पिताओंके साथ विना ही विचार किये इन्द्रियलोलुपताके कारण पीछे लग जायगा, इन्द्रियोंको न रोक सकेगा, उसपर भी अपने उपाय डाले । प्यारे उपचार ही सुख करते हैं, उनसे उसे अपनी ओर खींच ले ॥ ३८ ॥

इसमें माताका कार्य्य ।

माता चैनां सखीभिर्धात्रेयिकाभिश्च सह तदभिमुखीं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

माता भी उसे सखी और धायकी बालिकाके साथ उसकी ओर कर दे ३९

माता चैनामिति । सा न जीवति चेत्कृतकमाता वा । सखीभिः सह लज्जा-पगमार्थम् । उपचारैर्बाह्यैराभ्यन्तरैश्चेति शेषः ॥ ३९ ॥

सगीमाता न हो तो कृतकमाका यह काम होना चाहिये । लज्जा दूर करनेके लिये सखियोंके साथ उसतरफ लगाया जाता है । जिनसे वह उसकी ओर करती है वे उपचार आभ्यन्तर और बाह्य भेदसे दो तरहके होते हैं ॥ ३९ ॥

बाह्य उपचार ।

तत्र पूर्वमधिकृत्याह—

मा पूर्वोक्त कन्यासे उसके इष्टके खींचनेके लिये आभ्यन्तर और बाह्य उपचार करायें, यह कहा गया है । इन दोनोंमें पहिले बाह्य उपचारोंको ही कहते हैं कि—

पुष्पगन्धताम्बूलहस्ताया विजने विकाले च तदुपस्थानम् । कलाकौशलप्रकाशने वा संवाहने शिरसः पीडने चौचित्यदर्शनम् । प्रयोज्यस्य सात्म्ययुक्ताः कथायोगाः बालायामुपक्रमेषु यथोक्तमाचरेत् ॥ ४० ॥

अकेले और कुसमयमें पुष्प, गन्ध और पान लेकर उसका सत्कार करे, कलाकौशलके दिखाने, शिरके दबाने या मसलनेमें औचित्य दिखाये । उसे जो अच्छी लगें ऐसी बातें करे एवम् बालामें जो नायकके उपाय बताये हैं उन उपायोंको करे ॥ ४० ॥

पुष्पेति । तदुपस्थानं नायकसमीपगमनम् । कौशलप्रकाशनार्थम् । औचित्यदर्शनमिति । सहसा न प्रतिजानीयात् । अनुबन्ध्यमानमनुकुर्यादित्यर्थः । प्रयोज्यस्य सात्म्ययुक्ताः—प्रयोज्यानुकूलाः । बालायां ये नायकस्योपक्रमा उक्तास्तेषु यथोक्तं समाचरेत् ॥ ४० ॥

जब वह अकेला हो और कुसमय हो तो पुष्प, पान आदि लेकर नायकके पास पहुँचे। शिर दबाने आदिके कार्य्यमें अपनी दक्षता एवं कलाकौशल दिखानेके लिये प्रकट कर दे । एकदम ही प्रातिज्ञा न करे, यदि जिस बातके कहनेके लिये वह आग्रह करे तो उसका अनुकरण करे । जो प्रयोज्य यानी नायकके अनुकूल पड़े ऐसी ही बातें करे । तृतीय अध्यायमें जो बालाके विषयमें नायकके उपाय कहे हैं, उन उपयोंको भी करे ॥ ४० ॥

न चैवान्तरापि पुरुषं स्वयमभियुञ्जीत । स्वयमभियोगिनी हि युवतिः सौभाग्यं जहातीत्याचार्याः ॥ ४१ ॥

कामपरवश हो तो भी अपनेआप पुरुषके उपाय न करे, क्योंकि स्वयम् अभियोग करनेवाली युवती सौभाग्यको नष्ट कर देती है, ऐसा कामशास्त्रके आचार्य्योंका मत है ॥ ४१ ॥

अन्तरापीति । कामपरवशापि न स्वयमभियुञ्जीत । आचार्यग्रहणं पूजार्थम् । तन्मतस्याप्रतिषिद्धत्वात् । स चेदभियुञ्जीत प्रतिगृह्णीयात् ॥ ४१ ॥

चाहे कामने परवश भी कर लिया हो पर अपनेआप शुरुआत न करे, यानी पुरुषको आप ही यंत्रयोगादिके लिये प्रवृत्त न करे कि तू ऐसा कर । यहां आचार्य्य ग्रहण पूजाके लिये है, क्योंकि उनके मतका कहीं भी निषेध नहीं है ॥ ४१ ॥

तत्प्रयुक्तानां त्वभियोगानामानुलोम्येन ग्रहणम् ॥ ४२ ॥

प्यारके प्रयुक्त किये अभियोगोंको तो अनुकूलरूपसे ग्रहण करे ॥ ४२ ॥

तत्प्रयुक्तानामिति बाह्यानामभियोगानाम् । आनुलोम्येन येन न विमुखीभवति ॥ ४२ ॥

यदि चाहा हुआ नायक बाहिरके अभियोगोंका प्रयोग करे तो उन्हें अनुकूलतासे स्वीकार कर ले, क्योंकि विना किये उसके फिर जानेका डर है ॥ ४२

भीतरके उपचार ।

आन्तरमधिकृत्याह—

अब भीतरके अभियोग बताते हैं कि—

परिष्वक्ता च न विकृतिं भजेत् । श्लक्ष्णमाकारमजानतीव प्रतिगृह्णीयात । वदनग्रहणे बलात्कारः ॥ ४३ ॥

आलिंगन की हुई विकारको न प्राप्त हो । नायकके भावसूचक आकारको अनजानकी तरह अपरिस्फुटरूपसे ग्रहण कर ले, पर मुखके पकड़नेमें वलप्रयोग हो ॥ ४३ ॥

परिष्वक्तेति । न विकृतिमिति । मा ज्ञासीन्नायको मामुद्विग्नामिति हेतोरित्यर्थः । आकारमिति नायकस्य भावसूचकमाकारं प्रतिगृह्णीयात् । न प्रत्याचक्षीत । तत्रापि श्लक्ष्णमस्फुटम् । क्रियाविशेषणमेतत् । अजानतीवेति धाष्टर्यपरिहारार्थम् । बलात्कार इति—तथा कार्यं यथा हठाद्वदनं गृह्णातीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

मैं उद्विग्न होऊँगी तो मुझे नायक जान जायगा, इस कारण उसके आलिंगन करनेपर भी चंचल न हो । नायकका जो भावसूचक आकार हो उसे स्वीकार कर ले, उसका प्रत्याख्यान न करे । सूत्रमें आया हुआ अस्फुट शब्द क्रियाका विशेषण है इसका अर्थ यह होता है, कि इस तरह ग्रहण करे जो कि परिस्फुट न हो । विना अनजानकी तरह ग्रहण किये यह प्रतीत होगा कि वह बड़ी धृष्ट है । कन्याको व्यवहार ही ऐसा करना चाहिये जो कि नायक उसका मुख जबरदस्ती पकड़कर चूमना चाहे ॥ ४३ ॥

रतिभावनामभ्यर्थ्यमानायाः कृच्छ्राद्गुह्यसंस्पर्शनम् ॥४४॥

उससे यदि रतिकी भावनाकी अभ्यर्थना करे तो कष्टके साथ उसके मदनांकुशको छू दे ॥ ४४ ॥

रतिभावनामिति । आत्मनो व्युत्पत्तिं नायकेन यदा साभ्यर्थ्यते स्वगुह्ये तत्पाणिन्यासेन तदा कृच्छ्रान्नायकगुह्यस्पर्शनम ॥ ४४ ॥

यदि वह रँगमें आकर नायिकासे कहे कि तू हाथ लगाकर देख ले, मैं तेरे साथ कर सकता हूं वा तयार हूं या नहीं ? तो बड़ो तकलीफके साथ उसके मदनांकुशमें हाथ लगाये ॥ ४४ ॥

इसमें भी ध्यानकी बात ।

तत्रापि विशेषमाह—

आन्तर उपचारोंमें भी जिस बातका उसे विशेष ध्यान रखना चाहिये उसे बताते हैं कि—

अभ्यर्थितापि नातिविवृता स्वयं स्यात् । अन्यत्रानिश्चयकालात् ॥ ४५ ॥

जबतक उसे इस बातका निश्चय न हो जाय कि यह मुझे न छोड़ेगा, उतने समयतक प्रार्थना किये जानेपर भी अतिविवृत न हो जाय ॥ ४५ ॥

नातिविवृतेति । भावाङ्गप्रत्यङ्गदर्शनेनेत्यर्थः । तत्र हेतुः —अनिश्चयेति ॥ ४५ ॥

जरासो प्रार्थनापर अपने भाव और अंग प्रत्यङ्ग न दिखा दे या अपने भावके सब अंग प्रत्यङ्ग न दिखा दे । कारण कि उसके कालका कोई निश्चय नहीं है, कि कब और कैसे व्याहेगा ॥ ४५ ॥

यदा तु मन्येतानुरक्तो मयि न व्यावर्तिष्यत इति तदैवैनमभियुञ्जानं बालभावमोक्षाय त्वरेत् ॥ ४६ ॥

जब वह यह समझ ले कि इसका मेरेमें दृढराग है, यह मुझे किसी तरह भी न छोड़ेगा तो उसी समय एकान्तमें प्रयत्न करते हुएको बाल भावके त्याग करनेमें शीघ्र प्रेरित करे ॥ ४६ ॥

यदा त्विति । न व्यावर्तिष्यते न मां त्यक्ष्यति । अभियुञ्जानं प्रच्छन्नप्रदेशे । बालभावमोक्षायेति–गान्धर्वविधिपूर्वकं कौमारहरणाय त्वरयेत् ॥ ४६ ॥

उसी समय वह एकान्तमें उपाय करते हुएके साथ गान्धर्वविवाह करके कारपन उतारनेके लिये जलदी करे, जब कि इस बातका उसे पूरा निश्चय हो जाय कि यह मुझे कभी न छोड़ेगा ॥ ४६ ॥

विमुक्तकन्याभावा च विश्वास्येषु प्रकाशयेत् । इति प्रयोज्यस्योपावर्तनम् ॥ ४७ ॥

गान्धर्वविवाह आदिसे जब कन्याभावका त्याग कर दे तब अपनी विश्वसनीय सखियोंके बीचमें प्रकट कर दे। यह प्रयोज्यको अपनी ओर खींचनेकी विधि पूरी हुई ॥ ४७ ॥

विश्वास्येषु सखीधात्रेय्यादिषु । प्रकाशयेत् गान्धर्वेण विवाहेनाहमूढेति ॥ इति प्रयोज्यस्योपावर्तनमेकोनत्रिंशं प्रकरणम् ॥ ४७ ॥

सखियों और धात्रेयीसे कह दे, कि मैंने इसके साथ गान्धर्वविवाह कर लिया है । यह कन्याका अपने उपायसे अपनी चाहकी चीजको अपनी ओर खींचनेके उपायोंको बतानेवाला २९ वाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ४७ ॥

एक प्रतिपत्ति प्रकरण ।

यदा प्रयोज्यमुपावर्तमाना बहुभिरभियुज्यते तदा ॥

गत प्रकरणमें तो यह बताया गया है, कि कन्याको आवश्यकता उपस्थित होनेपर स्वयम् कैसे ढूंढ लेना चाहिये । अब इस बातको बताते हैं कि यदि वह बहुतोंपर हाथ डाल रही हो एवम् उसपर भी कई हाथ डाल रहे हों तो वहां वह क्या देखकर किसे प्राप्त करे ?

उपाय देखकर झुकाव हो।

अभियोगतः कन्यायाः प्रतिपत्तिरुच्यते । अभियोगं दृष्ट्वा कन्याया अनुष्ठानमित्यर्थः ॥

---

१ ऐसे मौकोंपर सँभलना परमावश्यकक है, क्योंकि यह पतनका मौका है तथा पतनमें प्रभाव नहीं रहता । जिसके साथ जीवन बिताना है उसे पतन न दिखाना चाहिये ।

उसके लिये कहते हैं, कि कन्या चुनके अभियोगोंको देखकर ही त्यागग्रहणका कार्य्य करे ।

आश्रय, वश्य और अनुकूल चुनने योग्य ।

कन्या कौनसे वरको चुने, इसे बताते हैं कि-

भवन्ति चात्र श्लोकाः—

कन्याभियुज्यमाना तु यं मन्येताश्रयं सुखम् ।
अनुकूलं च वश्यं च तस्य कुर्यात्परिग्रहम् ॥ ४८ ॥

इस विषयमें कुछ श्लोक हैं कि—कन्या अपने उपायोंसे आप अपने लिये वर चुनती हुई जिसे आश्रय, सुख, अनुकूल और वश्य माने उसीको स्वीकार कर ले ॥ ४८ ॥

कन्येति । आश्रयमिति आश्रीयत इति कृत्वा । सुखमिति बाह्यस्योपभोगसुखस्य आन्तरस्य चरमसुखस्य हेतुत्वात् । अनुकूलं तच्चित्तानुविधायिनं वश्यं यथोक्तकारिणं मन्येत ततस्तस्य प्रतिकूलं तच्चित्तानुविधायिनं वश्यं यथोक्तकारिणं मन्येत ततस्तस्य प्रतिग्रहं कुर्यात् । सापि तथैवाचरेदित्यर्थः ॥ ४८ ॥

जिस वरको बाहिर और भीतर दोनों सुखोंका कारण माने कि इसके आसरेमें मुझे ये मिल सकेंगे एवम् अपनी चित्तवृत्तिके अनुसार चलनेवाला और जो कहे सो माननेवाला है ऐसा समझे तो उसको स्वीकार करे एवम् उसके अनुसार चलने लग जाय ॥ ४८ ॥

अनपेक्ष्य गुणान्यत्र रूपमौचित्यमेव च ।
कुर्वीत धनलोभेन पतिं सापत्नकेष्वपि ॥ ४९ ॥

यदि धनका ही लोभ हो तो रूप, औचित्य और गुणोंकी तरफ ध्यान छोड़कर सौतोंके होते भी धनीको पति बना ले ॥ ४९ ॥

अनपेक्ष्येति । यस्मिन्स्वयंवरे गुणाननपेक्ष्य तदभावात् धनवानेव केवलम् । सापत्नकेष्वपि । न केवलमसापत्नकेषु । प्रायेण धनिनां बहुदारत्वात् ॥ ४९ ॥

---

१ यहा जरा टेढी खीर है, कई उसके तरफ प्रतिद्वन्द्वितापूर्वक झुके हुए हैं तथा वह भी सबकी ओर एक चुननेके लिये झुकी हुई है, इस परिस्थितिमें लड़कीको बड़ा ही सँभलकर योग्यका चुनाव करना पड़ता है । अंग्रेजी आदि भाषाओंमें इनके किस्सोंके बड़े २ उपन्यास बने हुए हैं, इस कारण इस प्रसिद्ध विषयमें हम बोलना नहीं चाहते ।

जिस स्वयंवरमें गुणोंकी चिन्ता छोड़कर, गुणोंके अभावमें केवल धनवान ही हो वह भी यह न हो कोई सौत न हो, किन्तु बहुतसी सौतें भी हों तो हा क्योंकि धनियोंके यहां बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं, इस दशामें ऐसे धनीको भी पति बना ले ॥ ४९ ॥

तिरस्कार न करने योग्य ।

तत्र युक्तगुणं वश्यं शक्तं बलवदर्थिनम् ।
उपायैरभियुञ्जानं कन्या न प्रतिलोभयेत् ॥ ५० ॥

जो स्वयं गुणी हो हरबातमें समर्थ हो, एकान्ततः जिसकी चाह अपने लिये प्रबल हो, ऐसे वरको लोभवश छोड़ना न चाहिये ॥ ५० ॥

तत्र स्वयं युक्तगुणं सगुणं शक्तं समर्थं बलवदर्थिनमेकान्ततोऽर्थिनं न प्रतिलोभयेत् अपाकुर्यात् ॥ ५० ॥

तो इसमें यह बात ध्यानमें रखनेकी है, कि उचित गुणोंवाला, वशवर्ती, समर्थ एवम् गहरी चाहनावाला जो अपने पानेके लिये उपाय कर रहा हो उसका कभी तिरस्कार न करे ॥ ५० ॥

पेट पालक अच्छा पर बहुतोंवाला धनी भी नहीं ।

यस्तु धनवान्बहुपत्नीको गुणवानपि तमभियुञ्जानं प्रतिलोमयेदिति दर्शयन्नाह—

जो तो धनवान् हो, रूप, शील आदि गुणोंवाला भी हो, किन्तु बहुतसी औरतोंवाला हो तो उसे तिरस्कृत कर दे, इस बातको दिखाते हुए कहते हैं कि—

वरं वश्यो दरिद्रोऽपि निर्गुणोऽप्यात्मधारणः ।
गुणैर्युक्तोऽपि न त्वेवं बहुसाधारणः पतिः ॥ ५१ ॥

जो अपने वशमें हो, दरिद्र भी हो, निर्गुण भी हो, पर अपना पेट आप पाल लेता हो वह अच्छा है, पर गुणी भी हो किन्तु बहुतोंका साधारण पति हो तो वह अच्छा नहीं ॥ ५१ ॥

वरमिति । आत्मधारणः—कुटुम्बमात्रधारकः । बहुसाधारणो बहूनामेकः । यस्तु धनवान् कृतपरिग्रहो गुणवान् वश्यः सन् प्रतिलोमयेदित्यर्थः ॥ ५१ ॥

जो अपना और अपनी स्त्री आदि कुटुम्बका गुजारा करने लायक हो वह अच्छा पर बहुतसी स्त्रियोंवाला धनी अच्छा नहीं, क्योंकि जो गुणवान् धन-

वान् पहिले विवाह किया हुआ वशमें भी आजायगा तो भी फिर जब वह रुष्ट होगा, तिरस्कार कर देगा ॥ ५१ ॥

धनीकी स्त्री बननेके दोष।

यस्तु न वश्यस्तत्र दोषमाह—

जो वश्य नहीं किन्तु धनी है उसकी स्त्री बननेके दोष दिखाते हैं कि—

प्रायेण धनिनां दारा बहवो निरवग्रहाः ।
बाह्ये सत्युपभोगेऽपि निर्विस्रम्भा बहिःसुखाः ॥ ५२ ॥

प्रायः धनियोंके यहां बहुतसी स्त्रियाँ होती हैं, पर वे निरंकुश हुआ करती हैं, क्योंकि उन्हें बाहिरके सुख होनेपर भी भीतरी सुख नहीं मिलता । प्रायः बाहिरका ही सुख होता है ॥ ५२ ॥

प्रायेणेति । अत एव धनवान्बहून्दरान्प्रतिगृह्णाति । विशेषतस्ताश्च निरवग्रहा—निरंकुशाः । तत्र कारणम्—बाह्य इति । आसनाद्युपभोगेन बहिःसुखाः । निर्विस्रम्भा आन्तरेण रताख्यसुखेन वर्जिता इत्यर्थः ॥ ५२ ॥

धनी किसीके अनुसार नहीं होते, इसी कारण बहुतसी स्त्रियोंको व्याहते हैं । विशेषरूपसे उनकी स्त्रियां निरंकुश ही रहती हैं । इसका कारण यही है, कि सुन्दर आसन, अच्छी शय्या आदिके उपभोगोंसे बाहिरका सुख मिल भी जाता है तो भी भीतरका जो रतरूप सुख है वह उन्हें नहीं प्राप्त होता ॥५२॥

नीच, बुड्ढा व प्रवासी भी नहीं ।

नीचो यस्त्वभियुञ्जीत पुरुषः पलितोऽपि वा ।
विदेशगतिशीलश्च न स संयोगमर्हति ॥ ५३ ॥

जो नीच पुरुष उसे पानेकी चेष्टा करे अथवा जिसके बाल पक गये हों ऐसा पुरुष चेष्टा करे अथवा विदेशमें पड़ा रहनेवाला चेष्टा करे तो वह संयोग नहीं पा सकता ॥ ५३ ॥

नीचोऽधमजातिः पूर्वगुणयुक्तोऽपि । पलितो वृद्धः । सदा प्रवासी ॥५३॥

नीच—नीचीजातिके पुरुषको कहते हैं । उसमें पहिले गुण भले ही हों पर नहीं पा सकता, यही बुड्ढे और हमेशा विदेशमें रहनेवालेका भी हाल है ॥ ५३ ॥

बलात्कारी, कपटी, ज्वारी आदि भी नहीं ।

यदृच्छयाभियुक्तो यो दम्भद्यूताधिकोऽपि वा ।
सपत्नीकश्च सापत्यो न स संयोगमर्हति ॥ ५४ ॥

जो अपनी इच्छासे ही कर डाले। जिसमें दम्भ और द्यूत अधिक हो एवम् सपत्नीक वा बालबच्चेदार हो वह भी संयोग नहीं पा सकता ॥ ५४ ॥

यदृच्छयेति । स्वेच्छाभियोगशीलः । बलात्कारेणेति भावः । व्याजबहुलो दम्भद्यूतासक्तश्च । सपत्नीकः सापत्यश्च—परिणीतभार्यायुक्तस्तदपत्यवांश्च । एकतरवान्वा ॥ ५४ ॥

जो केवल अपनी ही इच्छासे बलात्कार करके अभियोग भी कर डाले, जो पहिलेशिरेका बहानेबाज एवम् कपटी और ज्वारी हो, जिसके घरमें व्याही स्त्री वा उसके लड़के हों या व्याही स्त्री और लड़के दोनों ही हों वह संयोग नहीं पा सकता । इन बातोंमेंसे एक भी बात जिसमें हो उसे भी न चुनना चाहिये ॥ ५४ ॥

वैशोंमें भी वश्य प्रेमी उत्तम है।

वश्यस्तु तादृशोऽपि संयोगमर्हत्येवेत्याह—

यदि वशवर्ती हो चाहे वैसा भी हो तो भी संयोग पा सकता है, यह बात नीचेके श्लोकसे कहते हैं कि—

गुणसाम्येऽभियोक्तॄणामेको वरयिता वरः ।
तत्राभियोक्तरि श्रैष्ठ्यमनुरागात्मको हि सः ॥ ५५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे एकपुरुषाभियोगा अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिश्चतुर्थोऽध्यायः ।

उपाय करनेवाले अनेकों व्यक्तियोंके गुणोंमें समता हो तो उनमें वरण करनेवाला वर होता है, क्योंकि उपाय करनेवाले उसी व्यक्तिमें श्रेष्ठता है । इसका कारण यह है, कि वह अत्यन्तके अनुरागका रूप है ॥ ५५ ॥

गुणेति । यथोक्तगुणानां साम्ये । एको वर इति व्रियन्त इति वराः सर्व एवाभियोक्तारः । तेषां वर एको वरयिता वरणे साधुः । ‘ वर ईप्सायाम् ’ । साधुकारिणि तस्मिन्नभियोक्तरि तत्त्वाविशेषे श्रैष्ठ्यं श्रेष्ठता । तस्यानुरागात्मकत्वात् । इत्यभियोगतः कन्यायाः प्रतिपत्तिस्त्रिंशं प्रकरणम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे एकपुरुषाभियोगा अभियोगतश्च कन्यायाः प्रतिपत्तिश्चतुर्थोऽध्यायः ।

यदि बताये हुए गुण एक जैसे ही हैं तो उपाय करनेवाले तो सभी हैं पर उनमें वरणमें साधु एक ही वर ब्याह सकता है, जो कि उसे तहे दिलसे चाहता है। अत्यन्त चाहनेवाले अभियोक्तामें ही तत्त्वके एक जैसा होनेपर श्रेष्ठता है, क्योंकि उसमें अनुराग अधिक है एवम् वर अनुरागरूप ही होता है। यह अभियोगसे कन्याका वर चुनना नामक ३० वाँ प्रकरण पूरा हुआ ५५

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके चतुर्थ अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

विवाहयोग प्रकरण ।

एवमनुरञ्जितां स्वयंवरप्रवृत्तां च गान्धर्वेण योजयेत् । विपरीतामासुरादिभिरिति विवाहयोगा उच्यन्ते ।

चार दिव्य विवाहोंकी बात तो पहिले ही कही जा चुकी हैं, उनमें तो स्वयंके प्रयत्न की विशेष आवश्यकता ही नहीं है। जिन्हें उस तरह नहीं मिल सकती उन्हें स्वयम् ही कन्याओंके अनुरक्त करनेकी चेष्टा करनी होती है । जिसके लिये स्वयं यत्न करके उसे अपनेमें अनुरक्त कर ले एवम् जो स्वयं ही वर चुननेमें प्रवृत्त हुई हो, उसके साथ गान्धर्वविवाह करके उसे पाना चाहिये। जो अनुरक्त भी न की हो एवम् वह स्वयंवर भी न करे उसे आसुरविवाहसे प्राप्त करे यानी उसके मा बापोंको धन देकर उसे ले ले। यदि ऐसे भी वह न प्राप्त हो सके तो उसके साथ राक्षस और पैशाच विवाह होते हैं।

गान्धर्व ठीक है ।

तत्र गान्धर्वेण प्रायशो दृश्यन्ते ।

तो फिर क्या ब्राह्मादि विवाहोंकी तरह आसुरादि विवाह भी गान्धर्वकी तरह उचित हैं ? इस प्रश्नको लेकर टीकाकार कह रहे हैं, कि वे विवाह गान्धर्वविवाहकीसी उचितता नहीं रखते, इस कारण अधिक नहीं होते, कादाचित्क ही हैं। प्रायः भव्यपुरुष गान्धर्वविवाहका ही अधिक आश्रय लेते हैं, क्योंकि यह उतना दोषावह नहीं जितने कि राक्षस और पैशाच हैं।

सहायकों द्वारा कन्यासिद्धि ।

तस्यास्तावत्सहायसाध्यविधिमाह—

गान्धर्वादि विवाहोंमें सबसे पहिले कन्याको सिद्ध करनेकी आवश्यकता होती है, इस कारण उस विधिको बताते हैं जिससे, कि वह सहायों द्वारा सिद्ध की जाय—

प्राचुर्येण कन्याया विविक्तदर्शनस्यालाभे धात्रेयिकां प्रियहिताभ्यामुपगृह्योपसर्पेत् ॥ १ ॥

यदि कन्याका एकान्तमें अधिक दर्शन न हो तो धात्रेयीके प्रिय और भविष्यके हितकारी कार्य्योंसे उसे अनुकूल बनाकर भेजे ॥ १ ॥

प्राचुर्येणेति । धात्रेयिकां पुरुषप्रवृत्तामित्यर्थात् । उपगृह्य प्रियहिताभ्यामुपसर्पेत् तस्याः समीपं निसृष्टार्थां प्रेषयेत् ॥ १ ॥

जो धायकी लड़की (वा सखी) पुरुषके साथकी रंगरेलियोंका आनन्द ले चुकी हो, उसे उसके प्यारे और हितकारी कार्य्यसे अपने अनुकूल बना, अपनी ओरकी बातें समझाकर नायिकाके पास भेज दे, यानी उसे निसृष्टार्था दूती बनाकर अपना काम कराये ॥ १ ॥

निसृष्टार्था धात्रेयीके कार्य्य ।

सा चैनामविदिता नाम नायकस्य भूत्वा तद्गुणैरनुरञ्जयेत् । तस्याश्च रुच्यान्नायकगुणान्भूयिष्ठमुपवर्णयेत् २

नायककी अपरिचितसी बनकर नायकके गुणोंसे उसे अनुरक्त करे । इसकी यह रीति है, कि नायिकाको जो गुण रुचिकर हों उन्हें खूब ही सुनाये ॥२॥

सा चेति । सा उपसर्पिता नायकस्याविदितेव भूत्वा कृतकप्रयोगपरिहारार्थम् । तस्य—नायकस्य, गुणैः । तस्याश्चेति ॥ २ ॥

नायक व नायिकाने जिस धायकी लड़की वा नायिकाकी सहेलीको अपनी बना, मूलमंत्र समझाकर नायिका व नायकके पास भेजा हो वह ऊपरसे

---

१ पारदारिक अधिकरणके चौथे अध्यायमें निसृष्टार्था दूती बताई है। इससे केवल यही कहनेकी आवश्यकता होती है कि इस कामको सिद्ध करा दो, बाकी सब प्रयत्न वह अपने आप कर लेती है। मालतीमाधव नाटकमें आचार्य्या कामन्दकीने कहा है कि—"**निसृष्टार्थदूतीकल्पः सूत्रयितव्यः**" निसृष्टार्थ दूतीके व्यापारका प्रस्ताव ही उचित है।

तो इस प्रकारकी बन जाय कि इसका भेजनेवालेसे स्वयं कोई परिचय ही नहीं है और प्रसंगवश नायक व नायिकाके रुच्य उत्तम गुणोंको सुनाना प्रारम्भ कर दे। नायिका नायकको यह शक न हो जाय कि यह मुझे बह-काकर उससे मिलाना चाहती है, इसी कारण वह भेजनेवालेकी अपरिचित बनकर उसके पास पहुँचती है ॥ २ ॥

दूसरेवरोंकी निन्दा और माबापकी बुराई।

अन्येषां वरपितॄणां दोषानभिप्रायविरुद्धान्प्रतिपादयेत् ३

दूसरे वरोंके उन दोषोंको प्रकट कर दे जिन दोषोंको कि वह न चाहती हो ३

अभिप्रायविरुद्धानिति यथा नेच्छति तानियं तथेत्यर्थः ॥ ३ ॥

दोषोंको इस प्रकार दिखाये जिनसे कि वह उन्हें न चाहे, यही दोषकथ-नका तात्पर्य्य है ॥ ३ ॥

मातापित्रोश्च गुणानभिज्ञतां लुब्धतां च चपलतां च बान्धवानाम् ॥ ४ ॥

माता, पिता और परिवारवालोंकी गुणोंकी अजानकारी, लोभीपना और चपलता दिखाये ॥ ४ ॥

गुणानभिज्ञतां लुब्धतां चेति—अगुणज्ञौ तव पितरौ लुब्धौ च येन गुणवन्त-मपहायान्यं धनिनं निर्गुणं गवेषयत इति ॥ ४ ॥

नायिकासे कहे, कि आपके मा बाप गुणज्ञ नहीं हैं एवं लोभी हैं, इस कारण इस गुणीको छोड़कर दूसरे धनी निर्गुण पुरुषको ढूंढते हैं ॥ ४ ॥

साहित्यमें इसकी छटा।

इन सब बातोंका साहित्यमें जिस प्रकार उपयोग होता हैं, उस बातको दिखाते हैं, कि—

" इदमिह मदनस्य जैत्रमस्त्रं सहजविलासनिबन्धनं शरीरम्,
अनुचितवरसंप्रदानशोच्यं त्रिफलगुणातिशयं भविष्यतीति ॥ "

जिस समय मालती अपने प्यारेका चित्र देख रही थी, उसी समय काम-न्दकी इसके पास पहुँची। मालतीने अपने हार्दिकभावोंको छिपाकर उसे बन्दना की तो उसने कपटभरी लम्बी श्वास लेकर, कहा कि हाँ! महामात्र-पुत्रिके! मेरी तो कुशल ही है। लवंगिकाने इस भूमिकाको पहिचानकर कहा, कि—ए मातः! आखोंमें आंसू भरकर जो आपने लम्बी स्वास लेकर ऐसा

कहा यह बात क्या है ? इस पर उत्तर दिया, कि यही मेरे उद्वेगका कारण है जो सामने बैठी है । जब फिर लवंगिकाने पूछा तो कामन्दकीने कहा, कि—क्या तू जानती नहीं जो पूछती है ? । कहां कामदेवके पांचों पैने तीरोंके समान शरीरवाली मालती और कहां गतवय कुरूप निर्बुद्धि नन्दन ? । इस प्रकार अयोग्य वरकी योजना हो जानेके कारण, इस कपड़े रंगे भेषपर भी मुझे पश्चात्ताप हुआ है । यदि ऐसा हो गया तो मालतीकी तो सारी सुन्दरता ही मिट्टीमें मिल जायगी । यह सुनकर इसीकी तालमें ताल मिलाकर कह उठी, कि इसी कारण दीवानसाहिबकी बुराई हो रहा है । यह तो हुआ वरकी बुराईका ढंग, अब उसको बताते हैं जो माबापोंकी बुराईमें बरता जाता है यानी माबापोंकी ओरसे जिसप्रकार चतुर स्त्री लड़कीको अरुचि कराती हैं उसका प्रयोग बताते हैं, कि—

" गुणापेक्षाशून्यं कथमिदमुपक्रान्तमधुना,
कुतोऽपत्यस्नेहः कुटिलनयनिष्णातमनसाम् ।
इदं त्वैदंपर्य्यं यदुत नृपतेर्नर्मसचिवः
सुतादानान्मित्रं भवतु स हि नो नन्दन इति ॥ "

राजनीतिविशारद लोगोंको सन्तानका मोह नहीं रहता, कर्तव्यकार्य्य व राजाका अभीष्ट संपादन करनेमें ही शेष हो जाता है । यदि सचिवने नन्दनके लिये आपको देनेका निश्चय किया होगा तो उसका यही कारण होना चाहिये । राजा अपने हास्यकुशल ठठोलके लड़केको देना चाहते हैं, इसमें दीवानका लड़की देनेका यही अभिप्राय होगा, कि राजप्रियके साथ मित्रता बनी रहे, लड़की चाहे भारड़में जाये । देखो ! सचिवको राजप्रतिष्ठाका कितना लोभ है ।

स्वयंवरणके दृष्टान्त ।

याश्चान्या अपि समानजातीयाः कन्याः शकुन्तलाद्याः स्वबुद्ध्या भर्तारं प्राप्य संप्रयुक्ता मोदन्ते स्म ताश्चास्या निदर्शयेत् ॥ ५ ॥

दूसरी भी जो समान जातिका कन्याएँ एवम् शकुन्तलादिक जो अपनी बुद्धिसे भर्ताको प्राप्त कर, उससे संयुक्त हो प्रसन्न हुई थीं, उनकी भी कथाएँ नायिकाको सुना दे ॥ ५ ॥

नानुरूपोऽयं ममेति । स्वबुद्ध्यावधारणं, न पित्रोरिच्छया । तथा कर्तव्ये शकुन्तलादिकृताः कथाः कथयेत् । कौशिकः स्वतपोविघ्नार्थमिन्द्रसंप्रेषितामप्स-

रसं मेनकां दृष्ट्वा जातरागश्चकमे । सा च तद्वीर्यग्रहणात्तत्रैव कन्यां प्रसूय त्यक्त्वा चारण्ये दिवं जगाम ।

जिस निगुरे वरको मा बाप देना चाहते हों उसका आप स्वयम् अपनी बुद्धिसे निश्चय कर लें, कि यह मेरे लायक नहीं है या है । जो आपके लायक हो उसके साथ स्वयम् शादी कर लो, इसमें पिताकी इच्छापर न रहो । इस बातके करनेमें उसकी जातिकी ऐसी कन्याओंके उदाहरण दे तथा शकुन्तला आदिकी की हुई बातें कह दे, कि—'विश्वामित्र अपने तपमें विघ्न करनेके लिये इन्द्रसे भेजी गई मेनका अप्सराको देख, उत्पन्न रागवाले होकर उसे चाहने लगे । मेनका विश्वामित्रके वीर्य्यग्रहणसे वहीं कन्या पैदा करके उसे वनमें छोड़ स्वर्ग चली आई । '

शकुन्तसंपातमध्यगतां च तां कन्यां कण्वर्षिः करुणयाश्रममानीय वर्धितवान् । यथार्थं च शकुन्तलेति नाम चक्रे । सा च कालेन प्राप्तयौवना मृगयाप्रसङ्गादागतं दुष्यन्तं राजानं दृष्ट्वा स्वबुद्ध्या पाणिं ग्राहितवती । आदिशब्दाद्राजदारिकाः कन्या निदर्शयेत् ॥ ९ ॥

वहां शकुन्तपक्षियोंके बीचमें उस कन्याको देखकर, कृपालु कण्वमहर्षि कृपा करके अपने आश्रम ले आये एवं वहीं बड़ी की । उसका अन्वर्थक नाम शकुन्तला रख दिया । वह समय पाकर युवती हो गई और शिकार खेलनेके प्रसंगसे आये हुए महाराज दुष्यन्तको देखकर, अपने ही आप उसे अपना हाथ पकड़ा दिया । शकुन्तलाके साथ जो आदि शब्द दीखता है इसका यही

समझानेका ढंग ।

१ "अयि सरले ! किमत्र मया भगवत्या शक्यम् । प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवं च । यच्च किल कौशिकी शकुन्तला दुष्यन्तम्, अप्सराः पुरूरवसं चकमे । ......वासवदत्ता च पित्रा संजयाय राज्ञे दत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छत ।"

तू बड़ी सीधी है, बता इसमें मैं क्या कर सकती हूं, मावापोंका बेटियोंपर पूरा अधिकार रहता है । ये सब दैवके बखेड़े हैं । यदि वर और वधू कुछ यत्न करें तो अभीष्टकी सिद्धि हो सकती है, क्योंकि शकुन्तलाने अपने आप दुष्यन्तको व्याहा । उर्वशी विक्रमके घर आप ही चली गई । वासवदत्ताके बापने यद्यपि उसकी संजयके यहां सगाई की थी, पर वह स्वयम् उदयनके यहां चली गई । लड़कीको विचलित करनेवाली ऐसी २ बातें करती हैं ।

तात्पर्य्य है, कि जिन राजकुमारियोंने अपने आप वर चुन लिया हो उनकी बातें भी सुना दे ॥ ५ ॥

महाकुलेषु सापत्नकैर्बाध्यमाना विद्विष्टाः दुःखिताः परित्यक्ताश्च दृश्यन्ते ॥ ६ ॥

बड़े घरानोंमें सौतोंकी सताई एवम् द्वेषका विषय बनाई हुई दुःखी और पतिपरित्यक्ता देखी जाती हैं ॥ ६ ॥

महाकुलेष्विति । महाकुलेषु च लोभात्पित्रा दत्ता नियतं सापत्नकैर्बाध्यन्ते । ततश्च विद्विष्टाः परिजनस्य परित्यक्ताः सत्यो दुःखिता दृश्यन्त इति दर्शयेत् ॥ ६ ॥

यदि पिता लोभके वश होकर बड़े घराम दे देते हैं तो यह बात अवश्य होती ही है, कि वहां सौतोंसे सताई जाती हैं। पतिके घरमें सौतें वैर रखती हैं एवम् वहां परिवारसे अलग पड़ जाती हैं, इस कारण दुःखी देखनेमें आती हैं ॥ ६ ॥

आयतिं चास्य वर्णयेत् ॥ ७ ॥

जिसके साथ व्याह कराना चाहे उसकी भविष्यकी उन्नति बताये ॥ ७ ॥

आयतिमुत्तरभाविनमर्थम् । भविष्यति चेति ॥ ७ ॥

भविष्यमें होनेवाले नायकके अधिकार एवम् धन प्राप्तिको बताये कि—(बड़ा आनन्द करेगी) ॥ ७ ॥

सुखमनुपहतमेकचारितायां नायकानुरागं च वर्णयेत् ॥८॥

उसका अनुपहतसुख और नायकका एकचारितामें अनुराग दिखाये ॥८॥

एकचारितायामिति—एकपत्नीत्वे सुखमनुपहतं वर्णयेत् । सापत्न्यदुःखाभावात् । नायकानुरागं चेति ॥ ८ ॥

अनुरक्त पतिकी अकेली ही स्त्री होनेमें निरन्तर सुख बताये, क्योंकि उसमें सौतोंका दुःख नहीं हैं, अतः निरन्तर ही है । नायकके अनुरागको बताये तथा उसके एक स्त्रीगामीपनेके स्वभावको बताये ॥ ८ ॥

समनोरथायाश्चास्या अपायं साध्वसं व्रीडां च हेतुभिरवच्छिन्द्यात् ॥ ९ ॥

जब उसका मनोरथ देख ले तो उचित हेतुओंसे उसके अपाय, भय और लज्जा हटा दे ॥ ९ ॥

समनोरथाया इति । अस्त्येवायमस्या मनोरथः किं तु दोषान्पश्यतीत्युत्प्रेक्ष्याह—अपायमिति । विनाशं कुतश्चित् । साध्वसं भयं गुरुजनात्, व्रीडां परिजनेषु हेतुभिरुपायैर्दर्शनैरपनयेत् ॥ ९ ॥

जब यह जान जाय कि इसका मनोरथ तो है पर दोषोंको देख रही है, किसी कारणसे अपना विनाश देख रही है एवम् गुरुजनोंका भय ओर परिवारको लज्जा है तो उपायोंके दिखाने एवम् समझाने बुझानेसे दूर कर दे॥९॥

दूतीकल्पं च सकलमाचरेत् ॥ १० ॥

दूतियोंकी सभी लीलाएँ करे ॥ १० ॥

दूतीकल्पं च पारदारिके वक्ष्यमाणं प्रतारणकरणम् ॥ १० ॥

पारदारिक अधिकरणके चौथे अध्यायमें मुख्यरूपसे दूतियोंके कार्य्य कहे हैं, कि वे किस प्रकार प्रतारणा करती हैं । उसी तरह दूतियोंकी सारी कारवाइयाँ कर दिखाये ॥ १० ॥

त्वामजानतीमिव नायको बलाद्ग्रहीष्यतीति तथा सुपरिगृहीतं स्यादिति योजयेत् ॥ ११ ॥

उसे बता दे, कि तुझे अपरिचिताकी तरह नायक बलपूर्वक हर ले जायगा, इस तरह वह तुझे अनायास ही मिल जायगा, यह अन्तमें योजना करे ११

त्वामजानतीमिवेति । अजानतीमिव बलात्कारेण ग्रहीष्यति तदा न तव दोषः। तथेति तेन प्रकारेण सुगृहीतं स्यात् ॥ ११ ॥

मानो तुझे तो कुछ पता ही नहीं, इस प्रकार तुझे[1] ले जायगा तो तेरा कोई दोष न होगा । इस प्रकार वह तुझे अच्छी तरह मिल जायगा ॥११॥

उड़ानेपर भी फेरे ।

यदि दूतियोंके द्वारा उड़ा भी ली जाय तो भी ऐसा न होना चाहिये, कि अपने गृह्यसूत्रकी विधिका अतिक्रमण किया जाय, किंतु उसमें भी वैदिक क्रिया तो हो ही जानी चाहिये । इसी बातको नीचेके सूत्रोंसे कहते हैं, कि—

---

१ स्वयंवरसे भी जिन्हें वह कन्या अप्राप्त दीखती थी वे कन्याके चाहे हुए ऐसा व्यवहार किया करते थे जिससे कन्यापर भी लाञ्छन न आये और अपना कार्य्य भी बन जाय। महाराज पृथ्वीराज जयचन्द्रकी पुत्री संयोगिताको इसी तरह ले गये थे । तथा भारतीय क्षत्रियवीरोंमें पिछले समयमें अधिकांश ऐसा ही हुआ करता था ।

प्रतिपन्नामभिप्रेतावकाशवर्तिनीं नायकः श्रोत्रियागारादग्निमान्याय्य कुशानास्तीर्य यथास्मृति हुत्वा च त्रिः परिक्रमेत् ॥ १२ ॥

प्राप्त हो गई एवम् चाहे हुए अवकाशमें पहुँच गई हो तो नायक श्रोत्रियके घरसे अग्नि ला, स्मृतिके अनुसार हवन करके तीन परिक्रमाएँ करे ॥१२॥

प्रतिपन्नामिति । अभ्युपगतामेकान्तदेशवर्तिनीम् । श्रोत्रियेति । तत्राग्नेः संस्कृतत्वादित्यर्थः । यथास्मृति स्वगृह्योक्तविधिना । त्रिः परिक्रमेत् अग्निं भ्रमयेत् ॥ १२ ॥

जो हाथ आ गई हो और जहां किसी आक्रमणका भय न हो, ऐसे एकान्तमें पहुँच गई हो तो वेदपाठी अग्निहोत्रियकी अग्नि संस्कृत रहती है, इस कारण उस पवित्र जातवेदाको वहां लाकर, अपने गृह्यसूत्रकी बताई हुई विधिके अनुसार आहुतियाँ देकर अग्निके तीन फेरे ले ॥ १२ ॥

ततो मातरि पितरि च प्रकाशयेत् ॥ १३ ॥

इसके बाद माता और पितासे प्रकट करे ॥ १३ ॥

प्रकाशयेत् प्राणिधिना यथा नायकेनोढेति ॥ १३ ॥

विवाहके बाद किसी गुप्तचरद्वारा कन्याके माबापोंमें प्रकट करा देना चाहिये कि, इस प्रकार छिपकर इस आदमीने धोखेसे मुझे व्याह लिया॥१३

अग्निसाक्षिका हि विवाहा न निवर्तन्त इत्याचार्यसमयः ॥ १४ ॥

अग्निकी साक्षीमें किये हुए विवाह निवृत्त नहीं होते, ऐसा आचार्य्योंका संकेत है ॥ १४ ॥

न निवर्तन्त इति नान्येनोह्यते इति दर्शयति । धर्मविवाहेष्वग्निसंनिधानं कार्यमिति ॥ १४ ॥

जिसका एकबार अग्निकी साक्षीमें विवाह हो जाता है, वह फिर अटल है, उस कन्याको दूसरा कोई नहीं व्याहता यह बात इससे दिखाई है, अतः विवाहोंमें अग्निसामीप्य अवश्य होना चाहिये ॥ १४ ॥

भारतमें स्वयंवरके तरीकेपर होनेवाले विवाहोंमें भी अग्निसंस्कार होजाया करता था, मालतीका और वासवदत्ताका अग्निसंस्कार किया गया था। हरकर लाई हुई लड़कीके साथ भी घरपर अग्निसंस्कार कर लिया जाता था।

मुख्य मतलब यह है, कि कामासक्त दशामें भी चरितनायकोंने धर्मको नहीं भुलाया है ॥

छिपेतौरपर बिगाड़कर फिर व्याहना ।

दूषयित्वा चैनां शनैः स्वजने प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥

उसे दूषित करके धीरेसे स्वजनोंमें प्रकट कर दे ॥ १५ ॥

दूषयित्वेति अभिगम्येत्यर्थः । नोद्वाहितमात्राम् । शनैः स्वजने प्रकाशयेत्, तस्या आत्मीकरणार्थम् ॥ १५ ॥

यह बात न हो, कि विवाहमात्र ही करके उसे प्रकट करे, किन्तु उसके साथ समागम करके पीछे उसे अपनी बनानेके लिये उसके और अपने स्वजनोंमें सच्चा हाल प्रकट कर दे ॥ १५ ॥

यथा पितरौ तथाविधामपि प्रयच्छत इति तदाह—

सहवास करके दूषित की हुई को भी जिस प्रकार उसके मा बाप अपनेको दे दें, इस प्रकार करे, यही बात कहते हैं कि—

तद्बान्धवाश्च यथा कुलस्याघं परिहरन्तो दण्डभयाच्च तस्मा एवैनां दद्युस्तथा योजयेत् ॥ १६ ॥

नायिकाके बान्धव, जिस तरह कुलकलंकको दूर करते हुए और दण्डके डरसे उसीको इसे दे दें, इस प्रकार योजना करे ॥ १६ ॥

तद्बान्धवा इति । नायिकाबान्धवाः । नायकोपगृहीतेत्यघं दोषं परिहरन्तो यदि तस्मै न प्रतिपाद्यते तदा कुलं दुष्यत इति । दण्डभयाच्चेति । एवं चानुष्ठीयमानं यदि राजा शृणुयात् तदा दण्डं पातयेत् तस्मै एव नायकायैव ॥ १६ ॥

जिसको इस तरह दूषित किया गया है उसके भाईबन्द इस दोषको दूर करनेके लिये, कि यदि इसे न व्याहेंगे तो कुल दूषित हो जायगा और राजाके दण्डके भयसे कि-'इस प्रकार करता हुआ राजा सुन लेगा तो दण्ड देगा' उसको उसी नायकको विवाह दें, ऐसी योजना (भीतर ही भीतर) करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अनन्तरं च प्रीत्युपग्रहेण रागेण तद्बान्धवान्प्रीणयेदिति १७

जब उसे इस तरह वह लड़की मिल जाय तो प्रेमके उपग्रह और रागसे उसके बन्धुओंको प्रसन्न कर ले ॥ १७ ॥

अनन्तरं चेति ॥ १७ ॥

यानी, इस रीतिसे व्याह लेनेपर पीछे उसके परिवारको राजी कर ले ॥ १७ ॥

इससे गान्धर्व उत्तम है ।

इस प्रकार कन्याको पहिले तो दूषित कर देना; फिर गुप्तचरोंद्वारा कन्याके मावापेंके कानोंमें इस तरहकी भनक डालना वा डलवाना और लोकापवादसे डराकर फिर लग्न करनेकी अपेक्षा गान्धर्व विवाह कर लेना ही सर्वोत्तम है । इसी बातका हृदयमें रखकर आचार्य्यने इसके बाद कहा है कि—

गान्धर्वेण विवाहेन वा चेष्टेत ॥ १८ ॥

अथवा गान्धर्व विवाहकी ही चेष्टाएँ करे । अर्थात् इस नीचकर्ममें हाथ न डाले ॥ १८ ॥

बिचौलियाकी मिलतका गुप्त व्याह ।

आन्तरस्थामधिकृत्याह—

अपने मिलनेवाली बिचौलिया स्त्रीकी मिलतके गुप्त विवाहोंको बताते हैं कि—

अप्रतिपद्यमानायामन्तश्चारिणीमन्यां कुलप्रमदां पूर्वसंसृष्टां प्रीयमाणां चोपगृह्य तया सह विषह्यमवकाशमेनामन्यकार्यापदेशेनानाययेत् ॥ १९ ॥

न प्राप्त होनेपर, दूसरी पहिले मिली हुई प्रेमिका कुलस्त्रीको द्रव्यसे अनुकूल करके उसके साथ नायिकाको किसी बहाने गम्य अवकाशमें बुला ले १९

अप्रतिपद्यमानायामिति स्वयं पाणिग्रहणमकुर्वत्याम् । अन्तश्चारिणीमन्यामित्यन्तरङ्गां कुलस्त्रियम् । पूर्वसंबद्धां पित्रोः सौजन्येन प्रीयमाणां नायकस्य । उपगृह्येति द्रव्येण स्वीकृत्य । विषह्यमिति गम्यम् । अन्यं कार्यमपदिश्यानाययेत्प्रणिधिना ॥ १९ ॥

जो आप पाणिग्रहण न कराये उसे अन्तरंग यानी बीचमें पड़ी हुई पहिले मिलनेवाली एवम् माता पिताकी सज्जननासे प्रेम रखनेवाली दौत्यनिपुणा कुलललनाको बीचमें डालकर, उसे धनके लोभसे इस काममें लगाकर, किसी कार्य्यके बहाने गम्य स्थानमें उसे और कन्याको गुप्तचरोंके साथ बुला ले १९

ततः श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २० ॥

श्रोत्रियके घरसे अग्नि लाकर, और धन्दे १२ वें सूत्रके कहेके अनुसार होने चाहिये ॥ २० ॥

समानं पूर्वेणेति । श्रोत्रियागारादित्यादि पूर्ववदित्यर्थः ॥ २० ॥

वहां कर्मकाण्डी वेदपाठीके घरसे अग्नि मँगा, कुशोंको बिछा, विधिपूर्वक आहुति देकर तीन फेरा ले ले ॥ २० ॥

प्रेमिनि पड़ोसिनि और माकी मिलतका गुप्तव्याह ।

प्रेमिनि पड़ोसिनिके द्वारा जिस वरको लड़की दिये जानेवाली है उसके दुर्गुणोंको सुनवा, कन्याकी माताको मिलाकर जो गुप्त विवाह होता है उसे बताते है कि--

आसन्ने च विवाहे मातरमस्यास्तदभिमतदोषैरनुशयं ग्राहयेत् ॥ २१ ॥

विवाहके समयके नजदीक होनेपर निश्चितवरके उन दोषोंको बताकर जिनमें कि वह अपनी लड़की उसे देना न चाहे, नायकके गुणोंका बखान करके उसका अभिप्राय गहा दे, जिससे कि लड़कीकी मा उस वरको किसी तरह भी लड़की देना न चाहे और किसी भी तरह, एवम् नायकको देनेके लिये तैयार हो जाय ॥ २१ ॥

ततस्तदनुमतेन प्रातिवेश्याभवने निशि नायकमानाय्य श्रोत्रियागारादग्निमिति समानं पूर्वेण ॥ २२ ॥

इसके बाद उसकी माताकी सलाहसे पड़ोसिनके घर रातको नायकको बुला, अग्निहोत्रीके घरकी आग ला पहिलेकी तरह व्याह कर ले ॥ २२ ॥

तदनुमतेन मातुरभिप्रायेण । अनुशयादूर्ध्वम् । प्रातिवेश्याभवने इति । तस्या द्रव्येणोपगृहीतत्वात् । इति द्वितीयः ॥ २२ ॥

जब उसकी माताकी पूर्ववरोंसे तबीयत हटकर अपने नायककी ओर हो जाये तो इसके बाद माताकी इच्छासे द्रव्य देकर अनुकूल बनाई हुई पड़ोसिनके घर अग्निकी साक्षीमें विवाहकृत्य पूरा करे, यह ऐसा दूसरा है।।२२।।

भाईको मिलाकर व्याह ।

जिस प्रकार लड़कीकी माको मिलाकर व्याह किया जाता है उसी तरह भाईको भी मिलाकर व्याह किया जाता है, हम भाई की मिलनके व्याह बताते हैं कि—

भ्रातरमस्या वा समानवयसं वेश्यासु परस्त्रीषु वा प्रसक्तमसुकरेण साहाय्यदानेन प्रियोपग्रहैश्च सुदीर्घकालमनुरञ्जयेत् । अन्ते च स्वाभिप्रायं ग्राहयेत् ॥ २३ ॥

वेश्या वा परस्त्रीपर एकदम आसक्त हुए अपने बराबरके उसके भाईको ऐसी सहायता दे जो कि कठिनतासे प्राप्त हो और दूसरे प्यारे उपग्रहोंसे भी चिरकाल तक अनुरक्त करे । अन्तमें अपना अभिप्राय ग्रहण करा दे ॥ २३ ॥

अस्या भ्रातरं तुल्यवयसमेकान्तप्रसक्तम् सुकरेण–कष्टसाध्येन दुःसाध्यस्त्रीसंपादनादिना । प्रियोपग्रहैरिति–सामदानैरन्यैर्वा । इत्यनुरञ्जनविधिः । स्वाभिप्रायमिति त्वद्भगिनीं परिणेतुमिच्छामि ॥ २३ ॥

यदि चाही हुई नायिकाका भाई अपने बराबरका हो वह किसी वेश्या वा अपने काबूकी स्त्रीपर एकदम आसक्त हो, उसे कष्टसाध्य सहायता देकर उस दुःसाध्य स्त्रीको प्राप्त करा दे एवम् प्यारी बातें और प्यारी वस्तुएँ देकर एकदम अपनेमें अनुरक्त कर ले, यही उसके अनुरक्त करनेकी विधि है । जब वह बिलकुल अपना बन जाय तब उसे बताये कि मैं तेरी फलानी बहिनके साथ शादी करना चाहता हूं ॥ २३ ॥

प्रायेण हि युवानः समानशीलव्यसनवयसां वयस्यानामर्थे जीवितमपि त्यजन्ति । ततस्तेनैवान्यकार्यात्तामानाययेत् । विषह्यं सावकाशमिति समानं पूर्वेण॥२४

यह बात निश्चित है कि प्रायः युवक एकसे स्वभाव, एकसी आदत एवम् बराबरकी उमरवालों दोस्तोंके लिये प्राण भी छोड़ देते हैं, इस कारण उसके भाई द्वारा ही किसी कार्य्यके बहाने बुला ले, फिर एकान्तकी जगहमें अग्निसाक्षिक व्याह कर ले ॥ २४ ॥

अन्यकार्य्यादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी । अन्यकार्यमुद्दिश्येत्यर्थः । तत्रापि नायिकामानाययेदिति तृतीयः ॥ २४ ॥

'किसी कार्य्यके बहाने' इसमें भी नायिका मँगाई जाती है, इस कारण यह तृतीय विवाह है ॥ २४ ॥

पैशाच विवाह ।

सुप्तमत्तोपगमात्पैशाचः । तमधिकृत्याह—

जिसमें सोती हुईको अथवा नशेमें बेहोश करके उसके साथ सहवास करके किसीके कामकी न छोड़कर व्याह लेना पैशाच कहा गया है, यहां हम उसीको लेकर कह रहे हैं, कि—

सूत्रमें 'अन्यकार्य्यात्' ऐसा पद है, इसमें 'ल्यप्' लोपमें पंचमी है इसी कारण इसका अर्थ ऐसा किया गया है ॥

अष्टमीचन्द्रिकादिषु च धात्रेयिका मदनीयमेनां पाययित्वा किंचिदात्मनः कार्यमुद्दिश्य नायकस्य विषह्यं देशमानयेत् । तत्रैनां मदात्संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण ॥ २५ ॥

अष्टमी, चन्द्रिका आदि उत्सवोंमें धायकी छोरी या सहेली नायिकाको नशा पिलाकर अपने किसी कामके बहाने एकान्तमें गम्यदेशमें ले आये एवम् वहां दूषित करके धीरेसे उसके स्वजनोंमें प्रकट कर दे ॥ २५ ॥

अष्टमीचन्द्रिकादिष्विति । अष्टमीचन्द्रिकादिषु तत्र दिवसमुपोष्य पूजापुरःसरं रात्रिजागरणमाचन्द्रोदयम् । अनन्तरं तां धात्रेयिका नायकप्रसक्ता मदनीयं सुरादिकं पाययित्वा । किंचिदात्मनः कार्यमिति । अंगुलीयकं विस्मृत्यागतास्मि तत्र गच्छेत्युपदिश्यानयेदित्यर्थः । तत्रेति विषह्यदेशे । संज्ञां चेतनाम् । दूषयित्वेति । दूषयित्वा चैनां शनैः स्वजनेषु प्रकाशयेत् । तद्बान्धवाश्चेत्यादिपूर्ववत् । इत्येकः प्रकारः ॥ २५ ॥

इनमें दिनभर उपवास रखकर पूजाके साथ चन्द्रोदयतक रात्रिजागरण होता है । इसी बीचमें नायकपर आसक्त हुई धायकी लड़की नायकके समझानेके अनुसार उसे नशेकी चीज शराब आदि पिलाकर, मैं छाप वहां भूलकर चली आई हूं वहां चलकर छाप ले आयें, इस तरह अपने कार्य्यके बहाने ले आये । वहां एकान्तमें बेहोशीकी हालतमें उसके साथ दुष्टकर्म करके धीरे धीरे कन्याके परिवारवालोंमें प्रकट कर दे । जिस तरह कि इनके बान्धव कुलका कलंक देखकर उसे उसीको दे देना चाहें । यह पैशाचकी एक रीति है ॥ २५ ॥

अकेलीको दूषित करके पाना ।

पहिले जो पैशाच कहा था वह तो किसीको मिलाकर था, किन्तु अब अकेलीको दूषित करके होनेवाला कहा जाता है कि—

सुप्तां चैकचारिणीं धात्रेयिकां वारयित्वा संज्ञामप्रतिपद्यमानां दूषयित्वेति समानं पूर्वेण ॥ २६ ॥

सोती हुई अकेली एकचारिणी अथवा बेहोशको दूषित करके फिर पहिलेकी तरह प्रकट करना और पहिलेकी तरह पाना, यह भी एक तरहका पैशाच ही है ॥ २६ ॥

सुप्तां चैकचारिणीमिति । अङ्कसुप्तेति द्वितीयः । अत्राग्न्याहरणादिकं नास्ति, अधर्मत्वादिति ॥ २६ ॥

सोती हुई अकेली वा गोदीमें सुलवाकर या सुलाकर खरांब करे । इसमें अग्निकी परिक्रमा नहीं है, क्योंकि अधर्म है ॥ २६ ॥

राक्षस विवाह ।

प्रसह्याहरणाद्राक्षसमधिकृत्याह—

बलपूर्वक हरण करनेसे राक्षसविवाह होता है, उसीको लेकर कहते हैं कि—

ग्रामान्तरमुद्यानं वा गच्छन्तीं विदित्वा सुसंभृतसहायो नायकस्तदा रक्षिणो वित्रास्य हत्वा वा कन्यामपहरेत् । इति विवाहयोगाः ॥ २७ ॥

दूसरे गाम वा बागको जाती हुईका पता पाकर, अपने साथियोंको साथ ले, उसके रक्षकोंको डराकर वा मारकर कन्या हर ले जाय । ये विवाहके योग पूरे हुए ॥ २७ ॥

यह खतरेसे खाली नहीं ।

१ यदि विचार करके देखा जाय तो इस घृणितकर्मके बराबर दुनियांमें कोई भी घृणित काम नहीं है । यही कारण है कि शास्त्रने इस विवाहका नाम पैशाच रखा है, क्योंकि यह पिशाचोंका ही कार्य है, इसे मनुष्य नहीं कर सकता । इस प्रकार करके जो विवाह करते हैं वे पिशाच ही कहाते हैं । मनुमहाराजने ऐसे पिशाचोंके लिये लिखा है, कि—

"योऽकामां दूषयेत्कन्यां स सद्यो वधमर्हति ।
सकामां दूषयँस्तुल्यो न वधं प्राप्नुयान्नरः ॥"

जो सजातिका भी होकर कन्याकी विना मरजीके उसके साथ जर.जिना करे तो उसके लिङ्गच्छेदरूप वध करना चाहिये, यदि लड़कीकी इच्छासे किया तो उसे यह दण्ड नहीं, किन्तु महापातक अवश्य है । वर्तमान शासनमें ऐसे अपराधोंमें लिङ्गच्छेद तो नहीं चलता पर जेलखाने वड़े लम्बे २ हो जाते हैं ।

२ भारतमें कन्याओंकी इच्छासे सभी कुछ हुआ है, पर कन्याओंकी विना राजीके भारतीय वीरोंने कभी ऐसा नहीं किया । परन्तु भारतके गतविधर्मा शासकोंकी ऐसी ही घृणित घटनाएँ सभ्य संसारको यह याद दिलाती रहेगी कि भारतके पवित्रवक्षस्थलको उन्होंने इस पापसे भी खाली न छोड़ा । वे चले गये और आज उनकी मजारें भी जीर्णशीर्ण होती चली जा रही हैं पर उनके अत्याचार आज भी पुकार पुकार कर कह रहे हैं, कि अत्याचारी कोई भी सदा न टिक सकेगा ।

ग्रामान्तरमिति । अस्माद्ग्रामादन्यग्रामम् । सुसंभृतसहाय इति सुसंनद्धबहुसहायः । रक्षिणः कन्यारक्षकान् । वित्रास्यते यथा त्यक्त्वा पलायन्ते । हत्वा वा प्रहारैः कन्यामपहरेत् । कृष्णवद्रुक्मिणीम् । अत्राप्यधर्मत्वान्नाग्न्याहरणादि । विवाहयोगा गान्धर्वादीनां विषयः ॥ २७ ॥

अपने गामसे किसी दूसरे गामको जा रही हो, साथ सजे सजाये बहुतसे सैनिक रक्षक हों, ऐसी दशामें कन्याके रक्षकोंको इतना डरा दे जो कि छोड़कर भाग जायँ, जो न भगें उन्हें प्रहारोंसे मार डाला जाय और जैसे भगवान् कृष्णने रुक्मिणीको हरा था उसी तरह हर ले जाय। इसमें भी अधर्म है, इस कारण इसमें अग्नि—आहरण नहीं होता । यह गन्धर्वादिविवाहोंका विषय पूरा हुआ ॥ २७ ॥

रुक्मिणीका विवाह ऊपरसे ही राक्षस था ।

यह देखनेमात्रका ही राक्षस था पर वास्तवमें तो यह गान्धर्व ही था, क्योंकि रुक्मिणीजीने पाती लिख भेजी थी, कि—" मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्य्यशुल्काम्" मेरा मूल्य बल है, इस कारण आप आकर मुझे राक्षस विधिसे ले जायँ । कन्याकी मरजीसे होनेके कारण राक्षस नहीं कहाया जा सकता, क्योंकि इस विवाहकी परिभाषामें लिखा है, कि रोती हुई कन्याको ले जाय । पर यहां तो रुक्मिणी स्वयम् ही रथपर आ बैठी हैं । यही भागवतमें लिखा है कि—

" तां राजकन्यां रथमारुहन्तीम्, जहार कृष्णो द्विषतां समीहताम् ॥"

आप अपने सौंदर्य्यसे सबको मूर्च्छित करके कृष्णके पास आई, छोटी होनेके कारण जब रथमें न चढ़ सकीं तो सरकारने उन्हें हाथका जरासा सहारा दे दिया । पीछे भले ही तलवार चली हो, किन्तु पहिले तो "व्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः" रुक्मिणीजीने जो शरमाते हुए सबकी ओर एक कटाक्ष फेंक दिया है, उसीमें सबने मोहित होकर हाथसे तलवार छोड़ दी है, लड़ा कौन है ? ।

उत्तमाधमका विचार ।

अष्टानां विवाहानां मध्ये किमपेक्षया कस्य प्राधान्यमित्याह—

इन आठों विवाहोंमें किस विवाहकी अपेक्षासे कौन २ सा विवाह प्रधान है ? इस बातको नीचेके श्लोकोंसे दिखाते हैं कि—

पूर्वः पूर्वः प्रधानं स्याद्विवाहो धर्मतः स्थितेः ।
पूर्वाभावे ततः कार्यो यो य उत्तर उत्तरः ॥ २८ ॥

धर्मसे विचार किया जाय तो पर पर विवाहोंसे पूर्व २ के विवाह श्रेष्ठ हैं २८

पूर्वः पूर्व इति । धर्मसंस्थितेरिति धर्मतो व्यवस्थानादित्यर्थः । तत्र पूर्वे धर्म्याश्चत्वारः । अस्मिन्दर्शने गान्धर्वाद्ब्राह्मादयः प्रधानम् । तत्रापि केचित्तरतमभेदेन पूर्वः पूर्व इत्याहुः । गान्धर्वो ह्यासुरात् षडिति । ऐते एकस्मिन्पक्षे द्वावपि धर्म्यौ । किंतु यथा पूर्वेण तथा परतः । यथा च गान्धर्वो न तथासुर इति । केचित् 'आसुरोऽपि पैशाचात्तथाधर्मत्वात् । पैशाचोऽधर्म्योऽपि राक्षसात्प्रधानम् । राक्षसस्य साहसकर्मत्वात् । यो य उत्तर उत्तर इति अन्यगत्या अन्यः' इत्याहुः ॥२८॥

यदि श्रेष्ठ और अश्रेष्ठकी धर्मसे व्यवस्था की जाय तो इन विवाहोंमें कोई पहिले चार विवाहोंको धार्मिक मानते हैं । इस पक्षमें गन्धर्वादिकोंसे ब्राह्म आदि प्रधान हैं, इनमें भी कोई तरतम भेदसे पूर्व पूर्व श्रेष्ठ बताते हैं । गान्धर्व आसुर विवाहसे श्रेष्ठ है, इस तरह इन दोनोंके मिल जानेसे ६ हुए, क्योंकि एक पक्षमें ये दोनों भी धर्मानुकूल ही हैं, किन्तु जैसा पूर्व है वैसा पर नहीं, यानी गान्धर्व जैसे धर्मानुकूल है, उस जैसा आसुरविवाह नहीं है । पर आसुर भी पैशाचसे तो श्रेष्ठ है, क्योंकि पूर्वकी तरह पैशाचसे अधिक इसमें धर्म रहता है । अधर्मका पैशाच भी राक्षस विवाहसे श्रेष्ठ है, क्योंकि राक्षसविवाह साहसका कर्म है । फिर उत्तर २ के विवाह पूर्व २ विवाहोंके न हो सकनेके कारण ही किये जाते हैं । क्योंकि वे तो हो नहीं सकते तो अगतिसे जो हो सकता है वह कर लिया जाता है ॥ २८ ॥

गान्धर्वकी श्रेष्ठता ।

गान्धर्व एव प्रधानमित्याह—

यद्यपि मध्यम है तो भी गान्धर्व प्रधान है, इस कारण गान्धर्व विवाहका प्राधान्य कहते हैं कि—

व्यूढानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः ।
मध्यमोऽपि हि सद्योगो गान्धर्वस्तेन पूजितः ॥ २९ ॥

---

१ उसी परिस्थितिमें ठीक समझा जा सकता है जब कि चुपचाप वराव और चुपचाप ही मा बापोंसे मिल जाय, पर ऐसा करनेमें भी क्वारीके गमनके पापसे कभी मोक्ष नहीं हो सकता, पर वह भी खतरेसे खाली नहीं है ।

किये हुए विवाहोंका भी प्रेम ही फल है, इसी कारण ही मध्यम भी गान्धर्व विवाह सद्योग है, इस कारण वह पूजित है ॥ २९ ॥

व्यूढानामिति कृतानामनुरागः फलम् । अन्यथानुरागाभावे निष्फलः स्यात् । मध्यमोऽपि हि षडित्येकस्मिन्पक्षे । सद्योग इति शोभनोऽनुरागात्मको योगोऽस्येति ; तेन च सद्योगेन गान्धर्व इत्युच्यते ॥ २९ ॥

विवाह करके भी अनुराग ही पाना है, क्योंकि विना प्रेमके विवाह निष्फल ही है । गान्धर्वको मध्यम छः विवाहोंके माननेवालोंके पक्षमें कहा गया है । इसमें प्रेमरूप सुन्दर योग है, इसी सद्योगके कारण इसे गान्धर्व कहते हैं ॥ २९ ॥

एवं च कृत्वास्य प्राधान्यमित्याह—

पहिले वताये हुए कारणोंको लेकर भी इसका प्राधान्य बताते हैं कि—

सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह ।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वः प्रवरो मतः ॥ ३० ॥

इति श्रीवात्स्यायनीये कामसूत्रे कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे विवाहयोगाः पञ्चमोऽध्यायः ।

सुखका हेतु होनेके कारण, बहुतक्लेश न होनेके कारण और वरण न होनेके कारण एवम् अनुरूप होनेके कारण गान्धर्व श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

सुखत्वादिति सुखहेतुत्वात् । अबहुक्लेशात् प्रायेणेति । प्रायशो न यत्नसाध्य इत्यर्थः । अवरणात् वरणसंविधानाभावात् । इति विवाहयोगा एकत्रिंशं प्रकरणम् ॥

इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रटीकायां जयमङ्गलाभिधानायां विदग्धाङ्गनाविरहकातरेण गुरुदत्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेणैकत्रकृतसूत्रभाष्यायां कन्यासंप्रयुक्तके तृतीयेऽधिकरणे विवाहयोगाः पञ्चमोऽध्यायः ।

सुख देनेवाला है, इसमें प्रायः बहुत यत्न भी नहीं करना पड़ता, इसमें वरणके विधानोंका कोई बखेडा भी नहीं है । केवल प्रेम ही प्रधान है अतएव यह श्रेष्ठ है । यह विवाहयोग नामक इकतीसवाँ प्रकरण पूरा हुआ ॥ ३० ॥

इति श्री पं० द्वीपचन्द्रशर्म-तनूज सर्वतन्त्रस्वतन्त्र रिसर्चस्कालर पं० माधवाचार्यनिर्मित कामसूत्र तथा जयमङ्गलाके पञ्चम अध्यायकी पुरुषार्थप्रभा नामक भाषाटीका समाप्त ॥

समाप्तं चेदं कन्यासंप्रयुक्तकं तृतीयमधिकरणम् ।